जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्रीघासीलालव्रति-विरचितया आचारमणि-
मञ्जूषाख्यया व्याख्यया समलङ्कृत

श्रीदशवैकालिकसूत्रम्

[प्रथमो भागः अध्ययन १-५]

नियोजकः-

संस्कृत-प्राकृतज्ञ-जैनागमनिष्णात प्रियव्याख्यानि-पं० मुनिश्री कन्हैयालालजी
महाराजः ।

प्रकाशकः

परमश्रद्धासंपन्न अ. सौ. पानकुंवरबाई धींगडमल्लजी कानुगा प्रदत्त
द्रव्यसाहाय्येन श्रीअखिल-भारत-श्वेताम्बर-स्थानकवासि-
जैनशास्त्रोद्धार समितिः
प्रमुख श्रेष्ठि-श्री शान्तिलालमंगलदासभाई महोदयः
राजकोट.

तृतीयं संस्करणम्-५००

मूल्यम् रु. २५

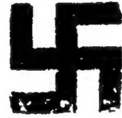
तृतीय-आवृत्ति	वीर-संवत्	विक्रम संवत्	इस्वीसन् १९७४
प्रति ५००	२५००	२०३१	

પ્રકાશક : પ્રાપ્તિ સ્થાન
શ્રીઅ.ભા.શ્વે સ્થાનકવાસી
જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ
ગ્રીન લોજ પાસે, રાજકોટ.

Published by :
Shri Akhil Bharat S S
Jain Shastrodhara Samiti,
Garedia Kuva Roae, RAJKOT,
(Saurash tra), W, Ry, India



ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां,
जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैप यत्नः ।
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा,
कालोह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥१॥



हरिगीतच्छन्दः

करते अवज्ञा जो हमारी यत्न ना उनके लिये ।
जो जानते हैं तत्त्व कुछ फिर यत्न ना उनके लिये ॥
जनमेगा मुझसा व्यक्ति कोई तत्व इससे पायगा ।
है काल निरवधि विपुलपृथ्वी ध्यान में यह लायगा ॥१॥



ત્રીજી આવૃત્તિ : પ્રત ૫૦૦
વીર સંવત્ : ૨૫૦૦
વિક્રમ સંવત્ ૨૦૩૧
ઇસ્વી સન . ૧૯૭૪

મુદ્રક :
મહન્ત સ્વામી શ્રીત્રિભુવન દાસજી શાસ્ત્રી
રામાનંદ પ્રિંટિંગ પ્રેસ
કાંકરિયા રોડ અમદાવાદ-૨૨

શ્રી વર્ધમાન શ્રમણ સંઘના આચાર્યશ્રી

પૂજ્ય આત્મારામજી મહારાજશ્રીએ

શ્રી દશવૈકાલિક સૂત્ર માટે

*

આ પે લ

સમ્મતિપત્ર

ઉપરાંત

પૂજ્ય શ્રીઘાસીલાલજી મહારાજનાં

બનાવેલાં બીજા સૂત્રો માટે તેઓશ્રીનાં મંતવ્યો

*

તે મ જ

અન્ય મહાત્માઓ મહાસતીજીઓ, અદ્યતન પદ્ધતિવાળા કૉલેજના પ્રોફેસરો

તે મ જ

શાસ્ત્રજ્ઞ શ્રાવકોના અભિપ્રાયો

ઠે. ગ્રીન લૉજ પાસે
ગરેડીયા કૂવા રોડ
રાજકોટ : સૌરાષ્ટ્ર

શ્રીઅખિલ ભારત શ્વે. સ્થા. જૈન
શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ

प्रस्तावना.

कषायलिप्त कर्मबन्ध से बन्धे हुए संसारी प्राणियों के हितार्थ जगत हितैषी भगवान् श्री वर्धमान स्वामीने श्रुतचारित्ररूप दो प्रकार का धर्म कहा है। इन दोनों धर्म की आराधना करने वाला मोक्षगति को प्राप्त कर सकता है, इसलिये मुमुक्षु को दोनों धर्मों की आराधना अवश्य करनी चाहिए ! क्यों कि–" ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः" ज्ञान और क्रिया इन दोनों से मोक्ष होता है। यदि ज्ञान को ही विशेषता देकर क्रिया को गौण कर दिया जाय तो वीतरागकथित श्रुतचारित्र धर्म की आराधना अपूर्ण और अपंग मानी जायगी, और अपूर्ण कार्य से मोक्ष प्राप्ति होना सर्वथा असंभव है, एतदर्थ वीतरागप्रणीत सरल और सुबोध मार्ग में निश्चय और व्यवहार दोनों नयों को मानना ही आवश्यक है। कहा भी है—

"व्यवहारं विना केचिद् भ्रष्टाः केवलनिश्चयात्।
निश्चयेन विना केचित्, केवल व्यवहारतः ॥१॥

द्वाभ्यां दृग्भ्यां विना न स्यात् सम्यग् द्रव्यावलोकनम्।
यथा तथा नयाभ्यां चे,-त्युक्तं स्याद्वादवादिभिः ॥२॥

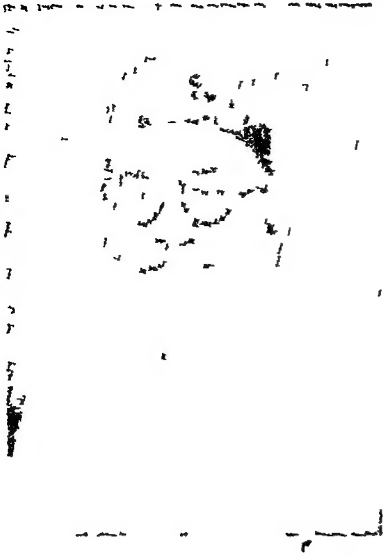
स्याद्वादके स्वरूप को निरूपण करने वाले भगवानने निश्चय और व्यवहार इन दोनों को यथास्थान आवश्यक माना है। जैसे दोनों नेत्रों के विना वस्तु का अवलोकन बराबर नहीं होता है वैसे ही दोनों नयों के विना धर्म का स्वरूप यथार्थ नहीं जाना जा सकता, और इसी कारण व्यवहार नय के विना केवल निश्चयवादी मोक्ष मार्ग से पतित हो जाते हैं और कितनेक–व्यवहारवादी केवल व्यवहार को ही मानकर धर्म से च्युत हो जाते हैं।

आत्मा का ध्येय यही है कि सर्व कर्मसे मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त करना; परन्तु उसमें कर्मों से छुटकारा पानेके लिये व्यवहाररूप चारित्रक्रिया का आश्रय जरूर लेना पडता है, क्यों कि विना व्यवहार के कर्मक्षय की कार्यसिद्धि नहीं हो सकती ! जो ज्ञानमात्रही को प्रधान मानकर व्यवहार क्रिया को उठाते है वे अपने जन्म को निष्फल करते हैं। जैसे पानी में पडा हुआ पुरुष तैरने का ज्ञान रखता हुआ भी अगर हाथ पैर हिलाने रूप क्रिया न करे तो वह अवश्य डूब ही जाता है, जिस प्रकार नाइट्रोजन और ओक्सीजन के मिश्रण विना विजली प्रगट नहीं होती उसी प्रकार ज्ञान के होते हुए भी क्रिया विना मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती, इसीलिए भगवानने इस दशवैकालिक सूत्र में मुनिको ज्ञानसहित आचार धर्म के पालन करनेका निरूपण किया है।

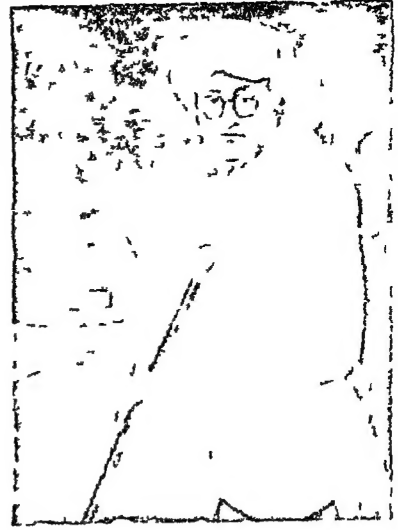
आद्यमुरव्बीश्रीओ

श्रीमान् शेठ कानुगा
श्री धींगडमलजी—अहमदाबाद

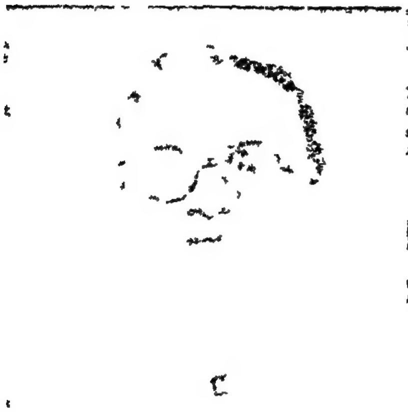
આદ્યમુરબ્બીશ્રીઓ



શેઠ શ્રી શાંતિલાલ મંગળદાસભાઈ
અમદાવાદ

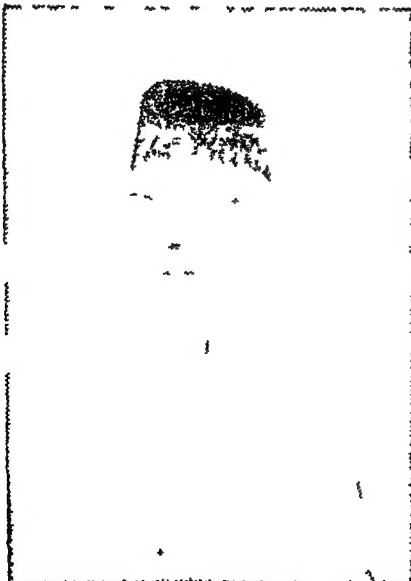


(સ્વ) શેઠશ્રી શામજીભાઈ વેલજીભાઈ
વીરાણી-રાજકોટ



શેઠ શ્રી પોપટલાલ માવજીભાઈ-મહેતા

(સ્વ) શેઠશ્રી છગનલાલ શામળદાસ
ભાવસાર અમદાવાદ.

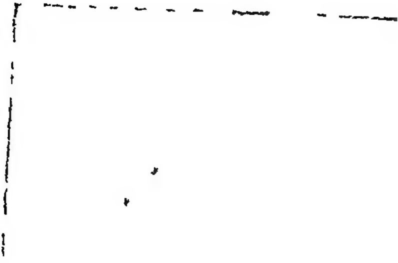


શેઠશ્રી રામજીભાઈ શામજીભાઈ
વીરાણી-રાજકોટ.



वच्चे बेठेला-लालाजी किशनचंदजी सा जौहरी
उभेला-सुपुत्र चि. महेतावचन्दजी सा
नाना-अनिलकुमार जैन दोयत्ता दिल्ली

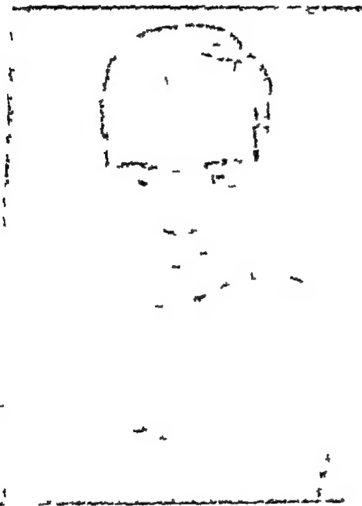
આદ્યમુરબ્બીશ્રીઓ



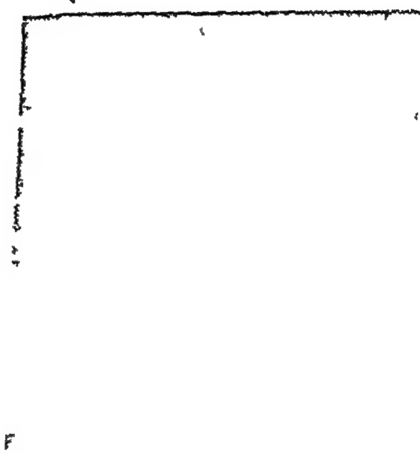
(સ્વ) શેઠશ્રી હરખચંદ કાલીદાસ વારિઆ
ભાણવડ



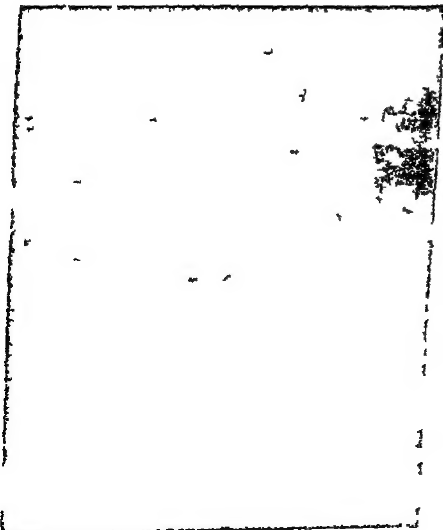
(સ્વ.) શેઠ રંગજીભાઈ મોહનલાલ શાહ
અમદાવાદ



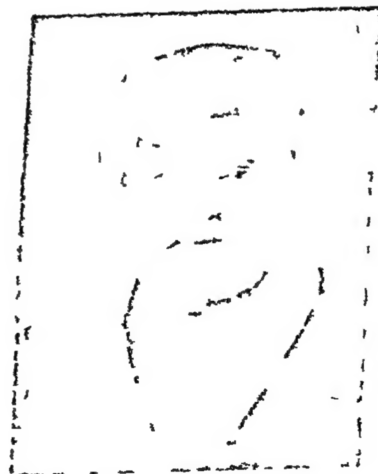
(સ્વ' શેઠશ્રી દિનેશભાઇ કાંતિલાલ શાહ
અમદાવાદ.



સ્વ. શેઠશ્રી જીવરાજભાઈ મૂલચંદભાઇ
ધ્રાંગધ્રા

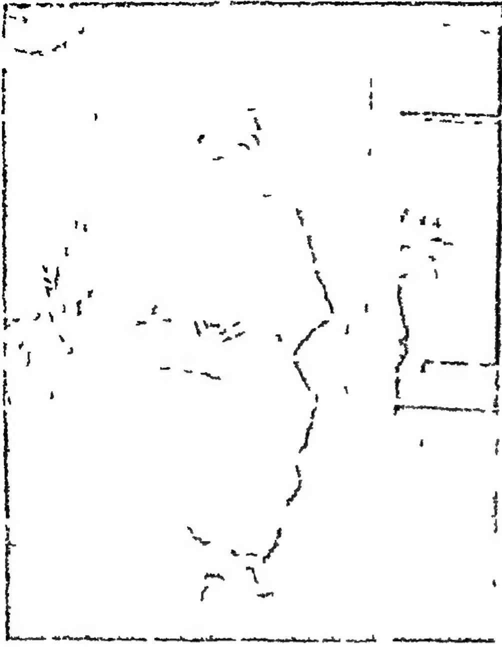


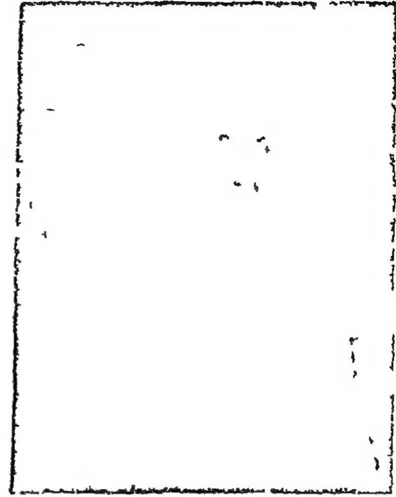
શેઠશ્રી જેસિંગભાઈ પોચાલાલભાઈ
અમદાવાદ



સ્વ. શેઠશ્રી આત્મારામ મા[illegible]લાલ
અમદાવાદ

આદ્યમુરબ્બીશ્રીઓ





સ્વ. શેઠશ્રી હરિલાલ અનોપચંદ શાહ
ખંભાત.

स्व. शेठ श्री ताराचंदजी साहेब गेलडा
मद्रास.

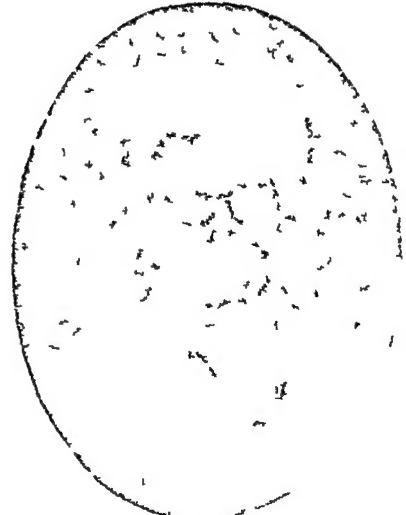




शेठश्री चीमनलालजी ऋखभचंदजी
अजीतवाले (सपरिवार)

शेठ श्री कीशनलालजी फुलचंदजी लुणिया
बेंगलोरवाले

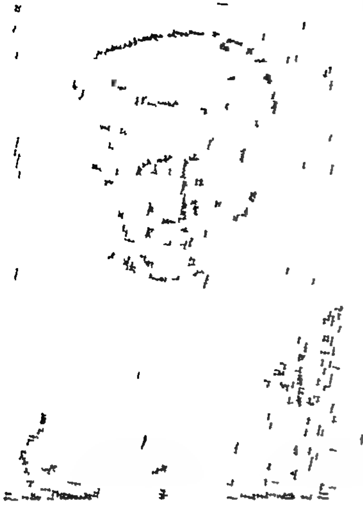




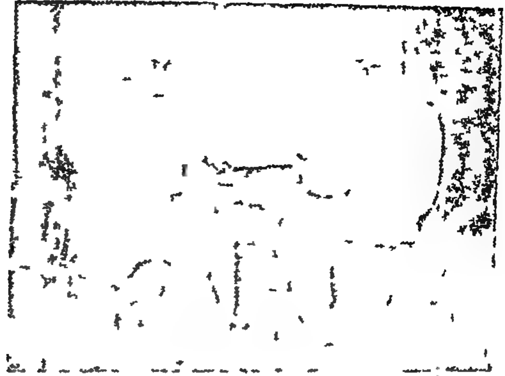
वच्चे बेठेला–मोटाभाइ श्रीमान् मूलचंदजी
जवाहीरलालजी वरडिया
बाजुमा बेठेला–भाई मिश्रीलालजी वरडिया
उभेला–भाई पूनमचंदजी वरडिया

श्रीमान् शेठश्री
खींवराजजी सा. चोरडिया
मु० मद्रास

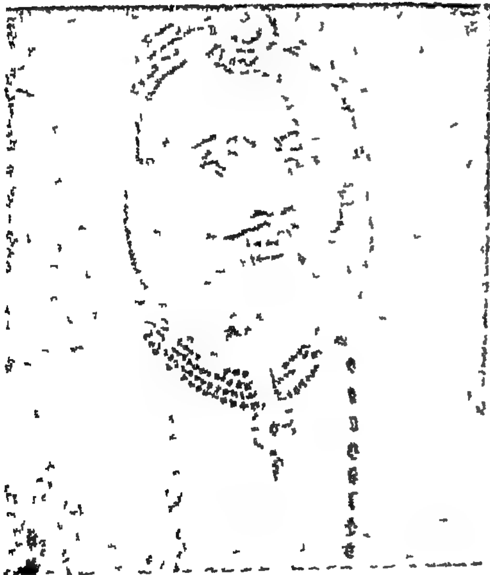
આદ્યમુરબ્બીશ્રીઓ



પટેલ ડોસાભાઈ ગોપાલદાસ
મુ સાણંદ (જી. અમદાવાદ)



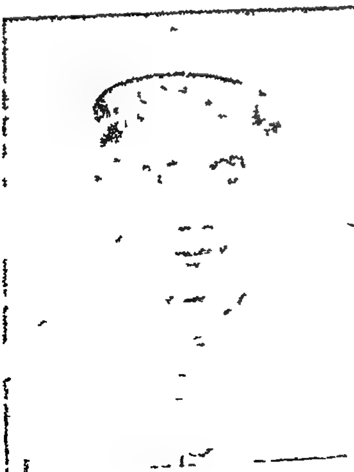
૧ અમીચંદભાઈ તથા
૨ ગીરધરભાઈ બાંટવિયા મુ. બેંગલોર



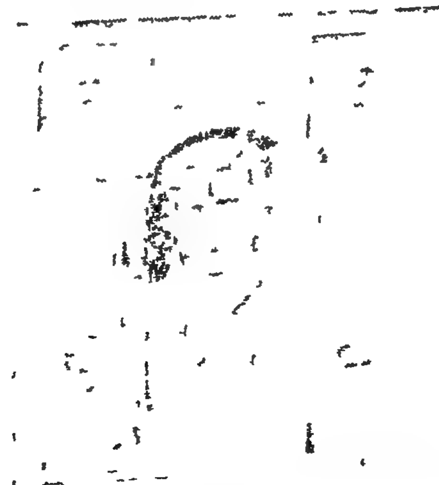
शाहजी श्री मोडीलालजी गलुन्डिया
मु: उदयपुर



મદ્રાસવાલા સ્વર્ગસ્થ ન્યાયમૂર્તિ
રતીલાલભાઈ ભાયચંદભાઈ મહેતા



સ્વ. શેઠ માણેકચંદ નેમચંદ
મુ સાંગરોલ

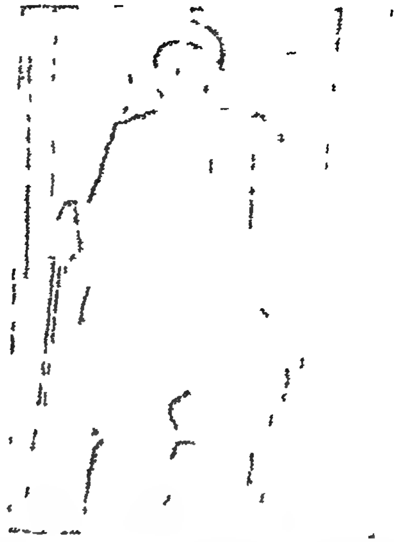


अमलनेर
पारख छोगमलजी मुलतानमलजी
शेठ रघुनाथमलजी. शेठ वाबुलालजी
,, पन्नालालजी, शेठ नुनगनदजी

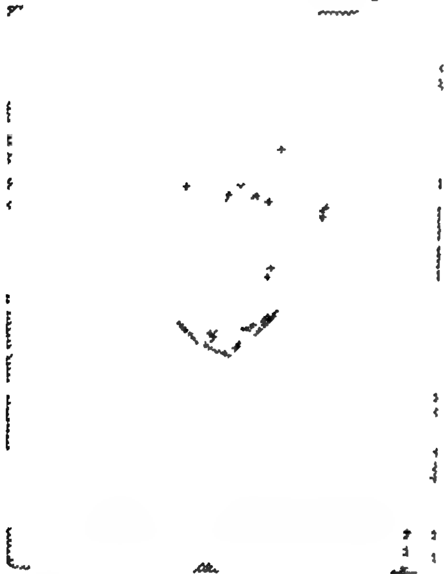
આદ્યમુરબ્બીશ્રીઓ



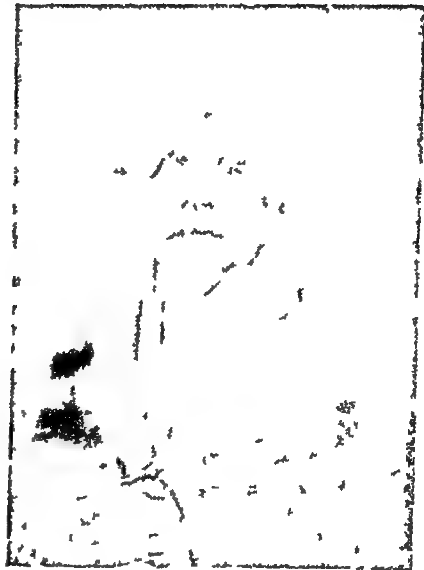
શ્રીમાન્ શેઠ મણીલાલ પોપટલાલ વોરા
અમદાવાદ, જન્મ તા ૧૦-૬-૧૯૦૪



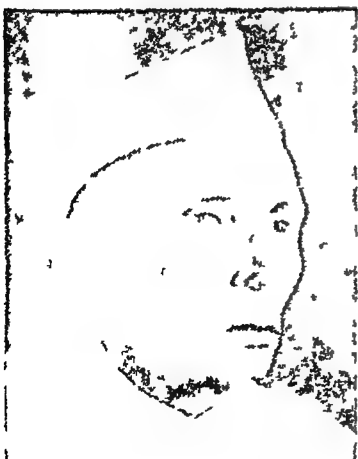
श्रीमान् शेठ लालाजी कपूरचन्द्रजी
नाहटा, मु॰ देहली



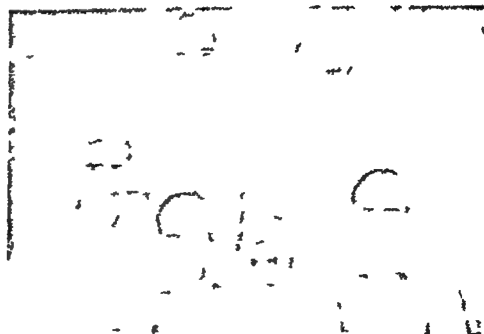
શ્રી વ્રજલાલ દુર્લભજીભાઈ પારેખ
રાજકોટ.



કોઠારી હરગોવિંદ જેચંદભાઈ
રાજકોટ.



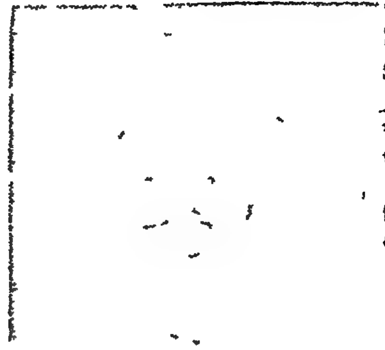
શેઠશ્રી મણીલાલ જેઠુભાઇ
પાલનપુરવાળા



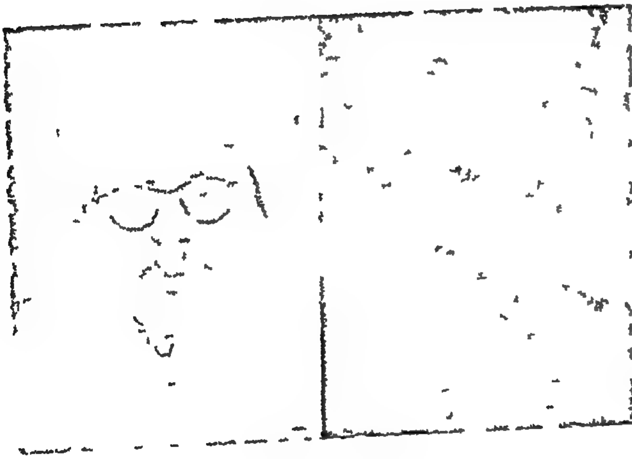
શ્રીમાન લાલાજી પન્નાલલજી નાહટા
સપરિવાર દિલ્લી

आद्यमुरब्बीश्रीओ

માનવતા આદ્ય
મુરબ્બી શેઠ શ્રી
માણેકલાલભાઈ
અમુલખભાઈ મહેતા
ઘાટકોપર-મુંબઈ

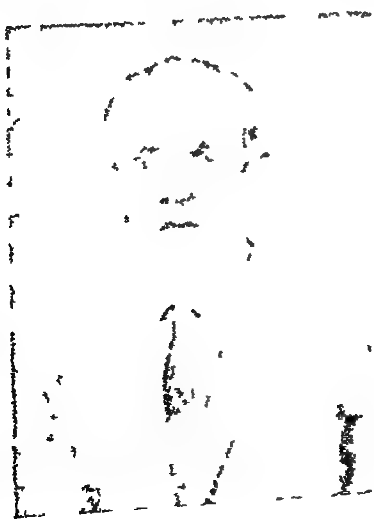


श्रीमान् शेठ धनराजजी पन्नालालजी
जांगडा, मु. जालना (महाराष्ट्र)

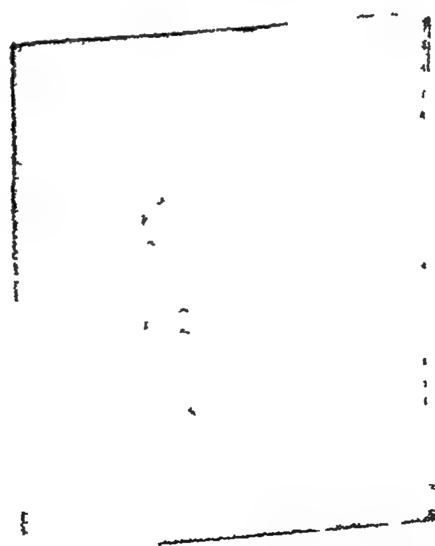


शेठ श्री मिश्रीलालजी लालचंदजी सा. लुणिया
तथा शेठश्री जेवंतराजजी अमदावाद

શેઠ પ્રભુદાસભાઈ મૂળજીભાઈ દોશી
રાજકોટ

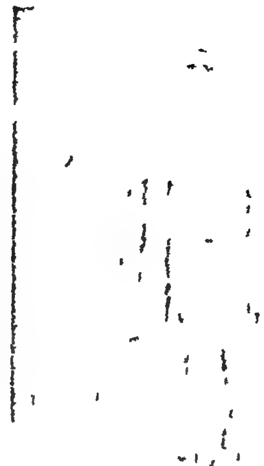


ઝવેરી રસીકલાલ મણીલાલ મહેતા
મદ્રાસ



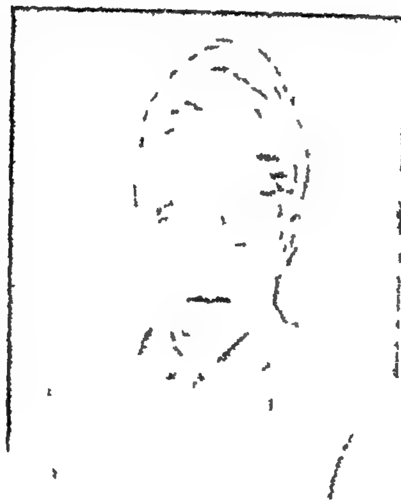
स्व. श्रीमान् शेठश्री मुकनचंदजी सा०
बालिया पाली मारवाड

આદ્યમુરબ્બીશ્રીઓ



પાલનપુરવાલા
કોઠારી અમુલખચંદ મલુકચંદ

ભાનુભાઈ કેશવલાલ ભણસાલી
પાલનપુર-મુંબઈ

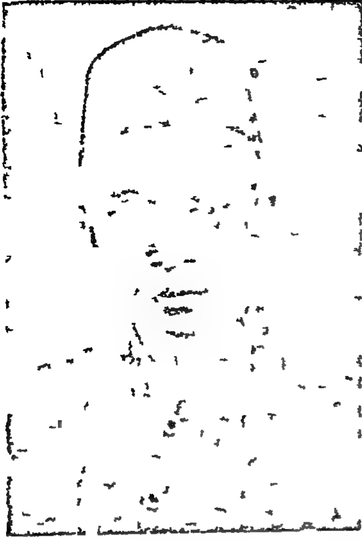


सेठ श्री
भैरूदानजी अगरचंदजी
सेठिया बीकानेर

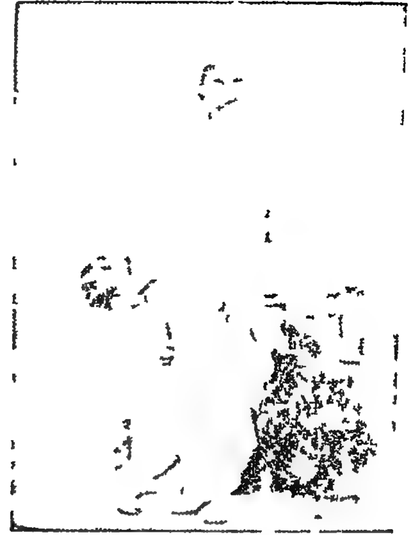
श्रीमान [illegible] जवेरी-दिल्ली

શેઠ શ્રી [illegible]
પાલનપુર

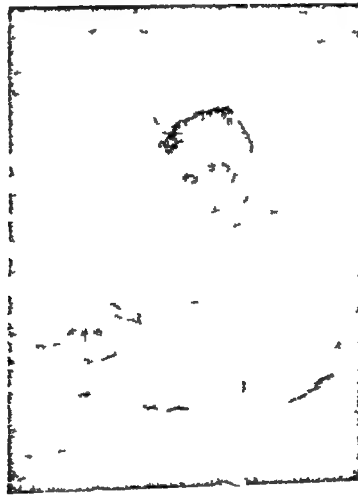
आद्यमुरब्बीश्रीओ



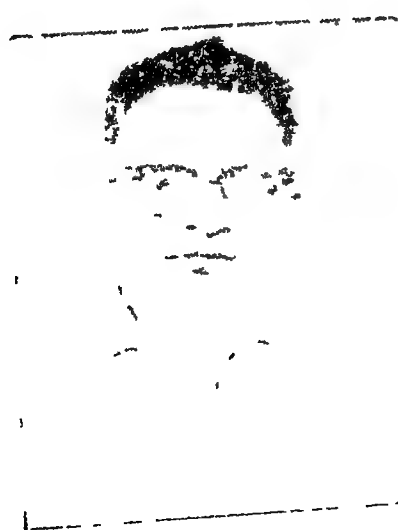
(સ્વ.) શેઠશ્રી વારશીભાઇ જીવણલાલ
બારસી



શ્રીમાન્ શેઠ જગજીવનભાઇ રતનસીભાઈ
બગાડયા, મુ. દામનગર



શ્રી વિનોદકુમાર
વિરાણી
રાજકોટ



શેઠશ્રી દેવચંદભાઈ ઝોજલાલભાઈ
વલાણી–સુરત



સ્વ. સુધીરભાઇ જયંતીલાલ ઝવેરી
મુંબઈ.

जैनाचार्य जैनधर्मदिवाकर पूज्यश्री घासीलालजी महाराज साहबने दशवैकालित सूत्र की आचारमणिमञ्जूषा नाम की टीका तैयार करके सर्व साधारण एवं विद्वान् मुनियों के अध्ययन के लिये पूर्ण सरलता कर दी है, पूज्यश्री के द्वारा जैनागमों की लिखी हुई टीकाओं में श्री दशवैकालिक सूत्रका प्रथम स्थान है। इस के दश अध्ययन हैं—

(१) प्रथम अध्ययन में भगवानने धर्म के स्वरूप अहिंसा, संयम और तप बतलाया है। इसकी टीका में धर्म शब्द की व्युत्पत्ति और शब्दार्थ तथा अहिंसा, संयम और तप का विवेचन विशदरूपसे किया है। वायुकायसंयमके प्रसंग में, मुनि को सदोरकमुखवस्त्रिका मुखपर बांधना चाहिए इस बात को भगवती सूत्र आदि अनेक शास्त्रों से तथा ग्रन्थों से सप्रमाण सिद्ध किया है। मुनि के लिए निरवद्य भिक्षा लेनेका विधान है। तथा भिक्षाके मधुकरी आदि छह भेदों का निरूपण किया है।

(२) दूसरे अध्ययन में संयम मार्ग में विचरते हुए नवदीक्षित का मन यदि संयम मार्गसे बाहर निकल जाय तो उसको स्थिर करनेके लिये रथनेमि और राजीमती के संवाद का वर्णन है एवं त्यागी अत्यागी कौन है वह भी समझाया है।

(३) तीसरे अध्ययन में संयमी मुनि को बावन (५२) अनाचीर्णोंका निवारण बतलाया गयाहै, क्यों कि बावन अनाचीर्ण संयम के घातक हैं। इन अनाचीर्णों का त्याग करने के लिये आज्ञा निर्देश है।

(४) चौथे अध्ययन में—'जो बावन अनाचीर्णों का निवारण करता है वही छह काया का रक्षक हो सकता है' इसलिए छहकाय के स्वरूप का निरूपण तथा उनकी रक्षा का विवरण है। मुनि अयतना को त्यागे यतना को धारण करे। यतना मार्ग वही जान सकता है जिसे जीव अजीव का ज्ञान है। जो जीवादि का ज्ञाता है वह क्रम से मोक्षको प्राप्त करता है। पिछली अवस्था मे भी चारित्र ग्रहण करनेवाला मोक्ष का अधिकारी हो सकता है।

(५) पांचवें अध्ययन में छहकाया का रक्षण निरवद्य भिक्षा ग्रहणसे होता है, अतः भिक्षा की विधी कही गई है।

(६) छठवें अध्ययनमें 'निरवद्य भिक्षा लेने से अठारह स्थानों का शास्त्रानुसार आराधना करता है, उन अठारह स्थानों का वर्णन है। उनमे सत्य और व्यवहार भाषा बोलनी चाहिये।

(७) सातवें अध्ययन में 'अठारहस्थानों का आराधना करनेवाले मुनिको कौनसी भाषा बोलनी चाहिये' इसके लिये ४ भाषाओंका स्वरूप कहा गया है। उनमे सत्य और व्यवहार भाषा बोलनी चाहिये।

आठवे अध्ययन मे 'निरवद्य भाषा बोलनेवाला पांच आचाररूप निधानको पाता है' अतः उस आचाररूप निधान का वर्णन है।

(९)नववें अध्ययन में 'पांच आचार का पालन करने वाला ही विनयशील होता है' अतः विनय के स्वरूप का निरूपण किया है।

(१०) दशवे अध्ययन मे–पहले कहे हुए नवों अध्ययनों मे कही हुई विधिका पालन करने वाला ही भिक्षु हो सकता है' इसलिए भिक्षु के स्वरूप का वर्णन किया है।

निवेदक
समीर मुनि

*

(श्री दशवैकालिकसूत्रका सम्मतिपत्र)

॥ श्रीवीरगोतमाय नमः ॥

सम्मति–पत्रम्.

मए पंडियमुणि-हेमचंदेण य पंडिय-मूलचन्दवासवारापत्ता पडिय-रयण-मुणि-घासीलालेण विरइया सक्कय-हिंदी-भासाहि जुत्ता सिरि-दसवेयालिय-नाम सुत्तस्स आयारमणिमंजूसा वित्ती अवलोइया, इमा मणोहरा अत्थि, एत्थ सद्दाणं अइसयजुत्तो अत्थो वण्णिओ विउजणाणं पाययजणाण य परमोवयारिया इम' वित्ती दीसइ ! आयारविसए वित्तीकत्तारेण अइसयपुव्वं उल्लेहो कडो, तहा अहिंसाए सरूवं जे जहा तहा न जाणंति तेसिं इमाए वित्तीए परमलाहो भविस्सइ, कत्तुणा पत्तेयविसयाणं फुडरूवेण वण्णणं कडं, तहा मुणिणो अरहत्ता इमाए वित्तीए अवलोयणाओ अइसयजुत्ता सिज्झइ ! सक्कयछाया सुत्तपयाणं पयच्छेओ य सुबोहदायगो अत्थि, पत्तेयजिण्णासुणो इमा वित्ती दट्ठव्वा । अम्हाणं समाजे एरिसविज्ज-मुणिरयणाणं सब्भाओ समाजस्स अहोभग्गं अत्थि, किं ? उत्तविज्जमुणिरयणाण कारणाओ जो अम्हाणं समाजो मुत्तप्पाओ अम्हकेरं साहिच्चं च लुत्तप्पायं अत्थि तेसिं पुणोवि उदओ भविस्सइ जस्स कारणाओ भवियप्पा मोक्खस्स जोग्गो भवित्ता पुणो निव्वाणं पाविहिइ अओहं आयारमणि-मंजूसाए कत्तुणो पुणो पुणो धन्नवायं देमि–॥

वि- सं १९९० फाल्गुन-
शुक्लत्रयोदशी मङ्गले
(अलवर स्टेट)

इइ–
उवज्झाय-जइण-मुणी, आयारामो
(पंचनईओ)

श्री दशवैकालिक सूत्रनु सम्मति पत्र

श्रमणु संघना महान आचार्य आगम वारिधि सर्वतन्त्र स्वतंत्र जैनाचार्य पूज्यश्री आत्मारामजी महाराजे आपेला सम्मति पत्रनो गुजराती अनुवाद

મેં તથા પંડિત મુનિ હેમચંદ્રજીએ પંડિત મૂલચંદ વ્યાસ (नागौरमारवाड वाला) દ્વારા મળેલી પંડિત રત્ન શ્રીઘાસીલાલજી મુનિ વિરચિત સંસ્કૃત અને હિન્દી ભાષા સહિત શ્રીદશવૈકાલિક સૂત્રની આચારમણિમંજૂષા ટીકાનું અવલોકન કર્યું આ ટીકા સુંદર બની છે. તેમાં પ્રત્યેક શબ્દનો અર્થ સારી રીતે વિશેષ ભાવ લઇને સમજાવવામાં આવેલ છે

તેથી વિદ્વાનો અને સાધારણ બુદ્ધિવાળાઓ માટે પરમ ઉપકાર કરવાવાળી છે. ટીકાકારે મુનિના આચાર વિષયનો સારો ઉલ્લેખ કરેલ છે જે આધુનિક મતાવલંબી અહિંસાના સ્વરૂપ ને નથી જાણતા, દયામા પાપ સમજે છે તેમને માટે અહિંસા શુ વસ્તુ છે' તેનું સારી રીતે પ્રતિપાદન કરેલ છે વૃત્તિકારે સૂત્રના પ્રત્યેક વિષયને સારી રીતે સમજાવેલ છે. આ વૃત્તિના અવલોકનથી વૃત્તિકારની અતિશય યોગ્યતા સિદ્ધ થાય છે.

આ વૃત્તિમા એક બીજી વિશેષતા એ છે કે મૂલ સૂત્રની સંસ્કૃત છાયા હોવાથી સૂત્ર, સૂત્રના પદ અને પદચ્છેદ સુબોધ દાયક બનેલ છે.

પ્રત્યેક જીજ્ઞાસુએ આ ટીકાનું અવલોકન અવશ્ય કરવુ જોઇએ વધારે શુ કહેવુ. અમારા સમાજમા આવા પ્રકારના વિદ્વાન મુનિ રત્નનું હોવું એ સમાજનું અહોભાગ્ય છે આવા વિદ્વાન્ મુનિ રત્નોના કારણે સુપ્તપ્રાય-સુતેલો સમાજ અને લુપ્તપ્રાય એટલે લોપ પામેલું સાહિત્ય એ બંન્નેનો ફરીથી ઉદય થશે. જેનાથી ભાવિતાત્મા મોક્ષયોગ્ય બનશે અને નિર્વાણ પદને પામશે આ માટે અમો વૃત્તિકારને વારંવાર ધન્યવાદ આપીએ છીએ.

વિક્રમ સંવત ૧૯૯૦ ફાલ્ગુણ શુકલ
તેરસ મંગળવાર (અલવર સ્ટેટ)

ઇઇ
ઉવજ્ઝાયજઈણુમુણીઆયારામો
પંચનઇઓ

जैनागमवेत्ता जैनधर्मदिवाकर उपाध्याय श्री १००८ श्री आत्मारामजी महाराज तथा न्याय व्याकरण के ज्ञाता परम पण्डित मुनि श्री १००७ श्री हेमचंद्रजी महाराज, इन दोनों महात्माओंका दिया हुआ श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रका प्रमाण पत्र निम्न प्रकार है -

सम्मइवत्तं

सिरि वीरनिव्वाण-संवच्छर २४५८ आसोई
(पुण्णमासी) १५ सुक्कवारो लुहियाणाओ ।

मए मुणिहेमचंदेण य पंडियरयणमुणिसिरि घासीलालविणिम्मिया सिरिउवासगसुत्तस्स अगारधम्मसजीवणीनामिया वित्ती पंडियमूलचन्दवासाओ अज्जोवंत सुया, समोईणं, इयं वित्ती जहाणामं तहा गुणेवि धारेइ, सच्चं, अगाराणं तु इमा जीवण (संजमजीवण) दाई एव अत्थि । वित्तिकत्तूणा मूलसुत्तस्स भावो उज्जुसेलीओ फुडीकओ, अहय उवासयस्स सामण्णविसेसधम्मो, णयसियवायवाओ' कम्मपुरिसट्ठवाओ समणोवासयस्स धम्मदढत्ता य' इच्चाइविसया अस्सिं फुडरीइओ वण्णिया, जेण कत्तुणो पडिहाए सुट्ठुप्पयारेण परिचओ होइ, तह इइहासदिट्ठिओत्ति सिरिसमणस्स भगवओ' महावीरस्स

समए वट्टमाण–भरहवासस्स य कत्तुणा विसयप्पयारेण चित्तं चित्तितं, पुणो सक्कयपाढीणं, वट्टमाणकाले हिन्दीणामियाए भासाए भासीणं य परमोवयारो कडो, इमेण कत्तुणो अरिहता दीसइ कत्तुणो एय कज्जं परमप्पसंसणिज्जमत्थि। पत्तेयजणस्स मज्झत्थभावाओ अस्स सुत्तस्स अवलोयणमईव लाहप्पयं, अविउ सावयस्स तु (उ) इमं सत्थं सव्वस्समेव अत्थि, अओ कत्तुणो अणेगकोडिसो धण्णवाओ अत्थि जेहिं अच्चंतपरिसमेण जयिण जणतोवरि असिमोवयारो कडो, अहय सावयस्स वारस नियमा उ पत्तेयजणस्स पढ़णिज्जा अत्थि, जेसिं पहावओ वा गहणाओ आया निव्वाणाहिगारी भवइ, तहा भवियव्वयावओ पुरिसक्कारपरक्कमवाओ य अवस्समेव दंसणिज्जो, किंवहुणा इमीसे वित्तीए पत्तेयविसयस्स फुडसद्देहिं वण्णणं कयं जइ अन्नोवि एवं अम्हाणं पसुत्तप्पाए समा जेविज्जं भवेज्जा तया नाणस्स चरित्तस्स तहा सवस्सय खिप्पं उदयो भविस्सइ' एव हं मन्ने ॥

भवईओ–

उवज्झाय–जपणमुणि—आयाराम, पंचनईओ

卐

सम्मतिपत्र (भाषान्तर)

श्री वीर निर्वाण सं० २४५८ आसो
शुक्ला (पूर्णिमा) १५ शुक्रवार लुधियाना

मैंने और पंडितमुनि हेमचन्दजीने पंडितरत्नमुनिश्री घासीलालजीकी रची हुई उपासक-दशांग सूत्रकी गृहस्थधर्मसंजीवनी नामक टीका पंडित मूलचन्दजी व्याससे आद्योपान्त सुनी है। यह वृत्ति यथानाम तथागुणवाली–अच्छी बनी–है। सच यह गृहस्थोंके तो जीवनदात्रीसंयमरूप जीवनको देनेवाली-ही है। टीकाकारने मूलसूत्रके भावोंको सरल रीतिसे वर्णन किया है, तथा श्रावकका सामान्य धर्म क्या है ? और विशेष धर्म क्या है ? इसका खुलासा इस टीकामें अच्छे ढंगसे बतलाया है। स्याद्वादका स्वरूप कर्म–पुरुषार्थ वाद और श्रावकको धर्मके अन्दर दृढता किस प्रकार रखना, इत्यादि विषयोंका निरूपण इसमें भली भाँती किया है। इससे टीकाकारकी प्रतिभा खूब झलकती है। ऐतिहासिक दृष्टिसे श्रमण भगवान् महावीरके समय जैनधर्म किस जाहोजलाली पर था ! और वर्तमान समय जैनधर्म किस स्थितिमें पहुंचा है ? इस विषयका तो ठीक चित्र ही चित्रित कर दिया है। फिर संस्कृत जाननेवालोंको तथा हिन्दी भाषाके जाननेवालोंको भी पूरा लाभ होगा, क्योंकि टीका संस्कृत है उसकी सरल हिन्दी करदी गई है। इसके पढने से कर्ताकी योग्यताका पता लगता है कि वृत्तिकारने समझानेका कैसा अच्छा प्रयत्न किया है।

टीकाकारका यह कार्य परम प्रशंसनीय हैं। इस सूत्रको मध्यस्थ भावसे पढने वालोंको परम लाभकी प्राप्ति होगी। क्या कहें श्रावकों (गृहस्थों) का तो यह सूत्र सर्वस्व ही हैं, अतः टीकाकारको कोटिशः धन्यवाद दिया जाता हैं, जिन्होंने अत्यन्त परिश्रमसे जैन जनताके ऊपर असीम उपकार किया हैं। इसमें श्रावकके बारह नियम प्रत्येक पुरुषके पढने योग्य हैं जिनके प्रभावसे अथवा यथायोग्य ग्रहण करनेसे आत्मा मोक्षका अधिकारी होता है। तथा भवितव्यतावाद और पुरुषकार पराक्रमवाद हरएकको अवश्य देखना चाहिये। कहांतक कहें इस टीकामें प्रत्येक विषय सम्यक् प्रकारसे बताये गये हैं। हमारी सुप्तप्राय (सोई हुईसी) समाजमें अगर आप जैसे योग्य विद्वान् फिर वी कोई होंगे तो ज्ञान चारित्र तथा श्रीसंघका शीघ्र उदय होगा, ऐसा मैं मानताहूँ—

आपका

उपाध्याय जैनमुनि आत्माराम पंजाबी

इसी प्रकार लाहोरमें विराजते हुए पण्डितवर्य विद्वान् मुनिश्री १००८ श्री भागचन्दजी महाराज तथा पं. मुनिश्री त्रिलोकचन्दजी महाराजके दिये हुए, श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रके प्रमाणपत्रका हिन्दी सारांश निम्न प्रकार हैं

श्री श्री स्वामी घासीलालजी महाराज कृत श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रकी संस्कृत टीका व भाषाका अवलोकन किया, यह टीका अतिरमणीय व मनोरञ्जक है इसे आपने वडे परिश्रम व पुरुषार्थसे तैयार किया है सो आप धन्यवादके पात्र हैं। आप जैसे व्यक्तियोंकी समाजमें पूर्ण आवश्यकता हैं आपकी इस लेखनी से समाजके विद्वान् साधुवर्ग पढकर पूर्ण लाभ उठावेंगे, टीकाके पढनेसे हमको अत्यानन्द हुवा, और मनमें ऐसे विचार उत्पन्न हुए कि हमारी समाजमें भी ऐसे २ सुयोग्य रत्न उत्पन्न होने लगे-यह एक हमारे लिये वडे गौरवको वात है।

वि. सं- १९८९ मा. आश्विन
कृष्णा १३ वार भौम लाहोर.

श्री ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्र की 'अनगार धर्माऽमृतवर्षिणी' टीका पर जैनदिवाकर साहित्यरत्न जैनागमरत्नाकर परमपूज्य श्रद्धेय जैनाचार्य श्री आत्मारामजी महाराजका

सम्मतिपत्र

लुधियाना, ता. ४-८-५१

मैंने आचार्यश्री घासीलालजी म. द्वारा निर्मित 'अनगार-धर्माऽमृत-वर्षिणी टीका वाले श्री ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्रका मुनि श्री रत्नचन्द्रजीसे आद्योपान्त श्रवण किया।

यह निःसन्देह कहना पडता है कि यह टीका आचार्यश्री घासीलालजी म. ने बड़े परिश्रम से लिखी है। इसमें प्रत्येक शब्दका प्रामाणिक अर्थ और कठिन स्थलों पर सार–पूर्ण विवेचन आदि कई एक विशेषतायें हैं। मूल स्थलोंको सरल बनाने में काफी प्रयत्न किया गया है, इससे साधारण तथा असाधारण सभी संस्कृतज्ञ पाठकों को लाभ होगा ऐसा मेरा विचार है।

मैं स्वाध्यायप्रेमी सज्जनों से यह आशा करूँगा कि वे वृत्तिकारके परिश्रमको सफल बनाकर शास्त्रमें दीगई अनमोल शिक्षाओं से अपने जीवनको शिक्षित करते हुए परम-साध्य मोक्षको प्राप्त करेंगे।

श्रीमान्जी जयवीर

आपकी सेवामे पोष्ट द्वारा पुस्तक भेज रहे हैं और इसपर आचार्यश्रीजी की जो सम्मति है वह इस पत्रके साथ भेज रहे हैं पहुंचने पर समाचार देवे।

श्री आचार्यश्री आत्मारामजी म ठाने ६ सुख शान्तिसे विराजते है। पूज्य श्री घासीलालजी म. सा. ठाने ४ को हमारी ओरसे वन्दना अर्जकर सुखशाता पूछे।

पूज्य श्री घासीलालजी म. जी का लिखा हुआ (विपाकसूत्र) महाराजश्रीजी देखना चाहते हैं इसलिये १ कांपी आप भेजने की कृपा करें; फिर आपको वापिस भेज देवेंगे आपके पास नहीं हो तो जहांसे मिले वहांसे १ कांपी जरूर भिजवाने का कष्ट करे योग्य सेवा लिखते रहे।

निवेदक

लुधियाना ता. ४–८–५१ प्यारेलाल जैन

जैनागमवारिधि–जैनधर्मदिवाकर–उपाध्याय–पण्डित–मुनि
श्रीआत्मारामजी महाराज (पंजाब) का आचाराङ्गसूत्र की
आचारचिन्तामणि टीका पर

सम्मति–पत्र।

मैंने पूज्यवर्य श्रीघासीलालजी (महाराज) की बनाई हुई श्रीमद् आचाराङ्गसूत्र के प्रथम अध्ययन को आचारचिन्तामणि टीका सम्पूर्ण उपयोगपूर्वक सुनी।

यह टीका–न्याय सिद्धान्त से युक्त, व्याकरण के नियमसे निबद्ध है। तथा इसमें प्रसङ्ग २ पर क्रम से अन्य सिद्धान्त का संग्रह भी उचित रूप से मालूम होता है।

टीकाकारने अन्य सभी विषय सम्यक् प्रकार से स्पष्ट किये हैं, तथा प्रौढ विषयों का विशेषरूप से संस्कृत भाषा में स्पष्टतापूर्वक प्रतिपादन अधिक मनोरंजक है, एतदर्थ आचार्य महोदय धन्यवाद के पात्र है।

मैं आशा करता हूं कि–जिज्ञासु महोदय इसका भली भाँति पठन द्वारा जैनागम सिद्धान्तरूप अमृत पी पी कर मन को हर्षित करेंगे, और इसके मनन से दक्ष जन चार अनुयोगों का स्वरूपज्ञान पावेंगे। तथा आचार्यवर्य इसी प्रकार दूसरे भी जैनागमों के विशद विवेचना द्वारा श्वेताम्बर–स्थानकवासी समाज पर महान उपकार कर यशस्वी बनेंगे।

वि. सं. २००२
मृगसर सुदि १

जैनमुनि–उपाध्याय आत्माराम
लुधियाना (पंजाब)

—:*:—

शुभमस्तु ॥

वीकानेरवाळा समाजभूषण शास्त्रज्ञ भेरुदानजी शेठिआनो अभिप्राय

आप जो शास्त्रका कार्य कर रहे हैं यह बडा उपकारका कार्य है। इससे जैनजनता को काफी लाभ पहुँचेगा.
(ता. २८–३–५६ ना पत्रमांथी)

॥ श्री ॥

जैनागमवारिधि–जैनधर्मदिवाकर–जैनाचार्य–पूज्य–श्री आत्मारामजी—
महाराजाना पञ्चनद- (पंजाव) स्थानमनुत्तरोपपातिकसूत्राणा–
सर्थबोधिनीनामकटीकायामिदम्–

सम्मतिपत्रम्.

आचार्यवर्यैः श्री घासीलालमुनिभिः सङ्कलिता अनुत्तरोपपातिकसूत्राणामर्थबोधिनी-नाम्नी संस्कृतवृत्तिरुपयोगपूर्वकं सकलाऽपि स्वशिष्यमुखेनाऽश्रावि मया, यं हि वृत्तिर्मुनिवरस्य वैदुष्यं प्रगटयति। श्रीमद्भिर्मुनिभिः सूत्राणामर्थान् स्पष्टयितुं यः प्रयत्नो व्यधायि तदर्थमनेकशो धन्यवादानर्हन्ति ते। यथा चेयं वृत्तिः सरला सुबोधिनी च तथा सारवत्यपि। अस्याः स्वाध्यायेन निर्वाणपदमभीप्सुनिर्वाणपदमनुसरद्भिर्ज्ञान-दर्शन-चारित्रेषु प्रयतमानैर्मुनिभिः श्रावकैश्च ज्ञान दर्शन चारित्राणि सम्यक् सम्प्राप्यात्मानस्तत्र प्रवर्तयिष्यन्ते।

आशासे श्रीमदाशुकविर्मुनिवरो गीर्वाणवाणीजुषां विदुषां मनस्तोषाय जैनागमसूत्राणां साराविबोधाय च अन्येषामपि जैनागमानामित्थं सरलाः सुस्पष्टाश्च वृत्तीर्विधाय तांस्तान् सूत्रग्रन्थान् देवगिरा सुस्पष्टयिष्यति।

अन्ते च "मुनिवरस्य परिश्रमं सफलयितुं सरलां सुबोधिनी चेमां सूत्रवृत्तिं स्वाध्यायेन सनाथयिष्यन्त्यवश्यं सुयोग्या हंसविक्षाः पाठकाः।" इत्याशास्ते––

विक्रमाब्द २००२
श्रावणकृष्णा प्रतिपदा
लुधियाना

उपाध्याय आत्मारामो जैनमुनिः।

ऐसेही :—

मध्यभारत सैलाना-निवासी श्रीमान् रतनलालजी डोसी श्रमणोपासकजैन लिखते हैं कि:-

श्रीमान की की हुई टीकावाला उपासकदशांग सेवक के दृष्टि-गत हुवा, सेवक अभी उसका मनन कर रहा है यह ग्रन्थ सर्वांग-सुन्दर एवम् उच्चकोटि का उपकारक है।

निरयावलिकासूत्रका सम्मतिपत्र

आगमनवारिधि सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-जैनाचार्य-पूज्यश्री

आत्मारामजी महाराजकी तरफ का आया हुवा

सम्मतिपत्र

लुधियाना. ता. ११ नवम्बर ४८

श्रीयुत गुलाबचन्दजी पानाचंदजी । सादर जयजिनेन्द्र ।।

पत्र आपका मिला ! निरयावलिका विषय पूज्य श्रीजीका स्वास्थ्य ठीक न होनेसे उनके शिष्य प. श्री हेमचन्द्रजी महाराजने सम्मति पत्र लिख दिया हैं आपको भेज रहे हैं ! कृपया एक कोपी निरयावलिका की ओर भेज दीजिये और कोई योग्य सेवा कार्य लिखते रहे !

भवदीय

गुजरमल-बलवंतराय जैन

सम्मतिः

(लेखक जैनमुनि प. श्री हेमचन्द्रजी महाराज)

सुन्दरबोधिनीटीकया समलङ्कृतं हिन्दी-गुर्जरभाषानुवादसहितं च श्रीनिरयावलिका-सूत्रं मेधाविनामल्पमेधसां चोपकारकं भविष्यतीति सुदृढं मेऽभिमतम्, संस्कृतटीकेयं सरला सुबोधा सुललिता चात एव अन्वर्थनाम्नी चाप्यस्ति । सुगमत्वात् प्रत्येकदुर्बोधपद व्याख्यायुतत्वाच्च टीकेयं संस्कृतसाधारणज्ञानवतामप्युपयोगिनी भाविनीत्यभिमेमि । हिन्दी-गुर्जरभाषानुवादादपि एतद्भाषाविज्ञानां महीयसे लाभाय भवेतामिति सम्यक् संभावयामि ।

जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर पूज्यश्री घासीलालजी महाराजानां परिश्रमोऽयं प्रशंसनीयो धन्यवादार्हाश्च ते मुनिसत्तमाः । एवमेव श्रीसमीरमल्लजी-श्री कन्हैयालालजी मुनिवरेण्य-योर्नियोजनकार्यमपि श्लाघ्यं, तावपि च मुनिवरौ धन्यवादार्हौ स्तः ।

सुन्दरप्रस्तावनाविषयानुक्रमादिना समलङ्कृते सूत्ररत्नेऽस्मिन् यदि शब्दकोषोऽपि दत्तः स्यात्तर्हि वरतरं स्यात् । यतोऽस्यावश्यकतां सर्वऽप्यनेकपविद्वांसोऽनुभवन्ति ।

पाठकाः सूत्रस्याध्ययनाध्यापनेन लेखकनियोजकमहोदयानां परिश्रमं सफलयिष्यन्तीत्याशास्महे । इति ।

श्री उपासकदशाङ्ग सूत्र परत्वे जैन समाजना अग्रगण्य जैनधर्मभूषण महान विद्वान संतोए तेमज विद्वान श्रावकोए सम्मतिओ समर्पी छे तेमना नामो नीचे प्रमाणे छे

(१) लुधियाना—सम्वत् १९८९, आश्विन पूर्णिमा का पत्र, श्रुतज्ञान के भंडार आगमरत्नाकर जैनधर्मदिवार श्री १००८ श्री उपाध्याय श्री आत्मारामजी महाराज, तथा न्यायव्याकरणवेत्ता श्री १००७ तच्छिष्य श्री मुनि हेमचन्दजी महाराज.

(२) लाहोर—वि० सं० १९८९ आश्विन वदि १३ का पत्र, पण्डित रत्न श्री १००८ भागचन्दजी महाराज तथा तच्छिष्य पण्डित रत्न श्री १००७ श्री त्रिलोकचंद जी महाराज.

(३) खिचन से ता. ९-११-३६ का पत्र, क्रियापात्र स्थविर श्री १००८ श्री भारतरत्न श्री समरथमलजी महाराज.

(४) वालाचोर-ता १४-११-३६ का पत्र, परम प्रसिद्ध भारतरत्न श्री १००८ श्री शतावधानीजी श्री रत्नचन्दजी महाराज.

(५) बम्बई-ता. १६-११-३६ का पत्र, प्रसिद्ध कवीन्द्र श्री १००८ श्री कि नानचन्द्रजी महाराज.

(६) आगरा-ता. १८-११-३६, जगद् वल्लभ श्री १००८ श्री जैन दिवाकर श्री चोथमलजी महाराज, गुणवन्त गणीजी श्री १००७ श्री साहित्य प्रेमी श्री प्यार चन्दजी महाराज.

(७) हैद्राबाद (दक्षिण) २५-११-३६ का पत्र स्थविरपदभूषित भाग्यवान पुरुष श्री ताराचन्दजी महाराज तथा प्रसिद्ध वक्ता श्री १००७ श्री सोभागमलजी महाराज.

(८) जयपुर-ता २६-११-३६ का पत्र, संप्रदाय के गौरववर्धक शांतस्वभावी श्री १००८ श्री पूज्य श्री खूबचन्दजी महाराज

(९) अम्बाला-ता. २९-११-३६ का पत्र, परम प्रतापी पंजाब केशरी श्री १००८ श्री पूज्य श्री रामजी महाराज.

(१०) सैलाना-ता २९-११-३६ का पत्र, शास्त्रों के ज्ञाता श्रीमान् रत्नलालजी डोसी

(११) खीचन-ता ०-११-३६ का पत्र, पंडितरत्न न्यायतीर्थ सुश्रावक श्रीयुत् माधवलालजी

ता. २५ ११-३६

सादर जय जिनेन्द्र

आपका भेजा हुआ उपासक दशांग सूत्र तथा पत्र मिला यहां विराजित प्रवर्तक

वयोवृद्ध श्री १००८ श्री ताराचंदजी महाराज पण्डित श्री किशनलालजी महाराज आदि ठाणा १४ सुख शांती में विराजमान हैं आपके वहां विराजित जैनशास्त्राचार्य पूज्यपाद श्री १००८ श्रीघासीलाल जी महाराज आदि ठाणा नव से हमारी वन्दना अर्ज कर सुख शांति पूछे आपने उपासकदशांग सूत्र के विषय मे यहां विराजित मुनिवरों की सम्मती मगाई उसके विषय मे वक्ता श्रीगोभागमलजी महाराज ने फरमाया है कि वर्तमान में स्थानकवासी समाज मे अनेकानेक विद्वान मुनि महाराज मौजूद हैं। मगर जैनशास्त्र की वृति रचनेका साहस जैसा घासीलालजी महाराज ने किया है वैसा अन्य ने किया हो ऐसा नजर नहीं आता दूसरा यह शास्त्र उपयोगी तो यों है संस्कृत प्राकृत हिन्दी और गुजराती भाषा होनेसे चारों भाषा वाले एक ही पुस्तक से लाभ उठा, सकते हैं जैन समाज मे ऐसे विद्वानों का गौरव बढे यही शुभ कामना है आशा है कि स्थानकवासी संघ विद्वानों की कदर करना सीखेगा। योग्य लिखे शेष शुभ

भवदीय

जमनलाल रामलाल कीमती

+

आगरा से:—

श्रीजैनदिवाकर प्रसिद्धवक्ता जगद्वल्लभ मुनि श्रीचोथमलजी महाराज व पंडित रत्न सुव्याख्यानी गणीजी श्री प्यारचन्द जी महाराज ने इस पुस्तक को अतीव पसन्द की है।

श्रीमान् न्यायतीर्थ पण्डित

माधवलालजी स्रोचन से लिखते है कि:—

उन पंडितरत्न महाभाग्यवंत पुरुषों के सामने उनकी अगाधतत्त्वगवेषणा के विषय में मैं नगण्य क्या सम्मति दे सकता हूँ :

परन्तु:—

मेरे दो मित्रों ने जिन्होंने इसको पढा हैं बहुत सराहना की है वास्तव में ऐसे उत्तम व सबके समझाने योग्य ग्रन्थों की बहुत आवश्यकता है और इस समाज का तो ऐसा ग्रन्थ ही गौरव बढा सकते है—ये दोनो ग्रन्थ वास्तव में अनुपम है ऐसे ग्रन्थरत्नोंके सुप्रकाशसे यह समाज अमावास्या के घोर अन्धकार में दीपावली का अनुभव करती हुई महावीर के अमूल्य वचनोंका पान करती हुई अपनीउन्नति में अग्रसर होती रहेगी।

—: :—

ता. ३०-११-३६

अम्बाला (पंजाब

पत्र आपका मिला श्री श्री १००८ पंजाब केशरी पूज्य श्री काशीरामजी महाराज की सेवा में पढकर सुना दिया। आपकी भेजी हुई उपासकदशाङ्ग सूत्र तथा गृहिधर्म-कल्पतरू की एक प्रति भी प्राप्त हुई है, ऐसे ग्रन्थरत्नो के प्रकाशित करवाने की बडी आवश्यकता है। यह पुरुपार्थसराहनीय है।

आपका

शशिभूषणशास्त्री

अध्यापक जैन हाई स्कूल

अम्बाला शहर.

शान्त स्वभावी वैराग्य मूर्ति तत्व वारिधि, धैर्यवान श्री जैनाचार्य पूज्यवर श्री श्री १००८ श्री खूबचन्दजी महाराज साहेबने सूत्र श्री उपासक दशाङ्गजी को देखा। आपने फरमाया कि पण्डित मुनी घासीलालजी महाराज ने उपासक दशाङ्ग सूत्रकी टीका लिखने में बडा ही परिश्रम किया है। इस समय इस प्रकार प्रत्येक सूत्रोंकी संशोधक पूर्वक सरल टीका और शुद्ध हिन्दी अनुवाद होनेसे भगवान निर्ग्रन्थो के प्रवचनो के अपूर्व रस का लाभ मिल सकता है.

*

बालाचोर से भारतरत्न शतावधानी पंडित मुनि श्री १००८ श्री रतनचन्दजी फरमाते हैं कि :-

उत्तरोत्तर जोतां मूल सूत्रनी संस्कृतटीकाओ रचवामां टीकाकारे स्तुत्य प्रयास कर्यो छे, जे स्थानकवासी समाज माटे मगरूरी लेवा जेवुं छे, वली करांचीना श्री सघे सारा कागलमां अने सारा टाइपमां पुस्तक छपावी प्रगट कर्यूं छे जे एक प्रकारनी साहित्य सेवा बजावी छे.

*

बम्बई शहेर में विराजमान कवि मुनि श्री नानचन्द जी महाराजने फरमाया है कि पुस्तक सुन्दर है प्रयास अच्छा है।

*

खीचन से स्थविर क्रिया पात्र मुनि श्री रतनचन्दजी महाराज और पंडितरत्न मुनि समथमलजी महाराज श्री फरमाते हैं कि-विद्वान महात्मा पुरुषोंका प्रयत्न सराहनीय है क्या जैनागम श्रीमद् उपासक दशाङ्ग सूत्र की टीका, एवं उसकी सरल सुबोधनी शुद्ध हिन्दी भाषा बडी ही सुन्दरता से लिखी है।

*

श्री वीतरागाय नमः ॥

श्री श्री श्री १००८ जैनधर्म दिवाकर जैनागमरत्नाकर श्रीमज्जैनाचार्य श्री पूज्य

घासीलालजी महाराज चरणवन्दन स्वीकार हो।

अपरञ्च समाचार यह है कि आपके भेजे हुए ९ शास्त्र मास्टर सोभालालजी के द्वारा प्राप्त हुए, एतदर्थ धन्यवाद! आपश्रीजीने तो ऐसा कार्य किया है जो कि हजारो वर्षों से किसी भी स्थानकवासी जैनाचार्य ने नहीं किया।

आपने स्थानकवासीजैनसमाज के ऊपरजो उपकार किया है वह कदापि भुलाया नहीं जा सकता और नहीं भुलाया जा सकेगा।

हम तीनों मुनि भगवान महावीर से अथवा शासनदेव से प्रार्थना करते हैं कि आपकी इस वज्रमयी लेखनी को उत्तरोत्तर शक्ति प्रदान करे ता कि आप जैन समाज के ऊपर और भी उपकार करते रहे और आप चिरञ्जीव हों।

हम हैं आप के मुनि तीन

उदेपुर मुनि सत्येन्द्रदेव–मुनि लखपतराय–मुनि पद्मसेन

*

इतवारी बाजार

नागपुर ता. १९–१२–५६

प्रखर विद्वान जैनाचार्य मुनिराज श्री घासीलालजी महाराजद्वारा जो आगमोद्धार हुआ और हो रहा हैं सचमुच महाराजश्री का यह स्तुत्य कार्य है। हमने प्रचारकजी के द्वारा नौ सूत्रों का सेट देखा और कइ मार्मिक स्थलो को पढा, पढ कर विद्वान मुनिराजश्री की शुद्ध श्रद्धा तथा लेखनीके प्रति हार्दिक प्रसन्नता फट पडी।

वास्तव में मुनिराज श्री जैन समाज पर ही नहीं इतर समाज पर भी महा उपकार कर रहे हैं। ज्ञान किसी एक समाज का नहीं होता वह सभी समाज की अनमोल निधि है जिसका एक एक सेट हर शहर गांव और घर घर में होना आवश्यक है।

साहित्यरत्न

सोहनमुनिसोहनमुनि जैन

શ્રમણ સંઘના પ્રચાર મંત્રી પંજાબ કેશરી મહારાજ શ્રી **પ્રેમચંદજી મહારાજ** જેઓશ્રી રાજકોટમાં પધારેલા હતા ત્યારે તેઓના તરફથી શાસ્ત્રોને માટે મળેલો અભિપ્રાય

શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી પૂજ્યપાદ શાસ્ત્ર વારિધિ પંડિતરાજ સ્વામીશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજદ્વારા શાસ્ત્રોદ્ધારનું જે કાર્ય થઈ રહ્યું છે તે કાર્ય જૈન સમાજ તેમા ખાસ કરીને સ્થાનકવાસી જૈન સમાજને માટે મૂળભૂત મૌલિક સંસ્કૃતિની જડને મજબુત કરવાવાળું છે

એટલા ખાતર આ કાર્ય અતિ પ્રશંસનીય છે માટે દરેક વ્યક્તિઓ તેના યથાશક્તિ ભોગ દેવાની ખાસ આવશ્યકતા છે અને તેથી એ ભગીરથ કાર્ય જલદીથી જલદી સંપૂર્ણ પણે પાર પાડી શકાય અને જનતા શ્રુતજ્ઞાનનો લાભ મેળવી શકે.

દરીયાપુરી સંપ્રદાયના પૂજ્ય આચાર્ય શ્રી ઇશ્વરલાલજી મહારાજ સાહેબના સૂત્રો સંબંધે વિચારો

નમામિ વીરં ગિરી સારધીરં

પૂજ્ય પાદ જ્ઞાન પ્રવરશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ તથા પંડિતશ્રી કનૈયાલાલજી મહારાજ આદિ થાણા છની સેવામાં-

અમદાવાદ શાહપુર ઉપાશ્રયથી મુનિ દયાનંદજીના ૧૦૮ પ્રણિપાત

આપ સર્વે થાણાઓ સુખ સમાધિમાં હશો નિરંતર ધર્મધ્યાન ધર્મારાધનમાં લીન હશો.

સૂત્ર પ્રકાશન કાર્ય ત્વરીત થાય એવી ભાવના છે દશવૈકાલિક તથા આચારાંગના એક એક ભાગ અહીં છે ટીકા ખૂબ સુંદર, સરળ અને પંડિતજનોને સુપ્રિય થઈ પડે તેવી છે. સાથે સાથે ટીકા વીનાના મૂળ અને અર્થ સાથે પ્રકાશન થાય તો શ્રાવકગણ તેનો વિશેષ લાભ લઈ શકે. અત્રે પૂજ્ય આચાર્ય ગુરૂદેવને આંખે મોતીયો ઉતરાવ્યો છે અને સારૂં છે એજ

આસો શુદ ૧૦, મંગળવાર ત. ૨૫-૧૦-૫૫

પુનઃ પુનઃ શાતા ઇચ્છતો,
દયા મુનિના પ્રણિપાત.

*

દરીયાપુરી સંપ્રદાયના પંડિત રત્ન ભાઇચંદજી મહારાજનો અભિપ્રાય

શ્રી

રાણપુર તા. ૧૯-૧૨-૧૯૫૫

પૂજ્યપાદ જ્ઞાનપ્રવર પંડિતરત્ન પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ આદિમુનિવરોની સેવામાં. આપ સર્વ સુખ સમાધીમાં હશો

સૂત્ર પ્રકાશનનું કામ સુંદર થઇ રહ્યું છે તે જાણી અત્યંત આનંદ. આપના પ્રકાશિત થયેલા કેટલાક સૂત્રો જોયાં સુંદર અને સરલ સિદ્ધાંતના ન્યાયને પુષ્ટિ કરતી ટીકા પંડિતરત્નોને સુપ્રિય થઈ પડે તેવી છે સૂત્ર પ્રકાશનનું કામ ત્વરિત પૂર્ણ થાય અને ભાવિ આત્માઓને આત્મકલ્યાણ કરવામાં સાધનભૂત થાય એજ અભ્યર્થના

લી. પંડિતરત્ન બાળબ્રહ્મચારી
પૂ. શ્રી ભાઇચંદ મહારાજ ની
આજ્ઞાનુસાર શાન્તિમુનીના
પાયવંદન સ્વીકારશો.
તા ૧૧-૫-૫૬
વીરમગામ

ગચ્છાધિપતિ પૂજ્ય મહારાજ શ્રી જ્ઞાનચંદ્રજી મહારાજના સંપ્રદાયના આત્માર્થી, ક્રિયાપાત્ર, પંડિતરત્ન, મુનિશ્રી સમરથમલજી મહારાજનો અભિપ્રાય.

ખીચનથી આવેલ તા. ૧૧-૨-૫૬ ના પત્રથી ઉધ્ધૃત,

પૂજ્ય આચાર્ય ઘાસીલાલજી મહારાજના હસ્તક જે સૂત્રોનુ લખાણ સુંદર અને સરળ ભાષામાં થાય છે તે સાહિત્ય, પંડિત મુનિશ્રી સમરથમલજી મહારાજ, સમય ઓછો મળ-

વાને કારણે સંપૂર્ણ જોઈ શકયા નથી, છતાં જેટલું સાહિત્ય જોયું છે, તે બહુ જ સારૂં અને મનન સાથે લખાયેલું છે તે લખાણ શાસ્ત્ર આજ્ઞાને અનુરૂપ લાગે છે. આ સાહિત્ય દરેક શ્રદ્ધાળુ જીવોને વાંચવા યોગ્ય છે આમાં સ્થાનકવાસી સમાજની શ્રદ્ધા, પ્રરૂપણા અને ફરસણાની દૃઢતા શાસ્ત્રાનુકૂળ છે. આચાર્ય શ્રી અપૂર્વ પરિશ્રમ લઇ સમાજ ઉપર મહાન ઉપકાર કરે છે.

લી. કીશનલાલ પૃથ્વીરાજ માલુ
મુ ખીચન.

*

લીંબડી સંપ્રદાયના સદાનંદી મુનીશ્રી છોટાલાલજી મહારાજનો અભિપ્રાય

શ્રી વીતરાગદેવે–જ્ઞાનપ્રચારને તીર્થંકર નામ ગોત્ર બાંધવાનુ નિમિત્ત કહેલ છે. જ્ઞાન પ્રચાર કરનાર, કરવામાં સહાય કરનાર, અને તેને અનુમોદન આપનાર જ્ઞાનાવર્ણિય કર્મને ક્ષય કરી–કેવળ જ્ઞાનને પ્રાપ્ત કરી પરમપદનાં અધિકારી બને છે શાસ્ત્રજ્ઞ–પરમ શાન્ત, અને અપ્રમાદિ પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પોતે અવિશ્રાન્તપણે જ્ઞાનની ઉપાસના અને તેની પ્રભાવના અનેક વિકટ પ્રસંગોમા પણ કરી રહ્યા છે. તે માટે તેઓશ્રી અનેકશઃ ધન્યવાદના અધિકારી છે વંદનીય છે–તેમની જ્ઞાન પ્રભાવનાની ધગશ ઘણા પ્રમાદિઓને અનુકરણીય છે. જેમ પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પોતે જ્ઞાનપ્રચાર માટે અવિશ્રાન્ત પ્રયત્ન કરે છે તેમજ–શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના કાર્યવાહકો પણ એમા સહાય કરીને જે પવિત્ર સેવા કરી રહેલ છે. તે પણ ખરેખર ધન્યવાદના પૂર્ણ અધિકારી છે.

એ સમિતિના કાર્યકરોને મારી એક સૂચના છે કેઃ–

શાસ્ત્રોદ્ધારક પ્રવર પંડિત અપ્રમાદિ સંત ઘાસીલાલજી મહારાજ જે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ કરી રહેલ છે. તેમા સહાય કરવા માટે–પંડિતો વિગેરેના માટે જે ખર્ચો થઈ રહેલ છે. તેને પહોચી વળવા માટે સારૂં સરખું ફંડ જોઇએ. એના માટે મારી એ સૂચના છે કેઃ–શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના મુખ્ય કાર્યવાહકો,–જો બની શકે તો પ્રમુખ પોતે અને બીજા બે ત્રણ જણાઓ ગુજરાત,સૌરાષ્ટ્ર, અને કચ્છમા પ્રવાસ કરી મેમ્બરો બનાવે અને આર્થિક સહાય મેળવે

જો કે અત્યારની પરિસ્થિતિ વિષમ છે વ્યાપારીઓ, ધંધાદારીઓને પોતાના વ્યવહાર સાચવવા પણ મુશ્કેલ બન્યા છે. છતા જો સંભાવિત ગૃહસ્થો પ્રવાસે નીકળે તો જરૂર કાર્ય સફળ કરે એવી મને શ્રદ્ધા છે.

આર્થિક અનુકૂળતા થવાથી શાસ્ત્રોદ્ધારનુ કામ પણ વધુ સરલતાથી થઈ શકે. પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જ્યાં સુધી આ તરફ વિચરે છે ત્યા સુધીમા એમની જ્ઞાન શક્તિનો જેટલો લાભ લેવાય તેટલો લઇ લેવો. કદાચ સૌરાષ્ટ્રમા વધુ વખત રહેવાથી તમને હવે બહાર વિહરવાની ઈચ્છા થતી હોય તો શાન્તિભાઇ શેઠ જેવાએ વિનંતી કરી અમદાવાદ પધરાવવા અને ત્યા–અનુકુળતા મુજબ–બે ત્રણ વર્ષની સ્થિરતા કરાવીને તેમની પાસે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ પૂર્ણ કરાવી લેવુ જોઈએ.

થોડા વખતમા જામજોધપુરમા શાસ્ત્રોદ્ધાર કમીટી મળવાની છે તે વખતે ઉપરની સૂચના વિચારાય તો ઠીક.

ફરી શાસ્ત્રોદ્ધારક પૂજ્ય શ્રીઘાસીલાલજી મહારાજને એમની આ સેવા અને પરમ કલ્યાણ કારક પ્રવૃત્તિને માટે વારવાર અભિનંદન છે. શાસનનાયક દેવ તેમના શરિરાદીને સશક્ત અને દીર્ઘાયુ રાખી સમાજ ધર્મની વધુ ને વધુ સેવા કરી શકે ૐ અસ્તુ.

ચાતુર્માસ સ્થળ. લીંબડી
સાં. ૨૦૧૦ શ્રાવણ વદ ૧૩.ગુરૂ

લિ
સદાનંદી જૈનમુનિ છોટાલાલજી

*

શ્રીવર્ધમાન સંપ્રદાય પૂજ્ય શ્રીપુનમચંદ્રજી મહારાજનો અભિપ્રાય

શાસ્ત્ર વિશારદ પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રીઘાસીલાલજી મહારાજશ્રીએ જૈન આગમો ઉપર જે સંસ્કૃત ટીકા વગેરે રચેલ છે તે માટે તેઓશ્રી ધન્યવાદને પાત્ર છે, તેમણે આગમો ઉપરની સ્વતંત્ર ટીકા રચીને સ્થાનકવાસી જૈન સમાજનું ગૌરવ વધાર્યું છે. આગમો ઉપરની તેમની સસ્કૃત ટીકા ભાષા અને ભાવની દૃષ્ટિએ ઘણીજ સુંદર છે સંસ્કૃત રચના માધુર્ય તેમજ અલંકાર વગેરે ગુણોથી યુક્ત છે વિદ્વાનોએ તેમજ જૈન સમાજના આચાર્યો ઉપાધ્યાયો વગેરે એ શાસ્ત્રો ઉપર રચેલી આ સંસ્કૃત રચનાની કદર કરવી જોઇએ અને હરેક પ્રકારનો સહકાર આપવો જોઇએ

આવા મહાન કાર્યમાં પંડિતરત્ન પૂજ્ય શ્રીઘાસીલાલજી મહારાજ જે પ્રયત્ન કરી રહ્યા છે તે આલૌકિક છે. તેમનું આગમ ઉપરની સંસ્કૃત ટીકા વગેરે રચવાનુ ભગીરથ કાર્ય શીઘ્ર સફળ થાય એજ શુભેચ્છા સાથે

અમદાવાદ
તા ૨૧-૪-૫૬ રવિવાર
મહાવીર જ્યંતિ

મુનિપૂર્ણચંદ્રજી

ખંભાત સંપ્રદાયના મહાસતી શારદાબાઇ સ્વામીનો અભિપ્રાય

લખતર તા. ૨૫-૪-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાંતીલાલભાઈ મગળદાસ ભાઈ
પ્રમુખ સાહેબ અખિલ ભારત શ્વે. સ્થા. જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ
મુ અમદાવાદ

અમો અત્રે દેવગુરૂની કૃપાએ સુખરૂપ છીએ વિ, માં આપની સામતિ દ્વારા પૂજ્ય આચાર્ય મહરાજ શ્રી ઘાસીલાલજી માહારાજ સાહેબ જે સૂત્રોનું કાર્ય કરે છે તે પૈકીનાં સૂત્રોમાંથી ઉપાસક દશાગ સૂત્ર, અનુત્તરોપપાતિક સૂત્ર દશવૈકાલિક સૂત્ર વિગેરે સૂત્રો જોયા તે સૂત્રો સસ્કૃત હીન્દી અને ગુજરાતી ભાષાઓમાં હોવાને કારણે વિદ્વાન અને સામાન્ય જનોને ઘણુંજ લાભદાયિક છે.તે વાચન ઘણુંજ સુંદર અને મનોરંજન છે આ કાર્યમાં પૂજ્ય આચાર્ય શ્રી જે અથાગ પુરૂષાર્થે કાર્ય કરે છે તે માટે વારવાર ધન્યવાદને પાત્ર છે આ સૂત્રોથી સમાજને ઘણું લાભનું કારણ છે

હસ સમાન બુદ્ધિવાળા આત્માઓ સ્વપરના ભેદથી નિખાલસ ભાવનાએ અવલોકન કરશે તો આ સાહિત્ય સ્થાનકવાસી સમાજ માટે અપૂર્વ અને ગૌરવ લેવા જેવુ છે માટે દરેક ભવ્ય આત્માઓને સુચન કરૂં છું કે આ સૂત્રો પોતપોતાના ઘરમા વસાવાની સુંદર તકને ચુકશો નહિ. કારણ આવા શુદ્ધ પવિત્ર અને સ્વપરંપરા ને પુષ્ટીરૂપ સૂત્રો મળવાં બહુ

મુશ્કેલ છે. આ કાર્યને આપશ્રી તથા સમિતિના અન્ય કાર્યકરો જે શ્રમ લઈ રહ્યા છો. તેમાં મહાન નિર્જરાનું કારણ જોવામાં આવે છે તે બદલ ધન્યવાદ. એજ

લી. શારદાબાઇ સ્વામી
ખંભાત સંપ્રદાય

*

બરવાળાસંપ્રદાયના વિદુષીમહાસતીજી મોંઘીબાઇ સ્વામીનો અભિપ્રાય

ધંધુકા તા ૨૭-૧-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાન્તીલાલ મંગળદાસભાઇ
પ્રમુખ અ૦ ભ૦ શ્વે૦ સ્થા જૈનશાસ્ત્ર ઉદ્ધાર સમિતિ
મુ. રાજકોટ.

અત્રે બીરાજતા ગુ૦ શુ૦ ભંડાર મહાસતિજી વિદુષી મોઘીબાઈ સ્વામી તથા હીરાબાઇ સ્વામી આદિઠાણા બન્ને સુખશાતામાં બીરાજે છે, આપને સુચન છે કે અપ્રમત અવસ્થામાં રહી નિવૃત્તિ ભાવને મેળવી ધર્મધ્યાન કરશોજી એજ આશા છે

વિશેષમાં અમને પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રીઘાસીલાલજી મહારાજના રચેલાં સૂત્રો ભાઇ પોપટ ધનજીભાઈ તરફથી ભેટ તરીકે મળેલાં તે સૂત્રો તમામ આદ્યોપાંત વાંચ્યા મનન કર્યાં અને વિચાર્યાં છે તે સૂત્રો સ્થાનકવાસી સમાજને અને વીતરાગ માર્ગને ખૂબજ ઉન્નત્ત બનાવનાર છે તેમાં આપણી શ્રદ્ધા એટલી ન્યાય રૂપથી ભરેલી છે તે આપણા સમાજ માટે ગૌરવ લેવા જેવુ છે. હંસ સમાન આત્માઓ જ્ઞાન ઝરણાઓથી આત્મરૂપ વાડીને વિકસીત કરશે ધન્ય છે આપને અને સમિતિના .કાર્યકરોને જે સમાજ ઉત્થાન માટે કોઈની પણ પરવા કર્યા વગર જ્ઞાનનું દાન ભવ્ય આત્માઓને આપવા નિમિત્તરૂપ થઈ રહ્યા છો આવા સમર્થ વિદ્વાન પાસેથી સંપૂર્ણ કાર્ય પુરૂ કરાવશો તેવી આશા છે.

એજ લિ. બરવાળા સંપ્રદાયના વિદુષી
મહાસતીજી મોંઘીબાઈ સ્વામી
ના ફરમાનથી લી ખોડીદાસ ગણેશભાઈ-ધંધુકા
સ્થાનકવાસી જૈન સંઘના પ્રમુખ

અદ્યતન પદ્ધતિને અપનાવનાર વડોદરા કોલેજના એક વિદ્વાન પ્રોફેસરનો અભિપ્રાય

સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયના મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જૈનશાસ્ત્રોના સંસ્કૃત ટીકાબદ્ધ, ગુજરાતીમા અને હિન્દીમાં ભાષાંતરો કરવાના ઘણા વિકટ કાર્યમાં વ્યાપ્ત થયેલા છે શાસ્ત્રો પૈકી જે શાસ્ત્રો પસિદ્ધ થયાં છે તે હુ જોઇ શકયો છુ, મુનિશ્રી પોતે સંસ્કૃત, અર્ધમાગધી હિન્દી ભાષાઓના નિષ્ણાત છે, એ એમનો ટુંકો પરિચય કરતાં સહજ જણાઈ આવે છે શાસ્ત્રોનું સંપાદન કરવામાં તેમને પોતાના, શિષ્યવર્ગનો અને વિશેષમા ત્રણ પંડિતોનો સહકાર મળ્યો છે, તે જોઈ મને આનંદ થયો સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયના અગ્રેસરોએ પંડિતોનો સહકાર મેળવી આપી મુનિશ્રીના કાર્યને સરળ અને શિષ્ટ બનાવ્યું છે સ્થાનકવાસી સમાજમા વિદ્વત્તા ઘણી ઓછી છે તે દિગંબર, મૂર્તિપૂજક શ્વેતાંબર વગેરે જૈનદર્શનના પ્રતિનિધિઓના ઘણા સમયથી પરિચયમાં આવતાં હું વિરોધના ભય વગર, કહી શકું. પૂ. મહારાજના આ પ્રયાસ

સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયમાં પ્રથમ છે એવી મારી માન્યતા છે. સંસ્કૃત સ્પષ્ટીકરણો સારાં આપવામાં આવ્યાં છે ભાષા શુદ્ધ છે એમ હું ચોક્કસ કહી શકું છું ગુજરાતી ભાષાંતરો પણ શુદ્ધ અને સરળ થયેલા છે. મને વિશ્વાસ છે કે મહારાજશ્રીના આ સ્તુત્ય પ્રયાસને જૈનસમાજ ઉત્તેજન આપશે અને શાસ્ત્રોના ભાષાંતરોને વાચનાલયમા અને કુટુંબોમાં વસાવી શકાય તે પ્રમાણે વ્યવસ્થા કરશે.

પ્રતાપગંજ, વડોદરા
તા. ૨૭-૨-૧૯૫૬

કેશવલાલ હિંમતરામ
એમ. એ.

*

મુંબઈની બે કોલેજોના પ્રોફેસરોનો અભિપ્રાય.

મુંબઈ તા ૩૧-૩-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાંતીલાલ મંગળદાસ
પ્રમુખઃ શ્રી અખિલ ભારત શ્વે૦ સ્થા૦ જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ,
રાજકોટ.

પૂજ્યાચાર્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજે તૈયાર કરેલા આચારાંગ. દશવૈકાલીક આવશ્યક, ઉપાસકદશાંગ વગેરે સૂત્રો અમે જોયા. આ સુત્રો ઉપર સંસ્કૃતમાં ટીકા આપવામાં આવી છે અને સાથે સાથે હીંદી અને ગુજરાતી ભાષાતરો પણ આપવામા આવ્યાં છે સસ્કૃત ટીકા અને ગુજરાતી તથા હીદી ભાષાતરો જોતાં આચાર્ય શ્રીના આ ત્રણે ભાષા પરના એકસરખા અસાધારણ પ્રભુત્વની સચોટ અને સુરેખ છાપ પડે છે આ સૂત્ર ગ્રથોમા પાને પાને પ્રગટ થતી આચાર્યશ્રીની અપ્રતિમ વિદ્વતા મુગ્ધ કરી દે તેવી છે ગુજરાતી તથા હીંદીમાં થયેલા ભાષાંતરમા ભાષાની શુદ્ધિ અને સરળતા નોંધપાત્ર છે એથી વિદ્વજ્જન અને સાધારણ માણસ ઉભયને સંતોષ આપે એવી એમની લેખિનીની પ્રતીતિ થાય છે. ૩૨ સૂત્રોમાંથી હજુ ૧૩ સૂત્રો પ્રગટ થયા છે બીજાં ૭ સૂત્રો લખાઇને તૈયાર થઇ ગયાં છે. આ બધાં જ સૂત્રો જ્યારે એમને હાથે તૈયાર થઈને પ્રગટ થશે ત્યારે જૈન સૂત્ર-સાહિત્યમાં અમૂલ્ય સંપત્તિરૂપ ગણાશે એમા સંશય નથી આચાર્યશ્રીના આ મહાન કાર્યને જૈન સમાજનો-વિશેષતઃ સ્થાનકવાસી સમાજનો સંપૂર્ણ સહકાર સાપડી રહેશે એવી અમે આશા રાખીએ છીએ.

પ્રો. રમણલાલ ચીમનલાલ શાહ
સેંટ ઝેવિયર્સ કોલેજ, મુંબઈ.
પ્રો. તારા રમણલાલ શાહ.
સોફિયા કોલેજ, મુંબઈ.

*

રાજકોટની ધર્મેન્દ્રસિંહજી કોલેજનાપ્રોફેસર સાહબનો અભિપ્રાય.

જયમહાલ
જાગનાથ પ્લોટ
રાજકોટ, તા ૧૮-૪-૫૬

પૂજ્યાચાર્ય પં. શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ આજે જૈન સમાજ માટે એક એવા કાર્યમાં વ્યાપ્ત થએલા છે કે જે સમાજ માટે બહુ ઉપયોગી થઇ પડશે. મુનિશ્રીએ તૈયાર કરેલાં

આચારાંગ, દશવૈકાલિક, શ્રી વિપાકશ્રુત વિ. મે જોયા આ સૂત્રો જોતાં પહેલીજ નજરે મહારાજશ્રીનો સંસ્કૃત, અર્ધમાગધી, હિન્દી તથા ગુજરાતી ભાષાઓ ઉપરનો અસાધારણ કાબુ જણાઈ આવે છે એક પણ ભાષા મહારાજશ્રીથી અજાણી નથી આપણે જાણીએ છીએ કે એ સૂત્રો ઉચ્ચ અને પ્રથમ કોટિના છે. તેની વસ્તુ ગંભીર વ્યાપક અને જીવનને તલસ્પર્શી છે. આટલા ગહન અને સર્વગ્રાહ્ય સૂત્રોનુ ભાષાંતર પૂ૦ ઘાસીલાલજી મહારાજ જેવા ઉચ્ચ કોટિના મુનિરાજને હાથે થાય છે તે આપણા અહોભાગ્ય છે યંત્રવાદ અને ભૌતિકવાદનાં આ જમાનામા જ્યારે ધર્મભાવના ઓસરતી જાય છે એવે વખતે આવા તત્ત્વજ્ઞાન આધ્યાત્મિકતાથી ભરેલાં સૂત્રોનુ સરળ ભાષામાં ભાષાતર દરેક જીજ્ઞાસુ, મુમુક્ષુ અને સાધકને માર્ગદર્શક થઇ પડે તેમ છે જૈન અને જૈનેતર, વિદ્વાન અને સાધારણ માણસ, સાધુ અને શ્રાવક દરેકને સમજણ પડે તેવી સ્પષ્ટ, સરળ અને શુદ્ધ ભાષામા સૂત્રો લખવામા આવ્યા છે મહારાજશ્રીને જ્યારે જોઈએ ત્યારે તેમના આ કાર્યમા સંકળાયેલા જોઈએ છીએ. એ ઉપરથી મુનિશ્રીના પરિશ્રમ અને ધગશની કલ્પના કરી શકાય તેમ છે. તેમનું જીવન સૂત્રોમાં વણાઈ ગયું છે

મુનિશ્રીના આ અસાધારણ કાર્યમા પોતાના શિષ્યોનો તથા પંડિતોનો સહકાર મળ્યો છે. મને આશા છે કે જો દરેક મુમુક્ષુ આ પુસ્તકોને પોતાના ઘરમાં વસાવશે અને પોતાના જીવનને સાચા સુખને માર્ગે વાળશે તો મહારાજશ્રીએ ઉઠાવેલો શ્રમ સંપૂર્ણપણે સફળ થશે.

પ્રો. રસિકલાલ કસ્તુરચંદ ગાંધી
એમ. એ એલ એલ બી,
ધર્મેન્દ્રસિંહજી કોલેજ
રાજકોટ (સૌરાષ્ટ્ર)

મુંબઈ અને ઘાટકોપરમાં મળેલી સભાએ ભિનાસર કોન્ફરન્સ તથા સાધુ સંમેલનમાં મોકલાવેલ ઠરાવ.

હાલ જે વખતે શ્રી શ્વેતાંબર સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ માટે આગમ-સંશોધન અને સ્વતંત્ર ટીકાવાળા શાસ્ત્રોદ્ધારની અતિ આવશ્યકતા છે અને જે મહાનુભાવોએ આ વાત દીર્ઘ દ્રષ્ટિથી પહેલી પોતાના મગજમા લઈ તે પાર પાડવા મહેનત લઇ રહ્યા છે તેવા મુનિ મહારાજ પંડિતરત્ન શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ કે જેઓને સાદડી અધિવેશનમાં સર્વાનુમતે સાહિત્ય મંત્રી નીમ્યા છે તેઓશ્રીની દેખરેખ નીચે અ ભા શ્વે. સ્થા. જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ જે એક મોટી વગવાળી કમિટી છે તેની મારફતે કામ થઈ રહ્યું છે જેને પ્રધાનાચાર્યશ્રી તથા પ્રચાર મંત્રીશ્રી તથા અનેક અનુભવી મહાનુભાવોએ પોતાની પસંદગીની મહોર છાપ આપી છે અને છેલ્લામા છેલ્લા વડોદરા યુનિવર્સીટીના પ્રોફેસર કેશવલાલ કામદાર એમ એ એ પોતાનુ સવિસ્તર પ્રમાણપત્ર આપ્યુ છે તે શાસ્ત્રોદ્ધાર કમિટીના કામને આ સંમેલન તથા કોન્ફરન્સ હાર્દિક અભિનંદન આપે છે અને તેમના કામને જ્યા જ્યાં અને જે જે જરૂર પડે-પંડિતની અને નાણાની-પોતાની પાસેના ફંડમાથી અને જાહેર જનતા પાસેથી મદદ મળે તેવી ઇચ્છા ધરાવે છે.

આ શાસ્ત્રો અને ટીકાઓને જ્યારે આટલી બધી પ્રશંસાપૂર્વક પસંદગી મળી છે ત્યારે તે કામને મદદ કરવાની આ કોન્ફરન્સ પોતાની ફરજ માને છે અને જે કાંઇ ત્રુટી હોય

ત પં. ૨. શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજની સાનિધ્યમાં જઈ, બનાવીને સુધારવા પ્રયત્ન કરવો. આ કામને ટલ્લે ચઢાવવા જેવું કોઈપણ કામ સત્તા ઉપરના અધીકારીઓના વાણી કે વર્તનથી ન થાય તે જોવા પ્રમુખ સાહેબને ભલામણ કરે છે.

(સ્થા. જૈન પત્ર તા ૪-૫-૫૬)

*

સ્વતંત્ર વિચારક અને નિડર લેખક 'જૈન સિદ્ધાંત' ના તંત્રીશ્રી શેઠ નગીનદાસ ગીરધરલાલનો અભિપ્રાય

શ્રી સ્થાનકવાસી શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ સ્થાપીને પૂ શ્રી. ઘાસીલાલજી મહારાજને સૌરાષ્ટ્રમાં બોલાવી તેમની પાસે બત્રીસે સૂત્ર તૈયાર કરવાના હિલચાલ ચાલતી હતી ત્યારે તે હિલચાલ કરનાર શાસ્ત્રજ્ઞ શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈ સાથે મારે પત્રવ્યવહાર ચાલેલો ત્યારે શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈએ તેમનાં એક પત્રમાં મને લખેલુ કે—

"આપણા સૂત્રોના મૂળ પાઠ તપાસી શુદ્ધ કરી સંસ્કૃત સાથે તૈયાર કરી શકે તેવા સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયમાં મુનીશ્રી ઘાસીલાલજી મ. સિવાય મને કોઈ વિશેષ વિદ્વાન મુનિ જેવામા આવતા નથી લાંબી તપાસને અંતે મે મુનિ શ્રીઘાસીલાલજી પ ને પસંદ કરેલા છે"

શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈ પોતે વિદ્વાન હતા. શાસ્ત્રજ્ઞ હતા તેમ વિચારક પણ હતા. શ્રાવકો તેમજ મુનિઓ પણ તેમની પાસેથી શીક્ષા વાંચના લેતા, તેમ જ્ઞાન ચર્ચા પણ કરતા એવા વિદ્વાન શેઠશ્રીની પસંદગી યથાર્થ જ હોય એમાં નવાઈ નથી અને પૂ. શ્રી. ઘાસીલાલજીમ. ના બનાવેલાં સૂત્રો જોતાં સૌ કોઈ ને ખાત્રી થાય તેમ છે કે દામોદરદાસભાઈએ તેમજ સ્થાનકવાસી સમાજે જેવી આશા શ્રી ઘાસીલાલજી મ. પાસેથી રાખેલી તે બરાબર ફલીભૂત થયેલ છે.

શ્રી વર્ધમાન શ્રમણસંઘના આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજે શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના સૂત્રો માટે ખાસ પ્રશંસા કરી અનુમતિ આપેલ છે, તે ઉપરથી જ શ્રી ઘાસીલાલજી મ. ના સૂત્રોની ઉપયોગિતાની ખાત્રી થશે.

આ સૂત્રો વિદ્યાર્થીને, અભ્યાસીને તેમજ સામાન્ય વાચકને સર્વને એક સરખી રીતે ઉપયોગી થઈ પડે છે, વિદ્યાર્થીને તેમજ અભ્યાસીને મૂળ તથા સંસ્કૃત ટીકા વિશેષ કરીને ઉપયોગી થાય તેમ છે ત્યારે સામાન્ય હિંદી વાચકને હિંદી અનુવાદ અને ગુજરાતી વાચકને ગુજરાતી અનુવાદથી આખું સૂત્ર સરળતાથી સમજાય જાય છે.

કેટલાકોને એવો ભ્રમ છે કે સૂત્ર વાંચવાનું આપણું કામ નહિ, સૂત્રો આપણને સમજાય નહિ. આ ભ્રમ તદ્દન ખોટો છે. બીજા કોઈપણ શાસ્ત્રીય પુસ્તક કરતાં સૂત્રો સામાન્ય વાચકને પણ ઘણી સરળતાથી સમજાઈ જાય છે સામાન્ય માણસ પણ સમજી શકે તેટલા માટે જ ભ. મહાવીરે તે વખતની લોક ભાષામાં (અર્ધ માગધી ભાષામાં) સૂત્રો બનાવેલાં છે એટલે સૂત્ર વાંચવાં તેમજ સમજવામાં ઘણાં સરળ છે.

માટે કોઈ પણ વાંચકને એવો ભ્રમ હોય તો તે કાઢી નાંખવો અને ધર્મનુ તેમજ ધર્મના સિદ્ધાંતાનુ સાચુ જ્ઞાન મેળવવા માટે સૂત્રો વાચવાને ચૂકવુ નહિ. એટલું જ નહિ પણ જરૂરથી પહેલા સૂત્રોજ વાંચવા

સ્થાનકવાસીઓમા આ શ્રી સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ જે કામ કર્યું છે અને કરી રહી છે તેવું કોઈ પણ સંસ્થાએ આજ સુધી કર્યું નથી સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિ-

તિના છેલ્વા રિપોર્ટ પ્રમાણે બીજાં છ સૂત્રો લખાયેલ પડયાં છે, બે સૂત્રો-અનુયોગદ્વાર અને ઠાણાંગ સૂત્ર-લખાય છે તે પણ થોડા વખતમાં તૈયાર થઈ જશે. તે પછી બાકીના સૂત્રો હાથ ધરવામાં આવશે

તૈયાર સૂત્રો જલ્દી છપાઈ જાય એમ ઇચ્છીએ છીએ અને સ્થા. બંધુઓ સમિતિને ઉત્તેજન અને સહાયતા આપીને તેમનાં સૂત્રો ઘરમાં વસાવે એમ ઇચ્છીએ.

'જૈન સિદ્ધાન્ત' પત્ર-મે ૧૯૫૫.

*

શ્રુત ભક્તિ

(પૂ. આચાર્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મ. સા. ની આજ્ઞા અનુસાર લખનાર)

દ. સં. ના જૈન મુનિ શ્રી દયાનંદજી મહારાજ

તા. ૨૩-૬-૫૬ શાહપુર, અમદાવાદ,

આજે લગભગ ૨૦ વર્ષથી શ્રદ્ધેય પરમપૂજ્ય, જ્ઞાન દિવાકર પં. મુનિશ્રી **ઘાસીલાલજી** મ ચરમ તીર્થંકર ભગવાન મહાવીરના અનુત્તર, અનુપમ ન્યાય યુક્ત, પૂર્વાપર અવિરોધ, સ્વપર કલ્યાણકારક, ચરમ શીતળ વાણીના દ્યોતક એવા **શ્રીજિનાગમ** પર પ્રકાશ પાડે છે તેઓશ્રી પ્રાચીન, પૌર્વાત્ય સંસ્કૃતાદિ અનેક ભાષાના પ્રખર પંડિત છે અને જિન વાણીનો પ્રકાશ સંસ્કૃત, ગુજરાતી અને હિંદીમાં મૂળ શબ્દાર્થ, ટીકા, વિસ્તૃત વિવરણ સાથે પ્રકાશમાં લાવે છે એ જૈન સમાજ માટે અતિ ગૌરવ અને આનંદનો વિષય છે.

ભ૦ મહાવીર અત્યારે આપણી પાસે વિદ્યમાન નથી. પરંતુ તેમની વાણી રૂપે અક્ષર દેહ ગણધર મહારાજોએ શ્રુત પરંપરાએ સાચવી રાખ્યો. શ્રુત પરંપરાથી સચવાતું જ્ઞાન જ્યારે વિસ્મૃત થવાનો સમય ઉપસ્થિત થવા લાગ્યો ત્યારે શ્રી દેવર્દ્ધિગણિ ક્ષમાશ્રમણે વલ્લભીપુર-વળામાં તે આગમોને પુસ્તકો રૂપે આરૂઢ કર્યાં આજે આ સિદ્ધાંતે આપણી પાસે છે. તે અર્ધ માગધી પાલી ભાષામા છે અત્યારે આ ભાષા ભગવાનની, દેવોની તથા જનગણની ધર્મ ભાષા છે તેને આપણા શ્રમણો અને શ્રમણીઓ તથા મુમુક્ષુ શ્રાવક શ્રાવિકાઓ મુખપાઠ કરે છે, પરન્તુ તેનો અર્થ અને ભાવ ઘણા થોડાઓ સમજે છે

જિનાગમ એ આપણાં શ્રદ્ધેય પવિત્ર ધર્મસૂત્રો છે એ આપણી આંખો છે તેનો અભ્યાસ કરવો એ આપણી સૌની-જૈન માત્રની ફરજ છે તેને સત્ય સ્વરૂપે સમજાવવા માટે આપણાં સદ્‌ભાગ્યે જ્ઞાન દિવાકર શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજે સત્સંકલ્પ કર્યો છે અને તે લિખિત સૂત્રોને પ્રગટાવી શાસ્ત્રોદ્ધાર સમીતી દ્વારા જ્ઞાન પરબ વહેતી કરી છે. આવા અનુપમ કાર્યમાં સકળ જૈનોનો સહકાર અવશ્યક હોવો ઘટે અને તેનો વધારેમાં વધારે પ્રચરા થાય તે માટે પ્રયત્નો કરવા ઘટે

ભ૦ મહાવીરને ગણધર ગૌતમ પૂછે છે કે હે ભગવાન; સૂત્રની આરાધના કરવાથી શુ ફળ પ્રાપ્ત થાય છે ? ભગવાન તેનો પ્રતિ ઉત્તર આપે છે કે શ્રુતની આરાધનાથી જીવોના અજ્ઞાનનો નાશ થાય છે અને તેઓ સંસારના કલેશોથી નિવૃત્તિ મેળવે છે. અને સંસાર કલેશોથી નિવૃત્તિ અને અજ્ઞાનનો નાશ થતા મોક્ષ ફળની પ્રાપ્તિ થાય છે.

આવા જ્ઞાન કાર્યમા મૂર્તિપૂજક જૈનો, દિગંબરો અને અન્ય ધર્મીઓ હજારો અને લાખો રૂપીયા ખર્ચે છે હિંદુ ધર્મમા પવિત્ર મનાતા ગ્રંથ ગીતાના સેંકડો નહિ પણ હજારો ટીકા

ગ્રંથો દુનિયાની લગભગ સર્વ ભાષાઓમાં પ્રગટ થયા છે ઈસાઈ ધર્મના પ્રચારકો તેમના પવિત્ર ધર્મગ્રન્થ બાઈબલના પ્રચારાર્થે તેનુ જગતની સર્વભાષાઓમા ભાષાંતર કરી, તેને પડતર કરતા પણ ઘણી ઓછી કિંમતે વેચી ધર્મ સૂત્રોનો પ્રચાર કરે છે. મુસ્લીમ લોકો પણ તેમના પવિત્ર મનાતા ગ્રન્થ કુરાનનુ પણ અનેક ભાષાઓમાં ભાષાંતર કરી સમાજમાં પ્રચાર કરે છે. આપણે પૈસા પરનો મોહ ઉતારી ભગવાનના સિદ્ધાંતોનો પ્રચાર કરવા માટે તન, મન, ધન સમર્પણ કરવા જોઈએ. અને સૂત્ર પ્રકાશનના કાર્યને વધુ ને વધુ વેગ મળે તે માટે સક્રિય પ્રયત્નો કરવા જોઈએ આવા પવિત્ર કાર્યમાં સામ્પ્રદાયિક મતભેદો સૌએ ભૂલી જવા જોઈએ અને શુદ્ધ આશયથી થતા શુદ્ધ કાર્યને અપનાવી લેવું જોઈએ. સમિતિના નિયમાનુસાર રકમ ભરી સમીતીના સભ્ય અવશ્ય બનવુ જોઈએ. ધાર્મિક અનેક ખાતાઓના મુકાબલે સૂત્ર પ્રકાશનનું-જ્ઞાન પ્રચારનુ આ ખાતું સર્વશ્રેષ્ઠ ગણાવુ જોઈએ,

આ કાર્યને વેગ આપવાની સાથે સાથે એ આગમો-ભગવાનની એ મહાવાણીનું પાન કરવા પણ આપણે હરહંમેશ તત્પર રહેવુ જોઈએ. જેથી પરમ શાન્તિ અને જીવન સિદ્ધિ મેળવી શકાય. સ્થા. જૈન. તા. ૫-૭-૫૬)

શ્રી અ. ભા. શ્વે. સ્થા. જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિનાં પ્રમુખશ્રી વગેરે

રાણપુર

પરમ પવિત્ર સૌરાષ્ટ્રની પુણ્ય ભૂમિ પર જ્યારથી શાન્ત-શાસ્ત્રવિશારદ અપ્રમાદિ પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજનાં પુનિત પગલા થયા છે ત્યારથી ઘણા લાંબા કાળથી લાગુ પડેલ જ્ઞાનાવરણિય કર્મનાં પડળ ઉતારવાનો શુભ પ્રયાસ થઈ રહ્યો છે. અને જે પ્રવચનની પ્રભાવના તેઓશ્રી કરી રહ્યા છે તે અનંત ઉપકારક કાર્યમાં તમે જે અપૂર્વ સહાય આપી રહ્યા છો તે માટે તમો સર્વને ધન્ય છે અને એ શુભ પ્રવૃત્તિના શુભ પરિણામોનો જનતા લાભ લ્યે છે. મને તો સમજાય છે કે સાધુજી છઠે ગુણસ્થાનકે હોય છે પણ પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ તો બહુધા સાતમેં અપ્રમત્ત ગુણસ્થાનકે જ રહે છે એવા અપ્રમત માત્ર પાંચ-સાત સાધુઓ. જો સ્થાનકવાસી જૈન સમાજમાં હોય તો સમાજનુ શ્રેય થતાં જરાએ વાર ન લાગે. સમાજાકાશમા સ્થા૦ જૈન સંપ્રદાયનો દિવ્ય પ્રભાકર ઝળહળી નીકળે- ૫ ણુ વો દિન..

શ્રીશાસ્રોદ્ધાર સમિતિને મ્હારી એક નમ્ર સૂચના છે કે-પૂજ્યશ્રીની વૃદ્ધાવસ્થા છે, અને કાર્યપ્રણાલિકા યુવાનોને શરમાવે તેવી છે તેમને ગામોગામ વિહાર કરવા અને શાસ્રોદ્ધારનુ કાર્ય કરવું તેમાં ઘણી શારીરિક-માનસિક અને વ્યવહારિક મુશ્કેલી વેઠવી પડે છે. તો કોઈ યોગ્ય સ્થળ કે જ્યાના શ્રાવકો ભક્તિવાળા હોય વાડાના રાગના વિષથી અલીપ્ત હોય એવા કોઈ સ્થળે શાસ્રોદ્ધારનું કાર્ય પૂર્ણ થાય ત્યાં સુધી સ્થીરતા કરી શકે એનો પાટે પ્રબંધ કરવો જોઈએ. બીજા કોઈ એવા સ્થળની અનુકુળતા ન મળે તો છેવટ અમદાવાદમાં યોગ્ય સ્થળે રહેવાની સગવડતા કરી અપાય તો વધુ સારૂ. મ્હારી આ સૂચના પર ધ્યાન આપવા ફરી યાદ આપુ છુ ફરીવાર પૂજ્ય આચાર્યશ્રી ને અને તેમના સત્કાર્યના સહાયકોને મારા અભિનંદન પાઠવું છુ તે સ્વીકારશોજી

લિ. સદાનંદી જૈનમુનિ છોટાલાલજી,

"જૈન સિદ્ધાંતના" તંત્રીશ્રોનો અભિપ્રાય.

સ્થાનકવાસીઓમાં પ્રમાણભૂત સૂત્રો બહાર પાડનારી આ એકની એક સંસ્થા છે. અને એના આ છેલ્લા રિપોર્ટ ઉપરથી જણાય છે કે તેણે ઘણી સારી પ્રગતિ કરી છે તે જોઈ આનંદ થાય છે.

મૂળ પાઠ, ટીકા, હિંદી તથા ગુજરાતી અનુવાદ સહિત સૂત્રો બહાર પાડવાં એ કાંઇ સહેલું કામ નથી. એ એક મહાભારત કામ છે અને તે કામ આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ ઘણી સફળતાથી પાર પાડી રહી છે તે સ્થાનકવાસી સમાજ માટે ઘણા ગૌરવનો વિષય છે અને સમિતિ ધન્યવાદને પાત્ર છે

સમિતિ તરફથી નવસૂત્રો બહાર પડી ચૂક્યાં છે, હાલમાં ત્રણ સૂત્રો છપાય છે. નવ સૂત્રો લખાઈ ગયા છે અને જંબુદ્વીપ પ્રજ્ઞપ્તિ તથા નંદીસૂત્ર તૈયાર થઇ રહ્યાં છે

હાલમાં મંત્રી શ્રી માકરચંદ ભાઈચંદ સમિતિના કામમાં જ તેમનો આખો વખત ગાળે છે અને સમિતિના કામકાજને ઘણો વેગ આપી રહ્યા છે તેમના ખંત માટે ધન્યવાદ

અને આ મહાભારત કામના મુખ્ય કાર્યકર્તા તો છે વયોવૃદ્ધ પંડિત મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ મૂળ પાઠનું સંશોધન તથા સંસ્કૃત ટીકા તેઓશ્રી જ તૈયાર કરે છે. મુનિશ્રીનો આ ઉપકાર આખાય સ્થા. જૈન સમાજ ઉપર ઘણો મહાન છે. એ ઉપકારનો બદલો તો વાળી શકાય તેમજ નથી

પરંતુ આ સમિતિના મેમ્બર બની, તેના બહાર પડેલાં સૂત્રો ઘરમાં વસાવી તેનું અધ્યયન કરવામાં આવે તો જ મહારાજ શ્રીનું થોડું ઋણ અદા કર્યું ગણાય.

ભગવાને કહ્યું છે કે पढमं णाणं तओ दया પહેલું જ્ઞાન પછી દયા, દયા ધર્મને યથાર્થ સમજવો હોય તો ભગવાનની વાણીરૂપ આપણા સૂત્રો વાંચવાંજ જોઈએ તેનુ અધ્યયન કરવું જોઈએ અને તેનો ભાવાર્થ યથાર્થ સમજવો જોઇએ.

એટલા માટે આ શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના સર્વ સૂત્રો દરેક સ્થા. જૈને પોતાના ઘરમાં વસાવવાજ જોઇએ સર્વ ધર્મજ્ઞાન આપણા સૂત્રોમાંજ સમાયલુ છે અને સૂત્રો સહેલાઇથી વાચીને સમજી શકાય છે, માટે દરેક સ્થા જૈન આ સૂત્રો વાચે એ ખાસ જરૂરનુ છે

"જૈન સિદ્ધાંત" ડીસેમ્બર–૫૬

*

શ્રી ઉપાશક દશાંગ સૂત્રને માટે અભિપ્રાય.

મૂળ સૂત્ર તથા પૂ મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજે બનાવેલ સંસ્કૃત છાયા તથા ટીકા અને હિંદી તથા ગુજરાતી અનુવાદ સહિત.

પ્રકાશક—અ ભા. શ્વે. સ્થાનકવાસી જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ, ગરેડીઆ કૂવા રોડ, ગ્રીન લોજ પાસે, રાજકોટ. (સૌરાષ્ટ્ર) પૃષ્ઠ ૬૧૬ બીજી આવૃત્તિ બેવડું (મોટું) કદ. પાકું જેકેટ સાથે સને ૧૯૫૬ કિંમત રૂા ૮-૮-૦

આપણા મૂળ બાર અંગ સૂત્રોમાંનુ ઉપાશકદશાંગ એ સાતમું અંગ સૂત્ર છે, એમાં ભગવાન મહાવીરના દશ ઉપાસકો શ્રાવકોનાં જીવનચરિત્રો આપેલા છે તેમા પહેલું ચરિત્ર આનંદ શ્રાવકનું આવે છે

આનંદ શ્રાવકે જૈન ધર્મ અંગીકાર કર્યો અને બારવ્રત ભગવાન મહાવીર પાસે અંગીકાર કરી પ્રતિજ્ઞા (પ્રત્યાખ્યાન) લીધા તેનુ સવિસ્તર વર્ણન આવે છે. તેની અંતર્ગત અનેક

વિષયો જેવા કે, અભિગમ, લોકાલોકસ્વરૂપ, નવતત્વ, નરક દેવલોક વગેરેનું વર્ણન પણ આવે છે

આનંદ શ્રાવકે બાર વ્રત લીધાં તે બારે વ્રતની વિગત અતિચારની વિગત વગેરે બંધુ આપેલું છે, તે જ પ્રમાણે બીજા નવ શ્રાવકોની પણ વિગત આપેલ છે

આનંદ શ્રાવકની પ્રતિજ્ઞામાં अरिहंत चेइयाई શબ્દ આવે છે મૂર્તિપૂજકો મૂર્તિપૂજા સિદ્ધ કરવા માટે તેનો અર્થ અરિહંતનુ ચૈત્ય (પ્રતિમા) એવા કરે છે. પણ તે અર્થ તદ્દન ખોટો છે. અને તે જગ્યાએ આગળ પાછળના સંબંધ પ્રમાણે તેનો એ ખોટો અર્થ બંધ બેસતો જ નથી તે મુનિશ્રી ઘાસીલાલજીમ.જે તેમની ટીકામાં અનેક રીતે પ્રમાણો આપી સાબિત કરેલ છે અને अरिहंत चेइयाई નો અર્થ સાધુ થાય છે તે બતાવી આપેલ છે

આ પ્રમાણે આ સૂત્રમાંથી શ્રાવકના શુદ્ધ ધર્મની માહિતી મળે છે તે ઉપરાંત તે શ્રાવકોની ઋદ્ધિ, રહેઠાણ, નગરી વગેરેના વર્ણનો ઉપરથી તે વખતની સામાજિક સ્થિતિ. રીતરિવાજ રાજવ્યવસ્થા વગેરે બાબતોની માહિતી મળે છે.

એટલે આ સૂત્ર દરેક શ્રાવકે અવશ્ય વાચવુ જોઇએ એટલુ જ નહિ પણ વારવાર અધ્યયન કરવા માટે ઘરમાં વસાવવુંજોઇએ.

પુસ્તકની શરૂઆતમાં વર્દ્ધમાન શ્રમણ સઘના આચાર્યશ્રી આત્મારામજી મહારાજનું સંમતિ પત્ર તથા બીજા સાધુઓ તેમજ શ્રાવકોના સંમતિ પત્રો આપેલા છે, તે સૂત્રની પ્રમાણભૂતતાની ખાત્રી આપે છે.

" જૈન સિદ્ધાન્ત " જાન્યુઆરી, ૫૭

*

॥ श्री ॥

दो शब्द

जैन सामज में श्री दशवैकालीक सूत्रका स्थान बहुत ऊँचा है यह सूत्र कदके प्रकार में भले छोटा है । किन्तु इस सूत्र का महत्व बहुत बडा है । श्रीदशवैकालीक सूत्र का अध्ययन करना मानो मुनिधर्म मे प्रवेश करने की प्राथमिक पाठशाला मे प्रवेश करना है । यदि मुनि अधिक प्रज्ञावान हो तो ज्ञानसे ग्यारह अंगसूत्र से लेकर चौदापूर्वतक का ज्ञान प्राप्त कर सकता है । यदि मुनि कम प्रज्ञा वाला है । अधिक परिश्रम करने पर भी ज्ञानावरणीय कर्मोदय के कारण ज्ञान नहीं बढ़ता तो श्री दशवैकालिक सूत्र का अध्ययन कर अपनी आत्मा का कल्याण कर सकता है इस सूत्र में आत्मसाधन के सभी विषय मोजूद है । भले इस सूत्र का स्थान अग या उपाग सूत्रो मे नही है । फिरभी इस सूत्र का महत्व अधिक है । इमसे जीवाजीवका ज्ञान पाच समिति तीन गुप्ति इर्या भाषा एषणा गोचरी की वीधी आदी सभी आवश्यक कार्यक्रम मोजूद है श्री दशवैकालिक सूत्र कंठस्थ यदि है तो मुनि अपनी सयम यात्रा का निर्दोषपालन कर सकता है । इसीलिये दिक्षार्थी भाई बहिनो को सब से पहिले इसका अध्ययन कराया जाता है । प्रतिक्रमण के बाद इसका नम्बर आता है कई श्रावक श्राविकाए इसे कंठस्थ करलेते है । कई नित्य इसका स्वाध्याय करते है । इस सूत्र की विस्तृत टीका श्रीमद् जैनाचार्य श्रीघासीलालजी मा०

सा० ने कर समाज पर महान उपकार किया है। इससे समाज आचार्य श्री का सदा ऋणी रहेगी और आचार्य श्री के स्वर्गवास बाद शास्त्रज्ञ पं० मुनि श्री. श्री कनैयालालजी मा०सा० जो कार्य पूज्य श्री का अपूर्ण रहा था उसको पूर्ण करने का बीडा उठाया इससे समाज मुनिश्रीकनैया-लालजी मा० का ऋणी रहेगी मुनिश्री के सदउपदेश से प्रभावित होकर सिवाना (मारवाड) निवासी सुश्राविका पानकुँवर बहन धर्म पत्नी श्रीधीगडमलजी सा० कानुगा इस सूत्रको छपवाने में अर्थ सहायक बनी

श्री पानकुँवर बैन का संक्षिप्त परिचय

श्री पानकुँवर बहिन का जन्म सिवाना निवासी बागरेचा श्री मुलतानमलजी की भार्या बरजूबाई की कुक्षी से हुवा श्रीमुलतानमलजी धर्मप्रेमी श्रावक है। और अपनीपुत्री मे धर्मके सुसस्कार डाले और विवाह के पश्चात श्रीधीगड मलजी कनुगा की मातुश्रीप्यारीबाई की धर्म प्रेरणा अच्छी रही इससे आप दिनो दिन धर्म मे दृढ़ बनती रही अपने प्रतिक्रमण थोकडे बोल चाल का काफी अध्ययन किया और अत्यंत श्रद्धावान श्राविका बनगइ आप कई प्रकार की नित्य तपश्चर्या करती रहती है सादा जीवन शांत स्वभाव आपका खास गुणहै पुण्य व सामाजीक कार्यो मे अग्रणी रहती है। महिलाओ मे धर्मध्यान बोल चाल सीखाने का प्रयत्नशील रहती है शेठ श्री कानुगाजी समाज के उत्थान के कार्यमे सदैव भाग लेतेरहते है श्रीधीगडमलजी सिवाना श्रीवर्द्धमान स्थानकवासी श्रावक सघ के कोषाध्यक्ष पद पर सुशोभित है और समाज की सेवा कर रहे है मै आपसे अनुरोध करता हूँ की आगे भी इसी प्रकार सामाजिक कार्यो मे भागलेते रहेगें और आप शास्त्रोद्धार समिति के आद्यमुरब्बी है आप जहाँ भी दान पुण्य का कार्य आता है अगवानी रहते है—

निवेदक
मुलतानमल रांका
सिवाना
मन्त्री श्री अमरजैन शोध सस्थान सिवाना

श्री दशवैकालिक सूत्रकी विषयानुक्रमणिका

समाप्त

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥



जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्य श्रीघासीलालव्रतिविरचितया

आचारमणिमञ्जूषाख्यया व्याख्यया समलङ्कृतं

श्रीदशवैकालिकसूत्रम्

卐

मङ्गलाचरणम्.

नम्रीभूतपुरन्दरादिमुकुट, भ्राजन्मणिच्छायया,
चित्रानन्दकरी सदा भगवतो, यस्याङ्घ्रिलक्ष्मीः परा।
यद्विज्ञाननिरन्तसिन्धुलहरी, मग्नाः स्वकर्मक्षयं,
कृत्वाऽनन्तसुखस्य धाम भविनः, प्रापुः श्रये तं जिनम् ॥१॥
विमलः केवलाऽऽलोक,-प्रभासंभारभासुरः।
त्रिजगन्मुकरो धीरो, वीरो विजयतेतराम् ॥२॥
श्रीसुधर्मा महावीर-लब्धरत्नोज्ज्वलो गणी।
निबबन्ध तदुक्तार्थं, नमस्तस्मै दयालवे ॥३॥
अथैतत्करुणालब्ध,-विवेकामृतबिन्दुना।
दशवैकालिकव्याख्या, घासीलालेन तन्यते ॥४॥

अथ प्रथममध्ययनम्

मूलम्-धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो ॥१॥

छाया-धर्मो मङ्गलमुत्कृष्टम्, अहिंसा संयमस्तपः।
देवा अपि तं नमस्यन्ति, यस्य धर्मे सदा मनः ॥१॥

सान्वयार्थः—**अहिंसा**=प्राणव्यपरोपणका त्याग करने तथा जीवोंकी रक्षा करनेरूप अहिंसा **संजमो**=सयम और **तवो**=तप (यह) **धम्मो**=धर्म **उक्किट्ठं**=उत्कृष्ट—सबसे श्रेष्ठ **मंगलं**=मङ्गल है—कल्याणकारी है । **जस्स**=जिसका **मणो**=मन **सया**=सदा—हमेशां **धम्मे**=धर्म में (लगा रहता है) **तं**=उसको **देवावि**=देवताभी **नमंसंति**=नमस्कार करते हैं, अर्थात् निरन्तर धर्ममें लीन प्राणी देवोंद्वारा भी पूज्य हो जाते हैं ॥१॥

टीका—'धम्मो मंगल'—मित्यादि । धर्मः=धरति=प्राणीनो दुर्गतौ पतनाद् रक्षति शुभे स्थाने च स्थापयति यः स तथोक्तः । उक्तञ्च—

"दुर्गतिप्रसृतान् जन्तून्, यस्माद्धारयते पुनः ।
धत्ते चैतान् शुभे स्थाने, तस्माद्धर्म्म इति स्मृतः ॥१॥" इति ।

उत्कृष्टम्=उत्तमं, मङ्गलं=मङ्गलस्वरूपम्, कस्तादृशो धर्मः ? इत्यत आह—अहिंसा संयमस्तप इति । तत्राऽहिंसा नाम हिंसावर्जनं प्राणिप्राणरक्षणं तदिच्छा चेति । न हिंसा—अहिंसेति विग्रहे अहिंसाया अभावरूपत्वेनाऽवस्तुतया किमपि कार्यं प्रति कारण-

हिन्दी—भाषानुवाद.

धम्मो मंगल मित्यादि । जो नरक आदिमें गीरते हुए प्राणियोंको बचावे और स्वर्ग—मोक्ष आदि शुभस्थानोंमें पहुंचावे उसे धर्म कहते है ।

कहा भी है—"दुर्गतिमें पडते हुए जीवोकी रक्षा करता है और फिर उन्हें शुभगतिमें पहुंचाता है, इसीसे वह धर्म कहलाता है" ॥ अर्थात् जो दुःखोसे छुडाकर प्राणियोंको अनन्त सुखकी प्राप्ति कराता है वही धर्म है ।

धर्म उत्कृष्ट मङ्गल है । अहिसा, सयम और तप, ये तीनो उसके लक्षण है ।

अहिंसा—हिंसाका त्याग करना अर्थात् प्राणियोंके प्राणोकी रक्षा करना और उनके प्राणों के रक्षण की इच्छा रखना अहिंसा है । हिसा के अभाव को अहिंसा कहा जाय

ગુજરાતી—ભાષાનુવાદ.

'धम्मो मंगल' ઈત્યાદિ જે નરક આદિ દુર્ગતિમાં પડતા પ્રાણીઓને બચાવે અને સ્વર્ગ મોક્ષ આદિ શુભ સ્થાનોમાં પહોંચાડે તેને ધર્મ કહે છે

કહ્યું પણ છે કે—"દુર્ગતિમાં પડતા જીવોની રક્ષા કરે છે અને પછી તેમને શુભ ગતિમાં પહોંચાડે છે, તેથી તે ધર્મ કહેવાય છે" અર્થાત્ દુઃખોથી છોડાવીને પ્રાણીઓને અનંત સુખની પ્રાપ્તિ જે કરાવે છે, તે ધર્મ છે

ધર્મ ઉત્કૃષ્ટ મંગલ છે, અહિંસા, સંયમ અને તપ, એ ત્રણ તેના લક્ષણો છે.

અહિંસા—હિંસાનો ત્યાગ કરવો અર્થાત્ પ્રાણીઓના પ્રાણની રક્ષા કરવી અને તેમના પ્રાણોની રક્ષા કરવાની ઈચ્છા રાખવી એ અહિંસા છે હિંસાના અભાવને અહિંસા કહેવામાં

त्वाऽनापत्तिरतोऽहिंसाऽपि भावरूपैव, तेन प्राणरक्षणमप्यहिंसाशब्दार्थः सिध्यति । ये तु स्वतः परतो वा प्राणिप्राणरक्षणमहिंसेति न मन्यन्ते ते तु अहिंसाशब्दरहस्यानभिज्ञा एवेति बोध्यम् ।

उक्तं हि भगवता प्रश्नव्याकरणे प्रथमसंवरद्वारे—

"इमं च णं सव्वजीवरक्खणदयट्ठाए पावयणं भगवया सुकहियं" इत्यादि । सकलजीवानां रक्षणं प्राणव्यपरोपणवारणं प्राणरक्षणोपयोगी व्यापार इति यावत् तदर्थं, दया=परदुःखप्रहाणेच्छा तदर्थं चेदं प्रवचनं भगवता सुकथितमित्यर्थः,

उक्तश्च दयाशब्दार्थो वाचस्पत्याभिधाने—

"यत्नादपि परक्लेशं, हर्तुं या हृदि जायते ।
इच्छा भूमिसुरश्रेष्ठ ! सा दया परिकीर्तिता ॥१॥" इति ।

तस्मात् सर्वप्राणिनां रक्षणं रक्षणेच्छा चेति द्वयमेवाहिंसातत्त्वं सकलधर्ममूलञ्चेति ।
उक्तश्च संस्तारकप्रकीर्णकटीकायाम्—

तो अहिंसा अभावरूप हो जायगी । अभाव किसी कार्य के प्रति कारण नहीं हो सकता, इस कारण अहिंसा से स्वर्ग मोक्ष की प्राप्ती नहीं होगी, अतएव अहिंसा को भावरूप (वस्तुरूप) मानना उचित है, और जब कि वह वस्तुरूप है तो प्राणो की रक्षा करना अहिंसाशब्द का अर्थ सिद्ध हुआ । जो जीवों की रक्षा करने कराने को अहिंसा नहीं मानते वे अहिंसा के यथार्थ तत्त्वको नहीं जानते ।

भगवानने प्रश्नव्याकरणके प्रथम संवरद्वार में कहा है—"समस्त जीवो की रक्षा (मरते हुएको, अपने या दूसरो के द्वारा बचाना) और दया (दुःखो से छुडानेकी इच्छा) के लिए इस प्रवचन का उपदेश दिया है"।

वाचस्पत्य महाकोशमें कहा भी है—"हे भूमिसुरश्रेष्ठ ! प्रयत्नसे पर प्राणियों के क्लेश-को निवारण करनेके लिए हृदयमें जो इच्छा उत्पन्न होती है उसे दया कहते है" ॥१॥

આવે તો અહિંસા અભાવ-રૂપ થઈ જશે. અભાવ કોઈ કાર્યને પ્રતિ કારણ થઈ શકતું નથી, તેથી કરીને અહિંસાથી સ્વર્ગ મોક્ષની પ્રાપ્તિ નહિ થાય. એટલે અહિંસાને ભાવરૂપ (વસ્તુરૂપ) માનવી જ ઉચિત છે. અને જો તે વસ્તુરૂપ છે, તો પ્રાણોની રક્ષા કરવી એવો અહિંસા શબ્દનો અર્થ સિદ્ધ થયો. જેઓ જીવોની રક્ષા કરવી-કરાવવી એને અહિંસા નથી માનતા તેઓ અહિંસાના યથાર્થ તત્વને જાણતા નથી.

ભગવાને પ્રશ્નવ્યાકરણના પ્રથમ સંવરદ્વારમા કહ્યુ છે કે-"બધા જીવોની રક્ષા (મરતા જીવોને પોતે અથવા બીજાઓ દ્વારા બચાવવા) અને દયા (દુઃખથી છોડાવવાની ઇચ્છા)ને માટે આ પ્રવચનનો ઉપદેશ આપ્યો છે."

વાચસ્પત્ય મહાકોશમાં પણ કહ્યું છે કે-"હે ભૂમિસુરશ્રેષ્ઠ ! પ્રયત્ન વડે પર પ્રાણીઓના કલેશનું નિવારણ કરવાને માટે હૃદયમાં જે ઇચ્છા ઉત્પન્ન થાય છે તેને દયા કહે છે." ॥૧॥

"न तद्दानं न तद्ध्यानं, न तज्ज्ञानं न तत्तपः ।
न सा दीक्षा न सा भिक्षा, दया यत्र न विद्यते ॥१॥ इति ।
तथा—"मूलं धम्मस्स दया, तयणुगयं सव्वमेवऽणुट्ठाणं ।
सिद्धं जिणिंदसमए, मग्गिज्जइ तेणिह दयालू ॥१॥" इति धर्मरत्नप्रकरणे ।

भगवतीसूत्रेऽपि पञ्चदशे शतके प्रोक्तम्—

"तए णं अहं गोयमा ? गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स अणुकंपणट्ठयाए वेसियायणस्स बालतवस्सिस्स तेयपडिसाहरणट्ठयाए एत्थ णं अंतरा अहं सीयलियं तेयलेस्सं निसिरामि, जाए सा ममं सीयलियाए तेयलेस्साए वेसियायणस्स बालतवस्सिस्स सा उसिणा तेयलेस्सा पडिहया" इति ।

हे गौतम ! मङ्खलिपुत्रस्य गोशालकस्यानुकम्पनार्थं बालतपस्विनो वैश्यायनस्य तेजःप्रतिसहरणार्थं च मया शीतलां तेजोलेश्यामुद्भाव्य तदीयोष्णा तेजोलेश्या प्रतिहतेत्यर्थः तत्र 'अणुकंपणट्ठयाए' 'तेयपडिसाहरणट्ठयाए' इति पदद्वयेन गोशालकरक्षणार्थं भगवतस्तेजोलेश्यासमुद्भव इति स्पष्टो भवति ।

संथारगपइन्नाकी टीकामें कहा है—"वह दान दान नहीं, वह ध्यान ध्यान नहीं, वह ज्ञान ज्ञान नहीं, वह तप तप नहीं, वह दीक्षा दीक्षा नहीं और वह भिक्षा भिक्षा नहीं, जहाँ कि दया नहीं है । अर्थात् दयारहित सब क्रियाएँ मिथ्या यानी निष्फल है" ॥ २ ॥

धर्मरत्नप्रकरणमे भी कहा है—"धर्मका मूल दया है, दयापूर्वक की हुई समस्त क्रियाएं सफल होती है, इसलिए जिनेन्द्रके मार्गमे दयावान् ही धर्मका अधिकारि हो सकता है" ॥ ३ ॥

उक्त कथनसे यह स्पष्ट हो गया कि मरते हुए प्राणीको बचाना भी अहिंसा है ।

भगवतीसूत्रके पन्द्रहवे शतकमें भगवान श्रीगौतमसे कहते है—

"हे गौतम ! मंखलिपुत्र गोशालककी अनुकम्पा करनेके लिए मैने शीतल तेजोलेश्यासे बालतपस्वी वैश्यायनके द्वारा निकाली हुई उष्ण तेजोलेश्याका तेज शान्त करके उसे बचाया" ।

यहां यह सदेह हो सकता है कि यदि बचाने में धर्म होता तो भगवान्ने अपने समवसरणमें स्थित सर्वानुभूति और सुनक्षत्र नामक शिष्यो को क्यो न बचाया ?

સંથારગપઈન્નાની ટીકામા કહ્યુ છે કે– "એ દાન દાન નથી, એ ધ્યાન ધ્યાન નથી, એ જ્ઞાન જ્ઞાન નથી, એ તપ તપ નથી, એ દીક્ષા દીક્ષા નથી, અને એ ભિક્ષા ભિક્ષા નથી કે જ્યાં દયા નથી, અર્થાત્ દયારહિત બધી ક્રિયાઓ મિથ્યા એટલે નિષ્ફળ છે" ॥ ૨ ॥

ધર્મરત્નપ્રકરણમા પણ કહ્યું છે કે—"ધર્મનું મૂળ દયા છે, દયાપૂર્વક કરેલી બધી ક્રિયાઓ સફળ થાય છે, તેથી જીનેન્દ્રના માર્ગમા દયાવાન જ ધર્મનો અધિકારી થઈ શકે છે" ॥૩॥

ઉક્ત કથનથી એ સ્પષ્ટ થઇ ગયુ કે મરતા પ્રાણીને બચાવવો એ પણ અહિંસા છે

ભગવતીસૂત્રના પંદરમા શતકમા ભગવાન્ શ્રી ગૌતમને કહે છે કે—"હે ગૌતમ ! બાલતપસ્વી વૈશ્યાયન દ્વારા કાઢવામાં આવેલી ઉષ્ણ તેજોલેશ્યાના તેજને શીતલ તેજોલેશ્યાથી શાંત કરીને, મખલિપુત્ર ગોશાલકની ઉપર દયા કરવા માટે મેં તેને બચાવ્યો."

न च रक्षणं यदि धर्मस्तर्हि स्वसमवसरणे वर्तमानौ सर्वानुभूतिसुनक्षत्रनामानौ शिष्यौ किं न भगवता रक्षितौ ? इति वाच्यम्, भगवतः सर्वज्ञतया तयोरायुःसमाप्ति-सन्दर्शनात् । ननु यथा समाप्तायुषं कोऽपि नैव रक्षितुं प्रभवति तथा विद्यमानायुषं न कोऽपि हन्तुं शक्नुयात् ? इति चेन्न, त्रिषष्टिशलाकापुरुषान् देवान् नारकांश्च विहायान्येषां प्राणिनामायुषः सत्त्वेऽपि विषशस्त्रादिभिरकालमरणसम्भवात्, ईदृशस्याकालमरणस्य बहुशः शास्त्रे प्रतिपादितत्वाच्च, अत एवाऽऽयुषः सत्त्वेऽपि प्राणिनां प्राणव्यपरोपणं सम्भवतीति ग्रन्थविस्तरभिया विरमामः । एवञ्चाहिंसाशब्दस्योक्तार्थः सुस्पष्ट एव ।

इसका समाधान यह है कि-भगवान् सर्वज्ञ थे, इसलिए किसका आयुष्य कितना अवशेष है या समाप्त हो चुका है इसे वे अपने निर्मल केवल ज्ञानसे जानते थे । सर्वानुभूति और सुन-क्षत्र शिष्योका वर्तमान आयुष्य समाप्त हो चुका था ।

प्रश्न—जैसे वर्तमान आयुष्य समाप्त होने पर कोई किसीको बचा नहीं सकता वैसे ही आयुष्य रहते हुए कोई किसीको प्राणरहित भी नहीं कर सकता ?

उत्तर—ऐसी शङ्का करना भी उचित नहीं है । क्योंकि त्रिषष्टिशलाकापुरुष, देवता और नारकोके सिवाय समस्त प्राणियोंकी आयु रहते हुए भी विष शस्त्र आदि कारणोंसे अकालमृत्यु भी हो सकती है, यह बात शास्त्रसिद्ध है, अत एव आयुष्यके सद्भावमें भी प्राणोंका व्यपरोपण हो सकता है । विस्तार भयसे इस प्रकरणको यहाँ ही समाप्त करते है ।

प्राणिप्राणरक्षण और उसकी इच्छाको अहिसा कहते हे । यह सिद्धान्त हुआ ।

અહીં એવો સંદેહ થઈ શકે છે કે—જો બચાવવામા ધર્મ થાય છે તો ભગવાને પોતાના સમવસરણમાં રહેલા સર્વાનુભૂતિ અને સુનક્ષત્ર નામના શિષ્યોને કેમ ન બચાવ્યા ?

એનુ સમાધાન એ છે કે-ભગવાન્ સર્વજ્ઞ હતા, તેથી કોનું આયુષ્ય કેટલું અવશેષ રહ્યુ છે અથવા સમાપ્ત થઈ ચૂકયુ છે તે ભગવાન પોતાના નિર્મળ કેવળ જ્ઞાનથી જાણતા હતા સર્વાનુભૂતિ અને સુનક્ષત્ર શિષ્યોનું વર્તમાન આયુષ્ય સમાપ્ત થઇ ચૂકયુ હતું.

પ્રશ્ન—જેમ વર્તમાન આયુષ્ય સમાપ્ત થવાથી કોઈ કોઈને બચાવી શકતું નથી; તેમજ આયુષ્ય બાકી હોય તો કોઈ કોઈને પ્રાણરહિત પણ કરી શકતું નથી

ઉત્તર—એવી શંકા કરવી જ ઉચિત નથી, કેમકે ત્રિષષ્ટિશલાકાપુરૂષ, દેવતા અને નારકીઓ સિવાય બીજા બધા પ્રાણીઓનુ આયુષ્ય બાકી હોય તો પણ વિષ, શસ્ત્ર, આદિ કારણોથી તેમનુ અકાળમૃત્યુ પણ થઈ શકે છે. એ વાત શાસ્ત્રસિદ્ધ છે. એટલે આયુષ્યનો સદ્ભાવ હોવા છતાં પણ પ્રાણોનુ વ્યપરોપણ થઈ શકે છે

વધારે વિસ્તાર નહિ કરવાના હેતુથીઆ પ્રકરણને અહી જ સમાપ્ત કરીએ છીએ.

પ્રાણિપ્રાણરક્ષણ અને તેની ઇચ્છાને અહિંસા કહે છે એવો સિદ્ધાન્ત થયો.

अथ प्राणिप्राणरक्षणं तदिच्छा चेति द्वयम् 'अहिंसे'-ति सिद्धान्तितम् । अहिंसा-इत्यत्र का नाम हिंसेति चेदुच्यते—

हिंसा नाम प्रमादपारवश्यात् प्राणव्यपरोपणम् । प्रमादश्च मद्य-विषयकषाय-निद्रा-विकथाभेदात्पञ्चधा, यद्वा अज्ञान-संशय-विपर्यय-राग-द्वेष-स्मृतिभ्रंश-योगदुष्प्रणिधान-धर्मानादरभेदादष्टविधः । सा च हिंसा त्रिविधा द्रव्यतो भावत उभयतश्चेति तत्र—

द्रव्यतो हिंसा=आत्मनो विशुद्धपरिणामस्य सत्त्वेऽप्यकस्मादनिच्छया जन्तुविराधनं, यथा-भिक्षाचर्यादौ प्रवृत्तस्य समितिगुप्त्यादिधारकस्य चलनार्थं पादोत्थाने कृते एकेन चरणेन तिष्ठतः साधोरुत्थापितचरणतले तदानीं कुतश्चिद्भयाद् दुर्लक्ष्यकारणवशाद्वा वेगेन समागतस्य कस्यचिद् द्वीन्द्रियादिजन्तोरितस्ततः साधुना तद्रक्षणप्रयासे कृतेऽपि अकस्माच्चरणतलसंलग्नतया विराधनम् ।

अहिंसा शब्द घटक जो हिंसा शब्द है उसका अभिप्राय क्या है ? इस पर कहते है-प्रमादके वश होकर प्राणका अतिपात करना हिंसा है ।

प्रमाद - (१) मद्य, (२) विषय, (३) कषाय, (४) निद्रा और (५) विकथाके भेदसे पाच प्रकारका, अथवा (१) अज्ञान, (२) संशय, (३) विपर्यय, (४) राग, (५) द्वेष, (६) स्मृति-भ्रंश, (७) योगदुष्प्रणिधान, (८) धर्मानादर, के भेदसे आठ प्रकारका है ।

हिंसा तीन प्रकारकी है—(१) द्रव्यहिंसा, (२) भावहिंसा और (३) उभयहिंसा ।

(१) **द्रव्यहिंसा**—आत्माके परिणाम विशुद्ध होने पर भी अकस्मात इच्छाके विना ही जन्तुको पीडा हो जाना द्रव्यहिंसा है, जैसे-आहार विहार आदिमें प्रवृत्त समिति और गुप्तिके धारण करनेवाले मुनिने जब एक चरण उठाया तो उठाये हुए चरणके नीचे किसी भयसे या अन्य कारणसे कोई द्वीन्द्रिय आदि लघुकाय जीव अचानक नीचे आ जाय और साधु उसकी रक्षा करनेका प्रयत्न भी कर रहे हों, फिर भी अचानक दब जानेसे विराधना होना । इस

एवंविधा च हिंसा काययोगस्य चपलतया सर्वथा परिहर्तुमशक्येति व्यवहारनयमात्रगम्या ।

भावतो हिंसा=प्राणव्यपरोपणेच्छालक्षण आत्मनोऽशुद्धपरिणामः, यथा—मकरनाम्नो जलजन्तुविशेषस्य भ्रूप्रदेशे लब्धजन्मा तण्डुलदघ्नोऽन्तर्मुहूर्त्तायुष्कोऽन्तर्मुहूर्त्तमात्रगर्भनिवासानन्तरमुत्पादशीलस्तण्डुलाभिधानो मत्स्यविशेषस्तत्र स्थित एवावलोकयति—

मकरोऽयं मत्स्यानशितुं तावत्तुण्डतस्तोयमाकर्षति, ततश्च जलवेगादाननान्तःसमागतेषु प्रचुरतरेषु मीनेषु पश्चात्तानवरुध्याऽऽस्यगतं नीरं निस्सारयति तदा दशनान्तरावकाशनिर्गतोदकवेगतो बहुतरं मीना लघुतरा निस्सरन्त्येव । एवं बहिर्व्रजस्तान्निरीक्ष्यासौ तण्डुलमत्स्यो मनसि विभावयति—

प्रकारकी हिंसा, शरीरके योगकी चपलताको सर्वथा दूर करना अत्यन्त कठिन होनेके कारण व्यवहारनयमात्र है ।

(२) भावहिंसा—प्राणोंसे रहित करनेकी इच्छारूप आत्माका अविशुद्ध परिणाम, भावहिंसा कहलाती है ।

जैसे—मगर नामके जलचर-जीव-विशेषकी भोंह पर बारीक चाँवलके समान शरीरवाला एक तन्दुल नामका मत्स्य होता है, वह अन्तर्मुहूर्त्त गर्भमें रहकर जन्म लेता है; उसकी आयु अन्तर्मुहूर्त्तमात्रकी होती है । गर्भज न होनेके कारण उसको मन होता है । वह वहाँ (भौंह पर) बैठा हुआ मगरका कृत्य देखता है कि वह मगर जलजन्तुओंको खानेके लिए पहले अपने मुँहमें पानीको खींचता है, फिर पानीके वेगसे आईहुई मछलियों को मुँहमें रोककर जब पानीको निकालता है तब दाँतोंके छिद्रों द्वारा पानीके साथ—साथ बहुतसी छोटी २ मछलियां निकल जाती है, तब निकलती हुई मछलियोंको देखकर तन्दुलमत्स्य विचारता है कि—

જીવ અચાનક પગ નીચે આવી જાય, અને મુનિ એની રક્ષા કરવાનો પ્રયત્ન પણ કરી રહ્યા હોય, તો પણ અચાનક દબાઈ જવાથી વિરાધના થાય. આ પ્રકારની હિંસા, શરીરના યોગની ચપલતાને સર્વથા દૂર કરવી અત્યંત કઠિન હોવાને કારણે વ્યવહારનયમાત્ર છે.

(૨) ભાવહિંસા—પ્રાણથી રહિત કરવાની ઇચ્છારૂપ આત્માનું અવિશુદ્ધ પરિણામ એ ભાવહિંસા કહેવાય છે.

જેમકે-મગર નામના એક જળચર પ્રાણીની ભમ્મર પર ચોખા જેવા બારીક શરીરવાળો એક તંદુલ નામનો મત્સ્ય થાય છે. એ મત્સ્ય અંતર્મુહૂર્ત ગર્ભમાં રહીને જન્મ લે છે તેનું આયુષ્ય અંતર્મુહૂર્ત જેટલું હોય છે તે ગર્ભજ જીવ હોવાને લીધે તેને મન થાય છે તે મગરની ભમ્મર પર બેઠોબેઠો મગરનું કૃત્ય જુએ છે કે આ મગર જળમાના જીવોને ખાવાને માટે પહેલા પોતાના મ્હોંમાં પાણીને ખેંચે છે, પછી પાણીના વેગથી આવેલી માછલીઓને મ્હોમાં રોકીને જ્યારે પાણીને કાઢી નાખે છે, ત્યારે દાંતના છિદ્રો દ્વારા પાણીની સાથે સાથે ઘણીય નાની નાની માછલીઓ બહાર નીકળી જાય છે. એ નીકળી જતી માછ-

संयमः। संयमः=संयमनं=सम्यगुपरमण सावद्ययोगादिति संयमः, स च सप्तदशविधः, तदुक्तं समवायाङ्गे—

"सत्तरसविहे संजमे पण्णत्ते—(१) पुढवीकायसंजमे (२) आउकायसंजमे (३) तेउकायसंजमे (४) वाउकायसंजमे (५) वणस्सइकायसंजमे (६) बेइंदियसंजमे (७) तेइंदियसंजमे (८) चउरिंदियसंजमे (९) पंचिंदियसंजमे (१०) अजीवकायसंजमे (११) पेहासंजमे (१२) उवेहासंजमे (१३) अवहट्टु(परिट्ठावणा)संजमे (१४) पमज्जणासंजमे (१५) मणसंजमे (१६) वयसंजमे (१७) कायसंजमे" इति।

छाया—सप्तदशविधः संयमः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—(१) पृथिवीकायसंयमः (२) अप्कायसंयमः (३) तेजस्कायसंयमः (४) वायुकायसंयमः (५) वनस्पतिकायसंयमः (६) द्वीन्द्रियसंयमः (७) त्रीन्द्रियसंयमः (८) चतुरिन्द्रियसंयमः (९) पञ्चेन्द्रियसयमः (१०) अजीवकायसयमः (११) प्रेक्षासंयमः (१२) उपेक्षासयमः (१३) अपहृत्यसयमः (१४) प्रमार्जनसंयमः (१५) मनःसंयमः (१६) वाक्संयमः (१७) कायसंयमः।

तत्र (१) पृथिवीकायसंयमः=सचित्तपृथिव्या हस्तपादादिना संघट्टनादिविरतिः

हरिणको मारनेकी इच्छासे बाण चलाता है और उससे उसके प्राणोका नाश हो जाता है।

संयम—सावद्ययोगसे सम्यक्प्रकारसे निवृत्त होनेको सयम कहते हैं। वह सतरह प्रकारका है। समवायाङ्गके सतरहवें समवायमें कहा है—(१) पृथिवीकायसयम, (२) अप्कायसयम, (३) तेजस्कायसयम, (४) वायुकायसयम, (५) वनस्पतिकायसयम, (६) द्वीन्द्रियसयम, (७) त्रीन्द्रियसयम, (८) चतुरिन्द्रियसंयम, (९) पञ्चेन्द्रियसयम, (१०) अजीवकायसयम, (११) प्रेक्षासयम, (१२) उपेक्षासंयम (१३) अपहृत्यसयम (परिष्ठापनासयम), (१४) प्रमार्जनासयम, (१५) मनःसंयम, (१३) वाक्सयम, (१७) कायसयम।

(१) पृथिवीकायसंयम=हाथ पैर इत्यादिसे सचित्त पृथिवीका संघट्टन (सघटन) आदिका वर्जन करना।

એ હિંસામાં આત્માના અશુદ્ધ પરિણામ તથા પ્રાણનો નાશ બન્ને રહેલા હોય છે જેમકે-કોઈ પારધી હરણને મારવાની ઇચ્છાથી બાણ છોડે છે અને એ રીતે હરણના પ્રાણનો નાશ થઇ જાય છે.

સંયમ—સાવદ્યયોગથી સમ્યક્ પ્રકારે નિવૃત્ત થવું તેને સંયમ કહે છે. સંયમ સત્તર પ્રકારનો છે સમવાયાંગના સત્તરમા સમવાયમાં તે પ્રકારો કહ્યા છે (૧) પૃથિવીકાય સંયમ, (૨) અપ્કાયસંયમ, (૩) તેજસ્કાયસંયમ, (૪) વાયુકાયસંયમ, (૫) વનસ્પતિકાયસંયમ, (૬) દ્વીન્દ્રિયસંયમ, (૭) ત્રીન્દ્રિયસંયમ, (૮) ચતુરિન્દ્રિયસંયમ, (૯) પંચેન્દ્રિયસંયમ, (૧૦) અજીવકાયસંયમ (૧૧) પ્રેક્ષાસંયમ, (૧૨) ઉપેક્ષાસંયમ, (૧૩) અપહૃત્યસંયમ (પરિષ્ઠાપના સંયમ), (૧૪) પ્રમાર્જનાસંયમ, (૧૫) મનઃ સંયમ, (૧૬) વાક્સંયમ, (૧૭) કાયસંયમ

(૧) **પૃથિવીકાયસંયમ**—હાથ પગ ઇત્યાદિથી સચિત્ત પૃથિવીનું સંઘટન (સ્પર્શ) વગેરેને વર્જવું.

(२) अप्कायसंयमः=सचित्तजलस्य संघट्टनाद्यकरणम्, (३) तेजस्कायसंयमः=पचनपाचनादिनिमित्तकाऽनलारम्भनिवर्त्तनम्; (४) वायुकायसंयमः=वस्त्रपात्रव्यजनवक्त्रादिसमुत्पन्नवायुजनितवायुकायोपमर्दननिवृत्तिः, तत्र वस्त्रपात्राणामयतनया निक्षेपणादानप्रक्षेपनिपातनादिकारणवशात्, तथा तेषां (वस्त्रपात्राणां) व्यजनपर्णशाखादीनां च विधूननेन वायुकायविराधनं भवति । अनावृतमुखेन संभाषणे च तन्निर्गतोष्णवायुना तद्विराधनं जायते । (५) वनस्पतिकायसंयमः,=तरुलतिकादिहरितकायमात्रस्य संघट्टनादिवर्जनम् । एव (६) द्वीन्द्रियादि- (९) पञ्चेन्द्रियपर्यन्तानां सर्वथाऽनुपमर्दनं तत्तत्संयमः (१०) अजी-

---

(२) अप्कायसयम=सचित्त जलका संघटा (स्पर्श) आदि न करना ।

(३) तेजस्कायसयम=पचन पाचन आदि किसी प्रयोजनके लिए अग्निके संघटा आदिका वर्जन करना ।

(४) वायुकायसंयम=वस्त्र, पात्र, पखा, फूक आदिसे उत्पन्न हुए वायुद्वारा वायुकायकी विराधनाका वर्जन करना ।

वस्त्र, पात्रोको अयतनासे रखनेसे, अयतनासे लेनेसे, फेकनेसे, गिरानेसे, तथा वस्त्र, पात्र, पंखा, आदिको हिलाकर वायुकायकी उदीरणा करनेसे तथा बोलते समय उष्णवायु निकलनेके द्वारा मुखसे वायुकायकी विराधना होती है ।

वनस्पतिकायसंयम—वृक्ष, लता आदि हरित कायके सघटा आदिसे निवृत्त होना ।

(६-७-८-९) द्वीन्द्रियादिसंयम=द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, और पञ्चेन्द्रिय, जीवोका सर्वथा उपमर्दन न करना तत्तत्संयम, अर्थात् द्वीन्द्रियसंयम, त्रीन्द्रियसंयम, चतुरिन्द्रियसयम, पञ्चेन्द्रियसयम कहलाता है ।

---

(२) **અપ્કાયસંયમ**—સચિત્ત જલનું સંઘટન આદિ ન કરવું

(૩) **તેજસ્કાયસંયમ**—રાધવું, રંધાવવું વગેરે કોઈ પ્રયોજનને માટે અગ્નિના સઘટન આદિને વર્જવું

(૪) **વાયુકાયસંયમ**—વસ્ત્ર, પાત્ર, પંખો, ફૂંક ઇત્યાદિથી ઉત્પન્ન થએલા વાયુદ્વારા વાયુકાયની વિરાધના વર્જવી

વસ્ત્ર, પાત્રો ઇત્યાદિને અયતનાપૂર્વક ગ્રહણવાથી, અયતનાપૂર્વક લેવાથી, ફેંકવાથી પાડવાથી, તથા વસ્ત્ર-પાત્ર-પંખો વગેરેને હલાવીને વાયુકાયની ઉદીરણા કરવાથી તથા બોલતી વખતે મુખના ઉના વાયુથી વાયુકાયની વિરાધના થાય છે

(૫) **વનસ્પતિકાયસંયમ**—વૃક્ષ, લતા આદિ હરિતકાયના સંઘટન આદિથી નિવૃત્ત થવું.

(૬-૭-૮-૯) **દ્વીન્દ્રિયાદિસંયમ**—દ્વીન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય, અને પંચેન્દ્રિય જીવોનું સર્વથા ઉપમર્દન ન કરવું, તે તે પ્રકારનો સંયમ, અર્થાત્ દ્વીન્દ્રિયસંયમ, ત્રીન્દ્રિય સંયમ, ચતુરિન્દ્રિયસંયમ અને પંચેન્દ્રિયસંયમ કહેવાય છે

वकायसंयमः=बहुमूल्यवतां वस्त्रपात्रादीनामनुपादानाम्, उपादेयवस्त्रपात्रादीनां सयत्नमुपादानं स्थापनं च, (११) प्रेक्षासंयमः=वसतिवस्त्रपात्रादीनां सयतनं सविधि प्रतिलेखनम्, (१२) उपेक्षासंयमः=संयममार्गे क्लेशमाकलयतोऽसंयममार्गे प्रवर्तमानस्य वा स्वात्मनः परस्य वा असंयमदोपान् संयमगुणांश्चाववोध्य सयमयोगेपु प्रवर्त्तनं संयमसमीपानयनलक्षणं सयमसामीप्यदर्शनमित्यर्थः। यद्वा प्रेक्षासंयमः=सकृत्प्रतिलेखनम्। उपेक्षासयमः=पुनः पुनः प्रतिलेखनम्। (१३) अपहृत्य(परिष्ठापना) सयमः=उच्चारादीनां विधिना समुत्सर्गः परिष्ठापनमित्यर्थः। (१४) प्रमार्जनासंयमः=विधिना वसतिपात्रादेः परिशोधधनम्। (१५-१६-१७) मनोवाक्कायसयमः=अकुशलानां मनोवाक्कायानां निरोधेन कुशलानामुदीरणम्। तत्राऽऽर्त्तरौद्रध्यानपरिहारपूर्वकधर्मशुक्लध्यानप्रवर्त्तनं मनःसयमः।

---

(१०) अजीवकायसयम=बहुत मूल्यवाले वस्त्र पात्र आदिका ग्रहण न करना, तथा कल्पनीय वस्त्र पात्र आदि को यतनाके साथ लेना और रखना।

(११) प्रेक्षासंयम=वसती, वस्त्र, पात्र, पाट, पाटला, आदिका यतनापूर्वक सविधि प्रतिलेखन करना।

(१२) उपेक्षासंयम—सयममार्गमें अनुकूल प्रतिकूल परीषहोसे क्लेशका अनुभव करनेवाले अथवा असंयममें प्रवृत्ति करनेवाले स्वपरकी आत्माको सयमके गुण और असयमके दोष समझाकर फिर संयममार्गमें प्रवृत्त करना। अथवा वस्त्र पात्र आदिके उपभोग करते समय एक बार प्रतिलेखन करना प्रेक्षासयम है, और वारंवार चारो ओरसे प्रतिलेखन करना उपेक्षासयम है।

(१३) अपहृत्य(परिष्ठापना)सयम—यतनापूर्वक उच्चार–प्रस्रवणको त्यागना।

(१४) प्रमार्जनासयम—यतनाके साथ वसती वस्त्र पात्र आदिको पूँजना (प्रमार्जन करना)

---

(१०) **અજીવકાયસંયમ**—મૂલ્યવાન વસ્ત્ર પાત્ર આદિને ગ્રહણ ન કરવા, તથા કલ્પે તેવા જ વસ્ત્ર પાત્ર આદિને યતનાપૂર્વક લેવાં તથા રાખવાં

(૧૧) **પ્રેક્ષાસંયમ**—વસતી, વસ્ત્ર, પાત્ર, પાટ. પાટલા ઈત્યાદિને યતનાપૂર્વક તથા વિધિસર પ્રતિલેખન કરવા

(૧૨) **ઉપેક્ષાસંયમ**—સંયમમાર્ગમા અનુકૂળ-પ્રતિકૂળ પરીષહોથી કલેશનો અનુભવ કરનારા, અથવા અસંયમમાં પ્રવૃત્તિ કરનારા, સ્વપરના આત્માઓને સંયમના ગુણ તથા અસંયમના દોષ સમજાવીને પછી સંયમમાર્ગમાં પ્રવૃત્ત કરવા અથવા વસ્ત્ર-પાત્ર આદિનો ઉપભોગ કરતી વખતે એકવાર પ્રતિલેખન કરવું એ પ્રેક્ષાસંયમ છે, અને વારંવાર ચારે બાજુએથી પ્રતિલેખન કરવું એ ઉપેક્ષાસંયમ છે.

(૧૩) **અપહૃત્ય (પરિષ્ઠાપના) સંયમ**—યતનાપૂર્વક ઉચ્ચાર-પ્રસ્રવણને પરઠવવાં -ત્યજવાં.

(૧૪) **પ્રમાર્જનાસંયમ**—યતનાપૂર્વક વસતી વસ્ત્ર પાત્ર આદિને પૂજવાં (પ્રમાર્જવાં).

(૧૫) **મનઃ સંયમ**—અકુશળ મનનો નિરોધ કરીને કુશળ મનની પ્રવૃત્તિ કરવી,

सावद्यपरिहारपूर्वकनिरवद्यभाषणं वाक्संयमः । अयतनापरिहारेण यतनापुरस्सरकायप्रवर्त्तनं कायसंयमः इति विवेकः ।

प्रकारान्तरेणापि संयमः सप्तदशविधः, यथा–

"पञ्चास्रवाद्विरमणं, पञ्चेन्द्रियनिग्रहः कषायजयः ।
दण्डत्रयविरतिश्चेति संयमः सप्तदशभेदः ॥१॥" इति ।

तत्र पञ्चास्रवविरमणं=पञ्चास्रवाः प्राणातिपातादय एतेभ्यो विरमणं=निवृत्तिः (५), पञ्चेन्द्रियनिग्रहः=तत्तद्विषयेष्वप्रवर्त्तनम्, इष्टानिष्टेषु शब्दादिषु रागद्वेषाकरणमित्यर्थः (१०), कषायजयः=उदयभावमप्राप्नुवतां क्रोधादीनां चतुर्णां निरोधः, उदयभावं प्राप्तानां च तेषां निष्फलीकरणम् (१४) दण्डत्रयविरतिः=दण्डयते=रत्नत्रयैश्वर्यापहारादसारीक्रियते आत्मा यैरिति दण्डास्तेषां त्रयं दण्डत्रयं=मनोदण्ड–वचोदण्ड–कायदण्ड–लक्षणास्त्रयो दण्डा इत्यर्थः, तस्माद्विरतिः=निवृत्तिः (१७) ।

(१५) मनःसंयम–अकुशल मनका निरोध करके कुशल मनकी प्रवृत्ति करना, अर्थात् आर्त्तध्यान और रौद्रध्यानका त्याग करके धर्म और शुक्लध्यानमें मनको लगाना ।

(१६) वचनसंयम–अशुभ (सावद्य) वचनका त्यागकर शुभ (निरवद्य) वचन बोलना ।

(१७) कायसंयम–अयतनाको छोडकर यतना पूर्वक ही कायकी प्रवृत्ति करना ।

संयमके सत्तरह भेद दूसरे प्रकारसे भी होते है, जैसे–प्राणातिपात आदि पांच आस्रवोंका विरमण (५), पांच इन्द्रियोंके इष्ट विषयोंमें राग न करना अनिष्ट विषयोंमें द्वेष न करना (१०) उदयमें न आये हुए क्रोध आदि चार कषायोंका निरोध करना और उदयमें आये हुएको निष्फल करना, जैसे–क्रोधका उदय होने पर क्षमा रखना, मानका उदय होने पर मार्दव भाव रखना, मायाका उदय होने पर सरलता रखना, और लोभकषायका उदय होने पर निर्लोभता धारण करना (१४) ज्ञान आदि गुणोंका अपहरण (नाश) करके आत्माको दरिद्र बनाने वाले मनदण्ड वचनदण्ड, और कायदण्डका त्याग करना (१७),

અર્થાત્ આર્તધ્યાન અને રૌદ્રધ્યાનનો ત્યાગ કરીને ધર્મધ્યાન તથા શુક્લ-ધ્યાનમાં મનને લગાડવું

(૧૬) **વચનસંયમ**—અશુભ વચનનો ત્યાગ કરીને શુભ વચન બોલવાં

(૧૭) **કાયસંયમ**—અયતનાને ત્યજીને યતનાપૂર્વકજ કાયાની પ્રવૃત્તિ કરવી

સંયમના સત્તર ભેદ બીજે પ્રકારે પણ થાય છે જેમકે પ્રાણાતિપાત આદિ પાંચ આસ્રવોનું વિરમણ (૫), પાંચ ઇન્દ્રિયોના ઇષ્ટ વિષયોમાં રાગ ન કરવો, અનિષ્ટ વિષયોમાં દ્વેષ ન કરવો (૧૦), ઉદયમાં ન આવેલા ક્રોધ આદિ ચાર કષાયોનો નિરોધ કરવો અને ઉદયમાં આવેલાને નિષ્ફળ કરવા જેમકે ક્રોધનો ઉદય થતાં ક્ષમા રાખવી, માનનો ઉદય થતાં માર્દવભાવ રાખવો માયાનો ઉદય થતાં સરલતા રાખવી, અને લોભકષાયનો ઉદય થતાં નિર્લોભતા ધારણ કરવી (૧૪) જ્ઞાન આદિ ગુણોનું અપહરણ (નાશ) કરીને આત્માને દરિદ્ર બનાવનારા મનદંડ, વચનદંડ અને કાયદંડનો ત્યાગ કરવો (૧૭)

पूर्वं वायुकायसंयमविषये प्रोक्तं यत्-'अनावृतमुखेन संभाषणे मुखनिर्गतोष्णवायुना वायुकायविराधनं जायते' इति, तत्र केचिदेवं वदन्ति-आत्मा हि भाषणकाले चतुः स्पर्शवतो भाषावर्गणापुद्गलान् गृह्णाति तैर्वायुकायस्य विराधना न संभवति तस्यापि चतुः स्पर्शवत्त्वादिति ।

तेषामपर्याप्तमेतत्कथनम्, वस्तुतस्तु आत्मा पूर्वं चतुःस्पर्शकपुद्गलानेव गृह्णाति किन्तु संभाषणसमये तैजसशरीरं संगृह्यैव भाषापुद्गला निस्सरन्तीति तैजसशरीरसम्बन्धेन तेऽष्ट-स्पर्शवन्तो जायन्ते तस्मादनिवार्या वायुकायविराधना ।

। मुखवस्त्रिकाविचारः ।

ननु मुखोष्णवायुनाऽपि यदि वायुकायविराधनं तर्हि मुनिना कथं वायुकायसंयमः ? इति चेत् न, यतो भगवता श्रीतीर्थङ्करेण मुनीनां वायुकायसंयमार्थं मुखवस्त्रिकाबन्धनं प्रतिपादितम् ।

पहले वायुकायसंयममे कहा है कि-बोलते समय मुखसे निकलनेवाली वायु गर्म होती है और इसी कारण उससे वायुकायके जीवोकी विराधना होती है ।

यहाँ कुछ लोगोका कहना है कि आत्मा चार स्पर्शवाले भाषावर्गणाके पुद्‌गलोको ग्रहण करती है और चार स्पर्शवाले पुद्‌गलो से वायुकायकी विराधना नहीं हो सकती, क्यो कि वायुकायके जीवभी चार स्पर्शवाले होते है । उनका यह कथन अधूरा है । बात वास्तव में यह है कि आत्मा ग्रहण तो चार स्पर्शवाले पुद्‌गलो का ही करती हैं किन्तु भाषण करते समय तैजस शरीरको ग्रहण करके ही भाषा-पुद्‌गल निकलते है । तैजस शरीरके सम्बन्धसे भाषा-पुदगल आठ स्पर्शवाले हो जाते है, और आठ स्पर्शवाले होने से उनसे वायुकाय आदि की विराधना अवश्य होती है ।

मुखवस्त्रिकाविचार.

जब मुखसे निकलनेवाली वायुसे वायुकाय को विराधना होती है, तो मुनि वायुकायका

પૂર્વે વાયુકાય-સંયમમાં જે કહ્યું છે કે—ખુલ્લે મોઢે બોલવાથી મુખમાંથી નીકળતા ગરમ વાયુ વડે વાયુકાયના જીવોની વિરાધના થાય છે ત્યાં કેટલાક લોકોનું કહેવું એવું છે કે આત્મા ચાર સ્પર્શવાળા ભાષાવર્ગણાના પુદ્‌ગલોને ગ્રહણ કરે છે અને ચાર સ્પર્શવાળા પુદ્‌ગલોથી વાયુકાયની વિરાધના થઈ શકતી નથી. કેમકે વાયુકાયના જીવો પણ ચાર સ્પર્શ-વાળા હોય છે એમનું એ કથન અધૂરું છે. વસ્તુતઃ વાત એવી છે કે આત્મા ગ્રહણ તો ચાર સ્પર્શવાળા પુદ્‌ગલોનું જ કરે છે, કિન્તુ બોલતી વખતે તૈજસ શરીરને ગ્રહણ કરીને જ ભાષાપુદ્‌ગલો નીકળે છે તૈજસ શરીરના સંબંધથી ભાષા-પુદ્‌ગલ આઠ સ્પર્શવાળા થઈ જાય છે, અને આઠ સ્પર્શવાળા થવાથી, તેનાથી વાયુકાય આદિની વિરાધના અવશ્ય થાય છે.

મુખવસ્ત્રિકાવિચાર

જો મુખમાંથી નિકળનારા વાયુથી વાયુકાયની વિરાધના થાય છે, તો મુનિ વાયુકાયનો

तद्विना हि श्रीव्याख्याप्रज्ञप्तौ षोडशतमशतकस्य द्वितीयोद्देशे भगवता शक्रेन्द्रस्यापि भाषणं सावद्यत्वेन परिकथितं, तथाहि–

गोयमा ! जाहे णं सक्के देविंदे देवराया सुहुमकायं अणिज्जूहित्ताणं भासं भासति ताहे णं सक्के देविंदे देवराया सावज्जं भासं भासइ । जाहे णं सक्के देविंदे देवराया सुहुमकायं णिज्जूहित्ताणं भासं भासइ ताहे सक्के देविंदे देवराया असावज्जं भासं भासइ' इत्यादि ।

'गौतम ! यदा शक्रो देवेन्द्रो देवराजः सूक्ष्मकायमपोह्य भाषां भाषते तदा शक्रो देवेन्द्रो देवराजः सावद्यां भाषां भाषते । यदा शक्रो देवेन्द्रो देवराजः सूक्ष्मकायं दत्त्वा भाषां भाषते तदा शक्रो देवेन्द्रो देवराजः असावद्यां भाषां भाषते' इति संस्कृतम् ।

अयमाशयः–मुखवस्त्रिकाधारणं विना भाषणे वायुकायादिविराधनस्य दुर्वारतया भाषा सावद्या भवतीति ।

एतद्व्याख्याने अभयदेवसूरिणाऽपि–"जीवसंरक्षणतोऽनवद्या भाषा भवति, अन्या तु सावद्ये" त्युक्तम् । 'सुहुमकायं अणिज्जूहित्ताणं' इत्यस्य हि वस्त्रमपोह्य मुखोपरि वस्त्रमदत्त्वे (मवद्ध्वे) त्यर्थः । यदन्वयव्यतिरेकाभ्यां भाषाया निरवद्यत्वं सावद्यत्वं च

संयम कैसे पाल सकते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर यही है कि वायुकायके संयमके लिए ही तीर्थंकर गणधर भगवान्‌ने मुखवस्त्रिका धारण करना बताया है । श्रीभगवतीसूत्र के सोलहवे शतक के दूसरे उद्देशमें भगवानने विना मुखवस्त्रिकाके इन्द्र महाराजके भाषणको भी सावद्य बताया है, यथा–"गोयमा !" इत्यादि ।

तात्पर्य यह है कि मुखवस्त्रिका धारण किये विना भाषण करने से वायुकायकी विराधना अनिवार्य है, अत एव वह भाषा सावद्य है । इसका व्याख्यान करते हुए अभयदेवसूरि लिखते हैं–"जीव संरक्षणतोऽनवद्या भाषा भवति अन्या तु सावद्या ।"–अर्थात् जीवों की रक्षा होनेसे भाषा निरवद्य होती है और इससे भिन्न (जीवों की घात करने वाली) भाषा सावद्य होती है । मूल पाठके 'सुहुमकायं अणिज्जूहित्ताण' इस पदका अर्थ यह है कि–'मुख पर वस्त्र न धारण

સંયમ કેવી રીતે પાળી શકે છે ? એ પ્રશ્નનો ઉત્તર એ છે કે વાયુકાયના સંયમને માટે જ તીર્થંકર ગણધર ભગવાને મુખવસ્ત્રિકા ધારણ કરવાનું બતાવ્યું છે. શ્રીભગવતી-સૂત્રના સોળમા શતકના બીજા ઉદ્દેશામાં મુખવસ્ત્રિકા વિનાના ઇન્દ્ર મહારાજના ભાષણને પણ ભગવાને સાવદ્ય બતાવ્યું છે :–'ગોયમા' ઇત્યાદિ

તાત્પર્ય એ છે કે મુખવસ્ત્રિકા ધારણ કર્યા વિના ભાષણ કરવાથી વાયુકાયની વિરાધના અનિવાર્ય છે, તેથી કરીને એ ભાષા સાવદ્ય છે એનું વ્યાખ્યાન કરતા અભયદેવ સૂરિ લખે છે કે "જીવસંરક્ષણતોઽનવદ્યા ભાષા ભવતિ અન્યા તુ સાવદ્યા" અર્થાત્ જીવોની રક્ષા થવાથી ભાષા નિરવદ્ય થાય છે અને એથી ભિન્ન (જીવોની ઘાત કરવાવાળી) ભાષા સાવદ્ય હોય છે. મૂળ પાઠના 'સુહુમકાયં અણિજ્જૂહિત્તાણં' પદનો અર્થ એ છે કે 'મોં પર

भवति, भाषाभिव्यक्तिश्च मुखाद्भवतीति मुखे ध्रियमाणं वस्त्रं 'मुखवस्त्रिका' शब्देन शास्त्रे व्यवह्रियते ।

'शक्र' इत्येव वक्तव्ये 'देवेन्द्रो देवराजः' इति विशेषणोक्त्या दिव्यशक्तिमत्त्वेऽपि तस्य मुखवस्त्रिकाधारणाभावे यदि सवद्या भाषा तर्हि औदारिकशरीरधारिणां का वार्त्ते? ति ध्वनितम् ।

सा च मुखवस्त्रिका वायुकायादिप्राणिप्राणसंरक्षणोपयोगि–मुखोपरिबन्धनीयमुख–परिमित–सदोरकाऽष्टपुटवस्त्रखण्डविशेषः । अत्रायं सङ्ग्रहः– –

"वाउकायाऽरक्खट्टं, बज्झई ज सया मुहे ।
सदोरट्टपुडं वत्थं, वुत्ता सा मुहवत्थिया ॥ १ ॥
मुहमाणा जईल्लिंगं, सव्वसंजमकारणं ।
पसत्थभावणावुड्ढी–हेऊ य मुहवत्थिया ॥ २ ॥" इति ।

करके' जहाँ वस्त्र धारण नहीं वहाँ भाषा सावद्य होती है, और जहा वस्त्र धारण होता है वहां भाषा निरवद्य होती है । भाषा मुखसे निकलती है, इसलिए मुख पर धारण किया जानेवाला वस्त्र मुखवस्त्रिका कहलाता है ।

मूलमें 'शक्र' कहनेसे ही इन्द्रका बोध हो सकता था, किन्तु देवेन्द्र और देवराज विशेषणो का देना यह सिद्ध करता है कि जब दिव्य शक्तिमान् होने पर भी मुखवस्त्रिका न धारण करनेसे उसकी भाषा सावद्य होती है तो औदारिक शरीर-धारियो की बात ही क्या है? उनकी भाषा अवश्य ही सावद्य होगी ।

वह मुखवस्त्रिका वायुकाय आदिके प्राणियोकी रक्षाके लिये उपयोगी, मुख पर बांधने योग्य, मुखके बराबर डोरा सहित आठ पुटवाला, वस्त्रका खण्डविशेष है । यहाँ सग्रहगाथाएँ है–वाउ इत्यादि,

वस्त्र न धारणु करीने' ज्यां वस्त्र धारणु नथी, त्यां भाषा सावद्य छे अने ज्या वस्त्र धारणु थाय छे त्यां भाषा निरवद्य छे भाषा मुखमाथी नीकळे छे तेथी मुख पर धारणु करवामा आवनारुं वस्त्र 'मुखवस्त्रिका' कहेवाय छे

मूळमा 'शक्र' कहेवाथी इन्द्रनो बोध थई शकतो हतो, परन्तु देवेन्द्र अने देवराज विशेषणो ए सिद्ध करे छे के जो दिव्य शक्तिमान होवा छतां पणु मुखवस्त्रिका न धारणु करवाथी एनी भाषा सावद्य थाय छे तो औदारिक–शरीरधारीओनी वात ज शी? एनी भाषा पणु जरूर ज सावद्य ज थाय.

ए मुखवस्त्रिका वायुकाय आदिना प्राणीओनी रक्षाने माटे उपयोगी, मुख पर बांधवा योग्य मुखनी बराबर, दोरासहित आठपुटवाळो वस्त्रनो खडविशेष छे. अही सग्रह गाथाओ छे—'वाउ०' इत्यादि

ननु भाषणसमये हस्तेनापि वस्त्रमादाय मुखाच्छादने उक्तजीवरक्षा निर्वहति किमन्यदापि मुखवस्त्रिकाबन्धनेन ? इति चेदुच्यते -

न केवलं भाषणसमय एव जीवविराधनासंभवः, यतो हस्तेन वस्त्रमादाय मुखाच्छादने जीवरक्षा संभवेत्, किन्तु दीर्घश्वासनिःश्वासाभ्यां, जृम्भातः, स्वभावादकस्मादपि च, तथा निद्रावस्थायां मुखव्यादानाच्च तत्सम्भव इति न हस्तेन मुखोपरि वस्त्रं धारयन्तः सम्यग् जीवरक्षां सर्वदा कर्त्तुं प्रभवन्ति, वस्त्रेण मुखमाच्छाद्य प्रसुप्तस्यापि निद्रायां पार्श्वपरिवर्त्तनेन वस्त्रापसरणे सति क उपायस्तदानीं सूक्ष्मव्यापिसम्पातिमजीवसचित्तरजःप्रवेशवारणार्थं दीर्घोष्णनिःश्वासोच्छ्वासजनितवायुकायविराधनापरिहारार्थं च।

तथा चोक्तं योगशास्त्रे तृतीयप्रकाशे सप्ताशीतितमश्लोकस्य स्वोपज्ञविवरणे हेमचन्द्राचार्येण—"मुखवस्त्रमपि सम्पातिमजीवरक्षणादुष्णमुखवातविराध्यमानबाह्यवायुकायजी-

---

यहाँ यह आशङ्का की जा सकती है कि जब बोलनेका काम पडे तब हाथमें कपडा लेकर मुँह ढँक लेनेसे वायुकाय आदि जीवोकी रक्षा हो सकती है, जब बोलते नहीं उस समय भी मुखवस्त्रिका बांध रखनेसे क्या लाभ है ?

इसका उत्तर यह है कि केवल बोलते समय ही मुखसे हवा नहीं निकलती जिससे हाथमें वस्त्र लेकर मुँह ढँक लेनेसे जीवोकी रक्षा हो जाय । किन्तु दीर्घ श्वासोच्छ्वास लेनेसे, जंभाई लेनेसे, स्वभावसे, अकस्मात्, तथा निद्रावस्था में मुख खुला रहनेसे भी हवा निकलती है । अतएव मुख पर हाथसे वस्त्र लगानेसे जीवोकी सम्यक् प्रकार सर्वदा रक्षा नहीं हो सकती । वस्त्रसे मुँह ढाँक कर सोया हुआ व्यक्ति नींद में करवट (पसवाडा) बदलता है तब वस्त्र खिसक जाता है । उस समय सूक्ष्म, व्यापी और सपातिम जीव तथा सचित्त रज आदि मुखमें जानेसे कैसे रुक सकते है ?, तथा दीर्घश्वसोच्छ्वाससे होने वाली वायुकायकी वीराधना का क्योकर परिहार हो सकता है ? इन्हे रोकने का उपाय ही क्या है ? हेमचन्द्राचार्य

અહી એવી આશકા કરી શકાય છે કે જ્યારે બોલવાનુ કામ પડે ત્યારે હાથમા કપડું લઈને મ્હોં ઢાંકી લેવાથી વાયુકાય આદિ જીવોની રક્ષા થઈ શકે છે. જ્યારે બોલતા ન હોઇએ, ત્યારે પણ મુખવસ્ત્રિકા બાંધી રાખવાથી શો લાભ છે ?

એનો ઉત્તર એ છે કે કેવળ બોલતી વખતે જ મુખમાથી હવા નીકળતી નથી કે જેથી હાથમા વસ્ત્ર લઈને મ્હો ઢાંકી લેવાથી જીવોની રક્ષા થઈ જાય. કિન્તુ દીર્ઘ શ્વાસોચ્છવાસ લેવાથી, બગાસુ ખાવાથી, સ્વભાવથી અકસ્માત્ તથા નિદ્રાવસ્થામાં મ્હોં ખુલ્લુ રહેવાથી પણ હવા નીકળે છે. તેથી મ્હોં પર હાથ વડે વસ્ત્ર લગાડલાથી જીવોની સમ્યક્ પ્રકારે સર્વદા રક્ષા થઇ શકતી નથી વસ્ત્રથી મ્હોં ઢાંકીને સૂનેલી વ્યક્તિ ઉંઘમા જ્યારે પાસુ બદલાવે છે ત્યારે વસ્ત્ર ખસી જાય છે તે સમયે સૂક્ષ્મ, વ્યાપિ અને સપાતિમ જીવ તથા સચિત્ત રજ આદિ મુખમા જવાથી કેવી રીતે રોકાઇ શકે ? તથા દીર્ઘ શ્વાસોચ્છવાસથી થનારી વાયુકાયની વિરાધનાનો કેવી રીતે પરિહાર થઇ શકે ? તેને રોકવાનો ઉપાય જ શો છે. ?

वरक्षणान्मुखे धूलिप्रवेशरक्षणाच्चोपयोगी"ति ।

तथा चोत्तराध्ययनसूत्रे तृतीयाध्ययने श्रीलक्ष्मीवल्लभीयायां नवमगाथाव्याख्यायां सप्तमनिह्नवोदाहरणेऽपि—

"तथा सम्पातिमाः सत्त्वाः, सूक्ष्माश्च व्यापिनोऽपरे ।
तेषां रक्षानिमित्तं च, विज्ञेया मुखवस्त्रिका ॥१॥" इति ।

ओघनिर्युक्तौ द्वादशाधिकसप्तशततम (७१२)-गाथाऽप्येवमेव बोधयति-

"संपातिमरयरेणू,-पमज्जणट्ठा वयंति मुहपत्ति ।
नासं मुहं च बंधइ, तीए वसहिं पमज्जंतो ॥७१२॥"
"संपातिमरजोरेणुप्रमार्जनार्थं वदन्ति मुखपत्रीम् ।
नासिकां मुखं च बध्नाति, तया वसतिं प्रमार्जयन् ॥७१२॥

इति संस्कृतम् ।

वसतिं प्रमार्जयता घ्राणे मुखे चैतद्वयेऽपि मुखवस्त्रिका बन्धनीया, अन्यदा मुख एवेत्याशयः, अन्यथा भगवतीसूत्राद्यनेकागमविरोधापत्तिर्दुर्वारा स्यात् ।

कहते हैं मुखवस्त्र,० इत्यादि—

अर्थात् "मुखवस्त्र, सपातिम जीवोकी रक्षा करता है, मुख से निकलने वाले उष्ण वायु द्वारा विराधित होनेवाले बाह्य वायुकायके जीवोकी रक्षा करता है, तथा मुहमें धूली नहीं घुसने देता, इसलिये वह उपयोगी है ।"

उत्तराध्ययन सूत्र के तीसरे उद्देशकी टीकामें कहा है-'तथा सम्पातिमा' इत्यादि,

अर्थात् "सपातिम, सूक्ष्म और व्यापी जीवोकी रक्षा के लिए मुखवस्त्रिका समझनी चाहिये" ॥१॥

ओघनिर्युक्ति ७१२ वीं गाथामें कहा है-"तथा सपातिमाः" इत्यादि ।

अर्थात् "संपातिम जीव, सचित्त रज तथा रेणुकी रक्षा करनेके लिये मुखवस्त्रिका का कथन करते हैं । और जब वसतिकी प्रमार्जना करे तब नाक और मुख दोनो बांधे ।"

હેમચંદ્રાચાર્ય કહે છે કે "મુખવસ્ત્ર૦" ઇત્યાદિ

અર્થાત્-મુખવસ્ત્ર સંપાતિમ જીવોની રક્ષા કરે છે, મુખથી નીકળતા ઉષ્ણ વાયુ દ્વારા વિરાધિત થતા વાયુકાયના જીવોની રક્ષા કરે છે, તથા મુખમા ધૂળ પેસવા દેતું નથી, તેથી તે ઉપયોગી છે

શ્રીઉત્તરાધ્યયન સૂત્રના ત્રીજા ઉદ્દેશની ટીકામા કહ્યુ છે કે 'તથા સમ્પાતિમા' ઇત્યાદિ અર્થાત્-"સંપાતિમ, સૂક્ષ્મ અને વ્યાપી જીવોની રક્ષાને માટે મુખવસ્ત્રિકા સમજવી જોઈએ" (૧)

ઓઘનિર્યુક્તિ ૭૧૨ મી ગાથામા કહ્યુ છે કે—સંપાતિમ૦ ઇત્યાદિ અર્થાત્-"સંપાતિમ જીવ, સચિત્ત રજ, તથા રેણુની રક્ષા કરવાને માટે મુખવસ્ત્રિકાનું કથન કરે છે અને જ્યારે વસતિની પ્રમાર્જના કરે ત્યારે નાક અને મુખ બેઉ બાંધે."

एवमेव प्रवचनसारोद्धारे त्रयोविंशत्यधिकपञ्चशततमगाथायां विद्यते, तथा प्रकरण-रत्नाकरस्यापि तृतीय भागे, उत्तराध्ययनसूत्रस्य कमलसंयमोपाध्यायविरचित-सर्वार्थसिद्धि-टीकायां तृतीयाध्ययनेऽप्येवमेव । एवं विशेषावश्यकबृहद्वृत्तावप्युक्तम् ।

किञ्चाऽऽगमविरोधोऽपि तेषां (अबद्धमुखवस्त्रिकाणां) दुर्वार एव, तथाहि-भगवती सूत्रे द्वितीयशतकस्य प्रथमोद्देशके स्कन्दकानगारस्यानशनकाले 'नमोत्थु णं' पाठविधौ—

"पुरत्थाभिमुहे संपलियंकनिसण्णे करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एव वयासी" इत्याद्युक्तम्,

तत्राञ्जलिबद्धस्य करद्वयस्य शिरसि स्थापने पद्मासनसंस्थः स्कन्दकोऽनगारः कथं तन्मते 'नमोत्थु णं' पाठमनावृतमुखेन व्यधात् । अनावृतमुखेन हि मुनयो न भाषन्ते,

---

अर्थात् अन्य समयमें सिर्फ मुखही बांधे, यह तात्पर्य हुआ, अन्यथा श्रीभगवतीसूत्र आदि अनेक आगमोका विरोध अनिवार्य होगा ।

इसीप्रकार प्रवचनसारोद्धारकी ५२३ वीं गाथामें कहा है । तथा प्रकरणरत्नाकारके तीसरे भागमें, फिर श्रीउत्तराध्ययनसूत्रको कमलसयमोपाध्यायरचित सर्वार्थसिद्धि नामकी तीसरे अध्ययनकी टीकामें भी इसी प्रकार कहाहै और ऐसेही विशेषावश्यक बृहद्वृत्तिमें भी कहा है ।

जो मुख पर मुखवस्त्रिका नहीं बांधते, उनके मतमें आगम-विरोध अनिवार्य है । श्री भगवती-सूत्र २श०, १उ० में स्कन्दक अनगारके अनशन समय में **नमोत्थुणं** के पाठकी विधिमें कहा है- **पुरत्था०** इत्यादि ।

इसमें विचारणी विषय यह है कि अञ्जलि बांध कर दोनों हाथ सिर पर धर कर पद्मासन लगाकर पूर्व दिशाकी ओर मुख करके बैठे हुवे स्कन्दक अनगारने 'नमोत्थुणं' पाठ खुल्ले मुखसे कैसे उच्चारण किया, क्योंकि दोनों हाथ सिर पर रखे हुए थे । और खुले मुखसे

અર્થાત્—અન્ય સમયમા સિર્ફ મુખજ બાંધે, એ તાત્પર્યાર્થ થયો, અગર એવો અર્થ નહીં કરવામાં આવે તો શ્રીભગવતીસૂત્ર આદિ અનેક આગમોનો વિરોધ અનિવાર્ય બનશે.

એવીજ રીતે પ્રવચનસારોદ્ધારની ૫૨૩ મી ગાથામાં કહ્યું છે તથા પ્રકરણરત્નાકરના ત્રીજા ભાગમા, અને શ્રીઉત્તરાધ્યયન સૂત્રનો કમલસયમોપાધ્યાયરચિત સર્વાર્થ-સિદ્ધિ નામની ત્રીજા અધ્યયની ટીકામા પણ એવું જ કહ્યું છે, એવીજ રીતે વિશેષાવશ્યક બૃહદ્વૃત્તિમાં પણ કહ્યું છે.

જેઓ મુખ પર મુખવસ્ત્રિકા બાંધતા નથી, તેમના મતમાં આગમ-વિરોધ અનિવાર્ય છે ભગવતીસૂત્ર ૨ શ ૧ ઉ. માં સ્કંદક અનગારના અનશન સમયમા 'નમોત્થુ ણ' ના પાઠની વિધિમાં કહ્યું છે-"પુરત્થા૦" ઇત્યાદિ.

એમા વિચારણીય વિષય એ છે કે અંજલિ બાંધીને, બેઉ હાથ શિર પર ધારણ કરીને, પદ્માસન, લગાવીને, પૂર્વ દિશા તરફ મુખ કરીને બેઠેલા સ્કંદક અનગારે 'નમોત્થુ ણ' પાઠનું ખુલ્લા મુખે કેવી રીતે ઉચ્ચારણ કર્યું ? કેમકે બેઉ હાથ માથા પર રાખેલા હતા.

तथाविधभाषणस्याऽऽगमप्रतिषिद्धत्वात् ।

किञ्च—अन्तकृद्दशाङ्गषष्ठे वर्गेऽतिमुक्ताख्ये पञ्चदशाध्ययने—

"तए णं अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं एवं वयासी–एह णं भंते ! तुब्भे जाणं अहं तुब्भं भिक्खं दवावेमि त्ति कट्टु भगवं गोयमं अंगुलीए गेण्हइ, गिण्हित्ता जेणेव सए गेहे तेणेव उवागए" इत्यभिहितम् ।

तत्र भिक्षाचर्यां गतस्य गौतमस्वामिनो भिक्षापात्रधारणप्रतिबद्धैकहस्ताङ्गुलित्वं सुतरामेव सिद्धम् । इतरस्य तु करस्याङ्गुलौ अतिमुक्तकुमारेण गृहीतायां सत्यां तस्य भगवतो गौतमस्वामिनो हस्तेन मुखोपरि मुखवस्त्रिकाधारणं नोपपद्यते, सूक्ष्मव्यापि-सम्पातिमजीवसचित्तरजःप्रवेशादिवारणाय तदानीमपि मुखवस्त्रिकाधारणमावश्यकमेव ।

किञ्चावश्यके 'इच्छामि खमासमणो ! वंदिउं' इत्यादि–क्षमाश्रमणदानसूत्रस्य व्याख्यायां तट्टीकाकारेण हरिभद्रसूरिणाऽभिहितम्—

"अयं च प्रकृतसूत्रार्थः–अवग्रहाद्बहिःस्थितो विनेयोऽर्द्धावनतकायः करद्वयगृही-

---

तो मुनि बोलते नहीं, क्योंकि ऐसा बोलना तो शास्त्रसे निषिद्ध है ।

श्रीअन्तकृतदशाङ्गके ६ वर्गमें 'अतिमुक्त' शीर्षक पन्द्रहवे अध्ययनमें कहा है—"तएणं" इत्यादि ।

इस कथनसे भिक्षाचरी (गोचरी) के लिए गये हुवे श्रीगौतमस्वामीने हाथमें भिक्षाका पात्र लिया था, यह बात स्वयं सिद्ध है और दूसरे हाथ की अंगुली अतिमुक्त कुमारने पकड ली थी । इस प्रकार जब दोनों हाथ श्रीगौतमस्वामीके रुंधे हुए थे तो मुखवस्त्रिका नहीं रही होगी ? । किन्तु सूक्ष्म, व्यापी, सपातिम जीव तथा सचित्त रजका प्रवेश रोकनेके लिए मुख वस्त्रिकाकी उस समय भी आवश्यकता थी ।

आवश्यक सूत्रमें "इच्छामि खमासमणो ! वंदिउं" इत्यादि क्षमा श्रमणदान सूत्रकी व्याख्यामें व्याख्याकार हरिभद्रसूरिने भी कहा है "अयं" इत्यादि.

અને ખુલ્લે મુખે તો મુનિ બોલે નહિ, કારણ કે એમ બોલવું શાસ્ત્રથી નિષિદ્ધ છે.

અન્તકૃતદશાંગના ૬ વર્ગમાં 'अतिमुक्त' શીર્ષક પંદરમા અધ્યયનમાં કહ્યું છે 'तए णं' ઇત્યાદિ

આ કથન મુજબ ભિક્ષાચરી (ગોચરી) ને માટે ગએલા શ્રી ગૌતમ સ્વામીએ એક હાથમાં ભિક્ષાનું પાત્ર લીધું હતું એ વાત સ્વયંસિદ્ધ છે અને બીજા હાથની આંગળી અતિમુક્ત કુમારે પકડી લીધી હતી એ પ્રકારે જો શ્રી ગૌતમ સ્વામીના બેઉ હાથ રોકાઈ ગયા હતાં, તો તે વખતે હાથવડે મુખવસ્ત્રિકા મુખ પર કેવી રીતે રાખી હોય ? કિન્તુ સૂક્ષ્મ, વ્યાપી, સંપાતિમ જીવો તથા સચિત્ત રજનો પ્રવેશ રોકવાને માટે એ સમયે પણ મુખવસ્ત્રિકાની આવશ્યકતા હતી

આવશ્યક-સૂત્રમાં 'इच्छामि खमासमणो वंदिउं' ઇત્યાદિ ક્ષમાશ્રમણ દાન સૂત્રની વ્યાખ્યામાં વ્યાખ્યાકાર હરિભદ્રસૂરિએ પણ કહ્યું છે કે—'अयं' ઇત્યાદિ

तरजोहरणो वन्दनायोद्यत एवमाह-इच्छामि-अभिलषामि हे क्षमाश्रमण ! वन्दितुं नमस्कारं कर्तुं भवन्तमिति गम्यते" इत्यादि ।

अत्र 'करद्वयगृहीतरजोहरणः' इति विशेषणं कथयता हरिभद्रसूरिणा 'मुखोपरि मुखवस्त्रिकाबन्धनं भगवदभिप्रेत' मिति प्रकटीकृतम्, अन्यथा क्षमाश्रमणसूत्रोच्चारणकाले करद्वयस्य रजोहरणग्रहणे प्रतिबद्धतया मुखोपरि मुखवस्त्रिकास्थापनस्योपायान्तरासम्भवात् क्षमाश्रमणदानमेव निर्विषयं स्यात् । अनावृतमुखेन तु मुनीनां भाषणमेवाऽऽगमप्रतिषिद्धमिति नात्र केषाञ्चिद्विवादः ।

किञ्च क्षमाश्रवणदाने सम्बोधनशब्दप्रयोगे गुरोः स्वाभिमुखीकरणार्थं सविशेषप्रयत्नपूर्वकोच्चैःस्वरेण सुस्पष्टोच्चारणं विधेयमस्ति न त्वव्यक्तध्वनिनेत्युपायान्तरेण मुखावरणस्य कर्तुमशक्यतयोक्तजीवविराधना परिहर्तुमशक्यैव ।

अन्यच्च तत्रैव क्षमाश्रमणदाने गुरुनिदेशानन्तरम्-"अहोकायं, कायसंफासं" इत्यस्य व्याख्यायां तेनैव हरिभद्रसूरिणा व्याख्यात, तथाहि—

यहाँ "दोनो हाथोंमें रजोहरण लेकर" ऐसा कहने वाले हरिभद्रसूरिने यह प्रगट किया है कि मुख पर मुखवस्त्रिका बांधनेकी भगवानकी आज्ञा है । अन्यथा जब दोनो हाथोंमें रजोहरण ले लिया तब मुख पर मुखवस्त्रिका धारण करनेके लिए अन्य उपाय असभव है । और खुले मुख बोलनेसे क्षमाश्रमण देना ही व्यर्थ हो जायगा। साधुओंको खुले मुख से बोलना शास्त्रविरुद्ध है, इस विषयमें किसीको विवाद नहीं है । दूसरी बात यह है कि क्षमाश्रमणदानमें 'हे क्षमाश्रमण ! ' इस सम्बोधनका प्रयोग किया है । इसलिए गुरुको अपनी ओर अभिमुख करने के लिए विशेषप्रयत्नपूर्वक स्पष्ट उच्चारण करनेकी आवश्यकता है। अव्यक्त भाषासे सबोधन करना सभव नहीं है । इस प्रकार जब दूसरे उपायसे मुख नहीं ढँका जा सका तो उल्लिखित जीवोंकी विराधना अनिवार्य है। इसके सिवाय इसी क्षमाश्रमणदानमें गुरुकी आज्ञाके अनन्तर "अहोकायं कायसफासं" इसका उच्चारण मुखवस्त्रिका

અહીં 'બેઉ હાથમાં રજોહરણ લઈને' એમ કહેતાં હરિભદ્રસૂરિએ એમ પ્રકટ કર્યું છે કે મુખ પર મુખવસ્ત્રિકા બાંધવાની ભગવાનની આજ્ઞા છે. નહિ તો જો બેઉ હાથમા રજોહરણ લઈ લીધો એટલે મુખ પર મુખવસ્ત્રિકા ધારણ કરવાને માટે અન્ય ઉપાય અસંભવિત છે, અને ખુલ્લે મુખે બોલવાથી ક્ષમાશ્રમણ આપવાનું જ વ્યર્થ બની જાય સાધુઓએ ખુલ્લે મુખે બોલવું એ શાસ્ત્રવિરૂદ્ધ છે, એ સબંધમા તો કોઈનો વાધો નથી બીજી વાત એ છે કે ક્ષમાશ્રમણદાનમાં 'હે ક્ષમાશ્રમણ' એવો સંબોધનનો પ્રયોગ કહેલો છે. તેથી કરીને ગુરૂને પોતાની તરફ અભિમુખ કરવાને માટે વિશેષ-પ્રયત્ન-પૂર્વક સ્પષ્ટ ઉચ્ચારણ કરવાની જરૂર છે અવ્યકત ભાષાથી સબોધન કરવાનો સભવ નથી. એ રીતે જો બીજા ઉપાયથી મુખ ન ઢાંકી શકાય તો ઉપર લખ્યા મુજબ જીવોની વિરાધના થયા વિના રહે નહિ એ ઉપરાત ક્ષમાશ્રમણદાનમા ગુરૂની આજ્ઞાની પછી 'अहोकायं कायसंफासं' એવું

लोके हि अनुचितवार्त्ताश्रवणसमये झटिति कर्णपिधानं हस्ताभ्यामेव विधीयमानं दृश्यते तस्मात् साध्व्या हस्ताभ्यां कर्णौ पिधाय प्रतिवचनदाने मुखवस्त्रिकाधारणं बन्धनं विना नोपपद्यते, तदभावे वायुकायादिजीवविराधनाऽवश्यम्भाविनी ।

किञ्च मुखवस्त्रिकाबन्धनमन्तरेण षट्कायविराधना दुष्परिहार्या, तथाहि—मुखे सूक्ष्म-सचित्तरजःप्रवेशेन पृथिवीकायस्य, वृष्ट्यादिवशात्सचित्तजलकणानामाकस्मिकनिपातेन धूमिकायाः प्रवेशेन वाऽप्कायस्य, तथा यत्र कुत्रापि स्फुलिङ्गा उत्पतन्ति तत्राऽऽकस्मिक-सूक्ष्मस्फुलिङ्गनिपातेन तेजस्कायस्य, मुखस्योष्णश्वासनिःश्वासाभ्यां बाह्यवायुकायस्य, 'जत्थ जल तत्थ वणं', इतिप्रामाण्याज्जलनान्तरीयकतया मुखे सचित्तजलबिन्दुनिपातेनैव वनस्पतिकायस्यापि, तथा सम्पातिम-व्यापि-सूक्ष्म-जीवसम्पातेन त्रसकायस्य विराधना भवतीति ।

अनुचित बात सुनते समय लोकमें भी झटपट हाथोंसे कान मून्द लेने पर विना मुखवस्त्रिका बाँधे उत्तर देना युक्त नहीं हो सकता । यदि मुखवस्त्रिका के बाँधे विना उत्तर दिया तो वायुकाय आदि जीवोंकी विराधना अवश्य हुई ।

मुखवस्त्रिकाके बांधे विना षट्कायकी विराधनाका परिहार नहीं हो सकता । मुखमें सूक्ष्म सचित्त रजका प्रवेश होनेसे पृथ्वीकायकी विराधना होती है । बरसा होने पर सचित्त जलकणोंके अकस्मात् ही मुखमें चले जानेसे अथवा मुखमें धूँअर के चले जाने से अप्कायकी विराधना होती है । इधर-उधर उडनेवाली अग्निकी चिनगारी कदाचित् मुखमें घुस जाय तो तेजस्कायकी हिंसा होती है । मुखसे निकलती हुई गर्म सांससे बाह्य वायुकायकी विराधना होती है । 'जहाँ अप्काय है वहाँ वनस्पतिकाय भी होता है" (जत्थ जलं तत्थ वण) इस प्रमाणसे मुखमें सचित्त जल गिरनेसे ही वनस्पति कायकी विराधना होती है । तथा संपातिम, व्यापी और सूक्ष्म जीवोंके घुसनेसे त्रसकायकी भी विराधना होती है ।

અનુચિત વાત સાભળતી વખતે લોકોમા પણ ઝટપટ હાથથી કાન ઢાકવામા આવે એવું જોવામાં આવે છે એવી હાલતમાં બેઉ હાથથી બેઉ કાન ઢાકી લેતાં, મુખવસ્ત્રિકા બાંધ્યા વિના ઉત્તર આપવો યુક્ત નથી હોતો. જો મુખવસ્ત્રિકા બાંધ્યા વિના ઉત્તર આપવામાં આવે તો વાયુકાય આદિ જીવોની વિરાધના અવશ્ય થાય

મુખવસ્ત્રિકા બાધ્યા વિના ષટ્કાયની વિરાધનાનો પરિહાર થઇ શકતો નથી મુખમા સૂક્ષ્મ સચિત્ત રજનો પ્રવેશ થવાથી પૃથ્વીકાયની વિરાધના થાય છે. (૧) વરસાદ પડતાં સચિત્ત જલકણો અકસ્માત્ મુખમા જવાથી અથવા મોઢામા ઝાકળ જવાથી અપ્કાયની વિરાધના થાય છે (૨) અહીં-તહીં ઉડતી અગ્નિની ચિણગારી કદાચ મુખમા પેસી જાય તો તેજસ્કાયની હિસા થાય છે (૩) મુખમાંથી નીકળતા ગરમ શ્વાસથી બાહ્ય વાયુકાયની વિરાધના થાય છે (૪) જ્યા અપ્કાય છે ત્યાં વનસ્પતિ કાયપણ હોય છે' (जत्थ जलं तत्थ वणं) એપ્રમાણથી મુખમા સચિત્ત જલ પડવાથી વનસ્પતિકાયની પણ વિરાધના થાય છે. (૫) તથા સંપાતિમ, વ્યાપી અને સૂક્ષ્મ જીવો પેસી જવાથી ત્રસકાયની પણ વિરાધના થાય છે (૬).

किञ्च मुखवस्त्रिकाबन्धने प्रमादवतः षट्कायविराधना दुर्वारा, यतः प्रतिलेखनकालेऽन्यस्मै तत्प्रत्याख्यानदानेऽपि प्रतिलेखनोपयोगाभावेन प्रमाददोषाविष्टः सन् षट्कायविराधको भवतीति भगवतोत्तराध्ययनसूत्रे प्रतिपादितम्, तथाहि—

"पडिलेहणं कुणंतो, मिहो कहं कुणइ जणवयकहं वा ।
देइ व पच्चक्खाणं वाएइ सयं पडिच्छइ वा ॥ १ ॥
पुढवी-आउक्काए, तेऊ-वाऊ-वणस्सइ-तसाणं ।
पडिलेहणापमत्तो, छण्हंपि विराहओ होइ ॥ १ " इति ।

तर्हि का वार्त्ता ये मुखवस्त्रिकाबन्धनमन्तरेण तिष्ठन्ति तेषां प्रमाददोषस्तज्जनितषट्कायविराधना नापतेत् ? आगमे हि मुखवस्त्रिकाबन्धनपरित्यागे दोषबाहुल्यं प्रदर्शितं तच्च प्रागेवप्रतिपादितम् ।

इत्थं च यथा नौकादौ सूक्ष्मेऽपि सुषिरे सति नद्यादौ तन्निमज्जनान्महती हानिः, अल्पीयस्या अपि हीरककणिकाया भक्षणे प्राणानामेव नाशः वृश्चिकस्येषद्दंशनेऽपि सकलशरीरव्यथनम्, कण्टकाग्रमात्रे बाणाग्रमात्रे च क्वचिदङ्गे निखाते सकलाङ्गपीडा, नेत्रेऽ

मुखवस्त्रिकाके बाँधनेमें जो साधु प्रमादी होता है उसको षट्कायकी विराधना अवश्य लगेगी क्योंकि भगवानने उत्तराध्ययनसूत्रमें कहा है कि-"प्रतिलेखन करनेमें जो साधु प्रमादी है तथा प्रतिलेखनके समय साधु परस्पर बातें करे, जनपद आदिकी कथा करे, पचक्खाण देवे, वांचे अथवा वंचावे तो वह षट्कायका विराधक होता है" तो जो मुखवस्त्रिका बांधे विना रहते है उनको प्रमाद-दोष तथा प्रमादजन्य षट्कायकी विराधनाका दोष कैसे नहीं लगेगा ? अर्थात् जरूर लगेगा । मुखवस्त्रिकाके नहीं बांधनेमें आगमोंमें जो बहुतसे दोष कहे गये है वे तो पहले प्रतिपादित कर ही चुके है ।

इस प्रकार जैसे नावमें छोटासा छेद होनेपर नदी आदिमें डूब जाने से महान् हानि होती है, छोटीसी हीराकी कनीका भक्षण करनेसे प्राणोंका ही नाश होता है, बिच्छूके थोडासा काट खानेसे सारे शरीरमें व्यथा होती है, कांटे या तीरकी जरासी नोंक किसी अंगमें घुस

મુખવસ્ત્રિકા બાંધવામાં જે સાધુ પ્રમાદી હોય છે તેને ષટ્કાયની વિરાધના અવશ્ય લાગે છે કેમકે ભગવાને ઉત્તરાધ્યયનસૂત્રમાં કહ્યું છે કે-"પ્રતિલેખન કરતી વખતે જે સાધુ પરસ્પર વાર્તાલાપ કરે, દેશકથા આદિ કથા કરે, પચ્ચક્ખાણ કરાવે, પોતે વાંચે અથવા વંચાવે તો તે ષટ્કાયનો વિરાધક થાય છે" જો એમ છે તો જે મુખવસ્ત્રિકા બાંધ્યા વગર રહે છે તેને પ્રમાદદોષ અને પ્રમાદજન્ય ષટ્કાયની વિરાધનાનો દોષ કેમ નહીં લાગે ? અર્થાત્ અવશ્ય લાગે. મુખવસ્ત્રિકા નહીં બાંધવામાં આગમોમાં દોષ બતાવ્યા છે તે તો પહેલાં કહી ચૂક્યા છીએ.

એ પ્રકારે જેમ નાવમાં નાનું છિદ્ર પડવાથી તે નદી આદિમાં ડૂબી જવાથી મોટી હાની થાય છે, નાની સરખી હીરા કણીનું ભક્ષણ કરવાથી પ્રાણોનો નાશ થાય છે, વીંછી સહેજ ડંખવાથી આખા શરીરમાં અત્યંત વ્યથા થાય છે, કાંટા યા તીરની નાની અણી

णुतरस्यापि रजःकणस्य निपाते नेत्रोपघातः, नासिकाग्रमात्रे स्वल्पेऽपि देहभागे छिन्ने समग्रशरीरशोभोपघातः, स्वल्पेनाऽप्याधाकर्मादिसिक्थेन मिश्रितेऽन्नादौ पूतिकर्मदोषदूषितमाहारजातं भवति, स्वल्पेऽपि जिनवचनसन्देहे सर्वचारित्रनाशो जायते, तथैव स्वल्पेऽपि काले मुखवस्त्रिकाबन्धनोपेक्षया षट्कायविराधनायां सत्यां चातुर्मासिकप्रायश्चित्ताधिकारितापत्तिः । तथाचोक्तं निशीथसूत्रे द्वादशोदेशकेऽष्टमसूत्रादारभ्य द्वादशसूत्रं यावत्—

"जे भिक्खू० पुढवीकायस्स कलमायमवि समारंभइ, समारंभंतं वा साइज्जइ । एवं जाव वणस्सइकायस्स आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं"

पुनरपि निशीथभाष्ये संयमघातद्वारे महिकाद्यप्काययतनार्थं प्रोक्तम्—

"वासत्ताणावरिया णिक्कारणे ठंति, कज्जे जतणाए ।
हत्थऽच्छिंगुलिसण्णा, पोत्तंतरियावभासंति ॥१॥ इति ।
(नि. भाष्य उ. १९ गा. ५७)

छाया—वर्षात्राणावृता निष्कारणे तिष्ठन्ति, कार्ये यतनया ।
हस्ताक्ष्यङ्गुलीसञ्ज्ञा, पोतान्त एव भाषन्ते ॥१॥' इति ।

चूर्णिकारेण "पोत्तंतरियावभासंति" इति पदस्य चूर्णौ हस्तभ्रुवादिसङ्केतेन यदि

जाय तो सब अंगमें भयंकर पीडा होने लगती है, आँखमें छोटीसी किरकिली घुस जानेसे आँखमें तकलीफ होती है, जरासी नाक कट जानेसे सब शरीरकी सुन्दरता नष्ट हो जाती है, आधाकर्म आदि आहारका एक भी सीथ मील जानेसे सब आहार पूतिकर्मदोष से दूषित हो जाता है'जिनवचनोंमें तनिक भी सन्देह करनेसे समस्त चारित्र का नाश हो जाता है, वैसे ही थोडी देर भी मुखवस्त्रिका बांधनेकी उपेक्षा करनेसे षट्कायकी विराधना होती है, अतः चातुर्मासिक प्रयश्चित्त लगता है । निशीथसूत्रके बारहवे उद्देशके आठवे सूत्रसे बारहवें सूत्रतकमें कहा है—"जे भिक्खू०', इत्यादि, फिरभी निशीथ सूत्रके भष्यमें संयमघात नामक द्वारके अन्दर, धूँअर आदि अप्कायकी यतनाके लिए कहा है 'वासत्ताणा०' इत्यादि,

इस गाथामें आये हुए 'पोत्तंतरियावभासति' इस पदकी चूर्णि करते समय चूर्णिकारने

અંગમા પેસી જવાથી અંગમાં પીડા થવા લાગે છે, આંખમા નાનુ સરખું કણું પેસી જવાથી આંખમાં તકલીફ થાય છે, નાનું સરખું નાક કપાઈ જવાથી આખા શરીરની સુદરતા નષ્ટ થઈ જાય છે, આધાકર્મ આદિ આહારનુ એક કણ પણ મળી જવાથી બધો આહાર પૂતિકર્મ દોષથી દૂષિત થઈ જાય છે જિનવચનોમા લગાર પણ સદેહ કરવાથી સમસ્ત ચારિત્રનો નાશ થઈ જાય છે, તેમ થોડો વખત પણ મુખવસ્ત્રિકા બાંધવાની ઉપેક્ષા કરવાથી ષટ્કાયની વિરાધના થાય છે તેથી ચાતુર્માસિક પ્રાયશ્ચિત લાગે છે, નિશીથસૂત્રના બારમા ઉદ્દેશાના આઠમા સૂત્રથી બારમા સૂત્ર સુધીમા કહ્યુ છે કે 'જે ભિક્ખૂ૦' ઇત્યાદિ,

વળી નિશીથસૂત્રના ભાષ્યમા 'સંયમઘાત' નામના દ્વારમાં ઝાકળ આદિ અપ્કાયની યતના કરતી વખતે કહ્યું છે કે 'વાસત્તાણા૦' ઇત્યાદિ,

साधवो नावगच्छन्ति तदाऽवश्यवक्तव्ये सति "मुहपोत्तियअंतरिया जयणाए भासंति" इति प्रतिपादितम् ।

अनेन स्पष्टं सिध्यति–यत् मुखवस्त्रिका साधूनां मुखे पूर्वं बद्धाऽऽसीदिति तेनैव कारणेन 'मुखपोतान्त एव यतनया मन्दं–मन्दं भाषन्ते' इत्युक्तम् ।

किञ्च विधिप्रपाग्रन्थे चारित्रातिचारप्रायश्चित्ताधिकारे मुखवस्त्रिकामन्तरेण भाषणनिषेधः प्रतिपादितः ।

किञ्च पूर्वोक्तदिशा षट्कायविराधकस्य तद्विराधनावर्जनपरकभगवदाज्ञाभङ्गदोषप्रसङ्गः । तथा च सति अविधिविधानं, ततो मिथ्यात्वं, तस्माच्चारित्रविराधना ततश्च दीर्घसंसारित्वं प्रपद्येत, अत एवाऽऽज्ञाभङ्गकर्त्तुर्गुरुतरप्रायश्चित्तं प्रदर्शितम् । उक्तं हि बृहत्कल्पभाष्ये–

"अवराहे लहुगयरो, आणाभंगंमि गुरुतरो किहणु ? ।
आणाए चिय चरणं, तब्भंगे किं न भग्गं तु ? ॥१॥" इति ।

कहा है–अगर साधु हाथ आँख आदिके इशारेसे नहीं समझ सके और बोलना ही जरूरी समझे तो 'मुखवस्त्रिकाके अंदर ही यतनासे (धीरे–धीरे) बोले' इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि साधुओंके मुख पर मुखवस्त्रिका पहले बांधी हुई थीं इसी कारण को लेकर ही मुखस्त्रिकाके अदर ही यतनासे (धीरे धीरे) बोले' ऐसा कहा हैं।

फिर 'विधिप्रपा' नामके ग्रन्थमें भी चारित्रके अतिचारोका प्रायश्चित्त कहते समय मुखवस्त्रिकाके विना बोलनेका स्पष्ट निषेध किया गया है।

तथा–पूर्वोक्त रीतिसे षट्कायकी विराधना करनेवालेको भगवान्की "षट्कायकी विराधनाका त्याग करना" इस आज्ञाके भंग करनेका दोष लगता है, यह दोष लगनेसे अविधिका विधान, अविधिका विधान करनेसे मिथ्यात्व, मिथ्यत्वसे चारित्रकी विराधना और चारित्रकी विराधनासे दीर्घसंसारित्वकी प्राप्ति होती है। इसीसे आज्ञाभंगका गुरुत्तर प्रायश्चित्त लगता है।

बृहत्कल्पभाष्यमें कहा है–"अवराहे" इत्यादि,

આથી સિદ્ધ થાય છે કે સાધુઓના મુખ પર મુખવસ્ત્રિકા બાંધેલી હતી આ કારણને લીધે જ 'પોત્તંતરિયાવભાસંતિ' આ પદની ચૂર્ણિ કરતા ચૂર્ણિકારે કહ્યું છે કે—"સાધુ ઈશારાથી ન સમજે અને બોલવું જ પડે તો તો મુખવસ્ત્રિકાની અંદર જ યતનાથી બોલે"

વળી 'વિધિપ્રપા' નામના ગ્રન્થમા પણ ચારિત્રના અતિચારોની શુદ્ધિના પ્રકરણમાં મુખવસ્ત્રિકા વગર બોલવાનો નિષેધ કર્યો છે।

તથા–પૂર્વોક્ત રીતથી ષટ્કાયની વિરાધના કરનારને ભગવાનની "ષટ્કાયની વિરાધનાનો ત્યાગ કરવો" આ આજ્ઞાનો ભંગ કરવાનો દોષ લાગે છે. આ દોષ લાગવાથી અવિધિનું વિધાન, અવિધિ-વિધાનથી મિથ્યાત્વ, મિથ્યાત્વથી ચારિત્રની વિરાધના અને ચારિત્રની વિરાધનાથી દીર્ઘસંસારિત્વની પ્રાપ્તિ થાય છે. તેથી આજ્ઞાભંગનું ગુરુતર પ્રાયશ્ચિત્ત આવે છે.

બૃહત્કલ્પભાષ્યમાં કહ્યું છે—"અવરાહે" ઇત્યાદિ.

सर्वमेव चारित्रं भगवदाज्ञायामेव व्यवस्थितम्, अतस्तद्भङ्गे मूलोत्तरगुणादिकं वस्तु किं न भग्नम्? अपि तु सर्वमपि भग्नमिति हेतोस्तत्र गुरुतरप्रायश्चित्तं युक्तमेवेति भावः। तस्मात्-मुखोपरि मुखवस्त्रिकाबन्धनं सकलजैनागमप्रतिपाद्यमिति सिद्धम्। एवं च भगवतीसूत्रे 'सुहुमकायं अणिज्जूहित्ताणं' इति वाक्यस्य सूक्ष्मकायं=मुखवस्त्रिकाम् 'अणिज्जूहित्ता'=अपोह्य परित्यज्य=अवद्ध्वेत्यर्थो बोध्यः, एवमन्यत्राऽप्यूहनीयम्।

यत्तु आचाराङ्गसूत्रे उच्छ्वासादिकाले मुखपिधानोपदेशेन मुखवस्त्रिका करेणैव धारणीया न तु दोरकेणेति तत्तत्समये एव मुखवस्त्रिकया घ्राणमुखादिपिधानं विधेयमिति च प्रतीयते, दोरकावलम्बने मुखवस्त्रिकायाः सदा धारणीयत्वे तु पुनर्मुखपिधानोपदेशो व्यर्थः स्यादिति वदन्ति तदज्ञानमूलम्। आचाराङ्ग-सूत्रपाठो हि तावदेवं विद्यते—

"से भिक्खू वा २ उस्सासमाणे वा नीसासमाणे वा कासमाणे वा छीयमाणे वा

समस्त चारित्र भागवान्‌की आज्ञामें ही है। भगवान्‌की आज्ञाका भग होने पर मूलगुण उत्तरगुण आदि सभी नष्ट हो जाते है। अत. आज्ञाभगमें गुरुतर प्रायश्चित्त देना युक्त ही है। इसलिये यह सिद्ध हुआ कि मुख पर मुखवस्त्रिका बाधना सब जैनशास्त्रोंमें प्रतिपादन किया गया है। इस प्रकार भगवती सूत्रके 'सुहुमकायं अणिज्जूहित्ताणं' वाक्यका अर्थ यह समझना चाहिये कि 'मुखवस्त्रिका त्याग करके अर्थात् न बांध करके' ऐसा सब जगह समझना चाहिए।

प्रश्न—आचाराङ्गसूत्रमें उच्छ्वास आदि लेते समय मुख ढँकने का उपदेश दिया है। इससे यह प्रतीत होता है कि मुखवस्त्रिका हाथमें ही रखनी चाहिए, डोरेसे नहीं बांधनी चाहिए, अमुक-अमुक समय पर ही जब उच्छ्वास आदि आवे तब ही नाक या मुख ढँक लेना चाहिए। डोरेसे मुखवस्त्रिका धारण करना उचित हो तो पुन' मुख ढकनेका उपदेश व्यर्थ हो जायगा।

उत्तर—ऐसा प्रश्न करना अज्ञानता है। आचाराङ्ग सूत्रका पाठ ऐसा है।

સમસ્ત ચારિત્ર ભગવાન્‌ની આજ્ઞામાં જ રહેલુ છે. ભગવાન્‌ની આજ્ઞાનો ભંગ થવાથી મૂળગુણ ઉત્તર ગુણ આદિ બધું નષ્ટ થઇ જાય છે. તેથી આજ્ઞાભગમાં ગુરૂતર પ્રાયશ્ચિત્ત આવે છે. એ રીતે સિદ્ધ થયુ કે મુખ પર મુખવસ્ત્રિકા બાંધવી એવું બધાં જૈનશાસ્ત્રોમાં પ્રતિપાદન કરેલુ છે એટલા માટે ભગવતી-સૂત્રના 'सुहुमकायं अणिज्जूहित्ताण' એ વાકયનો અર્થ એમ સમજવો જોઈએ કે 'મુખવસ્ત્રિકાનો ત્યાગ કરીને અર્થાત્ ન બાંધીને' એજ પ્રમાણે બધી જગ્યાએ સમજવુ.

પ્રશ્ન—આચારાંગ-સૂત્રમા ઉચ્છ્વાસ આદિ લેતી વખતે મુખ ઢાકવાનો ઉપદેશ આપ્યો છે. એથી એમ પ્રતીત થાય છે કે મુખવસ્ત્રિકા હાથમા જ રાખવી જોઈએ, દોરાથી બાંધવી જોઈએ નહિ. અમુક અમુક સમયે જ જ્યારે ઉચ્છ્વાસ આદિ આવે ત્યારે જ નાક યા મુખ ઢાંકી લેવું જોઇએ, દોરાથી મુખવસ્ત્રિકા ધારણ કરવી ઉચિત હોય તો પછી પુનઃ મુખ ઢાંકવાનો ઉપદેશ વ્યર્થ થઇ જશે.

ઉત્તર—એવો પ્રશ્ન કરવો અજ્ઞાનતા છે. આચારાંગ-સૂત્રનો પાઠ એવો છે—

जंभायमाणे वा उड्डोए वा वायनिसग्गं वा करेमाणे पुव्वामेव आसयं वा पोसयं वा पाणिणा परिपेहित्ता तओ संजयामेव ऊससिज्ज वा जाव वायनिसग्गं वा करेज्जा" (सूत्र १०९) इति ।

छाया—"स भिक्षुर्वा उच्छ्वसन् वा, निःश्वसन् वा, कासमानः (कासं कुर्वन्) वा क्षुवन् (क्षुतं कुर्वन्) वा, 'जम्भमाणो वा', उद्गिरन् वा, (अधिष्ठानेन) वातनिसर्गं वा कुर्वन् पूर्वमेव आस्यकं वा पोषकं वा पाणिना परिपिधाय ततः संयत एव उच्छ्वसेद् वा यावद् वातनिसर्गं वा कुर्यात् " इति संस्कृतम् ।

अत्र "आसयं" इति लक्षणावृत्त्या घ्राणस्यापि बोधकम्, "उस्सासमाणे वा नीसासमाणे वा छीयमाणे वा" इति पदानि लक्षणायां तात्पर्यग्राहकाणि । 'आसयं' इत्यस्य मुखमात्रपरत्वे तु पाणिना तत्परिविधानेऽपि घ्राणजन्योच्छ्वासादियतनाया अनुपपत्तेः ।

अनेन सूत्रेण 'उच्छ्वासादिकाले आस्यकपोषकपरिपिधानं पाणिना विधेय मिति बोधयतो भगवतस्तात्पर्यं मुखवस्त्रिकया पिधाने कल्पयन्तः पण्डिताभिमानिन एवमनुयोक्तव्याः—'पाणि' शब्दस्य मुखवस्त्रिकारूपोऽर्थः किं वाच्यो लक्ष्यो व्यङ्ग्यो वा ? । नाद्यः,

---

"भिक्षु श्वासोउच्छ्वास लेते समय, खांसते समय, छींकते समय, जभाते समय, डकारते समय तथा अधोवायुका त्याग करते समय पहले मुख अथवा मलद्वारको हाथसे ढँककर फिर यतनापूर्वक श्वास लेवे यावत् अधोवायुका त्याग करे"।

यहाँ 'आसयं (मुख) पद लक्षणाके द्वारा घ्राणकाभी बोध है। 'उस्सासमाणे वा निस्सासमाणे वा छीयमाणे वा' ये पद लक्षणामें तात्पर्यके ग्राही है। 'आसयं' पदसे केवल मुखका अर्थ लिया जाय तो हाथसे मुख ढँक लेनेपर भी नाकसे निकलनेवाले उच्छ्वास आदिकी यतना नहीं हो सकती इस सूत्रसे उच्छ्वास लेते समय आस्यक और पोषक (मलद्वार) को हाथसे ढँक लेना चाहिये,' ऐसा भगवान् बताते है, फिर भी नामधारी पंडित 'मुखवस्त्रिकासे ढँकना चाहिए' ऐसा अर्थ निकालते है। उनसे हम पूछते है कि तुम हाथका अर्थ मुखवस्त्रिका करते हो सो वह अर्थ वाच्य है, या लक्ष्य

"ભિક્ષુ શ્વાસોચ્છવાસ લેતી વખતે, ઉધરસ ખાતી વખતે છીંકતી વખતે, બગાસું ખાતી વખતે, ઓડકાર ખાતી વખતે તથા અધોવાયુનો ત્યાગ કરતી વખતે, પહેલાં મુખ અથવા મળદ્વારને હાથથી ઢાકીને પછી યતના પૂર્વક શ્વાસ યાવત્ અધોવાયુનો ત્યાગ કરે"

અહીં 'आसयं' (મુખ) શબ્દ લક્ષણાદ્વારા ઘ્રાણનો પણ બોધક છે 'उस्सासमाणे वा निस्सासमाणे वा छीयमाणे वा' એ પદો લક્ષણામાં તાત્પર્યનાં ગ્રાહી છે આસય શબ્દથી કેવળ મુખનો અર્થ લેવામાં આવે તો હાથથી મુખ ઢાકી લેવા છતા પણ નાકથી નીકળનાર ઉચ્છ્વાસ આદિની યતના થઇ શકતી નથી

આ સૂત્રથી ઉચ્છ્વાસ લેતી વખતે આસ્યક અને પોષક (મલદ્વાર) ને હાથથી ઢાંકી લેવું જોઇએ એમ ભગવાન્ બતાવે છે, છતા પણ નામધારી પંડિત મુખવસ્ત્રિકાથી ઢાકવું જોઇએ' એવો અર્થ કાઢે છે એમને અમે પૂછીએ છીએ કે તમે હાથનો અર્થ મુખવસ્ત્રિકા કરો છો, તો એ અર્થ વાચ્ય છે, યા લક્ષ્ય છે કે વ્યંગ્ય છે ? પહેલો પક્ષ તો બરાબર નથી

अभिधाशक्तिग्राहकव्याकरणकोशादिभिरुक्तार्थालाभात्, 'पञ्चशाखः शयः पाणि'-रित्यमर-कोशव्याख्यायां पञ्च शाखा इवाङ्गुलयोऽस्येति पञ्चशाखः शेतेऽस्मिन् सर्वमिति शयः, ('पुंसि' ३।३।१२१।) घः। पणायन्त्यनेनेति पाणिः 'पण व्यवहारे स्तुतौ च' इत्य-स्मात् 'अशिपणाय्योरुडायलुकौ च' (उ० ४।१३३) इतीण्, 'आयप्रत्ययस्य लुक् चे' -ति व्युत्पादनेन तत्र करवाचकत्वस्यैव लाभाच्च।

नापि द्वितीयः, मुख्यार्थकरकरणकपिधानतात्पर्यस्य निर्बाधेन तात्पर्यानुपपत्तिरु पलक्षणाबीजस्याभावात्।

नापि तृतीयः, मुख्यार्थतात्पर्यकत्वेनैव करेण पायुपिधानस्यापरकरेण मुखघ्राण-पिधानस्य चोपपत्त्या व्यङ्ग्यार्थमुखवस्त्रिकातात्पर्यकत्वकल्पनाया अनावश्यकत्वात्, अनौ-

---

या व्यङ्ग्य है?। पहला पक्ष तो ठीक नहीं है, क्योंकि अभिधाशक्तिके ग्राहक व्याकरण कोप आदिकोमें यह अर्थ नहीं मिलता। अमरकोषमें हाथके तीन नाम दिये है-(१) पञ्चशाख (२) शय और (३) पानी। व्याख्यामें बताया है कि शाखा जैसे पाँच अगुलियाँ होती है इसलिए इसे पञ्चशाख कहते है उसमें सब वस्तुएँ सोती (रखी जाती) है इसलिए शय कहते है। उससे सब लेनदेन आदि व्यवहार होते है अतः उसे पाणि कहते है। "अशिपणाय्यो रुडायलुकौ च" (उ०-४।१३३) इससूत्रसे 'इण्' होता है और 'आय' प्रत्ययका लुक होता है। ऐसी व्युत्पत्ति करनेसे 'कर' का वाचक ही होता है। दूसरा भी पक्ष (लक्ष्य अर्थ वहाँ माना जाता है जहाँ मुख्य (शा-ब्दिक) अर्थ लेनेमें किसी प्रकारकी बाधा आती हो। यहाँ पर 'हाथसे ढँक कर' ऐसा अर्थ करने में कोई बाधा नहीं आती, इसलिए लक्षणा नहीं हो सकती, अतः यह लक्ष्य अर्थ भी नहीं है।

तीसरा (व्यङ्ग्य अर्थ मानना) भी पक्ष बाधित है। जब प्रधान अर्थ लेनेसे एक हाथसे मल द्वार ढँकना और दूसरे हाथसे नाक-मुखका ढँकना युक्त है तो व्यङ्ग्य अर्थ (मुखवस्त्रिकाके तात्पर्यकी

કારણ કે અભિધા શક્તિના ગ્રાહક વ્યાકરણ કોષ આદિમાં એ અર્થ નથી મળતો. અમર-કોષમાં હાથનાં ત્રણ નામ આપ્યાં છે. (૧) પંચશાખ, (૨) શય અને (૩) પાણિ તેની વ્યાખ્યામા બતાવ્યુ છે કે શાખા જેવી પાંચ આંગળીઓ હોય છે તેથી તેને 'પંચશાખ' કહે છે. એમાં બધી વસ્તુઓ સૂએ (રાખવામાં આવે) છે તેથી તેને 'શય' કહે છે. તે વડે બધો લેણદેણ વગેરેનો વહેવાર થાય છે તેથી એને 'પાણિ' કહે છે અશિપણાય્યો રુડાયલુકૌ ચ (ઉ૦ ૪ ૧૩૩) એ સૂત્રથી इण् થાય છે અને आय પ્રત્યયનો लुक् થાય છે. એવી વ્યુત્પત્તિ કરવાથી कर નો વાચક જ બને છે.

બીજો પક્ષ પણ (લક્ષ્ય અર્થ માનવો) બરાબર નથી. લક્ષ્ય અર્થ ત્યાં માનવામાં આવે છે કે જ્યાં મુખ્ય (શાબ્દિક) અર્થ લેવામાં કોઈ પ્રકારની બાધા આવે. અહીં 'હાથથી ઢાંકીને' એવો અર્થ કરવામા કોઈ બાધા આવતી નથી, તેથી લક્ષણા થઈ શકતી નથી, એટલે એ લક્ષ્ય અર્થ પણ નથી.

ત્રીજો પક્ષ (વ્યંગ્ય અર્થ માનવો) પણ બાધિત છે. જ્યારે પ્રધાન અર્થ લેવાથી એક

चित्याच्च । वायुनिसर्गानन्तरं क्षुते जायमाने पायुनिर्गतवायुसंसृष्टया मुखवस्त्रिकया मुखघ्राणपिधानस्यानौचित्यमापामरप्रतीतमेव ।

पाणिशब्देऽजहल्लक्षणावृत्तिं स्वीकृत्य पाणिस्थितमुखवस्त्रिकये' त्यर्थकल्पनेऽपि नोक्तानौचित्यदोषनिस्तारः । अपिच—आस्यक-पोपकैतदुभयपरिपिधाने पाणिनेत्येकमेव साधनमुक्तं, तत्र पाणिस्थितमुखवस्त्रिकायेर्थाङ्गीकारे दीर्घोच्छ्वासादीनामधोवायुनिसर्गस्य च यौगपद्ये सति कथमेकयैव पाणिस्थितया मुखवस्त्रिकया युगपदेव घ्राणं मुखं पायुश्चाऽऽवरीतुं शक्यत इति "पाणिणा परिपेहित्ता" इति भगवद्वाक्यस्यानुपपत्तिः । न च 'एकपाणिस्थितया मुखवस्त्रिकयाऽऽस्यकम्, अपरपाणिस्थितया पायुवस्त्रिकया पोपकं परिपिधाये' त्यर्थाङ्गीकारेण समाधाने सुशकमिति वाच्यम्, सकृदुच्चरितन्यायविरोधेन तादृशार्थकल्पनायाः कर्त्तुमशक्यत्वात् ।

कल्पना करना) अनावश्यक और अनुचित है। अधोवायु निकलते ही किसीको छींक आने लगे तो उसी अधोवायुवासित मुखवस्त्रिकासे 'मुख' और नाक मूंदना बिलकुल अनुचित है और इस अनौचित्यको हरेक समझ सकता है।

यदि 'पाणि' शब्दमें अजहल्लक्षणा वृत्ति मानकर 'पाणि' (हाथ) से पाणिमें स्थित मुखवस्त्रिका अर्थ लोगे तो भी अनौचित्य दोष नहीं हट सकता। दूसरी बात यह है कि मुख और मलद्वार ढँकनेका पाणिरूप एक ही साधन बताया है। यदि इसका अर्थ मुखवस्त्रिका किया जावे तो जब एक ही साथ अधोवायु और दीर्घ उच्छ्वास आवेगा तब एक ही मुखवस्त्रिका मलद्वार पर लगाई जावेगी या मुँहपर ? और यदि साथ ही छींक भी आयगी तो वही नाकमें कैसे लगाई जावेगी ? क्योंकि एक मुखवस्त्रिकासे एकसाथ ही सब द्वार नहीं ढाँके जा सकते। अत. 'पाणिणा परिपेहित्ता' यह भगवानूका वचन ठीक नहीं बैठेगा । यदि ऐसा समाधान करना चाहो कि एक हाथ-

---

હાથથી મળદ્વાર ઢાંકવું અને બીજા હાથે નાક-મુખને ઢાંકવુ યુકત છે તો વ્યગ્યાર્થ (મુખવસ્ત્રિકાના તાત્પર્યની કલ્પના કરવી) અનાવશ્યક અને અનુચિત છે અધોવાયુ નીકળતી વખતે જ કોઈને છીંક આવવા લાગે તો એ અધોવાયુથી વાસિત મુખવસ્ત્રિકાથી મુખ અને નાક ઢાંકવાં એ બિલકુલ અનુચિત છે. અને એ અનૌચિત્યને સૌ કોઈ સમજી શકે છે

જો 'પાણિ' શબ્દમાં અજહલ્લક્ષણા વૃત્તિ માનીને, 'પાણિ' (હાથ) થી પાણિમા સ્થિત મુખવસ્ત્રિકાનો અર્થ લેશો તોપણ અનૌચિત્ય દોષ દૂર થઈ શકતો નથી બીજી વાત એ છે કે મુખ અને મળદ્વાર ઢાકવાનુ પાણિરૂપ એકજ સાધન બતાવ્યુ છે. જો એનો અર્થ મુખ વસ્ત્રિકા કરવામા આવે તો જ્યારે એકી સાથે અધોવાયુ અને દીર્ઘ ઉચ્છ્વાસ આવશે ત્યારે એક જ મુખવસ્ત્રિકા મળદ્વાર પર લગાડવામાં આવશે કે મુખ પર ? અને જો સાથે જ છીંક પણ આવશે તો તે નાક પર કેવી રીતે લગાડવામા આવશે ? કારણ કે એક મુખવસ્ત્રિકાથી એકી સાથે બધા દ્વાર ઢાંકી શકાતા નથી. તેથી 'પાણિણા પરિપેહિત્તા' એવું ભગવાનનું વચન બરાબર બંધ બેસશે નહિ. જો એવું સમાધાન કરવા ઇચ્છો કે એક

किञ्च तेषामयौगपद्येऽपि पायुपिधायकवस्त्रखण्डे मुखवस्त्रिकात्वकल्पनं परमभ्रान्तिमूलम्, मुखपाय्वोरैक्याभावात् । अनावृतस्यैव मुखादेवरावरणे तात्पर्यसत्त्वे परिपिधायेत्यत्र परीत्युपसर्गप्रयोगस्याऽऽनर्थक्यापत्तिश्च, अपिपूर्वकादपि ल्यप्प्रत्ययसिद्धेः ।

किञ्च–'आवृतस्य पुनरावरणं व्यर्थमेवेति हेतोरनावृतस्यैवाऽऽवरणार्थमयमुपदेशः' इति वदतस्तव हस्तवस्त्रिकाधारकस्य मते पोषकस्य परिधानवसनानावरणीयतापत्तिः, अन्यथा परिधानवस्त्रावृतपोषकावरणोपदेशस्य वैयर्थ्यापत्तिरित्युभयथाऽपि न दोषनिस्तारः । तस्मात्–"आसयं वा पोसयं वा पाणिणा परिपेहित्ता" इति भगवद्वाक्यस्य 'मुखवस्त्रिका करेणैव धारणीया नतु दोरकेणे'–त्यर्थकल्पनं साहसमात्रम् ।

की मुँहपत्तीसे मुँह और दूसरे हाथके पायुवस्त्रसे मलद्वार ढक लेवेंगे, सो ठीक नहीं है। 'सकृदुच्चरितन्याय' से ऐसी कल्पना करना शक्य नहीं है।

अधोवायु और छींक आदि एक साथ न भी हो तो भी अधोवायुकी यतना करनेवाले वस्त्रको मुखवस्त्रिका कहना भारी भूल है, क्योंकि मुख और मलद्वार एक चीज नहीं है–दोनों अलग अलग है। यदि खुले मुख बोलनेका तात्पर्य हो तो 'परिपेहित्ता' पदमें 'परि' उपसर्ग व्यर्थ हो जायगा, क्योंकि 'अपि' उपसर्गपूर्वक धातुसे भी ल्यप् प्रत्यय होता है।

ढँके हुएको फिर ढाँकना वृथा ही है, वगैर ढँके हुए को ढँकनेके लिए यह उपदेश दिया है।'–यदि हाथमें मुँहपत्ति रखने वाले ऐसा कहेगे तो यह सिद्ध हो जायगा कि उनका मलद्वार सदा अनावृत (उघडा हुआ) रहता है। नहीं तो आवृतको फिर आवरण करनेका उपदेश व्यर्थ हो जायगा। अतएव" आसयं वा पोसयं वा पाणिणा परिपेहित्ता " इस भगवद्वाक्य का यह अर्थ निकालना कि- मुखवस्त्रिका हाथ ही में रखनी चाहिए डोरेसे मुख पर नहीं बांधना चाहिए ऐसी कल्पना करना साहसमात्र है।

હાથની મુહપત્તિથી મુખ અને બીજા હાથના પાયુવસ્ત્રથી મળદ્વાર ઢાકી લેવાશે, તો તે બરાબર નથી, કારણુ કે सकृदुच्चरितन्यायથી એવી કલ્પના કરવી શકય નથી.

અધોવાયુ અને છીંક આદિ એકી-સાથે ન હોય તો પણુ અધોવાયુની યતના કરનારા વસ્ત્રને મુખવસ્ત્રિકા કહેવી એ મોટી ભૂલ છે, કારણુ કે મુખ અને મળદ્વાર એક ચીજ નથી. બેઉ અલગ અલગ છે જો ખુલ્લે મુખે બોલવાનું તાત્પર્ય હોય તો परिपेहित्ता શબ્દમા परि ઉપસર્ગ વ્યર્થ થઇ જશે કારણુ કે अपि ઉપસર્ગ પૂર્વક ધાતુથી પણુ ल्यप् પ્રત્યય થાય છે.

'ઢાકેલાને ફરીથી ઢાકવુ એ વૃથા છે, તેથી ઢાંકયા વગરનાને ઢાંકવાને માટે આ ઉપદેશ આપ્યો છે.'—જો હાથમા મુહપત્તી રાખનાર એમ કહેશે તો એમ સિદ્ધ થશે કે એનું મળદ્વાર સદા અનાવૃત (ઉઘાડું) રહે છે. નહિ તો આવૃતને ફરી આવરણુ કરવાનો ઉપદેશ વ્યર્થ બની જશે તેથી કરી आसयं वा पोसयं वा पाणिणा परिपेहित्ता' એ ભગવદ્વાકયનો એવો અર્થ કાઢવો કે 'મુખવસ્ત્રિકા હાથમાં જ રાખવી જોઈએ, દોરાથી મુખ પર બાધવી ન જોઈએ' એવી કલ્પના કરવી એ સાહસમાત્ર છે.

मम तु सूक्ष्मव्यापिसम्पातिमवायुकायादिजीवविराधनापरिहारार्थं बद्धमुखवस्त्रिकस्योच्छ्वासादिकाले मुखोद्गतवायुवेगेन मुखतो दोरकावलम्बिततदपगमसम्भावनायाः सत्त्वेन तन्निवारणाय मुखवस्त्रिकाऽऽवृतस्यापि मुखस्य पाणिना परिपिधानमावश्यकमेव। एवं परिधानवस्त्राऽऽवृतस्यापि पोषकस्य परिपिधानं विधेयमेव, उच्छ्वासादीनां यौगपद्येऽयौगपद्ये वा एकेन करेण घ्राणमुखपिधानम्, अपरेण पायुपिधानं विधेयमिति भावः।

पाणिनेत्यत्रैकवचनमपि पाणित्वजातावन्वयविवक्षयेत्युभयपाणिबोधकत्वेऽप्यनुकूलमेव।

किञ्च पाणिशब्दस्य मुख्यार्थबाधाऽभावेन मुख्यार्थबाधमूलिका लक्षणापि नाङ्गीकरणीया भवति। तथा चोक्तसूक्ष्मव्यापिप्रभृतिविविधजीवहिंसावारणाय सदैव सदोरकमुखवस्त्रिकाधारणं नैतत्सूत्रतो विरुध्यते, किन्तु परिपिधायेत्यत्र परिशब्दप्रयोगेण भगवान् मुखवस्त्रिकापिहितस्यैव मुखस्य पिधानमावेदयतीत्यलं पल्लवितेन।

हमारे मतसे सूक्ष्म, व्यापी, सपातिम तथा वायुकाय आदि जीवोंकी विराधनासे बचनेके लिए मुखवस्त्रिका बँधी हुई होने पर भी उच्छ्वास आदिके समय मुखसे निकलने वाले वायुके वेगसे मुखवस्त्रिकाके खिसक जानेकी सभावना रहती है, इसलिए उस सभावनाको दूर करनेके वास्ते मुखवस्त्रिकासे आवृत मुखको फिर हाथसे आवृत करना आवश्यक है। इसी प्रकार चोलपट्ट होने पर भी अधोवायुके विषयमें समझना चाहिए। उच्छ्वास आदि एक ही साथ होवें तो एक हाथ से मुख और नाक ढँकले और दूसरे हाथसे अधोवायुकी यतना करे।

"पाणिणा" यद्यपि एक वचन है, इसलिए हमारे मतके अनुकूल ही है।

यहाँ पाणि" शब्दके मुख्य अर्थमें बाधा नहीं है अतः लक्षणा भी मानना योग्य नहीं है, क्योंकि लक्षणा वहीं होती है जहाँ मुख्य अर्थ में बाधा आती हो। इसलिए उक्त सूक्ष्म व्यापी वगैरह विविध जीवोंकी विराधनासे बचने के वास्ते सदैव डोरा सहित मुखवस्त्रिका मुख पर बांधना

અમારે મતે સૂક્ષ્મ, વ્યાપી, સપાતિમ તથા વાયુકાય આદિ જીવોની વિરાધનાથી બચવાને માટે મુખવસ્ત્રિકા બાંધી હોવા છતા ઉચ્છ્વાસ આદિને સમયે મુખથી નીકળતા વાયુના વેગથી મુખવસ્ત્રિકા ખસી જવાની સભાવના રહે છે તેથી એ સભાવનાને દૂર કરવાને માટે મુખવસ્ત્રિકાથી ઢાંકેલા મુખને પણ હાથથી ઢાંકવાની આવશ્યકતા છે. એજ રીતે ચોલપટ્ટ હોવા છતા પણ અધોવાયુના વિષયમા સમજવુ ઉચ્છ્વાસ આદિ જો એકી સાથે જ થાય તો એક હાથથી મુખ અને નાક ઢાકી લેવાં અને બીજા હાથથી અધોવાયુની યતના કરવી

पाणिणा જો કે એકવચન છે તોપણ પાણિત્વ જાતિમા અન્વય થવાથી બેઉ હાથનો બોધક થાય છે તેથી અમારે મતે તે શબ્દ અનુકૂળજ છે.

અહીં पाणि શબ્દના મુખ્ય અર્થમાં બાધા નથી તેથી લક્ષણા પણ માનવા યોગ્ય નથી, કારણ કે લક્ષણા ત્યા થાય છે કે જ્યા મુખ્ય અર્થમાં બાધા આવતી હોય તેથી કરીને ઉક્ત સૂક્ષ્મ, વ્યાપી વગેરે વિવિધ જીવોની વિરાધનાથી બચવાને માટે સદૈવ દોરા સાથે મુખવસ્ત્રિકા બાધવી એ સૂત્રથી વિરૂદ્ધ નથી, પરન્તુ परिपेहित्ता અહીં परि. ઉપસર્ગના

केचित्तु-'विपाकसूत्रे मृगापुत्राध्ययने-"तए णं सा मिया देवी तं कट्ठसगडियं अणुकड्ढेमाणीर जेणेव भूमिघरे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता चउप्पुडेणं वत्थेणं मुहं बंधमाणी भगवं गोयमं एवं वयासि-तुब्भेवि णं भंते ! मुहपोत्तियाए मुहं बंधेह । तए णं से भगवं गोयमे मियाए देवीए एवं वुत्ते समाणे मुहपोतियाए मुहं बंधइ" इत्युक्तं, तस्यायमाशयः-मृगापुत्रं दर्शयितुं प्रवृत्ता मृगादेवी भूमिगृहद्वारोद्घाटनकाले दुर्गन्धाघ्राण-वारणाय चतुष्पुटेन वस्त्रेण स्वमुखं बध्नती भगवन्तं गौतमं जगाद-हे भदन्त ! त्वमपि मुखपोतिकया मुखं बधान, ततः स भगवान् गौतमो मृगादेव्यैवमुक्तः सन् मुखपोतिकया मुखं बध्नाति (स्म) इति । इदमनेन सुस्पष्टं प्रतीयते-गौतमस्वामिनो मुखोपरि मुखव-स्त्रिका बद्धा नासीत् किन्तु हस्त एव धृतेति, अत एव मृगादेवी दुर्गन्धाघ्राणप्रतिबन्धाय "तुब्भेवि णं भंते ! मुहपोत्तियाए मुहं बंधेह" इति प्रार्थितवतीत्याहुः' तन्न सम्यक् -उष्णमुखवायुतः सम्पातिमसूक्ष्मव्यापिजीवानां रक्षणार्थं बाह्यवायुकायरक्षार्थं च मुखवस्त्रि-

---

इस सूत्रसे विरुद्ध नहीं है। परन्तु 'परिपेहित्ता 'परि' उपसर्गके प्रयोगसे प्रगट है कि श्रीमहावीर प्रभुने मुहपत्ति से पिहित (ढँकेहुए) मुखको पुनः पिधान करना प्रतिपादित किया है ।

कोई कोई ऐसा कहते हे कि विपाकसूत्रमें मृगापुत्रके अध्ययनमें ऐसा लिखा हैं- "तए णं सा" इत्यादि

इसका आशय यह है कि मृगादेवी जव मृगापुत्रको आहार देनेके लिए भोयरेके किवाड खोलने लगी तब नाकमें दुर्गन्ध आनेका निवारण करनेके लिए चार पड़वाला वस्त्र मुख पर बांधकर भगवान् गौतमस्वामीसे कहने लगी- 'हे भदन्त। आप भी मुखवस्त्रिकासे मुख बांध लीजिये'। मृगादेवीका कथन सुनकर भगवान् श्री गौतम मुखवस्त्रिकासे मुख बांधते है (बांध लिया)। 'इससे यह बिलकुल स्पष्ट है कि पहले श्रीगौतमस्वामीके मुख पर मुखवस्त्रिका नहीं बंधी हुई थी, किन्तु हाथमें थी, इसीसे मृगादेवीने मुखवस्त्रिका बाधनेकी प्रार्थना की थी। उनका यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि मुखको

પ્રયોગથી સ્પષ્ટ થાય છે કે મહાવીર પ્રભુએ મુહપત્તિથી પિહિત (ઢાંકેલા) મુખને પુન ઢાંકવાનું પ્રતિપાદિત કર્યું છે.

કોઈ કોઈ એમ કહે છે કે વિપાકસૂત્રમામૃગાપુત્રના અધ્યયનમાં લખ્યું છેકે—'तए णं सा' ઇત્યાદિ. એનો આશય એ છે કે મૃગાદેવી જ્યારે મૃગાપુત્રને આહાર દેવાને માટે ભોંયરાનાં કમાડ ખોલવા લાગી ત્યારે નાકમાં દુર્ગંધ આવતી નિવારવાને માટે ચાર પડવાળું વસ્ત્ર મુખ પર બાધીને ભગવાન ગૌતમ સ્વામીને કહેવા લાગી કે-હે ભદન્ત ! આપ પણ મુખ--વસ્ત્રિકાથી મુખ બાંધી લ્યો. મૃગાદેવીનું કથન સાભળીને ભગવાન્ ગૌતમ મુખવસ્ત્રિકાથી મુખ બાધે છે (બાંધી લીધુ.) આથી એ તદ્દન સ્પષ્ટ થાય છે કે પહેલા ગૌતમ સ્વામીના મુખ પર મુખવસ્ત્રિકા બાંધેલી નહોતી, કિન્તુ હાથમાં હતી, તેથી મૃગાદેવીએ મુખવસ્ત્રિકા બાંધવાની પ્રાર્થના કરી હતી. એમનું એ કહેવું બરાબર નથી, કારણ કે મુખના ઉષ્ણ વાયુથી સંપાતિમ, સૂક્ષ્મ અને વ્યાપી જીવોની રક્ષા કરવાને માટે તથા બાહ્ય વાયુકાયની

कावन्धनस्य सकलजैनागमतात्पर्यविषयतया मुखवस्त्रिका बद्धा नासीदिति कल्पनं तावन्मिथ्यात्वविलसितं सकलागमविरुद्धं च । इदमत्र तत्त्वम्—दुर्गन्धाघ्राणवारणाय 'मुह बंधेह' इति प्रार्थनाऽनुपपन्ना, मुखेन गन्धग्रहणानुपपत्तेः, तस्मादत्र 'मुह' शब्दो न मुखमात्रपरः किन्तु यथा 'गङ्गायां घोषः' इत्यत्र गङ्गाशब्दस्य प्रवाहरूपे शक्यार्थे (मुख्यार्थे) घोषान्वयतात्पर्यानुपपत्त्या तत्समीपवर्त्तिनि तीरे लक्षणावृत्त्या तात्पर्यमिति मन्यते, तथा मुखे बद्धाया एव तस्याः पुनस्तत्रैव बन्धनार्थप्रार्थना निष्फलतया नोपपद्यते, किञ्च दुर्गन्धाघ्राणवारणोद्देशेनापि तत्प्रार्थना नोपपद्यते, मुखमात्रबन्धने कृतेऽपि घ्राणेन्द्रियस्याऽनावरणेन तदुद्देशसिद्धयसंभवादिति मुखमात्रे बन्धनान्वयतात्पर्यस्यानुपपत्त्या तत्समीपवर्तिनि घ्राणेऽपि

उष्ण वायुसे सपातिम, सूक्ष्म और व्यापी जीवोंकी रक्षा करनेके लिए तथा बाह्य वायुकायकी रक्षा करनेके लिए मुखवस्त्रिका बांधना सब जैन—आगमोंमें तात्पर्यरूपसे विधान किया गया है । इसलिए उनके मुख पर मुखवस्त्रिका नहीं बंधी थी' ऐसा कहना मिथ्यात्वका ही प्रलाप है और सब शास्त्रोसे विरुद्ध है । तात्पर्य यह है कि दुर्गन्धसे बचनेके लिए मुख बांधनेकी प्रार्थना उचित नहीं है क्योंकि मुखसे गन्धका ग्रहण नहीं होता । अतएव यहाँ मुखसे केवल मुखही अर्थ नहीं है । जैसे " गंगामें घोष (अहीरोंकी वसती) है । इस वाक्यसे ऐसा मतलब नहीं निकल सकता कि गंगाकी बीचधारमें अहीरोका वसती है, क्योंकि ऐसा होना अनुपपन्न है । अतएव जब वाक्यके मुख्य (शाब्दिक) अर्थमें बाधा आती हो तब लक्षणासे दूसरा मतलब लेना पडता है कि गंगाके किनारे अहीरोंकी वसती है । इसीप्रकार मुखवस्त्रिका जब पहलेसे बंधी हुई है तब पुनः बांधनेकी प्रार्थना व्यर्थ पडती है, तथा दुर्गन्ध नाकमें न घुसने देनेके लिए मुख बांधनेकी प्रर्थना युक्त नहीं है, क्योंकि मुख बांध लेनेपर भी दुर्गन्धका आना नहीं रुक सकता, अतः यहाँ मुख बाँधनेका अर्थ अयुक्त होनेसे मुखके समीपवर्ती नासिका बाँधनेका तात्पर्य लक्षणासे विदित होता है । लक्षणाका आश्रय

રક્ષા કરવાને માટે મુખવસ્ત્રિકા બાંધવી એવું બધાં જૈન—આગમોમા તાત્પર્યરૂપે વિધાન કરવામાં આવ્યું છે તેથી એમના મુખ પર મુખવસ્ત્રિકા બાંધેલી નહોતી એમ કહેવું એ મિથ્યાત્વનો જ પ્રતાપ છે અને બધાં શાસ્ત્રોથી વિરૂદ્ધ છે તાત્પર્ય એ છે કે દુર્ગંધથી બચવાને માટે મુખ બાધવાની પ્રાર્થના ઉચિત નથી, કારણ કે મુખથી ગંધનું ગ્રહણ થતુ નથી. એટલે અહીં મુખથી કેવળ મુખનો જ અર્થ થતો નથી. જેમ "ગંગામાં ઘોષ (આહીરોની વસતી) છે" એ વાકયથી એવી મતલબ નથી નીકળી શકતી કે ગગાની વચ્ચે પાણીના પ્રવાહમાં અહીરોની વસતી છે, કેમકે એમ હોવુ અનુપપન્ન છે એટલે કે જ્યારે વાકયના મુખ્ય (શાબ્દિક) અર્થમા બાધા આવે છે ત્યારે લક્ષણાથી બીજી મતલબ લેવી પડે છે, કે ગંગાને કિનારે અહીરોની વસતી છે એ રીતે મુખવસ્ત્રિકા જો પહેલેથી બાધી રાખેલી છે તો પુનઃ બાધવાની પ્રાર્થના વ્યર્થ બને છે. તથા દુર્ગંધ નાકમાં ન પેસવા દેવાને માટે મુખ બાંધવાની પ્રાર્થના કરવી યુક્ત નથી કારણ કે મુખ બાંધી લેવા છતા દુર્ગંધ આવવાનું રોકી શકાતું નથી એટલે અહીં મુખ બાંધવાનો અર્થ અયુકત હોવાથી મુખની નિકટ આવેલું

लक्षणावृत्त्या तात्पर्यमिति गम्यते। लक्षणाश्रयणस्याऽऽवश्यकत्वादेवाऽऽचाराङ्गसूत्रेऽपि-"से भिक्खू वा२ उस्सासमाणे वा नीसासमाणेवा कासमाणे वा छीयमाणे वा जंभायमाणे वा उड्डोए वा वायनिसग्गं वा करेमाणे पुव्वामेव आसयं वा पोसयं वा पाणिणा परिपेहित्ता" इत्यादिपाठः संगच्छते, तत्राप्यास्यकशब्दे लक्षणाश्रयणाऽभावे तु पाणिनाऽऽस्यकपरिपिधाने सति तज्जन्योच्छ्वासादियतनाया उपपत्तावपि घ्राणजन्योच्छ्वासनिःश्वासक्षुतयतनाया अनुपपत्त्या तेषामागमविरोधः सुस्पष्ट एव।

नन्वेवं मुखवस्त्रिका भवतु बन्धनीया तथापि दोरकस्य बन्धने निर्वन्धनताऽऽगमतो न लभ्यते, तथा च तत्प्रान्तभागेनापि बन्धनं सुसम्पादम्, अलमेतेन दोरकपरिग्रहेणेति चेन्न, मुखवस्त्रिकाबन्धनस्य शास्त्रप्रतिपाद्यतायां सिद्धायां तत्राल्पमेव दोरकस-

---

लेना आवश्यक होनेसे ही आचाराङ्गसूत्रका "से भिक्खू वा०" इत्यादि पाठ ठीक बैठता है। वहाँ पर भी यदि 'आसयं' (मुख) शब्दमें लक्षणाका आश्रय न लिया जाय तो हाथसे मुख ढँक लेने पर मुखजन्य उच्छ्वास निःश्वास आदिकी यतना सभव हो सकती है किन्तु घ्राणजन्य उच्छ्वास-निःश्वास छींकको यतना नहीं हो सकती। अतः उन लोगोके मतमें आगमसे विरोध होना स्पष्ट है।

प्रश्न-उक्त प्रकारसे मुख पर मुखवस्त्रिका बाँधना तो सिद्ध हुआ किन्तु डोरा लगाकर बाँधना आगममें कहीं नहीं पाया जाता। इसलिए मुखवस्त्रिकाके छोर (पल्ला) से भी उसे बांध सकते है, डोराकी क्या आवश्यकता है?

उत्तर-उनका यह कथन ठीक नहीं है। क्योकि जब यह सिद्ध हो चुका कि आगममें मुखवस्त्रिकाका बाँधना प्रतिपादित किया गया है तो छोटेसे दोरेसे निर्दोषपूर्वक बन्धनकी सिद्धि होने पर

નાક બાંધવાનું તાત્પર્ય લક્ષણાથી વિદિત થાય છે લક્ષણાનો આશ્રય લેવો આવશ્યક હોવાથી જ આચારાંગ સૂત્રનો "**से भिक्खू वा०**" ઇત્યાદિ પાઠ બરાબર બંધ બેસે છે

તેમાં પણ જો **आसयं** (મુખ) શબ્દમાં લક્ષણાનો આશ્રય લેવામાં ન આવે તો હાથથી મુખ ઢાંકી લેતા મુખજન્ય ઉચ્છ્વાસ નિઃશ્વાસ આદિની યતના સંભવિત થઇ શકે છે, કિંતુ ઘ્રાણજન્ય ઉચ્છ્વાસ-નિઃશ્વાસ છીંકની યતના થઈ શકતી નથી. એટલે એ લોકોના મતમાં આગમથી વિરોધ થાય છે એ સ્પષ્ટ છે.

પ્રશ્ન—એ પ્રકારે મુખ પર મુખવસ્ત્રિકા બાંધવાનું તો સિદ્ધ થયુ, પરન્તુ દોરો લગાવીને બાંધવાનું આગમમાં ક્યાંય મળી આવતુ નથી તેથી કરીને મુખવસ્ત્રિકાના છેડાથી પણ તેને બાંધી શકાય છે. દોરાની શી આવશ્યકતા છે?

ઉત્તર—એવું કથન બરાબર નથી, કારણ કે એ સિદ્ધ થઇ ચૂકયું છે કે આગમમાં મુખવસ્ત્રિકા બાંધવાનું પ્રતિપાદિત કરવામાં આવ્યું છે તો નાના સરખા દોરાથી નિર્દોષતા પૂર્વક બંધનની સિદ્ધિ થતા ચરિત્રને મલિન કરનારો બીજો પ્રકાર કામમાં લેવો એ અનુચિત છે, મુખવસ્ત્રિકાના છેડાથી શિરની પાછળ ન્યૂનતાને કારણે ગાંઠ ન બાંધી શકવાથી મુખ-

पेक्ष्य निरवद्यप्रकारेण तद्बन्धनसिद्धौ सत्यां चारित्रमालिन्यापादकप्रकारान्तराश्रयणस्यानौचित्यात्, मुखवस्त्रिकाप्रान्तभागेन शिरःपश्चाद्भागे न्यूनतावशाद्ग्रन्थिविरहप्राप्तावुचिताधिकतन्मानकल्पनायामुत्सूत्रप्ररूपणापत्तेश्च ।

किञ्च मुखवस्त्रिकाया बन्धनं दोरकेणैव समुचितं भगवदभिप्रेतं च, लोके हि बन्धनं गुणेनैव प्रसिद्धं तत्रापि यथायोग्यमेव सूत्रदोरकादयस्तदर्थमादीयन्ते, यथा पुष्पपुस्तकवसनादिबन्धनार्थी यथाक्रमं मृदुमेव दोरकमुपादत्ते ।

किञ्च–सामाचरीग्रन्थे–"मुखवस्त्रिकां प्रतिलेख्य मुखे बद्ध्वा प्रतिलेखयति रजोहरणम्" इत्युक्तं देवचन्द्रसूरिणाऽपि । अत्र मुखवस्त्रिकाया बन्धनक्रियाकर्मत्वेन प्रतिपादनात् तदौचित्याच्च सा दोरकरूपमनुरूपं करणमपेक्षत एव । तत्प्रान्तभागेन ग्रन्थिदाने तु तत्र करणत्वकल्पनं देवचन्द्रसूरिविरुद्धमयुक्तं च, कर्मत्व–करणत्वयोर्विरोधात् ।

चारित्रको मलिन करने वाले दूसरे तरीके काममें लाना अनुचित है । मुखवस्त्रिकाके छोरसे सिरके पीछे न्यूनताके वशसे गांठ न लगा सकनेसे मुखवस्त्रिकाके उचित प्रमाणसे अधिककी कल्पना करनी पडेगी, और ऐसी कल्पना करनेसे उत्सूत्रप्ररूपणाका दोष लगेगा ।

दूसरी बात यह है कि डोरेसे ही मुख पर मुखवस्त्रिका बांधना उचित है और यही बात भगवानको भी इष्ट है । लोकमें किसी वस्तुका बाँधना डोरेसे ही प्रसिद्ध है । उसमें भी यथायोग्य सूत्रका डोरा आदि बाँधनेके काममें लाये जाते हैं, जैसे फूल पुस्तक या कपडा बांधने वाले क्रमशः कोमल डोरेको ही काममे लाते है ।

सामाचारी ग्रन्थ में देवचन्द्रसूरिने लिखा है "मुखवस्त्रिकां प्रतिलेख्य मुखे बद्ध्वा प्रतिलेखयति रजोहरणम्, इस वाक्य में मुखवस्त्रिकाको बाँधनेरूप क्रियाका कर्म बताया है और वह उचित भी है। इसलिये वह (क्रम) मुखवस्त्रिकाके अनुरूप करणकी अपेक्षा रखती है। तात्पर्य यह है कि जब मुखवस्त्रिका कर्म है तब करण भी कोई होना चाहिये और वह करण अर्थात् जिससे

વસ્ત્રિકાને ઉચિત પ્રમાણથી વધારે (લાંબી) રાખવાની કલ્પના કરવી પડશે, અને એવી કલ્પના કરવાથી ઉત્સૂત્રપ્રરૂપણાનો દોષ લાગશે.

બીજી વાત એ છે કે દોરાથી જ મુખ પર મુખવસ્ત્રિકા બાંધવી ઉચિત છે અને એ જ વાત ભગવાનને પણ ઇષ્ટ છે લોકોમાં કોઈ વસ્તુને બાંધવાનું કાર્ય દોરાથી જ પ્રસિદ્ધ છે તેમાં પણ યથાયોગ્ય સૂતરનો દોરો વગેરે બાંધવાના કામમાં લેવામા આવે છે, જેમકે ફૂલ, પુસ્તક યા કપડું બાંધનારા ક્રમશઃ કોમળ દોરાને જ કામમાં લે છે

સામાચારી ગ્રંથમા દેવચન્દ્રસૂરિએ લખ્યું છે "મુખવસ્ત્રિકાં પ્રતિલેખ્ય મુખે બદ્ધ્વા પ્રતિલેખયતિ રજોહરણમ્" એ વાકયમાં મુખવસ્ત્રિકાને બાંધવારૂપ ક્રિયાનુ કર્મ બતાવ્યુ છે અને તે ઉચિત પણ છે તેથી કરીને એ (ક્રિયા) મુખવસ્ત્રિકાને અનુરૂપ દોરારૂપ કરણની અપેક્ષા રાખે છે તાત્પર્ય એ છે કે જો મુખવસ્ત્રિકા કર્મ છે તો કરણ પણ હોવું જોઈએ. અને એ કરણ અર્થાત્ જેવડે બાધવારૂપ ક્રિયા થાય છે તે દોરો જ હોવો જોઈએ. ગાંઠ

मुखवस्त्रिकाबन्धनार्थं कर्णयुगले शस्त्रेण छिद्रकरणं तु अतीवाऽज्ञानविजृम्भितम्, छिद्रकरणस्य शास्त्रानुक्ततया शस्त्रप्रयोगसाध्यतया दुष्करतया च तदपेक्षया निरवद्यत्वेन दोरकाश्रयणस्यैवौचित्यात् ।

नन्वेवं दोरकाश्रयणे सदोरकमुखवस्त्रिकाधारकाणां भाषणकाले मुखोत्पतितजलकणैरार्द्रीभूतायां मुखवस्त्रिकायामशुचिस्थानतया संमूर्च्छिमजीवा उत्पद्येरन्, हस्तेन मुखवस्त्रिकाधारणे तु न तथाविधजीवोत्पत्तिसम्भवः तथा च दोरकपरिग्रहो दुराग्रहमात्रमिति चेन्न, मुखोत्पन्नजलकणानां भगवता जीवोत्पत्तिस्थानतयाऽनुक्तत्वात् । न चैतेषां जलकणानां खेलांशतयाऽशुचिस्थानतया वा जीवोत्पत्तिस्थानत्वं प्रतीयत इति वाच्यम्, तत्र

बाँधनारूप क्रिया होती है डोरा ही होना चाहिए। गाठ लगानेमें करणत्वकी कल्पना करना देवचन्द्रसूरिसे विरुद्ध और अयुक्त है क्योकि कर्मत्व और करणत्वको विरोध है।

मुखवस्त्रिका बाँधनेके लिए कानो में छेद कर लेना तो बडी भारी अज्ञानता है, क्याकि साधुपनेके लिए किसी अवयवको छेदना शास्त्रो में निषिद्ध है और शस्त्रसाध्य होनेसे दुष्कर भी है। उसकी अपेक्षा निर्दोषरूपसे डोरेका आश्रय लेना ही उचित है ।

प्रश्न—डोरेका आश्रय लेनेसे दोरासहित मुखवस्त्रिका मुख पर धारण करनेवालोकीमुखवस्त्रिका भाषण करते समय मुखसे निकलनेवाले पानी के कणोसे गीली हो जायगी और गीली होनेसे अशुचिस्थान हो जानेके कारण वहाँसमूर्च्छिम जीवोकी उत्पत्ति होगी। हाथमें मुखवस्त्रिका धारण करनेसे समूर्च्छिम जीवोकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। इसलिए डोराका ग्रहण करना दुराग्रहमात्र है।

उत्तर—ऐसा कहना उचित नहीं है । क्योकि मुखसे निकलने वाले जलके कणोंको भगवान्ने जीवोत्पत्तिका स्थान नहीं बताया है ऐसा भी नहीं कहना चाहिए कि वे जलकण खेलके अंश है,

---

બાંધવામાં કરણત્વની કલ્પના કરવી એ દેવચન્દ્રસૂરિથી વિરૂદ્ધ છે અને અયુકત છે, કારણ કે કર્મત્વ અને કરણત્વનો વિરોધ છે.

મુખવસ્ત્રિકા બાંધવાને કાનમાં છિદ્ર પડાવી લેવા એ તો ભારે અજ્ઞાનતા છે, કારણ કે સાધુપણાને માટે કોઈ અવયવને છેદવું શાસ્ત્રમાં નિષિદ્ધ છે અને શસ્ત્રસાધ્ય હોવાથી દુષ્કર પણ છે એને બદલે નિર્દોષ રૂપે દોરાનો આશ્રય લેવો જ ઉચિત છે.

પ્રશ્ન—દોરાનો આશ્રય લેવાથી દોરા—સહિત મુખવસ્ત્રિકા મુખ પર ધારણ કરનારાઓની મુખવસ્ત્રિકા ભાષણ કરતી વખતે મુખમાંથી નીકળતા પાણીના કણોથી ભીની થઈ જશે અને ભીની થવાથી અશુચિસ્થાન થઇ જવાના કારણે ત્યા સંમૂર્છિમ જીવોની ઉત્પત્તિ થશે, હાથમાં મુખવસ્ત્રિકા ધારણ કરવાથી સમૂર્છિમ જીવોની ઉત્પત્તિ થતી નથી તેથા કરીને દોરાનું ગ્રહણ કરવું એ દુરાગ્રહ થાય છે.

ઉત્તર—એમ કહેવું ઉચિત નથી, કારણ કે મુખથી નીળતાં જળના કણોને ભગવાને જીવોત્પત્તિનું સ્થાન બતાવ્યું નથી એમ પણ ન કહી શકાય કે એ જળકણ ખેલ (કફ) ના અંશરૂપ હોય છે અને તેથી અશુચિ—સ્થાન છે અને અશુચિસ્થાન હોવાથી જીવોત્પત્તિ-

खेलांशताप्रतीतेर्भ्रान्तिमूलकत्वात्। वैद्यकशास्त्रे हि खेलस्य मुखजलकणानां च भेदः सुस्पष्टः, तथाहि खेलशब्दः श्लेष्मण्यर्थे वर्त्तते, आमाशयो, हृदय, कण्ठः, शिरः, सन्धयश्चैतानि श्लेष्मणः स्थानानि, तथाचोक्तं भावप्रकाशे–

"आमाशयेऽथ हृदये, कण्ठे शिरसि सन्धिषु।
स्थानेष्वेषु मनुष्याणां, श्लेष्मा तिष्ठत्यनुक्रमात् ॥" इति,

अस्य स्वरूपं धर्मांश्चोक्ता सुश्रुतसंहितायां–

"श्लेष्मा श्वेतो गुरुः स्निग्धः, पिच्छलः शीत एव च।
मधुरस्त्वविदग्धः स्याद्, [१]विदग्धो लवणः स्मृतः ॥" इति,

इसलिए अशुचिस्थान है और अशुचिस्थान होनेसे जीवोत्पत्तिके स्थान है। क्योंकि उन जल कणोंको खेळ (कफ) का अंश समझना भ्रान्तिमूलक है। खेल शब्दका अर्थ श्लेष्म है। आमाशय हृदय, कंठ, सिर और सन्धियाँ श्लेष्म के स्थान है। भावप्रकाश में लिखा है।

आमाशयेऽथ हृदये कण्ठे शिरसि सन्धिषु।
स्थानेष्वेषु मनुष्याणां, श्लेष्मा तिष्ठत्यनुक्रमात् ॥१॥

अर्थात्–आमाशय, हृदय, कण्ठ, शिर और सधिभाग, इन स्थानो में मनुष्यो को अनुक्रम से-कफ रहता है।,,

सुश्रुतसहितामें श्लेष्मका स्वरूप और गुण इस प्रकार बताये है

श्लेष्मा श्वेतो गुरुः स्निग्धः पिच्छलः शीत एव च।
मधुरस्त्वविदग्धः स्याद्, विदग्धो लवणः स्मृतः ॥ १

अर्थात्–श्लेष्म (कफ) सफेद, गुरु, चिकना, पिच्छल और शीत होता है। नहीं जला

નાં સ્થાન છે. એ જળકણોમાં કફનો અંશ સમજવો એ ભ્રાન્તિમૂલક છે ખેલ શબ્દનો અર્થ શ્લેષ્મ છે આમાશય, હૃદય, કંઠ, શિર અને સંધિ એ શ્લેષ્મનુ સ્થાન છે ભાવપ્રકાશમાં લખ્યું છે કે—

आमाशयेऽथ हृदये, कण्ठे शिरसि सन्धिषु।
स्थानेष्वेषु मनुष्याणां, श्लेष्मा तिष्ठत्यनुक्रमात् ॥

અર્થાત્—"આમાશય હૃદય કંઠ, શિર અને સંધિભાગ એ સ્થાનોમા મનુષ્યોને અનુક્રમથી કફ રહે છે"

સુશ્રુતસંહિતામા શ્લેષ્મનું સ્વરૂપ અને ગુણ આ પ્રકારે બતાવ્યા છે:—

श्लेष्मा श्वेतो गुरुः स्निग्धः पिच्छलः शीत एव च।
मधुरस्त्वविदग्ध स्यात् विदग्धो लवण स्मृत ॥

અર્થાત્—"શ્લેષ્મ (કફ) સફેદ, ગુરૂ, ચિકણો, પિચ્છલ, અને શીત હોય છે નહિ બળેલો યા કાચો કફ મધુર હોય છે અને પાકો યા બળેલો કફ ખારો હોય છે."

---

१ विदग्ध–पका या जला हुआ।

मुखजलस्य तु रसनामूलं तदग्रभागश्चेतिद्वयमुत्पत्तिस्थानम्, इदं च चर्वितस्यान्नस्य पिण्डीभवने कण्ठनलिकयाऽधोनयने पाचने च निमित्तम् । अत एव योगचिन्तामणौ प्रथमाध्याये-

"रसाऽसृङ्मांसमेदोऽस्थि मज्जाशुक्राणि धातवः ।

इत्युक्त्वा कस्य धातोः किं मलम् ? इति प्रदर्शयितु पुनरभितम्-

"जिह्वानेत्रकपोलानां जलं पित्तं च रञ्जकम्," इत्यादि ।

जिह्वानेत्रकपोलानां जलं रसधातोर्मलं, रञ्जकं पित्तं रुधिरस्य मलमिति तदर्थः । इत्थं जिह्वाकपोलदेशे जायमानं जलं मुखजलं, तदीयकणिका एव भाषणकाले कदाचिद् बहिरुत्पतन्तीति विशदीभवति, श्लेष्मा तु न कस्यचिद् धातोर्मलं, स हि दोषत्रयान्तःपातित्वात्तत्स्वरूपम्, अत एव योगचिन्तामणौ प्रथमाध्याये धातुमलतः पृथक्कृत्य दोष-

---

हुआ या कच्चा कफ मधुर होता है और पका या जला हुआ नमकीन होता है ।

मुखजलके केवल दो उत्पत्तिस्थान हैं-(१) जिह्वाका मूल और (२) जिह्वाका अग्रभाग । यह मुखजल चबाये हुए अन्नको पिण्ड बनाने तथा कण्ठकी नलीके नीचे लेजाने तथा पचानेका कारण है । इसीसे योगचिन्तामणि ग्रन्थके प्रथम अध्यायमें "रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः" ऐसा कह कर किस धातुका क्या मल है, सो बतानेके लिए फिर कहा है-"जिह्वानेत्र-कपोलोनां, जलं पित्तं च रञ्जकम्" । अर्थात् जीभ, नेत्र और गालका जल रसधातुका मल है तथा रंजक पित्त रुधिरका मल है । इसप्रकार जोभ और गालोंमें उत्पन्न होनेवाला जल मुखका जल कहलाता है और उसीकी कणिका भाषण करते समय कभी-कभी बाहर निकल जाती है, यह बात स्पष्ट है । श्लेष्मा किसी धातुका मल नहीं है, वह तीन दोषोंमेंसे एक दोष है, इसीसे योगचिन्तामणिमें धातुओंके मलोसे पृथक् करके तीन दोष अलग बताये है, देखो शारीरक प्रकरण "कलाः सप्ताशयाः" इत्यादि श्लोक ५ ।

મુખજળનાં માત્ર બે ઉત્પત્તિ સ્થાન હોય છે (૧) જીહ્વાનું મૂળ અને (૨) જીહ્વા (જીભ)નો અગ્રભાગ એ મુખજળ આવેલા અન્નનો પિંડ બનાવવાનુ તથા કંઠની નળીની નીચે લઇ જવાનુ તથા પચાવવાનું કારણ છે. તેથી યોગચિન્તામણિ ગ્રંથના પ્રથમ અધ્યાયમાં **रसासृङ्मांसमेदोऽस्थि मज्जाशुक्राणि धातव** એમ કહીને સાત ધાતુઓ બતાવી છે તે પછી કઈ ધાતુને કયો મળ છે તે બતાવવાને માટે કહ્યું છે કે **जिह्वानेत्रकपोलानां जलं पित्तं च रञ्जकम्।** અર્થાત્-જીભ નેત્ર અને ગાલનું જલ-રસ ધાતુનો મલ છે તથા રંજક પિત્ત રૂધિરનો મલ છે. એ રીતે જીભ અને ગાલમા ઉત્પન્ન થનારૂ જલ મુખનું જલ કહેવાય છે અને તેની કણિકાઓ ભાષણ કરતી વખતે કોઈ-કોઈ વાર બહાર નીકળી જાય છે તે વાત સ્પષ્ટ છે. શ્લેષ્મ કોઇ ધાતુનો મલ નથી, તે ત્રણ દોષોમાંનો એક દોષ છે તેથી યોગચિન્તામણિમાં ધાતુઓના મલોથી જૂદા પાડીને ત્રણ દોષ અલગ બતાવેલા છે. જુઓ શારીરક પ્રકરણ "**कलाः सप्ताशया**" ઇત્યાદિ શ્લોક ૫.

એ રીતે સ્પષ્ટ થાય છે કે મુખનુ જલ એ શ્લેષ્મથી ભિન્ન છે.

त्रयोपादानं कृतं, यथा शारीरकप्रकरणे—

"कलाः सप्ताशयाः सप्त, धातवः सप्त तन्मलाः ।
सप्तोपधातवः सप्त, त्वचः सप्त प्रकीर्त्तिताः ॥ १ ॥
त्रयो दोषा नवशतं, स्नायूनां सन्धयस्तथा ।
दशाधिकं च द्विशतमस्थ्नां च द्विशतं मतम् ॥ २ ॥
सप्तोत्तरं मर्मशतं, शिराः सप्तशतं तथा ।
चतुर्विंशतिराख्याता, धमन्यो रसवाहिकाः ॥ ३ ॥
मांसपेश्यः समाख्याता, नृणां पञ्चशतं बुधैः ।
स्त्रीणां च विंशत्यधिकाः, कण्डराश्चैव षोडश ॥ ४ ॥
नृदेहे दश रन्ध्राणि, नारीदेहे त्रयोदश ।
एतत्समासतः प्रोक्तं, विस्तरेणाधुनोच्यते ॥ ५ ॥" इति ।

एवं च मुखजलस्य खेलतो भेदः स्पष्ट एव । न च खेलशब्दस्य निष्ठीवनार्थकतया निष्ठीवनात्मके मुखजले खेलशब्दप्रवृत्त्या तस्यापि जीवोत्पत्तिस्थानत्वं दुर्वारमेवेति वाच्यम्, निष्ठीव्यते=निरस्यते=प्रक्षिप्यते यत्तन्निष्ठीवनमिति 'नि' पूर्वकात् 'ष्ठीवु निरसने' इति धातोर्बाहुलकात् कर्मणि ल्युटि निष्पन्नस्य निष्ठीवनशब्दस्य योगेन मुखनिर्गतपदार्थमात्रे प्रयोगो भवति, एवं च निष्ठीवनशब्दस्यैव प्रक्षिप्तखेलाद्यर्थकत्वं सिध्यति न तु खेलशब्दस्य निष्ठीवनार्थकत्वम्, तथा च मुखनिर्गतजलकणेषु न जीवो-

---

इस प्रकार स्पष्ट है कि मुखका जल श्लेष्मसे भिन्न है ।

प्रश्न—'खेल' शब्दका अर्थ 'थूक' है, और थूक तथा मुखजल एक ही है । अतः मुखजलमें खेल शब्दकी आवृत्ति होनेसे वह जीवोत्पत्तिका स्थान होगा ही ।

उत्तर—ऐसा कहना ठीक नहीं है । क्योकी 'निष्ठीवन' शब्द 'नि'-उपसर्गपूर्वक 'ष्ठीवु निरसने' धातुसे बना है । अतः मुखसे निकलने वाला कोई भी पदार्थ निष्ठीवन कहलाता है । इससे यह सिद्ध होता है कि त्यागा हुआ खेल आदि निष्ठीवन कहला सकता है किन्तु निष्ठीवन 'खेल' नहीं कहला सकता । इसलिए मुखसे निकलने वाले जलकणो में जीवोत्पत्तिकी सिद्धि नहीं होती, क्योंकि जीवोत्पत्तिके स्थानोंमें 'निष्ठीवन' शब्द नहीं दिया है । वास्तवमे निष्ठीवन शब्द

प्रश्न—'ખેલ' શબ્દનો અર્થ 'થૂક' છે, અને થૂક તથા મુખજલ એક જ છે. એટલે મુખજલમાં ખેલ શબ્દની પ્રવૃત્તિ થવાથી તે જીવોત્પત્તિનું સ્થાન થશે જ

ઉત્તર—એમ કહેવું બરાબર નથી. નિષ્ઠીવન શબ્દ 'નિ'-ઉપસર્ગ-પૂર્વક ષ્ઠીવુ નિરસને ધાતુથી બન્યો છે એટલે મુખથી નીકળતો કોઈ પદાર્થ નિષ્ઠીવન કહેવાય છે તેથી એમ સિદ્ધ થાય છે કે ત્યાગેલો ખેલ આદિ નિષ્ઠીવન કહી શકાય છે, પરન્તુ નિષ્ઠીવન 'ખેલ' નથી કહી શકાતો તેથી મુખથી નીકળતા જલકણોમાં જીવોત્પત્તિની સિદ્ધિ થતી નથી, કારણ કે જીવોત્પત્તિનાં સ્થાનોમાં 'નિષ્ઠીવન' શબ્દ આપ્યો નથી વસ્તુતઃ નિષ્ઠીવન શબ્દ ભાવલ્યુડન્ત હોવાથી પ્રક્ષેપણરૂપ નિરસન ક્રિયાનો વાચક છે. એમ માનવું યુક્ત છે. અર્થાત્

त्पत्तिसिद्धिः, जीवोत्पत्तिस्थानपरिगणने निष्ठीवनशब्दानुपादानात् । वस्तुतस्तु निष्ठीवनशब्दस्य भावल्युडन्ततया प्रक्षेपणात्मकनिरसनक्रियावाचित्वं युक्तम्, अतएव—

"रक्तनिष्ठीवनं दाहो, मोहश्छर्दन-विभ्रमौ ।
प्रलापः पिटिका तृष्णा, रक्तप्राप्ते ज्वरे नृणाम् ॥" इति,

रक्तज्वरलक्षणं प्रतिपादयता माधवनिदानकृता निर्गमनेऽप्यर्थे निष्ठीवनशब्दः प्रयुक्तः । कवलीकृतस्य द्रव्यस्य मुखान्निरसनेऽपि निष्ठीवनत्वमुक्तं, भावप्रकाशे यथा—

"वातपित्तकफघ्नस्य द्रव्यस्य कवल मुखे ।
अर्धं निःक्षिप्य संचर्व्य, निष्ठीवेत् कवले विधिः ॥" इति,

तिब्बअकब्बराख्ये वैद्यकग्रन्थे पञ्चमाध्याये प्रथमप्रकरणेऽपि जिह्वामूलतो मुखजलोत्पत्तिः स्पष्ट प्रतिपादिता । शरीरविज्ञाने च मुखजलस्य पाचनशक्तिमत्त्वं प्रकटितम् ।

अशुचिस्थानतया मुखजलस्य जीवोत्पत्तिस्थानत्वापादनं तु सर्वथा निर्मूलमेव, तथाहि—यावन्ति जीवोत्पत्तिस्थानानि सन्ति तानि प्रज्ञापनासूत्रे निर्दिष्टानि, यथा—

भावल्युडन्त होनेसे प्रक्षेपणरूप निरसन क्रियाका वाची है, ऐसा मानना युक्त है । अर्थात् निष्ठीवनका वास्तविक अर्थ है क्षेपण करना, या त्यागना । इसीसे 'माधवनिदान' कर्ताने रक्तज्वर के लक्षण बताते समय निकलनेके अर्थमें निष्ठीवन शब्दका प्रयोग किया है—

रक्तनिष्ठीवनं दाहो, मोहश्छर्दनविभ्रमौ ।
प्रलापः पिटिका तृष्णा, रक्तप्राप्ते ज्वरे नृणाम् ॥ १ ॥

भावप्रकाशमें कौर (कवल)के बाहर निकालनेको निष्ठीवन कहा है—"वातपित्त०" इत्यादि,

"तिब्ब अकब्बर" नामक यूनानी वैद्यक ग्रन्थमें भी जीहाके मूलसे मुखजलकी उत्पत्ति स्पष्टरूपसे बताई गई है "जीभकी जड़में एक मांसका लोथडा है जिसमेंसे लुआब और मुखका पानी निकलता है और जीभको तर रखता है और खानेकी चीजोमें मिला करता है ।" तथा 'शरीर विज्ञान' नामक ग्रन्थमें मुखजलके विपयमें लिखा है उसमें पचानेको शक्ति होती है ।

નિષ્ઠીવનનો વાસ્તવિક અર્થ છે—ક્ષેપણ કરવું યા ત્યાગવુ. તેથી 'માધવનિદાન' કર્તાએ રક્તજ્વરના લક્ષણો બતાવતી વખતે નીકલવાના અર્થમા નિષ્ઠીવન શબ્દનો પ્રયોગ કર્યો છે,

रक्तनिष्ठोवनं दाहो, मोहश्छर्दनविभ्रमौ ।
प्रलापः पिटिका तृष्णा, रक्तप्राप्ते ज्वरे नृणाम् ॥१॥

ભાવપ્રકાશમા કોળીયાનું બહાર નીકાળવું એને નિષ્ઠીવન કહેલ છે— वातपित्त० ઇત્યાદિ.

"તિબ્બ અકબ્બર" નામક યૂનાની વૈદ્યક ગ્રંથમા પણ જીભના મૂલમાથી મુખજલની ઉત્પતિ સ્પષ્ટરૂપે બતાવી છે, "જીભના મૂળમા માસનો લોચો છે જેમાંથી લુઆબ અને મુખનું પાણી નીકળે છે અને જીભને તર રાખે છે અને ખાવાની ચીજોમાં મળ્યા કરે છે," અને "શરીરવિજ્ઞાન" નામના ગ્રંથમા મુખજલના વિષયમા લખ્યું છે કે એમાં પચાવવાની શક્તિ હોય છે.

"उच्चारेसु वा पासवणेसु वा खेलेसु वा सिंघाणएसु वा वंतेसु वा पित्तेसु वा पूयेसु वा सोणिएसु वा सुक्केसु वा सुक्कपुग्गलपरिसाडेसु वा विगयजीवकलेवरेसु वा थीपुरिससंजोएसु वा णगरनिद्धमणेसु वा सव्वेसु चेव असुइट्ठाणेसु, एत्थ णं संमुच्छिममणुस्सा संमुच्छिंति" इति। अत्र "सव्वेसु चेव असुइट्ठाणेसु" इत्यस्य "सर्वेषु चैव अशुचिस्थानेषु" इति संस्कृतम्, अशुचिनां स्थानानि अशुचिस्थानानि तेषु=अशुचिस्थानेषु, यत्रानेकेषामशुचीनामुच्चारादीनां स्थितिस्तत्रेत्यर्थः।

अयमाशयः-यथा पृथिव्यादीनां परकायशस्त्रेण परिणत्वे सति सचित्तत्वमपगच्छति तथोच्चारादीनां प्रस्रवणादिसाङ्कर्ये सति संमूर्च्छिमजीवोत्पत्तिस्थानत्वापगमः

'अशुचिस्थान होनेसे मुखजल जीवोत्पत्तिका स्थान है। ऐसा कहना बेजड है। जीवोत्पत्तिके जितने स्थान है उन सबका निर्देश प्रज्ञापनासूत्रमें किया है "उच्चारेसु वा" इत्यादि।

अर्थात् "उच्चार (विष्ठा) में, प्रस्रवण (मूत्र) में, कफमें, नाकके मैलमें, कैमें, पित्तमें, पीवमें, खूनमें, शुक्रमें, शुक्रपुद्गलपरिशाट (शुष्क शुक्रपुद्गलोके फिर भीने होने) में, प्राणीकी लाशमें, स्त्रीपुरुषके संयोगमें, नगरकी गटरमें, इन सब अशुचियोके स्थानोमें समूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होते है।" यहाँ सब अशुचियोके स्थानोसे तात्पर्य यह है कि जहाँ उच्चार आदि अनेक अशुचियोकी स्थिति हो वह स्थान।

मतलब यह कि-परकाय शस्त्रसे परिणत होने पर पृथिवीकाय आदि अचित्त हो जाते है, उसी प्रकार जब उच्चार आदि प्रस्रवण आदिके साथ मिल जाते है, तब उनमें समूर्च्छिम जीवोको उत्पन्न करनेकी शक्ति रहती है या नहीं ? शिष्यके ऐसे प्रश्नकी सभावना होने पर खुलासा करनेके लिए अलग कहा है कि "सब अशुचिस्थानो में।" इस वाक्यका "उक्त अशुचियों के स्थानों के सिवाय अन्य स्थानो में" यह अर्थ नहीं है। उपर्युक्त कथन करनेसे यह स्वयं

'અશુચિસ્થાન હોવાથી મુખજલ જીવોત્પત્તિનુ સ્થાન છે' એમ કહેવુ બિલકુલ અમૂલક છે જીવોત્પત્તિનાં જેટલાં સ્થાનો છે એ બધાનો નિર્દેશ પ્રજ્ઞાપના-સૂત્રમા કરેલો છે: उच्चारेसु वा ઇત્યાદિ. "ઉચ્ચાર (વિષ્ઠા)મા, પ્રસ્રવણ (પિસાબ)માં, કફમા, નાકના લીટમાં, વમન ઉલટીમા પિત્તમા, પરૂમા, લોહીમા, શુક્ર-વીર્યમા, શુક્રપુદ્‌ગલપરિશાટમાં (શુક્રના સુકાયલા પુદ્‌ગલ ભીના થવામા), પ્રાણીના મુડદામા સ્ત્રીપુરુષના સમાગમમા, નગરની ખાળો (ગટરો) માં એ બધાં અશુચિના સ્થાનોમાં સમૂર્ચ્છિમ મનુષ્ય ઉત્પન્ન થાય છે" અહીં સર્વ અશુચિઓનું તાત્પર્ય એ છે કે જ્યા ઉચ્ચાર આદિ અનેક અશુચિઓની સ્થિતિ હોય તે સ્થાન

મતલબ એ છે કે-પરકાય શસ્ત્રથી પરિણત થતા પૃથ્વીકાય આદિ અચિત્ત થઇ જાય છે, એ-રીતે જ્યારે ઉચ્ચાર આદિ પ્રસ્રવણ આદિની સાથે મળી જાય છે, ત્યારે તેમાં સમૂર્ચ્છિમ જીવોને ઉત્પન્ન કરવાની શક્તિ રહે છે કે નહિ ? શિષ્યના એવા પ્રશ્નની સંભાવના હોવાથી ખુલાસો કરવાને માટે જૂદું કહ્યુ છે કે "સર્વ અશુચિઓના સ્થાનો સિવાય અન્ય સ્થાનોમા" આ વાક્યનો અર્થ 'ઉક્ત અશુચિઓનાં સ્થાનો સિવાય અન્ય સ્થાનોમાં"

स्यादिति शिष्यशङ्कासंभावनायां तन्निरसनार्थमेव पृथक्कृत्येदमुक्तम्—"सव्वेसु चेव असुइट्ठाणेसु" इति, न त्वत्रानुक्तानामशुचीनां स्थानेषु, इति तदाशयः। एतेनोच्चारादीनां संमूर्च्छिमजीवोत्पत्तिस्थानत्वादेव तत्साङ्कर्येऽपि तादृशजीवोत्पत्तिस्थानत्वं सुतरां सिद्धमिति "सव्वेसु चेव असुइट्ठाणेसु" इति पुनरभिधानमसङ्गतं व्यर्थं च स्यादितिवादिनः परास्ताः, उक्तशङ्कावारणाय तथाऽभिधानस्याऽऽवश्यकत्वात्।

अयमर्थश्च भगवद्वाक्यादेव स्फुटीभवति, तथाहि—सर्वेषां मुखनिर्गतपदार्थानां जीवोत्पत्तिस्थानत्वे लाघवानुरोधेन "मुहनिग्गएसु सव्वेसु चेव दव्वेसु" इत्येव वक्तव्ये पुनः खेलेसु वा वंतेसु वा पित्तेसु वा" इति तत्तन्नामनिर्देशप्रयत्नो भगवत्कृतो व्यर्थः स्यात्, तस्मान्निर्दिष्टेतरपदार्थे जीवोत्पत्तिर्न भवतीति स्पष्ट प्रतीयते। अथवा अणीयस्सु भाषणकालिकेषु मुखोत्पतितजलकणेषु जीवोत्पत्तौ सत्यां भगवता शिष्याणां स्पष्टप्रतिपत्तये—"खेलेसु वा वंतेसु वा" इत्यादिवत् "मुहजलकणेसु वा" इति वाक्येन तेऽपि पृथक्कृत्य निर्देष्टव्याः स्युः, इति मुखजलकणानां भगवदनुक्तत्वान्न तत्र जीवोत्पत्तिर्भ-

सिद्ध हो गया कि जब उच्चार आदि समूर्च्छिम जीवो की उत्पत्तिके स्थान है तब उन स्थानो मेंसे यदि दो या तीन आदि मिल जावें तो भी वे जीवोकी उत्पत्तिके स्थान रहेंगे। अतएव जो लोग ऐसा कहते है कि पूर्वोक्त अर्थ करनेसे 'सव्वेसु चेव असुइट्ठाणेसु" कहना व्यर्थ और असगत हो जायगा, वे परास्त हो गये। क्यों कि शिष्यकी पूर्वोक्त शकाका निवारण करनेके लिए उस कथनकी आवश्यकता है।

यह अर्थ भगवानके वचनसे ही निकलता है, क्यो कि यदि मुखसे निकलने वाले सब पदार्थ जीवोत्पत्तिके स्थान होते तो सक्षेप करनेके लिए केवल इतना कह देते कि 'मुहनिग्गएसु सव्वेसु चेव दव्वेसु' अर्थात् मुखसे निकलने वाले सब पदार्थोंमें समूर्च्छिम जीव उत्पन्न होते है। "खेलेसु वा वंतेसु वा पित्तेसु वा" इस प्रकार अलग अलग भगवान् न फरमाते। इसलिए सूत्रमें निर्देश किये हुए पदार्थोंके सिवाय अन्य किसी पदार्थमें जीवोकी उत्पत्ति नहीं होती, यह बात स्पष्ट

એવો નથી. ઉપર મુજબ કથન કરવાથી એ સ્વયસિદ્ધ થઇ ગયુ કે જો ઉચ્ચાર આદિ સંમૂર્ચ્છિમ જીવોની ઉત્પત્તિનાં સ્થાન છે તો એ સ્થાનોમા જો બે યા ત્રણ આદિ મળી જાય તો પણ તે જીવોની ઉત્પત્તિનાં સ્થાનો રહેશે. તેથી કરીને જે લોકો એમ કહે છે કે પૂર્વોક્ત અર્થ કરવાથી सव्वेसु चेव असुइट्ठाणेसु કહેવું વ્યર્થ અને અસંગત થઈ જશે, તેઓ પરાસ્ત થઈ ગયા. કારણ કે શિષ્યની પૂર્વોક્ત શંકાનું નિવારણ કરવા માટે એ કથનની આવશ્યકતા છે.

આ અર્થ ભગવાનના વચનોમાથી જ નીકળે છે. કારણ કે જો મુખથી નીકળનારા બધા પદાર્થો જીવોત્પત્તિનાં સ્થાનો હોત તો સક્ષેપ કરવાને કેવળ એટલું જ કહી દેત કે 'मुहनिग्गएसु सव्वेसु चेव दव्वेसु અર્થાત્ મુખથી નીકળનારા બધા પદાર્થોમાં સંમૂર્ચ્છિમ જીવો ઉત્પન્ન થાય છે 'खेलेसु वा वंतेसु वा पित्तेसु वा' એ પ્રમાણે ભગવાન્ અલગ અલગ કહેત નહિ. તેથી કરીને સૂત્રમાં નિર્દેશેલા પદાર્થો સિવાય અન્ય કોઈ પદાર્થમાં જીવોની

वतीति निश्चीयते । इदमत्र तत्त्वम्—

शिष्याणां जीवोत्पत्तिस्थानप्रतीतिं विना सम्यक् संयमपालनं न स्यादिति हेतोः स्पष्टीकृत्य सकलानि संमूर्च्छिमजीवोत्पत्तिस्थानानि बोधयितुं भगवता तत्तन्नामनिर्देश-प्रयत्नोऽङ्गीकृतः, साकल्येन संमूर्च्छिमजीवोत्पत्तिस्थानपरिगणनतात्पर्याभावे तु भग-वान्—"सव्वेसु चेव असुइट्ठाणेसु" इत्येव ब्रूयात्, उच्चारप्रस्रवणादीनामप्यशुचिस्थान-तयैव तादृशजीवोत्पत्तिस्थानत्वप्रतीतिसिद्धेः, तथा च तत्तदशुचिस्थाननिर्देशस्य वैयर्थ्या-पत्तिः । जीवोत्पत्तिस्थानपरिगणनतात्पर्याङ्गीकारे तु कियत्स्वशुचिस्थानेषु संमूर्च्छिम-

---

प्रतीत होती है । अथवा यदि भाषण करते समय निकले हुए थोडेसे जलकणोमें जीवोकी उत्पत्ति होती तो शिष्योको स्पष्ट बोध करानेके लिए भगवानने जैसे 'खेलेसु वा वंतेसु वा', इत्यादि अलग अलग नाम गिनाये है वैसे ही "मुहजलकणेसु वा" ऐसा और एक सूत्रपाठ रख देते । अतः निश्चित है कि मुखसे निकलने वाले जलकणोमें समूर्च्छिम जीव उत्पन्न नहीं होते, क्योंकि भगवान्ने उसे जीवोत्पत्तिका स्थान नहीं बताया है । तात्पर्य यह है कि—शिष्य जबतक यह न जानले कि जीवोके उत्पत्तिस्थान कौन कौन है ? तब तक सयमका सम्यक् प्रकार परिपालन नहीं कर सकते । इसीसे भगवान्ने जीवोत्पत्तिके स्थानोका खुलासा ज्ञान करानेके लिए अलग अलग नाम गिनाये है। यदि समूर्च्छिम जीवोकी उत्पत्तिके सब स्थान गिना-नेका मतलब न होता तो सिर्फ 'सव्वेसु चेव असुइट्ठाणेसु' (अशुचि के सब स्थानो में) इतना ही कह देते । क्यों कि उच्चार प्रस्रवण आदि सभी अशुचिस्थान होनेके कारण समूर्च्छिम जीवों की उत्पत्तिके स्थान है, यह बात प्रतीतिसे सिद्ध है । ऐसी अवस्थामें अलग-अलग नाम गिनाना अकारण हो जायगा । अगर ऐसा माने कि जीवों की उत्पत्तिके स्थान गिनानेका मतलब है तो

ઉત્પત્તિ થતી નથી એ વાત સ્પષ્ટ પ્રતીત થાય છે અથવા જો ભાષણ કરતી વખતે નીકળતા થોડા જલકણોમાં જીવોની ઉત્પત્તિ થતી હોય તો શિષ્યોને સ્પષ્ટ બોધ કરાવવાને ભગવાને જેમ 'खेलेसु वा वंतेसु वा' ઇત્યાદિ અલગ અલગ નામ ગણાવ્યા છે તેમ 'मुहजलकणेसु वा' એવો એક વધારે સૂત્રપાઠ રાખ્યો હોત તેથી કરીને નિશ્ચિત છે કે મુખથી નીકળનારા જલકણોમા સંમૂર્ચ્છિમ જીવો ઉત્પન્ન થતા નથી, કારણ કે ભગવાને એને જીવોત્પત્તિનુ સ્થાન બતાવ્યું નથી

તાત્પર્ય એ છે કે—જ્યાં સુધી શિષ્ય જાણી ન લે કે જીવોના ઉત્પત્તિ સ્થાન કયા કયાં છે, ત્યાં સુધી તે સયમનુ સમ્યક્ પ્રકારે પરિપાલન કરી શકતો નથી તેથી ભગવાને જીવો ત્પત્તિનાં સ્થાનોનું ખુલાસાથી જ્ઞાન કરાવવાને અલગ અલગ નામો ગણાવ્યા છે જો જીવોની ઉત્પત્તિના બધા સ્થાનો ગણાવવાની મતલબ ન હોય તો માત્ર 'सव्वेसु चेव असु-इट्ठाणेसु' (અશુચિનાં બધા સ્થાનોમા) એટલુ જ કહી દેત કારણ કે ઉચ્ચાર પ્રસ્રવણ આદિ બધા અશુચિસ્થાનો હોવાને કારણે સમૂર્ચ્છિમ જીવોની ઉત્પત્તિના સ્થાન છે, એ વાત પ્રતીતિથી સિદ્ધ છે એવી સ્થિતિમા અલગ અલગ નામો ગણાવવા અહેતુક થઈ જાય અગર એમ માનો કે જીવોની ઉત્પત્તિના સ્થાનો ગણાવવાની મતલબ છે તો જિજ્ઞાસુ શિષ્યોનો

जीवा उत्पद्यन्ते ? इति जिज्ञासोपशमो न स्यादिति तत्तदशुचिस्थाननिर्देशस्य नानर्थक्यं, प्रत्युताऽऽवश्यकतया सार्थक्यमेव, अतएव "उवत्थिंदियनिग्गएसु दव्वेसु वा" (उपस्थेन्द्रियनिर्गतेषु द्रव्येषु) इत्यनुक्त्वा पुनः पुनः—"पासवणेसु वा सुक्केसु वा सुक्कपुग्गलपरिसाडेसु वा सोणिएसु वा थीपुरिससंजोएसु वा" इति तत्तन्नाम्ना भगवानुपादिशत्, अन्यथा "स्त्रीपुरुषसंयोगातिरिक्तेषु केवलशुक्रशोणितादिषु संमूर्च्छिमजीवा उत्पद्यन्ते न वा ?" इति संशयानपगमे सति मुनीनां संयमपालनं संकटापन्नं स्यादिति ।

वस्तुतस्तु भाषणकाले मुखोत्पतितानां जलकणानामशुचित्वमेव निर्मूलतया दुर्वचम्, शास्त्रे प्रज्ञापनासूत्रोक्तोच्चारादिष्वेवाशुचिशब्दप्रयोगदर्शनात्, मुखोत्पतितजलकणार्थे तत्प्रयोगानुपलब्धेश्च, तथाहि व्यवहारसूत्रभाष्ये तृतीयोद्देशके —

जिज्ञासु शिष्यो का सन्देह तब तक दूर नहीं हो सकता जब तक उन्हें साफ न बता दिया जाय कि किन-किन जगहो में समूर्च्छिम जीवोका जन्म होता है । इसलिए अलग-अलग गिनाना वृथा नहीं है, किन्तु आवश्यक होनेसे सार्थक है, इसी कारण "उवत्थिंदियनिग्गएसु वा" (उपस्थेन्द्रियनिर्गतेषु) ऐसा न कहकर बारंबार 'पासवणेसु वा सुक्केसु वा सुक्कपुग्गलपरिसाडेसु वा सोणिएसु वा थीपुरिससजोएसु वा" इस प्रकार हरेकका अलग-अलग नाम गिना कर भगवान्ने कथन किया है । ऐसा कथन न करते तो यह सशय बना रहता कि स्त्रीपुरुषके सभोगके सिवाय केवल शुक्र शोणित आदिमें समूर्च्छिम जीव उत्पन्न होते है या नहीं ? इस प्रकारके सन्देहसे मुनियोको सयम—पालन करना मुश्किल हो जाता ।

वास्तवमें मुखसे निकलने वाले जलकणोको अशुचि कहना ही खोटा है, क्योकि शास्त्रमें प्रज्ञापनासूत्रोक्त उच्चार आदि ही 'अशुचि' शब्दसे कहे गये है, और मुखसे निकलने वाले जलकणके अर्थमें 'अशुचि' शब्दका प्रयोग नहीं पाया जाता । व्यवहारसूत्रके भाष्यमें, तीसरे

सदेह त्यां सुधी दूर नहि थई शके के ज्या सुधी तेमने साफ न बतावी देवामा आवे के कई कई जग्याओमां समूर्च्छिम जीवोनो जन्म थाय छे, तेथी करीने अलग अलग गणाववुं ए वृथा नथी, किन्तु आवश्यक होवाथी सार्थक छे कारणे उवत्थिंदियनिग्गएसु वा' (उपस्थेन्द्रियनिर्गतेषु) एम न कहेतां वारंवार 'पासवणेसु वा सुक्केसु वा सुक्कपुग्गलपरिसाडेसु वा सोणिएसु वा थीपुरिससंजोएसु वा' ए रीते दरेकना अलग अलग नामो गणावीने भगवाने कथन कर्युं छे. एवुं कथन न करत तो ए संशय पडत के स्त्री-पुरुषना संभोग विना केवळ शुक्रशोणित आदिमां संमूर्च्छिम जीवो उत्पन्न थाय छे के नहि ? ए प्रकारना संदेहथी मुनिओने सयम पालन करवानुं मुश्केल थई पडत.

वास्तवमां मुखमाथी नीकळनारा जळकणोने अशुचि कहेवा ए खोटुं छे, कारण के शास्त्रमां प्रज्ञापनासूत्रोक्त उच्चार आदिने ज अशुचि शब्दथी ओळखाववामा आव्या छे अने मुखमांथी नीकळनारा जळकणना अर्थमां अशुचि शब्दनो प्रयोग मळी आवतो नथी व्यवहार सूत्रना भाष्यमां, त्रीजा उद्देशमा 'दव्वे भावे असुई' इत्यादि २८९ मी गाथानुं व्या-

"दव्वे भावे असुई भावे आहारवंदणादीहिं" इत्यादिगाथा-(२८६) व्याख्यानावसरे - "अशुचिर्द्विधा-द्रव्यतो भावतश्च, तत्र योऽशुचिना लिप्तगात्रो यो वा पुरीषमुत्सृज्य पुतौ न निर्लेपयति स द्रव्यतोऽशुचिः" इत्युक्तम्, किञ्च-"दव्वे भावे असुई दव्वंमि विट्ठमादिलित्तो उ ।" इत्यादिगाथा-(२८७) व्याख्यानावसरे "अशुचिर्द्विधा द्रव्ये भावे च, तत्र द्रव्ये विष्टादिना लिप्तः, आदिशब्दा-मूत्रश्लेष्मादिपरिग्रहः" इत्यभिहितम् । प्रज्ञापनासूत्रोक्ता उच्चारादय एवाशुचिपदस्यार्थ इत्याशयेनैव प्रकृते द्रव्यभावभेदेन द्विधा विभाजितेऽप्यशुचिपदार्थे मुखनिर्गतविप्रुषामनुपादानं कृतम् । आवश्यकसूत्रे वन्दनाख्यतृतीयाध्ययने एकादशाधिकैकशततम-(१११)-गाथाव्याख्यायां हरिभद्रसूरिणाऽप्यशुचिस्थानशब्दस्य विद्प्रधानस्थानार्थकत्वमुक्तम् । एवमेव दर्शनशुद्धि-

उद्देशमें "दव्वे भावे असुई" इत्यादि २८६ वीं गाथाका व्याख्यान करते समय कहा है- अशुचि दो प्रकारकी है (१) द्रव्य अशुचि और (२) भाव अशुचि । जिस व्यक्तिका शरीर अशुचिसे लिप्त हो अथवा जो विष्टाका त्याग करके (टट्टी जाकर) मलद्वार नहीं धोता उस व्यक्तिको द्रव्यसे अशुचि कहते है, इत्यादि ।

तथा इसी व्यवहार भाष्यके तीसरे उद्देशेको 'दव्वे भावे असुई दव्वंमि विट्ठमादिलित्तो उ" इस २८७ वीं गाथाकी व्याख्या करते समय टीकाकारने कहा है-विष्ठाआदिसे लिप्तको द्रव्य अशुचि कहते है । यहाँ आदि शब्दसे मूत्र और श्लेष्म आदिको ग्रहण करना चाहिए, ऐसा कहा है । प्रज्ञापनासूत्रमें कहे हुए उच्चार आदि हो अशुचि पदका अर्थ है, इसी आशयसे प्रकृतमें द्रव्य भावका भेद कर देने पर भी अशुचि पदार्थोंमें मुखसे निकलने वाले जलकणोका ग्रहण नहीं किया है ।

आवश्यकसूत्रके वन्दना नामक तीसरे अध्ययनमें हरिभद्रसूरिने १११वीं गाथाकी व्याख्या करते समय अशुचि शब्दका अर्थ विट्प्रधान स्थान किया है । दर्शनशुद्धि नामक ग्रन्थमें भी

ખ્યાન કરતી વખતે કહ્યુ છે કે—

અશુચિ બે પ્રકારની છે · (૧) દ્રવ્ય અશુચિ અને (૨) ભાવ અશુચિ. જે વ્યક્તિનું શરીર અશુચિથી લેપાયલુ હોય અથવા જે વિષ્ઠાનો ત્યાગ કરીને (જાજરૂ જઈને) મળદ્વાર નથી ધોતો એ વ્યક્તિને દ્રવ્યથી અશુચિ કહે છે, ઈત્યાદિ

તથા—એ વ્યવહારસૂત્ર ભાષ્યની 'दव्वे भावे असुई दव्वंमि विट्ठमादिलित्तो उ' એ ૨૮૭ મી ગાથાની વ્યાખ્યા કરતી વખતે કહ્યુ છે કે—

વિષ્ઠાઆદિથી લિપ્તને દ્રવ્ય અશુચિ કહે છે અહીં 'આદિ' શબ્દથી મૂત્ર અને શ્લેષ્મ આદિનું ગ્રહણ કરવુ જોઈ એમ કહ્યું છે. પ્રજ્ઞાપનાસૂત્રમા કહેલા ઉચ્ચાર આદિ જ અશુચિ શબ્દનો અર્થ છે, એ આશયથી પ્રકૃતમા દ્રવ્યભાવનો ભેદ બતાવતા છતા પણ અશુચિ પદાર્થોમા મુખથી નીકળતા જળકણોને ગ્રહણ કર્યા નથી.

આવશ્યક સૂત્રના વંદના નામક ત્રીજા અધ્યયનમા હરિભદ્ર સૂરિએ ૧૧૧ મી ગાથાની વ્યાખ્યા કરતા અશુચિ શબ્દનો અર્થ વિટ્પ્રધાન સ્થાન એમ કર્યો છે દર્શનશુદ્ધિ નામક ગ્રંથમાં

नामके ग्रन्थेऽपि प्रतिपादितम् । उत्तराध्ययनसूत्रे एकोनविंशेऽध्ययने द्वादशगाथाव्याख्यायां भावविजयगणिनाऽपि–"अशुचिभ्यां=शुक्रशोणिताभ्यां संभवम्=उत्पन्नम् अशुचिसम्भवम्" इत्युक्तम् । तत्रैव कमलसंयमोपाध्यायेनापि सर्वार्थसिद्धिटीकायाम्—"अशुचिसम्भवम्=अशुचिरूपशुक्रशोणितोत्पन्नम्"–इति व्याख्यातम्, सूत्रकृताङ्गे द्वितीयश्रुतस्कन्धे द्वितीयाध्ययने नरकवर्णने पट्षष्टितम-(६६) सूत्रे–'असुई' इत्यस्य टीकायाम्–"अशुचयो विष्ठासृक्क्लेदप्रधानत्वात्" इति शीलाङ्गाचार्येण कथितम् । क्लेदः प्रस्वेदः (पसीना) इति हिन्दीशब्दसागरकोशः । स च मुखजलाद्भिन्न इत्यतिरोहितमेव सर्वेषाम् । प्रस्वेदेऽपि न संमूर्च्छिमजीवोत्पत्तिः, तत्परिगणने तस्यानुक्तत्वात् । पिण्डनिर्युक्तौ च पूतिकर्मदोपभेदस्य द्रव्यपूतेरुदाहरणे अशुचिगन्धशब्दस्य पुरीषगन्धार्थकत्वं निगदितम् ।

ऐसा ही प्रतिपादन किया है । उत्तराध्ययनसूत्रमें उन्नीसवे अध्ययनकी बारहवीं गाथाकी व्याख्या करते समय भावविजयगणिने कहा है–"अशुचिभ्यां=शुक्रशोणिताभ्यां सभवम्=उत्पन्नम् अशुचिसभवम् ।" इसी सूत्रकी सर्वार्थसिद्धि नामक टीकामें कमलसयम उपाध्यायने ऐसा व्याख्यान किया है–"अशुचिसभवम्=अशुचिरूप–शुक्रशोणितोत्पन्नम् ।

सूत्रकृताङ्गसूत्रमें द्वितीय श्रुतस्कन्धके द्वितीय अध्ययनमें नरकके वर्णनमें ६६ वे सूत्रमें 'असुई' पदकी टीकामें शीलाङ्गाचार्यने कहा है–"अशुचयो विष्टासृक्क्लेदप्रधानत्वात् ।" यहाँ क्लेद पसीनाको कहा है । यह बात सबको विदित ही है कि मुखसे निकलने वाले जलकण और पसीना एक नहीं है दोनों अलग-अलग है । पसोनेमें भी समूर्च्छिम जीव उत्पन्न नहीं होते, क्योंकि समूर्च्छिम जीवोके उत्पत्तिस्थानोकी गिनती करते समय भगवान्ने पसीना नहीं कहा है । पिण्डनिर्युक्तिमें पूतिकर्मदोपके भेद द्रव्यपूतिके उदाहरणमें 'अशुचिगन्ध' शब्दको विष्टा-गन्ध वाले अर्थमें प्रयोग किया है ।

પણ એવુ જ પ્રતિપાદન કર્યું છે. ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રમાં ૧૯ મા અધ્યયનની બારમી ગાથાની વ્યાખ્યા કરતાં ભાવવિજયગણિએ કહ્યુ છે કે—अशुचिभ्यां = शुक्रशोणिताभ्यां संभवम् = उत्पन्नम् अशुचिर्संभवम् । આ સૂત્રની સર્વાર્થસિદ્ધિ નામક ટીકામા કમલસંયમ ઉપાધ્યાયે એવું વ્યાખ્યાન કર્યું છે કે—अशुचिर्संभवम् अशुचिरूप शुक्रशोणितोत्पन्नम् ।

સૂત્રકૃતાગ સૂત્રના દ્વિતીય શ્રુતસ્કંધના બીજા અધ્યયનમાં નરકના વર્ણનમા ૬૬ મા સૂત્રમાં असुई શબ્દની ટીકામા શીલાંગાચાર્યે કહ્યુ છે કે अशुचयो विष्टासृक्क्लेदप्रधानत्वात् । અહીં ક્લેદ પરસેવાને કહ્યો છે એ વાત સૌ જાણે છે કે મુખથી નીકળતા જળકણ અને પરસેવો એક નથી-બેઉ જૂદા-જૂદા છે. પરસેવામાં પણ સમૂર્ચ્છિમ જીવો ઉત્પન્ન થતા નથી, કારણ કે સમૂર્ચ્છિમ જીવોનાં ઉત્પત્તિસ્થાનોની ગણત્રી કરતી વખતે ભગવાને પરસેવો કહેલો નથી. પિંડનિર્યુક્તિમા પૂતિકર્મ દોષના ભેદ દ્રવ્યપૂતિના ઉદાહરણમા अशुचि गंध શબ્દનો વિષ્ટા-ગંધવાળા અર્થમાં પ્રયોગ કર્યો છે.

मानवधर्मशास्त्रेऽपि भाषणकालिकमुखोद्गतविप्रुषां मेध्यत्वमेवोक्तं नत्वशुचित्वं, यथा मनुस्मृतौ पञ्चमाध्याये—

"मक्षिका विप्रुषश्छाया, गौरश्वः सूर्यरश्मयः ।
रजो भूर्वायुरग्निश्च, स्पर्शे मेध्यानि निर्दिशेत् ॥ ५ ॥" १३३॥ इति ।

किञ्च दोरकाश्रयणमेव हिंसानिदानं मत्वा हस्तेन शिरःपश्चाद्भागे ग्रन्थिदानेन वा मुखवस्त्रिकां धारयताऽपि भाषणकालिकमुखोत्पतितजलकणेषु संमूर्च्छिमजीवोत्पत्तिस्थानत्वाभावोपपादनाय प्रकृतोपात्तानि प्रमाणान्यवश्यं शरणीकरणीयानि, अन्यथा तेषामपि धर्मोपदेशकाले द्वित्रहोरापर्यन्तं भाषणे मुखोपरि मुखवस्त्रिकाधारणस्याऽऽवश्यकतया तत्र मुखोत्पतितजलकणैरार्द्रतापत्तिर्वारयितुमशक्यैव, लोके हि अनावृतमुखेन पुस्तकं पठतां परं प्रति ब्रुवता च मुखविप्रुषः पुस्तके परदेहे च पतन्त्यो लक्ष्यन्ते, पुनः समीपत-

---

मानवधर्मशास्त्रमें भाषण करते समय निकलने वाले जलकणोंको अशुचि नहीं कहा है। मनुस्मृति पाँचवाँ अध्याय—

"मक्षिका विप्रुषश्छाया, गौरश्वः सूर्यरश्मयः ।
रजो भूर्वायुरग्निश्च, स्पर्शे मेध्यानि निर्दिशेत् ॥,' ॥५॥१३३।

डोरा धारण करनेको ही हिंसाका कारण मान कर हाथसे अथवा सिरके पीछे गाँठ लगा कर मुखवस्त्रिका धारण करने वालोको भी इन प्रमाणोंकी शरण लेनी चाहिए; जो यह बतानेके लिए यहाँ दिये गये हैं कि भाषण करते समय मुखसे निकलने वाले जलकणोंमें संमूर्च्छिम जीव उत्पन्न नहीं होते। अन्यथा धर्मोपदेश देते समय वे दो-दो तीन तीन घण्टे बोलते है उस समय मुखवस्त्रिका धारण करना आवश्यक होनेके कारण मुखसे निकलने वाले जलकणोंसे मुखवस्त्रिका गीली हो जायगी और इस आपत्ति का निवारण करना शक्य नहीं है।

लोकमें खुले मुह पुस्तक पढनेवालोंके तथा दूसरोंसे वार्तालाप करने वालोके मुखसे

માનવધર્મશાસ્ત્રમાં ભાષણ કરતી વખતે નીકળતા જળકણોને અશુચિ કહ્યા નથી મનુસ્મૃતિના પાંચમા અધ્યાયમાં કહ્યું છે—

मक्षिका विप्रुषश्छाया, गौरश्व सूर्यरश्मयः ।
रजो भूर्वायुरग्निश्च, स्पर्शे मेध्यानि निर्दिशेत् ।५-१३३।

દોરા ધારણ કરવાને જ હિંસાનું કારણ માનીને હાથથી અથવા શિરની પાછળ ગાંઠ વાળીને મુખવસ્ત્રિકા ધારણ કરનારાઓએ પણ આ પ્રમાણોનું શરણ લેવું જોઈએ, જે એ બતાવવાને માટે અહીં આપવામાં આવ્યા છે કે—ભાષણ કરતી વખતે મુખથી નિકળતા જલકણોમાં સંમૂર્ચ્છિમ જીવ ઉત્પન્ન નથી થતા, અન્યથા વ્યાખ્યાન વાચતી વખતે બબ્બે ત્રણ-ત્રણ કલાક સુધી બોલે છે, ત્યારે મુખવસ્ત્રિકા ધારણ કરવી આવશ્યક હોવાથી મુખથી નીકળતા જલકણોથી મુખવસ્ત્રિકા ભીની થઈ જશે અને એ આપત્તિ નિવારવાનું શક્ય નથી

લોકોમાં ખુલ્લે મુખે પુસ્તક વાચનારના તથા બીજાઓ સાથે વાર્તાલાપ કરનારના

स्वति मुखवस्त्रिकायां न ताः पतिष्यन्तीति कल्पना किं दुराग्रहं नावेदयेदित्यलम् ।

नन्वेवं सूक्ष्मव्यापिसम्पातिमवायुकायादिजीवविराधनापरिहारार्थमेव यदि सदा सदोरकमुखवस्त्रिकाबन्धने सावधानता विधीयते तर्हि भोजनकाले तदपसारणावश्यकतया कथं तादृशजीवविराधनापरिहारः ?, इति चेच्चित्तमवधेहि ।

अत्र चतुर्थाध्ययने—"जयं भुंजतो भासंतो पावं कम्मं न बंधइ', इति भगवताऽभिहितम्, प्रागुक्तरीत्या मुखवस्त्रिकाबन्धनस्याऽऽवश्यकत्वेऽपि तदपसारणमन्तरेण 'भुंजतो' इति पदबोध्याया भोजनक्रियाया अनुपपत्त्या भोजनकाले मुनीना मुखवस्त्रिका मोचनीयेति गम्यते, अत एवात्र—"जयं भुजंतो' इत्यस्य यथाकल्पलब्धान्तप्रान्ताद्येवा-

---

जलकण निकल कर पुस्तक पर तथा दूसरेकी देह पर गिरते हुए देखे जाते है । फिर मुखके पास ही रहनेवाली मुखवस्त्रिका परे कण नहीं गिरेंगे, ऐसी कल्पना करना दुराग्रहको ही प्रगट करता है ।

प्रश्न—सूक्ष्म, व्यापी सपातिम तथा वायुकाय आदि जीवो की विराधनासे बचनेके लिए ही यदि सदा डोरा सहित मुखवस्त्रिका बाँधनेमें सावधानी रखी जाती है तो भोजन करते समय उन जीवो की विराधनासे कैसे बच सकते है ? क्यों कि उस समय मुखवस्त्रिका खोल लेना आवश्यक है ।

उत्तर—चित्त लगाकर सुनो । इसी (दशवैकालिक) के चौथे अध्ययनमें भगवान्ने कहा है "जयं भुंजंतो भासतो पावं कम्मं न बधइ ।" अर्थात् यतनापूर्वक आहार करने और भाषण करनेसे पापकर्मका बन्ध नहीं होता है । पहले कहे गये प्रमाणोसे मुखवस्त्रिका बांधना सिद्ध होने पर भी उसके निकाले विना 'भुजतो' पदसे बोध्य भोजनक्रिया नहीं हो सकती । इससे ऐसा तात्पर्य निकलता है कि भोजन करते समय मुनिको मुखवस्त्रिका हटा देनी चाहिये । अतः

મુખમાથી જલકણુ નીકળીને પુસ્તક પર તથા બીજાના શરીર પર પડતા જોવામા આવે છે. તો પછી મુખની પાસે જ રહેનારી મુખવસ્ત્રિકા પર કણુ નહિ પડે, એવી કલ્પના કરવી એ દુરાગ્રહને પ્રકટ કરે છે

પ્રશ્ન—સૂક્ષ્મ, વ્યાપી, સંપાતિમ તથા વાયુકાય આદિ જીવોની વિરાધનાથી બચવાને માટે જ જો સદા દોરા સાથે મુખવસ્ત્રિકા બાધવામા સાવધાની રાખવામા આવે છે તો ભોજન કરતી વખતે એ જીવોની વિરાધનાથી કેવી રીતે બચી શકાય ? કારણુ કે એ વખતે મૂખવસ્ત્રિકા છોડી નાખવાની જરૂર પડે છે

ઉત્તર—ચિત્ત રાખીને સાંભળો આ (દશવૈકાલિકના) જ ચોથા અધ્યયનમાં ભગવાને કહ્યુ છે કે 'जयं भुंजतो भासंतो पाव कम्मं न बंधइ' અર્થાત યતનાપૂર્વક આહાર કરવાથી પાપકર્મનો બધ થતો નથી પૂર્વોક્ત પ્રમાણોથી મુખવસ્ત્રિકા બાધવી એ સિદ્ધ થયા છતાં પણુ એને કાઢી નાંખ્યા વિના ભુંજંતો શબ્દથી બોધ્ય ભોજનક્રિયા થઈ શકતી નથી. તેથી એવુ તાત્પર્ય નીકળે છે કે ભોજન કરતી વખતે મુનિએ મુખવસ્ત્રિકા હટાવી દેવી જોઈએ

शनं मण्डलदोषवर्जनपूर्वकमभ्यवहरमाणः, इत्येवाशयो न तु मुखवस्त्रिकां बद्ध्वैव भुञ्जान इति, तथा चोक्तयतनापूर्वकभोजनकाले मुखवस्त्रिकापसारणमागमानुकूलमेवेति न तस्य पापकर्मबन्धनहेतुत्वम्, अनेनैवाऽऽशयेन च-"पावं कम्मं न बंधइ" इत्युक्तं भगवता।

एव च भगवत्तीर्थङ्करगणधरादिवचनपर्यालोचनेन निरवशेषसंशयतिमिरापगमपुरस्सरं प्रकाशमाने मानसे वायुकायादिविराधनापरिहाराय सदोरकमुखवस्त्रिकाबन्धनं साह्लादं स्थानमासादयति। रागद्वेषदोषाकलितचेतसां भगवद्वचनामृतरसास्वादवञ्चितानां विविधसंशयपराहते चेतसीममर्थं दुर्लक्ष्यमभिलक्ष्य हस्तदुष्प्राप्यमर्थमाकलयितुं सोपानमिवालम्बनं तेभ्यः पुरस्कर्तुं सप्रमाणमेतत् सम्यगुपपादितम्। अत्र प्रमाणतयोपन्यस्तग्रन्थनामानि विनेयबुद्धिवैमल्याय निर्दिश्यन्ते—

(१) श्री-भगवतीसूत्रम्।
(२) हितशिक्षारासः। (श्रावकऋषभदासकृतः)
(३) हरिबलमच्छीरासः (मुनिलब्धिविजयकृतः)
(१५) निशीथसूत्रम्।
(१६) बृहत्कल्पभाष्यम्।
(१७) व्यवहारभाष्यम्।
(१८) आचाराङ्गसूत्रम्।
(१९) विपाकसूत्रम्।

'जयं भुजंतो" पदका "कल्पके अनुसार प्राप्त हुआ अन्त प्रान्त आदि आहार मण्डलदोषोंका त्याग करके भोगता हुआ" ऐसा अर्थ समझना चाहिए। ऐसा नहीं कि मुखवस्त्रिका बाँधे-बाँधे आहार करे। अत एव उक्त-यतना-पूर्वक भोजनकालमें मुखवस्त्रिका त्याग देना आगमके अनुकूल है, अतः उससे पापकर्मका बन्ध नहीं होता। इसी आशयसे भगवान्ने 'पावं कम्मं न बन्धइ' कहा है।

इस प्रकार भगवान् तीर्थङ्कर गणधरादिकोंके वचनोंकी पर्यालोचना करनेसे सकलसंशयरूप अन्धकारके दूर हो जानेके कारण प्रकाशमान ऐसे हृदयमें वायुकाय आदिकी विराधनाका दोष टालनेके लिए दोरासहित मुखवस्त्रिकाका बान्धना आल्हादपूर्वक स्थानको धारण करता है।

रागद्वेषारूपी दोषोंसे दूषित भगवद्वचनामृतके रसास्वादसे वंचित पुरुषोंके अनेक दुर्विकल्पोंसे पराहत हुए चित्तमें इस अर्थको दुर्लक्ष्य समझकर उनके लिए हाथसे न प्राप्त होनेवाली

એટલે 'जयं भुंजतो' પદનો અર્થ 'કલ્પને અનુસાર પ્રાપ્ત થએલો અંત પ્રાંત આદિ આહાર મંડલ-દોષોનો ત્યાગ કરીને ભોગવતા" એ પ્રમાણે સમજવો જોઇએ એમ ન સમજવું જોઇએ કે મુખવસ્ત્રિકા બાંધી રાખીને આહાર કરે એટલે ઉક્ત-યતનાપૂર્વક ભોજનકાળમાં મુખવસ્ત્રિકાનો ત્યાગ કરવો એ આગમને અનુકૂળ છે તેથી પાપકર્મનો બંધ થતો નથી એ આશયથી ભગવાને पावं कम्मं न बंधइ કહ્યું છે

એ પ્રકારે ભગવાન્ તીર્થંકર ગણધરાદિના વચનોની પર્યાલોચના કરવાથી સકલ સંશયરૂપ અંધકાર દૂર થઇ જવાને લીધે પ્રકાશમાન એવા હૃદયમાં, વાયુકાય આદિની વિરાધનાનો દોષ ટાળવાને માટે દોરાસહિત મુખવસ્ત્રિકાનું બાંધવું તે આહ્લાદપૂર્વક સ્થાનને ધારણ કરે છે

રાગદ્વેષ રૂપી દોષથી દૂષિત, ભગવદ્વચનામૃતના રસાસ્વાદથી વંચિત એવા પુરૂષોના અનેક દુર્વિકલ્પોથી પરાસ્ત એવા ચિત્તમાં આ અર્થને દુર્લક્ષ્ય સમજીને તેમને માટે હાથથી

(४) योगशास्त्रम् (हेमचन्द्राचार्य०)
(५) ओघनिर्युक्तिः ।
(६) प्रवचनसारोद्धारः ।
(७) प्रकरणरत्नाकरः ।
(१०) उत्तराध्ययनसूत्रटीकाः ३ ।
(१) सर्वार्थसिद्धिटीका ।
(२) भावविजयकृतवृत्तिः ।
(३) पाईटीका ।
(११) विशेषावश्यकबृहद्वृत्तिः
(१२) अन्तकृद्दशाङ्गम् ।
(१३) आवश्यकसूत्रटीका ।(हारिभद्रीया)
(१४) ज्ञाताधर्मकथाङ्गम् ।
(२०) सामाचारी । (देवचन्द्रसूरिकृता)
(२१) प्रज्ञापनासूत्रम् ।
(२२) भावप्रकाशः ।
(२३) सुश्रुतसंहिता ।
(२४) योगचिन्तामणिः ।
(२५) माधवनिदानम् ।
(२६) तिब्बअकब्बर ।
(२७) शरीरविज्ञानम् ।
(२८) मानवधर्मशास्त्रम् ।
(२९) पिण्डनिर्युक्तिः ।
(३०) सूत्रकृताङ्गम् ।
(३१) दशवैकालिकसूत्रम् । इति ।

॥ इति मुखवस्त्रिकाविचारः ॥

तपः=तपति-ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधं कर्म दहतीति तपः, तच्च बाह्याभ्यन्तरभेदाद्द्विधा, तत्र बाह्यं तपः षड्विधम्, तथा चोक्तम्—

" अणसणमूणोयरिया, भिक्खायरिया य रसपरिच्चाओ ।
कायकिलेसो संलीणया य बज्झो तवो होइ ॥ १ ॥ ', इति ।

छाया-"अनशनमूनोदरिका, भिक्षाचर्या च रसपरित्यागः ।
कायक्लेशः संलीनता च, बाह्यं तपो भवति ॥ १ ॥ "

(१) अनशनं=चतुर्थभक्तादिषाण्मासिकान्तं यावज्जीवनं वाऽशेषाहारपरिहारः । (२)

वस्तुकी प्राप्तिके लिए सोपान (सीढी) की तरह आलम्बन अगाडी रखकर यह सब सप्रमाण प्रतिपादित किया गया है । यहां विनीत शिष्यकी बुद्धिका विकासके लिए प्रमाणरूपसे दिये गये ग्रन्थोंकी कुछ नामावली संस्कृत टीकामें दी गई है, पाठकगण वहा देख लेवे ॥

॥ इति मुखवस्त्रिकाविचार ॥

तप-जिससे ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्म भस्म हो जावे उसे तप कहते है । वह दोप्रकारका है-(१) बाह्य और (२) आभ्यन्तर । बाह्य तप छह प्रकारका है-

---

न प्राप्त थनारी वस्तुनी प्राप्तिने माटे सोपान (सीडी)ना जेवुं आलंबन आगळ राखीने आ बधु सप्रमाण प्रतिपादित करवामा आव्युं छे

अहीं विनीत शिष्यनी बुद्धिना विकासने माटे प्रमाणरूपे आपेला ग्रंथोनी नामावली संस्कृतटीकामां आपवामा आवी छे, त्यांथी पाठकोए जोई लेवी.

इति मुखवस्त्रिकाविचार समाप्त

तप—जेथी ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्म भस्मीभूत थई जाय तेने तप कहे छे. तप बे प्रकारनुं छे (१) बाह्य अने (२) आभ्यंतर बाह्य तप छ प्रकारनु छे—(१) अनशन, (२) ऊनोदरी, (३) भिक्षाचर्या, (४) रसपरित्याग, (५) कायक्लेश, (६) संलीनता

ऊनोदरिका=यावताऽन्नादिनोदरं परिपूर्यते तत्र कवलमात्रमपि न्यूनयित्वाऽभ्यवहरणम्। (३) भिक्षाचर्या=स्वाध्यायाविरोधियथाविधिविशुद्धभिक्षाकृते चरणम् (४) रसपरित्यागः =दुग्धादिविकृतित्याग । (५) कायक्लेशः=शीतोष्णादिसहिष्णुत्वं केशलुञ्चनं च। (६) संलीनता=स्त्रीपशुपण्डकरहितवसतौ कूर्मवदङ्गोपाङ्गाद्याकुञ्चनपूर्वकावस्थानम्। आभ्यन्तरमपि तपः षड्विधं, तथा चोक्तम्—

" पायच्छित्तं विणओ वेयावच्चं तहेव सज्झाओ।
झाणं च विउस्सग्गो एसो अब्भितरो तवो ॥ १ ॥ " इति।

(१) अनशन, (२) ऊनोदरी, (३) भिक्षाचर्या, (४) रसपरित्याग, (५) कायक्लेश, (६) सलीनता ।

(१) अनशन=इहलोक परलोक सम्बन्धी कामनारहित चतुर्थभक्त, षष्ठभक्त, अष्टमभक्त, आदि छहमासी तप पर्यन्त, अथवा यावज्जीवन सपूर्ण आहारका परित्याग करना अनशन तप कहलाता है ।

(२) ऊनोदरी=जितने अन्नसे उदरकी पूर्ति हो जाती है उससे एक ग्रास भी कम आहार करनेको ऊनोदरी तप कहते है । इससे स्वाध्याय, ध्यान आदि क्रियाएं अच्छीतरह निभती है।

(३) भिक्षाचर्या=जिससे स्वाध्याय, ध्यान आदि क्रियाओंमें विघ्न न आवे, इसप्रकार शास्त्रानुकूल विधिसे विशुद्ध भिक्षाके लिए पर्यटन करना भिक्षाचर्या तप कहलाता है ।

(४) रसपरित्याग=दूध, दही, घृत, तैल, मीठेका त्याग करनेको रसपरित्याग कहते हैं।

(५) कायक्लेश=शीत, उष्ण आदिका सहन करना, अथवा केशलोच करनेको कायक्लेश तप कहते है ।

(६) सलीनता=स्त्री-पशु-पण्डकरहित वसतीमें कछुवेकी तरह अङ्गोपाङ्ग सकुचित करके स्थित होना सलीनता तप कहलाता है ।

(१) **અનશન**—ઇહલોક પરલોક સંબંધી કામના રહિતપણે, ચતુર્થ ભક્ત, ષષ્ઠ ભક્ત, અષ્ટમ ભક્ત (સળંગ એક ઉપવાસ, બે ઉપવાસ, ત્રણ ઉપવાસ) આદિ છ માસી તપ સુધી અથવા જીવનપર્યંત સંપૂર્ણ આહારનો પરિત્યાગ કરવો એ અનશન-તપ કહેવાય છે.

(२) **ઊનોદરી**—જેટલા અન્નથી ઉદર ભરાય તેથી એક કોળિયો માત્ર પણ ઓછો આહાર કરવો તે ઊનોદરી તપ કહેવાય છે. તેથી સ્વાધ્યાય, ધ્યાન, આદિ ક્રિયાઓનો સારી રીતે નિભાવ થાય છે

(૩) **ભિક્ષાચર્યા**—જેથી સ્વાધ્યાય, ધ્યાન આદિ ક્રિયાઓમાં વિઘ્ન ન આવે, એ પ્રકારે શાસ્ત્રાનુકૂલ વિધિથી વિશુદ્ધ ભિક્ષાને માટે પર્યટન કરવું એ ભિક્ષાચર્યા તપ કહેવાય છે

(૪) **રસપરિત્યાગ**—દૂધ, દહીં, ઘી, તેલ, મીઠાઈનો ત્યાગ કરવો એને રસપરિત્યાગ કહે છે.

(૫) **કાયક્લેશ**—ટાઢ, તાપ આદિને સહન કરવા અથવા કેશલોચ કરવો એ કાયક્લેશ તપ કહેવાય છે.

(૬) **સંલીનતા**—સ્ત્રી-પશુ-પંડક-રહિત વસતીમાં (સ્થાનમાં) કાચબાની પેઠે અંગોપાંગ

छाया—"प्रायश्चित्तं विनयः, वैयावृत्यं तथैव स्वाध्यायः ।
ध्यानं च व्युत्सर्गः, एतदाभ्यन्तरं तपः ॥ १ ॥"

तत्र (१) प्रायश्चित्तम्=उपचिताऽतीचारशोधनं, यथाऽऽलोचनाप्रतिक्रमणादि । (२) विनयः=गुर्वाद्याराधनं, यथाऽभ्युत्थानाऽऽसनप्रदानाभिवादनतन्मनोऽनुकूलप्रवृत्त्यादि । (३) वैयावृत्त्यं=साधूनामशनपानाद्यानयनादिना साहाय्यकरणम् । (४) स्वाध्यायः=श्रुतधर्माराधनं, स च वाचना-प्रच्छना-परिवर्त्तनाऽनुप्रेक्षा-धर्मकथाभेदात् पञ्चविधः । (५)

आभ्यन्तर तपके भी छह भेद है-(१) प्रायश्चित्त, (२) विनय, (३) वैयावृत्य, (४) स्वाध्याय, (५) ध्यान, (६) व्युत्सर्ग ।

(१) प्रायश्चित्त=लगेहुए अतिचारोकी विशुद्धि करना प्रायश्चित्त तप है, जैसे आलोचना, प्रतिक्रमण आदि करना ।

(२)विनय=गुरु आदिकी आराधना करना विनय है । गुरु आदिके आने पर खडा होना, आसन देना, वन्दना करना, उनके मनके अनुकूल प्रवृत्ति करना आदि अनेक प्रकारका विनय होता है ।

(३) वैयावृत्य=अशन पान आदि लाकर मुनियोको सहायता पहुचाना वैयावृत्य (वेयावच्च) तप कहलाता है ।

(४) स्वाध्याय=श्रुतज्ञानका आराधना करना स्वाध्याय है । स्वाध्यायके पांच भेद है-(१) वाचना, (२) पृच्छना, (३) परिवर्तना, (४) अनुप्रेक्षा और (५) धर्मकथा ।

शिष्योको आगम पढ़ानेको 'वाचना' कहते है । सद्भावसे संशय दूर करनेके लिए, अथवा तत्त्वका निश्चय करनेके लिए पूंछना 'पृच्छना' कहलाता है । शुद्ध उच्चारण करके वार-वार

સંકોચીને રહેવુ તે સંલીનતા તપ કહેવાય છે

આભ્યંતર તપના પણ છ ભેદો છે. (૧) પ્રાયશ્ચિત્ત, (૨) વિનય, (૩) વૈયાવૃત્ય, (૪) સ્વાધ્યાય, (૫) ધ્યાન, (૬) વ્યુત્સર્ગ.

(૧ **પ્રાયશ્ચિત્ત**—લાગેલા અતિચારોની વિશુદ્ધિ કરવી એ પ્રાયશ્ચિત તપ છે, જેમકે આલોચના, પ્રતિક્રમણ વગેરે કરવા

(૨) **વિનય**—ગુરૂ આદિની આરાધના કરવી એ વિનય છે. ગુરૂ આદિ આવે ત્યારે ઊભા થવુ, આસન આપવુ, વદના કરવી, એમના મનને અનુકૂળ પ્રવૃત્તિ કરવી વગેરે અનેક પ્રકારે વિનય થાય છે

(૩) **વૈયાવૃત્ય**—અશન પાન આદ લાવીને મુનિઓને સહાય આપવી આદિ વૈયાવૃત્ય (વૈયાવચ્ચ) તપ કહેવાય છે

(૪) **સ્વાધ્યાય**—શ્રુતજ્ઞાનની આરાધના કરવી એ સ્વાધ્યાય છે સ્વાધ્યાયના પાંચ ભેદો છે (૧) વાચના, (૨) પૃચ્છના, (૩) પરિવર્તના, (૪) અનુપ્રેક્ષા, અને (૫) ધર્મકથા

શિષ્યોને આગમ ભણાવવા અને પોતે ભણવુ એ વાચના કહેવાય છે. સદ્ભાવપૂર્વક

ध्यानम्=एकमात्रावलम्बनेन पवनासंपृक्तदीपशिखाया इव चित्तस्य स्थिरीकरणम् । यद्यपि तच्चतुर्विधम् आर्त्त-रौद्र-धर्म-शुक्लभेदात्, तथापि धर्म-शुक्ल लक्षणं द्वयमेवोपादेयं पूर्वद्वयस्य कर्मबन्धहेतुत्वात् । (६) व्युत्सर्ग=कायादिसंचालननिवृत्तिपूर्वक-सोपयोगावस्थानम् । एवं बाह्याभ्यन्तरभेदेन द्वादशविधं तपः सिद्धम् ।

ननु अहिंसा-संयम-तप-स्वरूपस्य धर्मस्योत्कृष्टमङ्गलत्वं प्रतिपाद्यते तत्र तपसोऽनश-नादिलक्षणदुःखरूपत्वेन मोक्षहेतुत्वं न प्राप्नोति, तद्धि अशातवेदनीयकर्मोदयात्मकम्,

---

मनन करना 'अनुप्रेक्षा' है । धर्मकी चर्चा या उपदेश करनेको 'धर्मकथा' कहते है ।

(५) ध्यान=वायुके स्पर्श नहीं होनेसे जैसे दोपककी ज्योति स्थिर हो जाती है, वैसेही मनको किसी एक विषयमें स्थिर करलेनेको ध्यान कहते है ध्यान यद्यपि आर्त, रौद्र,, धर्म और शुक्ल के भेदसे चार प्रकारका है, तथापि यहाँ धर्म और शुक्ल ये दो शुभ ध्यान ही उपादेय है, यही दोनो तपमें अन्तर्गत हैं, पहलेके दो अशुभ ध्यान कर्मबन्धनके कारण है।

(६) व्युत्सर्ग=काय आदिके व्यापारको, तथा कषाय आदिको त्यागकर उपयोगसहित रहनेको 'व्युत्सर्ग' कहते है ।

इस प्रकार बाह्य और आभ्यन्तरके भेद मिलकर तपके सब बारह भेद होते है ।

प्रश्न—अहिंसा, सयम और तपरूप धर्मको उत्कृष्ट मंगल बतलाया है, लेकिन अनशन आदि तप भोजन आदिका त्याग करनेसे होते हैं, इसलिए वे दुःख है और दुःख मोक्षका कारण नहीं हो सकता, क्योकि दुःख असातवेदनीय कर्मके उदयसे होता है । भगवान्ने भी

સંશય દૂર કરવા માટે, અથવા તત્ત્વનો નિશ્ચય કરવા માટે પૃચ્છા કરવી-પૂછવુ એ પૃચ્છના કહેવાય છે શુદ્ધ ઉચ્ચારણ કરીને વારંવાર આવૃત્ત કરવું તે પરિવર્તના કહેવાય છે. ભણેલા અર્થનું વારંવાર મનન કરવું એ અનુપ્રેક્ષા છે. ધર્મની ચર્ચા અથવા ઉપદેશ કરવો એ ધર્મકથા કહેવાય છે.

(૫) **ધ્યાન**—વાયુનો સ્પર્શ નહિ થવાથી જેમ દીવાની જ્યોત સ્થિર રહે છે, તેવી રીતે મનને કોઇ એક અવલંબનમાં સ્થિર કરી લેવું એ ધ્યાન કહેવાય છે ધ્યાન આર્ત, રૌદ્ર, ધર્મ અને શુક્લ એવા ભેદે કરીને ચાર પ્રકારનું છે, તો પણ અહીં ધર્મ અને શુક્લ એ બે શુભ ધ્યાન જ ઉપાદેય છે એ બે ધ્યાન તપમા અંતર્ગત છે, પહેલાં બે અશુભ ધ્યાન કર્મબંધના કારણ છે.

(૬) **વ્યુત્સર્ગ**—કાયા આદિના વ્યાપારને તદા કષાય આદિને ત્યજીને ઉપયોગ સહિત રહેવું એ વ્યુત્સર્ગ કહેવાય છે

એ પ્રમાણે બાહ્ય અને આભ્યંતરના ભેદ મળીને તપના એકંદર બાર ભેદ થાય છે

પ્રશ્ન—અહિંસા, સંયમ અને તપ રૂપ ધર્મને ઉત્કૃષ્ટ મગલ બતલાવેલ છે, પરન્તુ અનશન આદિ તપ ભોજનાદિનો ત્યાગ કરવાથી થાય છે, તેથી એ દુખ છે અને દુઃખ મોક્ષનું કારણ થઇ શકતુ નથી; કારણ કે દુખ અસાતાવેદનીય કર્મના ઉદયથી ઉત્પન્ન

भगवताऽपि क्षुत्पिपासादयः परीषहा वेदनीयकर्मोदयस्वरूपत्वेनाऽभ्यधायिषत ।

कर्मक्षयो हि यद्यपि मोक्षाङ्गत्वेन श्रूयतेऽति शास्त्रे, कर्मोदयस्य तु न क्वचिन्मोक्ष-हेतुत्व शास्त्रे लोके वा प्रथितम् । एवं सति तस्योत्कृष्टमङ्गलात्मकधर्मरूपत्वकथनमयुक्तम् ।

दुःखरूपत्वेन तपसो मोक्षसाधनत्वस्वीकारे तु व्याधिनाऽऽतुरस्य, राजदण्डेन तस्करस्य, कशादिघातेनाश्वादेः, दशविधक्षेत्रवेदनया नाराकाणां, श्वासोच्छ्वासमात्रप्रमित-कालेऽपि सार्द्धसप्तदशमितजन्ममरणनिमित्तकाऽनन्तघोरवेदनायुक्तानां निगोदजीवानां च मोक्षापत्तिः, तेषामपि भवदभिमतमोक्षहेतुदुःखसद्भावादिति ।

यही प्रतिपादन किया है कि–"क्षुधा पिपासा आदि परीषह वेदनीय कर्मके उदयसे होते है ।" कर्मका क्षय तो मोक्षका कारण हो सकता है, परन्तु यह कहीं नहीं सुना कि कर्मका उदय भी मोक्षका कारण है । यह बात न किसी शास्त्रमें है और न लोकमेंही प्रसिद्ध है, इसलिए जब कि तप, कर्मोदयजन्य होनेसे मोक्षका कारण नहीं हो सकता तो उसे उत्कृष्ट मंगल क्यो कहा है ?, यदि दुःखरूप तपको मोक्षका कारण मानलिया जाय तो अनेक दोष आते है, वे ये है कि जो पुरुष रोगसे अत्यन्त पीड़ा पा रहा है उसे मोक्ष होजाना चाहिये, राजदण्डसे दुःख भोग-नेवाले चोर डाकुओको मोक्ष होना चाहिए, घोड़ोपर कोडोको मार पडती है, वे दुःखी होते हैं; अतः उन्हेंभी मोक्ष मिलना चाहिये । इसी प्रकार, क्षेत्रवेदनासे दुःखी नारकी जीवोको तथा एक श्वासोच्छ्वासमें साढे सतरह वार जन्ममरणके अनन्त काल तक दुःख पाने वाले निगोदिया जीवोको मुक्तिकी प्राप्ति होनी चाहिये । अधिक कहा तक कहे ? संसारके समस्त प्राणी जन्म, मरण, इष्टवियोग, अनिष्टसयोग आदि भाति–भांतिके दुःखोंसे दुःखी है अत एव सबहीको मोक्ष मिलजाना चाहिये, क्योंकि दुःखको यहा मोक्षका कारण माना है ।

થાય છે ભગવાને પણ એમ જ પ્રતિપાદન કર્યું છે કે–" ભૂખ તરસ આદિ પરીષહ વેદનીય કર્મના ઉદયથી જ થાય છે " કર્મનો ક્ષય તો મોક્ષનું કારણ હોઈ શકે છે પરંતુ એવું ક્યાંય સાંભળ્યું નથી કે કર્મનો ઉદય પણ મોક્ષનું કારણ છે. એ વાત કોઈ શાસ્ત્રમાં નથી તેમજ લોકમાં પ્રસિદ્ધ નથી, તેથી જો તપ કર્મોદયજન્ય હોઈને મોક્ષનું કારણ થઈ શકતો નથી તો તેને ઉત્કૃષ્ટ મંગલ કેમ કહ્યો છે ? જો દુઃખરૂપ તપને મોક્ષનું કારણ માનવામાં આવે તો અનેક દોષો આવે છે, જેમકે–જે પુરૂષ રોગથી અત્યંત પીડા પામી રહ્યો હોય તેનો મોક્ષ થઈ જવો જોઈએ, રાજદંડથી દુઃખ ભોગવવા વાળા ચોર ડાકુઓનો મોક્ષ થવો જોઈએ, ઘોડા પર ચાબુકનો માર પડે છે તેથી તે દુખી થાય છે, તેથી તેને પણ મોક્ષ મળવો જોઈએ એજ પ્રમાણે ક્ષેત્રવેદનાથી દુઃખી એવા નારકી જીવોને તથા એક શ્વાસો-ચ્છવાસમાં સાડી સત્તરવાર જન્મ–મરણનાદુઃખો અનંતકાળ સુધી પામનારા નિગોદિયા જીવોને પણ મુક્તિની પ્રાપ્તિ થવી જોઈએ વધારે શું કહીએ ? જગતના બધા પ્રાણીઓ જન્મ, મરણ, ઇષ્ટનો વિયોગ, અનિષ્ટનો સંયોગ વગેરે તરેહ તરેહના દુખોથી દુખી છે. એટલે એ બધાને મોક્ષ મળી જવો જોઈએ, કારણ કે દુખને અહીં મોક્ષના કારણ રૂપ માન્યું છે.

किञ्चालमेतेन विशेषविचारेण जन्मजरामरणेष्टवियोगाऽनिष्टसंयोगाद्यनेकविधदुःखयुक्ताः सर्व एव संसारिण इत्यविशेषेण सर्वेषां मोक्षापत्तिः स्यात् ।

एतदुक्तं भवति—तपः समाचरतः क्षुत्पिपासादयः समुद्भवन्ति, ततश्च प्रबलदुःखम्, एतच्च चित्तविक्षेपस्य हेतुः, सति च तस्मिन् अप्रशस्तं ध्यानं, तस्माच्चावश्यं कर्मबन्धः, ततश्च चतुर्गतिकसंसारपरिभ्रमणरूप महदमङ्गलमिति कथंकथमप्यहिंसासंयमविशिष्टस्यापि तपसो मोक्षहेतुत्वरूपमुत्कृष्टमङ्गलत्वं न सम्भवदुक्तिकमिति ।

अत्रोच्यते—तपो न तावद् दुःखात्मक, दुःखं हि नामाऽशातवेदनीयकर्मोदयविपाकः पीडालक्षण आत्मपरिणामः, तपश्चर्यागर्भिताऽनशनादिव्यापारस्य न पीडात्मकाऽऽत्मपरिणामरूपत्वम् ।

जो अनशन आदि तप करता है उसे क्षुधा पिपासा आदि परीषह होते है । परीषह होनेसे तीव्र दुःख होता है । दु खसे चित्तका विक्षेप होता हैं। चित्तके विक्षेपसे अशुभ ध्यान होता है । अशुभ ध्यानसे कर्मका बन्ध होता है । कर्मबन्धसे चार गतियोमें भ्रमण करना पडता है, इसप्रकार यह बड़ा अमंगल है । जो प्रवल अमंगल है वह अहिसा और सयमसे युक्त होनेपर भी उत्कृष्ट मंगल नहीं हो सकता । अमृतमें विष मिला देनेसे क्या विष अमृत हो सकता है । कदापि नहीं । इसलिए तपको मोक्षका कारण मानना उचित नहीं है ।

उत्तर—तपको दुःख कहना युक्त नहीं है, वह दुःखरूप नही है । क्योकि असातावेदनीय कर्मके फलोको, जो आत्माका ही एक विभाव परिणाम है, और पीडारूप है उसे दुःख कहते है । अनशन आदि तप पीड़ारूप परिणाम नहीं है, अत उन्हें दुःख नहीं कहा जा सकता । दूसरी बात यह है—शंकाकारने कहा है कि तप मोक्षका कारण नहीं है । क्योकि वह दुःख है । यहाँ "तप मोक्षका का कारण नहीं" यह प्रतिज्ञा है और क्योकि वह दु ख है" यह हेतु है । हेतुका सदा ऐसा ही प्रयोग करना चाहिये जो प्रतिवादीको भी सिद्ध होवे । यदि "वह दुःख

જે અનશન આદિ તપ કરે છે તેને ભૂખ-તરસ આદિ પરીષહ થાય છે પરીષહથી તીવ્ર દુઃખ થાય છે દુઃખથી ચિત્તનો વિક્ષેપ થાય છે. ચિત્તના વિક્ષેપથી અશુભ ધ્યાન થાય છે અશુભ ધ્યાનથી કર્મનો બંધ થાય છે કર્મબંધનથી ચારે ગતિઓમા પરિભ્રમણ કરવુ પડે છે એ રીતે એ મોટું અમંગળ છે જે પ્રબળ અમંગળ છે તે અહિંસા અને સંયમથી યુક્ત થવા છતા પણ ઉત્કૃષ્ટ મંગળ થઈ શકતુ નથી અમૃતમા વિષ મેળવવાથી શું વિષ અમૃત થઇ શકે છે ? કદાપિ નહિ તેથી તપને મોક્ષનું કારણ માનવુ એ ઉચિત નથી.

ઉત્તર—તપને દુઃખ કહેવું એ યુકત નથી તે દુ ખરૂપ નથી કારણ કે એ સાતાવેદનીય કર્મ કે જે આત્માનો જ એક વિભાવ પરિણામ છે અને પીડારૂપ છે, તેને દુઃખ કહે છે. અનશન આદિ તપ પીડારૂપ પરિણામ નથી, તેથી તેને દુઃખ કહી શકાય નહિ બીજી વાત આ છે. શંકાકારે કહ્યુ કે તપ મોક્ષનું કારણ નથી, કારણ કે તે દુઃખ છે; પરન્તુ અહીં "તપ મોક્ષનું કારણ નથી" એ પ્રતિજ્ઞા છે અને "કારણ કે તે દુઃખ છે" એ

किञ्च तपः पक्षीकृत्य मोक्षसाधनत्वाभावसाध्ये यदुक्तं दुःखरूपत्वसाधनं तदयुक्तं, तस्य दुःखजयरूपत्वेन स्वरूपासिद्धेः।

तत्र (तपसि) जायमानाः क्षुत्पिपासादयः आत्मनः प्रवर्द्धमानविशुद्धपरिणामेन विजिता सन्त पीडालक्षणं कार्यं न जनयन्ति। एतेन क्षुत्पिपासादीनां कर्मोदयस्वरूपत्वेऽपि स्वकार्यकारणाऽक्षमतया चित्तविक्षेपाजनकत्वं सिद्धम्। अतएव भगवताऽपि क्षुत्पिपासादिपरीषहस्य तपसश्च पृथक्त्वेन प्रतिपादनं विहितम्।

है" यह हेतु सिद्ध होता तो शंकाकारका साध्य सिद्ध हो सकता, परन्तु वह सिद्ध नहीं है। क्योंकि पहले बतला चुके है कि तप दुःख नहीं है। अत एव यह हेतु स्वरूपसेही असिद्ध है। तप दुःखरूप नहीं बल्कि दुःखको विजय करना तप कहलाता है।

अनशन आदि तपसे होनेवाले क्षुधा आदि परीषह आत्माके बढ़ते हुए विशुद्ध परिणामसे जीत लिये जाते हैं। क्षुधा दुःख अवश्य है परन्तु उसे तप नहीं कहते, बल्कि क्षुधा पर विजय पानेको तप कहते है। क्षुधाको जीतना दुःख नहीं परन्तु सुख है अत एव तप सुखरूप है। क्योंकि तपश्चर्या करनेवालेको भूखकी परवाह ही नहीं रहती। इसलिए शंकाकारका यह कहना ठीक नहीं है कि तपसे पीडा उत्पन्न होती है। इस कथनसे यह बात अच्छीतरह सिद्ध हो गई कि क्षुधा आदि परीषह वेदनीय कर्मके उदयसे होते है, परन्तु वे पीड़ा नहीं उत्पन्न कर सकते। और जब उनसे पीडा नहीं उत्पन्न हो सकती तो चित्तमें विक्षेप भी नहीं हो सकता। चित्तमें विक्षेप न होनेसे कर्मका बन्ध भी नहीं हो सकता। उलटा क्षुधा आदिको जीतनेसे कर्मोंकी निर्जरा होती है और आते हुए कर्मोका निरोध होनेसे संवर भी होता है। इसलिए भगवान् महावीर स्वामीने क्षुधा आदि परीषह और तपको अलग अलग कहा है।

હેતુ છે. હેતુનો પ્રયોગ સદા એવો કરવો જોઈએ કે જે પ્રતિવાદીને મતે પણ સિદ્ધ હોય. જો "તે દુઃખ છે" એ હેતુ સિદ્ધ હોત તો શંકાકારનું સાધ્ય સિદ્ધ કરી શકાત, પરંતુ એ સિદ્ધ નથી; કારણ કે પહેલાં બતાવી ચૂકયા છીએ કે તપ એ દુઃખ નથી એટલે એ હેતુ સ્વરૂપથી જ અસિદ્ધ છે. તપ દુઃખરૂપ નથી, બલ્કે દુઃખ ઉપર વિજય મેળવવો એ તપ કહેવાય છે.

અનશન આદિ તપથી થનારા ક્ષુધા આદિ પરીષહ આત્માના વધતા જતા વિશુદ્ધ પરિણામથી જીતાઈ જાય છે. ક્ષુધા એ દુઃખ અવશ્ય છે. પરંતુ તેને તપ કહી શકાય નહિ, બલ્કે ક્ષુધા પર વિજય પ્રાપ્ત કરવો એ તપ કહેવાય છે ક્ષુધાને જીતવી એ દુઃખ નથી પરન્તુ સુખ છે એટલે તપ સુખરૂપ છે, કેમકે તપશ્ચર્યા કરનારાઓને ભૂખની પરવા જ નથી હોતી. તેથી શંકાકારનું એ કહેવું બરાબર નથી કે-'તપથી પીડા ઉત્પન્ન થાય છે.' આ કથનથી એ વાત સારી રીતે સિદ્ધ થઇ ગઈ કે ક્ષુધા આદિ પરીષહ વેદનીય કર્મના ઉદયથી થાય છે પરન્તુ તે પીડા ઉત્પન્ન કરી શકતી, નથી. અને જો તેથી પીડા ઉત્પન્ન નથી થતી તો ચિત્તમાં વિક્ષેપ પણ થઇ નથી શકતો ઉલટું ક્ષુધા આદિને જીતવાથી કર્મની નિર્જરા થાય છે અને આવતા કર્મોનો નિરોધ થવાથી સંવર પણ થાય છે. તેથી ભગવાન્ મહાવીર

यद्यनशनादिकं सर्वत्र दुःखात्मकमेव मन्येत तदा–सिद्धानामपि अशनाद्यग्राहितयाऽनन्तदुःखसद्भावप्रसङ्गः केन वार्येत। एवं च मोक्षमार्गे प्रवर्त्तकस्य शास्त्रस्य तदुक्तधर्मानुष्ठानस्य च वैयर्थ्यापत्तिः।

अयं भावः–यथा व्यधितस्य व्याधिपरिजिहीर्षया स्वयमेव लङ्घनादिप्रवृत्तिः मणि-मौक्तिक-माणिक्य प्रवाल-हेम-हीरक-रजतादीनां व्यवहर्त्तुः स्वयमेव सिन्धुतरणगहनभयानकवनगमनदुर्गमपथभ्रमणप्रवृत्तिः पीडालक्षणात्मकपरिणामं न जनयति, अन्यथा हि प्रतिकूलकर्मणि समुत्साहपूर्वकस्वतः प्रवृत्तिर्नोपपद्यते, तथा, मुनयोऽपि वक्ष्यमाणभावनया

एक बात और भी है–सिद्ध भगवान् कभी आहार नहीं लेते। यदि अनशनको दुःख मानलिया जाय तो उन्हें भी दुःखी मानना पड़ेगा। जब सिद्ध भी दुःखी होंगे तो मोक्षमार्गकी प्ररूपणा करनेवाले शास्त्र व्यर्थ होजावेंगे, और उन शास्त्रोंके अनुसार की हुई क्रियाएँ भी व्यर्थ हो जायँगी। क्योंकि दुःखी बननेके लिए कोई बुद्धिमान तैयार नहीं होगा। मतलब यह है कि–जैसे अपना रोग दूर करनेके लिए रोगीकी स्वयं ही लंघनमें प्रवृत्ति होती है। अथवा हीरे, मोती, मूंगे, सोने, चांदी आदिकी प्राप्तिके लिए मनुष्य, दुस्तर समुद्र तैरते है, अथवा अपनी इच्छासे ही मोती आदिकी प्राप्तिके लिए गहरे समुद्रमें गोते लगाते है। बड़े बड़े गहन और भयानक जंगलोमें गर्मी आदि अनेक कष्ट उठाते है, दुर्गम मार्ग में लाभकेलिए घूमते फिरते है, फिर भी अपने मनमें उसे दुःख नहीं मानते न पीड़ाका अनुभव करते है, यदि लंघन करनेमें और गोते लगाने आदिमें कष्ट मालूम होता तो विना किसीके दबावके अपनी इच्छासे ही उत्साहपूर्वक क्यो प्रवृत्ति करते? इसी प्रकार मुनिराज भी अपनी आत्माकी विशुद्धिके लिए अपने आपही प्रमुदित

સ્વામીએ ક્ષુધા આદિ પરીષહ અને તપને જુદાં-જુદાં કહેલાં છે.

એક બીજી વાત એમ છે કે–સિદ્ધ ભગવાન કદાપિ આહાર લેતા નથી જો અનશનને દુઃખ માની લેવામાં આવે તો તેમને પણ દુઃખી જ માનવા પડે. જો સિદ્ધ પણ દુઃખી હોય તો મોક્ષમાર્ગની પ્રરૂપણા કરનારૂ શાસ્ત્ર વ્યર્થ બની જાય, અને એ શાસ્ત્રોને અનુસરીને કરવામા આવતી ક્રિયાઓ પણ વ્યર્થ થાય, કારણ કે દુઃખી થવાને કોઈ બુદ્ધિમાન તૈયાર નહિ થાય. મતલબ એ છે કે–જેમ પોતાનો રોગ દૂર કરવાને માટે રોગી પોતાની મેળે જ લાંઘણ કરવામા પ્રવૃત્ત થાય છે, અથવા હીરા, મોતી, માણેક, સોનુ ચાંદી આદિની પ્રાપ્તિ માટે મનુષ્ય દુસ્તર સમુદ્રને તરે છે, અથવા પોતાની ઇચ્છાથી જ મોતી આદિની પ્રાપ્તિ માટે ઊંડા સમુદ્રમા ડુબકી મારે છે, મોટા મોટાં ઘીચ અને ભયાનક જંગલોમા ટાઢ તાપનાં અનેક કષ્ટો ઉઠાવે છે, દુર્ગમ રસ્તાઓમા લાભને માટે ભટકતો ફરે છે તોપણ પોતાના મનમા તેને દુઃખ માનતો નથી કે પીડાનો અનુભવ કરતો નથી, જો લંઘન કરવામાં અને ડુબકી મારવા આદિમા કષ્ટનો અનુભવ થતો હોત તો કોઈએ દબાવ્યા કે આગ્રહ કર્યા વિના પોતાની જ ઇચ્છાથી મનુષ્ય ઉત્સાહ પૂર્વક કેમ પ્રવૃત્તિ કરત? એજ રીતે મુનિરાજ પણ પોતાના આત્માની વિશુદ્ધિને માટે પોતાની મેળે જ પ્રમુદિત ભાવથી અનશન આદિ તપશ્ચર્યા કરે

तपसि पीडां नानुभवन्ति, तथाहि—

इह संसारे (१) स्वकृतदुष्कृतसन्ततिवशान्नरकेषु नारका कियन्तो भिद्यन्ते, कियन्तस्तैलयन्त्रे तिलसर्षपादिवन्निष्पीड्यन्ते, ताम्रादिभाजनवच्च कियन्तः कुट्यन्ते, कियन्तो दारुवद्विदार्यन्ते, कियन्त शूलशय्यायां स्वाप्यन्ते कियन्त शिलोपरि वस्त्रवत्ताड्यन्ते, अनन्तक्षुत्पिपासादिभिः परिभूयन्ते, इत्येवं विविधदुःखसन्ततिमनुभवन्ति ।

(२) अथ तिर्यञ्चोऽपि केचित् सक्लेशं शीतोष्णे सहमाना, केचिद् गुरुतरं भारं वहमाना, केचिद्वेत्रादिना ताड्यमाना, केचिन्मांसार्थिभिर्विविधैस्तीक्ष्णाग्रशस्त्रैश्छिद्यमाना, केचिच्च शङ्कुनिबद्धा प्रबलैः क्षुत्पिपासादिभिः परिभूयमाना लक्ष्यन्ते ।

(३) एवं मनुष्यगतिं प्राप्ता अपि केचिदन्धत्वं, केचिद्बधिरत्वं केचित् पङ्गुत्वं,

---

भावसे अनशन आदि तपस्या करते है । ऐसा करनेमें उन्हे तनिकभी दुःख नहीं होता ।

(१) संसारमें अपने किये हुए कर्मों के कारण कईएक नरकमें जाकर परमाधर्मीद्वारा भाले आदिसे भेदे जाते हे कईएक घानीमें तिल या सरसोकी तरह पीले जाते हैं । कईएक तांबे पीतल आदिके वर्त्तनोंकी तरह कूटे जाते है । कईएक काठकी भांति करवतसे चीरे जाते है । कईएक तीक्ष्ण कांटोके बिछौने पर सुलाये जाते है । कईएक शिलापर कपडोकी तरह पछाड़े जाते है, और अनन्त भूख प्यास आदि नाना प्रकारके असह्य क्लेश पाते है । इस प्रकार भाँति–भाँतिके दुःखोका वे अनुभव करते है ।

(२) तिर्यञ्च गतिमें भी कोई २ तिर्यञ्च दुःखके साथ गर्मी सर्दी सहते है, किसी पर भारी बोझ लादा जाता है, कोई-कोई कोडोंकी मार खाते है, कोई २ पैने (तीखे) शस्त्रोंसे छेदे जाते है, कोई-कोई खूंटीसे बंधे हुए भूख-प्यास आदि नाना प्रकारके दुःख भोगते हुए देखे जाते हैं ।

(३) यदि भाग्योदयसे मनुष्यगति मिल जाय तो उसमें भी सैकडो दुःख भोगने पड़ते

છે એમ કરવામા તેને જરા પણ દુઃખ થતુ નથી.

(૧) જગતમા પોતાના કરેલાં કર્મોને કારણે કેટલાક જીવો નરકમાં જઈને પરમાધમી-દ્વારા ભાલા આદિથી છેદાય-ભેદાય છે. કેટલાક ઘાણીમાં તલ અથવા સરસવની પેઠે પિલાય છે. કેટલાકો તાંબા પીતળનાં વાસણોની જેમ કુટાય-પીટાય છે કેટલાકો લાકડાની પેઠે કરવતથી વહેરાય છે કેટલાકને તીક્ષ્ણ કાટાનાં બિછાનાં પર સુવાડવામાં આવે છે. કેટલાકને કપડાની પેઠે શિલાપર પછાડવામા આવે છે, અને અનંત ભૂખ-તરસ આદિ નાના પ્રકારના અસહ્ય કલેશ પમાડવામા આવે છે એ પ્રમાણે તરેહ તરેહનાં દુઃખોનો અનુભવ એ જીવો કરે છે.

(૨) તિર્યંચ ગતિમા પણ કોઈ કોઈ તિર્યંચ દુઃખ સાથે ટાઢ-તાપ સહન કરે છે; કેટલાક પર ભારે બોજો લાદવામાં આવે છે, કોઈ કોઈ ચાબુકના માર ખાય છે, કોઈ કોઈને કાતીલ શાસ્ત્રોથી છેદવામાં આવે છે, કોઈ કોઈ ખૂટિએ બધાએલા ભૂખ-તરસ આદિ નાના પ્રકારનાં દુઃખો ભોગવતા જોવામાં આવે છે.

(૩) જો ભાગ્યોદયથી મનુષ્યગતિ મળી જાય તો તેમાં પણ સેકડો દુખો ભોગવવાં પડે

केचित्कासश्वासादिरोगं, केचिद्दारिद्र्यं च संप्राप्य, हीना दीनास्तत्तपीडापरिहाराक्षमा विविधदुर्दशामापन्ना, स्थविरे कलत्रपुत्रादिभिरप्यनादृता क्षुत्पिपासादिभिर्बाध्यमाना म्रियन्ते ।

(४) देवा अपि परोत्कर्षनिरीक्षणेर्ष्याद्वेषादिजनिताऽन्तस्तापस्य प्रतिकर्तुमशक्यतया प्रायो दुःखभाज एव दृश्यन्ते ।

इत्येवमपारपारावारतरलतरङ्गभङ्गमालायमानजन्मजरामरणाधिव्याधीष्टवियोगाऽनिष्टसंयोगादिजनितविविधसन्तापकलापमाकलयन्तः 'कथमेतस्मात्क्लेशकदम्बकादुन्मुक्ता भविष्यामः ?' इत्युपायं समन्तात् संमार्गयन्तो मुनयोऽपि जिनेन्द्रप्रतिपादितं मोक्षमार्ग-

---

है । कोई मनुष्य अंधा होजाता है, कोई बहिरा होजाता है, कोई लंगड़ा होजाता है । किसीको श्वास या खाँसीका रोग हो जाता है । कोई दरिद्रताके दुःखोसे दीन हीन होकर अनेक प्रकारकी दुर्दशाका अनुभव करता है । वृद्धावस्थामें पत्नी पुत्र आदि तिरस्कार करते है । अन्तमें क्षुधा-पिपासा आदिके भी दुःख उठाकर मरणकी शरणमें जाना पडता है ।

(४) कभी देवगति पाकर देवता होजाय तो वहाँ भी तरह-तरहके दु ख विद्यमान है । किसी देवताकी विभूति अधिक होती है, किसीकी कम होती है, कम विभूतिवाला अधिकविभूतिवाले देवताको देखकर ईर्ष्या–द्वेष करता है, ऐसा करनेसे मनमें अत्यन्त सन्ताप होता है । उस सन्तापको मिटाने में जब अपनेको असमर्थ पाता है तो दुःखी होता है । इसलिये संसारमें कहींभी सुख नहीं दिखलाई पडता है ।

जिसतरह अपार सागरमें चञ्चल तरंगे उत्पन्न होती है उसी तरह ससारमे जन्म, मरण, बुढ़ापा, मानसिक चिन्तायें, शारीरिक व्याधियाँ, इष्टवस्तुओका वियोग, अनिष्टका सयोग आदि अनेक प्रकारके नये-नये दुःख उत्पन्न होते रहते है । इन विविध प्रकारके दु खोको भली भाँति सम्यग्ज्ञानद्वारा जाननेसे यह जिज्ञासा होती है कि इस दुःखसमूहसे हम कैसे छूटेंगे ?

છે. કોઈ માણસ આંધળો થઈ જાય છે, કોઈ બહેરો બની જાય છે, કોઈ લગડો થાય છે કોઈને શ્વાસ યા ખાંસીનો રોગ થાય છે. કોઈ દરિદ્રતાનાં દુઃખોથી દીન–હીન થઈને અનેક પ્રકારની દુર્દશાનો અનુભવ કરે છે. વૃદ્ધાવસ્થામાં પત્ની પુત્ર આદિ તેનો તિરસ્કાર કરે છે. છેવટે ભૂખ–તરસ આદિનાં દુઃખો પણ વેઠીને તેને મરણ શરણ થવું પડે છે

(૪) કદાચ દેવગતિ પામીને દેવતા થઈ જાય તો ત્યાં પણ તરેહ તરેહનાં દુઃખો વિદ્યમાન હોય છે કોઈ દેવતાની વિભૂતિ અધિક હોય છે, કોઈની ઓછી હોય છે ઓછી વિભૂતિવાળા અધિક વિભૂતિવાળા દેવતાને જોઈને ઈર્ષા–દ્વેષ કરે છે. એમ કરવાથી મનમાં અત્યત સંતાપ થાય છે. એ સંતાપને શમાવવાને જ્યારે તે પોતાને અસમર્થ જુએ છે ત્યારે તે દુઃખી થાય છે. તેથી સંસારમાં ક્યાંય પણ સુખ જોવામાં આવતું નથી.

જેવી રીતે અપાર સાગરમાં ચચલ તરગો ઉત્પન્ન થાય છે, તેવી રીતે સંસારમાં જન્મ, મરણ, બુઢાપો, માનસિક ચિંતાઓ, શારીરિક વ્યાધિઓ. ઇષ્ટ વસ્તુઓનો વિયોગ અનિષ્ટનો સંયોગ આદિ અનેક પ્રકારનાં નવાં નવા દુઃખો ઉત્પન્ન થતાં રહે છે. એ વિવિધ પ્રકારના

मारुह्य, तत्रापि शुक्लध्यानाहितकेवलज्ञानसमनन्तरजायमानाऽव्याबाधामन्दानन्दसन्दोहलक्षणमोक्षस्याऽपुनरावृत्तिलक्षणं महिमानं विनिश्चित्य, ईषत्क्षुत्पिपासाऽऽपादितदुःखं मनागपि न गणयन्ति, अत एव तदनशनादिलक्षणं तपः परिणामपरमपदसुखजनकतया मुनीनामात्मपरिणामविकृतिकारणं न भवितुमीष्टे नापि च तत्कर्मोदयस्वरूपमिति प्राक् प्रतिपादितमिति तपसः सर्वथा मोक्षाङ्गत्वेनोत्कृष्टमङ्गलात्मकधर्मरूपत्वं सिद्धम् ।

अथोत्कृष्टमङ्गलत्वसम्पादकं धर्मस्य महिमानमावेदयति–'देवा वि' इत्यादि ।

इसप्रकार छूटनेका उपाय ढूंढते-२ मुनि महात्मा जिनेन्द्र भगवान् द्वारा प्रतिपादित मोक्षके मार्ग पर आरूढ हो जाते है। फिर क्रमशः शुक्लध्यान द्वारा केवलज्ञान पाकर अव्याबाध अनन्त आत्मिकसुख औरपुनरागमनरहित मोक्षको प्राप्त करते है। ऐसा अपने मनमें विचार कर तपमें लीन होनेवाले तपस्वी जन क्षुधा-पिपासाके थोडेसे दुःखको तनिक भी नहीं गिनते। उनके सामने अनन्त सुखका स्थान मोक्षका ध्येय सदा रहता है और उस ध्येयका प्राप्ति में क्षुधा आदि परीषहोसे होनेवाला दुःख नहीं के बराबर है। वे उन तुच्छ दुःखोको अपने अन्तःकरणमें स्मरण भी नहीं करते। तात्पर्य यह है कि–अनशनआदि तप, परमपद मोक्षके अनन्त अविनाशी सुखका प्रबल कारण होनेसे मुनियोकी आत्माके परिणामोमे विकार उत्पन्न नहीं कर सकता है और न औदयिक भावमें ही है, अर्थात् तप क्षायोपशमिक भावोमे है। इस विषयकाविस्तारसे प्रतिपादन पहले किया जा चुका है। अब यह बात अच्छी तरह सिद्ध हो चुकी कि तप मोक्षका कारण है और उत्कृष्ट मंगलरूप धर्म है।

धर्म उत्कृष्ट मंगल है, किन्तु धर्ममें ऐसो कौनसी विचित्र महिमा हे जिससे उसे उत्कृष्ट मंगल कहते है?, इस प्रश्नका समाधान करनेके लिए कहते है—

દુઃખોને સારી પેઠે સમ્યગ્જ્ઞાનદ્વારા જાણવાથી એવી જિજ્ઞાસા થાય છે કે આ દુઃખસમૂહથી આપણે કેવી રીતે છૂટીશું ? એ રીતે છૂટવાનો ઉપાય શોધતાં મુનિ મહાત્મા જીનેન્દ્ર ભગવાને પ્રતિપાદિત કરેલા મોક્ષના માર્ગ પર આરૂઢ થઈ જાય છે પછી ક્રમશઃ શુક્લધ્યાનદ્વારા કેવલજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરીને અવ્યાબાધ અનંત આત્મિકસુખ અને પુનરાગમનરહિત મોક્ષને પ્રાપ્ત કરે છે પોતાના મનમા એવો વિચાર કરીને તપમાં લીન થનાર તપસ્વીજન ભૂખ-તરસના થોડા દુઃખને લગારે ગણતા નથી તેમની સામે અનંત સુખના સ્થાન મોક્ષનું ધ્યેય સદા રહે છે અને એ ધ્યેયની પ્રાપ્તિમાં ક્ષુધા આદિ પરીષહોથી થનારૂ દુઃખ નહિવત બને છે. તે પોતાના અંતઃકરણમાં એ તુચ્છ દુઃખોનુ સ્મરણ પણ કરતા નથી. તાત્પર્ય એ છે કે-અનશન આદિ તપ, પરમપદ મોક્ષના અનંત અવિનાશી સુખનુ પ્રબલ કારણ હોવાથી મુનિઓના આત્માના પરિણામોમા વિકાર ઉત્પન્ન કરી શકતુ નથી અને એ ઔદયિક ભાવમા પણ નથી અર્થાત્ તપ ક્ષાયોપશમિક-ભાવમા છે. આ વિષયનુ પ્રતિપાદન પહેલા વિસ્તારથી કરવામા આવ્યુ છે હવે એ વાત સારી રીતે સિદ્ધ થઈ ચૂકી કે તપ મોક્ષનું કારણ છે અને ઉત્કૃષ્ટ મંગલરૂપ ધર્મ છે.

ધર્મ ઉત્કૃષ્ટ મંગલ છે, પરંતુ ધર્મમાં એવો કયો વિચિત્ર મહિમા છે કે જેથી તેને ઉત્કૃષ્ટ

धर्मे=अहिंसादित्रयस्वरूपे यस्य प्राणिनः मनः=चित्तं सदा-निरन्तरं तिष्ठतीति शेषः, तं-धर्मचित्तं प्राणिनं देवा अपि भवनपत्यादिचतुर्निकाया अपि नमस्यन्ति-नमस्कुर्वन्ति सम्मानयन्तीति यावत्, किं पुनश्चक्रवर्त्यादयो मनुष्या इत्यर्थः ।

एतादृशोऽयं समुत्कृष्टो धर्मः स्वसमाराधनबद्धपरिकराणां वृन्दारकवृन्दवन्दनीयपदारविन्दतां जनयति, यदि पुनस्त्रिविधकरणयोगेन तदाराधनपरायणो भवेत् तदा शिवमचलमरुजमनन्तमक्षयमव्याबाधमपुनरावृत्ति सिद्धिगतिनामधेयं मोक्षपदमपि समासादयेदेव, कैव कथा तदपेक्षया तुच्छतरदेवेन्द्रचक्रवर्त्यादिपदप्राप्तिजनितसौख्यस्य सस्यानुगतपलालवदिति ।

ननु सर्वधर्माणामहिंसामूलकत्वादहिंसायामेव संयमतपसोरपि धर्मयोः समावेशे सति किं पुनस्तयोः पृथङ्निर्देशः ? इति चेन्न,—

जिस प्राणीके मनमें अहिंसा, संयम और तपरूप धर्मका निरन्तर निवास रहता है, उस धर्मात्मा प्राणीको भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक इस प्रकार चारो निकायोके देवता नमस्कार करते है अर्थात् समान करते है । गाथामें आये हुए 'अपि' शब्दसे प्रकट है कि जब देवताभी धर्मात्मा प्राणीका समान करते है तो राजा, महाराजा सम्राट् और चक्रवर्ती आदिकी बात ही क्या है? वे भी उसके चरणोमें गिरते है । इस प्रकार इस उत्कृष्ट धर्मकी आराधना करनेवाले प्राणी देवोके द्वारा वन्दनीय हो जाते हैं । यदि कोई तीन करण और तीन योगसे उस धर्मकी आराधना भली-भाँति करे तो वह अवश्यही ऐसी सिद्धिगति (मोक्ष) को प्राप्त करेगा जो परम कल्याणरूप है, अचल है, जिसमें किसी प्रकारका रोगदोष नहीं है, जिसका कभी अन्त नहीं होता, जिसमें पहुँच कर क्षय नहीं होता, और न किसी प्रकारकी बाधा शेष रहती है । अहो ! उस मोक्षका क्या कहना है, जिसके आगे नरेन्द्र, इन्द्र, अहमिन्द्र आदिका सुख इतना तुच्छ है जैसे धान्यके आगे भूसा तुच्छ होता है ।

મંગલ કહ્યો છે ? આ પ્રશ્નનું સમાધાન કરવાને કહે છે :—

જે પ્રાણીના મનમાં અહિંસા, સંયમ અને તપરૂપ ધર્મનો નિરંતર નિવાસ રહે છે, તે ધર્માત્મા પ્રાણીને ભવનવાસી, વ્યન્તર, જ્યોતિષી અને વૈમાનિક એ ચારે નિકાયોના દેવતા નમસ્કાર કરે છે અર્થાત્ તેમનું સંમાન કરે છે ગાથામાં આવેલા 'अपि' શબ્દથી સ્પષ્ટ થાય છે કે જ્યારે દેવતા પણ ધર્માત્માં પ્રાણીનું સંમાન કરે છે તો રાજા, મહારાજા, સમ્રાટ અને ચક્રવર્તી આદિની તો વાત જ ક્યાં રહી ? તેઓ પણ તેમના ચરણમાં પડે છે એ રીતે ઉત્કૃષ્ટ ધર્મની આરાધના કરનારો પ્રાણી દેવો વડે વંદનીય બને છે જો કોઈ ત્રણ કરણ અને ત્રણ યોગથી એ ધર્મની આરાધના ભલી પેઠે કરે તો તે અવશ્ય એવી સિદ્ધિગતિ (મોક્ષ) ને પ્રાપ્ત કરે કે જે પરમકલ્યાણરૂપ છે, અચલ છે, તેમાં કોઈ પ્રકારનો રોગ દોષ નથી, જેનો કદાપિ અંત આવતો નથી જેમા પહોંચવાથી ક્ષય થતો નથી અને કોઈ પ્રકારની બાધા-પીડા થતી નથી અહો ! એ મોક્ષની શી વાત કહીએ, જેની આગળ નરેંદ્ર ઇંદ્ર અહમિંદ્ર આદિનું સુખ એવું તુચ્છ છે કે જેમ ધાન્ય આગળ ફોતરા તુચ્છ છે

तपो विना संयमो यथावत्स्वरूपनैर्मल्यं न लभते, संयममन्तरेणाऽहिंसाऽपि न परिशुद्धिमेति इत्याशयेनाहिंसां प्रतिपाद्य तन्निर्मलीकरणार्थं संयमस्य प्रतिपादनम्, तस्य च प्रभूतशक्तिसम्पादनाय तपसः समाराधनमावश्यकमित्याशयेन, त्रयाणां पृथङ्निर्देशः कृतः।

किञ्च संयमतपसोर्विषयेऽपरोऽपि विशेषो दृश्यते—संयमात्संवरः, तपस्तु मुख्यतो निर्जरामुद्भावयन् संवरमपि निष्पादयति संयमस्तपश्चैते द्वे-राज्ञ आत्मरक्षकाविवाऽहिंसाव्रतस्य संरक्षके। यद्वा एतद्द्वयस्याहिंसापरिपोषकतया पृथङ्निर्देशः संगच्छते।

अन्यच्च अहिंसा प्राणव्यपरोपणनिवृत्तिप्रधाना, संयमस्तु श्रोत्रादीन्द्रियनिग्रहप्रधान इति महद्वैलक्षण्यमुपलभ्य पृथङ्निर्देशः। तपसो वैलक्षण्यं तु न कस्यचित् संश-

---

प्रश्न—संयम तप आदि सब धर्मोंका मूल अहिंसा है, इसलिए सयम और तपका अहिंसामें ही समावेश हो जाता है तो फिर सयम और तपको अलग अलग क्यो कहा है? सुनो—

उत्तर—अलग अलग कहनेका कारण यह है कि तपके विना सयम की जैसी चाहिए वैसी निर्मलता नहीं होती और विना सयमके अहिंसाका प्रतिपादन करके उसे निर्मल बनानेके लिए तपका अलग कथन किया गया है। इससे तीनोका अलग २ कथन उचित है।

सयम और तपके अर्थमें और भी विशेषता है और वह यह है कि सयम से सवर होता है, परंतु तपसे सयम और निर्जरा दोनो होते है। अथवा यह समझना चाहिये कि सयम और 'तप' ये दोनो राजाके आत्मरक्षकोकी तरह अहिंसाव्रतके रक्षक है, जबतक संयम और तप न हों तबतक अहिंसाका सम्यक् पालन नहीं हो सकता।

एक समाधान और भी है-अहिंसामें प्राणोके व्यपरोपणकी निवृत्तिकी प्रधानता है,

---

પ્રશ્ન—સંયમ તપ આદિ સર્વ ધર્મોનું મૂલ અહિંસા છે, તેથી સંયમ અને તપનો સમાવેશ અહિંસામાં જ થઈ જાય છે. તો સંયમ અને તપને જુદા-જુદા કેમ કહ્યા છે? સાંભળો—

ઉત્તર—જુદા જુદા કહેવાનું કારણ એ છે કે તપ વિના સંયમની જોઈએ તેવી નિર્મળતા થતી નથી અને સયમ વિના અહિંસાનું બરાબર પાલન થઈ શકતું નથી. એ કારણથી અહિંસાનું પ્રતિપાદન કરીને તેને નિર્મળ બનવવાને માટે તપનું જુદુ કથન કરવામાં આવ્યુ છે એથી ત્રણેનુ જુદું-જુદુ કથન ઉચિત છે

સંયમ અને તપના અર્થમાં બીજી પણ વિશેષતા છે અને તે એ કે-સંયમથી સવર થાય છે, પણ તપથી સંયમ અને નિર્જરા બેઉ થાય છે

અથવા એમ સમજવુ જોઈએ કે સંયમ અને તપ એ બેઉ રાજાના આત્મરક્ષકોની પેઠે અહિંસાવ્રતના રક્ષક બને છે. જ્યા સુધી સયમ અને તપ ન થાય ત્યા સુધી અહિંસાનું સમ્યક્ પાલન થઇ શકતું નથી

એક સમાધાન બીજુ પણ છે. અહિંસામાં પ્રાણોના વ્યપરોપણની નિવૃત્તિની પ્રધાનતા છે. અને સંયમના શ્રોત્ર આદિ ઈન્દ્રિયોના નિગ્રહની પ્રધાનતા છે. એ રીતે એમાં અનેક

यगोचरः स्वरूपत एव परस्परं भेदात्. तथाहि–अहिंसा नाम स्वतः परतो वा प्राणव्यपरोपणनिवृत्तिकरणं, तपस्तु क्षुत्पिपासाशीतोष्णादिसहिष्णुत्वरूपमिति । कोटिभवसञ्चितानि कर्कशतमान्यपि कर्माणि तपसाऽऽशुतरं विनश्यन्तीति दुस्तसंसारसागरं–शीघ्रमुत्तर्तुमभिलष्यतामहिंसासंयमाऽऽराधनतत्पराणां मुमुक्षूणामुग्रतपोऽवश्यमाश्रयणीयमित्याशयेनान्ते तपसः पृथङ्निर्देशः कृत इति भाव. । इति प्रथमगाथार्थः ॥ १ ॥

ननु धमः शरीरेण रक्ष्यते, शरीर रक्षणं चाहारेण भवति, स च षड्जीवनिकायोपमर्दनरूपाऽऽरम्भेण निष्पाद्यते, यत्र चारम्भो न तत्र धर्मः संभवति, यथोक्तं श्रीस्थानाङ्गसूत्रे—

" दो ठाणाइं अपरियाणित्ता आया णो केवलिपन्नत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए,

---

और सयममें श्रोत्र आदि इन्द्रियोके निग्रहको प्रधानता है। इस प्रकार इनमें कितनी ही प्रकारको बड़ी २ विशेषताएँ देखकर सूत्रकारने पृथक् कथन किया है। तपके स्वरूपमें तो इतना भेद है कि किसीको सन्देह हो ही नहीं सकता। अपने या दूसरेके द्वारा प्राणव्यपरोपणकी निवृत्ति करनेको अहिंसा कहते है, और क्षुधा पिपासा शीत उष्ण आदिको सहन करना तप कहलाता है।

प्रश्न—भगवान्ने अहिसा सयम और तप इन तीनोमें तपको ही अन्तमें क्यो कहा ?

उत्तर—करोडों भवोमें सचित किये हुए अत्यन्त कठोर कर्म, तपके द्वारा शीघ्र ही नष्ट हो जाते है। इसलिए दुस्तर ससाररूपी सागरको शीघ्र पार करनेको अभिलाषा रखनेवाले, अहिसा और सयमकी आराधनामें तत्पर रहनेवाले मोक्षाभिलाषियोंको अवश्य ही उग्र तपस्या करनी चाहिये, इस उद्देश्यसे भगवान्ने तपको अन्तमें अलग कहा है ॥१॥

धर्मका रक्षण शरीरसे होता है और शरीरका निर्वाह आहारसे होता है। आहार पृथिवीआदिक षड्जीवनिकायके आरभके विना नहीं बन सकता, और 'जहां आरम्भ है वहां धर्म नहीं' यह श्री सर्वज्ञ भगवानने कहा है, क्योंकि ठाणांग (स्थानाङ्ग) सूत्रके

પ્રકારની મોટી મોટી વિશેષતાઓ જોઈને સૂત્રકારે પૃથક્ કથન કર્યું છે તપના સ્વરૂપમા તો એટલો ભેદ છે કે કોઈને સંદેહ થઈ શકે નહિ પોતાની અથવા બીજાની દ્વારા પ્રાણના વ્યપરોપણની નિવૃત્તિ કરવી તેને અહિંસા કહે છે, અને ભૂખ તરસ ટાઢ તાપ આદિને સહેવા તે તપ કહેવાય છે

પ્રશ્ન—ભગવાને અહિંસા સંયમ અને તપ એ ત્રણેમાં તપને છેલ્લુ કેમ કહ્યું ?

ઉત્તર—કરોડો ભવોમાં સચિત કરેલા અત્યત કઠોર કર્મ તપની દ્વારા શીઘ્ર નષ્ટ થઈ જાય છે. એથી દુસ્તર સંસારરૂપી સાગરને શીઘ્ર પાર કરવાની અભિલાષા રાખનારા, અહિંસા અને સંયમની આરાધનામા તત્પર રહેનારા, મોક્ષાભિલાષીઓએ અવશ્ય ઉગ્ર તપસ્યા કરવી જોઈએ એ ઉદ્દેશથી ભગવાને તપને છેલ્લુ જુદુ કહ્યું છે ॥ ૧ ॥

ધર્મનું રક્ષણ શરીરથી થાય છે અને શરીરનો નિર્વાહ આહારથી થાય છે. આહાર પૃથિવી આદિ છ જીવનિકાયના આરભ વિના નથી બની શકતો, અને જ્યાં આરંભ છે ત્યાં ધર્મ નથી' એમ સર્વજ્ઞ ભગવા કહ્યુ છે ઠાણાગ (સ્થાનાંગ) સૂત્રના બીજા ઠાણામા એ વાત

तंजहा-आरभे चेव परिग्गहे चेव" इति, अस्य हि-"द्वे वस्तुनी अपरिज्ञाय आत्मा न केवलिप्रज्ञप्तं धर्मं श्रोतुं लभेत, तद् यथा-आरम्भश्च परिग्रहश्च" अर्थादारम्भ-परिग्रहौ ज्ञ परिज्ञया जन्ममरणादिदुःखहेतू विज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया तयोस्त्यागमकृत्वा जिनोक्तं धर्मं श्रोतुमपि न शक्नोति, पालयितु शक्नोतीति तु दूरापास्तमित्यर्थः, तस्मादुक्तरीत्या त्यागसम्पन्नस्यापि श्रमणस्य शरीरसंरक्षणावश्यकता वर्तते तदर्थं चाहारो ग्रहीतव्यः, तत्र का वृत्तिः समादर्त्तव्ये ? त्याह-'जहा दुमस्स' इत्यादि

१ ३ ४ २ ६ ५
मूलम्-जहा दुमस्स पुप्फेसु भमरो आवियइ रसं
९ ७ ८ १० १२ ११ १४ १३
ण य पुप्फं किलामेइ सो अ पीणेइ अप्पयं ॥२॥

छाया-यथा द्रुमस्य पुष्पेषु, भ्रमर आपिबति रसम् ।
न च पुष्पं क्लामयति, च प्रीणात्यात्मानम् ॥ २ ॥

सान्वयार्थः—जहा=जैसे, भमरो=भौंरा, दुमस्स=वृक्ष के पुप्फेसु=फूलोंमें (रहेहुए)

दूसरे ठाणेसे यह बात स्पष्ट कही गई है। अर्थात् आरंभ और परिग्रह इन दोनोंके यथार्थ स्वरूपको आत्मा ज्ञपरिज्ञासे सम्यक् प्रकार जानकर कि ये ही दोनो जन्म जरा मरणके दाता चतुर्गतिरूप अनन्त ससारमें परिभ्रमण करानेवाले, छेदन-भेदन-आधि-व्याधि-क्लेशरूप दुःखोंके कारण तथा आत्माके विशुद्ध स्वरूपके घातक है, परन्तु जबतक प्रत्याख्यानपरिज्ञा द्वारा तीन करण और तीन योगसे इनको त्याग न देवे तब तक जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्ररूपित धर्मको सुनने योग्य भी नहीं होता, पालनेकी तो बात ही कहां है ? तात्पर्य यह है कि आरम्भ और परिग्रहका त्याग किये विना धर्मका पूर्ण पालन नहीं हो सकता। इसलिए धर्मके आराधक मुनियोको निरवद्य आहारकी विधि कहते है—'जहा दुमस्स' इत्यादि ।

जैसे भ्रमर, भ्रमण करके अनेक वृक्ष लता अदिकोके पुष्पोका थोडा २ रस मर्यादासे लेता है, अधिक नहीं, यानी ऐसा कि किसीको भी पीडा न देते हुए वह अपनी आत्माको तृप्त करलेता है।

સ્પષ્ટ છે. અર્થાત્ આરંભ અને પરિગ્રહ એ બેઉના યથાથ સ્વરૂપને આત્મા, જ્ઞપરિજ્ઞાથી સમ્યક્-પ્રકારે જાણે કે એ બેઉ જન્મ જરા મરણના દાતા, ચતુર્ગતિરૂપ અનંત સંસારમાં પરિભ્રમણ કરાવનારા, છેદન-ભેદન-આધિ-વ્યાધિ-ક્લેશરૂપ દુઃખોના કારણ તથા આત્માના વિશુદ્ધ સ્વરૂપના ઘાતક છે પરંતુ જ્યાં સુધી પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાદ્વારા ત્રણ કરણ અને ત્રણ યોગથી તેને ત્યજી ન દેવાય ત્યાં સુધી જિનેન્દ્રભગવાને પ્રરૂપેલા ધર્મને સાભળવા યોગ્ય પણ થવાતું નથી, પછી પાળવાની તો વાત જ કયાં ? તાત્પર્ય એ છે કે આરંભ અને પરિગ્રહનો ત્યાગ કર્યા વિના ધર્મનું પૂર્ણ પાલન થઇ શકતું નથી તેથી ધર્મના આરાધક મુનિઓને નિરવદ્ય આહારની વિધિ કહે છે—"जहा दुमस्स" ઇત્યાદિ

જેમ ભ્રમર ભ્રમણ કરીને અનેક વૃક્ષ લતા આદિના પુષ્પોનો થોડો થોડો રસ માર્યાદા પૂર્વક લે છે, વધુ લેતો નથી, અને એવી રીતે લે છે કે કોઈ પણ પુષ્પને જરાએ પીડા થાય નહિ, એમ તે પોતાના આત્માને તૃપ્ત કરી લે છે.

रसं=रसको आवियइ=मर्यादानुसार पीता है, य=और पुप्फं=फूलको 'ण कीलामेइ=पीडित नहीं करता है, अ=तोभी सो=वह भौरा अप्पयं=अपनेको पीणेइ=सन्तुष्ट कर लेता है। अर्थात्-जैसे भौरा अनेक वृक्षों के फूलोंसे थोड़ा थोड़ा रस उचित मात्रामें लेता है, ऐसा करने से वह सन्तुष्ट भी हो जाता है और फूलों को भी कष्ट नहीं देता ॥ २ ॥

टीका--यथा भ्रमरः-भ्राम्यति=एकत्र नावतिष्ठत इति भ्रमरः-चतुरिन्द्रियजातिमान् भृङ्गपर्यायवच्यः प्राणिविशेषः। द्रुमस्य, जात्येकत्वादेकवचनम्, 'सर्वो गच्छति इत्यादि-वत्, तेन द्रुमाणामित्यर्थः, द्रुमपदेन योगमर्यादया लतादीनामपि ग्रहणं बोद्धव्यम्, पुष्पेषु स्थितमित्यस्याध्याहारः, रसं-मकरन्दम् आपिवति-आ-मर्यादा-पूर्वकम् उचिताद-धिकं परित्यज्य पिबति-पानविषयं करोति, अल्पं गृह्णातीति भावः। चकारो हेत्वर्थे, तेन-च-अत एव पुष्पं न क्लामयति-न पीडयति-लेशतोऽपि न म्लानयतीति यावत्, च-किञ्च सः-भ्रमरः आत्मानं-स्वं प्रीणाति-तोषयतीत्यर्थः।

पुष्पाणि तु द्रुमलतादीनामेव भवन्ति पुनर्द्रुमपदोपादानम्-यथा भ्रमरः सर्वेषामेव द्रुमलतादीनां पुष्पेषु रसमापिबति न चोच्चनीचादिभेदभावं रक्षति 'वृक्षोऽयमल्पपुष्पफ-लोऽयं च बहुपुष्पफलसमृद्धः' इति, तथा साधुरप्युच्चनीचादिभेदभावं विहाय सर्वत्र समान-भावो गृहस्थकुलानां सकाशाद् यथोचितां भिक्षामाददीतेति सूचनार्थम्।

यद्वा 'दुमस्स' इत्यत्र सम्बन्धसामान्यषष्ठ्या द्रुमसम्बन्धिष्विति, अर्थादयं दृष्टान्तो द्रुमसंसक्तपुष्परसग्राहिणो भ्रमरस्य बोद्धव्यो नेतरस्य, ततश्च यथा भ्रमरो द्रुमसम्बद्धेषु स्थितं

प्रश्न-वृक्ष और लताओंमें ही फूल होते है फिर द्रुम (वृक्ष) शब्द देनेका क्या अभिप्राय है?

उत्तर-जैसे भौंरा सभी वृक्षो और लताओ के फूलोका रस पीता है, ऊंच-नीच भेद-भाव नहीं रखता कि-इस वृक्षमें कम फूल है और इसमें अधिक, इसी प्रकार साधुभी द्रव्य-भावसे ऊंच-नीच भेद-भाव न रखकर समानदृष्टिसे गृहस्थियोंके कुलोमें भिक्षा-वृत्तिके लिए भ्रमण करते है। इस आशयको प्रगट करनेके लिए गाथामें 'द्रुम' शब्द दिया गया है।

अथवा यो समझिये कि गाथामें 'द्रुम' शब्दके साथ षष्ठीविभक्तिका प्रयोग किया गया है, षष्ठी विभक्तिका अर्थ है 'सम्बन्ध'।

પ્રશ્ન—વૃક્ષ અને લતાઓ પર જ ફૂલ થાય છે, તો વળી દ્રુમ (વૃક્ષ) શબ્દ કહેવાનો

रसमापिवति तथा साधुरपि गृहस्थसम्बन्धिनमेव, अर्थात् तत्स्वत्वयुक्तमेवाऽऽहारं गृह्णीयान्न तु स्वामिविरहितमित्यर्थः।

'पुप्फेसु' इति प्रसूनकुसुमादिपर्यायान्तरं परिहाय पुष्पपदोपादाने विकसितार्थोऽभिप्रेतस्ततश्च यथा भ्रमरो विकसितेष्वेव पुष्पेषु स्थितं रसं गृह्णाति तथा साधुरपि दातृत्वभावप्रसन्नेभ्यो निर्जुगुप्सेभ्यश्च कुलेभ्य आहारं गृह्णीयादित्यर्थः।

'भमरो' इत्यनेन इतस्ततो भ्रमणेन किञ्चित्किञ्चिदाहारग्रहणं सूचितम्। मर्यादार्थकेनोपसर्गेणाऽऽङा 'यावानाहारोऽपेक्षितस्तावानेव ग्रहीतव्यः' इति सूचितम्।'

इसलिए यह दृष्टान्त द्रुममें लगे हुए पुष्पके रसको ग्रहण करनेवाले भौंरेका ही समझना चाहिए, दूसरे भौंरेका नहीं। इससे यह अर्थ निकलता है कि जैसे भ्रमर, द्रुम (वृक्ष) सम्बन्धी पुष्परसको ही ग्रहण करता है, अन्य रसको नहीं, इसीभाँति साधुभी गृहस्थसे सम्बन्ध रखनेवाले अर्थात् जिसपर गृहस्थका अधिकार है उसी आहारको ग्रहण करते है, जिस आहारका कोई गृहस्थ स्वामी नहीं होता उसे नहीं ग्रहण करते।

'पुष्प' शब्दके प्रसून कुसुम आदि अनेक पर्याय शब्द होनेपर भी गाथामें प्रसून या कुसुम आदि अन्य शब्द न देकर 'पुष्प' शब्द ही दिया हैं, इससे सूत्रकारका आशय खिलेहुए फूलोसे है ऐसा स्पष्ट होता हैं, क्योकि खिले हुए फूलका ही नाम पुष्प है इसलिए भ्रमर, जैसे खिले हुए फूलो पर ही ठहरता है और उन्हीका रसपान करता है उसी प्रकार साधुभी उन्हीं गृहस्थोसे आहार लेते है जिनका साधुओको आहार देनेका भाव हो, तथा जो कुल दुगुछित न हो।

भ्रमरके भी षट्पद द्विरेफ आदि अनेक नाम है, उनमेंसे दूसरा कोई शब्द न देकर 'भ्रमर' पद दिया है, 'भ्रमर' शब्दका अर्थ है भ्रमण करनेवाला—एक स्थानपर न ठहरने वाला, इस शब्द

પુષ્પોના રસને ગ્રહણ કરનારા ભમરાનું જ સમજવું જોઈએ બીજા ભમરાઓનું નહિ. એટલે એ અર્થ થાય છે કે જેમ ભ્રમર, દ્રુમ (વૃક્ષ) સંબંધી પુષ્પરસને જ ગ્રહણ કરે છે બીજા રસને નહિ, તેમ સાધુ પણ ગૃહસ્થથી સંબંધ રાખનારા અર્થાત્ જેની ઉપર ગૃહસ્થનો અધિકાર હોય તે આહારનેજ ગ્રહણ કરે છે, જે આહારનો કોઈ ગૃહસ્થ સ્વામી નથી હોતો તેને સાધુ ગ્રહણ કરતો નથી

પુષ્પ શબ્દના પ્રસૂન કુસુમ આદિ અનેક પર્યાય શબ્દો હોવા છતાં ગાથામાં પ્રસૂન કે કુસુમ આદિ અન્ય શબ્દ ન આપતાં પુષ્પ શબ્દ જ આપ્યો છે. એમાં સૂત્રકારનો આશય ખીલેલાં ફૂલોનો છે એમ સ્પષ્ટ થાય છે, કારણ કે ખીલેલા ફૂલનું જ નામ પુષ્પ છે. એથી ભ્રમર, જેમ ખીલેલા ફૂલો પર જ બેસે છે અને તેનું રસપાન કરે છે, તેમ સાધુ પણ એવા ગૃહસ્થો પાસેથી આહાર લે છે કે જેમનો ભાવ સાધુઓને આહાર આપવાનો હોય અને જે કુળ દુગુંછિત ન હોય.

ભ્રમરનાં પણ ષટ્પદ દ્વિરેફ આદિ અનેક નામો છે, તેમાંથી બીજો કોઈ શબ્દ ન આપતાં 'ભ્રમર' શબ્દ આપ્યો છે, ભ્રમર શબ્દનો અર્થ થાય છે ભ્રમણ કરનાર—એક સ્થાન

ननु विषमोऽयं भ्रमरदृष्टान्तः, तथाहि—भ्रमरो द्रुमाज्ञामन्तरेणैव पुष्परसमादत्त भिक्षुः पुनर्याचित्वैव, किञ्च तदर्थं कदाचिदेकस्मिन्नपि दिने मुहुर्मुहुरेकं द्रुममुपैति तत्किं साधवोऽपि तथैव गृहस्थेभ्यो भिक्षां गृह्णीयुः ? किञ्च भ्रमरोऽसञ्ज्ञी, साधवस्तु सञ्ज्ञिनो जिनवचननिपुणाश्च, भ्रमरोऽव्रती साधवस्तु व्रतिनः, भ्रमरोऽप्रत्याख्यानी साधवस्तु प्रत्याख्यानिनः, भ्रमरोऽसंयतः साधवस्तु संयताः इत्यादिविरुद्धधर्मशालित्वादिति चेन्न, सर्वत्र दृष्टान्तस्यैकदेशिरूपत्वात्, अनेकपुष्पतः पुष्पाऽक्लान्तिपूर्वककिञ्चित्किञ्चिदुपादानमात्रे दृष्टान्ततात्पर्यमिति निष्कर्षः, स्फुटीकरिष्यति चैतत्सूत्रकारः स्वयम्—'महुगारसमा' इति पञ्चमगाथया ॥ २ ॥

एतदेव विशेषणस्फोरयितुं दार्ष्टान्तिकमाह—'एमेए' इत्यादि

मूलम्—एमेए[1] समणा[5] मुत्ता[4] जे[3] लोए[2] संति[7] साहुणो[6]।
विहंगमा[0] व[10] पुप्फेसु[8] दाणभत्तेसणे[11] रया[12] ॥३॥

प्रश्न—भ्रमरका उदाहरण विषम है, कारण यह कि उसका साधुओंके साथ ठीक मिलान नहीं होता। क्योंकि, भ्रमर वृक्षको आज्ञा प्राप्त किए विना ही पुष्परस पीता है, साधु याचना करके ही भिक्षा लेते है, भ्रमर एक दिनमे एकही वृक्षके पास बारम्बार जाता है और पुष्परसको पीता है साधु एक दिनमें बारम्बार एक गृहस्थके घरसे भिक्षा नहीं ले सकते, भ्रमर असञ्ज्ञी होता है, साधु सञ्ज्ञी होते है, भ्रमर अप्रत्याख्यानी होता है, साधु प्रत्याख्यानी होते है, भ्रमर असयत होता है, साधु सयत होते है इत्यादि अनेक भिन्नताएँ पायी जाती है।

उत्तर—ऐसी शंका ठीक नहीं है, क्योकि दृष्टान्त सब जगहोमें एकदेशीय ही होता है, 'पीड़ा न पहुंचाते हुए अनेक पुष्पोसे थोड़ा थोड़ा लेना' इतने अंशोमें यह दृष्टान्त समझना चाहिए इस विषयका स्पष्टीकरण सूत्रकार स्वय 'महुगारसमा' इस पांचवीं गाथामें करेंगे ॥२॥

પ્રશ્ન—ભ્રમરનુ ઉદાહરણ વિષમ છે, કારણ કે તે સાધુઓની સાથે બરાબર બંધ બેસતું નથી. ભ્રમર વૃક્ષની આજ્ઞા પ્રાપ્ત કર્યા વિના જ પુષ્પનો રસ પીએ છે. સાધુ યાચના કરીને જ ભિક્ષા લે છે ભ્રમર એક દિવસમાં એક જ વૃક્ષની પાસે વારંવાર જાય છે અને પુષ્પરસને પીએ છે, સાધુ એક દિવસમાં વારંવાર એક ગૃહસ્થના ઘેરથી ભિક્ષા નથી લઈ શકતા ભ્રમર અસંજ્ઞી હોય છે, સાધુ સંજ્ઞી હોય છે, ભ્રમર અવ્રતી હોય છે; સાધુ વ્રતી હોય છે; ભ્રમર અપ્રત્યાખ્યાની હોય છે, સાધુ પ્રત્યાખ્યાની હોય છે. ભ્રમર અસંયત હોય છે, સાધુ સંયત હોય છે. ઇત્યાદિ અનેક ભિન્નતાઓ રહેલી છે.

ઉત્તર—એ શંકા બરાબર નથી, કારણકે દૃષ્ટાન્ત બધી જગ્યાએ એકદેશીય જ હોય છે. પીડા ઉપજાવ્યા વિના અનેક પુષ્પોમાંથી થોડો થોડો રસ લેવો' એટલા અંશમાં જ આ દૃષ્ટાન્ત સમજવું જોઈએ. આ વિષયનુ સ્પષ્ટીકરણ સૂત્રકાર પોતે જ મહુગારસમા એ પાંચમી ગાથામાં કરશે. (૨)

जीवन्तीति वा समणाः। मुक्ताः=परिग्रहबन्धनरहिताः धर्मोपकरणं विहाय सूचीकुशाग्रमात्रेणापि परिग्रहेण रिक्ता इति यावत्, तत्र परिग्रहो बाह्याभ्यन्तरभेदाद् द्विविधः, तयोराद्यो धनधान्यादिरूपो नवविधः। द्वितीयस्तु—

"मिच्छत्तं वेयतिगं, हासाइयछक्कगं च नायव्वं।
कोहाईण चउक्कं, चउदस अब्भिंतरा गंठी॥" इत्युक्तरूपः।

साधवः=साध्नुवन्ति=निष्पादयन्ति स्वपरशिवसुखं ये ते, पुष्पेषु=व्याख्यातपूर्वेषु विहङ्गमा इव, विहायसा=गगनेन गच्छन्तीति तथोक्ताः, प्रकरणादत्र भ्रमरा इत्यर्थः त इव, भ्रमरतुल्या इति यावत्।

विशाल भवाटवीमें पर्यटन करते हुए भोगरूपी अग्निको धधकती हुई ज्वालाओंसे उत्पन्न हुए संताप के समूहको शुद्ध भावनासे शान्त करदेते हैं। 'समनस्' शब्दका यह अर्थ है कि जिनका मन स्व और पर में समान है, अथवा जिनके मनोयोग सदा शुद्ध रहते हैं। 'समण' शब्दका अर्थ यह है कि-जो सम्यक् प्रकारसे प्रवचनका प्रतिपादन करते है अथवा चारों कषायोंको जीत लेते है।

परिग्रहके बन्धनसे रहित अर्थात् धर्मके उपकरणोंके सिवाय सुई या कुशकी नोकके बराबर भी परिग्रह न रखनेवालोंको मुक्त कहते है। परिग्रहके दो भेद हैं-(१) बाह्य और (२) आभ्यन्तर। पहला बाह्य परिग्रह धन धान्य द्विपद चौपद आदि नौ प्रकारका है। दूसरा आभ्यन्तर परिग्रह- (१) मिथ्यात्व, (२) स्त्रीवेद, (३) पुरुषवेद, (४) नपुंसकवेद, (५) हास्य, (६) रति, (७) अरति, (८) शोक, (९) भय, (१०) जुगुप्सा, (११) क्रोध, (१२) मान, (१३) माया और (१४) लोभके भेदसे चौदह प्रकारका है।

स्व और परके मोक्ष सम्बन्धी सुखको साधनेवाले साधु कहलाते है। ऐसे साधु, दिये जानेवाले अशन आदिकी एषणामें प्रवृत्त होवें-आहार-पानी की विशुद्धिमें लीन रहे।

वेद रूपी अग्निने शान्त करी नाखे छे. भयंकर विशाळ भवाटवीमां पर्यटन करतां भोगरूपी अग्निनी भभकती ज्वालाओमांथी उत्पन्न थतां संतापना समूहने शुद्ध भावनाथी शान्त करी नांखे छे. 'समनस्' शब्दनो अर्थ एवो छे के-जेनुं मन स्व अने परमां समान होय, अथवा जेना मनोयोग हमेशा शुद्ध रहे 'समण' शब्दनो अर्थ एवो थाय छे के-जे सम्यक् प्रकारे प्रवचननुं प्रतिपादन करे छे अथवा चारे कषायोने जीती ले छे.

परिग्रहना बंधनथी रहित अर्थात् धर्मना उपकरणो सिवाय एक सोय के तणखला जेटलो पण परिग्रह न राखनाराओने मुक्त कहे छे.

परिग्रहना बे भेद छे (१) बाह्य अने (२) आभ्यंतर. पहेलो बाह्य परिग्रह धन-धान्यादि नव प्रकारनो छे. बीजो आभ्यंतर परिग्रह-(१) मिथ्यात्व, (२) स्त्रीवेद, (३) पुरुषवेद. (४) नपुंसकवेद, (५) हास्य, (६) रति, (७) अरति, (८) शोक (९) भय, (१०) जुगुप्सा (११) क्रोध, (१२) मान, (१३) माया, अने (१४) लोभ, ए भेदोए करीने १४ प्रकारनो छे.

एवमुक्तगाथाभ्यां दृष्टान्त-दार्ष्टान्तिकप्रदर्शनपुरस्सरं साधुभिः कथं भिक्षा ग्रहीतव्येत्युक्तं, तत्र भिक्षा द्विविधा-लौकिकी लोकोत्तरा च । तयोराद्या दीनवृत्ति-पौरुषघ्नी- भेदाद् द्विविधा, तत्र स्वोदरभरणासमर्थानां हीना-ऽनाथ-पङ्गुप्रभृतीनामाद्या, पञ्चास्रवसेवासिन्द्रियपञ्चकविषयासक्तचित्तानां प्रमादपञ्चकप्रवृत्तानां भोगामिषगृध्नूनां सन्ततिसमुत्पादकानां निरुद्यमानां द्वितीया । लोकोत्तराऽपि द्विविधा-अप्रशस्ता प्रशस्ता च, तत्राऽवसन्न-पार्श्वस्थादीनामप्रशस्ता भिक्षा, प्रशस्ता पुनः पञ्चमहाव्रतधारिणां षट्कायरक्षकाणां समितिपञ्चक-गुप्तित्रयवतां मुनीनां प्रतिमाधारिश्रावकाणां च, यत एवंभूताः श्रावका अपि श्रमणकल्पा एव इयमेव 'सर्वसम्पत्करी' त्युच्यते,

इन दो गाथाओमें दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिक बतलाकर यह प्रगट किया है कि साधुओंको किस प्रकार भिक्षा लेनी चाहिए ?, अतः भिक्षाके भेद कहते है—

भिक्षा दो प्रकारकी है—लौकिक भिक्षा और लोकोत्तर भिक्षा। लौकिक भिक्षाके भी दो भेद है- (१) दीनवृत्ति, (२) पौरुषघ्नी । अपना पेट भरनेमें असमर्थ, दीन, हीन, अनाथ, लूले, लगड़ोंकी भिक्षा दीनवृत्ति कहलाती है । पांच आस्रवोका सेवन करनेवाले, पाचो इन्द्रियोके विषयोमें चित्तको सदा आसक्त रखनेवाले, पाँचो प्रकारके प्रमादोमें प्रवृत्ति करनेवाले भोगरूपी आमिषमें अभिलापा रखनेवाले, बाल बच्चोको उत्पन्न करनेवाले निकम्मे मनुष्योकी दी जानेवाली भिक्षा पौरुषघ्नी कहलाती है, क्योकि इससे उनका पौरुष नष्ट हो जाता है ।

लोकोत्तरभिक्षा भी दो प्रकारकी है-(१) अप्रशस्त और (२) प्रशस्त । अवसन्न और पार्श्वस्थ आदिकी भिक्षा अप्रशस्त और पचमहाव्रतधारी, षट्कायरक्षक, पांचसमिति तीनगुप्तिका पालन करनेवाले मुनिकी तथा प्रतिमा-(पडिमा)-धारी श्रावकोकी भिक्षा प्रशस्त कहलाती है ।

प्रतिमा-(पडिमा)-धारी श्रावकोकी भिक्षा प्रशस्त इस कारण है कि वे श्रावक होते हुए

આ બે ગાથાઓમા દૃષ્ટાંત અને દાર્ષ્ટાન્તિક બતાવીને એમ પ્રકટ કરવામા આવ્યું છે કે સાધુઓએ કેવા પ્રકારની ભિક્ષા લેવી જોઈએ માટે ભિક્ષાના ભેદો કહે છે—

ભિક્ષા બે પ્રકારની છે લૌકિક ભિક્ષા અને લોકોત્તર ભિક્ષા લૌકિક ભિક્ષાના પણ બે ભેદો છે (૧) દીનવૃત્તિ, (૨) પૌરૂષઘ્ની પોતાનું પેટ ભરવામાં અસમર્થ દીન, હીન, અનાથ લૂલા, લગડાની ભિક્ષા દીનવૃત્તિ કહેવાય છે પાંચ આસ્રવોનુ સેવન કરનારા, પાંચે ઇન્દ્રિયોના વિષયોમાં ચિત્તને સદા આસકત રાખનારા પાંચે પ્રકારના પ્રમાદોમાં પ્રવૃત્તિ કરનારા, ભોગરૂપી આમિષમાં અભિલાષા રાખનારા, બાળ-બચ્ચાંને ઉત્પન્ન કરનારા, એવા નકામા મનુષ્યોને આપવામા આવતી ભિક્ષા પૌરૂષઘ્ની કહેવાય છે, કારણ કે તેથી એમનું પૌરૂષ નષ્ટ થઇ જાય છે.

લોકોત્તર ભિક્ષા બે પ્રકારની છે (૧) અપ્રશસ્ત, (૨) પ્રશસ્ત અવસન્ન અને પાર્શ્વસ્થ આદિની ભિક્ષા અપ્રશસ્ત અને પંચ મહાવ્રતધારી, ષટ્કાયરક્ષક, પાંચ સમિતિ ત્રણ ગુપ્તિનુ પાલન કરનારા મુનિની તથા પ્રતિમા-(પડિમા)-ધારી શ્રાવકોની ભિક્ષા પ્રશસ્ત કહેવાય છે.

अस्या अन्यान्यपि षड् नामानि यथा-(१) मधुकरी, (२) गोचरी, (३) गुडुलेपा, (४) अक्षाञ्जना, (५) गर्तापूरणी, (६) दाहोपशमनी चेति। तासु माधुकरी-समनन्तरसूत्रोक्तस्वरूपा (१)। द्वितीया-यथा गौर्यत्र लघुतृणादिकं पश्यति तत्राऽल्पं यत्र चाधिकं तत्र पूर्वापेक्षयाऽधिकं कवलं गृह्णाति न तु तृणादिकमुन्मूलयति तथा मुनिरपि गृहस्थगृहे यथाऽवसरं यथासामग्रि च यां भिक्षां गृह्णाति सा। अथवा विविधवसनरत्नालङ्करणविभूषिता सुन्दरी युवतिर्गवे घासादिकं समर्पयति तदा तदीयरूपलावण्यादिकमपश्यन्ती गौर्दीयमानं घासादिकमुपादत्ते, तद्वद् भिक्षु-

भी साधुसरीखी उत्कृष्ट क्रियाका पालन करते है। इस भिक्षाको 'सर्वसम्पत्करी' भी कहते हैं, क्योंकि इससे आत्माकी समस्त सम्पत्ति ज्ञान दर्शन सुख आदिकी प्राप्ति होती है। इस भिक्षाके छह नाम और भी कहते है-—

(१) माधुकरी (भ्रामरी), (२) गोचरी, (३), गडुलेपा, (४) अक्षाञ्जना, (५) गर्तापूरणी और (६) दाहोपशमनी।

(१) माधुकरी (भ्रामरी) का स्वरूप इससे पहलेकी गाथामें कहा जाचुका है।

(२) गोचरी-जैसे गाय जहा कम घास देखती है वहा कम कवल ग्रहण करती है, जहा अधिक देखती है वहां पहलेसे कुछ अधिक ग्रहण करती है, घासको जडसे नहीं उखाडती, उसी प्रकार भिक्षु एक स्थानसे ही पूर्ण अशन पान आदि न ग्रहण करे किन्तु गृहस्थको फिर आरम्भ न करना पडे इस प्रकार विचार कर अशनादि ले उसे गोचरी कहते है। अथवा जैसे विविध बहुमूल्य वस्त्राभूषणोंसे आभूषित सुन्दरी युवती स्त्री गायको घास डालने आती है तो गाय उसकी सुन्दरता नहीं देखती वरन् घासपर ही दृष्टि रखती है, उसी प्रकार भिक्षु आहारादि देती

પ્રતિમા-(પડિમા) ધારી શ્રાવકોની ભિક્ષા પ્રશસ્ત એ કારણથી છે કે એ શ્રાવકો હોવા છતાં સાધુના જેવી ઉત્કૃષ્ટ ક્રિયાનું પાલન કરે છે. આ ભિક્ષાને 'સર્વસમ્પત્કરી' પણ કહે છે, કારણ કે તેથી આત્માની સમસ્ત સમ્પત્તિ જ્ઞાન દર્શન સુખ આદિની પ્રાપ્તિ થાય છે. ભિક્ષાના બીજાં છ નામ પણ કહેલાં છે. (૧) માધુકરી (ભ્રામરી), (૨) ગોચરી, (૩) ગડુલેપા (૪) અક્ષાંજના, (૫) ગર્તાપૂરણી, અને (૬) દાહોપશમની

(૧) માધુકરી (ભ્રામરી)નું સ્વરૂપ પહેલાંની ગાથામાં કહ્યું છે

णाऽपि दातृवसनसुवेषरूपलावण्यादेः सानुरागावलोकनं विहाय केवलमशनापानादिशुद्धौ दृष्टिः स्थापनीयेति गोचरीभिक्षासमाचारः (२)।

तृतीया गडुलेपा यथा गड्वपरि समधिकलेपप्रदानेन प्रसृतलेपतो नीरुजोऽपि गडुसन्निहितदेशो विहन्यते, तदेकदेशमात्रे यत्किञ्चिल्लेपप्रदाने गडुप्रदेशसाकल्येन लेपाभावाद्रोगो नोपशाम्यति, तद्वत्साधुरपि, निर्दोषपरिमिताहारेण क्षुधां निवर्तयति तद्रूपा (३)।

चतुर्थं चास्या अक्षाञ्जनेति नाम–यथा शकटेन दूरं गन्तुकामस्तत्र यदि तैलदानं न कुर्यात्, तदा चलितुमेवाक्षमं तन्न पारयति शकटारोहिणं प्रापयितुमभीष्टस्थानम् तत्राधिकतरतैलनिक्षेपस्तु न केवलं निष्फलः प्रत्युत हानिं जनयतीति, तद्वन्निरवद्याशनपानप्रदानं विना मोक्षप्रापकसंयमपथे चलितुमक्षमं शरीरमपि नालं मुनीन् मोक्षं

हुई स्त्रीके सौन्दर्य, सुवेष, आभूषण आदि का निरीक्षण न करे किन्तु अशनादिकी शुद्धि पर ही दृष्टि रखे उसे गोचरी कहते है।

(३) गडुलेपा–जैसे फोडेके ऊपर आवश्यकतासे अधिक लेप करनेसे लेप इधर-उधर फैल जाता है और आस-पासका नीरोग प्रदेश भी खराब हो जाता है, और यदि फोड़े पर बिलकुल ही लेप न किया जाय तो भी रोग शान्त नहीं होता, वैसेही साधु यदि प्रमाणसे अधिक आहार करे तो प्रमाद आदि दोष उत्पन्न होनेसे स्वाध्याय आदि क्रियाओंका पूर्ण पालन नहीं कर सकता, और बिलकुल ही थोडा आहार करे तो क्षुधावेदनीयकी शान्ति न होनेसे वैयावृत्त्य आदि साधुकी क्रियाएँ नही हो सकतीं, इसलिए निर्दोष और परिमित आहार लेना 'गडुलेपा' भिक्षा कहलाती है।

(४) अक्षाञ्जना–जैसे कोई गाडीद्वारा इच्छित स्थान पर जाना चाहता है परन्तु गाडीको बिलकुल तेल नहीं देवे तो वह गाडी चल नहीं सकती और यदि अधिक तेल दे दिया जाय तो वह वृथा ही नहीं वरन् हानिकारक भी है, इसी प्रकार मोक्षपुरी तक पहुचनेके लिए शरीर-रूप

પર જ દૃષ્ટિ રાખે છે, તે પ્રમાણે ભિક્ષુ આહારાદિ આપતી સ્ત્રીનું સૌંદર્ય, સુવેશ, આભૂષણ આદિનું નીરીક્ષણ ન કરે, કિંતુ અશનાદિની શુદ્ધિ પર જ દૃષ્ટિ રાખે તેને ગોચરી કહે છે.

(૩) ગડુલેપા–જેમ ગુમડા ઉપર જરૂરી કરતા વધારે લેપ કરવાથી લેપ આમ-તેમ ફેલાઇ જાય છે અને આસપાસનો નીરોગ પ્રદેશ પણ ખરાબ થઇ જાય છે. અને જો ગૂમડા ઉપર બિલકુલ લેપ ન કરવામાં આવે તો રોગ શાન્ત થાય નહિ, એવી જ રીતે સાધુ જો પ્રમાણથી અધિક આહાર કરે તો પ્રમાદ આદિ દોષ ઉત્પન્ન થવાથી સ્વાધ્યાય આદિ ક્રિયાઓનું પૂર્ણ પાલન કરી શકતો નથી, અને બિલકુલ થોડો આહાર કરે તો ક્ષુધાવેદનીયની શાન્તિ નહિ થવાથી વૈયાવૃત્ત્ય આદિ સાધુની ક્રિયાઓ થઇ શકતી નથી તેથી નિર્દોષ અને પરિમિત આહાર લેવો એ 'ગડુલેપા' ભિક્ષા કહેવાય છે.

(૪) જેમ કોઈ માણસ ગાડામા બેસીને ઇચ્છિત સ્થાન પર જવા ઇચ્છે છે. પરન્તુ ગાડાને બિલકુલ તેલ ન ઉંજે તો એ ગાડું ચાલી શકતું નથી અને જો વધારે પડતું તેલ ઉંજે તો તે વૃથા જાય છે. એટલુ જ નહિ પણ હાનિકારક પણ નીવડે છે. એ રીતે મોક્ષ-

महे-प्राप्स्यामः लप्स्याम इति यावत्, यथा न कोऽपि त्रस-स्थावरप्राणि-मात्रमित्यर्थः उपहन्यते=उपहतः (उपमर्दितः) भवेत्। एवं निवृत्तिग्रहणे सदृष्टान्त हेतुमुपन्यस्यति 'अहा०' इति, अत्र 'यत्' इत्यध्याहार्यम्, तथा च यतः यथा-कृतेषु=गृहस्थैरात्मार्थमात्मीयार्थं च सम्पादितेष्वाहारादिषु रीयन्ते=गच्छन्ति संयमयात्रां निर्वहन्तीति यावत् 'साधवः' इति शेषः। अत्र गतमपि भ्रमरदृष्टान्तं विस्पष्टप्रतिपत्तये पुनरु-पन्यस्यति 'पुप्फेसु' यथा पुष्पेषु भ्रमराः ते हि पुष्पेभ्यो रसमाहरन्तोऽपि तानि (पुष्पाणि) लेशतोऽपि न पीडयन्ति। अत्र 'लब्भामो' इत्यस्य 'लप्स्याम' इति व्याख्यानं नु सर्वथा व्याकरणविरुद्धमेव 'लभ' धातोरनुदात्तेत्सु पठितत्वेन नित्यात्मनेपदित्वात्, न च चक्षिङो ङित्करणज्ञापितया 'अनुदात्तेत्त्वलक्षणमात्मनेपदमनित्यम्' इतिपरिभाषया परस्मैपदमपि युक्तमेवेति वाच्यम्, तस्या अगतिकगतिकृतशिष्टप्रयोगविषयत्वात्, वस्तुतस्तु भाष्यानुक्त-ज्ञापितार्थस्य साधुताया नियामकत्वे प्रमाणाभावादेवमादिकाः परिभाषाश्चिन्त्या एवेति स्पष्टं 'परिभाषेन्दुशेखरे' इत्यतिरोहितं वैयाकरणानाम्। अत्र गाथायां 'लब्भामो' इति, 'उवहम्मइ' इति भविष्यद्वर्त्तमानौ कालावविवक्षितौ, तेन कालत्रयग्रहणं बोध्यम् ॥४॥

एवं मधुकरदृष्टान्तेन यत्फलितं तत्प्रतिपादयन्नुपसंहरति-'महुगारसमा०' इत्यादि।

मूलम्—[२]महुगारसमा [३]बुद्धा [१]जे [५]भवंति [४]अणिस्सिया।
[७]नाणापिंडरया [६]दंता [८]तेण [१०]वुच्चंति [९]साहुणो ॥त्तिबेमि॥५॥

छाया—मधुकर(क)समा बुद्धा यतो भवन्त्यनिश्रिताः।
नानापिण्डरता दान्ताः, तेन उच्यन्ते साधवः ॥५॥

सान्वयार्थः—(क्योंकि) जे=जो महुगारसमा=भौंरेकीभांति बुद्धा=विवेकी अणिस्सिया=मोहबन्धनरहित नाणापिंडरया=अनेक घरोंका निरवद्य पिण्ड लेकर संयममें लीन

प्रकार) त्रस या स्थावर जीवको किसीभी प्रकारकी बाँधा न पहुचे, क्योंकि गृहस्थोद्वारा अपने लिए या अपने कुटुम्बके लिये बनाये हुए आहारको लेकर ही साधु अपनी सयमयात्राका निर्वाह कर लेते है। इसी बातको अधिक स्पष्ट करनेके लिए कहे हुए भ्रमर दृष्टान्तको फिर दुहराते है कि-जैसे भ्रमर पुष्पोसे रस ग्रहण करकेभी किसी पुष्पको पीडा नहीं पहुँचाता ॥गा० ४॥

मधुकरका उदाहरण देनेसे जो निष्कर्ष निकला उसे सूत्रकार कहते है—'महुगारसमा' इत्यादि।

પ્રશસ્ત ભિક્ષા ગ્રહણ કરીશુ કે જેમ (જે પ્રકારે) ત્રસ યા સ્થાવર જીવને કોઇ પણ પ્રકારની બાધા ન પહોંચે કારણ કે ગૃહસ્થોએ પોતાને માટે યા પોતાના કુટુંબને માટે બનાવેલો આહાર લઇને જ સાધુ પોતાની સંયમ-યાત્રાનો નિર્વાહ કરી લે છે એ વાતને વધુ સ્પષ્ટ કરવાને માટે ભ્રમરના દૃષ્ટાંતને ફરીથી બેવડાવે છે કે-જેમ ભ્રમર પુષ્પોમાંથી રસ ગ્રહણ કરીને પણ કોઇ પુષ્પને પીડા ઉપજાવતો નથી (ગા૦ ૪)

મધુકરના ઉદાહરણમાથી જે નિષ્કર્ષ નીકળ્યો તેને સૂત્રકાર કહે છે-મહુગારસમા, ઇત્યાદિ.

दंता=दारिद्र्यविजयी भवंति=होते हैं, तेण=इसीसे वे साहुणो=साधु वुच्चंति=कहलाते हैं। त्तिवेमि=इस प्रकार श्रीसुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामीसे कहते हैं-"जम्बू ! श्रमण भगवान महावीरसे मैंने जैसा सुना है वैसा ही तेरे लिए कहता हूं ॥५॥

॥ इति प्रथमाध्ययनस्य सान्वयार्थः ॥१॥

टीका - अत्र गाथायां 'जे' इत्यस्यादौ 'यतः' 'इति' 'तेण' इत्यस्यान्ते 'ते' इति च पदद्वयमध्याहार्यम्, तथा च-यतः ये मधुका (क) रसमाः=भृङ्गवदनियत वृत्तयः बुद्धाः= इदं कर्त्तव्यमिदमकर्त्तव्यमित्येवं विवेकवन्तः, अनिश्रिताः निश्रायरहिताः-निवासकुलादिषु प्रणयनिगडबन्धशून्या इत्यर्थः, नानापिण्डरताः=नाना अभिग्रहविशेषेण प्रतिगृहाल्पाल्प-ग्रहविशेषेण युक्ततया अन्तप्रान्तादिभेदेन च विविधप्रकारा ये पिण्डाः=आहाराद्यास्तेषु रताः=संसक्ताः, दान्ताः=इन्द्रियनोइन्द्रियविकारभावाऽनुपहतचित्ताः, भवन्ति, तेन=उक्त-प्रकारेण निरवद्यवृत्तिसमाराधनेन हेतुना ते योगत्रये-न्द्रियपञ्चक-नवविधविशुद्धब्रह्मचर्या-ऽहिंसाः साधयन्तीति साधवः व्युच्यन्ते=कथ्यन्ते इति गाथार्थः, इत्यन्ये वस्तु-तस्तु अत्र 'यतः' इत्यस्य, 'ते' इत्यस्य चाध्याहरणं 'जे' इत्यस्य प्रथमान्तत्वेन व्याख्यानं च न युक्तं, तथा सति 'ये'-'ते'-शब्दयोर्वैयर्थ्यापत्तेः, तस्मात् 'जे' इत्यव्ययपदं 'यतः' इत्यस्यार्थे, अव्ययानामनेकार्थत्वात्, ततश्चायमभिसम्बन्धः-यतः मधुकारसमाः बुद्धाः अनिश्रिताः नानापिण्डरताः दान्ता भवन्ति तेन साधवः उच्यन्त इति, साधुविशेषणानां मधुकारसमादीनां व्याख्यातु यथापूर्वमेवेति वयमिति विभावयन्तु विद्वांसः।

जो भौंरके समान अनियत (कुलकी नेसराय रहित) भिक्षा लेते है, कर्तव्य और अक-र्तव्यके विवेकी हे, निवासस्थान तथा कुटुम्ब परिवार आदि मे ममताके बन्धनसे बन्धे हुए नही है, भाँति २ के अभिग्रह धारण करके अनेक घरोसे लिये जाने वाले अन्त-प्रान्त आदि आहारमें अनुरक्त रहते हे, इन्द्रियो और मनके विकारको दमन करते है वे निर्दोप भिक्षा लेकर तीन योग, पाँच इन्द्रियां, नव प्रकारके विशुद्ध ब्रह्मचर्य और अहिंसाकी साधना करनेवाले साधु कहलाते है।

भौरेके समान असञ्ज्ञी भी होते हैं अतः बुद्ध (कर्तव्याकर्तव्य विवेकसे युक्त) पद दिया है। प्रतिमा (पडिमा) धारी श्रावक (सयतासयत) भी भौंरेके समान और बुद्ध होते है इसलिए

જે ભ્રમરાની પેઠે અનિયત (કુળની નેસરાય રહિત) ભિક્ષા લે છે, કર્તવ્ય અને અકર્તવ્યનો વિવેકી છે, નિવાસસ્થાન તથા કુટુમ્બ પરિવાર આદિમા મમતાના બંધનથી બદ્ધ થયો નથી, તરેહ-તરેહના અભિગ્રહો ધારણ કરીને અનેક ઘરોથી લીધેલા અંત-પ્રાંત આદિ આહારમા અનુરક્ત રહે છે, ઇન્દ્રિયો અને મનના વિકારોનું દમન કરે છે, તે નિર્દોષ ભિક્ષા લઈને ત્રણ યોગ, પાચ ઇન્દ્રિયો, નવ પ્રકારનુ વિશુદ્ધ બ્રહ્મચર્ય અને અહિંસાની સાધના કરનારો સાધુ કહેવાય છે

ભ્રમરાની પેઠે અસંજ્ઞી પણ હોય છે, તેથી બુદ્ધ (કર્તવ્યા-કર્તવ્ય-વિવેકથી યુક્ત) પદ આપેલું છે. પ્રતિમા (પડિમા) ધારી શ્રાવક (સંયતાસંયત) પણ ભ્રમરાની સમાન અને

मधुकरसमा अपि केचिदपि सन्ति भवन्तस्तथापि तद्व्यावृत्त्यर्थमाह 'बुद्धा' इति, मधुकरसमा बुद्धाश्च भवितुमर्हन्ति प्राप्यानागता अपि भवन्ति तद्व्यावृत्तये 'अणिस्सिया' इति। मधुकरसादृश्यं च साधूनां न सार्वदेशिकं किन्तु चन्द्रमुखा-दिवदेकदेशिकमेवेत्यतो यदंशे मधुकरसादृश्यासम्भवस्तद्बोधनार्थमाह-'नाणापिंडरया दंता' इति. भ्रमरा हि सुगन्धिभ्य एव कुसुमेभ्यः स्वादुरसेन च रसमादत्ते न च दान्ता भवन्ति। 'त्तिबेमि' इति=उक्तरूपं तत्त्व यथा तीर्थङ्करस्य भगवतो महावीरस्य सकाशात्मया श्रुतं न स्वबुद्ध्या कल्पितं यतः स्वबुद्ध्या

'अणिस्सिया' पद दिया है.

जैसा कि पहले कहा जा चुका है भौंरेका उदाहरण एकदेशीय है, कोई कहता है कि 'इसका मुख. चन्द्रमाके समान है' तो मुखमें चन्द्रमाके सब गुण नहीं पाये जाते, अर्थात् कुछ गुण सदृश होते हैं कुछ विसदृश होते हैं, भौंरेका उदाहरण भी कुछ अंशोंमें मिलता कुछ अंशोंमें नहीं मिलता है। जिस अंशमें नहीं मिलता है वह सूत्रकारने 'नाणापिंडरया' और 'दंता' विशेषणो से प्रगट किया है। भ्रमर, केवल कुसुमोंके स्वादिष्ट रसको ही पीता है इसलिए वह दान्त (इन्द्रियोंको जीतनेवाला) नहीं है, इस दृष्टान्तसे दार्ष्टान्तिककी विसदृशता है।

सुधर्मस्वामी जम्बूस्वामीसे कहते है—हे जम्बू! ऊपर जो प्रथम अध्ययनका भाव कहा गया है वह अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान् श्रीमहावीरसे जैसा मैंने सुना वैसाही कहा है, अपनी बुद्धिसे कल्पना किया हुआ नहीं कहा है, अपनी बुद्धिसे कल्पना करके कहनेसे श्रुतज्ञानकी आशातना होती है,

---

બુદ્ધ હોય છે, તેથી अणिस्सिया પદ આપ્યું છે

પહેલાં કહેવામાં આવ્યું છે કે ભ્રમરનું ઉદાહરણ એક-દેશીય છે. કોઈ કહે છે કે-'એનું મુખ ચંદ્રમા જેવું છે.' પણ મુખમાં ચંદ્રમાના બધા ગુણો હોતા નથી અર્થાત્ કોઈ ગુણ સમાન હોય છે, કોઈ અસમાન હોય છે ભ્રમરનું ઉદાહરણ પણ કાંઈ અંશોમાં મળતું છે, કોઈ અંશોમાં અણમળતું છે જે અંશમાં અણમળતું છે તે સૂત્રકારે नाणापिंडरया અને दंता વિશેષણોથી પ્રકટ કર્યું છે ભ્રમર માત્ર કુસુમોના સ્વાદિષ્ટ રસને જ પીએ છે, તેથી એ દાન્ત (ઇન્દ્રિયોને જીતનાર) નથી આ દૃષ્ટાંતથી દાર્ષ્ટાન્તિકની અસમાનતા છે

સુધર્મા-સ્વામી જંબૂ-સ્વામીને કહે છે-હે જંબૂ! ઉપર જે પ્રથમ અધ્યયનનો ભાવ કહ્યો છે તે અંતિમ તીર્થંકર ભગવાન મહાવીર પાસેથી જેવો મેં સાંભળ્યો તેવો જ કહ્યો છે. મેં પોતાની બુદ્ધિથી કલ્પના કરેલો નથી કહ્યો પોતાની બુદ્ધિથી કલ્પના કરી કહેવાથી

कथने श्रुतज्ञानस्याविनयो भवति, किञ्च छद्मस्थानां दृष्टयोऽप्यपूर्णा भवन्ति,तस्माद् यथाभगवत्प्रतिपादितमेव त्वां ब्रवीमि=उपदिशामीत्यर्थः । इहार्थे चेयं सङ्ग्रहगाथा—

"सुअणाणस्स अविणओ परिहरणिज्जो सुहाहिलासीहिं ।
छउमत्थाणं दिट्ठी, पुण्णा णत्थित्ति सूइयं इइणा ॥१॥"इति,

इति पञ्चमगाथार्थः ॥५॥

इति श्री-विश्वविख्यात-जगद्वल्लभ–प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषा-कलित-ललित-
कलापाऽऽलापक-प्रविशुद्ध गद्य-पद्य-नैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-
श्री शाहूछत्रपति–कोल्हापुरराज-प्रदत्त-जैनशास्त्राचार्य-पदभूषित-
कोल्हापुरराजगुरु–बालब्रह्मचारि–जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-
पूज्य-श्रीघासीलालव्रतिविरचितायां श्रीदशवैकालिकसूत्र-
स्याऽऽचारमणिमञ्जूषाख्यायां व्याख्यायां प्रथम
द्रुमपुष्पकाख्यमध्ययनं समाप्तम् ॥१॥

—*—

होती है, और छद्मस्थोंका ज्ञान भी अधूरा होता है, इसलिए भगवान्द्वारा प्रतिपादित प्रवचन ही तुझे सुनाया है । कहाभी है—

"सुखके अभिलाषी पुरुषोंको श्रुतज्ञानकी आशातनाका त्याग करना चाहिये । क्योंकि छद्मस्थोंकी दृष्टि पूर्ण नहीं होती । इसी अर्थको 'त्तिबेमि' शब्दसे प्रगट किया है' ॥५॥

इसप्रकार दशवैकालिक सूत्रके 'द्रुमपुष्पक'
नामक पहले अध्ययनकी आचारमणिमञ्जूषा
नामक व्याख्याका हिन्दी–भाषानुवाद
समाप्त हुआ ॥ १ ॥

—*—

શ્રુતજ્ઞાનની આશાતના થાય છે અને છદ્મસ્થોનુ જ્ઞાન પણ અધૂરૂ હોય છે, તેથી ભગવાન દ્વારા પ્રતિપાદિત પ્રવચન જ મે તને સભળાવ્યું છે કહ્યુ પણ છે કે—

"સુખના અભિલાષી પુરૂષોએ શ્રુતજ્ઞાનની આશાતનાનો ત્યાગ કરવો જોઈએ, કારણ કે છદ્મસ્થોની દૃષ્ટિ પૂર્ણ હોતી નથી આ અર્થને ત્તિબેમિ શબ્દથી પ્રકટ કર્યો છે" (૫)

ઇતિ 'દ્રુમપુષ્પક' નામના પહેલા અધ્યયનનો
ગુજરાતી-ભાષાનુવાદ સમાપ્ત (૧).

॥ द्वितीयाऽध्ययनम् ॥

गतं प्रथममध्ययनमथ द्वितीयमारभ्यते, तत्रायमभिसम्बन्धः—पूर्वाध्ययने 'धम्मो मंगलं' इत्यादिना धर्मः प्रशंसितो यः केवलं जिनशासन एवोपलभ्यते, ततश्चोक्तरूपधर्मपरिपालनार्थस्वीकृतजिनशासनो नवदीक्षितः कदाचिद्धैर्याभावाच्चारित्रच्युतो न भवेदित्याशयेनास्मिन्नध्ययने 'साधुना धैर्यं धार्य' मिति वक्तव्यं, धैर्यधारणं च कामनिवारणमन्तरेण न संभवतीति प्रथमं तदेवाह- 'कहं नु' इत्यादि।

मूलम्—कहं नु कुज्जा सामण्णं, जो कामे न निवारए।
पए पए विसीअंतो, संकप्पस्स वसंगओ ॥ १ ॥

छाया—कथं नु कुर्याच्छ्रामण्यं, यः कामान्न निवारयेत्।
पदे पदे विषीदन् संकल्पस्य वशं गतः ॥ १ ॥

सान्वयार्थः—जो=जो कामे=विषयोंको न निवारए=नहीं छोडता है, वह संकप्पस्स=इच्छाओंके वसंगओ=वशमें होकर पए पए=पद-पद पर विसीअंतो=खेदित होता हुआ नु=आश्चर्य है कि वह सामण्णं=श्रमणधर्म को कहं=कैसे कुज्जा=कर-पाल सकता है अर्थात्-जो इन्द्रियोंके विषयोंका परित्यागनहीं करता उसकी इच्छाएँ सदैव बढ़ती रहती हैं, उसे कभी सन्तोष नहीं होता, सन्तोष न होनेसे निरन्तर मानसिक कष्ट होता है, विषयोंकी इच्छासे उत्पन्न हुआ मानसिक कष्ट होते रहनेसे चारित्रधर्मकी आराधना नहीं हो सकती, अतः सर्व-प्रथम इन्द्रियोंको वशमें करना चाहिये ॥ १ ॥

दूसरा अध्ययन।

पहले अध्ययनमें धर्मका स्वरूप और माहात्म्य कहा है वह केवल जैनशासनमें ही पाया जाता है। इसलिए पहले कहे हुए धर्मका पालन करनेके लिए जिसने जैनशासन अर्थात् चारित्र-धर्म स्वीकार कर लिया हो परन्तु नवीन दीक्षित होनेसे कभी धैर्य छूट जानेके कारण वह कदाचित् चारित्रसे स्खलित न हो जाय, इस अभिप्रायसे इस अध्ययनमें 'साधुको धैर्य धारण करना चाहिए' यह कहा जायगा। लेकिन धैर्य तब ही रह सकता है जब कि कामके विकार को जीत लिया जाय। अतएव शास्त्रकार सबसे पहले इसी विषयका प्रतिपादन करते है—'कहं नु—' इत्यादि।

અધ્યયન બીજુ

પહેલા અધ્યયનમા ધર્મનુ સ્વરૂપ અને મહાત્મ્ય કહ્યુ છે તે કેવળ જૈન શાસનમા મળી આવે છે તેથી, પહેલા કહેલા ધર્મનુ પાલન કરવાને માટે જેણે જૈન શાસન અર્થાત્ ચારિત્ર ધર્મ સ્વીકાર્યો હોય પરતુ નવદીક્ષિત હોવાથી કોઇવાર ધૈર્ય છૂટી જવાથી એ કદાચ ચારિત્રથી સ્ખલિત ન થઇ જાય, તેટલા માટે આ અધ્યયનમા "સાધુએ ધૈર્ય ધારણ કરવું જોઇએ" એ કહેવામાં આવશે પરન્તુ ધૈર્ય ત્યારે જ રહી શકે છે કે જ્યારે કામવિકારને જીતી લેવામા આવે. તેથી શાસ્ત્રકાર સૌથી પહેલા એ વિષયનુ પ્રતિપાદન કરે છે—'કહં નુ०' ઇત્યાદિ.

टीका-यः, काम्यन्ते=अभिलष्यन्ते प्राणिभिरिति कामाः=शब्दादयस्तान् न निवारयेत्=नापनयेत्, अत्र 'सः' इत्यध्याहार्यं यत्तदोर्नित्यसम्बन्धादिति केचित्, वस्तुतस्तु नात्र तच्छब्दाध्याहारावश्यकता, न चाऽनध्याहारे साकाङ्क्षत्वदोष इत्याक्षेप्यम्, उत्तरवाक्यगतत्वेन यच्छब्दोपादाने तस्य दोषस्याऽनवकाशात् 'आत्मा जानाति यत्पाप' मित्यादिवत् । संकल्पस्य=अप्राप्तविषयप्राप्तिरूपस्याऽप्रशस्तस्याऽध्यवसायस्य, वशम्=अदीनतां गतस्तदधीनवर्ती भूत्वेति भावः, पदे पदे=प्रतिस्थानं विषीदन् खेदमनुभवन् कथं=केन प्रकारेण 'नु' क्षेपे वितर्के पृच्छायां वा, श्राम्यति=तपस्यतीति श्रमणः=सचित्ताचित्त-मनोज्ञा-मनोज्ञद्रव्याधिकरणकसाम्यभाव-हास्यादिषट्कविप्रमुक्ति-पंचसमितिसमितत्व-गुप्तित्रयगुप्तत्व--गुप्तब्रह्मचर्यत्वयोगत्रयसाधकत्व--सदोरकमुखवस्त्रिकोपशोभितमुखत्व-यतनाधर्मधरत्व--भोगामिषविरक्तत्व--करणसप्तति--चरणसप्ततिपारगत्व- निर्दोषभिक्षणशीलत्व-तीर्थङ्कराज्ञाराधकत्व-आत्मज्ञत्व-निष्परिग्रहत्व-यात्रामात्राज्ञत्व-कूर्मवदात्मगोप-

जीव, जिन इन्द्रियोंके विषयोंकी कामना (अभिलाषा) करता है उनको 'काम' कहते है । जो साधु, इन कामोंका त्याग नहीं करते, वे अप्राप्त विषयकी प्राप्तिरूप अशुभ अध्यवसायके अधीन होकर पद- पद पर खेदका अनुभव करते हुए क्या कभी श्रमणताको प्राप्त कर सकते है ? कदापि नहीं ।

इष्ट, अनिष्ट, सचित्त, अचित्त आदि समस्त वस्तुओ पर समताभाव रखना, हास्य आदि छह नोकषायका त्याग करना, पाच समिति और तीन गुप्तिका पालन करना, गुप्त ब्रह्मचारी होना, तीन योगोंको साधना, श्रुतज्ञानरूपी जलसे अन्तःकरणको शुद्ध रखना, सम्यक्त्वसे युक्त रहना, सयमरूपी कवच (बख्तर) से सदा सन्नद्ध रहना, डोरासहित मुखवस्त्रिकाको मुखपर बाधे हुए रहना, यतना धर्म को धारण करना भोगरूपी आमिष से विरक्त रहना करणसत्तरी और चरणसत्तरीके पारगामी होना, निर्दोषभिक्षासे ही सयमयात्राका निर्वाह करना, तीर्थङ्कर

જીવ જે ઈન્દ્રિયોના વિષયોની કામના (અભિલાષા) કરે છે તેને 'કામ' કહે છે જે સાધુ, એ કામોનો ત્યાગ નથી કરતા, તેઓ અપ્રાપ્ત વિષયની પ્રાપ્તિરૂપ અશુભ અધ્યવસાયને અધીન થઇને ડગલે ડગલે ખેદનો અનુભવ કરતા શું કદાપિ શ્રમણતાને પ્રાપ્ત કરી શકે છે ? કદાપિ નહિ

ઇષ્ટ, અનિષ્ટ સચિત્ત, અચિત્ત આદિ બધી વસ્તુઓ પર સમતા-ભાવ રાખવો, હાસ્ય આદિ છએ નોકષાયનો ત્યાગ કરવો પાંચ સમિતિ અને ત્રણ ગુપ્તિનું પાલન કરવું ગુપ્ત બ્રહ્મચારી થવું, ત્રણ યોગોને સાધવા, શ્રુતજ્ઞાનરૂપી જળથી અંતઃકરણને શુદ્ધ રાખવું સમ્યક્ત્વથી યુક્ત રહેવુ, સંયમરૂપી કવચ (બખ્તર) થી સજ્જ રહેવુ દોરાસહિત મુખવસ્ત્રિકાને મુખ પર બાધીને રહેવું, યતના-ધર્મને ધારણ કરવું, ભોગરૂપી આમિષથી વિરક્ત રહેવું, કરણ સિત્તેરી અને ચરણસિત્તેરીના પારગામી થવું, નિર્દોષ ભિક્ષાથી જ સયમયાત્રાનો નિર્વાહ કરવો, તીર્થંકર ભગવાનની આજ્ઞાનું આરાધન કરવું, આત્મજ્ઞાની થવું, પરિગ્રહનો ત્યાગ કરવો, યાત્રામાત્રાને જાણવી, કાચબાની પેઠે ઇન્દ્રિયોનુ ગોપન કરવું, અલ્પ અશન પાનને ગ્રહણ કરવા અલ્પ ઉપધિ રાખવી, કષાયને ત્યજવા, આસ્રવરહિત થવું, સસારરૂપી સાગરથી

कृत्वा -ऽल्पपिण्डाऽल्पपानाशित्वाऽल्पोपधिकत्वाऽल्पकषायत्व--निराश्रवत्व--तीर्णत्वा--ऽपापत्व-निर्ग्रन्थ-प्रवचनप्रवीणत्व-शल्यकर्तकत्व सन्निधिविरहितत्वो-रगाद्युपमितत्व--पापश्रुत-प्रतिषेधित्व-स्वमनस्कत्व-निरतिचारचारित्रत्वादिगुणसम्पन्नः, तस्य भावः कर्म वा श्रामण्यं=श्रमणधर्मं कुर्यात्,प्रतिपालयेत् न हि सङ्कल्पाधीनचित्तवृत्तितया व्याक्षिप्तस्य भावक्रियाशून्य-द्रव्य-क्रियामात्रपालनेन श्रामण्यं भवतीति गाथार्थः ॥ ॥ १ ॥

अत्रायं संग्रहः -- "सचित्ताचित्तदव्वसु मणुन्ने अमणुन्नए ।
रक्खए समभावं जो, समणो सो पवुच्चई ॥ १ ॥

हासं रई भयं सोगो, दुगुंछा य कसायया ।
एएहिं विप्पमुक्को जो, समणो सो पवुच्चई ॥ २ ॥

पंचसमिईहि समिओ, तिगुत्तिगुत्तो य बंभयारी जो ।
परिसाहेइ सुजोगं सो समणो वुच्चइ निच्च ॥ ३ ॥

भगवानकी आज्ञाका आराधन करना, आत्मज्ञानी होना, परिग्रहका त्याग करना, यात्रा-मात्राको जानना, कछुएकी भाँति इन्द्रियोका गोपन करना, अल्प अशन अल्प पानका ग्रहण करना, अल्प उपधि रखना, कषायको त्यागना, आस्रवरहित होना, ससाररूपी सागरसे पार उतरना, पापरहित होना, निर्ग्रंथ प्रवचनमें प्रवीण होना, माया, मिथ्यात्व और निदान रूप शल्योको काटना, सन्निधिका न रखना, उरगादिकी उपमासे युक्त होना, पापकी प्ररूपणा करनेवाले शास्त्रोका उपदेश नहीं करना, मनको स्वच्छ रखना और अतिचाररहित चारित्रको पालना, तथा मृग जैसे सिंहसे सर्वथा दूर भागते है उसीप्रकार पापकर्म जिसके पास न ठहरे वह 'श्रामण्य' (साधुपन) कहलाता है। ऐसा श्रामण्य जबतक प्राप्त नहीं होता तब तक वह काम-भोगका त्याग न कर देवे, जिसका चित्त कामके सकल्प-विकल्पोसे व्याकुल रहता हो उसकी क्रियाएँ भावशून्य द्रव्यक्रियाएँ हैं, केवल द्रव्यक्रियाओका पालन करनेसे कोई श्रमण नहीं हो सकता, इस विषयमें सग्रहगाथाएँ है उनका अर्थ पहले आ चुका है ॥१॥

પાર ઊતરવુ, પાપરહિત થવુ, નિર્ગ્રંથ પ્રવચનમા પ્રવીણ થવું, માયા મિથ્યાત્વ અને નિદાનરૂપ શલ્યોને કાપવા, સન્નિધિને ન રાખવો, ઉરગાદિની ઉપમાથી યુક્ત થવુ પાપની પ્રરૂપણા કરનારા શાસ્ત્રોનો ઉપદેશ ન કરવો, મનને સ્વચ્છ રાખવુ અને અતિચારરહિત ચારિત્રને પાળવુ તથા મૃગ જેમ સિંહથી સદા દૂર ભાગે છે તેમ પાપકર્મ જેની પાસે ન ઉભા રહે તે 'શ્રામણ્ય' (સાધુતા) કહેવાય છે એવુ શ્રામણ્ય ત્યાં સુધી પ્રાપ્ત નથી થતું કે જ્યા સુધી તે કામભોગનો ત્યાગ કરે નહિ, જેનું ચિત્ત કામના સકલ્પવિકલ્પથી વ્યાકુળ રહેતુ હોય છે તેની ક્રિયાઓ ભાવશૂન્ય દ્રવ્ય-ક્રિયાઓ હોય છે, કેવળ દ્રવ્ય-ક્રિયાઓનું પાલન કરવાથી કોઈ શ્રમણ થઈ શકતો નથી આ વિષયમા સગ્રહ ગાથાઓ છે, જેનો અર્થ પહેલા આવી ગયો છે (૧)

सुयनाणसुनीरेण, सुद्धो समत्तरंजिओ ।
संजमवम्मसंनद्धो, समणो सो पवुच्चई ॥ ४ ॥
सदोर मुहपत्तिं जो, बंधई सययं मुहे ।
जयणाधम्मेण जुओ, समणो सो पवुच्चई ॥ ५ ॥
भोगामिसपरिहीणो, करणे चरणे य वट्टए सुद्ध ।
अदोसभिक्खणसीलो, समणो सो वुच्चई निच्चं ॥ ६ ॥
जिणाणाए समारोहो, आयन्नो निप्परिग्गहो ।
जायामायन्नो य मुणी, समणत्ति पवुच्चई ॥ ७ ॥
कुम्मो जहा नियं गाइं, सए देहम्मि गोवई ।
तहा गोवइ अप्पाणं, समणत्ति पवुच्चई ॥ ८ ॥
अप्पपिंडे अप्पपाणे, अप्पोवहिकसायओ ।
निरासवो य तिन्नो य, निप्पावो समणो भवे ॥ ९ ॥
निग्गंथपवयणन्नो, अनियाणो सल्लकत्तओ ।
भेसज्जाईण वत्थूणं, सन्निहिं वज्जए मुणी ॥ १० ॥
उरगाऽऽवमो पाव,-सुयाणं पडिसेहओ ।
सुमणो सुहचारित्तो, समणत्ति पवुच्चई ॥ ११ ॥
मिया जहेव सीहाओ, दूरं चरंति सव्वहा ।
तहा जओ य पावाइं, समणत्ति पवुच्चई ॥ १२ ॥ इति ।

छाया—"सचित्ताचित्तद्रव्येषु, मनोज्ञे अमनोज्ञके ।
रक्षति समभावं यः, श्रमणः स प्रोच्यते ॥ १ ॥
हास्य रतिर्भयं शोको, जुगुप्सा च कषायता ।
एतैर्विप्रमुक्तो यः, श्रमणः स प्रोच्यते ॥ २ ॥
पञ्चसमितिभिः समितः, त्रिगुप्तिगुप्तश्च ब्रह्मचारी यः ।
परीसाधयति सुयोग, स श्रमण उच्यते नित्यम् ॥ ३ ॥
"श्रुतज्ञानसुनीरेण, शुद्धः सम्यक्त्वरञ्जितः ।
संयमवर्म्मसंनद्धः, श्रमणः स प्रोच्यते ॥ ४ ॥
सदोरां मुखवस्त्रीं यो, बध्नाति सततं मुखे ।
यतनाधर्म्मेण युतः, श्रमणः स प्रोच्यते ॥ ५ ॥
भोगामिषपरिहीणः, करणे चरणे च वर्त्तते शुद्धम् ।
अदोषभिक्षणशीलः, श्रमणः स उच्यते नित्यम् ॥ ६ ॥
जिनाज्ञायां समारोहः, आत्मज्ञो निष्परिग्रहः ।
यात्रामात्राज्ञश्च मुनिः, श्रमण इति प्रोच्यते ॥ ७ ॥

कूर्मो यथा निजाङ्गानि, स्वके देहे गोपयति ।
तथा गोपयत्यात्मानं, श्रमण इति प्रोच्यते ॥ ८ ॥
अल्पपिण्डोऽल्पपानः, अल्पोपधिकषायकः ।
निरास्रवश्च तीर्णश्च, निष्पापः, श्रमणो भवेत् ॥ ९ ॥
निर्ग्रन्थप्रवचनज्ञः, अनिदानः शल्यकर्त्तकः ।
भैषज्यादीनां वस्तूनां, संनिधिं वर्जयति मुनिः ॥ १० ॥"
"उरगाद्युपमः पापश्रुतानां प्रतिषेधकः ।
सुमनाः शुभचारित्रः, श्रमण इति प्रोच्यते ॥ ११ ॥
मृगा यथैव सिंहाद्, दूरं चरन्ति सर्वथा ।
तथा यतश्च पापानि, श्रमण इति प्रोच्यते ॥१२॥

पूर्वं शब्दादिविषयप्रवृत्तः श्रामण्यं पालयितुं न शक्नोतीत्युक्तं, सम्प्रति द्रव्यक्रियां कुर्वाणोऽपि कलुषितचित्तत्वादश्रमण एवे' ति दर्शयितुमाह—

यद्वा पूर्वगाथया भङ्ग्यन्तरेण शब्दादिविषयविनिवृत्त एव श्रामण्यमर्हतीति सूचितम् शब्दादिविषयानिवृत्तिश्च रोगादिना कारणेनापि संभवतीत्यतस्तद्व्यवच्छेदार्थं गाथान्तरमाह—'वत्थगंध'मित्यादि

मूलम्—वत्थगंधमलंकारं, इत्थीओ सयणाणि य ।
अच्छंदा जे न भुंजंति, न से चाइत्ति वुच्चई ॥२॥

छाया—वस्त्रगन्धमलङ्कारं, स्त्रियः शयनानि च
अच्छन्दो यो न भुङ्क्ते, न स त्यागीत्युच्यते ॥२॥

ऊपर कह चुके हैं कि शब्दादि इन्द्रियविषयोंमें प्रवृत्त साधु श्रामण्य (चारित्र) का पालन नहीं कर सकता । अब द्रव्यक्रियाएँ करते हुए भी यदि साधुके चित्तमें कलुषता हो तो वह वास्तवमें त्यागी नहीं है, यह कहते हैं—

अथवा पहली गाथामें एक विशेष प्रणालीसे यह प्रतिपादन किया है कि-शब्दादिविषयोंका त्यागी ही श्रामण्य (साधुपना) पाल सकता है, किन्तु रोग आदि कारणोंसे भी शब्दादि विषयोंको नहीं भोग सकता तो क्या उस समय वह भी त्यागी कहला सकता

ઉપર કહેવાઈ ગયું છે કે શબ્દ આદિ ઈન્દ્રિયવિષયોમાં પ્રવૃત્ત એવો સાધુ શ્રામણ્ય (ચારિત્ર)નું પાલન કરી શકતો નથી હવે દ્રવ્યક્રિયાઓ કરતાં પણ જો સાધુના ચિત્તમાં કલુષતા હોય તો તે વાસ્તવમાં ત્યાગી નથી, એ કહે છે—

અથવા પહેલી ગાથામાં એક વિશેષ પ્રણાલીથી એમ પ્રતિપાદન કર્યું છે કે—શબ્દાદિ-વિષયોનો ત્યાગી જ શ્રામણ્ય (સાધુતા) પાળી શકે છે, કિંતુ રોગાદિ કારણોથી પણ શબ્દાદિ વિષયોને નથી ભોગવી શકતો તો શું તે સમયે એ પણ ત્યાગી કહેવાઈ શકે છે ? નથી

सान्वयार्थः––जे=जो अच्छंदा=पराधीन होनेसे वत्थगंधं=वस्त्र गन्ध अलंकारं=आभूषण इत्थीओ=स्त्रियाँ य=और सयणाणि="शय्याए लग महलविगेरे को न भुंजंति–नहीं भोगता है से=वह चाइति=त्यागी" ऐसा न वुच्चइ=नहीं कहा जाता है। अर्थात् अपनी इच्छासे विषयोंको न भोगनेवाला त्यागी कहलाता है। जो रोग आदि किसी कारण से पराधीन होकर विषयोंका सेवन नहीं कर सकता वह त्यागी नहीं कहलाता ॥२॥ और––

टीका––अत्र 'अच्छंदा' 'जे' 'भुंजंति' इत्येतेषु पदेषु बहुवचनप्रयोगः सौत्रत्वात्। तथा चायमर्थः–यः अच्छन्दः=रोगाद्यभिभूततया पराधीनो वस्त्रं च गन्धश्चानयोः समाहारः वस्त्रगन्धं, तत्र वस्त्रं=प्रसिद्धं, गन्धः=चन्दनकर्पूरादि–सुगन्धिद्रव्यं तत्, अलङ्कारः=कुण्डल-वलयादिस्तम्, स्त्यायतः शुक्रशोणिते यासु ताः स्त्रियः=कामिन्यस्ताः, शय्यते येषु तानि शयनानि=पल्यङ्क-खट्वा तुष्कि-कादीनि, तानि, चकारात् यानाऽऽसनादीनि, न भुङ्क्ते=न सेवते, सः, त्यागीति=त्यजति=परिमुञ्चति संसारसम्बन्धं तच्छील इति, न उच्यते=न कथ्यते, इति गाथार्थः ॥२॥

है? कभी नहीं कहला सकता, इसी विषयको कहते हैं–'वत्थ गंध' इत्यादि ।

जो मनुष्य रोग आदिसे आक्रान्त होनेके कारण पराधीन है और पराधीनता (असमर्थता) के कारण वस्त्र, कस्तूरी, केशर, चन्दन, आदि गन्ध, कुण्डल, कटक आदि आभूषण, स्त्री, शय्या और 'च' शब्दसे सवारी आसन आदिका सेवन नहीं करते है वे त्यागी अर्थात् ससारके सम्बन्धोका त्याग करने वाले नहीं कहला सकते है, क्योकि असार समझकर ममता छोडना-रुचि न रखना-त्याग कहलाता है । रोग आदिसे ग्रसित ऊपर कहे-हुए विषयोकी ममता नहीं छोडता (रुचि रखता) है इसलिए वह त्यागी नहीं कहला सकता ॥२॥

કહેવાતો એ વિષયનું હવે કહે છે —वत्थगंध—ઇત્યાદિ

જે મનુષ્યો રોગાદિથી આક્રાન્ત હોવાને કારણે પરાધીન છે અને પરાધીનતા (અસમર્થતા) ને કારણે વસ્ત્ર, કસ્તૂરી, કેશર, ચંદન આદિ ગંધ, કુંડલ, કડાં આદિ આભૂષણ, સ્ત્રી, શય્યા અને च શબ્દથી સવારી, આસન આદિનું સેવન કરતા નથી તેઓ ત્યાગી અર્થાત્ સંસારના સંબંધોનો ત્યાગ કરવાવાળા નથી કહેવાઇ શકતા કારણ કે અસાર સમજીને મમતા છોડવી-રૂચિ ન રાખવી એજ ત્યાગ કહેવાય છે. રોગાદિથી ગ્રસિત મનુષ્યો ઉપર કહેલા વિષયોની મમતા છોડતા નથી, તેથી તેઓ ત્યાગી કહેવાતા નથી (૨)

---

१ यत्त 'बहुवचनोद्देशेऽप्येकवचननिर्देशो विचित्रत्वात्सूत्रगते' इति, यच्च 'अत्र सूत्रगतेर्विचित्रत्वाद्बहुवचनेऽप्येकवचननिर्देश' इति, यदपि च 'कि बहुवचनोद्देशेऽप्येकवचननिर्देशः ? विचित्रत्वात्सूत्रगतेर्विपर्ययश्च भवत्येवेति कृत्वाऽऽह–'नासौ त्यागीत्युच्यते' इति, तदिदं त्रितयमपि व्याख्यानं सूत्रपूर्वापराऽननुसन्धानमूलकत्वादनुपादेयमेव, यतो द्वितीय-तृतीयगाथयोस्तात्पर्यपर्यालोचनायामेकवचनान्तप्रयोग एव सूत्रकृतोऽभिप्रेत इति सूचीकटाहन्यायेनापि बहुवचनान्तेष्वेवैकवचनान्तत्वकल्पनं युक्तियुक्तमिति ॥

२ अधिकरणेल्युट्। ३ प्रथमान्तमिदम्। ४ द्वितीयान्तमिदम्। ५ भुजोऽनवने इत्यात्मने पदं सूत्रे तु प्राकृतत्वात् परस्मैपदम्।

कस्तर्हि त्यागी ? इति चेत्तत्राह-'जे य कंते' इत्यादि ।

मूलम्-जे य कंते पिए भोए लद्धेवि पिट्ठिकुव्वइ ।
साहीणे चयई भोए स हु चाइत्ति वुच्चई ॥३॥

छाया-यश्च कान्तान प्रियान् भोगान्, लब्धानपि पृष्ठीकरोति ।
स्वाधीनस्त्यजति भोगान्, स एव त्यागी इत्युच्यते ॥३॥

सान्वयार्थः- जे य=जो लद्धेवि=प्राप्त हुए भी कंते=मनोहर पिए=अभीष्ट-मन-गमते भोए=भोगोंको पिट्ठिकुव्वइ=त्याग देता है (और) साहीणे=स्वतन्त्र-स्वाधीन होते हुए भोए = विषयोंको चयई = त्यागता है से = वह हु = निश्चय करके चाइत्ति = "त्यागी" ऐसा वुच्चइ = कहलाता है। अर्थात् भोगोंकी प्राप्ति होने पर भी और भोगनेकी स्वतन्त्रता रहते हुए भी जो भोगों को नहीं भोगता वह सच्चा त्यागी है। गाथामें "वि" शब्द आया है उससे यह प्रगट होता है कि यदि किसीको अमुक समयमें मनोहर और प्रिय भोग न भी उपलब्ध हों तथापि उसकी इच्छा कदापि भोगनेकी न हो तो भी वह त्यागी है ॥३॥

टीका-'च' शब्दः पूर्वगाथोक्तार्थनिवारकत्वेन 'तु'-शब्दार्थेऽवधारणर्थे वा, 'खलु'-शब्दोऽवधारणार्थे, तथा चायमर्थः-यस्तु लब्धान् = प्राप्तानपि कान्तान् = कमनीयान् (मनोहरान्)प्रियान् = अभिलषितान्, भोगान् = शब्दादीन् पृष्ठीकरोति = पृष्ठशब्दस्य तत्स्थे लक्षणया अपृष्ठस्थान पृष्ठस्थान करोति = दूरतः परिहरतीत्यर्थः, ततो विमुखीभवतीति यावत्। एवं तु रोगाद्यवस्थायामपि संभवतीत्यतः स्पष्टयति स्वाधीनः = रोगाद्यनभिभूतचित्तः सन् भोगान्=पूर्वोक्तलक्षणान् शब्दादीन्, पुनर्भोगग्रहणं 'द्विर्बद्ध सुबद्धं भवती'-ति न्यायात्साकल्येन भोगत्वावच्छिन्नपरिग्रहार्थम्, त्यजति=मुञ्चति, स खलु=स एव त्यागीति उच्यते=कथ्यते, न तु पराधीन इति गाथार्थः ॥३॥

त्यागी किसे कहते है ? इस पर सूत्रकार कहते है—'जे य' इत्यादि

जो महापुरुष पूर्वपुण्यके उदयसे प्राप्त हुए मनोहर और इष्ट शब्दादि विषयोंको विविध-वैराग्य-भावना भाकर त्याग देते है—उनसे विमुख हो जाते हैं और रोग आदिसे पीडित न होनेके कारण स्वाधीन (समर्थ) होते हुए भी विविध-वैराग्य-भावना भाकर समस्त भोगोको त्याग देते है वे ही त्यागी कहलाते है ॥३॥

त्यागी कोने कहे छे? ए विषे सूत्रकार कहे छे-'जे य०' ईत्यादि.

जे महापुरुषो पूर्वपुण्यना उदयथी प्राप्त थएला मनोहर अने ईष्ट शब्दादि विषयोने विविध-वैराग्य-भावना भावीने त्यजी दे छे-तेनाथी विमुख बनी जाय छे, अने रोगादिथी पीडित न होवाने कारणे स्वाधीन (समर्थ) होवा छता पण विविध-वैराग्य-भावना भावीने बधा भोगोने त्यजी दे छे, तेओ ज त्यागी कहेवाय छे. (३)

उक्तविधस्यापि साधोः संयममार्गे विहरतः कदाचिद् विषयस्मरणेन प्रस्खलितचित्तता मा प्रसाङ्क्षीदिति तदुपायं दर्शयति-"समाए०" इति ।

१ २ ३ ५ ४ ७ ६

मूलम्-समाए पेहाए परिव्वयंतो, सिया मणो निस्सरई बहिद्धा ।

१० ८ ९ १३ ११ १२ १४ १५ १७ १६

न सा महं नोवि अ वि तीसे, इच्चेव ताओ विणइज्ज रागं।४।

छाया-समया प्रेक्षया परिव्रजतः, स्यान्मनो निःसरति बहिः ।

न सा मम नो अपि अहमपि तस्याः, इत्येवं तस्या विनयेत रागम् ॥४॥

सान्वयार्थः-समाए=सम पेहाए=भावनासे परिव्वयंतो=संयममार्गमें विचरते हुए साधुका मणो=मन सिया=कदाचित्-कभी बहिद्धा=संयमगृहसे बाहर निस्सरई=निकल जाय तो "सा=वह स्त्री महं=मेरी न=नहीं है अवि=और अहंवि=मैं भी तीसे=उस स्त्रीका नो=नहीं हूं" इच्चेव इस प्रकार ताओ=उस स्त्रीसे रागं=रागको विणइज्ज=दूर करे ॥४॥

संयम मार्गमें विहार करते हुए त्यागी मुनि का मन, स्त्री आदिको देखनेसे कदाचित् विचलित (डावाडोल) हो जाय तो उसको रोकने के लिए उपाय बतलाते है-'समाए०' इत्यादि ।

रागद्वेषरहित-समतापूर्वक विचरते हुए श्रामण्यमें स्थित मुनिका मन स्त्री आदिको देखने पर मोहनीय कर्मके उदयसे कदाचित् पहले भोगे हुए भोगोंका स्मरण होजानेसे, अथवा विषय-सेवनकी इच्छा होनेसे संयमरूपी घरसे बाहर निकल जाय तो उस समय साधुको विचारना चाहिए कि-मै जिसकी अभिलाषा करता हूं, वह स्त्री न मेरी है और न मै उसका हूॅ । ऐसा विचार करके उस स्त्रीके विषय का रागभाव दूरकरना चाहिये तात्पर्य यह है कि स्त्री के विषयमें मनकी प्रवृत्ति होनेसे चारित्रकी मलिनता आदि बहुतेरे दोष उत्पन्न होते है । उन दोषोका विचार करके मुनि अपने मन को उस तरफसे हटाता हुआ समप्रेक्षाका अवलम्बन करके उसीप्रकार रागरहित होजावे जिस प्रकार स्त्रीको देखनेके पहले था ।

संयम-मार्गमां विहार करता त्यागी मुनिनुं मन, स्त्री आदिने जोवाथी जो विचलित (डामाडोळ) थई जाय तो तेने रोकवाने माटे उपाय बतावे छे—'समाए०' इत्यादि.

रागद्वेष रहित समतापूर्वक विचरतां श्रामण्यमां स्थित मुनिनुं मन स्त्री आदिने देखतां मोहनीय कर्मना उदयथी कदाचित् पहेलां भोगवेला भोगोनुं स्मरण थई जवाथी अथवा विषय सेवननी ईच्छा थवाथी संयमरूपी घरनी बहार नीकळी जाय तो ते समये साधुए विचारवुं जोईए के हुं जेनी अभिलाषा करुं छु ते स्त्री नथी मारी के नथी हुं तेनो. एवा विचार करीने ए स्त्री प्रत्येना विषयनो रागभाव दूर करवो जोईए. तात्पर्य ए छे के—स्त्रीना विषयमां मननी प्रवृत्ति थवाथी चारित्रनी मलिनता आदि अनेक दोष उत्पन्न थाय छे. ए दोषोनो विचार करीने मुनि पोताना मनने ते तरफथी पाछुं हटावतां समप्रेक्षानुं अवलंबन करीने एवो रागरहित थई जाय के जेवो ते स्त्रीने देखतां पहेलां हतो

टीका—समया=रागद्वेषपरिणतिरहितया स्वतुल्यया, प्रेक्षया=प्रेक्ष्यतेऽनयेति करणव्युत्पत्तिवशाद् दृष्ट्या, परिव्रजतः=विहरतः प्रोक्तस्वश्रामण्ये स्थितस्येत्यर्थः मनः=हृदयं, स्यात्=कदाचित् मोहनीयकर्मप्रकृत्युदयवशाद् भुक्तभोगतया पूर्वकृतरत्यादिस्मरणेन तदन्यथात्वं विषयसेवनाकाङ्क्षया वा, बहिः=संयमयोगाद्बहिः विषयादौ निः सरति=निर्गच्छति, अथ किं कर्तव्यं ? तदाह 'न सा' इति. सा=परिचिन्त्यमाना स्त्री न मम, अपि=च अहमपि तस्याः=परिचिन्त्यमानायाः स्त्रियाः न, इत्येवम्=अनया रीत्या, तस्याः=अभिलष्यमाणायाः स्त्रियास्तत्सम्बन्धित्वमित्यर्थः, रागम्=दुर्गतिप्रदम्, विनयेत=दूरीकुर्यात्।

वनिताविषये प्रसृतं मनस्तदीयरागसंबन्धिबहुतरदोषानुचिन्तनेन ततो निवर्तयन् मुनिः समां प्रेक्षामवलम्ब्य वनितादर्शनात् प्रागिव रागशून्यो भवेदिति भावः। दोषानुचिन्तनं यथा—"रे चित्त ! चारित्रस्य प्राणभूतं ब्रह्मचर्यं यावज्जीवनमनुपालयितुं कृतप्रतिज्ञस्य तव स्वकृतप्रतिज्ञापरित्यागोद्यमे कुतो न लज्जापमुद्भवः ? यदा संसारदावदहनपरितप्तस्य तव कोऽपि लोके शरणं नाभूद् तदा यानेव विषयान् परित्यज्य जिनेन्द्रप्रतिपादितं चारित्रधर्मं शिरसाऽङ्गीकृत्य त्वया निरस्तः सकलः सन्तापः, किमिदानीं पुनर्वान्तावलेहीश्वेव भवेत्ताननुस्मरद् विस्मरस्यात्मानम् ?।

दोषो का विचार इसप्रकार करे—रे मन ! चारित्रके प्राणोके समान ब्रह्मचर्यको यावत्-जीवन पालन करनेकी तूने प्रतिज्ञा की है, पहले की हुई प्रतिज्ञा अब परित्याग करते तुझे लज्जा नहीं आती ? जिस समय तू संसाररूपी तीव्र दावाग्निसे सतप्त हुआ और लोकमें कोईभी तुझे न बचा सका उस समय जिनेन्द्र भगवान् द्वारा प्ररूपित चारित्र धर्मको तूने स्वीकार किया और जिन हेय—विषयोसे मुख मोडकर सकल जंजाल छोड दिये उन्हीं विषयोको वमनचाटनेवाले श्वानके समान फिर स्वीकार करना चाहता है ? ऐ अधम मन ! अपने स्वरूप का विचार कर।

अरे मन ! देख, ब्रह्मचर्यकी महिमासे ही लोकमें पूजे जानेवाले सुरेन्द्र असुरेन्द्र और नरेन्द्रोंके द्वारा तू पूज्य सम्माननीय हुआ है, ऐसे अमितमहिमावाले ब्रह्मचर्यको भी तू क्यो भूल गया है ? कहा भी है—

દોષોનો વિચાર આ પ્રમાણે કરે—હે મન ! ચારિત્રના પ્રાણ સમાન બ્રહ્મચર્યને જીવન-પર્યંત પાળવાની તેં પ્રતિજ્ઞા કરી છે પહેલા કરેલી પ્રતિજ્ઞાનો હવે પરિત્યાગ કરતા તને શરમ નથી આવતી ? જે સમયે તુ સંસારરૂપી તીવ્ર દાવાનળથી સંતપ્ત થયો અને લોકમા કોઈ પણ તને બચાવી ન શક્યુ, તે સમયે શ્રીજીનેન્દ્ર ભગવાને પ્રરૂપેલા ચારિત્ર ધર્મને તે સ્વીકાર કર્યો અને જે હેય વિષયોથી વિમુખ થઇને બધી જંજાળને છોડી દીધી, તેજ વિષયોનો વમનચાટનારા શ્વાનની પેઠે ફરીથી તુ સ્વીકાર કરવા ચાહે છે ? હે અધમ મન ! તારા પોતાના સ્વરૂપનો તું વિચાર કર.

અરે મન ! જો, બ્રહ્મચર્યના મહિમાથી જ, લોકમાં પુજાતા સુરેન્દ્ર અસુરેન્દ્ર અને નરેન્દ્રોની દ્વારા તું પૂજ્ય સમાનનીય થયો છે, એવા અપારમહિમાવાળા બ્રહ્મચર્યને પણ તુ કેમ ભૂલી ગયો છે ? કહ્યું પણ છે—

अरे ! विस्मृतः किं ब्रह्मचर्यमहिमा ? यत्प्रभावेणाऽल्पीयसैव कालेन लोकपूजितैरपि सुरासुरमनुजेन्द्रैः पूज्यमानस्त्वमसि पुनः किं तदेव विस्मरसि ? । इदमप्यनुचिन्तय–

"चिरायुषः सुसंस्थाना, दृढसंहनना नराः ।
तेजस्विनो महावीर्या, भवेयुर्ब्रह्मचर्यतः ॥१॥" इति ।

अपिच अनवाप्तपरमार्थतत्त्वास्वादनसुखानां संसाराभिनन्दिनां विषयामिषोपभोगसुखकामुकानामविवेकिनामेव कामिनी कमनीया भवतु नाम, परन्तु एतदीयानुरागपरिणामदारुणतां विस्मरतस्तवापि किं संयताग्रगणनीयताऽभिलाषो नोपहासाय जायेत ?।

अरे मूढ ! अस्याः खलु विलासकलाकलापवैदुष्यं विलोक्य लुब्धकप्रसारितजाले कुरङ्ग इव, मार्गवर्तिनि गर्त्ते तुरङ्ग इव, ज्वलति प्रदीपे पतङ्ग इव किमात्मानं निरये निपातयसि ? ।

अहो ! अयोमयशृङ्खलामप्यधरयति रागपाशः, यत खलु मधुपः कठिनतरकाष्ठकृन्तनदक्षोऽपि न क्षमो भवति संकुचितकमलपुष्पानुरागनिबद्धमात्मानं परित्रातुम् ।

"ब्रह्मचर्यसे दीर्घ आयु, सुन्दर आकार, और दृढ सहनन प्राप्त होते हैं, ब्रह्मचर्यसे ही मनुष्य, तेजस्वी और महाशक्तिशाली होते है" ॥१॥

हे जीव ! किंपाकफल सरीखे विषयभोग सुगन्ध, सुरूप, सुशब्द, और सुस्पर्श अविवेकी जीवोको भलेही मनोहर लगे, पर तू तो सयमियोमें श्रेष्ठ बनना चाहता है फिर इनमें अनुराग करने से जो भयंकर फल उत्पन्न होते है उन्हे क्यो भूल जाता है ? इससे तेरी वह उच्च अभिलाषा क्या हास्यास्पद नहीं होगी ? अवश्य होगी।

अरे मूढ ! जैसे व्याध (शिकारी) के फैलाए हुए जालमें कुरंग (हरिन) फंस जाता है; रास्तेके गड्ढेमें तुरंग गिर जाता है, जलते हुए दीपककी ज्वालामें पतंग गिर पडता है वैसेही स्त्रीके हास विलास और हाव–भावकी चतुराई देखकर क्यो अपनी आत्माको नरकमें गिराता है।

अहो ! इस रागके बन्धनके आगे लोहकी वेडीभी तुच्छ है, देखो, भौरा कठिनसे कठिन

"બ્રહ્મચર્યથી દીર્ઘ આયુષ્ય, સુંદર આકાર, અને દૃઢ સંહનન પ્રાપ્ત થાય છે. બ્રહ્મચર્યથી જ મનુષ્ય દિવ્ય તેજસ્વી અને મહાશક્તિશાલી થાય છે." (૧)

હે જીવ ! કિંપાકફળ જેવા વિષયભોગ, સુંદર, સુરૂપ, સુશબ્દ અને સુસ્પર્શ અવિવેકી જીવોને ભલે મનોહર લાગે, પરન્તુ તુ તો સંયમીઓમાં શ્રેષ્ઠ બનવા ઇચ્છે છે, તો પછી એમાં અનુરાગ કરવાથી જે ભયંકર ફળ ઉત્પન્ન થાય છે તેને કેમ ભૂલી જાય છે ? તેથી તારી એ ઉચ્ચ અભિલાષા શું હાસ્યાસ્પદ નહિ થાય ? અવશ્ય થશે

અરે મૂઢ ! જેમ વ્યાધે (શિકારીએ) ફેલાવેલી જાળમા કુરંગ (હરણ) ફસાઇ જાય છે. રસ્તામાના ખાડામાં તુરંગ (ઘોડો) પડી જાય છે, બળતા દીવાની જ્વાળામાં પતંગ હોમાઇ જાય છે, તેમ સ્ત્રીના હાસ્યવિલાસ અને હાવભાવની ચતુરાઈ જોઈને કેમ તારા આત્માને નરકમાં પાડે છે ?

અહો ! આ રાગના બંધનની આગળ લોઢાની બેડી પણ તુચ્છ છે. જુઓ ! ભમરો

इह बाह्यरमणीयतास्पदे, नितान्ताशुचिपदे, चपलावत्प्रतिपलचपलरूपलावण्ये, योषिदपवने किमिव नाम शोभनं वित्तं, यद् बालविधुलेखेव, अमृतावयवनिर्मितेव, चन्द्रमण्डलादुद्धृतेव, इयं नीलकमलदलायताक्षी [1]सहावनयनाभ्यां जीवलोकमाश्वासयन्तीव कमनीया निरीक्ष्यते।

अनालोच्य प्रवर्तमानः खलु पराभूयते, तस्मादियदपि तावद् विभावय विलासिनीविलसनं कुतः स्थानादिदमुद्भवति ? किं चास्य कारणम् ? कथमिदं तिष्ठति ? किमेतस्मान्निःसरत् सततं दरीदृश्यते ? इति,

विरम विरमास्यानुरागकरणात् अस्य हि शरीरस्य मूत्राद्युपहतमुद्भवस्थानम्, शुक्र-

---

काष्ठको काट डालनेमें कुशल होता है परन्तु सूर्यके अस्त होजाने पर सकुचित कमल पुष्पके अनुरागके बन्धनमें बन्धी हुई अपनी आत्माकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं होता। इसलिए हे मन! ऐसे रागमें फँसने की इच्छा क्यो कर रहा है?

ऐ जीव ऊपर-ऊपर से मनोहर मालूम होनेवाले, अत्यन्त अपवित्रताके स्थान, चपला (बिजली) की नाई पल-पलमें चपलरूप लावण्यवाले, स्त्रीके शरीरमें तुझे क्या अच्छापन दिखाई देता है? जिससे तू उसे यह समझ रहा है कि—मानो वह द्वितीयाके चंद्रमाकी कला है, अमृतके अवयवोसे बनी हुई है, चन्द्रमाको फाडकर निकल पडी है, नीलकमलके दल (पत्ता) के समान विशाल नेत्रवाली, तथा लीलायुक्त लोचनोंसे लोकको अवलम्बन देनेवाली मनोहर दीख पडती है।

हे आत्मन्! स्मरण रख, जो विना विचारे किसी विषयमें प्रवृत्ति करता है उसकी बडी

કઠિનમા કઠિન કાષ્ઠને કાપી નાખવામા કુશળ હોય છે પરન્તુ સૂર્યનો અસ્ત થતાની સાથે જ બીડાયલા કમળ-પુષ્પના અનુરાગના બંધનમા બધાયલો પોતાના આત્માની રક્ષા કરવામાં સમર્થ નથી બનતો' તો હે મન! એવા રાગમા ફસાવાની ઇચ્છા કેમ કરી રહ્યો છે?

હે જીવ! ઉપર-ઉપરથી મનોહર માલુમ પડતા, અત્યંત અપવિત્રતાનુ સ્થાન વિજળીની પેઠે પલ-પલમા ચપળ રૂપ-લાવણ્યવાળા સ્ત્રીના શરીરમા તને કઈ સુદરતા દેખાય છે? કે જેથી તુ તેને માની રહ્યો છે કે—આ બીજના ચદ્રમાની કલા છે અમૃતના અવયવોથી બનેલી છે, ચદ્રમાને ફાડીને નીકળી પડી છે, નીલ કમળના દળ (પાંદડીઓ)ની સમાન વિશાળ નેત્રવાળી તથા લીલાયુકત લોચનોથી લોકને અવલંબન આપનારી મનોહર દેખાય છે.

---

१ स्त्रीचेष्टाविशेषो हावस्तेन सहिते=सहावे ते च ते नयने च=सहावनयने ताभ्यामित्यर्थः।

---

१ सूर्य डूबनेके बाद, कमलके भीतर पडा हुआ भौंरा, तकलीफ सहकर सारी रात बिताता है किन्तु अनुराग (प्रीति) केकारण, कमलके कोमल (मोलायम) पत्तोंको भी काटकर उस तकलीफको रफा करनेका साहस नहीं कर सकता॥

---

૧ સૂર્ય અસ્ત પામ્યા પછી કમળની અદર ગોધાઇ ગયેલો ભમરો તકલીફ સહન કરીને આખી રાત વિતાવે છે, પરન્તુ અનુરાગ (પ્રીતિ) ને કારણે કમળની કોમળ (મુલાયમ) પાદડીઓને કાપી નાખીને એ તકલીફ દૂર કરવાનુ સાહસ નથી કરી શકતો

शोणिते एव कारणम् , अशितपीतादिना च स्थितिः, एतस्मान्निःसरीसर्ति च मल-मूत्रकफादिकमेव, किं बहुना मृदुतममनोरमवसनविनिर्मितया मलमूत्रास्थिकफादिपोट्टलिकया न पामरोऽपि, रज्यते, का कथा पुनर्भावनाकुशलानां मुनीनाम् ।

उक्तश्च–"अम्भःकुम्भशतैर्वपुर्ननु वहिर्मुग्धाः ! शुचित्वं कियत् ;
काल लम्भयथोत्तमं परिमल कस्तूरिकाद्यैस्तथा ।
विष्ठाकोष्ठकमेतदङ्गकमहो ! मध्ये तु शौचं कथ,-
ङ्कारं नेष्यथ सूचयिष्यथ कथङ्कार च तत्सौरभम् " ॥१॥

अन्यच्च–"विरम विरम संगान्मुञ्च मुञ्च प्रपञ्चं,
विसृज विसृज मोहं विद्धि विद्धि स्वतत्त्वम् ।

दुर्गति होती है । तू अपना कल्याण चाहता है तो विलासिनियोंके विलासका अच्छीतरह विचार करले । यह सोच देख कि यह शरीर कहांसे उत्पन्न होता है ? इसका क्या कारण है ? कैसे ठहरता है ? और इससे क्या२ घिनौने (घृणाजनक) पदार्थ निकलते हुए दिखाई देते है ?

बस कर, रहनेदे, इस शरीरमें अनुराग मत कर, मलमूत्रसे भरे हुए स्थानसे यह शरीर उत्पन्न हुआ है, रज–वीर्य इसके कारण है । खाया पीया भोजन इसकी स्थितिका निमित्त है, और इसके नौ द्वारोसे मल–मूत्र आदि घृणित पदार्थ निकला करते है, अधिक क्या कहें ? कोमल और मनोहर कपडेसे बंधी–हुई मल–मूत्रकी गठरीमें पामर प्राणीभी अनुराग नहीं करता, फिर अशुचि आदि भावनाओंका समीचीन चिन्तन करनेमें चतुर मुनियोंका कहना ही क्या है ? वे तो उस ओर आंख नहीं उठाते । कहा भी है ।

"शरीरको सैंकडों घडोसे चाहे जितना नहलाओ धुलाओ, और केशरी कस्तूरी गुलाब आदिकी सुगन्धसे सुगन्धित करो, परन्तु यह शरीर तो मल–मूत्रका भाजन है । हे भव्यो ! इसे

હે આત્મન્ ! યાદ કર કે, જે વિના વિચારે કોઈ વિષયમા પ્રવૃત્તિ કરે છે તેની ભારે દુર્ગતિ થાય છે. તુ પોતાના કલ્યાણને ચાહે છે તો વિલાસિનીઓના વિલાસનો સારી પેઠે વિચાર કરી લે એટલુ વિચારી જો કે આ શરીર કયાથી ઉત્પન્ન થયું છે ? એનું શું કારણ છે ? તે કેવી રીતે ટકે છે ? અને એમાથી કેવા કેવા ગંધાતા (ઘૃણાજનક) પદાર્થો નીકળતા જોવાનાં આવે છે ?

બસ કર, રહેવા દે; આ શરીરમા અનુરાગ ન કર, મળમૂત્રથી ભરેલા સ્થાનમાંથી આ શરીર ઉત્પન્ન થયુ છે, રજ–વીર્ય એનું કારણ છે, ખાધેલું–પીધેલું ભોજન, એની સ્થિતિનું નિમિત્ત છે, અને તેના નવ દ્વારો વાટે મળ–મૂત્ર આદિ ઘૃણિત પદાર્થો નીકળ્યા કરે છે. વધારે શું કહીએ ? કોમળ અને મનોહર કપડાથી બાંધેલી મળમૂત્રની ગાંસડીમાં પામર પ્રાણી પણ અનુરાગ નથી કરતો, તો પછી અશુચિ આદિ ભાવનાઓનુ સમીચીન ચિંતન કરવામાં ચતુર મુનિઓની તો શી વાત ? તેઓ તો તેની તરફ ઉંચી આંખે જોતા પણ નથી કહ્યું છે કે—

"શરીરને સેંકડો ઘડા પાણીથી ચાહે તેટલું ન્હવરાવો, ધુઓ, અને કેશર કસ્તૂરી

कलय कलय वृत्तं पश्य पश्य स्वरूपं,

कुरु कुरु पुरुषार्थं निर्वृतानन्दहेतोः ॥२॥ इति,"

अपरञ्च—"अमेध्यपूर्णे कृमिजालसङ्कुले स्वभावदुर्गन्धविनिन्दितान्तरे ।

कलेवरे मूत्रपुरीषभाविते, रमन्ति मूढा विरमन्ति धीराः ॥३॥" इति ।

यद्यपि संसारभीरुभिः परिहेयोऽन्यसङ्गो दुस्त्यजः, तथापि ब्रह्मचर्यमहिमानमनुस्मरतां मुनीनां केवलं स्त्रीसङ्गपरिहारेण द्रव्यादिसङ्गः स्वयमेव निवर्तते । यथा स्वयम्भूरमणमहासागरमुत्तीर्णस्य पुरतः क्षुद्राकृतिर्गङ्गासमानाऽपि नदी सुखसमुत्तरणीया भवति । उक्तञ्च भगवता उत्तराध्ययनसूत्रस्य द्वात्रिंशेऽध्ययने—

"एए य संगे समइक्कमित्ता, सुहुत्तरा चेव हवंति सेसा ।

जहा महासागरमुत्तरित्ता, नई भवे अवि गंगासमाणा ।।१।।" इति,

कैसे पवित्र बनाओगे ? और कैसे इसकी सुगन्धि फैलाओगे', ॥१॥

"हे आत्मन् ! तू स्त्री आदिकी ममतासे विरक्त हो विरक्त हो, मोहका त्यागकर त्यागकर, आत्माके स्वरूपको पहचान पहचान, और मोक्षसुखके लिए पुरुषार्थ कर पुरुषार्थ कर" ॥२॥

"अशुचि पदार्थोंसे भरा हुआ, जूँ आदि कीडोंसे व्याप्त, स्वाभाविक दुर्गन्धके कारण भीतर भी घृणित और मल-मूत्रसे वेष्टित (स्त्रियोंके) शरीरमें रमण वे करते है जो मूढ है, और बुद्धिमान् पुरुष महान् निकृष्ट समझ कर उससे अलग रहते हैं ॥३॥"

यद्यपि विषयोंके संग संसारभीरु पुरुषोंके लिए त्याज्य है और उनका त्याग होना कठीन है, तथापि ब्रह्मचर्यकी महिमाका स्मरण करनेवाले मुनियोंको एक मात्र स्त्रीसंगके त्याग देनेसे अन्य विषयोंके संग दुस्त्यज होनेपर भी स्वयमेव निवृत्त हो जाते है । अर्थात् ब्रह्म-

---

ગુલાબ આદિની સુગંધથી સુગંધિત કરો, પરંતુ આ શરીર તો મળ-મૂત્રનું ભાજન છે. હે ભવ્યો ! તેને કેવી રીતે પવિત્ર બનાવશો ! અને કેવી રીતે તેના પરાગ (ફોરમ) ને ફેલાવશો ?" (૧)

"હે આત્મન્ ! તું સ્ત્રીઆદિની મમતાથી વિરક્ત થા વિરક્ત થા, મોહનો ત્યાગ કર ત્યાગ કર, આત્માના સ્વરૂપને જાણ, ચારિત્રનો અભ્યાસ કર અભ્યાસ કર પોતાને પિછાણ, અને મોક્ષ સુખને માટે પુરૂષાર્થ કર પુરૂષાર્થ કર[1]" (૨)

"અશુદ્ધ પદાર્થોથી ભરેલા, જુ-આદિ કીડાઓથી વ્યાપ્ત, સ્વાભાવિક દુર્ગંધિને કારણે અંદર પણ ઘૃણિત અને મળ-મૂત્રથી વેષ્ટિત (સ્ત્રીઓના) શરીરમા તેઓ રમણ કરે છે કે જેઓ મૂઢ છે, અને બુદ્ધિમાન પુરૂષ તો તેને અત્યંત નિકૃષ્ટ સમજીને તેનાથી અલગ રહે છે." (૩)

જો કે વિષયોનો સંગ સંસારભીરૂ પુરૂષોને માટે ત્યાજ્ય છે અને તેનો ત્યાગ થવો કઠિન છે, તો પણ બ્રહ્મચર્યના મહિમાનું સ્મરણ કરનારા મુનિઓને એક માત્ર સ્ત્રીસંગનો

---

१ यहा प्रत्येक कर्त्तव्यको दुहरानेसे अत्यन्त तीव्र प्रेरणा प्रगट होती है ।

૧. અહીં પ્રત્યેક કર્તવ્યને બેવડાવવાથી અત્યંત તીવ્ર પ્રેરણા પ્રકટ થાય છે

इयं दृष्टिविषा नागीव सन्दर्शनादेव संयमिनां शमलक्षण जीवनं विनिहन्ति ।

अथवा किमियं प्रगाढान्धकारा रजनी ? यदत्रोलूका इव चत्वारः कषाया विचरन्ति, अज्ञानपिशाचश्चात्र चारित्रलक्षणगुणशरीरग्रसनाय जागरुको लक्ष्यते ।

हे चित्त-सहचर ! ज्ञानप्रकाशेन रागान्धकारमपनीय रात्रिकृतोपसर्गं निवारयता भवता मदीयसाहाय्यं क्रियताम् ।

अपि चेदं भावनीयम्–मुनीनां कृते ब्रह्मचर्यपरित्यागो महाऽनर्थकरः, तथा हि ब्रह्मचर्यपरित्यागेच्छायामपि सत्यां बहवो दोषा विविधशस्त्रास्त्रधारिणः प्रबलशत्रव इव समुत्तिष्ठन्ति । तत्रादावार्त्तरौद्रध्यानं हृदये पदमारोपयति, तस्मिंश्च विद्य-

---

चर्यमें दृढ़ रहनेवालो पर कोई भी विषय, अपना प्रभाव नहीं डाल सकता । जो पुरुष स्वयम्भूरमण महासमुद्रको पार कर चुका है उसके लिए गगा जैसी छोटी २ नदियां पार करना क्या बडी बात है ? भगवान्‌ने उत्तराध्ययन सूत्रके ३२ वे अध्ययनमें 'एए य सगे' इस गाथासे यही प्रतिपादन किया है ॥

जैसे जिस नागिनकी दृष्टिमें विष होता है उसके देखनेसे ही जीवनका अन्त होजाता है, इसी प्रकार स्त्रीके भी सानुराग देखनेसे चारित्ररूपी जीवन नष्ट होजाता है ।

अथवा यह कैसी प्रगाढ़ अन्धकारमय रजनी है, जिसमें चारो कषायरूपी उल्लुओं का राज्य है, और चारित्र-रूपी शरीरको निगलनेके लिए अज्ञानरूपी पिशाच सदा ताकता रहता है हे मित्र मन ! ज्ञानके प्रकाशसे रागरूपी अन्धकारको निवारण कर, स्त्रीरूपी रात्रि द्वारा किये गए उपसर्गको हटानेमें मेरी सहायता कर ।

ब्रह्मचर्यका परित्याग करना मुनियो के लिए महान् अनर्थ करनेवाला है । यहाँ तक कि ब्रह्मचर्य परित्याग करनेकी इच्छा होते ही बहुतसे दोष इस प्रकार आ खड़े होते हैं

ત્યાગ કરવાથી, અન્ય વિષયોનો સગ દુસ્ત્યજ હોવા છતા પણ આપોઆપ નિવૃત્ત થઇ જાય છે. અર્થાત્ બ્રહ્મચર્યમાં દૃઢ રહેનારાઓ પર કોઈ પણ વિષય પોતનો પ્રભાવ પાડી શકતો નથી જે પુરૂષ સ્વયમ્ભૂરમણ મહાસમુદ્રને પાર કરી ચૂક્યો છે તેને માટે ગંગા જેવી નાની નાની નદીઓ પાર કરવામા શી મોટી વાત છે ? ભગવાને પણ ઉત્તરાધ્યયન-સૂત્રના ૩૨ મા અધ્યયનમા **एए य संगे** એ ગાથાથી એજ પ્રતિપાદન કર્યું છે

જેવી રીતે જે નાગણીની દૃષ્ટિમાં વિષ હોય છે તેને જોવાથી જ જીવનનો અંત આવી જાય છે, તેવી રીતે સ્ત્રીને અનુરાગપૂર્વક જોવાથી ચારિત્રરૂપ જીવન નષ્ટ થઇ જાય છે

અથવા એ કેવી ગાઢ અધકારમય રાત્રિ છે કે જેમા ચારે કષાયોરૂપી ઘુવડોનું રાજ્ય છે, અરે ચારિત્રરૂપી શરીરને ગળી જવાને માટે અજ્ઞાનરૂપી પિશાચ સદા તાકી રહેલો છે હે મિત્ર મન ! જ્ઞાનના પ્રકાશથી રાગરૂપી અધકારનુ નિવારણ કર, અને સ્ત્રીરૂપી રાત્રિથી ઉત્પન્ન થતા ઉપસર્ગોને હઠાવવામાં મને સહાય કર

બ્રહ્મચર્યનો ત્યાગ કરવો એ મુનિઓને માટે મહાન્ અનર્થકારક છે, એટલે સુધી કે બ્રહ્મચર્ય ત્યજવાની ઇચ્છા થતાં જ અનેક દોષો એવી રીતે આવીને ખડા થાય છે, જાણે કે

माने प्रमादः साहस-मज्ञान मधर्मो-ऽसिद्धिस्तथाऽन्येऽपि दोपाः समायान्ति । अब्रह्मचर्यस्य सकलप्रमादस्थानत्वेन प्रमादः, अविचारितकार्यकरणबुद्धिसमुत्पादकत्वेन साहसं, बोधिबीजविनाशकत्वेन अज्ञानम्, अधोगतिकारकत्वेन अधर्मः, अष्टविधकर्मजनकत्वेन असिद्धिश्च, एते दोपाश्चेतोगृहे संयमरत्नापहाराय यथेच्छमाशु प्रविशन्ति ।

किञ्च - विपयरागः, सकलपापानां निदानम्; कुठार इव चारित्रतरुं छिनत्ति, कज्जल इव मलिनयति स्वच्छमम्बरमिवात्मानम्, भवति चार्गला मोक्षमार्गद्वारस्य नरकनिगोदाद्यनन्तदुःखानाञ्च निधानमिति सर्वथा तमपहाय पराञ्चयति चञ्चत्तपःसंयमाचरणचतुरारतपस्विनः ।

ननु बहवो मन्त्रास्तथाविधाः सन्ति ये देवानां दानवानामुपरि प्रभावमावि-

---

मानों अनेक अस्त्र-शस्त्र लेकर प्रबल शत्रु आ डटे हो । पहले पहल तो आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान हृदयमें स्थान पा लेते हैं । इनके स्थान पाते ही प्रमाद, साहस, अज्ञान, अधर्म, असिद्धि आदि अनेक दोप उपस्थित होते है ।

अब्रह्मचारीको प्रमादके सब कारण मौजूद रहते है इसलिए प्रमाद, बिना विचारे कार्य करनेसे साहस, बोधि रूपी बीजका विनाशक होनेसे अज्ञान, अधोगतिमें लेजानेके कारण अधर्म, और आठो कर्मोका जनक होनेसे असिद्धि, और इस प्रकारके अनेक दोप शत्रुकी तरह चित्तरूपी घरमें सयमरूपी रत्नको लूटनेके लिए इच्छानुसार प्रवेश कर जाते है ।

विषयराग सकल पापोंका मूल कारण है, चारित्र-वृक्षको, काटनेके लिए कुठार है; जिस प्रकार कज्जल, सफेद वस्त्रको मलिन कर देता है उसी प्रकार आत्माको मलिन करनेवाला है, मुक्तिके मार्गकी अर्गला है, नरक निगोदके दुःखो का निधान है और विविध व्याधियो का उत्पत्तिस्थान है, अतएव तप और सयमके पालनेमें चतुर तपस्वी लोग इस (विषय-राग) को बिलकुल छोडकर अलग होते है ।

અનેક અસ્ત્ર-શસ્ત્ર લઈને પ્રબળ શત્રુઓ આવી પહોંચ્યા હોય પહેલા તો આર્ત્ત-ધ્યાન અને રૌદ્ર-ધ્યાન હૃદયમા સ્થાન જમાવી લે છે તેને સ્થાન મળતા જ પ્રમાદ, સાહસ, અજ્ઞાન, અધર્મ અસિદ્ધિ આદિ અનેક દોષો આવી ઊભા રહે છે

અબ્રહ્મચારીની સમીપે પ્રમાદના બધા કારણો હાજર રહે છે. એથી પ્રમાદ, વગર વિચારે કાર્ય કરવાથી સાહસ, બોધિરૂપી બીજનું વિનાશક હોવાથી અજ્ઞાન, અધોગતિમાં લઈ જવાને કારણે અધર્મ, અને આઠે કર્મોનુ જનક હોવાથી અસિદ્ધિ અને એવા જ બીજા અનેક દોષો શત્રુની પેઠે ચિત્તરૂપી ઘરમા સયમરૂપી રત્નને લૂટી લેવાને ઇચ્છાનુસાર પ્રવેશ કરે છે

વિષયરાગ બધા પાપોનુ મૂળ કારણ છે, ચારિત્ર વૃક્ષને કાપનારો કુહાડો છે.

જેમ કાગળ સફેદ વસ્ત્રને મલિન કરી નાખે છે તેમ આત્માને મલિન કરનારો છે, મુક્તિના માર્ગની અર્ગલા છે, નરક નિગોદના દુઃખોનું નિધાન છે, અને વિવિધ વ્યાધિઓનું ઉત્પત્તિસ્થાન છે તેથી કરીને તપ અને સયમને પાળવામાં ચતુર એવા તપસ્વી લોકો આ (વિષયરાગ)ને બિલકુલ છોડીને તેથી દૂર જતા રહે છે.

भावयन्ति, परन्तु किमेतदाश्चर्यम् ? यत् स्त्रीणां चरित्रे तेऽपि मन्त्रा हतप्रायाः किमपि कर्तुं न प्रभवन्ति । अथासां चरित्रस्यैतादृशप्रभावशालिता, यत्पुरतो मन्त्रा अपि पराभूय निवर्त्तन्ते, तर्हि क उपायस्तदुद्भावितरागरज्जुकर्तनाय संयताना-?-मिति चेत् ,

हन्त ! हृदय-सहचर ! योषित्सविधसंस्थितिपरित्याग एव तदीय-चरित्राऽऽपादितरागभङ्गोपाय इति धारणामुपैहि । उक्तञ्च—

"शृणु हृदय ! रहस्यं यत्प्रशस्तं मुनिनां,
न खलु न खलु योषित्संनिधिः संविधेयः ।
हरति हि हरिणाक्षी क्षिप्रमक्षिक्षुरप्रैः,
पिहितशमतनुत्रं चित्तमप्युत्तमानाम् ॥१॥
शास्त्रज्ञोऽपि प्रकटविनयोऽप्यात्मबोधेऽपि गाढः,
संसारेऽस्मिन् भवति विरलो भाजनं सद्गतीनाम् ।
येनैतस्मिन् निरयनगरद्वारमुद्घाटयन्ती,
वामाक्षीणां भवति कुटिला भ्रूलता कुञ्चिकेव" ॥२॥

जो मन्त्र, देवों और दानवों पर भी अपना प्रभाव शीघ्रही दिखलाते है वे भी स्त्रीजनित राग पर प्रभाव नहीं डाल सकते । यह बडे आश्चर्यकी बात है । स्त्रियोंका चरित्र इतना प्रभावशाली होता है कि उसके सामने मन्त्र भी प्रभावहीन हो जाते है तब उनके विषयमें उत्पन्न होनेवाले राग-रज्जूको काटनेके लिए मुनियोंको क्या उपाय करना चाहिये ?

हे हृदय-सुहृद् ! स्त्रियोंके समीप रहनेका त्याग करदेना ही उनके विषयमें होनेवाले प्रेम-पाशके काटनेका उपाय है । कहा भी है—

"ऐ मन ! मुनियोंकी आत्माका कल्याण करनेवाले रहस्यको सुन, वह यह है कि—स्त्रियोंका सम्पर्क (ससर्ग) सर्वथा नहीं करना चाहिये, क्योंकि शम-रूप कवच पहने हुए उत्तम पुरुषोंके अन्तःकरणको भी स्त्रिया अपनी आंखेरूपी छुरी की धारसे छिन्न-भिन्न कर डालती है" ॥१॥

જે મંત્ર, દેવો અને દાનવો પર પણ પોતાનો પ્રભાવ તુરત બતાવી આપે છે, તે મંત્ર પણ સ્ત્રીજનિત રાગ પર પ્રભાવ પાડી શકતો નથી, એ મોટા આશ્ચર્યની વાત છે. સ્ત્રીઓનું ચરિત્ર એટલું પ્રભાવશાળી હોય છે કે તેની સામે મંત્ર પણ પ્રભાવહીન બની જાય છે. તો તેના વિષયમા ઉત્પન્ન થનારા રાગરજ્જુને કાપવા માટે મુનિઓએ કયો ઉપાય કરવો જોઇએ ?

હે હૃદય-સુહૃદ્ ! સ્ત્રીઓની સમીપે રહેવાનું છોડી દેવું એજ એના વિષયમાં ઉત્પન્ન થતા પ્રેમપાશને કાપવાનો ઉપાય છે. કહ્યું છે કે—હે મન ! મુનિઓના આત્માનું કલ્યાણ કરનારા રહસ્યને શ્રવણ કર તે આ પ્રમાણે છે—

"સ્ત્રીઓનો સંપર્ક (સંસર્ગ) સર્વથા ન કરવો જોઇએ, કારણ કે શમરૂપી કવચ પહેરેલા ઉત્તમ પુરૂષોના અંતઃકરણને પણ સ્ત્રીઓ પોતાની આંખોરૂપી છુરીની ધારથી છિન્ન-ભિન્ન કરી નાખે છે." ॥૧॥

वस्तुतस्तु इहाऽनादिसंसारे स्वस्मिन्नपि शरीरे जीवस्य किं नाम स्वातन्त्र्यम्? दृश्यते हि लोकेऽपकृष्टमनुजपशुपक्षिसरीसृपादिशरीरोपभोगमवाञ्छतोऽपि प्राणिनस्तत्तदङ्गयोगेन अनावृतदेशावस्थानाऽभिमताऽन्नपानाऽनवाप्तिशीतवातातपोपलवृष्टिदंशमशकादिजनिताऽनेकविधदुर्निवारदुःखोपभोगः सोढव्यो भवतीति, स्वातन्त्र्ये तु न कोऽपि तत्तदङ्गमङ्गीकुर्यात् । अङ्गसंयोग इवाङ्गवियोगेऽपि नास्ति जीवस्य स्वातन्त्र्यम्, तनुवियोगमनिच्छतामपि सुखसमन्वितानां मरणदर्शनात्, तमिच्छतां दुःखदग्धानां विषादिभक्षणेऽप्यैकान्तिकमरणादर्शनाच्च ।

"प्रवचनमे प्रवीण, विनयवान् और गंभीर आत्मज्ञानवान् होते हुए भी कोई विरला ही व्यक्ति सद्गतिको प्राप्ति कर पाता है। क्योंकि ससारमें एक ऐसी कुंजी मौजूद हैं जो जल्दी नरकका द्वार खोल देती है, वह कुंजी क्या है। स्त्रियोकी टेढी भौंह" ॥२॥

सच है—अनादि-कालीन ससारमें, जीवोंको अपने शरीरमें भी स्वाधीनता नहीं हैं। अपकृष्ट—मनुष्य पशु पक्षी साँप आदिके हीन शरीरको जो प्राणी चाहते ही नहीं, उन्हे भी वह शरीर धारण करना पड़ता है, और उसके सयोगसे अनिष्ट स्थानका निवास, अन्न-पानकी अप्राप्ति, गर्मी सर्दी ओलोको वर्षा, हवा, डांस-मच्छर आदिसे होनेवाले अनेक प्रकारके दु ख भोगने पडते है। यदि ऐसे शरीरको धारण करना अपनो इच्छा पर निर्भर होता तो कोई भी प्राणो ऐसा दु:खदायी शरोरको धारण न करता।

जिस प्रकार शरीर धारणमें जीव स्वाधीन नहीं है उसी प्रकार उसके त्यागनेमें भी स्वाधीन नहीं है। ससारमे जो प्राणी सुखसम्पन्न है वे वर्त्तमान शरीरका त्याग नहीं करना चाहते, फिर भी उनकी मृत्यु हो जाती है। और मृत्युकी कामना करनेवाले दु खी जीव विष आदि भक्षण कर लेते है तो भी कभी-कभी बच जाते है, अत. सिद्ध हुआ कि अपना शरीरभी अपने अधीन नहीं है।

"પ્રવચનમાં પ્રવીણ, વિનયવાન્ અને ગંભીર આત્મજ્ઞાનવાન્ હોવા છતાં પણ વિરલ વ્યક્તિ જ સદ્ગતિને પ્રાપ્ત કરી શકે છે. કારણ કે સસારમા એક એવી કુંચી મોજુદ છે કે જે જલ્દી નરકનુ દ્વાર ખોલી નાંખે છે એ કુચી કઇ છે? સ્ત્રીની વાંકી ભમ્મર ॥૨॥

ખરે છે અનાદિકાલીન સસારમા, જીવો પાસે પોતાના શરીરની પણ સ્વાધીનતા નથી. અપકૃષ્ટ-મનુષ્ય પશુ પક્ષી સાપ આદિના હીન શરીરને જે પ્રાણી ચાહતા જ નથી, તેમને પણ એ શરીર ધારણ કરવા પડે છે. અને તેના સયોગથી અનિષ્ટ સ્થાનનો નિવાસ, અન્ન પાનની અપ્રાપ્તિ, તાપ ટાઢ, કરાનો વરસાદ, હવા ડાંસ-મચ્છર આદિથી ઉત્પન્ન થતા અનેક પ્રકારના દુઃખો ભોગવવા પડે છે જો એવા શરીરને ધારણ કરવાનુ પોતાની ઇચ્છા પર જ નિર્ભર હોત તો કોઈ પણ પ્રાણી એવા દુઃખદાયી શરીરને ધારણ ન કરત.

જેવી રીતે શરીર ધારણ કરવામા જીવ સ્વાધીન નથી તેવી રીતે તેને ત્યજવામા પણ સ્વાધીન નથી. સસારમા જે પ્રાણીઓ સુખસંપન્ન છે તેઓ વર્તમાન શરીરનો ત્યાગ કરવા ઇચ્છતા નથી, તો પણ એમનુ મૃત્યુ થઈ જાય છે. અને મૃત્યુની કામના કરનારા દુઃખી

जीवस्य स्वातन्त्र्येण शरीरस्वामित्वे सति अनेकेषां कुसुमसुकुमाराणां सुन्दरावयवानां कतिपयानामतीतदेवादिशरीराणां विनाशः कथं न वारितः ? तस्माद् देहेगेहादि किमपि वस्तु कस्यापि नास्ति, किन्तु अज्ञानवशाज्जीवाः इदं मम, इय ममे' त्यादिस्वरूपं ममत्वं कुर्वन्तीति निश्चीयते ।

इत्थं च स्वकीयदेहगेहादौ ममत्वकरणमज्ञानमूलं, कर्मबन्धहेतुश्चेति विवेकिनः स्वदेहेऽपि ममत्वं न कुर्वन्ति, किं पुनरन्यदीयदेहगेहादौ—इत्यनुचिन्तनेन समुत्पन्नया "न सा मम, नाहं तस्याः" इत्याकारया विवेकबुद्ध्या मनसि प्रसृतं रागं प्रशमयेदिति भावः ॥ अत्र गाथायां 'परिव्वयंतो' इत्यत्र सौत्रत्वात्षष्ठ्यर्थे प्रथमा, 'बहिद्धा' इति प्राकृतत्वात्, यद्वा बहिर्धावतीति विग्रहे पृषोदरादित्वाद्धकारादिलोपः । इति गाथार्थः ॥४॥

पूर्वगाथया 'रागव्यपनयः कर्त्तव्यः' इत्युक्तं, स च बाह्यक्रियामन्तरेण न सम्भवतीत्यतस्तत्प्रतिपादनार्थमाह—'आयावयाही' इत्यादि ।

मूलम्—आयावयाही[1] चय[3] सोगमल्लं[2], कामे[4] कमाही[5] कमियं[8] खु[6] दुक्खं[7] ।
छिंदाहि[10] दोसं[9] विणएज्ज[12] रागं[11], एवं[13] सुही[15] होहिसि[16] संपराए[14] ॥५॥

यदि शरीर पर प्राणीका अधिकार हो तो फूल से कोमल तथा सुन्दर अवयववाले अतीतकालीन देव आदिके शरीरके वियोगको क्यो न रोक लेता ? सत्य बात तो यह है कि—देह गेह आदि कोई भी वस्तु किसीकी नहीं है । जीव अज्ञानके कारण 'यह मेरा है' 'यह मेरी है' इस प्रकारकी ममता करते है, अत एव शरीरमें ममता करना ही अज्ञान—मूलक और परिग्रह होने से कर्म-बन्धका कारण है, ऐसासमझ कर विवेकी जन अपने शरीर में भी स्नेह नहीं करते तो दूसरेकी देहमे कैसे स्नेह करेगे ? ऐसा सोच कर, मनमें उत्पन्न हुए भी रागादिको "न वह मेरी है" और " न मै उसका हूँ" इस प्रकार की भावनासे दूर कर मुनि, उस निकले हुए मनको फिर से सयम—घरमें लावे ॥४॥

જીવો વિષ આદિ ભક્ષણ કરી લે છે તોપણ કોઈ કોઈ વાર બચી જાય છે. એ ઉપરથી સિદ્ધ થયુ કે આપણુ શરીર પણ આપણને આધીન નથી

જો શરીર પર પ્રાણીનો અધિકાર હોત તો ફૂલથીય કોમળ તથા સુદર અવયવોવાળા અતીતકાલીન દેવાદિના શરીરના વિયોગને કેમ રોકી રાખત નહિ ? સાચી વાત એ છે કે દેહ ગેહ આદિ કોઈ પણ વસ્તુ કોઈની નથી જીવ અજ્ઞાનને કારણે 'આ મારો છે' એ 'એ મારી છે' એ પ્રકારની મમતા રાખે છે. એટલે શરીર પર મમતા રાખવી એજ અજ્ઞાનમૂલક અને પરિગ્રહરૂપ હોવાને કારણે કર્મબંધનુ કારણ છે એવુ સમજીને વિવેકીજન પોતાના શરીર પર પણ સ્નેહ રાખતા નથી, તો પછી બીજાના દેહ પર કેમ સ્નેહ કરે ? એમ વિચારીને મનમા ઉત્પન્ન થયેલા રાગાદિને, "એ મારી નથી" કે "હુ તેનો નથી" એવી ભાવનાથી દૂર કરીને, મુનિ સંયમઘરથી બહાર નીકળેલા મનને પાછું સંયમઘરમા લાવે. (૪)

छाया–आतापय त्यज सौकुमार्यं, कामान् क्राम क्रान्तमेव दुःखम् ॥
छिन्धि द्वेषं व्यपनय रागम् , एवं सुखी भविष्यसि सम्पराये ।५।

स्त्रीपरसे मोह हटानेका उपाय कहते हैं—

सान्वयार्थः–आयावयाही=शरीरको तपस्यासे सूखा डालो, सोगमल्लं=सुकुमारता-अमीरीको चय=त्यागो, कामे=विषयकी इच्छाओंको कमाही=काबूमें करो-रोको, (ऐसा करनेसे) खु=निश्चय करके दुक्खं=दुःख कमियं=दूर होगा, दोसं=द्वेषको छिंदाहि=छेदो-नष्ट करो, रागं=रागको विणएज्ज=हटाओ-दूर करो; एवं=इस प्रकार करनेसे (तुम) संपराए=संसारमें सुही=सुखी होहिसि=होवोगे ॥५॥

टीका–हे शिष्य ! त्वं श्रामण्ययोगाद्बहिर्निर्गतं चित्तं प्रतिरोद्धुम् आतापय=शीतोष्णादिसहनो-त्कुटुकासनाद्यवलम्बना-ऽनशनादिदुष्करतपोविधानैस्तनुं तापय, सौकुमार्यं=शरीरसुकुमारतां त्यज=परिहर, यद्वा, आतापयेतिपदेन बोधितमेवार्थं विशदयति-सौकुमार्यं त्यजेति शरीरसुखसाधने दत्तचित्तो मा भव, शीतवातादिपरीषहसहनयोग्यतां सम्पादयेति भावार्थः । कम्यन्त इति कामाः=शब्दादिविषयास्तान् क्राम=अतिक्राम-सन्त्यजेत्यर्थः । कामातिक्रमणे सति तु दुःखं क्रान्तमेव गतमेव नष्टमेवेत्यर्थः । कामा एव हि दुःखसमुदायनिदानम् ।

पूर्व गाथामें, उत्पन्न हुए रागका परित्याग करना कहा किन्तु रागका त्याग तप आदि बाह्य क्रियाओके विना नहीं हो सकता। इसलिए अब उनकी प्ररूपणा करते हैं–'आयावयाही' इत्यादि,

हे शिष्य ! तपस्या कर–आतापना ले, सुकुमारताका त्याग कर, इन्द्रियो के विषयोमें राग न कर, रागके त्यागसे दुःखोका नाश होही जाता है। तूं द्वेषका लेश न रहने दे, और रागको छोड दे, तो तू ससारमें सुखी अथवा परीषह उपसर्गोंके युद्धमे विजयी होगा। तात्पर्य-हे शिष्य ! श्रामण्ययोग (सयमरूप घर) से बाहर मन निकल जाय तो शीत उष्ण आदि सह कर और उत्कुटुकासन आदिका आश्रय लेकर, तथा अनशन आदि तप करके शरीरको सुखा डाल, शरीरकी कोमलताका त्याग कर, अर्थात् अपने शरीरको शीत-आतप प्रभृति परीषह सहने योग्य बना ले,

---

પૂર્વ ગાથામા, ઉત્પન્ન થએલા રાગનો પરિત્યાગ કરવાનુ કહ્યુ, કિન્તુ રાગનો ત્યાગ તપ આદિ બાહ્ય ક્રિયાઓ વિના થઈ શકતો નથી. તેટલા માટે એની પ્રરૂપણા કરે છે **आयावयाही०** ઈત્યાદિ

હે શિષ્ય ! તપસ્યા કર–આતાપના લે, સુકુમારતાનો ત્યાગ કર ઇંદ્રિયોના વિષયોમા રાગ ન કર, રાગના ત્યાગથી દુઃખોનો નાશ થઈ જ જાય છે તુ દ્વેષનો અ શ પણ રહેવા ન દે અને રાગને છોડી દે, તેથી તુ સંસારમા સુખી અથવા પરિષહ ઉપસર્ગો સાથેના યુદ્ધમા વિજયી થઈશ તાત્પર્ય એ છે કે–હે શિષ્ય ! શ્રામણ્યયોગ (સયમરૂપી ઘર) થી બહાર મન નીકળી જાય તો ટાઢ–તાપ આદિ પરીષહ અને ઉત્કુટુક આસન આદિનો આશ્રય લઈને, તથા અનશન આદિ તપ કરીને શરીરને સુકાવી નાખ, શરીરની કોમળતાનો ત્યાગ કર, અર્થાત્ પોતાના શરીરને ટાઢ–તાપ આદિ પરીષહ સહેવાને યોગ્ય બનાવી લે. શારીરિક

ननु 'यथा बुभुक्षापिपासादीनामशनपानादिभिरेव निवृत्तिस्तद्वत्कामानामुपभोगेन भविष्यति ?

मैवम्, हे शिष्य ! विषयवासनैव तावत्सकलाऽनर्थमूलम्, विशेषतश्चारित्रमुच्छेदयन्ती रागद्वेषौ दृढीकुरुते । यथा विदेश गतस्य कस्यचित् प्रेयसो जीवितस्यापि श्रुतायां मरण-वार्त्तायां जना रुदन्ति न तथा तस्मिन्मृतेऽप्यश्रुतायां तदीयमरणप्रवृत्तौ, तस्माच्चेतोवि-कृतिरेव मुख्यतः सुखदुःखबन्धहेतुः, विषयवासनायाः समुच्छेदमन्तरेण पुनः पुनरष्टवि-धानां कर्मणामङ्कुरणं न शक्यते प्रतिरोद्धुं, तेषां विषयवासना मूलकत्वात् । उक्तञ्च—

शारीरिक सुखोकी सामग्रीमें मन न लगा । जिनकी कामना की जाती है, उन्हे काम कहते है, उन कामो (शब्द, रूप, गध, रस, स्पर्श आदि इन्द्रियविषयो) की अपेक्षा न रख । ऐसा करनेसे दु'खोका अस्तित्व रह नहीं सकता, उनका नाश ही समझ क्योकि काम ही दु'खोका कारण है।

शंका–हे गुरुमहाराज ! जैसे भोजन करनेसे भूख शान्त हो जाती है, और पानी पीनेसे प्यास बुझती है, वैसेही विषयोका सेवन करनेसे विषयसेवनकी इच्छा भी शान्त हो जायगी तो फिर आतापना आदि बाह्य तप क्यो करना चाहिए ?

उत्तर–हे शिष्य! ऐसी शंका करना उचित नहीं है क्योकि विषयोकी वासना (इच्छा) ही सब अनर्थोकी जड है, और चरित्ररूपी वृक्षकी जडको उखाड़नेवाली है । यह रागद्वेषको दृढ़ करती है । परदेश गया हुआ कोई इष्टमित्र जीवित हो परन्तु उसकी मृत्युका समाचार मिले तो सम्बन्धी लोग रोने लगते है, और यदि वह मर जाय किन्तु मरनेका समाचार न मिले तो कोई भी नहीं रोता । इससे ज्ञात होता है कि चित्तका विकार ही सुख दु खका मुख्य कारण है ।

इसलिए जब तक मनमे विषयवासनाका समूल त्याग नहीं होता तब तक आठों कर्मोकी

સુખોની સામગ્રીમાં મન ન લગાડ જેની કામના કરવામા આવે છે તેને કામ કહે છે એ કામો (શબ્દ, રૂપ, ગંધ, રસ, સ્પર્શ આદિ ઇન્દ્રિય-વિષયો) ની અપેક્ષા ન રાખ એમ કરવાથી દુઃખોનું અસ્તિત્વ રહી શકશે નહિ, એનો નાશ જ સમજ, કેમકે કામ જ દુ ખનું કારણ છે.

શંકા–હે ગુરૂ મહારાજ ! જેમ ભોજન કરવાથી ભૂખ શાન્ત થઇ જાય છે અને પાણી પીવાથી તરસ છીપે છે, તેમજ વિષયોનુ સેવન કરવાથી વિષય સેવનની ઇચ્છા શાન્ત થઇ જાય, તો પછી આતાપના આદિ બાહ્ય તપ કરવાની શી જરૂર ?

ઉત્તર—હે શિષ્ય ! એવી શંકા કરવી ઉચિત નથી, કારણ કે વિષયોની વાસના (ઇચ્છા) જ બધા અનર્થોનુ મૂળ છે અને ચારિત્રરૂપી વૃક્ષના મૂળને ઉખાડનારી છે. તે રાગદ્વેષને દૃઢ કરે છે પરદેશ ગયેલો કોઈ ઇષ્ટમિત્ર જીવતો હોય પરતુ તેના મૃત્યુના સમાચાર મળે તો સગા-સબંધીઓ રોવા લાગે છે. અને જો તે મરી જાય પણ મરવાના સમાચાર ન મળે તો કોઈ પણ રોતુ નથી, એથી સમજાય છે કે ચિત્તનો વિકારજ સુખદુઃખનું મુખ્ય કારણ છે

એ કારણથી જ્યાસુધી મનમાથી વિષયવાસનાનો સમૂળો ત્યાગ નથી થતો ત્યાસુધી આઠે કર્મોની ઉત્પત્તિને રોકી શકાતી નથી કારણ કે તેનુ મૂળ વિષયવાસના છે. કહ્યુ પણ છેકે—

"विचारितमलं शास्त्रं, चिरमुद्ग्राहितं मिथः ।
सन्त्यक्तवासनान्मौनाद्, ऋते नास्त्युत्तमं पदम् ॥" इति ।

यथा पवनपथे पतत्रिणः स्वच्छन्दं विहरन्ति तथाऽनुपमाऽलौकिकाऽऽनन्दमयमोक्षमार्गसंचारिणः संयमिनः प्रतिबन्धरहितं विहरन्ति, परन्तु जालबद्धा विहङ्गमा उत्पतनयत्नवन्तोऽपि यथा निर्बन्धविहाराय न प्रभवन्ति, तद्वद् विषयसेवनाऽऽशालक्षणविषयवासनाकलितचेतसो मुनयोऽनुपलभ्य मोक्षमार्गमप्रतिबन्धविचरणवञ्चिता भवन्तीति शिष्य ! जानीहि तावद् विषयाशां दुस्तरमहानदीसमानाम् । उक्तञ्च—

आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णातरङ्गाकुला,
रागग्राहवती वितर्कविहगा धैर्यद्रुमध्वंसिनी ।
मोहाऽऽवर्तसुदुस्तराऽतिगहना प्रोत्तुङ्गचिन्तातटी,
तस्याः पारगता विशुद्धमनसो नन्दन्ति योगीश्वराः ॥ १ ॥" इति

उत्पत्ति नहीं रुक सकती, क्योंकि उनका मूल, विषय-वासना है । कहा भी है—

"भले ही कोई कितनेही शास्त्रोका मनन करले, या दूसरोको सिखलादे, पर जब तक वासनाका परित्याग करके समिति-गुप्ति-आदिरूप संयमकी आराधना नहीं कर लेता तब तक क्षोम प्राप्त नहीं कर सकता" ॥१॥

जैसे-पक्षी आकाशमे स्वच्छन्द विहार करते हे, उसीप्रकार अनुपम अलौकिक आनन्दमय मोक्षमार्गमें विहार करनेवाले संयमी भी अप्रतिबन्धविहारी होते है । किन्तु जिस प्रकार जालमें फँसे हुए पक्षी उडनेका यत्न करते है पर उड नहीं सकते, उसी-प्रकार विषयसेवनेकी आशारूप वासनासे मुनि मोक्षमार्गको न पाकर अप्रतिबन्ध विहारसे वंचित रहते है । हे शिष्य ! इस विषय-वासनाको ऐसी विशाल नदी समझ कि जिसका पार पाना अत्यन्त कठिन है । कहा भी है।

"'आशा' नदीके समान है, इसमें मनोरथरूपी जल भरा हुआ है, तृष्णाकी तरगे छलागे मार रही है, रागरूपी ग्राह इसमें निवास करते है, नाना प्रकारके सोच-विचार ही इसमें पक्षी

"ભલે કોઈ ગમે તેટલા શાસ્ત્રોનુ મનન કરી લે, અથવ બીજાઓને શીખવે પરન્તુ જ્યાસુધી વાસનાનો ત્યાગ કરીને સમિતિ ગુપ્તિ આદિરૂપ સંયમની આરાધના કરી લેતો નથી, ત્યાસુધી મોક્ષ પ્રાપ્ત કરી શકતો નથી," (૧)

જેમ પક્ષી આકાશમા સ્વચ્છન્દ વિહાર કરે છે, તેમ અનુપમ અલૌકિક આનન્દમય મોક્ષમાર્ગમા વિહાર કરનારા સંયમી પણ અપ્રતિબંધ વિહારી હોય છે પરન્તુ જેવી રીતે જાળમા ફસાયેલા પક્ષીઓ ઉડવાનો યત્ન કરે છે. પણ ઉડી શકતા નથી, તેવી રીતે વિષયના સેવાનની આશારૂપ વાસનાથી વાસિત અંતઃકરણવાળા મુનિઓ મોક્ષમાર્ગને ન પામતા અપ્રતિબંધ વિહારથી વંચિત રહે છે, હે શિષ્ય ! આ વિષયવાસનાને એવી વિશાળ નદી સમજ કે જેનો પાર પામવો અત્યંત કઠણ છે કહ્યુ છે કે—

"આશા નદીના જેવી છે, તેમા મનોરથરૂપી જળ ભરેલુ છે. તૃષ્ણારૂપી તરંગો ઉછળી

अपरं चाऽऽकर्णय—

"विषयाशामहापाशाद्, यो विमुक्तः सुदुस्त्यजात्।
स एव कल्पते मुक्त्यै नान्यः पट्शास्त्रवेद्यपि ॥ १ ॥" इति.

हे शिष्य ! एवं विषयभोगस्पृहाऽपि महतेऽनर्थाय कल्पते, किं पुनस्तदुपसेवनं, तदेवमाकलय तावत्-सुखाशया दीपकोपगमनं पतङ्गानाम्, दारुधिया ग्राह-ग्रहण-पुरस्सरं नदीतरणं मनुष्याणाम्। किञ्च बुभुक्षापिपासादिदृष्टान्तस्यात्र वैषम्यं विद्यते, नहि कामा उपभोगेन शाम्यन्ति प्रत्युताऽभ्यासवशादतितरां वृद्धिमेवोपगच्छन्ति, यदुक्तमन्यत्रापि—

"न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव, भूय एवाभिवर्धते ॥ १ ॥" इति,

है, यह नदी धीरता-रूपी वृक्षको विध्वस करनेवाली है, चिन्तारूपी इसका तट है, इसका पार करना बहुत कठिन है, जो मुनीश्वर इस नदीको पार कर लेते है वे ही सुखी होते है ॥१॥

और सुनो—

"विषयोका आशापाश दुस्त्याज्य हे। जो इस पाश से मुक्त हो जाते है वे ही मोक्ष-मार्गके अधिकारी होते है, अन्य नहीं, चाहे वह सभी शास्त्रोके पारंगत क्यो न हो ! ॥१॥"

हे शिष्य ! इसप्रकार विषय भोगनेकी इच्छा भी महान् अनर्थको उत्पन्न करती है, तो विषयोंके सेवनके विषयमे तो कहना ही क्या है ? बस तू यही समझ ले जैसे सुख पानेकी इच्छासे पतगोका दीपकमें गिरना है, अथवा कोई भोला मनुष्य लकडी समझकर ग्राहको पकड़ लेवे और उसीका सहारा लेकर नदी पार करना चाहे तो वह कभी सफलमनोरथ नहीं होगा वरन् उसे प्राण त्यगने पडेगे, इसी प्रकार विषय भागनेसे विषयोकी वासना मिट जायगी, यह विचारना ठीक नहीं है।

भूख-प्यासका दृष्टान्त भी यहाँ मेल नहीं खाता, क्योंकि विषय-सेवनसे काम शान्त नहीं

રહ્યાં છે, રાગરૂપી ગ્રાહ એમા નિવાસ કરે છે, નાના પ્રકારના વિચારો તમા પક્ષીરૂપ છે, આ ધીરતારૂપી વૃક્ષનો ધ્વસ કરવાવાળી છે ચિન્તા એના તટ છે એ નદીને પાર કરવી અત્યંત કઠણ છે જે મુનીશ્વર એ નદીને પાર કરે છે તે જ સુખી થાય છે," (૧) અને વળી શ્રવણ કરો—

'વિષયોનો આશાપાશ દુસ્ત્યાજ્ય છે જેઓ એ પાશથી મુક્ત થઈ જાય છે તેઓ જ મોક્ષમાર્ગના અધિકારી બને છે-બીજા નહિ, પછી ભલે તેઓ બધા શાસ્ત્રોના પારગત કેમ ન હોય ?" (૧)

હે શિષ્ય ! એ રીતે વિષય ભોગવવાની ઇચ્છા જ મહાન્ અનર્થને ઉત્પન્ન કરે છે. તો વિષયોના સેવનની બાબતમા તો કહેવું શુ ? બસ, તું સમજી લે કે-જેમ સુખ પામવાની ઇચ્છાથી પતગો દીપકમા હોમાય છે, અથવા કોઈ ભોળો માણુસ લાકડું સમજીને ગ્રાહ (મગર) ને પકડી લે અને તેને આધારે નદી પાર કરવા ઇચ્છે તો કદાપિ તેનો મનોરથ સફળ ન થાય પરન્તુ તેને પ્રાણુ ત્યજવાનો જ વખત આવે, તેમ "વિષય ભોગવવાથી વિષયોની વાસના મટી જશે." એમ વિચારવુ તે બરાબર નથી.

लोकेऽपि च दृश्यते-यथा यथा वह्नाविन्धनानि प्रक्षिप्यन्ते तथा तथाऽसौ प्राबल्यमधिगच्छति। अन्यच्च दद्रुरोगप्रशमनाभिलाषिणा यथा यथा तदीयकण्डूयनाऽऽदरः क्रियते, तथा तथा दद्रुरोगो वर्धमान एवाऽनुभूयते न तु जातु तदुपशमो लक्ष्यते कुत्राऽपि, तद्वद् विषयसेवनतो न विषयतृष्णोपशमः।

अपरं चात्र वैषम्यं, तथाहि-विषयसेवनेच्छोपशमं प्रति विषयसेवनस्य, बुभुक्षाद्युपशमं प्रति भोजनादेरिव कारणत्वमङ्गीकृत्य यत् तदुपादेयता त्वयोपपाद्यते तन्न मनोरमम्. अन्वयव्यतिरेकौ हि सर्वसंमतौ कार्यकारणभावनियामकौ, तत्राऽन्वयः-'तत्सत्त्वे तत्सत्तारूपः' व्यतिरेकस्तु-'तदभावे तदभावरूपः'। यथा सर्व-विरतिसत्त्वे साधुत्वसत्ता,

---

होते, बल्कि अधिक-अधिक बढते हैं। कहा भी है-"कामोका सेवन करनेसे काम कदापि शान्त नहीं होते, जैसे घीके डालनेसे अग्नि शान्त नहीं होती वरन् बढ़ती ही जाती है ॥१॥"

तथा लोकमें भी देखा जाता है कि-अग्निमें ज्यों-ज्यों इन्धन डाला जाता है, त्यों-त्यो वह अधिक प्रबल होती जाती है, बुझती नहीं है। अथवा दादको खुजलानेसे दाद रोग मिटता नही किन्तु बढ़ता ही जाता है ॥

उक्त दृष्टान्तमें और भी विषमता है सो कहते है-जैसे बुभुक्षा (भूख) आदिको शान्त करनेमें भोजन आदि कारण है, इसी प्रकार विषय- सेवनकी इच्छाको शान्त करनेमें विषयोका सेवन कारण है, ऐसा मानकर तुम विषय-सेवनको उपादेय कहते हो सो ठीक नहीं है। यह सब मानते है कि अन्वय-व्यतिरेकसे कार्य-कारणभावका निश्चय होता है, कारणके होने पर ही कार्यका होना अन्वय कहलाता है, और कारणके अभावमें कार्यका न होना व्यतिरेक कहलाता है। जैसे सर्वविरतिरूप चारित्रके होने पर ही साधुता होती है और सर्वविरतिरूप चारित्रके अभावमें साधुता नहीं रहती। इस अन्वयव्यतिरेकसे ज्ञात होता है कि विरति साधुत्वका कारण है।

ભૂખ-તરસનું દૃષ્ટાંત પણ અહીં બંધ બેસતુ નથી, કારણ કે વિષય-સેવનથી કામ શાન્ત થતો નથી, પરન્તુ વધારે ને વધારે વધે છે, કહ્યુ છે કે- 'કામોનું સેવન કરવાથી કામ કદાપિ શાન્ત થતો નથી, જેમ ઘી નાખવાથી અગ્નિ શાન્ત થતો નથી. પરંતુ વધતો જાય છે" (૧) તેમજ-જગતમા પણ જોવામા આવે છે કે-અગ્નિમા જેમ-જેમ ઇંધન નાંખવામા આવે છે, તેમ-તેમ તે વધારે પ્રબળ થતો જાય છે, ઓલવાતો નથી અથવા દાદરને ખજવાળવાથી દાદર મટતી નથી પણ વધતી જાય છે.

ઉક્ત દૃષ્ટાંતમાં બીજી પણ વિષમતા છે તે કહે છે- જેમ ભૂખ આદિને શાન્ત કરવામાં ભોજન આદિ કારણ છે, તેમ વિષય-સેવનની ઈચ્છાને શાન્ત કરવામા વિષયોનું સેવન કારણ છે, એમ માનીને તમે વિષય-સેવનને ઉપાદેય કહો છો તે બરાબર નથી, સૌ એમ તો માને છે કે-અન્વય-વ્યતિરેકથી કાર્ય કારણભાવનો નિશ્ચય થાય છે. કારણ હોવાથી જ કાર્યનું ન બનવું અન્વય કહેવાય છે અને કારણના અભાવમા કાર્યનુ ન બનવુ એ વ્યતિરેક કહેવાય છે, જેમ સર્વવિરતિરૂપ ચારિત્ર હોવાથી જ સાધુતા હોય છે. અને સર્વવિરતિરૂપ ચારિત્રના અભાવમાં સાધુતા રહેતી નથી. આ અન્વય-વ્યતિરેકથી સમજાય છે કે વિરતિ સાધુત્વનુ કારણ છે.

तदभावे च साधुसत्ताया अभाव इत्यन्वय-व्यतिरेकाभ्यां साधुत्वकारणं सर्वविरतिचारित्रमिति गम्यते ।

अथ च-तात्कालिकमेव बुभुक्षाद्युपशमं प्रति भोजनादेरन्वयव्यतिरेकतः कारणता विद्यते, अतस्तादृशबुभुक्षाद्युपशमनकामनयैव भोजनाद्युपादीयते, अत्र तु यावज्जीवन विषयसेवनेच्छाप्रशमः साधुजनाऽभिलापविषय इति तादृशप्रशममुद्दिश्य प्रवर्त्तमानानां मुनीनां विषयसेवन कदापि नोपादेयम्, विषयसेवनसमये हि तदीयवासना रागमनुवर्द्धयन्तीन्द्रियाणि च सबलयन्ती विविधाशुभभावनामुद्भावयति-'अयमुपभोगो न जातु नश्यतु, उत्तरोत्तरं चानुवर्द्धताम्, न चैन प्रतिबध्नन्तु केऽपि विघ्नाः' इत्यादि । एवं च विषयसेवनेन नैव तदभिलापोपशमः प्रत्युत तद्विपरीतं प्रतिक्षणं वर्द्धमान एव तदभिलापः पाशबद्धमिव पुरुषं पुरुषार्थसाधनाक्षमं कुरुते, तस्मात् कार्यकारणभावनियामकाऽन्वयव्यतिरेकाभावेन यावज्जीवनं विषयसेवनतृष्णाप्रशमं प्रति विषयसेवनस्य कारणताऽनुपपत्त्या तादृशोपशमाऽभिलापवतां संयतानामनुपादेयत्वं सिद्धम् ।

जब भोजन किया जाता है तो क्षुधाकी तात्कालिक शान्ति हो जाती है, बिना भोजन किये नहीं होती, इसलिए अन्वय-व्यतिरेकद्वारा भोजन तात्कालिक क्षुधा निवृत्तिके प्रति कारण होता है। इसी कारणसे क्षुधाआदि शान्त करनेके लिए भोजन आदि किया जाता है। साधु जीवनपर्यन्त विषय-सेवनकी अभिलाषाकी शान्तिकी इच्छा रखते है। इस शान्तिके लिए प्रवृत्ति करनेवाले मुनियोको कदापि विषयसेवन नहीं करना चाहिए, क्योकि विषयवासना, विषयसेवनके समय राग-भावकी वृद्धि करती है और इन्द्रियोको सबल बनाकर नाना प्रकारकी दुर्भावनाएँ उत्पन्न करती है कि-'यह भोग कभी नष्ट न हो जाय, उत्तरोत्तर बढता जाय, इसके भोगनेमें कोई विघ्न न आजावे' इत्यादि। अत एव विषयसेवन करनेसे विषयकी अभिलाषा शान्त नहीं होती, बल्कि प्रतिक्षण अधिक-अधिक बढती जाती है। यहां तक कि यह विषयलालसा पुरुषको इतना निकम्मा बना देती है कि वह पुरुषार्थ-साधनमें सर्वथा असमर्थ हो जाता है, जैसे फन्देमें फँसा हुआ पुरुष कुछभी पुरुषार्थ नहीं कर सकता। इसलिए यहाँ कार्य-कारणभावका निश्चय

જ્યારે ભોજન કરવામા આવે છે ત્યારે ક્ષુધાની તાત્કાલિક શાંતિ થઈ જાય છે, ભોજન કર્યા વિના શાન્તિ થતી નથી, તેથી અન્વય-વ્યતિરેક દ્વારા ભોજન તાત્કાલિક ક્ષુધાનિવૃત્તિને પ્રતિ કારણ બને છે આ કારણથી ક્ષુધા પિપાસા આદિ શાન્ત કરવાને માટે ભોજન આદિ કરવામા આવે છે. સાધુ જીવનપર્યન્ત વિષય-સેવનની અભિલાષાની શાન્તિની ઈચ્છા રાખે છે. આ શાન્તિને માટે પ્રવૃત્તિ કરનારા મુનિઓએ કદાપિ વિષયસેવન કરવુ ન જોઇએ કારણ કે વિષયવાસના વિષયસેવનને સમયે રાગ-ભાવની વૃદ્ધિ કરે છે, અને ઇન્દ્રિયોને સબળ બનાવીને એવી નાના પ્રકારની દુર્ભાવનાઓ ઉત્પન્ન કરે છે કે-'આ ભોગ કદાપિ નષ્ટ ન થાય ઉત્તરોત્તર વધતો જાય, એને ભોગવવમા કાંઈ વિઘ્ન ન આવે, ઇત્યાદિ એટલે કે વિષયસેવનથી વિષયની અભિલાષા શાન્ત થતી નથી, બલ્કે પ્રતિક્ષણ અધિક-અધિક વધતી જાય છે. તે એટલે સુધી કે એ વિષયલાલસા પુરૂષને કેવળ નકામો બનાવી દે છે અને તે પુરૂષાર્થ-સાધનમા સર્વથા અસમર્થ બની જાય છે. કે જેવી રીતે ફંદામા (હેડગા) ફસાયેલો પુરૂષ કાઇ પણ પુરૂષાર્થ કરી શકતો નથી. તેથી કરીને અહીં કાર્ય-કારણભાવનો નિશ્ચય કરાવનારા અન્વય-

इत्थं पूर्वार्द्धेन बाह्यकामपरित्यागमुक्त्वा पश्चार्द्धेनाऽऽभ्यन्तरकामपरित्यागमाह- 'छिंदाहि०' इति, शब्दादिविषयेषु द्वेषं छिन्धि=मुञ्च, तथा रागं=कामरागं व्यपनय=दूरीकुरु, एवम्=एवं कृते सति, सम्पराये=जन्ममरणरूपत्वेन नाशमये संसारेऽपीति भावः ।

यद्वा परीषहोपसर्गरूपे संग्रामे, त्वमितिशेषः; सुखी=स्वात्मिकानन्दभाग् भविष्यसीति गाथार्थः ॥ ५ ॥

उक्तमर्थं दृष्टान्तेन स्फुटीकरोति-'पक्खंदे०' इत्यादि,

८ ४ ७ ५ ६
मूलम्-पक्खंदे जलियं जोइं, धूमकेउं दुरासयं ।
११ ९ १० २ ३ १
नेच्छंति वंतयं भोत्तुं, कुले जाया अगंधणे ॥६॥

छाया-प्रस्कन्दन्ति ज्वलितं ज्योतिष, धूमकेतुं दुरासदम् ।
नेच्छन्ति वान्तं भोक्तुं, कुले जाता अगन्धने ॥६॥

सान्वयार्थः—

अगंधणे=अगन्धननामक कुले=कुलमें जाया=उत्पन्न हुए (सर्प) जलिय=जलती हुई धूमकेउं=धुंआंनिकालती हुई (और) दुरासय=असह्य-नहीं सहने योग्य (ऐसी) जोइं=अग्नि में पक्खदे=प्रवेश कर जाते हैं, (किन्तु) वंतयं=उगले हुए विषको भोत्तुं=भोगनेकी नेच्छंति =इच्छा नहीं करते । अर्थात् अगन्धन सर्प भी त्यागे हुएको फिर ग्रहणनहीं करना चाहते ॥६॥

करानेवाले अन्वयव्यतिरेकका अभाव होनेसे यावज्जीवन विषय-लालसाकी शान्तिके प्रति विषयसेवन कारण नहीं हो सकता । अतः या वज्जीवन विषयाभिलाषाकी शान्ति चाहनेवाले मुनियोंको यह उपादेय नहीं है ।

इस प्रकार पूर्वार्द्धमें सूत्रकार बाह्य-विषयोका त्याग बताकर उत्तरार्द्धमें अन्तरङ्ग-विषयोंके त्यागका उपदेश देते है कि—हे शिष्य ! शब्दादि-विषयोमें द्वेष तथा रागको दूर कर । ऐसा करनेसे तू जन्म-मरण स्वरूपवाले विनश्वर ससारमें सुखी, अथवा अनुकूल प्रतिकूल परीषह और उपसर्ग रूप सग्राममें विजयी होगा ॥५॥

इसी विषयको दृष्टान्तद्वारा स्पष्ट करते है— 'पक्खदे० इत्यादि ।

साँप दो प्रकारके होते है—(१) गन्धन और (२) अगन्धन, गन्धन सर्प उन्हें कहते

વ્યક્તિરેકનો અભાવ હોવાથી જીવનપર્યંત વિષયલાલસાની શાન્તિની પ્રતિ વિષયસેવન કારણ થઇ શકતુ નથી, એટલે જીવનપર્યંન્ત વિષયાભિલાષાની શાન્તિને ચાહનારા મુનિઓને માટે એ ઉપાદેય નથી

એ પ્રકારે પૂર્વાર્ધમાં સૂત્રકાર બાહ્ય વિષયોનો ત્યાગ બતાવીને ઉતરાર્ધમાં અતરંગ વિષયોના ત્યાગનો ઉપદેશ આપે છે કે—હે શિષ્ય ! શબ્દાદિ-વિષયોમાં દ્વેષ તથા રાગને દૂર કર એમ કરવાથી જન્મ-મરણસ્વરૂપવાળા વિનશ્વર સસારમાં સુખી, અથવા અનુકૂલ-પ્રતિકૂલ પરીષહ તથા ઉપસર્ગના સંગ્રામમા વિજયી થઇશ. (૫)

આ વિષયને દષ્ટાંત દ્વારા સ્પષ્ટ કરે છે—પક્ખંદે૦ ઇત્યાદિ.

સાપ બે પ્રકારના થાય છે. (૧) ગંધન અને (૨) અગંધન. ગંધન સર્પ એ કહેવાય છે

टीका-गन्धना-ऽगन्धनभेदेन भुजगा द्विविधास्तत्र गन्धनास्ते ये मन्त्रप्रयोगादिवशाद्दष्टप्रदेशे वान्तं विषं पुनश्चूषन्ति, तद्भिन्ना अगन्धनास्तत्कुलमगन्धनं तस्मिन् कुले जाताः=समुत्पन्नाःसर्पा इति शेषः, ज्वलितं=प्रदीप्तं धूमकेतुं=धूमः केतु=श्चिह्नं यस्य तं धूमध्वजमित्यर्थः, अत एव दुरासदम्=दुःखेन आसद्यते=धातूनामनेकार्थत्वात् सह्यते संवेद्यते इति वाऽर्थस्तं दुष्प्रवेशमिति यावत्, ज्योतिषम्=अग्निम् प्रस्कन्दन्ति=प्रविशन्ति, किन्त्विति-शेषः, वान्तम्=उद्गीर्णं सन्त्यक्तमितियावत् विषमितिशेषः भोक्तुं नेच्छन्ति=नाभिलषन्ति तिर्यञ्चः सर्पा अपि वह्निप्रवेशापेक्षया दुःसहमनुचितं च वान्ताशनमेव मन्यन्ते। तस्मात् शिष्य! प्रवचनतत्वाभिज्ञेन त्वया निःसारतया परित्यक्तस्य विषयस्य पुनः स्वीकरण न विधेयमिति भावः। मुर्मुरादिशान्तज्वलाग्निव्यवच्छेदार्थमाह-'जलियं' इति, अङ्गारोल्कादिव्यावृत्त्यर्थम् अग्नेर्वर्द्धिष्यमाणत्वद्योतनार्थं चाह-'धूमकेउं' इति, । तीव्रतमत्वबोधनार्थं 'दुरासयं इति। अग्निपर्यायो ज्योतिः शब्दः पुंल्लिङ्गः। 'जलिय' मित्यादिविशेषणत्रयेण 'यत्राग्नौ प्रवेशे सद्यो भस्मसाद् भवति तादृशेऽप्यगन्धनजाः सर्पाः प्रविशन्ति किन्तु परित्यक्तविषमापातु नैव वाञ्छन्ति, एवं सत्पुरुषा अपि परित्यक्तान् विषयान् मरणान्तेऽपि न पुनः सेवितुमिच्छन्तीति बोध्यते, इति गाथार्थः ॥६॥

है जो मन्त्रादिके बलसे विवश होकर भी काटे हुए स्थानसे उगले विषको फिरसे चूस लेते है। अगन्धन इनसे विपरीत होते है। उस अगन्धन कुलमें उत्पन्न हुए साँप अगन्धन सर्प कहलाते है। वे सर्प असह्य और जलती अग्निमें प्रवेश कर जाते है, किन्तु त्यागे हुए विषको फिर कभी नहीं चूसते।

हे शिष्य! जब तिर्यञ्च सर्प भी उगले हुएको निगलना नहीं चाहते तब तू तो प्रवचनमें प्रवीण है अत एव निःसार समझ कर त्यागे हुए विषयोका सेवन तुझे तो भूलकर भी नहीं करना चाहिए।

अग्निके 'ज्वलित' आदि तीन विशेषण दिये है, उनका अभिप्राय यह है कि-जिस अग्निमें प्रवेश करतेही तत्काल भस्म हो जावे उस प्रकारकी अग्निमें भी अगन्धन कुलके सर्प प्रवेश कर-जाते है पर त्यागे हुए विषको कभी ग्रहण नहीं करते। इसी प्रकार कुलीन पुरुषभी त्यागे हुए

કે જે મંત્રાદિના બળથી વિવશ થઈને ડખેલા સ્થાનમા નાખેલું ઝેર તેમાથી પાછું ચૂસી લે છે પણ અગંધન સર્પ તેથી વિપરીત પ્રકારનો હોય છે. એ અગંધન કુળમાં ઉત્પન્ન થએલો સાપ અગંધન સર્પ કહેવાય છે. એ સર્પ અસહ્ય અને બળતી આગમાં પ્રવેશ કરે છે પરન્તુ એકવાર વમનકરેલા ઝેરને પાછું ચૂસી લેતો નથી,

હે શિષ્ય! જ્યારે તિર્યંચ સર્પ પણ મૂકેલા ઝેરને પાછું ગળી જવા ઈચ્છતો નથી તો તું તો પ્રવચનમા પ્રવીણ છે એટલે નિઃસાર સમજીને ત્યજેલા વિષયોનું સેવન તારે તો ભૂલે ચૂકયે પણ ન કરવું જોઈએ.

અગ્નિના 'ज्वलित' આદિ ત્રણ વિશેષણો આપેલા છે, તેનો હેતુ એ છે કે-જે અગ્નિમાં પ્રવેશ કરતાં જ તત્કાળ ભસ્મ થઇ જવાય એ પ્રકારના અગ્નિમાં પણ અગંધન કુળનો સર્પ પ્રવેશ કરે છે, પરન્તુ ત્યજેલા વિષને ગ્રહણ કરતો નથી. એ પ્રમાણે કુલીન પુરૂષો પણ

अरिष्टनेमौ भगवति प्रव्रजिते तत्कनिष्ठभ्राता रथनेमी राजीमतीं चकमे सा तु कामवासनाविरक्ता कदाचन सुवासितसरसपायसं भुक्त्वा करिमश्चित्कटोरके समुद्वम्य 'भुज्यताम्' -मित्युक्त्वा रथनेमये दत्तवती, रथनेमिना च 'कथमिदं वान्तं क्षत्रियवंशावतंसेन मया भोक्ष्यते' इत्युक्ता सा प्रोवाच-'तर्हि कथमरिष्टनेमिना त्वद्भ्राता समुज्झिततया वान्ततुल्यां मामभिलष्यसि ? न च त्रपसे' इति, ततश्च तद्वचनश्रवणसञ्जातवैराग्योऽसौ प्राव्राजीत्

अथैकदा गृहीतप्रव्रज्या सा राजीमती साध्वीभिः परिवृता रैवतकपर्वतसमवसृतं भगवन्त-

विषयोको प्राणसकटमेंभी कभी ग्रहण नहीं करते। अर्थात् वे दुष्कर्म करके क्षणभर भी जीना नहीं चाहते ॥६॥

जब बाइसवे तीर्थकर भगवान् श्रीअरिष्टनेमि प्रभुने दीक्षा ग्रहण कर ली तब उनके छोटे भाई रथनेमिने राजीमतीकी इच्छा की, किन्तु सतीशिरोमणि राजीमती, कामकी वासनासे विरक्त हो चुकी थी। उसने एक रोज सुगन्धित तथा स्वादिष्ट खीर खाई और एक कटोरेमें वमन करके वह रथनेमिको देने लगी और बोली-लीजिये खीर खाइए। रथनेमि यह सुनकर आगववूले (क्रुद्ध) हो गये और बोले—'मैं क्षत्रियोके वंशका भूषण होकर वमन की हुई खीर कैसे खाउंगा ?' राजीमतीजी कहने लगी—'अहो श्रेष्ठक्षत्रिय ! तुम वमन की हुई खीर नहीं खाते तो, अपने बड़े-भाई श्रीअरिष्टनेमिद्वारा वमन की हुई यानी त्यागी हुई मुझको क्यो चाहते हो ? मेरी इच्छा करते तुम्हे लज्जा नहीं आती ? सती राजीमतीकी हृदयमें चुभनेवाली बात सुनतेही रथनेमिको ससारसे विरक्ति होगई। उन्होने दीक्षा लेलि। कुछ दिनोके बाद राजीमतीने भी दीक्षा लेली।

कोई एक समय महासतीश्रीराजीमती, बहुतसी साध्वियोके परिवारसे परिवृत होकर रैवतक पर्वतपर पधारे हुए भगवान् श्रीअरिष्टनेमिप्रभुको वन्दना करने गई तब मार्गमें अचानक ही पानीकी मूसलधार

ત્યજેલા વિષયોને પ્રાણસંકટમાં પણ ગ્રહણ કરતા નથી અર્થાત્ તેઓ દુષ્કર્મ કરીને ક્ષણ ભર પણ જીવવા ઈચ્છતા નથી (૬)

જ્યારે બાવીસમા તીર્થંકર ભગવાન્ શ્રીઅરિષ્ટનેમિપ્રભુએ દીક્ષા ગ્રહણ કરી, ત્યારે તેમના નાના ભાઈ રથનેમિએ રાજીમતીની ઈચ્છા કરી, પરન્તુ સતીશિરોમણિ રાજીમતી કામની વાસનાથી વિરક્ત થઈ ચૂકી હતી. તેણે એક દિવસ સુગંધિત અને સ્વાદિષ્ટ ખીર ખાધી અને એક વાડકામાં તેનું વમન કરીને તે રથનેમિને આપવા લાગી અને બોલીઃ "લ્યો ખીર ખાઓ !" રથનેમિ એ સાંભળીને ક્રોધાવિષ્ટ થઈ ગયો અને બોલ્યો 'હું ક્ષત્રિયોના વંશનું ભૂષણ થઈને વમેલી ખીર કેમ ખાઇશ ?' રાજીમતી કહેવા લાગી 'અહો શ્રેષ્ઠ-ક્ષત્રિય ! તમે વમેલી ખીર નથી ખાતા, તો તમારા મોટાભાઈ શ્રી અરિષ્ટનેમિએ વમેલી એટલે ત્યજેલી એવી મને કેમ ચાહો છો ? મારા માટેની ઈચ્છા કરતા તમને શરમ નથી આવતી ?' હૃદયને દુખે એવી સતી રાજીમતીની વાત સાંભળતા જ રથનેમિને સંસારથી વિરક્તિ આવી ગઈ એમણે દીક્ષા લીધી કેટલાક દિવસ પછી રાજીમતીએ પણ દીક્ષા લીધી

કોઈ એક સમયે મહાસતિશ્રી રાજીમતી અનેક સાધ્વીઓના પરિવારથી વિંટાઇને રૈવતક પર્વત પર પધારેલા ભગવાન્ શ્રીઅરિષ્ટનેમિપ્રભુને વંદના કરવા ગઈ, ત્યારે માર્ગમાં અચાનક

मरिष्टनेमिं वन्दितुं व्रजन्ती मध्येमार्गं जलधरवृष्टबहलजलमुशलधारयाऽऽर्द्रगात्रैकाकिनी काकतालीयन्यायेन तदेव गिरिकन्दरमाससाद, यत्रासौ प्रव्रजितो रथनेमिरपि ततः पूर्वं गत्वा स्थित आसीत्, तमनवलोक्यैव 'विविक्तोऽयं प्रदेशः' इति विचार्याऽऽर्द्रवस्त्राणि प्रसारयामास। तदानीं तां यथाजातां (नग्नां) विलोक्य भग्नाऽभ्यन्तरङ्गोऽनङ्गोपहतचित्तवृत्तिर्निवृत्तिपथविच्युतो रथनेमिः पुना रथनेमिवद्भ्रान्तभावः समपद्यत। तं भूयो जातकाममालोक्य प्रकामकमनीयाकृतिरसौ राजीमती पुनर्यदुक्तवती तदेवं तिसृभिर्गाथाभिः सूत्रकारोब्रूते–'धिरत्थु०' इत्यादि ।

३ २ १ ४ ५ ६

मूलम्–धिरत्थु ते जसोकामी, जो तं जीवियकारणा ।

७ ९ ८ १२ १० ११ १३

वंतं इच्छसि आवेउं, सेयं ते मरणं भवे ॥७॥

छाया—धिगस्तु त्वां (ते) यशःकामिन्, यस्त्वं जीवितकारणात् ।

वान्तमिच्छस्यापातुं, श्रेयस्ते मरणं भवेत् ॥७॥

रथनेमिके प्रति राजीमती कहती है—

सान्वयार्थः–जसोकामी=हे यशके अभिलाषी ते=तुझे धिरत्थु=धिकार हो, जो=जो तं=तूं जीवियकारणा=असंयमजीवन सुखके लिए वंतं=वमन किये–त्यागे हुएको आवेउं=पीना इच्छसि=चाहता है, (इससे तो) ते=तेरा मरणं=मरजाना सेयं=अच्छा भवे=है। अर्थात्–संयम धारण करके फिर असंयममें आना अत्यन्त निन्दनीय है, और उस असंयम

वर्षा होने लगी, सारा शरीर और वस्त्र, पानीसे भिगगया। सयोगसे राजीमतीने भी उसी गुफामें प्रवेश किया जिसमें रथनेमि पहलेसे ही ठहरे हुए थे। जिस स्थानपर रथनेमि बैठे थे उधर दृष्टि न पडनेके कारण वे दृष्टिगोचर न हुए। राजीमतीने एकान्त स्थान समझ कर भीगे कपडे फैला दिये। राजीमतीको कपडेरहित देख कर रथनेमिका चित्त चलित होगया। उनके मन पर काम-विकारने आक्रमण कर लिया। वे सयम मार्गसे च्युत होगये। रथकी-नेमि (पहिये) की भाँति उनका चित्त घूमने लगा। रथनेमिको इस प्रकार कामातुर देखकर रतिसी रमणीय राजीमतीने जो कुछ कहा उसे सूत्रकार तीन गाथाओंसे कहते है– 'धिरत्थु०' इत्यादि।

મૂસળધાર વરસાદ વરસવા લાગ્યો. તેનુ આખું શરીર અને વસ્ત્રો પાણીથી પલળી ગયા. સંયોગવશ રાજીમતીએ એજ ગુફામાં પ્રવેશ કર્યો કે જે ગુફામા રથનેમિ પહેલેથી આવીને રહ્યા હતા જે સ્થાન પર રથનેમિ બેઠા હતા તે સ્થળપર દૃષ્ટિ ન પડવાને લીધે તે રાજીમતીને દૃષ્ટિગોચર ન થયા. તેથી તે એકાન્ત પ્રદેશ જાણીને પોતાના ભીંજાયેલા લૂગડા ફેલાવી દીધા ત્યારે તે રાજીમતીને વસ્ત્રરહિત જોઇને રથનેમિનું ચિત્ત ચલિત થઇ ગયુ એમના મન પર કામવિકારે આક્રમણ કર્યું તે સંયમમાર્ગથી ભ્રષ્ટ થઇ ગયા રથની નેમિ (પૈડું) ની પેઠે તેમનુ ચિત્ત ભમવા લાગ્યુ. રથનેમિને એ પ્રમાણે કામાતુર જોઇને રતિ જેવી રમણીય રાજીમતીએ જે કાંઇ કહ્યુ તે વાત સૂત્રકાર ત્રણ ગાથઓમા કહે છે :—ધિરત્થુ૦ ઇત્યાદિ

की अपेक्षा संयमी अवस्थामें मृत्यु होजाना अच्छा है ॥७॥ देख—

टीका—कामयते=वाञ्छति तच्छीलः कामी, यशसः=संयमस्य कीर्त्तेर्वा कामी यशःकामी, तत्सम्बुद्धौ हे यशःकामिन् !, यद्वा अकारच्छेदाद् हे अयशःकामिन्=हे असंयमापयशोऽर्थिन् ! त्वां धिगस्तु, निन्द्योऽसि त्वमित्यर्थः 'ते' इति द्वितीयार्थे षष्ठी, यद्वा 'ते' इति षष्ठ्यन्तमेव, तत्र 'पौरुष' मित्यस्य शेषः, धिगित्यनेन सम्बन्धः, ते=तव पौरुषं धिगित्यर्थः । यद्वा हे कामिन् ! ते=तव यशः=' अहो धन्योऽयं तीव्रतपःसयमव्रतपरिपालको महान्मे'-त्येवं लोकप्रतीतां कीर्तिम् , अथवा अयशः=मां दृष्ट्वैवं दुष्टचेष्टनरूपं पापं धिगस्त्वित्यर्थः , इति वयम् , यस्त्वं जीवितकारणात्=असंयमजीवितसुखार्थमिति भावः , वान्तं=भगवता परित्यक्तत्वाद्वान्तसदृशीं माम्, यद्वा संयमसेवित्वेन परित्यक्तस्य विषयस्यैवमभिलाषोदयाद्वान्ततुल्यं विषयम् आपातुम्=उपसर्गवशेन धात्वर्थभेदादुपभोक्तुम् इच्छसि=कामयसे, ते=तव मरणं=मृत्युः श्रेयः=प्रशस्यं श्रेष्ठं भवेत्, न पुनरित्थमनाचरणीयाऽऽचरणमिति गाथार्थः ।७।

मूलम्—अहं(१) च(२) भोगरायस्स(४) तं(३) च(६) सि(५) अंधगवण्हिणो ।
मा(९) कुले(७) गंधणा(८) होमो(१०), संजमं(१२) निहुओ(११) चर(१३) ॥८॥

हे यशके अभिलाषी ! तुझे धिक्कार है, जो असयम जीवनके सुखके लिए वमन किए हुएको खाना चहता है, इसप्रकारके जीवनसे मर जाना ही अच्छा है ।

हे यश अर्थात् सयम अथवा कीर्त्तिकी इच्छा करनेवाले ! अथवा हे असयम और अपयशके कामी तुझे धिक्कार है, तू अत्यन्त निन्दाका पात्र है । अथवा हे कामी !. जगतमें तुम्हारी इस प्रकारकी जो कीर्ति फैली हुई है कि "यह रथनेमि मुनि, अत्यन्त उत्कृष्ट सयमका पालन करनेवाला महात्मा है" इसकीर्तिको धिक्कार है, क्योकि तुम असयम रूप जीवितके लिए, भगवान् श्रीअरिष्टनेमि के द्वारा त्यागी हुई मुझको, अथवा सयम पालनके लिए त्यागे हुए विषयोको फिर चाहते हो, तुम्हे मर जाना अच्छा है किन्तु असयमकी वाछा करना अच्छा नहीं है ॥७॥

હે યશના અભિલાષી ! તને ધિક્કાર છે, જે અસયમ જીવનના સુખને માટે વમેલાને ખાવા ઇચ્છે છે, એ પ્રકારના જીવનથી તો મરવું જ વધારે સારૂ છે યશ અર્થાત્ સંયમ અથવા કીર્તિની ઇચ્છા કરનારા !, અથવા હે અસંયમ અને અપયશના કામી ! તને ધિક્કાર છે, તું અત્યંત નિંદાને પાત્ર છે અથવા હે કામી ! જગતમા તારી એ પ્રકારની જે કીર્તિ ફેલાઇ છે કે 'આ રથનેમિ મુનિ અત્યત ઉત્કૃષ્ટ સયમનુ પાલન કરનારા મહાત્મા છે,' એ કીર્તિને ધિક્કાર છે, કેમ કે તમે અસયમરૂપ જીવિતને માટે, ભગવાન્ અરિષ્ટનેમિએ ત્યજેલી એવી મને, અથવા સયમપાલનને માટે ત્યજેલા વિષયોને પાછા ચાહો છો. તમારે મરી જવું જ સારૂં છે, પરન્તુ અસંયમની વાછના કરવી સારી નથી. (૭)

छाया-अहं च भोगराजस्य, त्वं चासि अन्धकवृष्णेः ।
मा कुले गन्धनौ भूव, संयमं निभृतश्चर ॥ ८ ॥

सान्वयार्थः-अहंच=मैं (राजीमती) भोगरायस्स=भोगकुलकी हूँ, च=और तं=तुम अंधगवण्हिणो=अंधकवृष्णिकुलके सि=हो, कुले=ऐसे उच्च कुलमें गंधणा=(दोनों) गन्धन मा=नहीं होमो=होवें। (अतः) निहुओ=निश्चल होकर संजमं=संयमको चर=पालो ।

भावार्थ-राजीमती रथनेमिसे कहती है कि हम दोनों उच्च कुलोंमें उत्पन्न हुए हैं, अतः उगले हुए विषको वापिस पीजानेवाले गन्धन सापोंके समान हमको नीच न होना चाहिए।८।

टीका—'अहं च' इत्यादि । चद्वयं समुच्चयार्थम्, हे रथनेमे ! अहं=राजीमती भोगराजस्य=तन्नाम्ना प्रसिद्धस्य अस्मीतिशेषः, अहं भोगराजस्य पौत्रीति भावः । त्वं च अन्धकवृष्णेः=तन्नाम्ना प्रसिद्धस्य असि, अन्धकवृष्णिपौत्रोऽसीत्यर्थः । ततः किं ? तदाह- कुले=वंशेऽर्थान्निष्कलङ्के गन्धनौ=गन्धनकुलसम्भूतसर्पसदृशौ, 'आवा' मिति गम्यते;मा-भूव=नभवेव, तस्मात् निभृतः=निश्चलो विषयादिभिरक्षोभ्यः सन् संयमम्=अनश्वरसुख-साधनभूतं निरवद्यक्रियाऽनुष्ठान चर=पालय । इति गाथार्थः ॥८॥

मूलम्—जइ[1] तं[2] काहिसि[7] भावं[6] जा[3] जा दिच्छसि[5] नारिओ[4] ।
वायाविद्धु[8] व्व[10] हडो[9], अट्ठिअप्पा[11] भविस्ससि[12] ॥९॥

छाया—यदि त्वं करिष्यसि भावं, या या द्रक्ष्यसि नारीः ।
वाताविद्ध एवं हडो,-ऽस्थितात्मा भविष्यसि ॥ ९ ॥

सान्वयार्थः-जइ=यदि तं=तुम जा जा=जो-जो नारिओ=स्त्रीको दिच्छसि=देखोगे (उन-उनपर) भावं=बुरे विचार काहिसि=करोगे तो वायाविद्धुव्व=हवासे उडाये हुए हडो=हडवनस्पतिकी भांति अट्ठिअप्पा=अस्थिर आत्मावाले-चंचलचित्त भविस्ससि=हो जाओगे ॥ ९ ॥

"अहं च' इत्यादि । हे रथनेमि ! मै (राजीमती) भोगराजको पोती और उग्रसेनकी बेटी हूँ, और तुम अन्धकवृष्णिके पौत्र तथा समुद्रविजयके पुत्र हो, इसलिए दोनोही निर्मल कुलोंमें उत्पन्न हुए है । हमें गन्धन कुलमें उत्पन्न होने वाले सर्पोंके समान नहीं होना चाहिये । अतः विषय आदिको त्याग करके अनन्त सुखके कारणभूत निरतिचार सयमका पालन करो ॥८॥

'जइ तं' इत्यादि । यदि तुम जिस जिस स्त्रीको देखोगे उन सब पर विकारदृष्टि डालोगे

अहं च इत्यादि हे रथनेमि ! हुं (राजीमती) भोगराजनी पौत्री अने उग्रसेननी पुत्री छुं, अने तमे अंधकवृष्णिना पौत्र तथा समुद्रविजयना पुत्र छो, ए रीते आपणे बेउ निर्मळ कुलोमां उत्पन्न थयां छीए आपणे गंधन कुळमा उत्पन्न थएला सर्पोनां जेवां न थवु जोईए. माटे विषय आदिने त्यजीने अनंत सुखना कारणभूत निरतिचार संयमनु पालन करो. (८)

जइ तं० इत्यादि, जो तमे जे जे स्त्रीओने जोशो ते बधी पर विकारदृष्टि नाखशो तो

टीका-'जइ तं०' इत्यादि। त्वं या या नारीः=स्त्रीः द्रक्ष्यसि=अवलोकिष्यसे यत्तदोर्नित्यसम्बन्धात् 'तासु तासु' यदि भावं=कलुपिताध्यवसायतया दुष्टां दृष्टिं करिष्यसि तदा वाताविद्धः=वातेन=वायुना आविद्धः=प्रेरितः हडः=निर्मूलो वनस्पतिविशेष इव, शैवालमिव वा अस्थितात्मा=अस्थितः=अस्थिरः=आत्मा यस्य स तथोक्तो भविष्यसि, जन्म-जरा-मरणजन्य-जगदटवीपर्यटनदुःखपरम्परा-निराकरणकारणेभ्यः संयमगुणेभ्यः प्रस्खल्याऽपारसंसारपारावारे विषयवासनावातविकम्पितचेताः शान्तिं न गमिष्यसीति भावः, इति गाथार्थः ॥ ९ ॥

एवं राजीमत्या प्रतिबोधितो रथनेमिर्धर्मनिष्ठोऽभवदित्याह-'तीसे सो०' इत्यादि।

मूलम्—तीसे[2] सो[1] वयणं[5] सोच्चा[6] संजयाइ[3] सुभासियं[4]।
अंकुसेण[10] जहा[9] नागो[11] धम्मे[7] संपडिवाइओ[8] ॥१०॥

छाया-तस्याः स वचनं श्रुत्वा, संयतायाः सुभाषितम्।
अंकुशेन यथा नागो, धर्मे सम्प्रतिपातितः ॥ १० ॥

सान्वयार्थः-सो=वह (रथनेमि) तीसे=उस संजयाइ=संयमवती (राजीमती) के सुभासियं=सुभाषित वयणं=वचनको सोच्चा=सुनकर धम्मे=धर्ममें संपडिवाइओ=आगया-प्राप्त होगया, जहा-जैसे अंकुसेण=अंकुशसे नागो=हाथी मार्गमें आ जाता है ॥१०॥

टीका-सः=रथनेमिः, संयतायाः=संयमवत्याः तस्याः=राजीमत्याः, सुभाषितमिति वैराग्यसारगर्भितत्वात् वचनं=सदुपदेशं, श्रुत्वा=समाकर्ण्य 'स्थितः' इति शेषः अन्यथा

तो आंधीसे उडाये हुए हड नामकी वनस्पति अथवा सेवालकी तरह अस्थिर हो जाओगे; अर्थात् जन्म मरणसे होनेवाले जगत्‌रूपी अटवीमें भ्रमण करनेके कष्टोंको दूर करनेवाले संयमगुणोंसे च्युत होनेके कारण संसाररूप अपार समुद्रमें विषयवासनारूपी हवासे चंचलचित्त होकर भटकते फिरोगे ॥९॥

राजीमतीजीके द्वारा प्रतिबोध पाकर रथनेमि संयममें स्थिर होगया। इसी विषयको सूत्रकार प्रतिपादन करते है-'तीसे०' इत्यादि।

जैसे अंकुशसे हाथी ठीक मार्ग पर आजाता है वैसे ही रथनेमि संयमवती राजीमतीके वैराग्य-परिपूर्ण वचन (सदुपदेश) सुनकर जिनेन्द्र भगवानके प्रवचन-रूप धर्म-मार्गमें स्थित

આંધીથી ઉડેલો હડ નામની વનસ્પતિ અથવા શેવાલની પેઠે અસ્થિર થઈ જશો. અર્થાત્ જન્મ-મરણથી ઉત્પન્ન થતા જગતરૂપી અટવીમાં ભ્રમણ કરવાના કષ્ટોને દૂર કરનારા સંયમગુણોથી ભ્રષ્ટ થવાને લીધે સંસારરૂપ અપાર સમુદ્રમાં વિષયવાસનારૂપી હવાથી ચંચળ ચિત્તવાળા થઈને ભ્રમણ કરતા ફરશો. (૯)

રાજીમતીથી એવો પ્રતિબોધ પામીને રથનેમિ સંયમમાં સ્થિર થઈ ગયા. એ વિષયનું પ્રતિપાદન સૂત્રકાર કરે છે-તીસે૦ ઇત્યાદિ.

જેમ અંકુશથી હાથી બરાબર માર્ગ પર આવી જાય છે, તેમજ રથનેમિ સંયમવતી રાજીમતીના વૈરાગ્યપૂર્ણ વચન (સદુપદેશ) સાંભળીને જિનેન્દ્ર ભગવાનના પ્રવચનરૂપ ધર્મ-માર્ગમાં સ્થિર બની ગયા અર્થાત્ જેમ મહાવતના અંકુશથી મદોન્મત્ત હાથીનો મદ ચૂર્ણ થઈ

'सम्प्रतिपातितः' इत्यनेन समानकर्तृकत्वाऽभावात्क्त्वाप्रत्ययोत्पत्तिरसङ्गता स्यात्, यद्वा 'सम्प्रतिपातित' इत्यस्य णिजर्थाऽविवक्षया 'सम्प्रतिपन्नः' इत्यर्थः कर्त्तव्यः। अङ्कुशेन=हस्तिचालनार्थ-लौहमयवक्राग्रास्त्रेण नागो यथा=हस्तीव,धर्मे=जिनोक्तप्रवचनरूपे, सम्प्रतिपातितः=संस्थापितः संस्थित इति वा, यथाऽङ्कुशेन प्रशमितमदो मतङ्गजोऽनुकूलं मार्गमवलम्बते तथा राजीमतीवचनेन दूरीकृतमदनमदो रथनेमिरपि जिनोक्तधर्ममार्गमवलम्बितवानिति भावः ॥१०॥

सम्प्रत्युपसंहरन्नाह-'एवं करंति०' इत्यादि।

४ ५ १ २ ३

मूलम्-एवं करंति संबुद्धा, पंडिया पवियक्खणा॥

७ ६ ८ ९ १०

विणियट्टंति भोगेसु, जहा से पुरिसुत्तमो ॥११॥ त्तिबेमि॥

छाया-एवं कुर्वन्ति सम्बुद्धाः, पण्डिताः प्रविचक्षणाः॥

विनिवर्त्तन्ते भोगेभ्यो, यथा स पुरुषोत्तमः ॥ ११ ॥ इति ब्रवीमि॥

सान्वयार्थः-संबुद्धा=सत् असत् के विवेकी पंडिया=विषयदोषोंके ज्ञाता पवियक्खणा=आगमके मर्मज्ञ पुरुष एवं=ऐसा ही करंति=करते हैं, (वे) भोगेसु=भोगोंसे विणियट्टंति=निवृत्त होजाते हैं; जहा=जैसे से=वह पुरिसुत्तमो=पुरुषोंमे श्रेष्ठ (रथनेमि विषयोंसे निवृत्त हो गया) त्तिबेमि=(पूर्ववत्) भावार्थ-जो विवेकी होते हैं वे विषयोंके दोषोंको जानकर उनका परित्याग कर देते है, जैसे रथनेमिने परित्याग कर दिया था॥ ११ ॥

॥ इति द्वितीयाध्ययनस्य सान्वयार्थः॥ २ ॥

टीका-सम्=सम्यग् बुद्धाः=बोधं प्राप्ताः हेयोपादेयज्ञानसम्पन्ना इत्यर्थः, सम्बुद्धत्वमेव विशेषयति-पण्डिताः प्रविचक्षणाः' इति विशेषणाभ्याम्। तत्र पण्डिताः=विषयप्रवृ-

---

हो गये, अर्थात् जैसे महावतके अंकुशसे मदोन्मत्त हाथीका मद चकनाचूर हो जाता है और वह सन्मर्ग पर आजाता है, उसी प्रकार राजोमती-रूपी महावतके वचन-रूपी अंकुशसे रथनेमि-रूपी हाथोका विषयवासना-रूपी मद दूर होगया और वे जिनोक्त धर्ममार्गमें प्रवृत्त होगये ॥१०॥

उपसंहार—एवं 'करंति०' इत्यादि।

हेय और उपादेय वस्तुओंको सम्यक् प्रकार समझनेवाले संबुद्ध, विषयोंमें प्रवृत्तिके दोषोंके ज्ञाता, आगमके रहस्यको जाननेवाले अथवा चारित्रके फलको प्राप्त करनेवाले प्रविचक्षण

જાય છે, અને તે રાહ પર આવી જાય છે, તેમ રાજીમતીરૂપી મહાવતના વચનરૂપી અંકુશથી રથનેમિરૂપી હાથીનો વિષયવાસનારૂપી મદ દૂર થઈ ગયો અને તે જિનોક્ત ધર્મમાર્ગમાં પ્રવૃત્ત થઈ ગયા. (૧૦)

ઉપસંહાર-एवं करंति० ઇત્યાદિ.

હેય અને ઉપાદેય વસ્તુઓને સમ્યક્ પ્રકારે સમજનારા સંબુદ્ધ, વિષયોમાં પ્રવૃત્તિના દોષોના જ્ઞાતા, આગમના રહસ્યને જાણનારા અથવા ચારિત્રના ફળને પ્રાપ્ત કરનારા પ્રવિ

त्तिदोषज्ञाः, प्रविचक्षणाः=विचक्षणश्रेष्ठाः आगममर्मवेदिनः प्राप्तचरणपरिणामा वेत्यर्थः,एवं =तथा कुर्वन्ति समाचरन्ति । किं समाचरन्तीत्याह–विणियट्टंति भोगेसु' इति, भोगेभ्यः =विषयेभ्यः विनिवर्त्तन्ते=उपरता भवन्ति, यथा सः =रथनेमिः, पुरुषोत्तमः पुरुषेषु श्रेष्ठः ।

ननु कथमसौ पुरुषोत्तमो यो गृहीतसंयमो भ्रातृजायामचीकमत ? उच्यते–विचित्रा खलु कर्मणां गतिः, गृहीतसंयमस्यापि रथनेमेश्चेतसि विषयवासना मोहनीयकर्मोदयवशादुद्बुद्धा, परन्तु वैराग्यवारिधाराधरेण राजीमतीवचनेन यदा विषयवलयदावानलजनिततापकवलितो म्लानतामापन्नो रथनेमिचेतस्तरुः सेचितस्तदैव पुनरसौ सयमामृतरसास्वादनपरो विषवद्विषयविविधदोषाकलनेन शान्तिमुपगतः परमदुश्चरतपः सेवनपरायणो झटिति विषयोपरतत्वेन च पुरुषोत्तमत्वं तस्य निर्बाधमेवेत्यल पल्लवितेन ।

मुनिजन ऐसे ही करते है, अर्थात् भोगोसे निवृत्त होते है जैसे कि–पुरुषोमे उत्तम रथनेमिने भोगोकी निवृत्ति की ।

प्रश्न–जिन्होंने संयम लेकर भी विषयवासनामें लीन होकर परम अनुचित जो कि गृहस्थभी नहीं करता ऐसी साक्षात् अपने-भाईकी भार्यापर जो कुदृष्टि करके भोगोकी प्रार्थना की, विषयभोगोकी इच्छामात्र भी करना चारित्रको मलिन करनेवाला और आत्माको दुर्गतिदाता है तो फिर भगवानने विषयानुरागी रथनेमिको पुरुषोमें उत्तम कैसे कहा ?

उत्तर–कर्मोंकी गति विचित्र होती है, मोहकर्मके उदयसे यद्यपि विषयभोगकी अभिलाषा हुई तो भी विषयरूपी दावानलसे उत्पन्न संतापसे सतप्त हो मुरझाया हुआ रथनेमिका चित्त-रूपी वृक्ष वैराग्यरसकी बरसा करनेवाले राजीमतीजीके वचनरूपी मेघसे सींचे जाने पर शीघ्रही सयमरूप अमृतरसके आस्वादनमें तत्पर होगया । 'विषय परम कटुक फल देनेवाले और आत्माको चतुर्गतिमें परिभ्रमण करानेवाला है' इस प्रकारकी परम वैराग्यभावना द्वारा,

---

ચક્ષણ મુનિજનો એમ જ કરે છે, અર્થાત્ ભોગોથી નિવૃત્ત થાય છે, કે જેવી રીતે પુરૂષોમા ઉત્તમ રથનેમિએ ભોગોની નિવૃત્તિ કરી

પ્રશ્ન—જેમણે સયમ લઇને પણ વિષયવાસનામા લીન થઇને પરમ અનુચિત-કોઇ ગૃહસ્થ પણ ન કરે એવી, સાક્ષાત્ પોતાના ભાઇની ભાર્યા પર કુદૃષ્ટિ કરીને ભોગની પ્રાર્થના કરી, વિષયભોગોની ઇચ્છા-માત્ર પણ ચારિત્રને મલિન કરનારી અને આત્માને દુર્ગતિ દેનારી છે, તો પછી ભગવાને તેવા વિષયાનુરાગી રથનેમિને પુરૂષોમા ઉત્તમ કેવી રીતે કહ્યો ?

ઉત્તર—કર્મોની ગતિ વિચિત્ર હોય છે મોહકર્મના ઉદયથી જો કે વિષયભોગની અભિલાષા ઉત્પન્ન થઇ, તોપણ વિષયરૂપી દાવાનળથી ઉત્પન્ન થએલા સતાપથી સતપ્ત થઇને બેભાન બનેલા રથનેમિનું ચિત્તરૂપી વૃક્ષ, વૈરાગ્ય રસની વૃષ્ટિ કરનારા રાજીમતીનાં વચનરૂપી મેઘથી સિંચિત થયા પછી, તુરતજ સયમરૂપી અમૃતરસનુ આસ્વાદન કરવામાં તત્પર બની ગયુ. 'વિષયો અત્યંત કડવાં ફળ દેનારા અને આત્માને ચતુર્ગતિમા પરિભ્રમણ કરાવનારા છે' એ પ્રકારની પરમ વૈરાગ્યભાવના દ્વારા એકાન્ત સ્થાનમાં વિષયનું સાન્નિધ્ય હોવા છતાં પણ

न चाधुनिकरथनेमेरुदाहणोपलम्भादिद दशवैकालिकसूत्रमनित्यं स्यादिति वाच्यम्, पर्यायार्थिकनयमपेक्ष्याऽनित्यत्वेऽपि द्रव्यार्थिकनयापेक्षया नित्यत्वात् ।

'इति ब्रवीम' इति पूर्ववत् ॥ इति गाथार्थः ॥ ११ ॥

इति श्री-विश्वविख्यात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषा-कलित-ललित-कलापाऽऽलापक-प्रविशुद्ध-गद्य-पद्य नैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-श्रीशाहूछत्रपति-कोल्हापुरराजप्रदत्त-जैनशास्त्राचार्य-पद-भूषित-कोल्हापुरराजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्य-श्रीघासीलालव्रतिविरचितायां श्रीदशवैकालिकसूत्र-स्याऽऽचारमणिमञ्जूषाख्यायां व्याख्यायां द्वितीयं श्रामण्यपूर्वकाख्यमध्ययनं समाप्तम् ॥ २ ॥

—*—

एकान्त स्थानमें विषयका सान्निध्य रहनेपर भी इन्द्रिय निग्रह करके विषयोको विषतुल्य समझ कर तत्काल त्याग दिया और उग्र तप-सयमेको पालन किया, इसलिये भगवानने उन्हें पुरुषोंमें उत्तम कहा है ॥

प्रश्न—हे गुरो ! प्रवचन अनादि और नित्य है, क्योकि आचारांग आदि बत्तीसो शास्त्र अनादिकालसे चले आते है, और यह दशवैकालिक सूत्र भी उन्हीं बत्तीसोमें है तो आधुनिक रथनेमि और राजीमतीका उदाहरण आनेसे तो यह सादि और अनित्य सिद्ध होता है ।

उत्तर—हे शिष्य ! पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे प्रत्येक पदार्थ अनित्य है इसी नयकी अपेक्षा दशवैकालिक भी अनित्य है, किन्तु द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे वह नित्य है । अर्थात् दशवैकालिकमें प्ररूपित मुनिका आचार सर्वज्ञोक्त है । सब सर्वज्ञोका कथन एकहीसा होता है । जिस आचारका प्ररूपण चरम तीर्थंकर श्रीमहावीरस्वामीने किया है उसीकी प्ररूपणा

ઇન્દ્રિયનિગ્રહ કરીને વિષયોને વિષતુલ્ય સમજીને તત્કાળ ત્યજી દીધા અને ઉગ્ર તપ સંયમનું પાલન કર્યું, તેથી ભગવાને તેમને પુરૂષોમાં ઉત્તમ કહ્યા છે.

પ્રશ્ન—હે ગુરો ! પ્રવચન અનાદિ અને નિત્ય છે કારણ કે આચારાંગ આદિ બત્રીસે શાસ્ત્ર અનાદિકાળથી ચાલ્યા આવે છે, અને આ દશવૈકાલિક સૂત્ર પણ એ બત્રીસમાંનું જ છે, તો આધુનિકરથનેમિ અને રાજીમતીનું ઉદાહરણ આવવાથી તો એ સૂત્ર સાદિ અને અનિત્ય સિદ્ધ થાય છે.

ઉત્તર—હે ! શિષ્ય પર્યાયાર્થિક નયની અપેક્ષાથી પ્રત્યેક પદાર્થ અનિત્ય છે. એ નયની અપેક્ષાએ દશવૈકાલિક પણ અનિત્ય છે પરન્તુ દ્રવ્યાર્થિક નયની અપેક્ષાથી તે નિત્ય છે. અર્થાત્ દશવૈકાલિકમાં પ્રરૂપેલો મુનિનો આચાર સર્વજ્ઞોક્ત છે. બધા સર્વજ્ઞોનું કથન એકસરખું જ હોય છે. જે આચારનું પ્રરૂપણ ચરમ તીર્થંકર શ્રી મહાવીર સ્વામીએ કર્યું છે તેની જ

अनादिकालसे सब सर्वज्ञ करते आये हे अत एव द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे यह दश-वैकालिक अनादि और नित्य है ।११।

इति हिन्दिभाषानुवादमें श्रामण्यपूर्वकाख्य

द्वितीय अध्ययन समाप्त हुआ ॥२॥

--+—

પ્રરૂપણા અનાદિ કાળથી બધા સર્વજ્ઞો કરતા આવ્યા છે. એટલે દ્રવ્યાર્થિક નયની અપેક્ષાથી આ દશવૈકાલિક અનાદિ અને નિત્ય છે (૧૧)

ઇતિ 'શ્રામણ્યપૂર્વક' નામના બીજા અધ્યયનનો

ગુજરાતી-ભાષાનુવાદ સમાપ્ત (૨)

—: ० :—

॥ अथ तृतीयमध्ययनम् ॥

द्वितीयेऽध्ययने 'साधुना धृतिः सन्धारणीया' इत्युक्तं, सा चाऽऽचारे न त्वनाचारे इति, तस्मादस्मिन् क्षुल्लकाचारकथा'ऽऽख्ये तृतीयेऽध्ययनेऽनाचारस्वरूपनिरूपणपुरस्सरं साधूनामाचारः प्रदर्श्यते, तत्रेदमादिमं सूत्रम्—'संजमे०' इत्यादि ।

१ २ ३ ४

मूलम्—संजमे सुट्ठिअप्पाणं विप्पमुक्काण ताइणं ।

५ ८ ९ ६ ७

तेसि-मेयमणाइन्नं निगंथाण महेसिणं ॥१॥

छाया—संयमे सुस्थितात्मनां, विप्रमुक्तानां त्रायिणाम् ।
तेषामेतदनाचीर्णं निर्ग्रन्थानां महर्षीणाम् ॥ १ ॥

सान्वयार्थः—संजमे = संयममें सुट्ठिअप्पाण = भलीभांति स्थिर आत्मावाले विप्पमुक्काण = शरीर आदिकी ममतासे रहित ताइणं = षट्कायजीवोंके रक्षक तेसिं = उन निग्गंथाण = परिग्रहरहित महेसिणं = महर्षियोंके एयं = यह आगे कहे-जानेवाले बावन अणाइन्नं = अनाचीर्ण हैं । अर्थात् महर्षियोने इनका आचरण नहीं किया है अतः ये अनाचीर्ण-आचरण करने योग्य नहीं हैं ॥ १ ॥

टीका—संयमे=पञ्चास्रवविरमणे-न्द्रियपञ्चकनिग्रह—कषायचतुष्टयजय—दण्डत्रयविरतिलक्षणे, सुस्थितात्मनाम्=निश्चलात्मनाम् , तेषां=सुप्रसिद्धानां प्रसिद्धार्थकोऽत्र तच्छब्दः,

---

तीसरा अध्ययन

दूसरे अध्ययनमें यह निरूपण किया गया है कि साधुको धीरता (दृढ़ता) धारण करना चाहिये, वह धीरता आचारमें होनी चाहिये अनाचारमें नहीं, इसलिए 'क्षुल्लकाचारकथा' नामक इस तीसरे अध्ययनमें अनाचारके निरूपणपूर्वक मुनिओके आचारका निरूपण किया जाता है—'सजमे सुट्ठि०' इत्यादि ।

सयममें भलीभाँति स्थित, ससारसे मुक्त, स्व-पर-उभयका त्राण (रक्षण) करनेवाले अर्थात् प्रत्येकबुद्ध—स्व-अपनी आत्माके त्राता, तीर्थंकर—परके त्राता और स्थविर—उभय

અધ્યયન ત્રીજું

બીજા અધ્યયનમાં એ નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું હતું કે-સાધુએ ધીરતા (દૃઢતા) ધારણ કરવી જોઈએ, એ ધીરતા આચારમાં હોવી જોઈએ અનાચારમા નહિ, તેથી 'ક્ષુલ્લકાચારકથા' નામક આ ત્રીજા અધ્યયનમા અનાચારના નિરૂપણપૂર્વક મુનિઓના આચારનું નિરૂપણ કરવામાં આવે છે-સંજમે સુટ્ઠિ૦ ઇત્યાદિ.

સંયમમાં સારી રીતે સ્થિત, સંસારથી મુક્ત, સ્વ પર ઉભયનું ત્રાણ (રક્ષણ) કરનાર અર્થાત્ પ્રત્યેકબુદ્ધ-સ્વ પોતાના આત્માના ત્રાતા, તીર્થંકર -પરના ત્રાતા, અને સ્થવિર-

विप्रमुक्तानां=विशिष्टरूपया परमार्थभावनया प्रकर्षेण शरीरादिममत्वतो मुक्ताः, यद्वा 'इमे विषयकषाया अनन्तभवभ्रमणदुःखसंसारपादपसेचकाः, एतेषां जननीजनकबान्धवादीनां ममत्वं भवबन्धननिबन्धनम्, एतं पृथिव्यादिषड्जीवनिकायमनन्तवारान् ममात्मा सम्प्रविष्य नानादुःखमन्वभूत्, वस्तुतो नास्ति मम कोऽप्यात्मीय इति, रागादयश्च जीवमृगवागुरायमाणत्वान्महाशत्रव इत्यहो ! शत्रुहस्तगतोऽहं स्वकीयाऽभ्युदयनिःश्रेयससाधनाक्षमः संजातोऽस्मि, धिङ् माम् । उक्तश्च—

"इह हि मधुरगीतं नृत्यमेतद्रसोऽयं,
स्फुरति परिमलोऽयं स्पर्श एषोऽङ्गनानाम् ।
इति हतपरमार्थै-रिन्द्रियैर्भ्राम्यमाणः,
स्वहितकरणधूर्त्तैः पञ्चभिर्वञ्चितोऽस्मि ॥१॥" इति,'

(स्व-पर) के त्राता होते है इसलिए ये सब त्रायी कहलाते है, इन निर्ग्रन्थ महर्षियोको ये (आगे बताये जानेवाले ५२ अनाचार) आचरण करने योग्य नहीं हैं ।

पांच आस्रवोसे विरमण, पाँचो इन्द्रियोका निग्रह, क्रोधादि चार कषायोको जीतने, तीन दण्डोका त्याग करनेरूप सयममें दृढ आत्मा वाले, प्रसिद्ध, विशेष प्रकारकी परमार्थ भावना भाकर शरीर आदिकी ममतासे मुक्त, अथवा ये विषय-कषाय भवभ्रमणके दुःखरूपी वृक्षको सींचने वाले है, माता-पिता भाई-बन्द कुटुम्ब परिवार, इन सबकी ममता ससार-बंधनका कारण है, पृथ्वीकाय आदि छह जीवनिकायोमें मेरो आत्मा अनन्तवार उत्पन्न होकर नाना प्रकारकी पीडाओंका अनुभव कर चुकी है, वास्तवमें ससारमें कोई भी मेरा नहीं है । यह रागादि दोष, जीवरूपी हरिणके लिए व्याधके समान होनेके कारण महान् शत्रु है । खेद है कि मै उन वैरियोके वशमें पडकर अपने परम अभ्युदय-स्वरूप मोक्षके साधनमें भी असमर्थ होगया हूँ मुझे धिक्कार है । कहा भी है—

"कैसा कर्णमधुर गीत है, कैसा नेत्रोंको लुभानेवाला नृत्य है, कैसा जिह्वाका प्रिय स्वाद

ઉભય-(સ્વ-પર) ના ત્રાતા હોય છે, તેથી એ સર્વ ત્રાયી કહેવાય છે એ નિર્ગ્રન્થ મહર્ષિઓને એ (આગળ બતાવવામા આવનારા બાવન અનાચાર) આચરવા યોગ્ય નથી

પાચ આસ્રવોથી વિરમણ, પાચે ઈન્દ્રિયોનો નિગ્રહ, ક્રોધાદિ ચાર કષાયોને જીતવા, ત્રણ દંડોનો ત્યાગ કરવારૂપ સંયમમા દૃઢ આત્માવાળા, પ્રસિદ્ધ,વિશેષ પ્રકારની પરમાર્થ ભાવના ભાવીને શરીર આદિની મમતાથી મુક્ત, અથવા એ વિષય-કષાય ભવ-ભ્રમણના દુ ખરૂપી વૃક્ષને સીંચનારા છે, માતા-પિતા ભાઈ-બંધ કુટુમ્બ પરિવાર એ સર્વની મમતા સંસારબંધનનુ કારણ છે, પૃથ્વીકાય આદિ છ જીવનિકાયમા મારો આત્મા અન તવાર ઉત્પન્ન થઈને નાના પ્રકારની પીડા ઓનો અનુભવ કરી ચૂકયો છે વાસ્તવમા કોઈપણ મારૂ નથી, આ રાગાદિ દોષ જીવરૂપી હરણને માટે વ્યાધ (પારધી) ની સમાન હોવાને કારણે મહાન શત્રુ છે, ખેદની વાત છે કે હું એ વેરીઓને વશ પડીને પોતાના પરમ અભ્યુદય સ્વરૂપ

एवंविधविविधभावनाभिः सर्वथा रागादितो मुक्ताः पिप्रमुक्तास्तेषाम् , त्रायिणाम्= त्राणं=स्वस्य परस्योभयस्य च रक्षणं त्रायः, सोऽस्त्येषामिति त्रायिणः,[1] प्रत्येकबुद्धाः स्वस्य, तीर्थङ्कराः परस्य, स्थविरा उभयस्येतीमे सर्वे त्रायिण उच्यन्ते । निर्ग्रन्थानां=बाह्याऽऽभ्यन्तरपरिग्रहरूपाद् ग्रन्थान्निर्गताः निर्ग्रन्थास्तेषाम् । महर्षीणाम्=महान्तश्च ऋषय इति महर्षयस्तेषाम् , यद्वा 'महर्षिणाम्' इतिच्छाया, महः=जन्मजरामरणदुःखरहितत्वेनैकान्तोत्सवरूपो मोक्षस्तम् ऋषन्ति=गत्यर्थधातूनां प्राप्त्यर्थत्वात् प्राप्नुवन्तीत्येवंशीला महर्षिणस्तीर्थङ्करगणधरादयस्तेषाम् , एतत्=द्वापञ्चाशता भेदैर्वक्ष्यमाणम् , अनाचीर्णम्=अनासेवितम् , अस्तीति शेषः । अत्र महर्षिणामित्यन्तेषु कर्तुः शेषत्वविपया षष्ठी । यतः संयमे सुस्थितात्मानोऽत एव विप्रमुक्ताः, यतो विप्रमुक्ता अतस्त्रायिणः, यतस्त्रायिणोऽतो निर्ग्रन्थाः,

---

है, कैसा नासिकाको आकर्षित करनेवाला सुगन्ध है और स्त्री आदिका स्पर्श कैसा सुखकारी है। इस प्रकार अनुभव कराकर परमार्थका सत्यानाश करनेवाली अपना स्वार्थ साधनेमें धूर्त इन दगाबाज पांचो इन्द्रियोने हाय! मेरी आत्मिक-सम्पत्तिसे मुझे वचित कर दिया—मुझको लूट लिया ॥१॥"

इस प्रकारकी भावनाओ द्वारा राग आदि शत्रुओसे सर्वथा मुक्त होनेवाले, ससारभ्रमणसे भयभीत भव्य जीवोंकी तथा आत्माकी रक्षा करनेवाले, बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहरूपी ग्रन्थिसे रहित, महान् ऋषि-तीर्थंकर आदि या जन्म-जरा-मरणके दुःखोसे रहित होनेके कारण एकान्त आनन्दस्वरूप मोक्षको प्राप्त करनेवाले मुनियोके, आगे कहेजाने वाले बावन अनाचार (अनाचीर्ण) है। अर्थात् ये बावन अनाचार मुनियोके सेवने योग्य नहीं है। यहाँ षष्ठी विभक्तिवाले अनेक विशेषण दिये गये है, उन सबमें पहलेर के विशेष कारण है और आगे आगे के कार्य है जैसे—सयममें भली भाँति स्थित होनेके कारण विप्रमुक्त है, विप्रमुक्त होनेसे स्व-पर के त्राता (रक्षक)है,

---

મોક્ષના સાધનમા પણ અસમર્થ બની ગયો છુ. મને ધિક્કાર છે કહ્યુ છે કે—

"કેવું કર્ણમધુર ગીત છે, કેવું નેત્રોને લોભાવનારૂં નૃત્ય છે, કેવો જિહ્વાને પ્રિય સ્વાદ છે, કેવી નાકને આકર્ષિત કરનાર સુગંધ છે, અને સ્ત્રી આદિનો સ્પર્શ કેવો સુખકારી છે, એ પ્રમાણે અનુભવ કરાવીને પરમાર્થનું સત્યાનાશ વાળનારી પોતાનો સ્વાર્થ સાધવામાં ધૂર્ત એ દગાબાજ પાંચે ઇંદ્રિયોએ, હાય! મને મારી આત્મિક-સંપત્તિથી વંચિત કરી નાંખ્યો -મને લુટી લીધો." (૧)

એ પ્રકારની ભાવનાઓ દ્વારા રાગાદિ શત્રુઓથી સર્વથા મુક્ત થનારા, સંસાર ભ્રમણથી ભયભીત ભવ્ય જીવોની તથા આત્માની રક્ષા કરનારા, બાહ્ય અને આભ્યંતર પરિગ્રહરૂપી ગ્રંથિથી રહિત, મહાન્ ઋષિ તીર્થંકર આદિ, યા જન્મ જરા-મરણનાં દુઃખોથી રહિત હોવાને કારણે એકાંત આનંદસ્વરૂપ મોક્ષને પ્રાપ્ત કરનારા મુનિઓને માટે, આગળ કહેવામાં આવનારા બાવન અનાચાર (અનાચીર્ણ) છે અર્થાત્ એ બાવન અનાચાર મુનિઓને સેવવા યોગ્ય નથી અહીં છઠ્ઠી વિભક્તિવાળાં અનેક વિશેષણો આપવામા આવ્યા છે, એ બધામાં પહેલાં-પહેલાંના વિશેષણ કારણ છે અને પછી-પછીના કાર્ય છે. જેમકે—સંયમમાં સારી રીતે

---

१ अत्र 'अत इनिठना, विति मत्वर्थीय इनिः ताच्छील्ये णिनिस्तु न तस्य सुबन्त पूर्वकत्व एव प्रवृत्तेरिति यवम्

यतो निर्ग्रन्था अतो महर्षयः, इति यथोत्तरं पूर्व-पूर्वस्य हेतुत्वेन भवति विशेषणसंगतिरिति वोद्धव्यम् ।

नन्वेतावता 'यद्यन्महापुरुषैरनाचीर्णं तत्तदनाचरणीयं, यद्यत्त्वाचीर्णं तत्तदाचरणीयमेवेत्यायातं ततश्च तीर्थङ्करार्थं सुरसम्पादितैरष्टविधमहाप्रातिहार्यैस्तीर्थङ्करा युक्ता इति वयमप्यस्मदर्थं सम्पादितैः कथं न युक्ता भवेमेति चेद् ? भ्रान्तोऽसि, ते हि वीतरागत्वात् कल्पातीताः, वयं तु कल्पस्थिता इति, कल्पातीतानां तेषां जिनेश्वराणामष्टमहाप्रातिहार्याणि तीर्थङ्करगोत्रनामप्रकृत्युदयमहिम्ना प्रतिभासितानि भवन्ति, न तु तानि सुरैः सपाद्यन्ते, अत एव औपपातिकसूत्रे--

" आगासगएण चक्केणं आगासगएणं छत्तेण आगासियाहिं चामराहि "

इत्यस्य व्याख्यायाम्--

" आगासगएणं चक्केणं "-ति आकाशवर्त्तिना चक्रेण=धर्मचक्रेण, ' आगासगएणं छत्तेणं '-ति छत्रत्रयेण ' आगासियाहिं '-ति, आकाशम्=अम्बरम् इताभ्यां=प्राप्ताभ्याम् आ-

---

त्राता होनेसे निर्ग्रन्थ है, निर्ग्रन्थ होनेसे महर्षि हे ।

शङ्का—इस गाथासे यह तात्पर्य निकला कि महापुरुषोने जिस जिस का आचरण नहीं किया वह वह अनाचरणीय है, उन्होने जिस जिसका आचरण किया वे सब आचरण करने योग्य है, यदि ऐसा ही है तो श्रीतीर्थङ्कर भगवान् देवनिर्मित आठ महाप्रातिहार्योंसे युक्त होते है इसलिए हम भी हमारे लिए बनाये हुए पदार्थोंसे युक्त क्यो न होवे ?

समाधान—हे वत्स ! ऐसा नहीं हैं, क्यो कि वे वीतराग होनसे कल्पातीत है, और हम कल्पस्थित है, इसलिए उन कल्पातीत जिनेश्वरो के तीर्थङ्करगोत्र-नाम-प्रकृतिके उदयकी महिमासे अष्ट महाप्रातिहार्य केवल भासित होते है किन्तु देवताओसे समर्पित नहीं किये जाते, अत एव औपपातिक सूत्रके "आगासगएणं चक्केणं" इत्यादि पदोकी व्याख्यामें कहा है—"आकाशस्थित

સ્થિત હોવાને કારણે વિપ્રમુક્ત હોવાથી સ્વ-પરના ત્રાતા (રક્ષક) છે, ત્રાતા હોવાને કારણે નિર્ગ્રંથ છે, નિર્ગ્રંથ હોવાને લીધે મહર્ષિ છે

શંકા—આ ગાથામાંથી એ તાત્પર્ય નીકળ્યું કે- મહાપુરૂષોએ જેનું જેનું આચરણ નથી કર્યું છે તે અનાચરણીય છે, અને તેમણે જેનું જેનું આચરણ કર્યું તે બધું આચરણ કરવા યોગ્ય છે જો એમ છે તો તીર્થંકર ભગવાન દેવનિર્મિત આઠ મહાપ્રાતિહાર્યોથી યુક્ત હોય છે, તેમ આપણે પણ આપણા માટે બનાવેલા પદાર્થોથી યુક્ત કેમ ન થવું ?

સમાધાન—હે વત્સ ! એમ નથી, કારણ કે તે વીતરાગ હોવાથી કલ્પાતીત છે, અને આપણે કલ્પસ્થિત છીએ. એ કલ્પાતીત જિનેશ્વરોનાં તીર્થંકર-ગોત્ર-નામપ્રકૃતિના ઉદયના મહિમાથી આઠ મહાપ્રાતિહાર્ય કેવળ ભાસિત થાય છે, પરન્તુ દેવતાઓ તરફથી સમર્પિત થતા નથી, એટલે ઔપપાતિક સૂત્રના आगासगएणं चक्केणं ઇત્યાદિ વ્યાખ્યાનમાં કહ્યું છે કે—"આકાશસ્થિત ચક્ર, છત્ર અને ચામરોથી ભગવાન્ લક્ષિત થાય છે" અહી 'લક્ષિત'

कर्पिताभ्यां वा=आकृष्टाभ्यामुत्पाटिताभ्यामित्यर्थः, 'चामराहिं'-ति चामराभ्यां प्रकीर्णकाभ्यां प्राकृतत्वाच्च लिङ्गव्यत्ययः, 'लक्षितः इति सर्वत्र गम्यम्" इत्युक्तम्।

अत्र 'लक्षितः' इत्युक्त्याऽन्यकृत इति स्पष्टं निराक्रियते, यथा-अर्द्धमागधभाषया प्रवृत्ताऽपि तीर्थङ्करवागू समवसरणगतानां देवानां मनुष्याणां तिरश्चां च स्व-स्व भाषानुरूपा प्रतिभाति किन्तु न सा तादृशी, तस्मादस्मादृशां तदसदृशां तदुक्तकल्प एव स्थातव्यं, न तु तथाऽनुकरणीयमिति दिक् इति·गाथार्थः ॥ १ ॥

अनाचीर्णान्याह-'उद्देसियं०' इत्यादि,

मूलम्-उद्देसियं[1] कीयगडं[2], नियागमभिहडाणि[3][4] य।

राइभत्ते[5] सिणाणे[6] य, गंधमल्ले[7][8] य वीयणे[9] ॥२॥

छाया--औद्देशिकं क्रीतकृतं, नियागमभ्याहृतानि च।
रात्रिभक्तं स्नानं च, गन्ध-माल्ये च वीजनम् ॥ २ ॥

सान्वयार्थः-(१) उद्देसियं=औद्देशिक-किसी एक साधुके लिए बनाया हुआ आहार (२) कीयगड=साधुके लिए खरीदा हुआ आहार (३) नियागं=निमंत्रणसे ग्रहण किया हुआ आहार (४) अभिहडाणि=सामने लाकर दिया हुआ आहार (५) राइभत्ते=रात्रिभोजन (६) सिणाणे=स्नान य=और (७) गंध=चन्दनादिलेप (८) मल्ले=पुष्पादिमाला (९) वीयणे=पंखा ॥ २ ॥

टीका-औद्देशिकम्=उद्देशनमुद्देशस्तत्र भवं तत्प्रयोजनमस्येति वा औद्देशिकं साध्वादिकमुद्दिश्य निष्पादितमित्यर्थः (१),

---

चक्र, छत्र और चामरोसे भगवान् लक्षित होते है"। यहां पर 'लक्षित' ऐसा कहनेसे साफ२ यह दिखलाया गया है कि-औरोको छत्र चमरादिसे युक्त भगवान् लक्षित होते है किन्तु वे चक्र-छत्रादि अन्य-(देव)-कृत नहीं है। जैसे अर्द्धमागधीभाषारूपा भी तीर्थङ्कर की वाणी, समवसरणमें आये हुए देव मनुष्य तिर्यचोकी अपनी अपनी० भाषाके स्वरूपमें ही प्रतीत होती है किन्तु वस्तुतः वह वैसी नहीं है, अत एव उन कल्पातीतोकी तुलनामें नहीं पहुंचे हुए हम छद्मस्थोको तो उनके कहे हुए कल्पमें ही रहना चाहिए, न कि उनका अनुकरण करना चाहिए ॥१॥

अब (५२)-अनाचीर्णोको दिखलाते है-'उद्देसिय०' इत्यादि।

કહેવાથી એમ સાફ સાફ બતાવ્યુ છે કે-બીજાઓને છત્ર-ચામરાદિ-યુક્ત ભગવાન્ લક્ષિત થાય છે, પરંતુ તે ચક્ર-છત્રાદિ અન્ય (દેવ) કૃત નથી હોતાં. જેમ અર્ધમાગધીભાષારૂપ પણ તીર્થંકરની વાણી સમવસરણમાં આવેલા દેવ-મનુષ્ય-તિર્યંચોને પોતપોતાની ભાષાના સ્વરૂપમાં જ પ્રતીત થાય છે, કિન્તુ વસ્તુત તે તેવી નથી હોતી. એટલે એ કલ્પાતીતોની તુલનામાં નહિ પહોંચેલા આપણે છદ્મસ્થોએ તો એમણે કહેલા કલ્પમાં જ રહેવું જોઈએ, નહિ કે તેમનું અનુકરણ કરવું જોઇએ. (૧)

क्रीतकृतं=क्रीतेन=क्रयणेन कृतं=सम्पादितं साधुकृते मूल्येन गृहीतमिति यावत् (२),

नियाग–नि=निरतिशयो योगो निमन्त्रणादिरूपः संस्कारो यस्मिंस्तत्-आमन्त्रित पिण्डस्य कदाचिदपि ग्रहणम्, अनामन्त्रितस्य नित्यग्रहणमिति भावः (३),

अभ्याहृतानि=स्व-पर-ग्राम गृहादि भेदभिन्नानि साधुनिमित्तं सम्मुखमानीय दत्तानि, बहुवचनं सर्वेषामेवाऽभ्याहृतानामनाचीर्णत्वख्यापनार्थम् (४),

रात्रिभक्त=रात्रिभोजनं रात्र्यादिगृहीत भक्तं वा (५), स्नानं=प्रसिद्धम् (६),

---

(१) औद्देशिक' (२) क्रीतकृत, (३) नियाग, (४) अभ्याहृत, (५) रात्रिभोजन, (६) स्नान, (७) गन्ध, (८) माल्य, (९) पंखा चलाना ।

(१) साधु आदिके लिए जो आहार बनाया जाता है उसे औद्देशिक कहते है।

(२) साधुके लिए मूल्य देकर जो आहारादि खरीद किया गया हो उसे क्रीतकृत कहते हैं।

(३) गृहस्थका निमन्त्रण पाकर कभी भी आहार लेना अथवा प्रतिदिन एक ही घरसे आहार लेना नियागपिण्ड है ।

(४) अपने गांव परगांवसे अथवा घरसे साधुके सामने लाया हुआ आहार अभ्याहृत पिण्ड है ।

अभ्याहृतके लिए गाथामें बहुवचन आया है यह उसका अभिप्राय है कि जितने भी अभ्याहृत (सामने लाये हुये) है वे सभी अनाचार है ।

(५) रात्रिमें आहार लेना, दिनमें लेकर रात्रिमें खाना आदि रात्रिभक्त है (६) देशतः सर्वतः स्नान करने को स्नान-अनाचार कहते है ।

હવે (૫૨)–અનાચીર્ણો દર્શાવે છે-उद्देसियं० ઈત્યાદિ.

(૧) ઔદ્દેશિક, (૨) ક્રીતકૃત, (૩) નિયાગ, (૪) અભ્યાહૃત, (૫) રાત્રિભોજન, (૬) સ્નાન, (૭) ગંધ, (૮) માલ્ય, (૯) પંખો ચલાવવો-

(૧) સાધુ આદિને માટે જે આહાર બનાવવામાં આવ્યો હોય તેને ઔદ્દેશિક કહે છે.

(૨) સાધુને માટે મૂલ્ય ખર્ચીને જે આહારાદિ ખરીદ કરવામાં આવેલ હોય તેને ક્રીતકૃત કહે છે.

(૩) ગૃહસ્થનું નિમંત્રણ મેળવીને કોઈવાર પણ આહાર લેવો અથવા પ્રતિદિન એકજ ઘેરથી આહાર લેવો એ નિયાગપિંડ કહેવાય છે

(૪) પોતાના ગામથી, પરગામથી અથવા ઘેરથી સાધુની સામે લાવવામાં આવેલો આહાર અભ્યાહૃત-પિંડ કહેવાય છે

અભ્યાહૃતને માટે ગાથામાં બહુવચન આવ્યું છે તેનો એ હેતુ છે કે-જેટલા અભ્યાહૃત (સામે લાવેલા) હોય તે બધા અનાચાર છે.

(૫) રાત્રે આહાર લેવો, દિનમાં લઇને રાત્રે ખાવો, ઈત્યાદિ રાત્રિભક્ત કહેવાય છે.

गन्धमाल्ये-गन्धः=चन्दन-केतकादिसौरभम् (७)-
माल्यं=पुष्पादिमाला, तयोरितरेतरयोग इति गन्ध-माल्ये (८),
तथा वीजनं=ग्रीष्मादिऋतौ तालवृन्तादिना वातादिसञ्चालनम् (९),
अत्राऽऽरम्भादयो दोषा जायन्त इति स्वयमवगन्तव्यम्। औद्देशिकक्रीतकृतयोः स्वरूप सप्रपञ्चं पञ्चमाध्ययने वक्ष्यते ॥ २ ॥

मूलम्--संनिही[10] गिहिमत्ते[11] य, रायपिंडे[12] किमिच्छए[13]।
संवाहणा[14] दंतपहोयणा[15] य, संपुच्छणा[16] देहपलोयणा[17] य ॥३॥

(छाया)--संनिधि-गृहामत्रं च, राजपिण्डः किमिच्छकः।
संवाहनं दन्तप्रधावनं च, संप्रच्छनं देहप्रलोकनं च ॥३॥

सान्वयार्थः--(१०) संनिही=रात्रिमें आहार आदिका संचय (११) गिहिमत्ते=गृहस्थके पात्रमें भोजन करना य=और (१२) रायपिंडे=राजाके लिए बनाया हुआ आहार (१३) किमिच्छए=दानशाला या अन्नक्षेत्र आदीका आहार (१४) संवाहणा=शरीरकी मालिश करना (१५) दंतपहोयणा=दांत मांजना य=और (१६) संपुच्छणा=गृहस्थसे कुशलप्रश्न पूछना य=और (१७) देहपलोयणा=दर्पण या जलमें मुख आदी देखना ॥३॥

टीका--संनिधीयते=सम्यक्तया नितरां स्थाप्यते नरकादिष्वात्माऽनेनेति संनिधिः=संभवादत्र घृतादिसञ्चयकरणम् (१०),

---

(७-८) चन्दन केतक अतर आदिकी सुगन्ध तथा फूलमाला आदिका सेवन करना गन्ध-माल्य-अनाचार है।

(९) ग्रीष्मादि कालमें पंखा चलाना यह व्यजन-अनाचार है।

इनसे आरम्भ आदि दोष होते है सो स्वयं समझना चाहिये। औद्देशिक और क्रीतकृतका विस्तारपूर्वक विवेचन पाचवे अध्ययनमें किया जायगा ॥२॥

(१०) सनिधि-जिस अनाचारका सेवन करनेसे आत्मा नरकादि कुगतियोमें गिरती है अ-र्थात् घृत औषध आदिका रात्रिमें बासी रखना सनिधि-अनाचार है।

---

(૬) દેશથી (થોડે ભાગે) સર્વથી (આખે શરીરે) સ્નાન કરવુ એ સ્નાન-અનાચાર કહેવાય છે

(૭-૮) ચંદન, કેવડો, અત્તર આદિની સુગંધ તથા ફૂલ માલા આદિનું સેવન કરવું એ ગંધ-માલ્ય અનાચાર કહેવાય છે.

(૯) ગ્રીષ્માદિ કાળમાં પંખો ચલાવવો એ વ્યજન-અનાચાર છે.

એથી આરંભ આદિ દોષ લાગે છે તે પોતેજ સમજવુ જોઈએ. ઔદ્દેશિક અને ક્રીતકૃતનું વિસ્તારપૂર્વક વિવેચન પાચમાં અધ્યયનમા કરવામાં આવશે. (૨)

(૧૦) સનિધિ-જે અનાચારનું સેવન કરવાથી આત્મા નરકાદિ દુર્ગતિમાં પડે છે,

गृह्यमत्रं=गृहिणां=गृहस्थानाम् अमत्रं=पात्र प्रसंगादत्र तस्मिन्नभ्यवहरणादि (११),

राजपिण्डः = राजार्थं निष्पन्नाऽऽहारः (१२),

किमिच्छक = 'कः किमिच्छत्याहारादिक'-मित्येवं पृच्छ्यते यस्मिन् कर्मणि तत्, अन्नसत्र-(सदाव्रत)-शालादित आहारादिग्रहणमित्यर्थः (१३),

संवाहनम् = अस्थ्यादिसुखविशेषजनक तैलादिना शरीरसंमर्दनम् (१४)

दन्तप्रधावनं = दन्तमार्जनम् (१५),

संप्रच्छनं = गृहस्थं प्रति कुशलादिरूपसावद्यप्रश्नकरणम् (१६),

देहप्रलोकनं = जलदर्पणादिषु मुखादिनिरीक्षणम् (१७),

चकाराः समुच्चयार्थाः । संनिध्यादिषु परिग्रहादयो दोषाः प्रतीताः ॥३॥

१८ १९

मूलम्-अट्ठावए य नालीए; छत्तस्स य धारणट्ठाए ।

२० २१ २२

तेगिच्छं पाहणा पाए समारंभं च जोइणो ॥४॥

---

(११) गृह्यमत्र–गृहस्थके पात्रमें आहार आदि करना गृह्यमत्र है ।

(१२) राजपिण्ड–राजाके लिए बनाया हुआ आहार लेना राजपिंड है ।

(१३) किमिच्छक–जिसमें यह पूछा जाता है कि कौन क्या चाहता है ? अर्थात् दान-शाला (सदाव्रत) आदिसे आहार लेना किमिच्छक है ।

(१४) सवाहन–अस्थि, मांस, त्वचा, रोमको आनन्ददायक चार प्रकारका मर्दन करना सवाहन है । (१५) दन्त प्रधावन–दात धोना ।

(१६) सप्रच्छन–गृहस्थसे कुशल आदि रूप सावद्य प्रश्न पूछना ।

(१७) देहप्रलोकन–जलमें अथवा दर्पण आदिमें अपना मुख आदि देखना । सन्निधि आदिमें परिग्रहादि दोप प्रसिद्ध है ॥३॥

અર્થાત્ ઘી ઔસડ આદિ રાત્રે વાસી રાખવા તે સંનિધિ–અનાચાર છે.

(૧૧) ગૃહ્યમત્ર–ગૃહસ્થના પાત્રમા આહાર આદિ કરવો તે ગૃહ્યમત્ર કહેવાય છે.

(૧૨) રાજપિંડ–રાજાને મટે બનાવેલો આહાર લેવો તે રાજપિંડ છે

(૧૩) કિમિચ્છક–જેમા એ પૂછવામા આવે છે કે કોને શુ જોઈએ છે ? અર્થાત્ દાનશાળા (સદાવ્રત) આદિ પાસેથી આહાર લેવો તે કિમિચ્છક કહેવાય છે

(૧૪) સવાહન–અસ્થિ, માસ, ત્વચા, રોમને આનદદાયક ચાર પ્રકારનું મર્દન કરવુ એ સવાહન છે. (૧૫) દતપ્રધાવન–દાત ધોવા

(૧૬) સપ્રચ્છન–ગૃહસ્થને કુશલ આદિ રૂપ સાવદ્ય પ્રશ્નો પૂછવા

(૧૭) દેહપ્રલોકન–જલમાં અથવા દર્પણ આદિમા પોતાનુ મુખ આદિ જોવા, સન્નિધિ આદિમાં પરિગ્રહાદિ દોષ પ્રસિદ્ધ છે (૩)

छाया--अष्टापदं नालिकया, छत्रस्य धारणार्थाय (धारणाऽष्टया)।
चैकित्स्यमुपानहौ पादयोः, समारम्भश्च ज्योतिषः ॥४॥

सान्वयार्थः--(१८) नालीए=जूएके उपकरण-साधनसे अट्ठावए=चौपड़ शतरञ्ज आदि खेलना. (१९) अट्ठावए=मुट्ठीसे छत्तस्स=छातेका धारणं=धारण करना (२०) तेगिच्छं=रोगकी चिकित्सा करना (२१) पाए पाहणा=पैरोंमें जूते चंपल मोजे आदि पहिनना च=और (२२) जोइणो=अग्निका समारंभं=आरंभ करना ॥४॥

टीका--च=तथा, नालिका=यथाऽभिमतपतनार्थं यया पाशः पात्यन्ते सा=पाशपातनद्रव्यम् तया, उपलक्षणमेतत्-द्यूतोपकरणमात्रस्य, अष्टापदम्-अष्टौ अष्टौ पदानि=स्थानानि (गृहाणि) सर्वभागेषु यस्मिंस्तथा वस्त्राऽऽधारस्थानम्, इह च लक्षणया द्यूतसामान्यम् (१८),

च=किञ्च छत्रस्य=आतपत्रस्य धारणार्थाय ग्रहणमिति शेषः ॥ यद्वा-' धारणा अट्ठाए' इतिच्छेदः, 'अट्ठा' इत्यस्य 'मुष्टि'-रित्यर्थः, 'चउहि अट्ठाहि लोयं करेइ'. चतसृभिरष्टाभिर्लोचं करोति जम्बूद्वीप प्रज्ञप्त्यादौ तथा दर्शनात्, ततश्च 'अट्ठाए=अष्टया=मुष्टया छत्रस्य धारणा=ग्रहणमित्यर्थः। न च छत्रादिधारणं मुष्टयादिनैव संभवतीति 'अट्ठाए'

---

(१८) अष्टापद-'नालीए' अर्थात् फेककर चौपड, शतरंज आदि खेलना, अथवा अन्य प्रकार से जुआ खेलना।

(१९) छत्रधारण करना। गाथामें 'धारणट्ठाए' ऐसा पद है उसे अलग अलग करनेसे 'धारणा अट्ठाए' होता है। यहाँ अट्ठा शब्दका अर्थ 'मुट्ठी' है। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिमें कहा है कि-,चउहि अट्ठाहि लोय करेइ' अर्थात्-ऋषभदेव भगवान्ने चार मुट्ठी लोच किया। अतः 'धारणट्ठाए' का अर्थ 'मुट्ठीसे छत्रको ग्रहण करना' हुआ।

प्रश्न-छत्र तो मुट्ठीसे ही पकडा जाता है फिर 'अट्ठाए'की क्या आवश्यकता है? जैसे "मुखसे बोलता है" इस वाक्यमें ' मुखसे' इतना अंश व्यर्थ है, क्योंकि सिवाय मुखके और किसी अंगसे नहीं बोला जाता, इसी प्रकार यहां 'मुट्ठीसे' कहना भी वृथा है?

---

(१७) અષ્ટાપદ-નાલીए અર્થાત્-પાસા ફેંકીને ચોપાટ શતરંજ આદિ ખેલવાં, અથવા અન્ય પ્રકારે જુગાર ખેલવો

(૧૯) છત્ર ધારણ કરવું ગાથામા ધારણટ્ઠાए એવુ પદ છે, એને છૂટા પાડવાથી ધારણા+અટ્ઠાए થાય છે અહીં અટ્ઠા શબ્દનો અર્થ 'મુઠી' છેં જમ્બૂદ્વીપપ્રજ્ઞપ્તિમાં કહ્યુ છે કે-ચઉહિં અટ્ઠાહિ લોયં કરેઇ અર્થાત્-ઋષભદેવ ભગવાને, ચાર મુઠી લોચ કર્યો એટલે ધારણટ્ઠાए નો અર્થ 'મુઠીથી છત્રને ગ્રહણ કરવુ'એવો થયો.

પ્રશ્ન-છત્ર તો મુઠીથી જ પકડવામાં આવે છે, પછી અટ્ઠાए એ પદની શી જરૂર રહે છે? જેમકે "મુખથી બોલે છે" એ વાક્યમાં 'મુખથી' એટલો અંશ વ્યર્થ છે, કારણ કે મુખ વિના બીજા કોઈ અંગથી બોલી શકાતુ નથી. તેજ રીતે ત્યા 'મુઠીથી' એમ કહેવુ એ પણ વૃથા છે.

इत्यस्य 'मुखेन पठती'इत्यादिषु मुखादिवद्व्यर्थ्यमिति शङ्कनीयम्, चक्षुर्भ्यां पश्यति, कर्णाभ्यां शृणोति, जिह्वया लेढी' इत्यादि-लोकोक्तिषु चक्षुरादीनामिव यथास्थितवस्तु प्रतिपादनमात्रतात्पर्येणाऽपौनरुक्त्यात्, अत्रैव गाथायामुत्तरार्द्धे 'पाहणा पाए' इत्यत्र 'पाए' इतिवदिति, उपलक्षणमेतच्छिरसि छायाकरणमात्रस्य (१९),

[1]चैकित्स्यं=चिकित्सा=व्याधिप्रतीकारः, कफपित्तादिवैगुण्यं, ग्रहादिवैगुण्यं च व्याधेर्निदानं तत्प्रशमनं तदुपायोपदेशादिनेत्यर्थः (२०),

पादयोः=चरणयोः, उपानहौ=चर्मपादुके, उपलक्षणमिदं काष्ठपादुकादीनामपि (२१)

१-'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च (५।१।१२४) इत्यत्रत्य ब्राह्मणादेराकृतिगणत्वात्स्वार्थे ष्यञ् तत आदिवृद्धिरालोपश्च, यत्तु 'चिकित्साया भावश्चैकित्स्य' मिति टीकान्तरकृतस्तद् व्याकरणाऽनवबोधमूलकमेव, भावप्रत्ययान्ताद्भावप्रत्ययस्याऽनुत्पत्तेः, चिकित्सायाः कर्म'-त्यर्थकल्पनमपि केषांचित्प्रामादिकमेव चिकित्साया रोगापनयनक्रियारूपाया' स्वत एव कर्मभूतत्वेन कर्मपर्यायत्वात्, ष्यञ्विधायकसूत्रे हि कर्म-क्रिये' ति वैयाकरणाः ॥

उत्तर-यह प्रश्न ठीक नहीं, क्योंकि लोकमें "आंखोसे देखता है, कानोसे सुनता है, जिह्वासे चखता है" इत्यादि वाक्योमें 'आंखोसे' 'कानोसे' 'जिह्वासे' इन पदोके बोलनेका अभिप्राय यथास्थित वस्तुका प्रतिपादन करना है, इस गाथाके उत्तरार्द्धमें 'पाहणा पाए' पद आया है इसका अर्थ है कि-पैरोमें उपानह (जूता), उपानह यद्यपि पैरोमे पहने जाते है हाथ या सिरमें नहीं पहने जाते फिर भी 'पाए' कहनेसे पुनरुक्ति नहीं है, क्योकि इस पदसे यथावस्थित वस्तुका प्रतिपादनमात्र किया गया है, इसलिए 'मुट्ठीसे छत्र धरना, ऐसा कहना अयुक्त नहीं है ।

(२०) चैकित्स्य-चिकित्सा करना, अर्थात् वैद्यक करना, या ग्रह आदिको मन्त्र वगैरहसे शांत करना, या इस विषयका उपदेश देना ।

(२१) उपानह (जूता) या मोजा आदि पहनना ।

ઉત્તર-એ પ્રશ્ન બરાબર નથી, કારણ કે લોકમા 'આંખોથી જોવે છે,' 'કાનથી સાંભળે છે,' 'જીભથી ચાખે છે,' ઈત્યાદિ વાકયોમા 'આંખોથી,' 'કાનથી,' 'જીભથી' એ શબ્દો આપવાનો હેતુ યથાસ્થિત વસ્તુનુ પ્રતિપાદન કરવાનો છે આ ગાથાના ઉત્તરાર્ધમાં **પાહણા પાપ** પદ આવ્યુ છે તેનો અર્થ છે-'પગમાં ઉપાનહ (જોડા), જો કે જોડા પગમાં જ પહેરવામા આવે છે, હાથે કે માથે નહિ, તો પણ **પાપ** કહેવાથી પુનરૂક્તિ થતી નથી, કારણ કે એ શબ્દથી યથાવસ્થિત વસ્તુનું પ્રતિપાદન માત્ર કરવામા આવ્યું છે તેથી 'મુઠીથી છત્ર ધરવુ" એમ કહેવુ એ અયુક્ત નથી.

(૨૦) ચૈકિત્સ્ય-ચિકિત્સા કરવી અર્થાત્ વૈદું કરવું, અથવા ગ્રહાદિ ને મંત્ર વગેરેથી શાન્ત કરવા અથવા એ વિષયનો ઉપદેશ આપવો

(૨૧) ઉપાનહ (જોડા) અથવા મોજા આદિ પહેરવા

च = किञ्च ज्योतिषः = वह्नेः समारम्भः=आरम्भकरणम् (२२),
दोषास्त्वत्राऽलीकत्वादयः स्वबुद्ध्याऽवगन्तव्याः, चकाराइहापि समुच्चयार्थौः ।४।

मूलम्—सिज्जायरपिंडं[23] च आसंदी[24] पलियंकए[25] ।
गिहंतरनिसिज्जा[26] य गायस्सुव्वट्टणाणि[27] य ॥५॥

छाया–शय्यातरपिण्डश्च, आसन्दी पर्य(ल्य)ङ्ककः ।
गृहान्तरनिषद्या च, गात्रस्योद्वर्त्तनानि च ॥५॥

सान्वयार्थः—च = और (२३) सिज्जायरपिंडं = शय्यातरका आहार, (२४) आसंदी = कुर्सी या खाट (२५) पलियंकए = पलंग पालखी डोला आदि, (२६) गिहंतरनिसिज्जा = गृहस्थके घरमें बैठना, य = और (२७) गायस्स = शरीरका उव्वट्टणाणि = उवटन करना ॥५॥

टीका—शय्यतेऽस्यामिति शय्या = वसतिः, शय्याऽर्थात्तद्दानेन तरति संसारसागरमिति शय्यातरः, यद्वा शय्या = प्रोक्तरीत्या वासस्थानम्, [1]आतरः = संसारपारावारोत्तरणशुल्कं यस्य स शय्यातरः । अत्र पक्षे यथा कश्चिन्नदी-पार जिगमिषुर्नाविकाय नदीतरण-

(२२) अग्निका आरम्भ करना,
इनसे भी असत्य आदि दोष समझना चाहिए, अर्थात् जूआ खेलनेसे असत्य, क्लेश, आर्तध्यान, परिग्रह आदि, छत्र धारण करनेसे सुकुमारता परीषहके सहनेमें असामर्थ्य आदि दोष, चिकित्सा करनेसे आरम्भ असत्य आदि दोष, उपानह पहननेसे द्वीन्द्रिय आदि जीवोंका उपमर्दन आदि, तथा अग्निकायका आरम्भ करनेसे छह कायका उपमर्दन आदि दोष होते है ॥ ४ ॥
(२३) शय्यातरका पिण्ड लेना ।
जिसमें शयन किया जाता उसे शय्या या वसति कहते है । उस शय्याके दानसे ससार-समुद्रको तैरनेवाला शय्यातर कहलाता है । अथवा शय्या है ससाररूपी सागरसे पार होनेका आतर (शुल्क) जिसका उसे शय्यातर कहते है । जैसे कोई नदी पार करनेकी इच्छावाला बटोही

(२२) અગ્નિનો આરભ કરવો એથી પણ અસત્ય આદિ દોષ સમજવા જોઈએ.
અર્થાત્–જુગાર ખેલવાથી અસત્ય, કલેશ, આર્તધ્યાન, પરિગ્રહ આદિ, છત્ર ધારણ કરવાથી સુકુમારતા, પરીષહને સહન કરવામાં અસામર્થ્ય આદિ અનેક દોષ, ચિકિત્સા કરવાથી આરભ, અસત્ય આદિ દોષ, જોડા પહેરવાથી દ્વીન્દ્રિય આદિ જીવોનુ ઉપમર્દન આદિ, તથા અગ્નિકાયનો આરંભ કરવાથી છ કાયનું ઉપમર્દન આદિ દોષ લાગે છે (૪)
(૨૩) શય્યાતરનો પિંડ લેવો
જેમા શયન કરવામાં આવે છે તેને શય્યા યા વસતિ કહે છે. એ શય્યાના દાનથી સસાર રૂપી સાગરથી પાર થવાનુ આતર (શુલ્ક) જેનું, તેને શય્યાતર કહે છે, જેમ કેઈ નદી પાર

१ आतरस्तरपण्य स्यादित्यमर 'उत्तराई' इतिलोक प्रसिद्धम्

शुल्कं दत्त्वा तत्पारं गच्छति तथा संसारसमुद्रपारं जिगमिषुर्गृहस्थवन्नाविकस्वरूपाय महापुरुषाय मुनये शय्या-(वसतिस्थान)-रूपमातरं (तरणशुल्कं) दत्त्वा तत्पारं व्रजतीति भावार्थोऽनुसन्धेयः। पक्षद्वयेऽपि साधुवासार्थमाज्ञादायक इति फलितम्, पिण्डः=आहारौषध्यादिः शय्यातरपिण्ड इति।

शय्यातरविचारः।

यद्यपि निवासार्थं साधवे स्वानुमतिप्रकाशको वसतिस्वामी शय्यातरशब्दस्यार्थः, तथापि तस्य तदैव शय्यातरत्वं भवति यदा तत्र वसतौ साधुर्भाण्डोपकरणानि स्थापयेत्, प्रतिक्रमणमाचरेत्, रात्रौ शयीत च। अत्रायं विवेकः—भाण्डोपकरणस्थापन-प्रतिक्रमणाचरण शयनानां त्रयाणां प्रत्येकं शय्यातरत्वे हेतुत्वम्, तेन प्रतिक्रमणाचरण-शयनाभ्यां प्रागपि

(मार्गू) नाविकको नदी पार उतरनेका मूल्य देकर पार उतरता है उसी प्रकार ससाररूपी समुद्रके पार उतरने की इच्छावाला गृहस्थ नाविकके समान साधु महापुरुषोको शय्या-(वसति-स्थान) रूपी उतराई (पार उतारने का मूल्य) देकर ससारसागरसे पार उतरता है, यह अभिप्राय समझना चाहिए। दोनो पक्षोका अर्थ एक ही है कि शय्यातर उसे कहते है, जो साधुको ठहरनेके लिए मकानकी आज्ञा देता है। उसके आहार औषध आदि पिण्डको शय्यातर-पिण्ड कहते है।

शय्यातर—विचार

साधुको ठहरनेके लिए अपनी अनुमति प्रगट करनेवाला उपाश्रयका स्वामी शय्यातर कहलाता है, है, तथापि वह इन अवस्थाओमें शय्यातर होता है—

(१) साधु वसतिमे भाण्डोपकरण रख देवे।

(२) प्रतिक्रमण करे, और (३) रात्रिमें शयन करे।

(१) इन तीनोमेसे प्रत्येक क्रिया शय्यातर होने में कारण है। इसलिए प्रतिक्रमण और

करवानी ઇચ્છા-વાળો ઊતારૂ નાવિકને નદી ઊતરવાનું ભાડું આપીને પાર ઊતરે છે, તેમ સંસાર-રૂપી સમુદ્રને પાર ઊતરવાની ઇચ્છા-વાળો ગૃહસ્થ, નાવિક-સમાન સાધુ-મહાપુરૂષોને શય્યા-(વસતિ-સ્થાન) રૂપી ભાડુ (પાર ઊતરવા માટેનુ મૂલ્ય) આપીને સંસાર-સાગરથી પાર ઊતરે છે, એવો અર્થ સમજવો જોઈએ. બેઉ પક્ષોનો અર્થ એક જ છે કે શય્યાતર એને કહે છે કે જે સાધુને રહેવાને માટે મકાનની આજ્ઞા આપે છે, એના આહાર ઔષધ આદિ પિંડને શય્યાતર-પિંડ કહે છે.

શય્યાતર—વિચાર

સાધુને રહેવાને માટે પોતાની અનુમતિ આપનાર ઉપાશ્રયનો સ્વામી શય્યાતર કહેવાય છે' તથાપિ તે આ અવસ્થાઓમાં શય્યાતર થાય છે—

(૧) સાધુ વસતિમા ભાડોપકરણ (પાત્ર વગેરે) રાખે. (૨) પ્રતિક્રમણ કરે અને (૩) રાત્રે શયન કરે.

(૧) આ ત્રણેમાની પ્રત્યેક ક્રિયા શય્યાતર થવામાં કારણ છે, તેથી પ્રતિક્રમણ અને શયન

भाण्डोपकरणस्थापनानन्तरं वसतिस्वामिनः शय्यातरत्वम्, पूर्वगृहीतवसतौ स्थानसंकीर्णतायां सत्यां कियान् समीपतरवर्त्तिन्युपाश्रये तत्स्वामिनिदेशमादाय प्रतिक्रमणं कुर्वीतत दा तत्र भाण्डोपकरणस्थापनाभावेऽपि तदीयस्वामिनः शय्यातरत्वम् । अन्यत्र प्रतिक्रमणं कृत्वा स्थानसंकीर्णतायां सत्यां शयनमात्रं यत्राचरितं तत्स्वामिनो ऽपि शय्यातरत्वम् । परन्त्वयं विशेषो बोद्धव्यः-

अन्यसाधुसविधे स्वकीयभाण्डोपकरणानि संस्थाप्याऽन्यत्र शयनप्रतिक्रमणाचरणे मूलोपाश्रयस्वामिनो न शय्यातरत्वम्, भाण्डादिस्थापने साधुसांनिध्यस्यैव निमित्तता न तु [1]तत्स्वामिनः, साधोरभावे भाण्डादिस्थापनस्य शास्त्राविहितत्वात् । शय्यातरत्वनिवृत्तिकरणाय तु पुनः पुनः शय्यातरपरिवर्तनं नाचरणीयम् । पुनः पुनः शय्यातरपरिवर्त्तन हि सा-

शयन करनेसे पहले भी भाण्डोपकरण रख देनेपर वसतिका स्वामी शय्यातर हो जाता है।

(२) पहले जिस वसतिको ग्रहण कर लिया हो उसमे स्थानकी सकीर्णता होनेपर कुछ साधु अपने भाण्डोपकरण अन्य साधुओके समीप रखकर, पासके दूसरे उपाश्रयमें उसके स्वामीकी आज्ञा लेकर प्रतिक्रमण करे तो वहां भाण्डोपकरण न रखने पर भी जहां प्रतिक्रमण किया हो उस वसतिका स्वामी शय्यातर कहलाता है, इस वसतिका नहीं ।

(३) दूसरे स्थानमें प्रतिक्रमण करके, स्थानकी सकीर्णता होने पर जहां सिर्फ शयन किया हो उस स्थानके स्वामीको भी शय्यातर कहते है अर्थात् उस अवस्थामें दोनो शय्यातर है ।

विशेष यह है कि-दूसरे साधुओंके पास भाण्डोपकरण रखकर अन्य ही किसी स्थानपर प्रतिक्रमण और शयन करे तो जहां भाण्डोपकरण रक्खे है, उस स्थानका स्वामी शय्यातर नहीं कहलाता । क्योकि भाण्डोपकरण साधुके नेसराय (अधीनता) में ही रखे जाते है, गृहस्थके नेसरायमें रखना शास्त्रविरुद्ध है ।

પૂર્વે પણ ભાંડોપકરણ રાખી દે તો વસતિનો સ્વામી શય્યાતર થઇ જાય છે

(૨) પહેલાં જે વસતિનું ગ્રહણ કરી લીધું હોય, તેમાં સ્થાનની સંકીર્ણતા (સંકડાશ) હોવાથી કોઇ સાધુ પોતાનાં ભાંડોપકરણ બીજા સાધુઓની સમીપે રાખીને, પાસેના બીજા ઉપાશ્રયમાં તેના સ્વામીની આજ્ઞા લઇને પ્રતિક્રમણ કરે તો ત્યાં ભાંડોપકરણ ન રાખવા છતાં પણ જ્યા પ્રતિક્રમણ કર્યું હોય તે વસતિનો સ્વામી શય્યાતર કહેવાય છે. આ વસતિનો નહિ.

(૩) બીજા સ્થાનમાં પ્રતિક્રમણ કરીને સ્થાનની સંકડાશને કારણે જ્યાં માત્ર શયન કર્યું હોય તે સ્થાનના સ્વામીને પણ શય્યાતર કહે છે અર્થાત્ એ સ્થિતિમાં બેઉ શય્યાતર છે.

વિશેષ વાત એ છે કે-બીજા સાધુઓ પાસે ભાંડોપકરણ રાખીને બીજા જ કોઈ સ્થાન પર પ્રતિક્રમણ અને શયન કરે તો જ્યાં ભાંડોપકરણ રાખેલા હોય, તે સ્થાનનો સ્વામી શય્યાતર નથી કહેવાતો, કેમકે ભાંડોપકરણ સાધુની નેસરાય (અધીનતા) મા જ રાખવામાં આવે છે, ગૃહસ્થની નેસરાયમાં રાખવાં એ શાસ્ત્રવિરૂદ્ધ છે.

१ वसतिस्वामिन. ।

धोर्भिक्षालोभं प्रकाशयति, तत्र बहवो दोषा अपि चापतन्ति, तथाहि-शय्यातरपरिवर्त्तने पूर्वशय्यातरो विभावयति-अद्य मम गृहे त्यक्तोपाश्रयः साधुरसौ निश्चितमागमिष्यतीति तदर्थं सुरसमन्नादिकं साधनीयमिति कृत्वा निष्पादितस्यान्नपानादेराधाकर्मिकत्वापत्तिः। यदि तु स्वार्थं साधुनिमित्तं च निष्पादितं तदा मिश्रजातदोषापत्तिर्दुर्निवारैव। पूर्वं शय्यातरेण त्यक्तोपाश्रयाय साधवे कस्यचिद् वस्तुनः स्थापने स्थापनादोषः कथं साधुना वारणीयः। अन्ये दोषाः स्वयमूहनीयाः। तस्माद् झटिति शय्यातरपरिवर्त्तनं न साधुना विधेयम्।

वसतियाचनाविधिः।

अथोपाश्रयस्वामिनस्तदनुपस्थितौ तत्संरक्षकाद्वा वसतियाचनाविधिरभिधीयते-

---

शय्यातरत्वकी निवृत्ति करनेके लिए बारंबार शय्यातरका परिवर्तन नहीं करना चाहिए। ऐसा करनेसे यह प्रगट होता है कि साधु भिक्षाका लोभी है; इसमें बहुत से दोष भी उत्पन्न होते हैं।

जैसे-शय्यातरका परिवर्तन करनेसे पहला शय्यातर इस प्रकार सोचता है-आज मेरे उपाश्रयकी आज्ञा सतोने छोड दी है, अतः मेरे यहाँ आवश्य आवेगे, इसलिए उनके वास्ते स्वादिष्ट अन्न आदिक बनाना चाहिए, ऐसा विचार कर बनाया हुआ अन्नादिक आधाकर्मिक होगा। यदि पहला शय्यातर अपने और साधुके लिए इकट्ठा बनावेगा तो मिश्रजात दोष लगेगा। साधुके आनेकी सभावनासे वह किसी वस्तुको स्थापना करेगा तो स्थापना(ठवणा) दोष होगा। -इत्यादि अनेक दोष स्वयं समझ लेने चाहिये। इसलिए साधुको वारम्बार शय्यातर बदलना नहीं कल्पता है।

उपाश्रय—याचनाकी विधि।

वसति-स्वामीसे अथवा उसकीगैर-मौजूदगीमें उसके सरक्षकसे वसति-याचनाकी विधि कहते हैं—

શય્યાતરત્વની નિવૃત્તિ કરવાને માટે વારવાર શય્યાતરનો પરિત્યાગ કરવો ન જોઇએ એમ કરવાથી એવું પ્રકટ થાય છે કે સાધુ ભિક્ષાનો લોભી છે, એનાથી અનેક દોષો પણ ઉત્પન્ન થાય છે

જેમ-શય્યાતરનું પરિવર્તન કરવાથી પહેલો શય્યાતર આ પ્રમાણે વિચારે છે-આજ મારા ઉપાશ્રયની આજ્ઞા સતોએ છોડી દીધી છે, એટલે મારે ત્યાં જરૂર આવશે, તેથી એમને માટે સ્વાદિષ્ટ અન્નાદિ બનાવવાં જોઇએ. એવો વિચાર કરીને બનાવેલું અન્નાદિ આધાકર્મી બનશે, જો પહેલો શય્યાતર પોતાના માટે અને સાધુને માટે એકઠું બનાવશે તો મિશ્રજાત દોષ લાગશે. સાધુ આવવાની સભાવનાથી તે કોઇ વસ્તુને સ્થાપન કરશે તો સ્થાપના-(ઠવણા)-દોષ લાગશે -ઇત્યાદિ અનેક દોષો પોતાની મેળે સમજી લેવા એ કારણથી સાધુને વારવાર શય્યાતર બદલવા કલ્પતા નથી

(ઉપાશ્રય-યાચનાની-વિધિ)

વસતિના સ્વામી પાસે અથવા તેની ગેરહાજરીમાં એના સરક્ષકની પાસે વસતિ-યાચના કરવાની વિધિ કહે છે —

मुनिर्वदेत्–हे आयुष्मन् ! अस्यां वसतौ स्थातुमिच्छामि, यावति समये स्थातुमादेशो भवदीयो भवेत् तावानेव कालो यापनीयः, तत्रापि यावान् वसतिभूमिभागो ममावस्थानाय भवते रोचेत तावानेव ममापेक्षणीय इति ।

ततो गृहस्थः प्रतिब्रूयात्–भगवन् ! मुनीश्वर ! कियतः कालानवस्थास्यते ? तदा ऋतुबद्धशेषकाले सति साधुः "एकमासावधिकाले कल्प्ये यावदवसरं स्थास्यामि" इति; वर्षाकाले तु "चतुरो मासानत्र यापयिष्यामी" ति वदेत् ।

सागारिकेण साधुकल्प्यकालमुपलक्ष्य–"एतावतः कालानत्राहं न स्थास्यामि ग्रामान्तरं गमिष्यामी"-ति कथने तु साधुरेवं कथयेत्–'अत्र भवदुपस्थितिसमयावधिरेव कालो मया क्षपणीयः, तदनन्तरमिमां वसतिं परिहास्यामीति । पुनः सागारिकेण–'कियन्तः साधवो भवन्तः ? ' इति पृष्टः साधुरभिदधीत–समुद्रतरङ्गवत् साधूनामियत्तावधारणं कः कुर्यात्, यतः कियन्तो गच्छन्ति, कियन्तश्चागच्छन्ति, ये चागमिष्यन्ति तेऽप्यत्रावस्थानं

मुनि––हे आयुष्मन् ! हम इस वसतिमें ठहरना चाहते है । तुम जितने समय तक ठहरनेकी आज्ञा दोगे, उतने समयसे अधिक नहीं ठहरेंगे । उसमें भी तुम भूमि का जितना भाग हमें ठहरनेके लिए देना चाहो, उतनाही हमारे लिए पर्याप्त है ।

गृहस्थ पूछे कि–हे मुनिराज ! आप कितने समय तक ठहरना चाहते हैं ? ।

तब मुनि–ऋतुबद्ध शेषकाल हो तो 'एक मासके कल्पमें जब तक अवसर होगा तब तक रहेंगे' ऐसा, यदि चातुर्मास हो तो 'चार मास ठहरनेका हमारा कल्प है' ऐसा कहे । यदि साधुका कल्प-काल सुनकर गृहस्थ कहे कि–मै तो थोड़ेही दिन यहाँ रहूँगा फिर ग्रामान्तर जाऊँगा, तो साधुको कहना चाहिए कि–"जब तक तुम यहाँ रहोगे तब तक ही हम ठहरेंगे, तुम्हारे जाने पर इस वसतिको छोड देंगे । "

यदि गृहस्थ पूछे कि–'आप कितने साधु है ? ' तो साधु उत्तर देवें कि–'समुद्रके तरङ्गोंकी

મુનિ-હે આયુષ્મન્ ! અમે આ વસતિ (મકાન-સ્થાન) માં રહેવા ઇચ્છીએ છીએ. તમે જેટલા સમય સુધી રહેવાની આજ્ઞા આપશો, તેટલા સમયથી વધારે સમય રહીશુ નહિ. તેમાં પણ તમે ભૂમિનો જેટલો ભાગ અમને રહેવાને માટે આપવા ઇચ્છો તેટલો જ અમારે માટે પર્યાપ્ત (પૂરતો) છે

ગૃહસ્થ–હે મુનિરાજ ! આપ કેટલા સમય સુધી રહેવા ઇચ્છો છો ?

ત્યારે મુનિ–ઋતુબદ્ધ શેષકાળ હોય તો–'એક માસના કલ્પમાં જ્યાં સુધી અવસર હશે ત્યાં સુધી રહીશુ' એમ કહે, અથવા જો ચાતુર્માસ હોય તો–'ચાર માસ રહેવાનો અમારો કલ્પ છે' એમ કહે. જો સાધુનો કલ્પકાળ સાંભળીને ગૃહસ્થ કહે કે 'હું તો થોડા જ દિવસ અહીં રહીશ' તો સાધુએ કહેવુ જોઇએ કે જ્યાં સુધી તમે અહીં રહેશો ત્યા સુધી જ અમે રહીશુ, તમે જશો ત્યારે આ સ્થાનને અમે છોડી દઇશુ.'

જો ગૃહસ્થ પૂછે કે 'આપ કેટલા સાધુઓ છો ?' તો સાધુ ઉત્તર આપે કે–'સમુદ્રના

करिष्यन्ति। इत्थं सागारिकाज्ञामादाय तदीयनामगोत्रे विज्ञायोपाश्रये साधुस्तिष्ठेत्। गोचरीं गन्तुमुद्यतो भिक्षुः शय्यातरनामगोत्रे अविज्ञाय भिक्षार्थं न पर्यटेत्।

कल्प्याकल्प्यविधिः।

शय्यातरगृहे साधोरकल्प्यानि कथ्यन्ते, यथा —

(१) अशनम्, (२) पानम्, (३) खाद्यम्, (४) स्वाद्यम्, (५) वस्त्रम्, (६) पात्रम्, (७) कम्बलः, (८) रजोहरणम्, (९) दोरकम्, (१०) सूची, (११) कर्त्तरी, (१२) छुरिका, (१३) नखहरणी, (१४) कर्णशोधनी (कानखुचरनी), (१५) दन्तशोधनी (दांतखुचरनी) कंटकोद्धारणी (कांटा कढनो चीपिया) (१७) कण्टकः कण्टकोद्धारणीपात्रञ्च (कण्टककुत्थलिका), (१८) औषधम्, (१९) भैषज्यम्, (२०) शतपाकसहस्रपाकादितैलम्, (२१) पात्ररञ्जनद्रव्यम् (रोगान सफेदा आदि), (२२) पात्रादौ रन्ध्रकरणाद्युपयोगी शस्त्रविशेषः

तहर साधुओंकी मर्यादा नहीं है। क्योंकि कितने हो साधु आते हैं और कितनेही चले जाते है, जो आवेंगे वे भी यहीं ठहरेगे।

इस प्रकार गृहस्थकी आज्ञा लेकर, उसका नाम और गोत्र जानकर साधुको ठहरना चाहिए। जबतक साधुको शय्यातरका नाम और गोत्र न माल्रम हो जावे तब तक भिक्षाके लिए न जावे।

कल्प्याकल्प्य—विधि।

निम्नलिखित वस्तुएँ शय्यातरके घरकी कल्पनीय नहीं है–(१) अशन, (२) पान, (३) खाद्य, (४) स्वाद्य, (५) वस्त्र, (६) पात्र, (७) कम्बल, (८) रजोहरण, (९) डोरा, (१०) सुई, (११) कैंची, (१२) चाकू, (१३) नखहरणी (नहरनी), (१४) कर्णशोधनी (कानकुचरनी), (१५) दन्तशोधनी (दांतकुचरनी), (१६) चींपिया, (१७) कांटे और कांटोंकी कोथली, (१८) औषध, (१९) भेषज, (२०) शतपाक–सहस्रपाक आदि तेल (२१) पात्र रंगनेके लिए रोगान, सुपेता

तरगोनी पेठे साधुओनी मर्यादा नथी, केमके केटलाय साधुओ आवे छे अने केटलाय चाल्या जाय छे, जेओ आवशे तेओ पण अहीं ज रहेशे ”

એ પ્રમાણે ગૃહસ્થની આજ્ઞા લઇને, એનું નામ અને ગોત્ર જાણીને સાધુએ રહેવુ જોઈએ. જ્યા સુધી શય્યાતરનું નામ અને ગોત્ર સાધુના જાણવામાં ન આવે ત્યા સુધી ભિક્ષાને માટે જાય નહિ

કલ્પ્યાકલ્પ્ય-વિધિ

નીચે લખેલી વસ્તુઓ શય્યાતરના ઘરની સાધુને કલ્પે નહિ–

(૧) અશન, (૨) પાન, (૩) ખાદ્ય (૪) સ્વાદ્ય, (૫) વસ્ત્ર, (૬) પાત્ર, (૭) કામળી (૮) રજોહરણ, (૯) દોરા, (૧૦) સોય, (૧૧) કાતર, (૧૨) ચપ્પુ, (૧૩) નખ ઉતારવાની નેરણી, (૧૪) કાન–ખોતરણી, (૧૫) દાત–ખોતરણી, (૧૬) ચીપીયો, (૧૭) કાંટો અથવા કાંટાની કોથળી, (૧૮) ઓસડ, (૧૯(ભેષજ, (૨૦) શતપાક–સહસ્રપાક આદિ તેલ, (૨૧) પાત્ર રંગવા માટેનો રોગાન સફેતો વગેરે, (૨૨) પાત્રમા છિદ્ર આદિ કરવાના કામમા આવનાર

(सियार, रेती,इत्यादि), (२३) करगलम्, (२४) लेखनी, (२५) मसी, (२६) मसीपात्रम्, (२७) हिङ्गुलम्, (२८) खटिका, (खड़ी), इत्यादीनि ।

तथा शय्यातरगृहे साधोरुपादेयानि (कल्प्यानि) निर्दिश्यन्ते--

(१) तृणम् (२) लोष्टम्, (३) शिलापट्टकः (पेषणी), (४) शिलापुत्रकः, (५) भस्म, (६)पाषाणखण्डम्, (७) इष्टका, (८) धूलिः, (९) पीठम्, (१०) फलकम्, (आसनविशेषः), (११) शय्या (शरीरप्रमाणा), (१२) संस्तारकम् (सार्द्धद्वयहस्तप्रमाण आसनविशेषः), (१३)गोमयम्, (१४) सौपधिकशिष्यः, (१५) स्वाध्यायाद्यर्थं प्रातिहारिकं (पडिहारी) पुस्तकम्, इत्यादीनि । इदमप्यनुसन्धेयम्—यस्योपाश्रयस्य स्वामिने निवासशुल्कं दत्त्वा गृहस्थो निवासार्थं साधुं निमन्त्रयेत् स उपाश्रयः साधोरकल्प्य इति । उपाश्रयस्यानेकस्वामिनि सति कश्चिदेक एव शय्यातरत्वेन स्थापनीयः, न तु सर्वेऽपि ।

एतादृशशय्यातरस्य पिण्डे चत्वारो भङ्गा भवन्ति, यथा--

आदि, (२२) पात्रमें छेद आदि करनेके काममें आनेवाले स्यार, रेती आदि ओजार, (२३) कागज़, (२४) लेखनी, (२५) स्याही, (२६) हिंगलू, (२७) खडी इत्यादि ।

निम्नलिखित वस्तुएँ शय्यातरके घरसे साधुको कल्पनीय है- तिनका, (२) पत्थर, (३) शिला, (४) लोढी, (५) राख, (६) पत्थरका-टुकडा, (७) ईंट, (८) धूल, (९) छोटा बाजौट, (१०) फलक (आसन), (११) शय्या (शरीरप्रमाण), (१२) संस्तारक (ढाइ हाथका आसन), (१३) गोबर, (१४) उपधि सहित शिष्य, (१५) स्वाध्याय आदिके लिए पडिहारी (वापस दी जानेवाली) पुस्तक आदि ।

यह भी स्मरण रखना चाहिए कि-जिस उपाश्रयको भाड़ेपर साधुके लिए खरीदा हो वह उपाश्रय साधुको कल्पनीय नहीं है ।

उपाश्रयके अनेक स्वामी हो तो उनमेसे एक शय्यातर होता है । ऐसे शय्यातरके पिण्डमें

સારડી, રેતી વગેરે ઓજાર, (૨૩) કાગળ, (૨૪) લેખણુ, (૨૫) શાહી, (૨૬) હીંગળો, (૨૭) ખડી, ઈત્યાદિ.

નીચે લખેલી વસ્તુઓ શય્યાતરનાં ઘરની સાધુને કલ્પે—

(૧) તણખલું, (૨) પત્થર,(૩) શિલા, (૪) લોઢી (૫) રાખ, (૬) પત્થરનો ટુકડો,(૭) ઇંટ, (૮) ધૂળ, (૯) નાનો બાજઠ, (૧૦) ફલક (આસન), (૧૧) શય્યા (શરીરપ્રમાણની), (૧૨) સંસ્તારક (અઢી હાથનું આસન), (૧૩) છાણ, (૧૪) ઉપધિ સહિત શિષ્ય, (૧૫) સ્વાધ્યાય આદિને માટે પડિહારી (પાછી આપી દેવાય તેવી) પુસ્તક આદિ.

એ પણ યાદ રાખવુ જોઇએ કે જે ઉપાશ્રય સાધુને માટે ભાડે રાખ્યો હોય તે ઉપાશ્રય સાધુને કલ્પે નહિ

ઉપાશ્રયના અનેક સ્વામીઓ હોય તો તેમાથી એક શય્યાતર થાય છે. એવા શય્યાતરના પિંડમા ચાર ભાગા હોય છે, તે આ પ્રમાણે–(૧) એજ ઘરમા ભોજન બનાવવું અને

(१) एकत्र रन्धनम्, एकत्र भोजनम्,

(२) एकत्र रन्धनम्, अन्यत्र गेहादौ भोजनम्।

(३) पृथक्-पृथग् रन्धनम्, एकत्र भोजनम्।

(४) पृथक् पृथग् रन्धनम्, पृथक्-पृथग् भोजनम्।

तत्र द्वितीयचतुर्थभङ्गौ साधोः कल्प्यौ। द्वितीयभङ्गे एकत्र रन्धनेऽपि पश्चात् शय्यातरेतरांशस्य पृथक्कारे शय्यातरमात्रांशं विहायाऽन्येषां पिण्ड उपादेयः, तत्र तदानीं शय्यातरस्वत्वापगमात् चतुर्थकल्पे तु पिण्डे शय्यातरांशलेशसंसर्गशङ्कापि नास्ति। शय्यातरस्वत्वापगम एवोपादेयताहेतुरिति निष्कर्षः।

एवं प्रोषितभर्तृकासु अनेकासु सपत्नीष्वेकैव काचित् शय्यातरा कर्तव्या। चत्वारो भङ्गा अत्राऽपि पूर्ववदेव।

चार भंग होते है। वे इस प्रकार--

(१) उसी घरमें बनाना उसी घरमें जीमना।

(२) उसी घरमें बनाना दूसरे-दूसरे घरमें जीमना।

(३) दूसरे-दूसरे घरमें बनाना उसी घरमें जीमना।

(४) दूसरे-दूसरे घरमें बनाना और दूसरे-दूसरे घरमें जीमना।

इन चार भंगोमेसे दूसरा और चोथा भग साधुको कल्पनीय है। दूसरे भगमें एकत्र रन्धन होने पर भी शय्यातरसे भिन्न मनुष्यके अंशके अलग होजाने पर शय्यातरका भाग छोडकर अन्यका पिण्ड कल्पनीय है, क्योंकि वहाँ शय्यातरका स्वामित्व नहीं रहता।

चौथे भंगमें तो शय्यातरका स्वत्वके ससर्गकी तनिक भी आशंका नहीं है। तात्पर्य यह है कि जहा शय्यातरका स्वत्व (हक) नहीं रहता वही वस्तु साधुको ग्राह्य होती है।

इसी प्रकार यदि एक शय्यातरकी अनेक पत्नियाँ हो और वह (शय्यातर) परदेश चला गया हो तो उनमें किसी एकको ही शय्यातर बनाना चाहिए। पहले की नांई यहां भी चार

એજ ઘરમા જમવું; (२) એ ઘરમા ભોજન બનાવવું અને બીજા ઘરમાં જમવું. (૩) બીજા-બીજા ઘરમાં બનાવવુ અને એ ઘરમા જમવું (૪) બીજા-બીજા ઘરમાં બનાવવું અને બીજા-બીજા ઘરમા જમવું

આ ચાર ભાગાઓમાથી બીજો અને ચોથો ભાગો સાધુને કલ્પે છે. બીજા ભાંગામા એકત્ર રસોઈ થતી હોય તો પણ શય્યાતરથી ભિન્ન મનુષ્યોનો ભાગ જૂદો થઈ જતાં શય્યાતરનો ભાગ છોડીને અન્યનો પિંડ કલ્પે છે, કારણ કે ત્યાં શય્યાતરનું સ્વામિત્વ રહેતુ નથી.

ચોથા ભાગામા તો શય્યાતરના સ્વત્વના સંસર્ગની જરા પણ આશંકા નથી. તાત્પર્ય એ છે કે જેમા શય્યાતરનુ સ્વત્વ રહેતું નથી, તે વસ્તુ સાધુને માટે ગ્રાહ્ય બને છે

એજ રીતે જો શય્યાતરની અનેક પત્નીઓ હોય અને એ (શય્યાતર) પરદેશ ચાલ્યો ગયો હોય તો તે પત્નીઓમાથી કોઈ એકને જ શય્યાતર બનાવવી જોઈએ પહેલાંની પેઠે

अप्रोषितभर्तृकासु तु यया निष्पादितमन्नादिकं नियतं शय्यातरो भुङ्क्ते सैव शय्यातरा, यद्यनियतं तदा सर्वा अपि शय्यातरा मन्तव्याः, पूर्वोक्ततृतीयभङ्गेऽयं विशेषो बोद्धव्यः-यदा पृथक् पृथग् रन्धनं कृतम्, एकत्र कृत्वा भुक्तं च तदाऽवशिष्टमन्नादिकं विभज्य यदि स्वस्वगृहं नयेत् तादृशं शय्यातरस्वत्वविरहितमन्नादिकं साधोः कल्प्यमेवेति। एकत्रीकृतमविभक्तं चेन्न कल्प्यमिति तदाशयः।

कोऽपि शय्यातरो देशान्तरं प्रस्थितः स्वगृहाद्वहिर्गत्वा कुत्रचित् तिष्ठेत्, तत्र यदि गृहादन्यस्थानाद्वाऽशनपानादिकं तदर्थमानीतम्,अथवा बहिःप्रदेश एव निष्पादितं चेत् तदा तदशनादिकं साधोरकल्प्यम्, रात्रिवासार्थं वहिर्गतस्य साधोस्तु पुनः कल्प्यमेव।

भंग समझना चाहिए। उनका पति परदेश न गया हो तो वह जिस पत्नीके यहां नियमित रूपसे जीमता हो वही शय्यातर होती है

यदि नियमित रूपसे न जीमता हो-कभी कहीं कभी कहीं जीमता हो तो सभीको शय्यातर मानना चाहिए।

पहलेके चार भंगोमेंसे तीसरे भंगमें इतना विशेष समझना चाहिए यदि अलग अलग भोजन बनाया गया हो और एकत्र करके जीमा हो तो बचे हुए अन्न आदिको बाँट लेने पर साधु शय्या-तरसे अन्यका आहार आदि ले सकते है, क्योकि उसमेंसे शय्यातरका हिस्सा अलग निकल चुका है। हां इकट्ठा कर लिया हो और बांटा न हो तो साधुको कल्पनीय नहीं है। कोई शय्यातर परदेश जा रहा हो, और घरसे निकलकर कहीं बाहर ठहर गया हो, तो भी उसका अन्न-पान ग्राह्य नहीं है, भलेही वह अन्न-पान घरसे उसके लिए लाया गया हो या अन्य स्थानसे लाया गया हो अथवा वहीं पर तैयार किया हो। यदि रात्रिमें निवास करनेके लिए साधु बाहर चला गया हो तो कल्पनीय है।

એમાં પણ ચાર ભાંગા સમજવા જોઇએ એનો પતિ પરદેશ ન ગયો હોય તો તે જે પત્નીને ત્યાં નિયમિત રીતે જમતો હોય તે શય્યાતર બને છે. જો નિયમિત રીતે ન જમતો હોય અને કોઇવાર એકને ત્યા અને કોઈવાર બીજીને ત્યાં જમતો હોય તો બધી પત્નીઓને શય્યાતર માનવી જોઈએ.

પહેલાંના ચાર ભાંગામાંના ત્રીજા ભાંગામા એટલુ વિશેષ સમજવું કે-જો જુદું જુદું ભોજન બનાવ્યું હોય અને એકત્ર કરીને જમતા હોય તો વધેલા અન્નાદિને વહેંચી લીધા પછી સાધું શય્યાતરથી જૂદાનો આહાર આદિ લઈ શકે છે, કારણ કે એમાથી શય્યાતરનો ભાગ જૂદો કાઢવામા આવી ચૂકયો હોય છે. હા, એકઠું કરેલુ હોય અને વહેંચ્યુ ન હોય તો સાધુને કલ્પે નહિ કોઈ શય્યાતર પરદેશ જઈ રહ્યો હોય અને ઘરમાથી નીકળીને ક્યાંક બહાર રહ્યો હોય તો પણ એનું અન્ન-પાન ગ્રાહ્ય બનતુ નથી, પછી ભલે એ અન્ન-પાન ઘેરથી એને માટે લાવવામાં આવ્યુ હોય અથવા અન્ય સ્થાનથી લાવવામાં આવ્યું હોય, યા ત્યાજ તૈયાર બનાવવામા આવ્યુ હોય. જો રાત્રે નિવાસ કરવાને માટે સાધુ બહાર

यदि शय्यातरोऽन्यदीयगृहेऽन्यमन्नादिकं परिवेषयेत् , तत्रापि शय्यातरेण दीयमान मन्यदीयमप्यशन-पानादिकं साधोरकल्प्यम् ।

साधोर्भिक्षादाने शय्यातरस्या सहगमनरूपनिमित्तत्वे सति तत्र भिक्षाग्रहणमकल्प्यम् । ग्रामाद्बहिरपि शय्यातरीयगोशालादिसत्त्वे तदीयदुग्धादिकं साधोरकल्प्यम् ।

शय्यातरगृहे भोक्ता भृत्यादिरपि शय्यातरः । शय्यातरस्य स्वसा दुहिता च तस्मिन् दिवसे पुनरागमनमनिश्चित्य भर्तृकुलादागच्छेत्, तदा साऽपि शय्यातरा । यदि तस्मिन्नहनि भर्तृकुलं पुनर्गन्तुकामा शय्यातरगृहमागता चेत् सा शय्यातरगृहे एव शय्यातरत्वमुपयाति अन्यगृहे तु न तस्याः शय्यातरत्वमिति बोध्यम् ।

उपाश्रयस्वामिनि देशान्तरस्थे सति उपाश्रयसंरक्षकादाज्ञामादाय तत्र साधुस्तिष्ठेत्

शय्यातर, दूसरे गृहस्थके यहा उसी दूसरे गृहस्थका अन्नादि परोस रहा हो तो भी उसके हाथसे दिया-हुआ आहार कल्पनीय नहीं हैं । यदि किसी भिक्षाकी प्राप्तिमें शय्यातर निमित्त हो अर्थात् दलाली करे तो वह भिक्षा भी साधुको ग्राह्य नहीं है ।

गांवसे बाहर शय्यातरकी गोशाला आदि हो तो वहांका दूध आदि भी साधुको ग्राह्य नहीं है ।

शय्यातरके घर जीमनेवाले नोकर-चाकर भी शय्यातर है । शय्यातरकी वहिन या बेटी उस दिन वापस लौटनेका निश्चय न करके अपनी ससुरालसे आई हो तो वह भी शय्यातर है, यदि वापस लौटनेका विचार करके आई हो तो वह शय्यातरके घरमें ही शय्यातर है, दूसरे के घरमें नहीं, अर्थात् दूसरेके घरमें दूसरेका आहारादि यदि वह परोसे तो साधु ले सकते हैं ।

जब उपाश्रयका स्वामी परदेशमें रहता हो और उपाश्रय- रखतोले से आज्ञा लेकर साधु

ચાલ્યા ગયા હોય તો કલ્પે છે.

શય્યાતર, બીજા ગૃહસ્થને ત્યા એ બીજા ગૃહસ્થનાં અન્નાદિ પીરસે તોપણ એના હાથથી અપાતો આહાર કલ્પે નહિ જો કોઈ ભિક્ષાની પ્રાપ્તિમાં શય્યાતર નિમિત્ત હોય અર્થાત્ દલાલી કરે તો એ ભિક્ષા પણ સાધુને ગ્રાહ્ય થતી નથી.

ગામની બહાર શય્યાતરની ગૌશાળા આદિ હોય તો ત્યાનું દૂધ વગેરે પણ સાધુને ગ્રાહ્ય બને નહિ

શય્યાતરના ઘેર જમનારા નોકર-ચાકર પણ શય્યાતર છે, શય્યાતરની બહેન યા પુત્રી એ દિવસે પાછા જવાનો નિશ્ચય કર્યા વિના પોતાનો સાસરેથી આવી હોય તો તે પણ શય્યાતર છે જો પાછા જવાનો વિચાર કરીને આવી હોય તો શય્યાતરના ઘરમા જ તે શય્યાતર છે, બીજાના ઘરમાં નહિ, અર્થાત્ બીજાના ઘરમાં બીજાના આહારાદિ જો તે પીરસે તો સાધુ લઈ શકે છે.

જો ઉપાશ્રયનો સ્વામી પરદેશમાં રહેતો હોય અને ઉપાશ્રયના રખેવાળની આજ્ઞા લઈને સાધુ તેમા રહે તો જ્યારે ઉપાશ્રયનો સ્વામી આવી જાય ત્યારે તે શય્યાતર બને છે,

तत्रोपाश्रयस्वामिनि समागते साधुना शय्यातरत्वं स्वामिन्येव कल्पनीयम्, न सरक्षके।

शय्यातरप्रदत्तमन्येन स्वीकृतमप्यशनादिकं शय्यातरगृहे साधोरकल्प्यम्, व्यवहाशुद्ध्यादिदोषात्।

तथा शय्यातरेण दत्तमन्येनास्वीकृतमन्नादिकं शय्यातरगृहाद् बहिरपि साधोरकल्प्यम्, तत्र शय्यातरस्वत्वापगमाभावात्।

शय्यातरगृहाद् बहिरन्येन स्वीकृतं चेत् तदा साधोः कल्प्यमेव, तत्र शय्यातरस्वत्वापगमादिति बोध्यम्।

शय्यातरगृहाद्बहिस्तेन (शय्यातरेण) दत्तमन्येनाऽस्वीकृतं चेत् तत्राऽस्वीकृताशनपानादेः स्वीकारार्थं 'गृह्यतामिद'-मित्यादिपररूपा प्रवर्त्तनाऽपि साधोरकल्प्या। शय्यातरपि-

---

उसमें ठहरे तो जब उपाश्रयका स्वामी आजावे तब वही शय्यातर होता है, रखवाला नहीं।

शय्यातरने अशन आदिक दूसरे को दे दिया और दूसरेने चाहे उसे स्वीकार भी कर लिया हो तो भी शय्यातर के घर पर साधु को वह लेना नहीं चाहिए, क्योंकि स्वीकार कर लेनेसे शय्यातरका स्वामित्व तो नहीं रहा पर यहाँ व्यवहारसे अशुद्धि है।

यदि शय्यातरद्वारा दिये हुए अन्नादिको अन्य गृहस्थ न स्वीकार करे तो शय्यातरके घर में या घरसे बाहर कहीं भी साधुको नहीं ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि उस आहारादिमें शय्यातरका स्वत्व रहता है। शय्यातरके घरसे बाहर दूसरेने स्वीकार कर लिया हो तो साधुको कल्पनीय है, क्योंकि उसपर शय्यातरका स्वत्व नहीं रहा।

शय्यातरके घरसे बाहर शय्यातरने किसी दूसरेको दिया हो और दूसरेने स्वीकार न किया हो तो उस-अशनादिके स्वीकार करानेके लिए 'तुम ले लो' इत्यादिरूपसे गृहस्थको प्रेरणा करना भी साधुका कल्प नहीं है, क्योंकि उसमें शय्यातरका पिण्ड लेने आदि अनेक दोषोकी शका होती है।

शय्यातरका पिण्ड ग्रहण करनेमे दोष बतलाते है—

રખેવાળ નહિ

શય્યાતરે અશનાદિ બીજાને આપી દીધુ હોય અને બીજાએ ભલે એને સ્વીકારી પણ લીધું હોય, તો પણ શય્યાતરને ઘેર સાધુએ તે લેવુ જોઈએ નહિ, કારણ કે સ્વીકારી લેવાથી શય્યાતરનું સ્વામિત્વ તો રહ્યુ નહિ. પણ તેમા વ્યવહારથી અશુદ્ધિ રહેલી છે

જો શય્યાતરે આપેલુ અન્નાદિ અન્ય ગૃહસ્થ ન સ્વીકારે તો શય્યાતરના ઘરમા યા ઘરબહાર કયાય પણ તે સાધુએ ગ્રહણ કરવુ જોઈએ નહિ, કારણ કે તે આહારાદિમા શય્યાતરનું સ્વત્વ રહેલુ હોય છે. શય્યાતરના ઘરની બહાર બીજાએ સ્વીકારી લીધું હોય તો તે સાધુને કલ્પે, કેમકે તે ઉપર શય્યાતરનું સ્વત્વ રહેતુ નથી

શય્યાતરના ઘરની બહાર શય્યાતરે કોઈ બીજાને આપ્યું હોય અને બીજાએ સ્વીકાર્યું ન હોય તો તે અશનાદિનો સ્વીકાર કરાવાને માટે 'તમે લઈ લ્યો' ઇત્યાદિરૂપે ગૃહસ્થને પ્રેરણા કરવી એ પણ સાધુને કલ્પે નહિ, કારણ કે તેમા શય્યાતરનો પિંડ લેવો વગેરે

ण्डग्रहणादिदोषशङ्कासंभवात् ।

अथ शय्यातरपिण्डग्रहणे दोषाः प्रदर्श्यन्ते—

(१) वसतिदौर्लभ्यम्, वसतिस्वामिनो गृहेऽशनपानादिग्रहणनियमे स्वकीयान्नादिव्ययमालोच्य स्वोपाश्रयनिवासार्थमाज्ञां साधवे न कोऽपि दद्यात्, इत्याशयः । (२) प्रवचनलाघवम्; (३) स्वावासस्थान एव भिक्षालाभसंभावनया परिभ्रमणालस्ये संजाते कदाचित् शय्यातरगृहे आहाराद्यलाभेऽकालभिक्षाचर्याप्रसङ्गः, वेलातिक्रमे सति आर्त्तरौद्रध्यानप्रसङ्गः, स्वाध्यायान्तरायः, आत्मक्लान्तिश्च, (४) तीर्थङ्कराज्ञाभङ्गोऽपीत्यादयो दोषाः प्रसज्जन्ते,(२३)

इति शय्यातरविचारः ।

---

(१) शय्यातरका पिण्ड ग्रहण किया जाय तो वसति मिलना दुर्लभ (मुश्किल) हो जायगा । गृहस्थ यह विचारेंगे कि इन्हे स्थान देनेसे अन्नपान आदि भी देना पडेगा । ऐसा सोचकर गृहस्थ अपने स्थानमें रहनेके लिए साधुओ को स्थान नहीं देगा ।

(२) प्रवचनका लाघव होगा ।

(३) अपने निवासस्थान पर ही भिक्षा मिल जानेकी सभावनासे साधु भ्रमण करनेमें आलस्य करेंगे, और जव शय्यातरके घर पर आहार नहीं मिलेगा तो अकाल-(असमय)-में गोचरी करनेका प्रसग होगा, और असमयमें भिक्षा न मिलनेसे आर्त्त-रौद्र ध्यान होगे, स्वाध्याय आदि में अन्तराय पडेगा, और आत्माको खेद होगा ।

(४) इसके सिवाय तीर्थंकर भगवानने शय्यातर-पिण्डको अकल्पनीय बताया है, इसलिए उनकी आज्ञाका भग होगा, इत्यादि अनेक दोष आते है ॥

इति शय्यातर विचार समाप्त ।

અનેક દોષોની શકા રહે છે

શય્યાતરનો પિંડ ગ્રહણ કરવામા રહેલા દોષો બતાવે છેઃ—

(૧) શય્યાતરનો પિંડ ગ્રહણ કરવામાં આવે તો વસતિ (રહેવાનું સ્થાન) મળવું દુર્લભ (મુશ્કેલ) બની જાય ગૃહસ્થ એમ વિચારશે કે એમને સ્થાન આપવાથી અન્ન-પાન આદિ પણ દેવા પડશે. એમ વિચારીને ગૃહસ્થ પોતાના સ્થાનમાં રહેવાને માટે સાધુઓને સ્થાન આપશે નહિ.

(૨) પ્રવચનનુ લાઘવ થશે.

(૩) પોતાના નિવાસસ્થાન પર જ ભિક્ષા મળી જવાની સંભાવનાથી સાધુ ભ્રમણ કરવામા આળસ કરશે. અને જો શય્યાતરના ઘેરથી આહાર નહિ મળે તો અકાલે (અસમયે) ગોચરી કરવાનો પ્રસગ આવશે, અને અકાલે ભિક્ષા ન મળવાથી આર્ત-રૌદ્ર ધ્યાન થશે, સ્વાધ્યાયાદિમા અ તરાય પડશે અને આત્માને ખેદ થશે

(૪) એ ઉપરાંત તીર્થંકર ભગવાને શય્યાતર પિંડને અકલ્પનીય બતાવ્યો છે, તે માટે એમની આજ્ઞાનો ભગ થશે, ઈત્યાદિ અનેક દોષો ઉત્પન્ન થાય છે.

ઈતિ શય્યાતર-વિચાર સમાપ્ત.

आसन्दी=वेत्रासनं,खट्विका च (२४),

पर्य्यङ्कः=मञ्चविशेषः, स एव पर्यङ्ककः; स्वार्थे कः। चकाराच्छिविका-दोलाताम्र-यानादिग्रहणम् (२५),

गृहान्तरनिषद्या=गृहं=गृहिनिकेतन तस्याऽन्तरम्=अभ्यन्तरं मध्यमिति यावत्, तस्मिन् निषद्या=निषदनम् उपवेशनमित्यर्थः, यद्यपि व्याकरणादौ निषीदन्त्यस्या'-मिति विगृह्य 'निषद्या=आपणः, इत्युक्तं तथाप्यत्र शास्त्रसङ्केतितत्वाद्भाववयवन्तोऽर्थ निषद्या-शब्दः (२६),

गात्रस्य=शरीरस्य उद्वर्त्तनानि=मलापनयनद्रव्येण समालेपनानि 'उवटन' इति-लोकप्रसिद्धानि, चकारादन्येषामपि शरीरसम्बन्धिनां संस्काराणां ग्रहण बोद्धव्यम् (२७),

एषु चारित्रघातादयो दोषाः सुस्पष्टा एव ॥५॥५॥

मूलम्–गिहिणो(२८) वेयावडियं. जाइयाजीववत्तिया(२९)।
तत्तानिव्वुडभोइत्तं(३०). आउरस्सरणाणि(३१) य ॥६॥

छाया–गृहिणो वैयावृत्यं, जात्याजीववृत्तिता (आजीववर्तिता)
तप्तानिर्वृतभोजित्व,–मातुरस्मरणानि च ॥६॥

सान्वयार्थः–(२८) गिहिणो=गृहस्थकी वेयावडियं=वैयावच्च करना, (२९) जाइया=जातीसे-अपनी उंची जाती बताकर आजीववत्तिया=जीविकानिर्वाह करना, (३०) तत्तानिव्वुडभोइत्त=अग्निमें सिर्फ तपाया हुआ किन्तु शस्त्रसे अपरिणत-मिश्र भोजन करना, य=और (३१) आउरस्सरणाणि=बीमार होनेपर पूर्वभुक्त वस्तुका स्मरण करना ॥६॥

-टीका–गृहिणः=गृहस्थस्य, वैयावृत्त्यं= गृहस्थायान्नाऽऽनयनप्रदानादि-लक्षण-शुश्रूषाकरणम् (२८)

जात्या= 'अहमेतादृशजातिविशिष्टः' इत्याद्याघोषणेन, उपलक्षणमिदं कुलादीनाम-

---

(२४) आसन्दी–वेतकी बनी हुइ छिद्रवाली कुर्सीपर बैठना।

(२५) पर्यङ्क-एक प्रकारका पलंग, पालखी, डोला, तामजाम आदिका ग्रहण करना।

(२६) गृहान्तरनिषद्या–गृहस्थके घरमें बैठना।

(२७) गात्रोद्वर्त्तन शरीर पर उबटन आदि करना ॥५॥

---

(२४) આસન્દી–નેતરની બનાવેલી છિદ્રવાળી ખુરશી પર બેસવુ
(૨૫) પર્યંક–એક પ્રકારનો પલંગ, પાલખી હિંડોળો, મ્યાનો.
(૨૬) ગૃહાન્તરનિષદ્યા–ગૃહસ્થના ઘરમા બેસવું
(૨૭) ગાત્રોદ્વર્તન–શરીર પર સુગંધી પદાર્થો ચોળવા (૫)

पि, आजीववृत्तिता–आजीवे = जीविकायां वृत्तिः = स्थितिर्यस्य तद्भावः, यद्वा आजीववर्त्तिता, इतिच्छाया आजीवे जीविकायां वर्तितुं शीलं यस्यासौ अजीववर्त्ती तस्य भाव इति तदर्थः (२९),

तप्तानिर्वृतभोजित्व = तप्तं = वह्निनोष्णीकृतं च तत् अनिर्वृत = शस्त्रापरिणतं तप्तानिवृतम् अर्द्धपकमिति भावस्तद्भोक्तुं शीलमस्य तत्त्वम्, मिश्रान्नादिसेवनमित्यर्थः (३०)

आतुरस्मरणम् = आतुराः = रोगादिग्रस्तास्तेषां स्मरणं = तत्कर्तृकपूर्वोपभुक्तवस्तुस्मरणमिति फलितम्, यद्वा आतुरशब्दोऽत्र भावप्रधाननिर्देशस्तथाचाऽऽतुरत्वे स्मरणमिति समासः, रोगाद्यवस्थायां पूर्वाऽनुभूतवस्तुस्मरणमित्यर्थः (३१) ।

चकार इहापि समुच्चयार्थकः । अत्रासंयमादयो दोषा जायन्ते ॥६॥

मूलम्–मूलए[३२] सिंगवेरे[३३] य, उच्छुखंडे[३४] अनिव्वुडे ।
कंदे[३५] मूले[३६] य सच्चित्ते, फले[३७] बीए[३८] य आमए ॥७॥

छाया–मूलकं शृङ्गवेरं च इक्षुखण्डमनिर्वृतम् ।
कन्दो मूलं च सचित्तं, फलं बीजं चामकम् ॥७॥

सान्वयार्थः–य=और (३२) मूलए=मूला (३३) सिंगवेरे=अदरख (३४) उच्छुखंडे सगन्ना (सेलडी) अनिव्वुडे=शस्त्रसे अपरिणत (३५) कंदे=कन्द य=और (३६) मूले=शिफा (तथा) सच्चित्ते=सचित्त (३७) फले=फल य=और आमए=सचित्त (३८) बीए=बीज । भावार्थ–इनके सेवनसे अनन्तकाय आदि वनस्पतिकायकी विराधना होती है ॥७॥

टीका–मूलकं=प्रसिद्धम् ३२ शृङ्गवेरं=शृङ्गवद्वेरं=शरीर यस्य तत् आर्द्रकमित्यर्थः (३३), च=तथा इक्षुखण्डम् इक्षुशकलम् एतत्रयम् अनिर्वृतं=शस्त्रपरिणतम् (३४) कन्दः=

(२८) गृहस्थकी वैयावृत्य (सेवा–शुश्रूषा) करना ।
(२९) अपनी जाति या कुल आदि बताकर भिक्षा लेना ।
(३०) आधा पक्का आधा कच्चा अर्थात् मिश्र अन्न-पानी आदि लेना ।
(३१) रोग आदिकी अवस्थामें पहले सेवन किये हुए विषयोंका स्मरण करना अर्थात् बीमारीमें हाय ! हाय ! करना ॥६॥

(२८) ગૃહસ્થની વૈયાવૃત્ય (સેવા-શુશ્રૂષા) કરવી.
(૨૯) પોતાની જાતિ યા કુળ બતાવીને ભિક્ષા લેવી
(૩૦) અધપાકા-અધકાચા અર્થાત્ મિશ્ર અન્નપાણી આદિ લેવા
(૩૧) રોગાદિની અવસ્થામા પહેલા સેવેલા વિષયોનુ સ્મરણ કરવુ અર્થાત્ બિમારીમાં 'હાય ! હાય !' કરવી (૬)
(૩૨) સચિત્ત મૂળાનુ સેવન કરવુ .

शृगणादिः (३५), मूलं=शिफा (३६), च=पुनः, सचित्तं=सजीवम्, फलं=कर्कटी-त्रपुपादिकम् (३७), च=तथा बीजं=तिलादि, आमकम्=सचित्तम् (३८), । अत्रानन्तकायादिविराधनादिदोषा जायन्ते ॥७॥

मूलम्–सोवच्चले[३९] सिंधवे[४०] लोणे रुमालोणे[४१] य आमए
सामुद्दे[४२] पंसुखारे[४३] य कालालोणे[४४] य आमए ॥८॥

छाया:–सौवर्चलं लवणं, रुमालवणश्चामकः ।
सामुद्रः पांशुक्षारश्च, काललवणश्चामकः ॥८॥

सान्वयार्थः–आमए=सचित्त (३९) सोवच्चले=सौवर्चलं-संचरनमक (४०) सिंधवे लोणे=सैन्धव-सींधानमक (४१ रुमालोणे=रुमानदीसे निकला हुआ नमक (४२) सामुद्दे=समुद्री नमक य=और (४३) पंसुखारे=ऊपर नमक य=और आमए=सचित्त (४४) कालालोणे=काला नमक । भावार्थ-उल्लिखित नमकोंका सेवन करने से पृथ्वीकाय आदिकी विराधना होती है ॥८॥

टीका—सुवर्चले=देशविशेषे भवः सौवर्चलः=रुचकलवणः (३९),

सिन्धुनद्युपलक्षितदेशीयपर्वते भवः सैन्धवः लवणः=लुनाति=छिनत्ति दूरयति कफादिकमिति लवणः, इदं सौवर्चलादेर्विशेषणपदम् (४०),

(३२) सचित्त मूलका सेवन करना ।
(३३) सचित्त अदरख (आदा) का सेवन करना ।
(३४) सचित्त इक्षुखण्डका सेवन करना ।
(३५) सचित्त सूरण आदि कन्दोका सेवन करना ।
(३६) सचित्त मूलका सेवन करना ।
(३७) सचित्त ककडी खीरा आदि फलोका सेवन करन ।
(३८) सचित्त बीजका=तिल आदिका सेवन करना ॥७॥
(३९) सचित्त रुचक (सौवर्चल सोचर) नमकका सेवन करना ।
(४०) सचित्त सैन्धव (सेंधा) नमकका सेवन करना ।

(૩૩) સચિત્ત આદુનુ સેવન કરવુ.
(૩૪) સચિત્ત શેરડીના પતીકા–કકડાં–નુ સેવન કરવુ
(૩૫) સચિત્ત સૂરણ આદિ કંદોનુ સેવન કરવું
(૩૬) સચિત્ત મૂળનુ સેવન કરવુ.
(૩૭) સચિત્ત કાકડી ખીરા આદિ ફલોનું સેવન કરવુ.
(૩૮) સચિત્ત બીજ તલ આદિનુ સેવન કરવું (૭)
(૩૯) સચિત્ત રૂચક લૂણ (સૌવર્ચલ-સંચળ) નુ સેવન કરવું.
(૪૦) સચિત્ત સિંધાલૂણનુ સેવન કરવુ

च=तथा, रुमालवणः=रुमा=विशिष्टलवणाकरभूता काचिन्नदी तस्या लवणः आमकः =सचित्तः, अस्य पूर्वार्द्धे सर्वत्र सम्बन्धः (४१),

सामुद्रः=समुद्रोत्थलवणः (४२),

पांशुक्षारः=ऊपरलवणः (४३),

च=तथा काललवणः=कृष्णलवणः'विड्लवण, इतिप्रसिद्धः (४४),

आमकः=सचित्तः, 'आमक' इत्यस्योत्तरार्द्धे सर्वत्र सम्बन्धः। अत्र पृथ्वीकायविराधनादयो दोषा भवन्ति ॥८॥

मूलम्–धुवणत्ति[४५] वमणे,[४६] य वत्थीकम्म[४७]-विरेयणे[४८] ।
अंजणे[४९] दंतवण्णे[५०] य, गायब्भंग[५१]विभूसणे[५२] ॥९॥

छायाः–धूपनमिति वमनं च, वस्तिकर्म विरेचनम् ।
अञ्जनं दन्तवर्णश्च, गात्राभ्यङ्ग–विभूषणे ॥९॥

सान्वयार्थः–(४५) धुवणेत्ति=रोग मिटाने आदिके लिए किसी स्थानमें धूप देना, (४६) वमणे=प्रयत्नपूर्वक वमन करना, (४७) वत्थीकम्म=वस्तीकर्म करना, य=और (४८) विरेयणे=विरेचन-जुलाव लेना, (४९) अंजणे=अंजन-सुरमा आदि आंजना, (५०) दंतवण्णे =दातून मसी आदिसे दाँत साफ करना, (५१–५२) गायब्भंगविभूसणे=शरीरको तैल आदिसे मालिश करना (५१) तथा वस्त्र आदिसे भूपित करना (५२)॥९॥

टीका—धूपनं=रोगाद्युपशान्तिनिमित्तं स्थानकादिषु धूपदानम्, सौगन्धयोत्पत्तिनिमित्तमशुकादीनां धूपादिना वासनञ्च (४५), वमन=वमिजनकभेषजादिप्रयोगेण वान्तिकरणम् (४६),

---

(४१) सचित्त रुमा (नदीविशेषके) नमकका सेवन करना ।
(४२) सचित्त समुद्री नमकका सेवन करना ।
(४३) सचित्त ऊषर नमकका सेवन करना ।
(४४) सचित्त काले नमकका सेवन करना ॥८॥
(४५) रोग आदिकी शान्ति अथवा सुगंधिके लिए स्थानक या वस्त्र आदिमें धूप देना ।
(४६) दवाई लेकर वमन करना ।

---

(૪૧) સચિત્ત રૂમા (નદીવિશેષમાંથી નીકળેલા) મીઠાનુ સેવન કરવુ.
(૪૨) સચિત્ત સમુદ્રના લૂણનુ સેવન કરવું.
(૪૩) સચિત્ત ઊપર લૂણ (ખારા) નુ સેવન કરવુ (૮)
(૪૪) સચિત્ત કાળા મીઠાનું સેવન કરવુ,
(૪૫) રોગાદિની શાન્તિ અથવા સુગંધિને માટે સ્થાનક યા વસ્ત્રાદિને ધૂપ કરવો.
(૪૬) દવા લઈને વમન કરવુ

वस्तिकर्म=वसतःतिष्ठतः, मूत्रपुरीषावेति, वस्ते=आच्छादयति मूत्राऽऽशयपुटमिति वा वस्तिः=नाभेरधोभागः, तस्याः, कर्म=तच्छोधनव्यापारो वस्तिकर्म=मलादिशोधनार्थमपानादिमार्गे वर्त्तिकादिप्रवेशनम्, अपानमार्गेण जलकर्षणं वेत्यर्थः (४७),

विरेचनम्-कोष्ठशुद्ध्यर्थं स्वर्णमुख्यादिविरेचनसेवनम् (४८),

अञ्जन=शोभावशीकरणाद्यर्थं नयनयोः कज्जल-सौवीरादिदानम् (४९),

दन्तवर्णः-[1] वर्णनं-वर्णः, दन्तानां वर्णः=उज्ज्वलीकरणं दन्तवर्णः=अङ्गुली-दन्तशाण (मसी) काष्ठादिभिर्दन्तघर्षणम् (५०)।

गात्राभ्यङ्ग-विभूषणे=अभ्यङ्गश्च विभूषणं चेत्यनयोरितरेतरयोगद्वन्द्व इत्यभ्यङ्ग-विभूषणे, गात्रस्य अभ्यङ्ग-विभूषणे गात्राभ्यङ्गविभूषणे, 'द्वन्द्वान्ते द्वन्द्वादौ वा श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते' इतिन्यायाद् गात्रशब्दस्य प्रत्येकं सम्बन्धस्तत्र गात्राभ्यङ्गः=गात्रस्य=शरीरस्य अभ्यङ्गः=शतपाक सहस्रपाकादितैलादिनाऽभ्यञ्जनं मर्दनमिति यावत् (५१),

गात्रविभूषणं=वस्त्रालङ्करणादिना शरीरपरिष्करणम् (५२),

धूपनादिनाऽग्निकायप्रभृतिविराधनादिदोषा जायन्ते ९ ॥

सम्प्रत्युपसंहरन्नाह-'सव्वमेय' -इत्यादि ।

मूलम्-सव्वमेयमणाइन्नं निग्गंथाण महेसिणं ।
संजमंमि अ जुत्ताणं लहुभूयविहारिणं ॥१०॥

(४७) मल आदिके शोधनके लिए वस्तिकर्म करना ।

(४८) कोठेकी शुद्धिके लिए सनाय आदिका जुलाब लेना ।

(४९) नेत्रोंमें कज्जल आदि लगाना ।

(५०) मस्सी आदि लगाकर दांत रंगना ।

(५१) शतपाक, सहस्रपाक आदि तेलसे शरीरकी मालिश करना ।

(५२) शरीरका वस्त्र आभूषणोसे मण्डन करना ।

इन धूप आदिसे अग्निकाय आदि जीवोंकी विराधना आदि दोष होते हैं ॥९॥

(૪૭) મલાદિના શોધન માટે બસ્તિકર્મ કરવુ
(૪૮) ઉદરની શુદ્ધિને માટે સોનામુખી આદિનો જુલાબ લેવો.
(૪૯) આંખોમાં કાજળ (મેશ) આંજવું.
(૫૦) મસ્સી વગેરે લગાડીને દાંત રંગવા.
(૫૧) શતપાક, સહસ્રપાક આદિ તેલથી શરીરને મર્દન કરવું.
(૫૨) શરીરનુ મડન કરવુ (શોભાવવું)
એ ધૂપ આદિથી અગ્નિકાય આદિ જીવોની વિરાધના આદિ દોષ લાગે છે (૯).

१ चौरादिकाद्वर्णयतेर्भावे घञ् ।

छायाः-सर्वमेतदनाचीर्णं, निर्ग्रन्थानां महर्षिणाम् ।
संयमे च युक्तानां लघुभूतविहारिणाम् ॥१०॥

सान्वयार्थः-निग्गंथाण=परिग्रहरहित महेसिणं=महर्षियोंके संजमंमि=संयममें जुत्ताणं=लगेहुए य और लहुभूयविहारिणं = वायुके समान अप्रतिबन्धविहार करनेवालोंके एयं = ये पूर्वोक्त बावन सव्व=सब अणाइन्नं=अनाचीर्ण हैं । भावार्थ-निर्ग्रन्थ महर्षियोंने पूर्वोक्त इन बावन विषयोंका आचरण नहीं किया, अतः ये अनाचीर्ण कहलाते हैं । साधुओंको इनका आचरण नहीं करना चाहिये ॥१०॥

टीका——ग्रन्थान्निर्गता निर्ग्रन्थाः=कनक-रजतादिद्रव्यग्रन्थि-मिथ्यात्वादि भावग्रन्थिरहितास्तेषाम्, महर्षीणाम् महान्तश्च ते ऋषयः महर्षयस्तेषाम्, यद्वा 'महेसिणा' मिति च्छाया, महो = निजहितं तम् एषयन्ति=गवेषयन्तीति महैषिणस्तेषाम् । संयमे=सकलसावद्यव्यापारोपरमलक्षणे युक्तानां = व्यापृतानां दत्तचित्तानामित्यर्थः, च=पुनः लघुभूतविहारिणाम् = लघुभूतो=वायुस्तद्वदप्रतिबद्धं विहरन्ति तच्छीलास्तेषां वायुवदप्रतिबन्धविहारिणामित्यर्थः । एतत्=पूर्वोक्तं सर्वं द्विपञ्चाशत्प्रकारकम् अनाचीर्णम्=अनासेवितम् 'अस्तो'-ति शेषः ॥१०॥१०॥

अनाचीर्णत्यागिनो मुनयः कीदृशा भवन्ति ? -इत्याह-

मूलम्-पंचासवपरिन्नाया[1] तिगुत्ता[2] छसु[3] संजया[4] ।
पंचनिग्गहणा[5] धीरा[6], निग्गंथा[7] उज्जुदंसिणो[8] ॥११॥

छायाः-पञ्चास्रवपरिज्ञाता, -स्त्रिगुप्ताः षट्सु संयताः ।
पञ्चनिग्रहणा धीरा, निर्ग्रन्था ऋजुदर्शिनः ॥११॥

सान्वयार्थः-पंचासवपरिन्नाया=पांच आस्रवोंकेत्यागी, तिगुत्ता=मनोगुप्ति १ वचगुप्ति २ कायगुप्ति ३ से युक्त, छसु=छह कायमें संजया=संयमवान्, पंचनिग्गहणा=पांच इन्द्रियोंके निग्रह करनेवाले धीरा=परीषह उपसर्ग सहनेमें धीर निग्गंथा=मुनि उज्जुदंसिणो=मोक्षमार्गके आराधक होते हैं । भावार्थ-जो अनाचीर्णोंका त्याग करते हैं वे गाथोक्तविशेषणोंसे विशिष्ट होते हैं ॥११॥

अब उपसंहार करते हैं-'सव्वमेय०' इत्यादि ।

बाह्याभ्यन्तर परिग्रहकी ग्रन्थिसे रहित, अपने हितका अन्वेषण करनेवाले महर्षि तीन करण तीन योगसे सावद्य व्यापारके त्यागरूप सकल संयमसे युक्त और वायुकी तरह अप्रतिबन्ध विहार करनेवाले मुनिराजोंके ये पूर्वोक्त बावन अनाचीर्ण हैं ॥१०॥

હવે ઉપસંહાર કરે છેઃ—સવ્વમેય૦ ઇત્યાદિ,

બાહ્યાભ્યંતર પરિગ્રહની ગ્રંથિથી રહિત, પોતાના હિતનું અન્વેષણ કરનારા મહર્ષિઓએ ત્રણ કરણ ત્રણ યોગથી સાવદ્ય વ્યાપારને ત્યજવા રૂપ સકળ સંયમથી યુક્ત અને વાયુની પેઠે અપ્રતિબંધ વિહાર કરનારા મુનિરાજોના એ પૂર્વોક્ત બાવન અનાચીર્ણ કહેલ છે.

टीका-पञ्चास्रवपरिज्ञाताः=आस्रवन्ति=आक्षरन्ति-मिथ्यात्वादिनालिकाभ्यः कर्मसलिलमात्मतडागे यैस्ते आस्रवा हिंसादयः, पञ्च च ते आस्रवाश्चेति पञ्चास्रवा परि = सर्वतोभावेन ज्ञाताः=ज्ञपरिज्ञातोऽनर्थमूलमनुभाविताः प्रत्याख्यापरिज्ञातो हेयत्वेन परित्यक्ता यैस्ते तथोक्ताः,[1] त्रिगुप्ताः = तिसृभिर्मनोवाक्कायगुप्तिभिर्गुप्ताः षट्सु = पृथिव्यादि कायषट्केषु संयताः सम्यग् यतनावन्तः—षड्कायोपमर्दनविरता इत्यर्थः, पञ्चनिग्रहणाः=पञ्च = प्रसंगात् पञ्चेन्द्रियाणि निगृह्णन्ति = वशयन्तीति [2]तथोक्ताः, धीराः = परीषहोपसर्गादिषु धृतिमन्तः, निर्ग्रन्थाः=मुनयः ऋजुदर्शिनः=ऋजु = अवक्रम् अकुटिलस्वभावं यथा स्यात्तथा द्रष्टु शीलं येषां ते तथोक्ताः-सरलहृदया इत्यर्थः, यद्वा अर्जते=उपार्जयति = सम्पादयत्यविचलसुखमिति ऋजुः = सम्यग्रत्नत्रयलक्षणो मोक्षमार्गस्त पश्यन्ति तच्छीला इति ऋजु दर्शिनः मोक्षमार्गसाधका इत्यर्थः ॥११॥११॥

मूलम्—आयावयंति[४] गिम्हेसुः[३] हेमंतेसु[५] अवाउडा[६] ।
वासासु[७] पडिसंलीणाः[८] संजया[२] सुसमाहिया[१] ॥१२॥

अनाचीर्णोका त्याग करनेवाले मुनि कैसे होते है ? सो कहते है—'पंचीसव०' इत्यादि ।

जिनके द्वारा आत्मारूपी तालावमें मिथ्यात्वादि रूप नालाओसे कर्मरूपी जल आता है उन्हें आस्रव कहते है । वे आस्रव मिथ्यात्व अविरति आदिके भेदसे पाच प्रकारके है । उन आस्रवोंको ज्ञ–परिज्ञासे अनर्थोंका कारण जानकर प्रत्याख्यान-परिज्ञासे त्यागते है । अर्थात् अनाचीर्णोका त्याग करनेवाले पांच आस्रवोसे विरत हो जाते है, मन वचन कायरूप तीन गुप्तियोसे युक्त होते हें, पृथ्वी आदि षट्‌ कायकी यतनामें सावधान रहते है, अर्थात् षड्जीवनिकायकी विराधनासे रहित होते हैं, पांच इन्द्रियो का दमन करते है, परीषह और उपसर्ग सहने में दृढ़ ऐसे मुनि, सरल हृदय वाले होते है, अथवा अविनाशी सुखको प्राप्त करनेवाले या मोक्षमार्गके साधक होते है ॥ ११ ॥

અનાચીર્ણોનો ત્યાગ કરનારા મુનિઓ કેવા હોય છે ? તે કહે છેઃ—
पंचासव० ઇત્યાદિ

જેની દ્વારા આત્મા રૂપી તળાવમાં મિથ્યાત્વાદિ-રૂપ નાળાઓથી કર્મ-રૂપી જળ આવે છે તેને આસવો કહે છે એ આસવો મિથ્યાત્વ અવિરતિ આદિ ભેદે કરીને પાંચ પ્રકારના છે. એ આસવોને જ્ઞપરિજ્ઞાથી અનર્થોના કારણરૂપ જાણીને પ્રત્યાખ્યાન પરિજ્ઞાથી ત્યજે છે, અર્થાત્ અનાચીર્ણોનો ત્યાગ કરનારાઓ પાંચ આસવોથી વિરત થઈ જાય છે, મન વચન કાયા-રૂપ ત્રણ ગુપ્તિઓથી યુક્ત થાય છે, પૃથિવી આદિ છ કાયની યતનામાં સાવધાન રહે છે, અર્થાત્ છ જીવનિકાયની વિરાધનાથી રહિત થાય છે, પાચ ઈંદ્રિયોનું દમન કરે છે, પરીષહ અને ઉપસર્ગ સહેવામા દૃઢ એવા મુનિઓ સરલહૃદય બને છે, અથવા અવિનાશી સુખને પ્રાપ્ત કરનારા યા મોક્ષમાર્ગના સાધક બને છે (૧૧).

१ 'पञ्चास्रवपरिज्ञाताः' अत्र आहिताग्न्यादित्वान्निष्ठान्तस्य परनिपातः ।
२ 'पञ्चनिग्रहणाः, अत्र नन्द्यादित्वात्कर्त्तरि ल्यु' ॥

छाया–आतापयन्ति ग्रीष्मेषु, हेमन्तेष्वप्रावृताः ।
वर्षासु प्रतिसंलीना, संयताः सुसमा (हिताः) धिकाः ॥१२॥

सान्वयार्थः–सुसमाहिय=प्रशस्त समाधिवाले संजया = संयमी मुनि गिम्हेसु=ग्रीष्मऋतुमें पडिसंलीणा = कछुएकी भांति इन्द्रियोंका गोपन करते हैं, अर्थात् जिस ऋतुमें जिस प्रकारकी तपस्यासे अधिक कायक्लेश होता हो उस ऋतुमें वही तपस्या करते हैं ॥१२॥

टीका–सुसमाधिकाः=समाधीयतेऽस्मिन् मनो विवेकिभिरिति समाधिः–प्रशस्तभावाऽवस्थानम्, सु=शोभनः समाधिर्येषांते तथोक्ताः = विनय-श्रुतादिसमाधिसम्पन्नाः । यद्वा 'सुसंमाहिताः' इति च्छाया, 'निरवद्यव्यापारविधानदत्तावधानाः' इति तदर्थः । संयता-प्रवचनमननयत्नवन्तः, मुनयः ग्रीष्मेषु = घर्मर्तुषु आतापयन्ति=ऊर्ध्वाभिमुखावस्थानादिना परितापयन्ति स्वतनुमिति शेषः, आतापनां विदधतीति यावत् । घ्नन्ति = नाशयन्ति शैत्याधिक्येन चित्तसमाधिमिति हेमन्ताः[1] हिमोऽन्तोऽवयवोऽस्त्येषामिति वा पृषोदरादित्वाद् हेमन्तास्तेषु हिमर्त्तुषु अप्रावृताः = 'अनुदरा कन्ये'–त्यत्रेव नञोऽल्पार्थकत्वेन अल्पप्रावरणाः, यद्वा प्रावरणरहिताः, वर्षासु = प्रावृट्कालेषु, प्रतिसंलीनाः = कूर्मवदिन्द्रियगोपनतत्परा भवन्तीत्यर्थः । ग्रीष्मादिषु बहुवचनप्रयोगः प्रतिवत्सरमेवंकरणसंसूचनाय॥१२॥१२॥

जिस अवस्थामें आत्मज्ञानी जन प्रशस्त भावोंसे रमण करते हैं उसे समाधि कहते हैं। अनाचीर्णोंका त्याग करनेवाले साधु उम विनय श्रुत आदि चार प्रकारकी समाधिको प्राप्त करते है । अथवा निरवद्य व्यापार करनेमे सदा सावधान रहते है । तथा प्रवचनके मनन करनेमें यत्नवान् रहते है । ग्रीष्म ऋतुमें सूर्यके सन्मुख मुख करके भुजाएँ फैलाकर आतापना लेते है । शीत ऋतुमे थोडे कपडे रखते है, या कपडोको दूर कर शीतकी आतापना लेते है, वर्षा ऋतुमें कछुवेकी तरह इन्द्रियोंका गोपन करनेमे तत्पर होते है ।

ग्रीष्म, हेमन्त, और वर्षा-शब्द गाथामें बहुवचनान्त है, इससे यह आशय निकलता है कि प्रत्येक वर्षकी ऋतुओमें ऐसा करते है ॥१२॥

'परीसह०' इत्यादि ।

જે અવસ્થામા આત્મજ્ઞાની જન પ્રશસ્ત-ભાવોથી રમણ કરે છે તેને સમાધિ કહે છે. અનાચીર્ણોનો ત્યાગ કરનારા સાધુઓએ વિનય શ્રુત આદિ ચાર પ્રકારની સમાધિને પ્રાપ્ત કરેલ છે, અથવા નિરવદ્ય વ્યાપાર કરવામા સદા સાવધાન રહે છે. તથા પ્રવચનનુ મનન કરવામાં યત્નવાન્ રહે છે ગ્રીષ્મ ઋતુમા સૂર્યની સન્મુખ મુખ રાખીને ભુજાઓને પહોળી કરીને આતાપના લે છે શીત ઋતુમા થોડા કપડા રાખીને યા કપડા દૂર કરીને ઠંડીની આતાપના લે છે વર્ષાઋતુમાં કાચબાની પેઠે ઈન્દ્રિયોનુ ગોપન કરવામા તત્પર રહે છે

ગ્રીષ્મ હેમન્ત અને વર્ષા શબ્દ ગાથામાં બહુ-વચનાન્ત છે, તેથી એવો આશય નીકળે છે કે પ્રત્યેક વર્ષની ઋતુઓમા એમ કરે છે (૧૨)

परीसह० ઈત્યાદિ

[1] ('हन्तेर्मुट् हिच' उणादिसूत्र ३।१२९) इति झच् हन्ते र्हि रादेशो मुडागमो गुणश्च ।

मूलम्-परीसहरिउदंता, धूयमोहा जिइंदिया।

सव्वदुक्खप्पहीणट्ठा, पक्कमंति महेसिणो ॥१३॥

छाया-परीषहरिपुदान्ता, धूतमोहा जितेन्द्रियाः।
सर्वदुःखप्रहीणार्थं, प्रक्रामन्ति महर्षिणः ॥१३॥

सान्वयार्थः-परीसहरिउदंता = परीषहरूपी शत्रुओंको जीतने वाले धूयमोहा = मोहममताके त्यागी जिइंदिया = इन्द्रियोंके दमन करनेवाले महेसिणो = महर्षि-मुनिराज सव्वदुक्खप्पहीणट्ठा = समस्त दुःखोंके नाशके लिए पक्कमंति = शक्ति फोडते हैं उद्योग करते हैं ।१३।

टीका-'परीसह०' इत्यादि ।

परीषहरिपुदान्ताः = परीषहा = क्षुधा-पिपासादय एव रिपवः = शत्रवः पराभव कारित्वात् परीषहरिपवः, दान्ताः = अन्तर्भावितण्यर्थतया दमिताः = निगृहीता उपशमं प्रापिताः परीषहरिपवो यैस्ते तथोक्ताः, धूतमोहाः = मुह्यति = सदसद्विवेकरहितोभवत्यात्माऽनेनेति मोहोऽज्ञानं धूतः = समुज्झितो मोहो यैस्ते तथोक्ताः, जितेन्द्रियाः = जितानि = रागद्वेषवशात्स्वस्वविषयप्रवृत्त्युपरोधपूर्वकं वशीकृतानि इन्द्रियाणि = चक्षुरादीनि यैस्ते एवंविधा महर्षयः = मुनयः सर्वदुःखप्रहीणार्थं = 'प्रहीण' मिति सौत्रत्वाद् भावक्तांतं गृह्यते, तथा च-सर्वाणि च तानि दुःखानि च सर्व दुःखानि सर्वदुःखानां प्रहीण = परित्यागः सर्वदुःखप्रहीणं, सर्वदुःखप्रहीणाय इदं सर्वदुःखप्रहीणार्थम् 'अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्य'-मिति समासः । यद्वा 'प्रक्षीणार्थ-मिति तदर्थः, सर्वदुःखप्रक्षीणार्थं = शारीरिक-मानसिक-निखिलदुःखविनाशार्थं प्रक्रामन्ति = समुद्युञ्जते स्वीयां शक्तिं स्फोरयन्तीत्यर्थः ॥१३॥

क्षुधा-पिपासा प्रभृति परीषहरूपी शत्रुओंको पराजित करते है । सत्-असत्के बोधसे वंचित करनेवाले मोहको नष्ट कर देते है । इन्द्रियोंकी अपने-अपने विषयमें जो प्रवृत्ति होती है, उस प्रवृत्तिको रोक कर इन्द्रियोको वशमें करके जितेन्द्रिय होते है, ऐसे महर्षि शारीरिक और मानसिक समस्त प्रकारके समस्त दुःखोका विनाश करनके लिए पराक्रम फोडते हे ॥१३॥

उपसहार करते हुए कहते है-'दुक्कराइ ०' इत्यादि ।

ભૂખ, તરસ, ઈત્યાદિ પરીષહ-રૂપી શત્રુઓને પરાજિત કરે છે સત્ અસતના બોધથી વંચિત કરનારા મોહને નષ્ટ કરી નાખે છે ઈંદ્રિયોની પોત પોતાના વિષયોમા જે પ્રવૃત્તિ થાય છે તે પ્રવૃત્તિને રોકીને ઇંદ્રિયોને વશ રાખીને જિતેન્દ્રિય બને છે, એવા મહર્ષિઓ શારીરિક અને માનસિક બધા પ્રકરના બધા દુઃખોનો વિનાશ કરવાને માટે પરાક્રમ કરે છે. (૧૩)
હવે ઉપસંહાર કરતા કહે છેઃ-દુક્કરાઇ ૦ ઈત્યાદિ.

१-'निष्ठान्तस्य न पूर्वनिपातः, 'लक्षणहेत्वोः क्रियायाः' इति सूत्रनिर्देशेन पूर्वनिपातप्रकरणस्याऽनित्यत्वात् ।

सम्प्रत्यध्ययनमुपसहरन्नाह–'दुक्कराइं' इत्यादि–

मूलम्–दुक्कराइं करित्ताणं, दुस्सहाइं सहेत्तु य।
केइत्थ देवलोएसु केइ सिज्झंति नीरया ॥१४॥

छायाः–दुष्कराणि कृत्वा, दुस्सहानि सोढ्वा च।
केचिदत्र देवलोकेषु, केचित् सिध्यन्ति नीरजस्काः ॥१४॥

सान्वयार्थ–दुक्कराइं = दुष्कर आतापना आदि करित्ताणं = करके य = और दुस्सहाइं = कायर पुरुषोंके असह्य (परीषह आदि) सहेत्तु = सह करके केई = कोई-कोई देवलोएसु=स्वर्गोंमें (उत्पन्न होते हैं), केई=कोई नीरया=कर्मरजसे रहित-मुक्त होकर अत्थ=इसी भवमें सिज्झंति=सिद्ध होजाता हैं–मोक्ष चले जाते हैं ॥१४॥

टीका–दुःखेन कर्तु योग्यानि दुष्कराणि=आचरितुमशक्यानि कष्टसाध्या,यातापनादीनि कृत्वा=विधाय, च=तथा दुःसहानि=कातरचित्तैः सोढुमशक्यानि परीषहोपसर्गादीनि सोढ्वा=संसह्य केचित्=मुनयः अवशिष्टकर्माणः देवलोकेषु=सौधर्मादिसुरलोकेषु' यान्'तो' -ति शेषः, केचित् = कतिपये नीरजस्काः = कर्मरजोविनिर्मुक्ताः अत्र = अत्रैव भवे सिध्यन्ति = सिद्धा भवन्ति, शिवपदमासादयतीत्यर्थः। अत्र टीकान्तरेषु-'अत्रे'-त्यस्य "'देवलोकेषु' इत्यनेन सहान्वयकरणं सर्वथा प्रमाद विजृम्भितम् ॥१४॥१४॥१४॥

कर्मावशेषेण ये मुनयो देवलोकं गच्छन्ति ते तत्र देवायुष्कमुपभुज्य ततश्च्युता आर्यक्षेत्रे मनुष्यजातौ सुकुले च समुत्पद्य तद्भवमोक्षगामिनो भवन्तीति दर्शयितुमाह–'खवित्ता' इत्यादि–

पूर्वोक्त गुणोसे विशिष्ट मुनि दुष्कर आतापना आदि क्रियाओका आचरण करके, तथा कायर पुरुष जिन्हे सहन नहीं कर सकते ऐसे परीषह और उपसर्गो को सह कर अवशिष्ट-कर्मवाले कोई मुनि सौधर्म आदि देवलोकमें जाते है। जो कर्मरजसे सर्वथा मुक्त हो जाते है वे इसी मनुष्य भवमें सिद्धिपदको प्राप्त करते है। दूसरे टीकाकारो ने 'अत्र' शब्दको देवलोकके साथ जोडा है वह ठींक नहीं है, 'अत्र' शब्दका अर्थ-यहाँ–"इसी भवनमे" ऐसा है ॥१४॥

जो मुनि कर्म बाकी रहनेसे देवलोकमे जाते है, वे भी देवलोकसम्बन्धी आयुष्यको भोग

પૂર્વોક્ત ગુણોથી વિશિષ્ટ મુનિ દુષ્કર આતાપના આદિ ક્રિયાઓનુ આચરણ કરીને તથા કાયર પુરૂષો જે સહન કરી શકતા નથી એવા પરીષહો અને ઉપસર્ગો સહીને અવશિષ્ટ કર્મવાળા કોઈ મુનિ સૌધર્મ આદિ દેવલોકમા જાય છે જેઓ કર્મરજથી સર્વથા મુક્ત થઈ જાય છે તેઓ આ મનુષ્યભવમા સિદ્ધિપદને પ્રાપ્ત કરે છે બીજા ટીકાકારોએ अत्र શબ્દને દેવલોક સાથે જોડયો છે તે બરાબર નથી. अत्र શબ્દનો અર્થ અહીં 'આ ભવમા' એવો છે. (૧૪).

જે મુનિ, કર્મ બાકી રહેવાને લીધે દેવલોકમા જાય છે, તેઓ પણ દેવલોકસંબંધી

७ ६ ३ ५ ४
मूलम्-खवित्ता पुव्वाकम्माइं संजमेण तवेण य ।
१ २ ८
सिद्धिमग्गमणुप्पत्ता, तायिणो परिनिव्वुडे ॥१५॥ त्तिबेमि ॥

छाया-क्षपयित्वा पूर्वकर्माणि, संयमेन तपसा च ।
सिद्धिमार्गमनुप्राप्ताः-त्रायिणः परिनिर्वृताः ॥१५॥ इति ब्रवीमि ।

सान्वयार्थः-सिद्धिमग्गमणुप्पत्ता=मोक्षमार्गमें प्राप्त हुए ताइणो=षट्कायके रक्षक (मुनि) संजमेण=संयमके द्वारा य=और तवेण=तपके द्वारा पुव्वकम्माइं=पहले बंधे हुए कर्मोंको खवित्ता=खपाकरके परिनिव्वुडे=मुक्त होते हैं । त्ति बेमि=पूर्ववत् ॥१५॥

इति तृतीयाध्ययनस्य सान्वयार्थः ।

टीका-सिद्धिः=अविचलसुखनिष्पत्तिस्तस्या मार्गः=उपायो ज्ञानादिः सिद्धिमार्गस्तम् अनुप्राप्ताः=अनुगताः, त्रायिणः=षड्जीवनिकायत्राणपरायणान्तःकरणाः संयमेन=सावद्यव्यापारविरतिलक्षणेन सप्तदशविधेन, च=तथा तपसा=ऊनोदरतादिरूपेण द्वादशविधेन तपश्चरणेन पूर्वकर्माणि = प्राग्भवोपार्जितज्ञानावरणीयाद्यष्ट विधकर्माणि क्षपयित्वा =

कर, वहासे चव कर आर्य क्षेत्रमे मनुष्यजाति, और सुकुलमें जन्म लेकर उसी भवमें सिद्धि प्राप्त करते है । इसी विषयको सूत्रकार आगेकी गाथामें कहते है-"खवित्ता०" इत्यादि ।

वे मुनि, मोक्षमार्गमें प्राप्त होकर सर्वसावद्यव्यापारके त्यागरूप सत्रह प्रकारके सयमसे, तथा अनशन ऊनोदर आदि बारह प्रकारके तपसे, पहले भवोमें बाधे हुए ज्ञानावरण आदि आठ प्रकारके समस्त कर्मोको नाश करके सर्वथा मुक्त हो जाते है-कर्मजन्य सतापसे रहित होकर परमशीतलीभूत होते है अर्थात् सिद्ध हो जाते है ।

આયુષ્યને ભોગવીને, ત્યાથી ચવીને આર્યક્ષેત્રમાં મનુષ્યજાતિ અને સુકુળમાં જન્મ લઈને એજ ભવમાં સિદ્ધિ પ્રાપ્ત કરે છે, આ વિષયને સૂત્રકાર આગળની ગાથામા કહે છે—खवित्ता० ઇત્યાદિ

જે મુનિ, મોક્ષ-માર્ગમા પ્રવેશ કરીને સર્વસાવદ્ય-વ્યાપારના ત્યાગરૂપ સત્તર પ્રકારના સંયમથી, તથા અનશન ઊનોદરી આદિ બાર પ્રકારના તપથી પહેલાંના ભવોમા બાંધેલાં જ્ઞાનાવરણ આદિ આઠ પ્રકારના બધા કર્મોના નાશ કરીને સર્વથા મુક્ત થઈ જાય છે-કર્મજન્ય સતાપથી રહિત થઇને પરમશીતલીભૂત થાય છે, અર્થાત્ સિદ્ધ થઈ જાય છે.

क्षयं नीत्वा परिनिर्वृताः = परि सर्वतोभावेन निर्वृताः = कर्मजनित-सन्तापराहित्येन शीतलीभूताः 'भवन्ती'-ति शेषः, सिध्यन्तीत्यर्थः । इति ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥१५॥

इति श्री-विश्वविख्यात जगद्वल्लभप्रसिद्धवाचक–पञ्चदशभाषा–कलित–ललित–
कलापाऽऽलापक-प्रविशुद्ध गद्य-पद्य-नैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक–
कोल्हापुरराजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-
पूज्य-श्रीघासीलालव्रतिविरचितायां श्रीदशवैकालिकसूत्र-
स्याऽऽचारमणिमञ्जूषाख्यायां व्याख्यायां तृतीयं
'क्षुल्लकाचारकथा' ऽऽख्यमध्ययनं समाप्तम् ॥३॥

+

श्रीसुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामीसे कहते है–हे जम्बू ! तीसरे अध्ययनका जैसा भाव भगवानने फरमाया है, वैसा हो तुमसे कहता हूँ ॥१५॥

इति "क्षुल्लकाचारकथा" नामक तीसरे
अध्ययनका हिन्दीभाषानुवाद समाप्त ॥३॥

—+—

સુધર્મા સ્વામી જબૂ સ્વામીને કહે છે–હે જબૂ ! ત્રીજા અધ્યયનનો જેવો ભાવ ભગવાને ફરમાવ્યો છે તેવો હુ તને કહું છુ (૧૫)

ઇતિ 'ક્ષુલ્લકાચારકથા , નામક ત્રીજા અધ્યયનનુ
ગુજરાતી–ભાષાનુવાદ સમાપ્ત (૩)

— ૦ :—

अथ चतुर्थाध्ययनम्

गतं तृतीयाध्ययनं सम्प्रति चतुर्थमारभ्यते–पूर्वाध्ययने 'अनाचीर्णानि विहायाऽऽचारे धृतिः संधार्या संयमिने' आचारश्च षड्विधजीवानां यथावस्थितस्वरूपमवबुध्य तत्संरक्षणपुरस्सरं भवत्यतोऽत्र षड्जीवनिकायानामाऽध्ययने तत्स्वरूपं तत्संरक्षणोपायं च प्रतिपादयिष्यन् प्रवचनस्याऽऽप्तोपदिष्टत्वं प्रदर्शयति–'सुयं मे' इत्यादि,

मूलम्—सुयं मे आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं–इह खलु छज्जीवणियानामज्झयणं, समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया सुअक्खाया सपन्नत्ता. सेयं मे अहिज्जिउ अज्जयणं धम्मपन्नत्ती ॥१॥

छाया—श्रुतं मया आयुष्मन् ! तेन भगवता एवमाख्यातम्–इह खलु षड्जीव निकायानामाध्ययन, श्रमणेन भगवता महवीरेण काश्यपेन प्रवेदिता स्वाख्याता सुप्रज्ञप्ता, श्रेयो मेऽध्येतुमध्ययनं धर्मप्रज्ञप्तिः ॥१॥

चौथा अध्ययन।

अब चौथा अध्ययन कहते है—

तीसरे अध्ययनमें यह प्रतिपादन किया है कि महापुरुषो को अनाचीर्णों का त्याग करके, आचार-(सयम)-में दृढता रखनी चाहिए। आचारमें दृढता तब ही होती है जब षट्काय के जीवोका वास्तविक स्वरूप जानकर उनकी रक्षा की जाय, इसलिए इस 'षड्जीवनिकाय' नामक अध्ययनमें षड्जीवनिकायका स्वरूप और उसकी रक्षाका उपाय बताते हुए 'यह प्रवचन आप्त-(भगवान्)-द्वारा उपदिष्ट है' इस बातको कहते है–'सुय मे०, इत्यादि।

हे आयुष्मन्! अर्थात् सयमरूपी-जीवनवाले! नीरोग-जीवनवाले! या दीर्घजीवी!, इस सम्बोधनसे धर्मके आचारणमें आयुष्यकी प्रधानता सूचित की है (१), अथवा 'आउसतेणं' यह

અધ્યયન ૪ થુ.

હવે ચોથુ અધ્યયન કહે છે—

ત્રીજા અધ્યયનમાં એમ પ્રતિપાદન કરવામા આવ્યુ છે કે—મહાપુરૂષોએ અનાચીર્ણોનો ત્યાગ કરીને આચાર (સયમ) માં દૃઢતા રાખવી જોઈએ આચારમા દૃઢતા ત્યારે જ આવે છે કે જ્યારે ષટ્કાયના જીવોનુ વાસ્તવિક સ્વરૂપ જાણીને તેમની રક્ષા કરવામાં આવે, તેટલા માટે આ 'ષડ્જીવનિકાય' નામના અધ્યયનમા છ-કાયનુ સ્વરૂપ અને તેની રક્ષાના ઉપાયો બતાવતા 'આ પ્રવચન આપ્ત (ભગવાન્) દ્વારા ઉપદિષ્ટ છે, એ વાતને કહે છે—सुयं में० ઇત્યાદિ

હે આયુષ્મન! અર્થાત્ સંયમ-રૂપી-જીવન-વાળા! નીરોગી-જીવન-વાળા! યા દીર્ઘજીવી!, આ સંબોધનથી ધર્મના આચરણમા આયુષ્યની પ્રધાનતા સૂચિત કરી છે (૧), અથવા आउसंतेणं એ એક પદ છે, એની છાયા आजुषमाणेन એ પ્રમાણે થાય છે, અર્થાત્

सान्वयार्थः—आउसं=हे अयुष्मन् शिष्य ! तेण = उस भगवया = भगवान ने एव = ऐसा अक्खायं = कहा है, मे = मैंने सुयं = सुना है इह = यहां इस प्रवचन मे खलु निश्चय करके छज्जीवणियानामज्झयणं=षड्जीव निकाय नामक अध्ययन है, (वह) समणेणं = श्रमण भगवया = भगवान् कासवेणं = काश्यपगोत्रीय महावीरेणं = महावीरने पवेइया = प्रवेदितकी है, सुअक्खाया = सम्यक् प्रकारसे कही है, सुपन्नत्ता = सम्यकृतया वताई है धम्मपन्नत्ती = धर्मप्रज्ञप्ति (नामक) यह) अज्झयण = अध्ययन मे = मुझे अहिज्जिउं पढ़ने को सेयं = कल्याणकारी हैं अर्थात् भगवान महावीर द्वारा प्ररूपित इस अध्ययनका अध्ययन करना मुझे कल्याणकारी है ॥ १ ॥

टीका—एति = गच्छतीत्यायुः = संयमलक्षणं नीरुजं दीर्घं वा जीवितस्यास्तीत्यायुष्मान् तत्सम्बुद्धौ हे आयुष्मन् ! गुणवच्छिष्यामन्त्रणमेतत् । अनेन धर्माचरणे प्राधान्येनायुषोऽपेक्षा विद्यते इति सूचितम् । तेन = लोकत्रयप्रसिद्धेन,

यद्वा 'आउसंतेणं' इत्येकपदस्य 'आजुषमाणेन' इति सस्कृतं तस्य मयेत्यनेन सम्बधः तथा च आङिति मर्यादायाम् आ = शास्त्रश्रवणमर्यादया जुषमाणेन = गुरून् सेवमानेन मयेत्यर्थः ।विधिमन्तरेण हि श्रवणे शास्त्ररहस्यं श्रोतुरधोमुखकुम्भस्येव न किञ्चदप्यन्तः प्रविशति । 'आजुषमाणेने'-ति विशेषणेन गुरुमाराध्य शिक्षां लब्धवतः शिष्यस्य शास्त्राध्ययनं सफलीभवतीति द्योतितम् ।

अथवा 'आउसंतेणं 'इत्यस्य' आवसता 'इति संस्कृतम् ,तस्यापि ' मये ' त्यनेनैव सम्बन्धः,आङ् प्राग्वन्मर्यादार्थकस्तथाच = आ = शिष्योचितमर्यादया वसता=भगवदन्तिके निवासं कुर्वता मयेत्यर्थः । अनेन शिष्यस्य गुरुकुलनिवासः सूचितः ।

भगवता = भगः = ज्ञानं सकलपदार्थविषयकम् (१), माहात्म्यम्=अनुपममहनीयमहिमसम्पन्नत्वम् (२), यशः = विविधानुकूलप्रतिकूलपरीषहोपसर्गसहनसमुद्भूता जग-

---

एक पद है, इसकी छाया 'आजुषमाणेन' होनी है, अर्थात् गुरुकी सेवा करनेवाले मैने, इस पदसे गुरुकी सेवा करके सीखनेसे ही शास्त्रका अध्ययन सफल होता है, यह सूचित होता है (२), 'आवसता' ऐसी भी छाया होती है, अर्थात् शिष्यके योग्य मर्यादा-पूर्वक भगवानके समीप रहनेवाले मैने (सुना), इस पदसे गुरुकुलमें निवास करना सूचित किया गया है ।

यहा 'भग' शब्दके दश अर्थ हैं–(१) समस्त पदार्थोंको विषय करनेवाला ज्ञान, (२) अनुपम-महिमा, (३) विविध प्रकारके अनुकूल और प्रतिकूल परीषहोको सहन करनेसे उत्पन्न होने-

---

અર્થાત્ ગુરૂની સેવા કરનારા એવા મે, આ પદથી 'ગુરૂની સેવા કરીને શીખવાથી જ શાસ્ત્રનું અધ્યયન સફળ થાય છે' એ સૂચિત થાય છે (૨), આવસતા એવી પણ છાયા થાય છે અર્થાત્ શિષ્યને યોગ્ય મર્યાદા-પૂર્વક ભગવાનની સમીપે રહેનારા એવા મેં (સાભળ્યું) એ પદથી ગુરૂકુળમા નિવાસ કરવાનું સૂચન કરેલુ છે

અહીં 'भग' શબ્દના દસ અર્થ છે (૧) બધા પદાર્થોને વિષય કરવાવાળુ જ્ઞાન, (૨)

द्रक्षणप्रज्ञासमुत्था वा कीर्तिः (३) वैराग्यम्=क्रोधादिकषायनिग्रहलक्षणम् (४) मुक्तिः =सकलकर्मक्षयलक्षणो मोक्षः (५), रूपम्=सुरासुरनरहृदयहारि सौन्दर्यम् (६) वीर्यम् =अन्तरायान्तजन्यमनन्तसामर्थ्यम् (७) श्रीः=घातिककर्मपटलविघटनजनितानन्तचतुष्टयलक्ष्मीः (८), धर्मः=अपवर्गद्वारकपाटोद्घाटनसाधनम्, श्रुतादिरूपो यथाख्यातचारित्ररूपो वा (९), ऐश्वर्यं=त्रैलोक्याधिपत्यं (१०) चाऽस्यास्तीति भगवान् तेन तथोक्तेन, एवम्='धम्मो मंगलमुक्किट्ठं' मित्याद्यारभ्य 'तायिणो परिनिव्वुडे' इत्यन्तं यावत् पूर्वोपदिष्टरूपेण, आख्यातम् परस्परासङ्कीर्णतया कथितम्, प्रवचने, मेऽमया श्रुतम् =श्रवणगोचरीकृतम्। खलु शब्दो वाक्यालङ्कारे। इह=अस्मिन् प्रवचने, षड्जीवनिकायानामध्ययनम्=षट् च ते पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसलक्षणा जीवाश्चेति षड्जीवास्तेषां निकायः=समूहः प्रतिपाद्यत्वेनाऽस्ति यस्यामागमपद्धतौ सा 'षड्जीवनिकाया' तन्नाम यस्य तच्च तदध्ययनं चेति[1] षड्जीवनिकायानामाध्ययनम् 'अस्ती' -तिशेषः।

वाली या संसारकी रक्षा करनेवाले अलौकिक ज्ञान से उत्पन्न होनेवाली कीर्त्ति, (४) क्रोध आदि कषायोका सर्वथा निग्रहरूप वैराग्य, (५) समस्त कर्मोंका क्षयस्वरूप मोक्ष, (६) सुर–असुर और नरोके अन्तःकरणको हर लेनेवाला सौन्दर्य, (७) अन्तराय कर्मके नाशसे उत्पन्न होनेवाला अनन्त बल, (८) घातिया कर्मरूपी पटलके हट जानेसे प्रादुर्भूत होनेवाली अनन्त-चतुष्टय लक्ष्मी, (९) मोक्षके द्वारको खोलनेका साधन श्रुत–चारित्र–यथाख्यातचरित्ररूप धर्म, (१०) तीन लोकका आधिपत्य रूप ऐश्वर्य।

ये सब भगशब्दके अर्थ जिनमें पाये जाते है उन्हें भगवान् कहते है। हे आयुष्मन! 'धम्मो मंगलमुक्किट्ठं' से लेकर 'तायिणो परिनिव्वुडे' तक सब भगवानने ही कहा है और मैंने

અનુપમ-મહિમા, (૩) વિવિધ પ્રકારના અનુકૂળ અને પ્રતિકૂળ પરીષહોને સહન કરવાથી ઉત્પન્ન થનારી અથવા જગતની રક્ષા કરનારા અલૌકિક જ્ઞાનથી ઉત્પન્ન થનારી કીર્તિ, (૪) ક્રોધ આદિ કષાયોના સર્વથા નિગ્રહરૂપ વૈરાગ્ય, (૫) બધા કર્મોના ક્ષય-સ્વરૂપ મોક્ષ, (૬) સુર અસુર અને નરોના અંતઃકરણને હરનારૂં સૌંદર્ય, (૭) અંતરાય કર્મના નાશથી ઉત્પન્ન થનારૂં અનંત બળ (૮) ઘાતી-કર્મ-રૂપી પડળ હઠી જવાથી ઉત્પન્ન થનારી અનંત ચતુષ્ટય લક્ષ્મી, (મોક્ષના દ્વારને ખોલવાના સાધન શ્રુત-ચારિત્ર-યથાખ્યાત-ચારિત્ર-રૂપ ધર્મ (૧૦) ત્રણ લોકના આધિપત્ય-રૂપ ઐશ્વર્ય

આ બધા ભગ શબ્દના અર્થો જેનામાં મળી આવે છે તેને ભગવાન્ કહે છે. હે આયુષ્મન્! धम्मो मंगलमुक्किट्ठं થી લઈને तायिणो परिनिव्वुडे સુધી બધુંય ભગવાને જ

---

१ सूत्रे 'छज्जीवणिया' इति पदं 'स्वराद्यस्य' (८।४।६२) इति निकायाघटकयकारस्य लोपे, 'क ग च ज त द प य वां प्रायो लुक्' इति ककारलोपे कृते 'नि+आ+आ+' इति स्थिते 'सवर्णे दीर्घः' (१।२।७) इति द्वयोराकारयोः स्थाने दीर्घैकादेशे 'अवर्णो यश्रुतिः' इति यकार श्रुत्या णत्वेन च सिद्धम्।

'सा च षड्जीवनिकाया' इत्यध्याह्रियते उत्तरवाक्याऽऽकाङ्क्षोत्थानाय. श्रमणेन = श्राम्यति = तपस्यतीति श्रमणस्तेन सा 'द्वादशवर्षाणि घोरतपश्चरणाच्छ्रमण इतिप्रसिद्धिं लब्धवता, भगवता काश्यपेन = कश्यपगोत्रोत्पन्नेन महावीरेण = वीरयति = पराक्रमते मोक्षानुष्ठाने इति वीरः, यद्वा वि = विशेषेण ईरयति = गमयति प्रापयति मोक्षं प्रति भव्य जनानिति, वि = विशेषेण ईत्त = गच्छति क्षपिताखिलकर्मा मोक्षमिति, वि = विशेषेण ईरयति = कम्पयति कषायादिपरिपन्थिन इति, वि = विशेषेण इरयति = प्रक्षिपति घनघातिकर्मपटलमवकरनिकरमिवेति, वि = विशेषेण इरयति = प्रेरयति प्रवर्त्तयति सयमाद्यनुष्ठाने प्राणिन इति वा वीरः[२], महांश्चासौ वीरश्च महावीरस्तेन श्रीवर्द्धमानस्वामिनेत्यर्थः। प्रवेदिता = प्रकर्षेण सकलप्राणिगणस्य स्वस्वभाषापरिणमनरूपेण यथावस्थितार्थद्वारेण च वेदिता = केवलाऽऽलोकेन विलोक्य प्रतिपादिता, स्वाख्याता = सुष्ठु–पूर्वापराविरोधियुक्तयुक्तिभिरुपपन्न–तयाऽऽख्याता = उक्ता, सुप्रज्ञप्ता = सुष्ठु–सदेव-

सुना है। इस अध्ययनका नाम 'षड्जीवनिकाया' है। वह इसलिए कि इसमें पृथिवी आदि षड्-जीव-निकायोका वर्णन है।

साढे बारह वर्ष तक घोर तपश्चरण करने के कारण श्रमण नाम से प्रसिद्ध काश्यप गोत्र में उत्पन्न होने वाले भगवान् महावीरने, वीर शब्द के छह अर्थ है, अर्थात्–(१)मोक्षके अनुष्ठान में पराक्रम करनेवाले, अथवा(२)भव्य जीवोको मोक्षकी प्राप्ति करानेवाले, या (३) समस्त कर्मों को दूर करके मोक्षको प्राप्त होनेवाले, (४)कषाय आदि शत्रुओ कों सर्वथा हरानेवाले, (५)चार घन–घातिया कर्मोंको कचरेकी तरह दूर करनेवाले(६)प्राणियोको विशेष–रूपसे सयम अनुष्ठान में प्रवृत्ति करानेवाले श्रीवर्द्धमान स्वामीने, प्रत्येक प्राणीको अपनी २ भाषामें परिणत होनेवाले इस प्रवचनको केवल-ज्ञानसे जानकर प्रतिपादित किया है। पूर्वापर विरोध–रहित और युक्तियो

કહ્યું છે. અને મે સાભળ્યુ છે આ અધ્યયનનુ નામ ષડ્ જીવનિકાયા છે તેએટલા માટે કે એમા પૃથિવી-આદિ છ જીવનિકાયનુ વર્ણન છે

સાડા બાર વર્ષ સુધી ઘોર તપશ્ચર્યા કરવાને કારણે શ્રમણ નામથી પ્રસિદ્ધ, કશ્યપ ગોત્રમા ઉત્પન્ન થયેલા ભગવાન્ મહાવીરે (વીર શબ્દના છ અર્થ છે), અર્થાત્ (૧) મોક્ષના અનુષ્ઠાનમા પરાક્રમ કરનારા, અથવા (૨) જીવોને મોક્ષની પ્રાપ્તિ કરાવનારા યા (૩) સર્વ કર્મોને દૂર કરીને મોક્ષને પ્રાપ્ત થયેલા, [૪) કષાય આદિ શત્રુઓને સર્વથા હઠાવનારા, (૫) ચાર ઘનઘાતો કર્મોને કચરાની પેઠે દૂરકરી દેનારા, (૬) પ્રાણીઓના વિશેષ-રૂપથી સંયમના અનુષ્ઠાનમા પ્રવૃત્તિ કરાવનારા, એવા શ્રી વર્ધમાન સ્વામીએ, પ્રત્યેક પ્રાણીની પોત–પોતાની ભાષામા પરિણત થવાવાળુ આ પ્રવચન કેવળ જ્ઞાનથી જાણીને પ્રતિપાદન કર્યું છે પૂર્વાપર-વિરોધ રહિત અને યુક્તિઓ સહિત કહ્યુ છે, એવુ દેવ મનુષ્ય અને અસુ-

१ 'वीर विक्रान्तौ' अस्मात्पचाद्यच्।
२ 'ईर गतौ कम्पने च' इत्यादादिकात् 'ईर क्षेपे' इति चौरादिकाच्च धातो पचाद्यच्।

मनुजासुरसभायां दिव्यध्वनिना प्रज्ञप्ता=प्ररूपिता, यद्वा धातूनामनेकार्थत्वादुपसर्गसमभिव्याहार बलाच्चेह ज्ञपिरासेवनार्थः तथा च-येनैव रूपेणाऽऽख्याता तेनैव रूपेण=प्रकर्षेण ज्ञप्ता=आसेविता, अणुमात्रतोऽपि हिंसां परिहरता भगवता यथाकथितमाचरितेत्यर्थः। तदेतदध्ययनं षड्जीवनिकायाख्यं धर्मप्रज्ञप्तिः धर्मप्ररूपकम्, यद्वा धर्मप्रज्ञप्तिः=एतदपरसञ्ज्ञकं मे=मम अध्येतुम्=अभ्यसितुं श्रेयः–प्रशस्य निःश्रेयसकरमित्यर्थः ॥ १॥

एतन्निशम्य जम्बूस्वामी परिपृच्छति–कयरा०, इत्यादि।

मूलम्—कयरा खलु सा छज्जीवणिया नामज्झयणं समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया सुअक्खाया सुपन्नत्ता. सेयं मे अहिज्जिउं अज्जयणं धम्मपन्नत्ती ?॥ २ ॥

छाया–कतरा खलु सा षड्जीवनिकायानामाध्ययनं श्रमणेन भगवता महावीरेण काश्यपेन प्रवेदिता स्वाख्याता सुप्रज्ञप्ता, श्रेयो मेऽध्येतुम् अध्ययनं धर्मप्रज्ञप्तिः ? ॥२॥

सान्वयार्थः–सा खलु=वह छज्जीवणिया=षड्जीवनिकाया कयरा=कौनसी है ? जो अज्झयणं नाम=अध्ययन नाम से प्रसिद्ध है, जो कासवेणं=कश्यपगोत्रीय समणेणं=श्रमण भगवया=भगवान् महावीरेणं=महावीरने पवेइया=प्रवेदित की है, सुअक्खाया=सम्यक्प्रकार कही है, सुपन्नत्ता=सम्यक्तया बताई है। वह धम्मपन्नत्ती अज्झयणं=धर्मप्रज्ञप्ति अपरनामक अध्ययन अहिज्जिउं=पढना मे=मुझे सेय=श्रेय है ॥२॥

टीका—सा=पूर्वोक्ता षड्जीवनिकाया खलु कतरा=किंभूता या अध्ययनं नाम=अध्ययनत्वेन प्रसिद्धेत्यर्थः, या च काश्यपेनेत्यादि व्याख्यातपूर्वम्। 'कयरा' इत्यनेन मोक्षाभिलाषिणा शिष्येण सकलक्रियाकलापे स्वाभिमानपरित्यागपूर्वकं गुरुः प्रष्टव्य इति सूचितम् ॥

सहित कहा है, देव मनुष्य और असुरो की सभा–समवसरण-मे दिव्य ध्वनि से प्ररूपित किया है। अथवा भगवानने जैसा कहा है वैसा ही उन्होने आचरण किया है।

इसलिए यह षड्जीवनिकाया नामक, धर्मकी प्ररूपणा करनेवाला अध्ययन मेरं अध्ययन करनेके लिए श्रेय है-कल्याणकारी है ॥१॥

यह सुनकर जम्बूस्वामी प्रश्न करते है–'कयरा खलु०' इत्यादि। हे भगवन्! पहले बताई हुई षड्जीवनिकायाका स्वरूप क्या है जो इस अध्ययनरूप से कही गई है अर्थात् जिसका इस

રોની સભા-સમવસરણમા દિવ્ય ધ્વનિથી પ્રરૂપિત કર્યું છે. અથવા ભગવાને જેવું કહ્યુ છે એવું તેમણે આચરણ કર્યું છે

તેથી કરીને આ ષડ્જીવનિકાયા નામક ધર્મની પ્રરૂપણા કરનારૂં અધ્યયન મારે અધ્યયન કરવાને શ્રેય છે-કલ્યાણકારી છે, (૧)

આ સાંભળીને જંબૂસ્વામી પ્રશ્ન કરે છે-કયરા ખલુ૦ ઈત્યાદિ.

હે ભગવાન! પહેલા બતાવેલી ષડ્જીવનિકાયાનું સ્વરૂપ કેવુ છે કે જે આ અધ્યય-

सम्प्रति सुधर्मस्वामिन उत्तरयन्ति-'इमा खलु०' इत्यादि ।

मूलम्-इमा खलु सा छज्जीवणिया नामज्झयणं समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया सुअक्खाया सुपन्नत्ता, सेयं मे अहिज्जिउं अज्झयणं धम्मपन्नत्ती ॥३॥

छाया-इयं खलु सा षड्जीवनिकाया नामाध्ययन श्रमणेन भगवता महावीरेण काश्यपेन प्रवेदिता स्वाख्याता सुप्रज्ञप्ता, श्रेयो मेऽध्येतुमध्ययनं धर्मप्रज्ञप्तिः ॥३॥

सान्वयार्थः-सा=वह छज्जीवनिकाया खलु=निश्चय करके इमा=यह है जो अज्झयणं नाम=अध्ययन नाम से प्रसिद्ध है, और जो कासवेणं=कश्यपगोत्रीय समणेणं=श्रमण भगवया=भगवान् महावीरेणं=महावीरने पवेइया=प्रवेदित की है, सुअक्खाया=सम्यक्प्रकार कही है, सुपन्नत्ता=सम्यक्तया बताई है । वह धम्मपन्नत्ती अज्झयणं = धर्मप्रज्ञप्ति अपरनामक अध्ययन अहिज्जिउं = पढना मे = मुझे सेयं = श्रेयस्कारी है ॥३॥

टीका —'इमा' इत्यनेन 'विनीतविनेयाय करुणासञ्चारचारुहृदयेन गुरुणा शास्त्रोपदेशः कर्त्तव्यः' इति सूचितम् । अन्यत्प्राग्वत् ॥३॥

तामेव षड्जीवनिकायां सूत्रकारः प्रदर्शयति = 'तं जहा' इत्यादि ।

मूलम्-तं जहा-पुढविकाइया, आउकाइया. तेउकाइया, वाउकाइया, वणस्सइकाइया, तसकाइया । पुढवी चित्तमंतमक्खायो अणेग-

---

समस्त अध्ययनमे वर्णन किया गया है, और भगवान महावीर स्वामीने यावत् प्ररूपित किया है? और धर्मप्रज्ञप्ति अपरनाम से प्रसिद्ध उस अध्ययन का पढना मेरे लिये कल्याणकर है। इस प्रश्न से यह आशय निकलता है कि-मुमुक्षु शिष्य को अहंकार त्यागकर समस्त क्रियाएँ गुरुसे पूछनी चाहिए ॥२॥

श्री सुधर्मा स्वामी उत्तर देते है-'इमा खलु०' इत्यादि ।

इस पाठका व्याख्यान पहले किया जा चुका है । 'इमा' पदसे यह सूचित होता है कि करुणासागर गुरु महाराज विनीत शिष्यको शास्त्र का उपदेश अवश्य देवें ॥३॥

નરૂપથી કહેવામા આવે છે ? અર્થાત્ જેનુ આ આખા અધ્યયનમા વર્ણન કરવામા આવ્યું છે, અને ભગવાન મહાવીર સ્વામીએ જેનું પ્રરૂપણ કર્યું છે ? અને ધર્મપ્રજ્ઞપ્તિ એમ બીજા નામથી જે પ્રસિદ્ધ છે તે અધ્યયનનુ અધ્યયન કરવુ મારે માટે કલ્યાણકારક છે ? આ પ્રશ્નથી એવો આશય નીકળે છે કે-મુમુક્ષુ શિષ્યે અહંકારનો ત્યાગ કરીને બધી ક્રિયાઓ ગુરૂને પૂછવી જોઇએ (૨)

શ્રી સુધર્માસ્વામી ઉત્તર આપે છે કે-ઇમા ખલુ૦ ઇત્યાદિ

આ પાઠનુ વ્યાખ્યાન પહેલા કરવામા આવ્યુ છે ઇમા શબ્દથી એમ સૂચિત થાય છે કે કરૂણાસાગર ગુરૂ મહારાજ વિનીત શિષ્યને શાસ્ત્રનો ઉપદેશ જરૂર આપે (૩)

जीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं। आऊ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं। तेऊ चित्त मंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं, वाऊ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं। वणस्सई चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं ॥४॥

छाया तद्यथा–पृथिवीकायिकाः (१), अप्कायिकाः (२), तेजस्कायिकाः (३) वायुकायिकाः (४), वनस्पतिकायिकाः (५), त्रसकायिकाः (६)। पृथिवी चित्तवत्याख्याता, अनेकजीवा, पृथक्सत्त्वा, अन्यत्र शस्त्रपरिणतायाः। आपश्चित्तवत्य आख्याताः, अनेकजीवाः, पृथक्सत्त्वाः, अन्यत्र शस्त्रपरिणताभ्यः। तेजश्चित्तवदाख्यातम्, अनेकजीवं, पृथक्सत्त्वमन्यत्र शस्त्रपरिणतात्। वायुश्चित्तवानाख्यातो ऽनेकजीवः पृथक्सत्त्वोऽन्यत्र शस्त्रपरिणतात्, वनस्पतिश्चित्तवानाख्यातोऽनेकजीवः पृथक्सत्त्वोऽन्यत्र शस्त्रपरिणतात् ॥४॥

सान्वयार्थः–तं जहा–वह इस प्रकार है–(१) पुढविकाइया=पृथ्वीकायिक, (२) आउकाइया=अप्कायिक, (३) तेउकाइया=तेजस्कायिक, (४) वाउकाइया=वायुकायिक, (५) वणस्सइकाइया=वनस्पतिकायिक, (६) तसकाइया=त्रसकायिक ॥

अब आचार्य महाराज एक-एककी सचित्तता बतलाते हैं—

उस षड्जीवनिकायको सूत्रकार दिखाते है–'त जहा' इत्यादि।

कठिनता- स्वभाववाली पृथ्वी ही जिनका शरीर है उन्हे पृथ्वीकायिक कहते है। द्रवत्व -स्वभाववाला जल ही जिनका शरीर है उन्हे अप्कायिक कहते है। उष्णतास्वभाववाला तेज ही जिनका शरीर है उन्हे तेजस्कायिक कहते है। चलन स्वभाववाला वायु ही जिसका शरीर है उन्हे वायुकायिक कहते हैं। लता वृक्ष-गुल्म आदि वनस्पति ही जिनका शरीर है उन्हें वनस्पतिकायिक कहते है। जिन्हे शीत-आतप(गर्मि) आदिद्वारा उत्पन्न हुई पीडासे त्रास होता है ऐसा चलने-फिरने वाला काय जिनका होता है उन्हे त्रसकायिक कहते है।

એ ષડ્જીવનિકાયને સૂત્રકાર દર્શાવે છે–त जहा- ઇત્યાદિ

૧–કઠિનતા–સ્વભાવવાળી પૃથ્વી જ જેનુ શરીર છે તેને પૃથ્વીકાયિક કહે છે ૨–દ્રવત્વ –સ્વભાવવાળુ જળ જ જેનુ શરીર છે તેને અપ્કાયિક કહે છે ૩–ઉષ્ણતા–સ્વભાવવાળું તેજ જ જેનુ શરીર છે તેને તેજસ્કાયિક કહે છે, ૪ ચલન સ્વભાવવાળો વાયુ જ જેનુ શરીર છે તેને વાયુકાયિક કહે છે. ૫–લતા વૃક્ષ ગુલ્મ (ગુચ્છ) આદિ વનસ્પતિ જ જેનુ શરીર છે તેને વનસ્પતિકાયિક કહે છે ૬–જેને ઠંડી ગરમી આદિ દ્વારા ઉત્પન્ન થયેલી પીડાથી ત્રાસ થાય છે એવી હરવા ફરવાવાળી કાયા જેની હોય છે તેને ત્રસકાયિક કહે છે.

હવે એકેકની સચિત્તતા દેખાડે છે.

(१) पृथ्वीकाय

सान्वयार्थः-(भगवानने) पुढवी=पृथ्वीको चित्तमंतं=सचित्त अक्खाया=कही है, वह अणेगजीवा=अनेकजीववाली है-अनेकजीवोका पिण्डभूत है, पुढोसत्ता=उसमें अनेकजीव भिन्न-भिन्न रहे हुए है, अन्नत्थ=सिवाय सत्थपरिणएणं=शस्त्रपरिणतके, अर्थात् जहां शस्त्र नहीं लगा है वहांका पृथ्वीकाय सब सचित्त है। इसी प्रकार छहों कायो में समझ लेना चाहिये

(२) अप्काय.

सान्वयार्थः-आऊ = जल चित्तमंतं = सचित्त अक्खाया = कहा है, वह अणेगजीवा = अनेक जीवोंका आश्रयभूत है, पुढोसत्ता = वे अनेक जीव भिन्न२ रहे हुए है, अन्नत्थ = सिवाय सत्थपरिणएणं = शस्त्रपरिणतके ॥२॥

(३) तेजस्काय.

तेऊ = तेजस्काय चित्तमंतं = सचित्त अक्खाया = कहा गया है, वह अणेगजीवा = अनेक जीवोंका आश्रयभूत है, पुढोसत्ता = वे अनेक जीव भिन्न-भिन्न रहे हुए हैं, अन्नत्थ = सिवाय सत्थपरिणएणं = शस्त्रपरिणतके ॥३॥

(४) वायुकाय.

वाऊ = वायु चित्तमंत = सचित्त अक्खाया = कहा गया है, वह अणेगजीवा = अनेक जीवोंका आश्रय है, पुढोसत्ता = भिन्न-भिन्न जीवोंवाला है, अन्नत्थ = सिवाय सत्थपरिणएणं = शस्त्रपरिणतके ॥४॥

(५) वनस्पतिकाय.

वणस्सई = वनस्पति चित्तमत = सचित्त अक्खाया = कही गई है, वह अणेगजीवा = अनेक जीवोंका आधार है, पुढोसत्ता = भिन्न-भिन्न जीववाली है, अन्नत्थ = सिवाय सत्थपरिणएणं = शस्त्रपरिणतके ॥

भावार्थ-पांचों स्थावरकाय सचित्त है, वे अनेक जीवरूप हैं, उन जीवोंका अस्तित्व पृथक्-पृथक् है, । इन कायोंके जो जो शस्त्र हैं उनसे यदि ये परिणत हो जायँ तो अचित्त हो जाते हैं ॥५॥

टीका-तद्यथा = तदेव प्रदर्श्यते-पृथवी = कठिनस्वभावा सैव कायः = शरीरं येषां ते पृथिवीकायास्त एव पृथिवीकायिकाः ('विनयादित्वात्स्वार्थे ठक्, तस्यैकादेशः' एवमग्रेऽपीयं प्रक्रिया ज्ञेया) । आपः = द्रवलक्षणास्ता एव कायो येषा तेऽप्कायास्त एवाप्कायिकाः । तेजः = उष्णलक्षणं तदेव कायो येषां ते तेजस्कायिकाः । वायुः = चलनस्वभावः स एव कायो येषांते वायुकायिकाः । वनस्पतिकायिकाः = वनस्पतिः = लतातरुगुल्मादिलक्षणः कायो येषां ते तथोक्ताः । त्रस्यति शीतातपादिजनितपीडया उद्विजते इति त्रसः, त्रसनस्वभावः कायो येषां तथोक्ताः ।

अथ प्रत्येकं सचित्ततां दर्शयन्नाह--

पृथिवीकायः ।

पृथिवी, चित्त=चेतनाऽस्त्यस्या इति चित्तवती=सात्मिका आख्याता=केवलज्ञानाऽऽलोकावलोकिताखिललोकालोककलक्षणेन भगवता कथिता ।

ननु पृथिव्याः कथं सचेतनत्वमिति चेदाकर्णय-(१) पृथिवी सचेतना खानितखनिभूम्यादिषु तत्सजातीयावयवान्तरद्वारा परिपूर्त्तिदर्शनात् मनुष्यादिशरीरवत्, तद्यथा-मनुष्यशरीरस्थं व्रणादिकं स्वयं भ्रियते, एवमेव खानित खनिभूम्यादिकं स्वसमानजातीयावयवैर्भ्रियमाणं प्राक्समानरूपतां भजते तस्माद् गम्यते पृथिव्याः सचेतनत्वम् ।

(२) यद्वा-पृथिवी सजीवा दैनिकवर्षणोपचयसंदर्शनात् चरणतलवत्, तद्यथा चरणतलं घृष्यते पुष्यति च तद्वत् पृथिव्यपि प्रत्यहं घृष्यते उपचीयते च तस्मात्तस्याः सजीवत्वम् । अथवा—

अब एक-एकको सचित्तता दिखलाते है—

पृथ्वीकाय

केवल-ज्ञानरूपी आलोकसे समस्त लोक और अलोकको प्रत्यक्ष जाननेवाले भगवानने पृथिवीको सचेतन कहा है ।

प्रश्न—पृथिवी सचेतन कैसे है ?

उत्तर—(१) पृथिवी सचेतन है, क्यो कि उसमें खोदी हुई खान आदिकी भूमि सजातीय अवयवोसे स्वयमेव भर जाती है, । जो सजातीय अवयवोसे स्वय भर जाता है वह सचेतन होता है, जैसा मनुष्यका शरीर । अर्थात् मनुष्यके शरीरमे घाव हो जाता हे वह उसी तरहके अवयवो से स्वय भर जाता है, उसी प्रकार खोदी हुई खान आदिका भूमि उसी प्रकारके एवयवो से भर जाती है और पहलेके समान हो जाता है इसलिए पृथिवी सचेतन है

[२] यद्वा-प्रथिवी सचेतक हैं ,क्योकि उसमें प्रतिदिन घर्षण और उपचय देखा जाता है जैसे पैरका तलुवा । अर्थात् जैसे तलुवा घिसकर फिर भर जाता हे वैसे ही प्रथिवी भी घिस कर भर जाती है इसलिए वह सजीव है । अथवा—

'પૃથિવીકાય'

કેવળ-જ્ઞાન-રૂપી પ્રકાશથી બધા લોક અને અલોકને પ્રત્યક્ષ જાણવાવાળા ભગવાને પૃથિવીને સચેતન કહી છે

પ્રશ્ન-પૃથિવી સચેતન કેવી રીતે છે ?

ઉત્તર-(૧) પૃથિવી સચેતન છે, કારણ કે તેમા ખોદેલી ખાણ આદિની ભૂમિ સજાતીય અવયવોથી પોતાની મેળે ભરાઈ જાય છે, જે સજાતીય અવયવોથી સ્વયમેવ ભરાઈ જાય છે તે સચેતન હોય છે, કેમકે મનુષ્યનુ શરીર અર્થાત્ મનુષ્યના શરીરમા ઘા પડે છે તે એવી રીતના અવયવોથી પોતાની મેળે ભરાઈ જાય છે, એ જ રીતે ખોદેલી ખાણ આદિની ભૂમિ એ પ્રકારના અવયવોથી ભરાઈ જાય છે અને પહેલાની જેવી બની જાય છે, તેથી પૃથિવી સચેતન છે.

(૨) પૃથિવી સચેતન છે, કારણ કે તેમા પ્રતિદિન ઘર્ષણ અને ઉપચય જોવામા આવે છે, જેમકે પગનુ તળીયુ અર્થાત્ જેમ પગનું તળીઉં ઘસાઈને પાછુ ભરાઈ જાય છે, તેમ

(३) विद्रुमपाषाणादिरूपा पृथिवी सचेतना काठिन्ये सत्यपि वृद्ध्यादिदर्शनात् शरीरस्थिताऽस्थ्यादिवत्, तद्यथा–शरीरस्थितमस्थ्यादिकं कमठपृष्ठकठिनं सदपि चित्तवदनुभूयमानमुपचयं च गच्छत् संदृश्यते । एवं विद्रुमशिलाद्यात्मिकायाः पृथिव्याः काठिन्ये सत्यपि वृद्ध्यादिकं प्रत्यक्षं दृश्यते तस्मात्तस्याः सचेतनत्वम् । अथ च––

(४) विद्रुमाद्यात्मिकापृथिवी सचित्ता, छेदादौ तत्सजातीयधातूत्पत्तिदर्शनात् अर्शोऽङ्कुरवत्, तद्यथा=अर्शसोऽङ्कुरे छिन्नेऽपि पुनस्तत्समान एवाङ्कुरः प्रादुर्भवति, एवं विद्रुमशिलाद्यात्मिकायाः पृथिव्याः खन्यादौ छेदेऽपि तत्सजातीयधातुभिस्तद्रिक्तभागः परिपूर्यते, तस्मात्सिद्धं पृथिव्याः सचित्तत्वम् ।

अनेकजीवा=अनेके = बहवो जीवाः = एकेन्द्रिया यस्यां सा तथोक्ता । पृथक्सत्त्वा = पृथक्-पृथग्भूताः = अङ्गुलासंख्येयभागमात्रावगाहनामाश्रित्याऽनेके विभिन्नरूपेण

[३] विद्रुम [मूंगा] पाषाण आदि-रूप प्रथिवी सचेतन है क्योंकि कठिन होने पर भी उसमें वृद्धि देखी जाती है जैसे शरीर की हड्डी आदि । अर्थात् जैसे शरीर की हड्डी आदि कछुएकी पीठ की भाँति कठोर होने पर भी सचेतन है और बढती है उसी प्रकार विद्रुग शिला आदि-रूप पृथिवीमें कठिनता होनेपर भी वृद्धि आदि गुण प्रत्यक्षसे हे इससे सिद्ध हे कि प्रथिवी सचेतन है । अथवा––

[४]विद्रुम आदि रूप प्रथिवी सचित्त है क्यो कि उसे काट देने पर भो सजातीय धातुकी उत्पत्ति देखी जाती है, जसे शरीर मे मसा । अर्थात् जसे मसाको उपरसे काट डालने पर भी फिर उसी के समान अवयव ऊग आते है, वैसेही -विद्रुम और शिला आदिको खानमें काट देने पर भी सजातीय स्कन्धोसे कटा हुआ भाग फिर भर जाता, अत प्रथिवाकी सचेतनता सिद्ध है ।

वह प्रथिवी अनेक जीववाली है और वे स्पर्शनेन्द्रियवाले प्रथिवीकायके जीव अगुलके

પૃથિવી પણ ઘસાઈ ને ભરાઈ જાય છે, તેથી પૃથવી સજીવ છે અથવા—

(૩) વિદ્રુમ (પ્રવાળ) પત્થર આદિ–રૂપ પૃથિવી સચેતન છે, કારણ કે કઠિન હોવા છતાં તેમા વૃદ્ધિ જોવામા આવે છે, જેમકે શરીરના હાડકા વગેરે, અર્થાત્ જેમ શરીરના હાડકાં વગેરે કાચબાની પીઠની જેમ કઠોર હોવા છતા સચેતન છે અને વધે છે, તેવી રીતે વિદ્રુમ, શિલા આદિ–રૂપ પૃથિવીમાં કઠિનતા હોવા છતા તેમા વૃદ્ધિ આદિ ગુણ પ્રત્યક્ષ છે. એથી સિદ્ધ થાય છે કે પૃથિવી સચેતન છે. અથવા—

(૪) વિદ્રુમ આદિ રૂપ પૃથિવી સચિત્ત છે કારણ કે તેને કાપી નાખવા છતાં પણ સજાતીય ધાતુની ઉત્પત્તિ જોવામા આવે છે, જેમકે શરીરમાં મસા, અર્થાત જેમકે મસાને ઉપરથી કાપી નાખ્યા છતાં પણ તેના સમાન અવયવો ઊગી આવે છે, તેમ જ વિદ્રુમ અને શિલા આદિને ખાણમાં કાપી નાખ્યા છતા સજાતીય સ્કન્ધોથી કાપેલો ભાગ પાછો ભરાઈ જાય છે તેથી પૃથિવીની સચેતનતા સિદ્ધ થાય છે.

એ પૃથિવી અનેક–જીવ-વાળી છે, અને એ સ્પર્શનેન્દ્રિય-વાળા પૃથિવીકાયના જીવો

स्थिताः सत्त्वाः = स्पर्शनेन्द्रियवन्तो जीवा यस्यां सा तथोक्ता 'आख्याता' इति पूर्वोक्तेनान्वयः, भगवता प्ररूपितेति तदर्थः ।

ननु तर्ह्युक्तस्वरूपायां जीवपिण्डभूतायां पृथिव्यां गमनागमनादिक्रियां कुर्वतां संयमिनामहिंसाव्रतस्य संरक्षणं कथं भवति ? प्रत्युताऽवश्यकरणीयोच्चारप्रस्रवणादिक्रियया हिंसैव भवत्यतोऽहिंसाव्रतपालनं वन्ध्यासुतपालनवदसम्भवमित्यत आह-'अन्यत्र' ति, शस्त्रपरिणताया अन्यत्र=शस्त्रपरिणतां पृथिवीं वर्जयित्वाऽन्या पृथिवी सजीवेत्यर्थः, शस्यते = हिंस्यते प्राणिगणोऽनेनेति शस्त्रं, तद् द्विविधं—द्रव्यभावभेदात् । तत्र द्रव्यशस्त्रं-स्वपरोभयकायलक्षणम्, भावशस्त्रं पृथिवीं प्रति दुष्प्रणिहितमनोवाक्कायात्मकम्, एवमेवान्येषां तत्तत्कायानामपि भावशस्त्रं बोद्धव्यम् । स्वकायशस्त्रं पृथिव्याः श्वेतरवर्णगन्धादिमती

असंख्यातवें-भाग-प्रमाण अवगाहनाको आश्रय करके भिन्न-भिन्न स्वरूप से स्थित है, ऐसा भगवानने कहा है ।

शिष्य गुरुसे पूछता है-हे गुरु महाराज ! जबकि पृथिवी जीवों के पिण्डरूप है तो उस पर अहिंसाव्रत की रक्षा कैसे होगी ? उच्चार-प्रस्रवण आदि क्रियाएं अनिवार्य हैं और इन इन क्रियाओं के करने से हिंसा अनिवार्य हैं, इसलिए अहिंसाव्रत का पालन ऐसा ही असंभव है जैसा वन्ध्या के पुत्र का पालन करना ।

उत्तर- हे शिष्य ! शस्त्रपरिणत पृथिवी के सिवाय अन्य समस्त पृथिवी सचित्त है जिससे प्राणियों की हिंसा होती है उसे शस्त्र कहते है ।

शस्त्र दो प्रकार का है-(१)द्रव्य-शस्त्र और भाव शस्त्र । उनमें से स्व-काय, परकाय और उभय-काय को द्रव्य-शस्त्र कहते है । पृथिवी के विषय में मन-वचन-काय की दुष्परिणति करना भाव-शस्त्र है । इसी प्रकार अन्य सब काय के जीवों के भाव-शस्त्र समझ लेने चाहिये । अपने से भिन्न वर्णगन्धवाली पृथिवी ही पृथिवी का स्वकाय-शस्त्र है, जैसे पोली मिट्टी का शस्त्र

આગળના અસંખ્યાતમા ભાગ પ્રમાણુની અવગાહનાનો આશ્રય કરીને ભિન્ન ભિન્ન સ્વરૂપે સ્થિત છે, એવુ ભગવાને કહ્યું છે.

શિષ્ય ગુરૂને પૂછે છે-હે ગુરૂ મહારાજ ! જો પૃથિવી, જીવોનાં પિંડ-રૂપ છે તો તેની ઉપર ગમનાગમન આદિ ક્રિયાઓ કરનારા સંયમીઓના અહિંસાવ્રતની રક્ષા કેમ થશે ? ઉચ્ચાર, પ્રસ્રવણ આદિ ક્રિયાઓ અનિવાર્ય છે, તેથી અહિંસા-વ્રતનું પાલન એવું અસંભવિત છે કે જેવું વંધ્યાના પુત્રનું પાલન કરવું અસંભવિત છે

ઉત્તર-હે શિષ્ય ! શસ્ત્રપરિણુત પૃથિવી સિવાયની બધી પૃથિવી સચિત્ત છે. જે વડે પ્રાણીઓની હિંસા થાય છે, તેને શસ્ત્ર કહે છે.

શસ્ત્ર બે પ્રકારનાં છે. (૧) દ્રવ્ય-શસ્ત્ર (૨) ભાવ-શસ્ત્ર એમા સ્વકાય, પરકાય અને ઉભયકાયને દ્રવ્ય-શસ્ત્ર કહે છે, પૃથિવીના વિષયમાં મન વચન કાયાથી દુષ્પરિણુતિ કરવી એ ભાવશસ્ત્ર છે એજ રીતે બીજી બધી કાયાના જીવોનાં ભાવશસ્ત્ર સમજી લેવા પોતાથી

पृथिव्येव, यथा पीतमृत्तिकायाः कृष्णमृत्तिका शस्त्रमित्यादि, परकायशस्त्र–जलाग्निगोमयचरणसंमर्दनादि। उभयकायशस्त्रं–जलादिमिश्रमृत्तिका। एवं च शस्त्रपरिणतायाः पृथिव्या अचित्ततया न तत्रोच्चार-प्रस्रवणादिक्रियासम्पादने काऽपि क्षतिर्मुनीनां संयमपालने इति सिद्धम्।

अप्कायः।

आपः = भौमाऽऽन्तरिक्षोभयलक्षणाः, चित्तवत्यः = सचेतनाः, आख्याताः = भगवताऽभिहिताः, तथाहि–भूमिगता आपः सचेतनाः खातभूमिसजातीयस्वभावसम्भवात् मण्डूकवत्। आन्तरिक्ष्योऽप्यापः सचेतनः मेघादिविकृतौ स्वाभाविकसम्भूयसंपतनशीलत्वान्मीनवत्। यद्वा–आपः सचेतनाः, ग्रीष्महेमन्तः स्वाभाविकशैत्यौष्ण्यवाष्पाद्युपलम्भा-

काली मिट्टी है। जल, अग्नि गोबर तथा पैरो से रोदना आदि परकाय शस्त्र है। जल आदि से मिली हुई मिट्टी ऊभयकाय शस्त्र हे।

इस प्रकार शस्त्र परिणत पृथिवी अचित है, अतः उस पर आहार-विहार आदि क्रियाएं करने से मुनियो के अहिसाव्रत पालने में कुछ भी क्षति नहीं होती।

अप्काय

पार्थिव ओर आकाशीय दोनो प्रकार के जलो को भो भगवान ने सचित कहा है।

(१)भूमि में रहा हुआ जल सचेतन है, क्योकि खोदी हुई भूमिमें सजातीय-स्वभाववाला जल उत्पन्न होता है, जैसे मेंढक। भूमि को खोदने से जैसे मेंढक निकलता है और वह सचेतन होता है, उसी प्रकार पानीं निकलता है अतएव वह भी सचेतन है आकाश का भी जल सचेतन है। क्योकि मेघादि–विकार होने पर स्वयं हीं गिरने लगता है-जैसे मछली। अथवा–

(२) जल सजीव है क्योकि उसमें ग्रीष्म और हेमन्त ऋतु में स्वाभाविक शीतता उष्णता

ભિન્ન વર્ણ-ગંધ-વાળી પૃથિવીજ પૃથિવીનું સ્વકાય-શસ્ત્ર છે, જેમ પીળી માટીનું શસ્ત્ર કાળી માટી છે જળ, અગ્નિ, છાણુ તથા પગ વડે ખુંદવું વગેરે પરકાય-શસ્ત્ર છે. જળ આદિથી મળેલી માટી એ ઉભયકાય શસ્ત્ર છે.

એ રીતે શસ્ત્રપરિણુત પૃથિવી અચિત્ત છે, તેથી એની ઉપર આહાર વિહાર આદિ ક્રિયાઓ કરવાથી મુનિઓના અહિંસા વ્રતના પાલનમાં કંઇ પણુ ક્ષતિ આવતી નથી.

અપ્કાય

પાર્થિવ અને આકાશીય બેઉ પ્રકારના જળને પણુ ભગવાને સચિત્ત કહ્યુ છે

(૧) ભૂમિમાં રહેલુ જળ સચેતન છે કારણકે ખોદેલી જમીનમાં સજાતીય સ્વાભાવવાળુ જળ ઉત્પન્ન થાય છે જેમકે દેડકો ભૂમિને ખોદવાથી જેમ દેડકો નીકળે છે અને તે સચેતન હોય છે, તેમ પાણી પણુ નીકળે છે તેથી તે પણુ સચેતન છે. આકાશનુ જળ પણુ સચેતન છે, કારણુ કે મેઘાદિ-વિકાર થવાથી સ્વયં પડવા લાગે છે, જેમકે માછલી અથવા—

न्मनुष्यशरीरवत्, तद्यथा-भूमिगृहस्थितनरस्य शरीरं ग्रीष्मे शीतलं हेमन्ते चोष्णं भवति, मुखाच्च बाष्पमुद्गच्छति, एवमेव गभीरतरतडागकूपादिस्थसलिलं हेमन्ते सबाष्पोद्गमाप्युष्णतां, ग्रीष्मे च शीतलतां धत्ते। अनेकजीवाः पृथक्सत्त्वाः आख्याता इत्यनेनान्वयः, व्याख्या चैषां पदानां प्राग्वद्बोध्या।

नन्वेवमपां जीवपिण्डभूततयाऽद्भिर्विना संयमिनां संयमयात्रा असंभवन्निर्वाहा स्यादित्यत आह-शस्त्रेत्यादि, शस्त्रपरिणताभ्योऽन्यत्र=शस्त्रपरिणता अपो विहायान्या आपः सचित्ता इत्यर्थः। शस्त्रं-द्रव्यभावभेदाद्द्विविधं, द्रव्यशस्त्रं-स्वकायपरकायोभयकायस्वरूपं, भावशस्त्रम्-अपः प्रति मनोवाक्कायानां दुष्प्रणिहितत्वम्। तत्र स्वकायशस्त्रं-तडागाद्युदकस्य कूपाद्युदकम् एवंविधशस्त्रपरिणतं जलं व्यवहारतोऽशुद्धत्वाद्भगवदनादिष्टत्वाच्च सर्वथै-

---

और भाफ आदि देखे जाते है जिसमें ग्रीष्मादि ऋतुओमें शीतता आदि पाये जातेहै वह सजीव होते है, जैसे मनुष्य का शरीर। जैसे भोयरे में स्थित मनुष्य का शरीर ग्रीष्म-ऋतुमें शीत और हेमन्त-ऋतु में उष्ण होता है, तथा हेमन्त ऋतु में मुह से भाफ निकलती है, वैसेही खूब गहरे तालाव या कूएका जल भी हेमन्त में भाफ वाला और उष्ण होता है तथा ग्रीष्म में शीतल होता है।

अनेक जीव और पृथक्सत्त्व आदि पदोका व्याख्यान पहले कहे हुए पृथिवीकाय के आलापक के समान समझना चाहिए।

हे गुरो! जल के विना सयमियो का निर्वाह नहीं हो सकता और वह जीवो का पिण्ड है, इसलिए उसको पीने आदिके काम में लानेसे सयम की रक्षा नहीं हो सकती। ऐसी आशङ्का होने पर गुरु करते है- हे शिष्य! शस्त्रपरिणत जल के सिवाय अन्य जल सजीव है। यहा पर भी शस्त्र, द्रव्य और भाव के भेद से दो प्रकार का है। उसका कथन पहले किया जा चुका है। यह विशेष समझना चाहिये कि तालाब आदि के जल का कूप आदि का जल स्वकायशस्त्र है।

---

(२) જળ સજીવ છે. કારણ કે તેમા ગ્રીષ્મ અને હેમન્ત ઋતુમા સ્વાભાવિક શીતતા ઉષ્ણુતા અને બાફ આદિ જોવામાં આવે છે જેમાં ગ્રીષ્માદિ ઋતુઓમાં શીતળતા આદિ જણાઇ આવે છે તે સજીવ હોય છે, જેમકે માણુસનું શરીર. જેમ ભોયરામાં રહેલા માણુસનું શરીર ગ્રીષ્મ-ઋતુમા શીતલ અને હેમન્ત-ઋતુમાં ગરમ હોય છે, તથા હેમંત-ઋતુમાં મ્હોમાંથી બાફ (વરાળ) નીકળે છે, એજ રીતે ખૂબ ઉંડા તાળાવ કુવાનું જળ પણ હેમંત ઋતુમાં બાફવાળુ અને ઉષ્ણુ હોય છે તથા ગ્રીષ્મમા શીતળ હોય છે,

અનેક જીવ તથા પૃથક્સત્ત્વ આદિ શબ્દોનુ વ્યાખ્યાન પહેલાં કહેલા પૃથિવીકાયના આલાપકની જેમ સમજવુ

હે ગુરુ! જળ વિના સંયમીઓનો નિર્વાહ થઈ શકતો નથી અને એ જીવોનો પિંડ છે તેથી તેને પીવા આદિના કામમાં લેવાથી સંયમની રક્ષા નહિ થઈ શકે. એવી આશંકા થતાં ગુરૂ કહે છે હે શિષ્ય! શસ્ત્ર-પરિણત જળ સિવાયનું અન્ય જળ સજીવ છે. એમાં પણ શસ્ત્ર, દ્રવ્ય અને ભાવના ભેદે કરીને બે પ્રકારના છે. એનું કથન પહેલાં કરવામાં આવ્યુ

ग्राह्यम्। परकायशस्त्रं-द्राक्षा-शाक-तण्डुल पिष्ट-दाली-चण कादि। अपां शस्त्रपरिणतत्वं च वर्णादीना पूर्वावस्थावैलक्षण्यरूपम्। तत्र—वर्णतो धूसरत्वादिरूपम्, गन्धतस्तत्तद्वस्तुसम्बन्धित्वरूपम्, रसतस्तिक्त-कटुकषायत्वादिरूपम्, स्पर्शतः स्निग्धरूक्षत्वादिरूपम् इत्थमुक्तप्रकारं द्राक्षादिधावनजलं प्रासुकत्वान्मुनिग्राह्यम्। उपलक्षणमेतदग्निशस्त्रपरिणतस्योदकस्यापि। भस्ममिश्रजलमग्राह्य,तत्र मिश्रशङ्कायाः सद्भावात्, शास्त्रे क्वचिदप्यप्रतिपादितत्वाच्च। उभयकायशस्त्रंमृत्तिकामिश्रजलम्। भावशस्त्रमुक्तस्वरूपमेवेति।

तेजस्कायः।

तेजश्चित्तवत्=सचेतनम् आख्यातम्=उक्तम्, तथाहि—

तेजश्चेतनावत् इन्धनाद्याहारोपादानहानाभ्याम् तद्वृद्धिमान्द्योपलम्भात्, मनुष्या-

---

इस प्रकार का शस्त्रपरिणत जल व्यवहार से अशुद्ध होने के कारण ग्राह्य नहीं है तथा ऐसे जल के लेने में भगवान की आज्ञा भी नहीं है।

दाख, शाक, चावल, आटा, आदि परकायशस्त्र है। जल में पहले जैसा वर्ण गन्ध आदि था उसका वदल जाना शस्त्रपरिणत होना कहलाता है।

जैसे—धूमर वर्ण हो जाना, वस्तु उसमें डाली गईहो उसकी गन्ध आने लगना, तीखा, कडुवा, कषायला आदि रस हो जाना, स्निग्ध या रूक्ष आदि स्पर्श हो जाना। इस प्रकार यह दाख, शाक, चावल, आटा, दाल, बेसन आदि का धोवन प्रासुक होने से मुनि के लिए ग्राह्य है। यह तो उपलक्षण है, इससे यह भी समझना चाहिये कि अग्निशस्त्रपरिणत अर्थात् उष्ण जल भी मुनि को ग्राह्य है। राख का पानी ग्राह्य नहीं है क्योंकि उसमें मिश्र की शङ्का रहती है। मृत्तिका आदि से मिला हुआ जल उभयकाय शस्त्र है। भावशस्त्र पहले कह चुके है।

(तेजस्काय)

तेजस्काय को भी भगवान ने सचेतन कहा है, यही कहते है तेजस्काय सजीव है, क्योंकि

છે તેમજ એટલું સમજવું કે તળાવ આદિના જળનું કૂપાદિનું જળ એ સ્વકાય શસ્ત્ર છે એ પ્રકારનું શસ્ત્ર-પરિણત જળ વ્યવહારથી અશુદ્ધ હોવાના કારણે ગ્રાહ્ય નથી તથા એવું જળ લેવાની ભગવાનની આજ્ઞા પણ નથી.

દ્રાક્ષ, શાક, ચોખા, આટો ઈત્યાદિ પરકાય શસ્ત્ર છે. જળમાં પહેલા જેવા વર્ણ ગંધ આદિ હતા તેનું બદલાઇ જવું એ શસ્ત્રપરિણત થવું કહેવાય છે

જેમકે—ધુંધળા વર્ણનું થઇ જવું, વસ્તુ તેમા નાખવામાં આવી હોય તેની ગંધ આવવા લાગવી તીખો કડવો કષાયલો આદિ રસ થઈ જવો, સ્નિગ્ધ યા રૂક્ષ આદિ સ્પર્શ થઈ જવો એ પ્રમાણે એ દ્રાક્ષ, શાક, ચોખા, આટો, દાળ, વેસણ આદિનું ધોવણ પ્રાસુક હોવાથી મુનિને માટે ગ્રાહ્ય છે આતો ઉપલક્ષણ છે, એથી એમ પણ સમજવું જોઇએ કે—અગ્નિશસ્ત્ર-પરિણત અર્થાત્ ઉષ્ણ જળ પણ મુનિને ગ્રાહ્ય છે રાખનું પાણી ગ્રાહ્ય નથી, કારણ કે એમાં મિશ્રની શંકા રહે છે. માટી આદિથી મળેલું જળ ઉભયકાય શસ્ત્ર છે (૨) ભાવશસ્ત્ર પહેલાં કહી દીધું છે

दिशरीरवत् ।

अङ्गारादीनां प्रकाशनशक्तिर्यावदात्मसंयोगभाविनी देहस्थत्वात् खद्योतशरीरपरिणामवत्

अङ्गारादीनां तापोऽपि आत्मसंयोगसद्भावहेतुकः, शरीरस्थत्वात् ज्वरतापवत्, न हि क्वचिदपि विरहितात्मानो ज्वरतापोष्णगात्राः संश्रूयन्ते न वोपलभ्यन्ते, एवमेव निस्तेजस्काङ्गारादितोऽणुमात्रोऽपि तापो न जन्यते, तस्माद् यावदात्मसंयोगस्तावदेवाङ्गारादी-

---

इन्धन आदि आहार देने से उसकी वृद्धि और न देनेसे हानि (मन्दता) होती है, जैसे मनुष्य का शरीर । अर्थात् मनुष्य का शरीर आहार देने से बढता और न देने से घटता है, अत. वह सचेतन है । इस प्रकार तेजस्काय भी ईंधन देने से बढती और न देने से घटती है, अत' वह भी सचेतन है ।

अंगार आदि की प्रकाशन शक्ति जीव के सयोग से ही उत्पन्न होती है क्योंकि वह देहस्थ है जो जो देहस्थ प्रकाश होता है वह वह आत्मा के सयोग के ही निमित्त से होता है, जैसेजुगुनू के शरीरका प्रकाश । जुगुनू के शरीर में प्रकाश तब तक ही रहता है जब तक उसके साथ आत्माका सयोग रहता है ।

इसी प्रकार अगार आदि का प्रकाश भी तब तक ही रहता है जबतक उसमें आत्मा रहती है ।

अंगार आदिका ताप भी आत्मा के सयोगके ही कारण है क्योंकि वह शरीरस्थ है, जितने शरीरस्थ ताप होते है वे सब आत्मा के निमित्तसे हीं होते है, जैसे ज्वरके ताप । आत्मा रहित शरीर (शव–मुर्दा) में कभी ज्वरका ताप नहीं सुना जाता न उपलब्ध होता है । इसी प्रकार निस्तेजस अगारमें अणुमात्र भी ताप नहीं होता, अतएव सिद्ध है कि अगार आदिमें

(તેજસ્કાય)

તેજસ્કાયને પણ ભગવાને સચેતન કહેલ છે, એ હવે કહે છે,—

તેજસ્કાય સજીવ છે કારણ કે લાકડાં (ઇંધણા) આદિ આહાર આપવાથી તેની વૃદ્ધિ અને ન આપવાથી હાનિ (મંદતા) થાય છે, જેમકે મનુષ્યનું શરીર અર્થાત્-મનુષ્યનું શરીર આહાર આપવાથી વધે છે અને ન આપવાથી ઘટે છે, તેથી તે સચેતન છે, એજ રીતે તેજસ્કાય પણ ઇંધણ આપવાથી વધે છે અને ન આપવાથી ઘટે છે તેથી તે સચેતન છે,

અંગારા આદિની પ્રકાશન-શક્તિ જીવના સંયોગથી જ ઉત્પન્ન થાય છે કારણ કે એ દેહસ્થ છે, જે જે દેહસ્થ પ્રકાશ હોય છે તે તે આત્માના સંયોગના જ નિમિત્તથી હોય છે, જેમકે આગીયાના શરીરનો પ્રકાશ આગીયાના શરીરમા પ્રકાશ ત્યાસુધી જ રહે છે કે જ્યાં સુધી તેની સાથે આત્માનો સંયોગ રહે છે એ રીતે અંગારા આદિનો પ્રકાશ પણ ત્યાં સુધી જ રહે છે કે ક્યા સુધી તેમા ચેતન રહે છે

અંગારા આદિનો તાપ પણ આત્માના સંયોગના જ કારણે છે, કેમકે તે શરીરસ્થ છે જેટલા-શરીરસ્થ તાપ હોય છે તે બધા આત્માના નિમિત્તથી જ હોય છે, જેમકે જ્વરનો તાપ આત્મા રહિત શરીર (મડદુ) મા કદિ જ્વરનો તાપ સાંભળવામા આવતો નથી કે

नां तापजनकत्वमतः सिद्धं तेजसः सचेतनत्वम् अनेकजीवं, पृथक्सत्वम् ' इति प्राग्वत्, 'आख्यात' मित्यनेनान्वयः, 'शस्त्रपरिणतादन्यत्र ' इति च पूर्ववत् । शस्त्रस्वरूपमाह,-तत्र सकायशस्त्र-करीषाग्नेस्तृणाग्निः, एवंविधशस्त्रपरिणतोऽप्यग्निः सर्वथैवाग्राह्यो व्यवहारतोऽशुद्धत्वात् । परकायशस्त्रं जलमृत्तिकादि । उभयकायशस्त्रमुष्णोदकादि । भावशस्त्रमग्निकायं प्रति मनसोदुष्प्रणिधानम् ।

शस्त्रपरिणताचित्ताग्निकायमाह-उष्णमन्नं-कृशरौदनादि, उष्णपानकं शाकौदनादोनामवस्रावणादि (ओसामण इति भाषा), तप्तेष्टका सिकतादि च, एतेष्वग्निसंयोगनिष्पाद्यत्वादचित्ताग्निकायशब्दो व्यपदिश्यते, क्षुधाद्युपशमनार्थं ग्राह्योऽसौ ।

वायुकायः ।

वायुश्चित्तवानाख्यातः । कथमस्य सचेतनत्वमिति चेत्तत्प्रमाणाद् गृहाण, तथाहि-वायुश्चेतनावान् अनन्यप्रेरिताऽनियततिर्यग्गमनत्त्वात्, हरिणगवयादिवत्, स च ' अनेक-

---

तापजनन शक्ति जब-तक आत्मा रहतो है तब तक होतो है, इसलिए तेजस्काय सचेतन है । अनेकजीव और पृथक्सत्व' आदि पदोंकी व्याख्या पहलेकी भाँति है ।

यह भी समझ लेना चाहिये कि वही तेज़स्काय सचित्त है जो शस्त्र-परिणत न हो । तेज़स्कायके शस्त्र ये हैं-जैसे छाणाकी अग्निका शस्त्र तृणकी अग्नि हैं । इस प्रकार की शस्त्रपरिणत अग्नि ग्राह्य नहो है, क्योंकि वह व्यवहार से अशुद्ध है । तथा इसके ग्रहण करने में भगवान की आज्ञा भी नही है । जल मृत्तिका आदि परकाय शस्त्र है । उष्णजल उभयकाय शस्त्र है ।

खिचडी, भात आदि उष्ण अन्न, शाकका ओसामण और चावलो का मण्ड आदि उष्ण पान, तपी हुई ईंट, बालू आदि शस्त्र-परिणत अचित्त अग्निकाय कहलाते है । ये सब अग्नि के सयोग से निष्पन्न होते है इसलिए इनमे अचित अग्निकाय शब्द की प्रवृत्ति होती है ।

નથી જોવામાં આવતો, એ રીતે નિસ્તેજસ અગારામા અણુમાત્ર પણ તાપ હોતો નથી. તેથી સિદ્ધ થાય છે કે અગારા આદિમા જ્યાંસુધી આત્મા હોય છે ત્યાંસુધી જ તાપ-જનન શક્તિ રહે છે તેથી તેજસ્કાય સચેતન છે 'અનેક-જીવ અને પૃથક્-સત્ત્વ' આદિ શબ્દોની વ્યાખ્યા પહેલાની જેમ છે.

એ પણ સમજી લેવું જોઈએ કે એજ તેજસ્કાય અચિત્ત છે કે જે શસ્ત્રપરિણુત ન હોય તેજસ્કાયના શસ્ત્ર આ છેઃ—જેમ છાણાના અગ્નિના શસ્ત્ર તરણાનો અગ્નિ છે. એ પ્રકારનો શસ્ત્રપરિણુત અગ્નિ ગ્રાહ્ય નથી, કારણુ કે તે વ્યવહારથી અશુદ્ધ છે. વળી તેને ગ્રહણુ કરવાની ભગવાનની આજ્ઞા પણુ નથી જળ, માટી વગેરે પરકાય-શસ્ત્ર છે ઉનું પાણી ઉભયકાય-શસ્ત્ર છે.

ખિચડી, ભાત આદિ ઊનુ અન્ન શાકનુ ઓસામણુ અને ચોખાનુ ઓસામણુ, આદિ ઊનું પાન, તપેલી ઈંટ ગરમ રેતી આદિ શસ્ત્રપરિણુત અચિત્ત અગ્નિકાય કહેવાય છે. એ બધાં અગ્નિના સયોગથી નિષ્પન્ન થાય છે. તેથી એમા અચિત્ત અગ્નિકાય શબ્દની પ્રવૃત્તિ થાય છે. (૩)

जीवः, पृथक्सत्त्वः आख्यातः, शस्त्रपरिणतादन्यत्र' इत्यादिकानां प्राग्वद्व्याख्या बोद्धव्या।

शस्त्रं चास्य द्रव्य-भावभेदाद्द्विविधं तत्र द्रव्यशस्त्रं[1] स्व पर-तदुभय-कायभेदात्त्रिविधम् स्वकायशस्त्रं-पौरस्त्यादिवायोः पाश्चात्यादिवायुः। परकायशस्त्रमनलादि। उभकायशस्त्रमनलादिसंतप्तो वायुरेव। भावशस्त्रं तु वायु प्रति मनसो दुष्प्रवृत्तिः।

वायुः सचित्ताचित्तमिश्रभेदात्त्रिधा, तत्र सचित्तो घनवातादिः, अचित्तो दृतिप्रभृतिषु पूरिपः, सोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तादूर्ध्वं यावदेकं यामम चेतनः, तदनु पूर्णद्वितीययामं यावन्मि-

(वायुकाय)

वायुकाय को भी भगवानने सचित्त कहा है। वायु कैसे सचित्त है सो कहते है वायु सचेतन है। क्योंकि दूसरे की प्रेरणा के विना अनियत रूप से तिर्यक्गमन करने वाला है जैसे हिरन या रोझ (गवय)।

अनेक जीव और पृथक्सत्त्व आदि व्याख्या पहले के समान समझनी चाहिए।

वायुकाय का शस्त्र द्रव्य--भाव--भेद से दो प्रकार का है, द्रव्यशस्त्र --स्वपर-उभयकाय के भेद से तीन प्रकार का है। वहां स्वकाय-शस्त्र पूर्व आदि दिशा के वायुका पश्चिम आदि दिशाका वायु, परकाय-शस्त्र अग्नि आदि है, उभयकाय-शस्त्र अग्नि आदि से तपा हुआ वायु ही है। वायु तीन प्रकार का है--

(१) सचित्त, (२) अचित्त, (३) मिश्र। घनवात आदि सचित्त है, दृति या रबर की थैली आदि में भरी हुई हवा अचित्त होती है, किन्तु अन्तर्मुहूर्त्त के बाद एक प्रहर तक अचित्त

(વાયુકાય)

વાયુકાયને પણ ભગવાને સચિત્ત કહી છે વાયુ કેવી રીતે સચિત્ત છે તે કહે છેઃ-

વાયુ સચેતન છે કારણ કે બીજાની પ્રેરણા વિના અનિયતરૂપે તિર્યક્ ગમન કરનારો છે, જેવુ કે હરણ અથવા રોઝ (નીલગાય)

અનેક જીવ અને પૃથક્સત્ત્વ આદિની વ્યાખ્યા પહેલાંની પેઠે સમજવી.

વાયુકાયના શસ્ત્ર દ્રવ્ય-ભાવભેદે બે પ્રકારના છે દ્રવ્યશસ્ત્ર સ્વ-પર-ઉભયકાયના ભેદે કરી ત્રણ પ્રકારના છે, ત્યાં સ્વકાયશસ્ત્ર-પૂર્વઆદિ દિશાના વાયુનો પશ્ચિમ-આદિ દિશાનો વાયુ. પરકાયશસ્ત્ર અગ્નિ આદિ છે, ઉભયકાયશસ્ત્ર અગ્નિઆદિથી તપેલો વાયુ જ છે ભાવ-શસ્ત્ર પહેલાની જેમ સમજી લેવુ વાયુ ત્રણ પ્રકારનો છે -

(૧) સચિત્ત, (૨) અચિત્ત, (૩) મિશ્ર ઘન-વાત આદિ વાયુ સચિત્ત છે· મસક યા રબ્બરની થેલી આદિમા ભરેલી હવા અચિત્ત છે, પરન્તુ અંતર્મુહૂર્તની પછી એક પ્રહર

१ भगवतीसूत्रस्य द्वितीयशतके प्रथमोद्देशे वाय्वधिकारे—

"से भंते! किं पुट्ठे उद्दाइ अपुट्ठे उद्दाइ? गो०? पुट्ठे उद्दाइ नो अपुट्ठे उद्दाइ'

छाया—'स (वायु) भगवन्? किं स्पृष्ट अपद्रवति (म्रियते) अस्पृष्ट अपद्रवति? गौतम? स्पृष्टः अपद्रवति नो अस्पृष्ट अपद्रवति। अस्य टीका-'स्पृष्ट स्वकायशस्त्रेण परकायशस्त्रेण वा अपद्रवति म्रियते'।

श्रः , तत्पश्चात्सचित्त एव, रोगाद्यवस्थायां वायोरावश्यकत्वे दृत्यदिपूरितोऽपि मिश्रत्वाद-ग्राह्य एव सचित्तवत् । (४)

वनस्पतिकायः ।

वनस्पतिश्चित्तवान् आख्यातः, व्याख्या तु पूर्ववत् । चैतन्यवत्त्वसिद्धिश्चेत्थम्-

वनस्पतिः सचेतनः, बाल्याद्यवस्थासन्दर्शनात्, छेदन-भेदनादिभिर्म्लानतादिदर्शनाच्च मनुष्यशरीरवत् । शेषं पूर्ववत् । शस्त्रं द्रव्यभावभेदाद्विविधं' तत्र द्रव्यशस्त्रं स्वपरोभयकायात्मकम् ।स्वकायशस्त्रं-यष्ट्यादि । परकायशस्त्रं पाषाणाऽसिकर्त्तर्यादि, उभयकायशस्त्र -परशुदात्रादि । भावशस्त्रं तु तं प्रति मनोमालिन्यम् ॥ ४ ॥

रहती है, उसके बाद दूसरे पहर तक मिश्र अवस्था में रहती है बाद में सचित्त हो जाती है । रोग आदि अवस्था में वायु की आवश्यकता होने पर दति आदि में भरा हुआ अचित्त वायु साधुओंको ग्राह्य है, किन्तु दूसरे प्रहर का मिश्र वायु, सचित्त वायु की तरह अग्राह्य है । (४)

(वनस्पतिकाय)

वनस्पतिकायको भी भगवान ने सचित्त कहा है । वनस्पति सचित्त है, क्योकि उस में बाल्यावस्था आदि, तथा छेदन भेदन आदि करने से म्लानता आदि सचेतनके गुण देखे जाते है , जैसे मनुष्य का शरीर । अर्थात् बाल्य-तरुण आदि अवस्थाएं और छेदन-भेदन आदि करने से म्लानता होने के कारण जैसे मनुष्य-शरीर सचेतन है वैसे ही वनस्पतिकाय भी सचेतन है । 'अनेकजीव' आदि पदोका व्यख्यान पहले की भाँति जानना चाहिये ।

वनस्पति-काय के शस्त्र दो प्रकारके हैं-(१) द्रव्यशस्त्र और (२)भावशस्त्र । द्रव्य-शस्त्र स्वकाय, परकाय और उभयकाय है, लकडी आदि स्वकाय शस्त्र है । लोह पत्थर आदि परकाय

સુધી અચિત્ત રહે છે, ત્યારપછી બીજા પ્રહર સુધી મિશ્ર અવસ્થામા રહે છે. અને ત્યારબાદ સચિત્ત બની જાય છે રોગાદિ અવસ્થામા વાયુની આવશ્યકતા પડતાં મસક આદિની અંદર ભરેલો અચિત્ત વાયુ સાધુઓને ગ્રાહ્ય છે, કિન્તુ બીજા પ્રહરનો મિશ્રવાયુ સચિત્તવાયુની પેઠે અગ્રાહ્ય છે (૪)

(વનસ્પતિકાય)

વનસ્પતિકાયને પણ ભગવાને સચિત્ત કહી છે.

વનસ્પતિ સચિત્ત છે, કારણ કે તેમા બાલ્યાવસ્થા આદિ તથા છેદન ભેદન કરવાથી મ્લાનતા આદિ સચેતનના ગુણ જોવામાં આવે છે, જેમકે મનુષ્યનું શરીર, અર્થાત્ બાલ્ય-તરૂણ આદિ અવસ્થાઓ અને છેદન-ભેદન આદિ કરવાથી મ્લાનતા થવાને કારણે જેમ મનુષ્યનું શરીર સચેતન છે તેમ વનસ્પતિકાય પણ સચેતન છે 'અનેક-જીવ' આદિ શબ્દોનું વ્યાખ્યાન પહેલાની પેઠે જાણવુ.

વનસ્પતિકાયના શસ્ત્ર બે પ્રકારનાં છે (૧) દ્રવ્યશસ્ત્ર અને (૨) ભાવશસ્ત્ર. દ્રવ્યશસ્ત્ર, સ્વકાય, પરકાય અને ઉભયકાય છે લાકડી આદિ સ્વકાયશસ્ત્ર છે. લોઢું પત્થર આદિ પરકાય

सम्प्रति वनस्पतिमेव सविशेषं वर्णयति–'तं जहा' इत्यादि ।

मूलम्—तं जहा–अग्गबीया मूलबीया पोरबीया, खंधबीया बीयरुहा संमुच्छिमा तणलया वणस्सइकाइया सबीया चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं ॥५॥

छाया–तद्यथा–अग्रबीजा मूलबीजाः पर्वबीजाः स्कन्धबीजाः बीजरुहाः सम्मूर्च्छिमास्तृणलतावनस्पतिकायिकाः सबीजश्चित्तवन्त आख्याता अनेकजीवाः पृथक्सत्त्वा-अन्यत्र शस्त्रपरिणतेभ्य ॥ ५ ॥

यहां वनस्पतिकायका विशेष वर्णन करते हैं —

सान्वयार्थः—तं जहा=वह इस प्रकारसे है-अग्गबीया=जिनका बीज अग्रभागमें होता है, मूलबीया=जिनका बीज मूलभाग में होता है, पोरबीया=जिनका बीज पोर (सन्धि) में होता है, खंधबीया=जिनका बीज स्कन्ध (डाले) में होता है, बीयरुहा=बीजसे उगनेवाले, संमुच्छिमा=विना बीजके उत्पन्न होनेवाले, तणलया= तृण और लताएँ; ये सभी वणस्सइकाइया=वनस्पतिकायिक हैं सबीका=पूर्वोक्त अपने–अपने नाम-प्रकृतिके उदयसे उत्पन्न हुए बीजसहित सब वनस्पतिकाय चित्तमंतं=सचित्त अक्खाया=कहे गये है, अन्नत्थ=सिवाय सत्थपरिणएणं=शस्त्रपरिणतके; ये वनस्पतिकाय अणेगजीवा=अनेक जीववाले और पुढोसत्ता=भिन्न–भिन्न सत्तावाले हैं ॥५॥

टीका–तथाहि अग्रजीवाः=अग्रे=अग्रभागे बीजं येषां ते तथा कोरण्टकादयः । मूलबीजाः=मूलमेव बीजं येषां ते कमलकन्दप्रभृतयः । पर्वबीजाः=पर्वणि-ग्रन्थौ पर्वैव बीजं-येषां ते तथा इक्षुप्रमुखाः स्कन्धबीजाः=स्कन्धः-स्थुड स एव बीज येषां ते तथा शल्ल-

---

शस्त्र है, परशु (फरसा) दात्र आदि उभयकाय शस्त्र है । भावशस्त्र उसके प्रति मनके परिणाम दुष्ट करना ॥ ४ ॥

अब बनस्पतिकाय का विशेष वर्णन करते है–'तं जहा' इत्यादि ।

अग्रबीज–जिनके बीज अग्र–भाग में होते है ऐसे कोरंटक आदि अग्रबीज कहलाते है ।

मूलबीज–मूलही जिनका बीज हो वह, कमल का कन्द आदि मूलबीज है ।

पर्वबीज–पोर (गाठ)में या पर्व ही जिनका बीज है ऐसे, गन्ना (साठा) आदि पर्वबीज कहलाते हैं ।

यशस्त्र छे કોહાડો, દાતરડું આદિ ઉભયકાય શસ્ત્ર છે. ભાવશસ્ત્ર એની પ્રતિ મનના પરિણામ દુષ્ટ કરવા તે (४)

હવે વનસ્પતિકાયનું વિશેષ વર્ણન કરે છે–त जहा ઈત્યાદિ.

અગ્રબીજ—જેના બીજ અગ્રભાગમાં હોય છે એવા કોરંટક (હજારી ગુલ) આદિ અગ્રબીજ કહેવાય છે

મૂલબીજ—મૂળજ જેનું બીજ છે તે કમળનો કંદ આદિ મૂલબીજ છે,

की भृतयः। बीजरुहाः=बीजाद् रोहन्ति = प्रादुर्भवन्तीति ते तथा शालिगोधूमादयः। सम्मूर्च्छिमाः=संम्मूर्च्छन्ति=बीजं विनापि दग्धभूमावपि समुद्भवन्तीति ते तथोक्ताः पृथिवीजलसंयोगमात्रजनितास्तृणविशेषा इत्यर्थः। आर्षत्वात्सिद्धिः तथा तृणलताः=तृणानि-लताश्चेत्यर्थः। वनस्पतिकायिकाः'= अवशिष्टाः समस्तवनस्पतय इत्यर्थ। यद्वा तृणलता-वनस्पतिकायिकाः' इत्येक पदम्, तत्र तृणानि=दर्भादीनि, लता =चम्पकाऽशोकवासन्त्या दयः, वनस्पतिकायिकाः=वनस्पतिकायभेदाः, —अग्रबीजादयः सर्वेऽपि वनस्पतिकायिका एव, पुनर्वनस्पतिकायिकग्रहणं स्वगतसूक्ष्मादिसकलभेदख्यापनार्थम्। सबीजा =पूर्वविहितस्वस्वनामगोत्रप्रकृत्युदयात्मककारणवन्तः, अर्थात् पूर्वोक्ता अग्रबोजादय सर्वेऽपि चित्तवन्तः, इत्यादीनां व्याख्या पूर्ववत्।

इति पञ्चस्थावरकायनिरूपणम् ॥ ५ ॥

स्कन्धबीज--स्कन्ध (थुड) ही जिसका बीज है। उस शल्लकी आदिको स्कन्धबोज कहते है।

बीजरुह—चांवल गेहुं आदि बीजसे उगनेवाली वनस्पति को बीजरुह कहते है।

समूर्च्छिम—विना बींज के जली हुई भूमि में भी जो पृथिवी और जल के सयोग से उग जावे ऐसी घास आदि को समूर्च्छिम कहते है।

" तृणलता—तिनका (घास) और लताए सब वनस्पतिकायिक है अथवा "तृणलता-वनस्पतिकायिकाः" यह एक ही पद है। दर्भ (दूब आदि) तृण, चम्पक, अशोक और वासन्ती आदि लताएं और वनस्पतिकायके भेद अग्रबीज आदि सब वनस्पतिकायिक है। सूत्र मे दूसरी वार 'वनस्पतिकायिक' पद का ग्रहण इसलिए किया है कि—ऊपर बताये हुए भेदोंके सिवाय शूक्ष्म बादर आदि और भी समस्त भेदों का ग्रहण हो जावे। ये सब पहले दिखलाये हुए

પર્વબીજ—ગાઠ યા પર્વમા જેનું બીજ છે એવી શેરડી આદિ પર્વબીજ કહેવાય છે.

સ્કંધબીજ—સ્કંધ-થડજ જેનું બીજ છે એવા શલ્લકી આદિ ને સ્કધબીજ કહે છે.

બીજરૂહ—ચોખા ઘઉ આદિ બીજથી ઉગનારી વનસ્પતિને બીજરૂહ કહે છે.

સંમૂર્ચ્છિમ—બીજ વિના બળી ગએલી ભૂમિમા પણ જે પૃથ્વી અને જળના સંયોગથી ઉગે એવા ઘાસ આદિને સમૂર્ચ્છિમ—કહે છે

તૃણુલતા-તરણા (ઘાસ) અને લતા એ બધાં વનસ્પતિકાયિક છે

અથવા તૃણલતાવનસ્પતિકાયિકા એ એક જ પદ છે દર્ભ (દાભડો) તૃણ, ચપક, અશોક, અને વાસતી આદિ લતાઓ અને વનસ્પતિકાયના ભેદ અગ્ર બીજ આદિ બધા વનસ્પતિકાયિક છે. સૂત્રમા બીજી વાર 'વનસ્પતિકાયિક' શબ્દનુ ગ્રહણ એટલા માટે કરવામાં આવ્યું છે કે-ઉપર બતાવેલા ભેદો ઉપરાત સૂક્ષ્મ બાદર આદિ બીજા પણ બધા ભેદોનું ગ્રહણ થઈ જવા પામે એ બધા પહેલાં બતાવેલા પોત-પોતાના નામ-ગોત્ર-રૂપ પ્રકૃતિનાં

साम्प्रतं क्रमप्राप्तं त्रसकायस्वरूपमाह–'से जे० ' इत्यादि ।

मूलम्—से जे पुण इमे अणेगे बहवे तसा पाणा, तं जहा अंडया पोयया जराउया रसया संसेइमा संमुच्छिमा उब्भिया उववाइया। जेसिं केसिंचि पाणाणं अभिक्कंतं पडिक्कंतं संकुचियं पसारियं रुयं भंतं तसियं पलाइयं, आगइगइविन्नाया जे य कीडपयंगा। जा य कुंथुपिवीलिया। सव्वे बेइंदिया सव्वे तेइंदिया सव्वे चउरिंदिया, सव्वे पंचिंदिया. सव्वे तिरिक्खजोणिया. सव्वे नेरइया. सव्वे मणुया. सव्वे देवा. सव्वे पाणा परमाहम्मिया एसो खलु छट्ठो जीवनिकाओ तसकाउ-त्ति पवुच्चइ ॥ ६ ॥

छाया—अथ ये पुनरिमेऽनेके बहवस्त्रसाः प्राणिनस्तद्यथा–अण्डजाः पोतजा जरायुजा रसजाः संस्वेदजाः संम्मूर्च्छिमा उद्भिज्जा औपपातिकाः येषां केषाञ्चित्प्राणिनामभिक्रान्तं प्रतिक्रान्त संकुचितं प्रसारितं रुतं भ्रान्तं त्रस्तं पलायितम् , आगतिगतिविज्ञातारः। ये च कीटपतङ्गाः। याश्च कुन्थुपिपीलिकाः। सर्वे द्वीन्द्रियाः, सर्वे त्रीन्द्रियाः, सर्वे चतुरिन्द्रियाः, सर्वे पञ्चेन्द्रियाः, सर्वे तिर्यग्योनिकाः, सर्वे नैरयिकाः, सर्वे मनुजा सर्वे देवाः, सर्वे प्राणाः परमधर्माणः। एष खलु षष्ठो जीवनिकायस्त्रसकाय इति प्रोच्यते॥६॥

(६) त्रसकायवर्णन

सान्वयार्थः—से=अथ पुण=और जे=जो इमे=ये (आगे कहे जाने वाले) अणेगे=अनेक प्रकारके बहवे=बहुतसे तसा=त्रस पाणा=प्राणी हैं, तं जहा=वे इस प्रकार हैं— (१) अंडया=अण्डेसे उत्पन्न होनेवाले , (२) पोयया=बिना जेर (जरायु-आंवल-जड) के अर्थात् बिना ही कुछ मलभागके वस्त्रसे पूंछे हुएके समान उत्पन्न होनेवाले , (३) जराउया=जेरसे लिपटे हुए उत्पन्न होनेवाले , (४) रसया=रसमें उत्पन्न होनेवाले , (५) संसेइमा=पसीनेसे उत्पन्न होनेवाले , (६) संमुच्छिमा=संमूर्च्छिम, (७) उब्भिया= पृथ्वीको भेदकर उत्पन्न होनेवाले (शलभआदि), (८) उववाइया=उपपात जन्मवाले-देव और नारकी, जेसिं-केसिंचि=इनमेंसे जिन किन्हीं पाणाणं=प्राणियोंका अभिक्कंतं=अभि-

---

अपने अपने नाम-गोत्र रूप प्रकृति के उदयरूप कारण वाले हे । अर्थात् पूर्वोक्त बीज आदि सब सचित्त होते है और पृथक्–पृथक स्पर्शरूप एक इन्द्रियवाले है ॥ ५ ॥

यह पाच स्थावरकायका निरूपण समाप्त हुआ

ઉદય-રૂપ કારણવાળા છે અર્થાત્ પૂર્વોક્ત બીજ આદિ બધા સચિત્ત હોય છે અને પૃથક્-પૃથક સ્પર્શરૂપ એક ઈન્દ્રિયવાળાં છે (૫)

ઈતિ પંચ-સ્થાવર - કાયનું નિરૂપણ સમાપ્ત.

मुख गमन होता है, पडिक्कंतं=प्रतिकूल गमन होता है, 'संकुचिय — शरीरमें संकोच-सिकुडन होता है पसारियं=शरीरमें फैलाव होता है, रुय=शब्द का प्रयोग होता है, भंतं =इधर-उधर भ्रमण होता है, तसियं=उद्योग होता है, पलाइयं=डरसे भागना देखा जाता है, (वे त्रस)आगइगइविन्नाया=आगमन और गमनको जाननेवाले, य=और जे=जो कीडपयंगा=कीड-कोडे और पयंगा-पतंगिये हे, य=और जा=जो कुंथुपिवीलिया=कुंथवा और चींटियाँ हैं, वे सव्वे बेइंदिया= सब द्वीन्द्रिय सव्वे तेइंदिया=सब त्रीन्द्रिय सव्वे चउरिंदिया= सब चार इन्द्रियवाले सव्वे पंचिंदिया=सब पञ्चेन्द्रिय सव्वे तिरिक्खजोणिया=सब तिर्यञ्चगतिवाले सव्वे नेरइया=सब नारकी सव्वे मणुया=सब मनुष्य सव्वे देवा=सब देव सव्वे=पूर्वोक्त सब पाणा=प्राणीमात्र परमाहम्मिया=सुखके अभिलाषी हैं। एसो=यह खलु= निश्चय करके छट्ठो=छठा जीवनिकाओ=जीवनिकाय तसकाउत्ति=" त्रसकाय " ऐसा पवुच्चइ=कहा जाता है ॥ ६ ॥

टीका—'से'=स्थावरपञ्चकनिरूपणान्तरं पुनः इमे=वक्ष्यमाणभेदाः अनेके=द्वीन्द्रियादिभेदेनाऽनेकप्रकाराः बहवः=एकैकस्यां जातौ प्रचुरा भिन्नयोनयो वा त्रसाः=त्रसनामकर्मोदयात्, त्रस्यन्ति=आतपाद्यभिपीडिता उद्विजन्ते प्रच्छायशीतलं स्थलं प्रयान्ति वेति तथोक्ताः[1] प्राणन्ति=जीवन्त्येभिरिति, प्राण्यन्ते=जीव्यन्ते प्राणिन एभिरिति वा (प्रोपसृष्टादनितेः, अण्यतेर्वा करणे घञ्) प्राणाः=उच्छ्वासादयस्ते सन्त्येषामिति प्राणः [2]प्राणिन इत्यर्थः, तद्यथा अण्डे = पक्ष्यादिप्रादुर्भावककोषे जायन्ते=उत्पद्यन्ते इत्यण्डजाः = पक्षि-सर्पादिः । पोता एव जाता पोतजाः न जराय्वादिना वेष्टिताः पूर्णावयवयोनिनिर्गतमात्रा

अब क्रमप्राप्त त्रसकायका स्वरूप कहते हैं—'से जे' इत्यादि।

जो ये आबालप्रसिद्ध द्वीन्द्रिय आदिभेद से अनेक, एक एक जाति में बहुत से अथवा भिन्न-भिन्न योनि वाले आतप(गर्मी) आदि से पीडित होने पर त्रास (उद्वेग) पाने वाले, अथवा छायादार शीतल और निर्भय स्थल में चले जाने वाले, व्यक्त चेतनावान्, उच्छ्वास आदि प्राणवाले त्रस कहलाते है, उनके भेद इस प्रकार है—

पक्षी सर्प आदि अण्डज है (१) जरायु से वेष्टित न होना योनि से निकलते ही गमन—आगमन आदि क्रियाएँ करनेकी सामर्थ्यसे युक्त पूर्ण अवयववाले, या वस्त्रसे पोंछे हुएके समान साफ

હવે ક્રમપ્રાપ્ત ત્રસકાયનું સ્વરૂપ કહે છે 'से जे' ઇત્યાદિ

જે એ આબાલ-પ્રસિદ્ધ દ્વીન્દ્રિયાદિના ભેદે કરીને અનેક, એક એક જાતિમાં ઘણા અથવા ભિન્ન-ભિન્ન યોનિવાળા, ગરમી આદિથી પીડિત થતા ત્રાસ (ઉદ્વેગ) પામનારા, અથવા છાયાવાળા શીતળ અને નિર્ભય સ્થળમા ચાલ્યા જનારા, વ્યક્ત ચેતનાવાન્ ઉચ્છ્વાસ આદિ પ્રાણવાળા ત્રસ કહેવાય છે, તેના ભેદ આ પ્રકારે છેઃ—

પક્ષી સર્પ આદિ અંડજ છે (૧). જરાયુથી વેષ્ટિત ન હોઈને યોનિમાંથી નીકળતાં જ ગમનાગમન આદિ ક્રિયાઓ કરવાના સામર્થ્યથી યુક્ત પૂર્ણ અવયવવાળા. યા વસ્ત્ર દ્વારા

१ त्रसेः पचाद्यच्' २ 'अर्शआदित्वादच्'

एवं परिस्पन्दादिसामर्थ्योपेताः पोतजाः । यद्वा पोतो वस्त्रम्-(इति शब्दकल्पद्रुमः), तेन तत्संमार्जिता लक्ष्यन्ते, तथा च-पोता इव=वस्त्रसंमार्जिता इव गर्भवेष्टनचर्माऽनावृतत्वात्, जायन्ते=उत्पद्यन्ते इति, पोतात्=गर्भवेष्टनचर्मरहितगर्भात् जायन्त इति वा पोतजाः कुञ्जर-शल्लक-शश-नकुल-मूषिक-चर्मचटिका-वल्गुलिकादयः । जरायुजाः=जरामेति=गच्छतीति जरायुः=गर्भवेष्टनचर्म तस्माज्जायन्त इति ते=नर-महिष-गवादयः । रसजाः=रसे=मद्यलक्षणे 'रसजो मद्यकीटः' इति हैमात्, जायन्त इति, रसे=विकृतमधुरादौ जायन्त इति वा रजसाः । संस्वेदजा[1]=संस्वेदात्=घर्माज्जायन्त इति ते यूका-लिक्षा-मत्कुणप्रमुखाः । सम्मूर्च्छिमाः=सम्मूर्च्छेन सम्मूर्च्छः=गर्भाधानमन्तरेणैव स्वयं समुत्पत्तिः, ('मूर्च्छा मोह समुच्छ्राययोः' अस्माद्भावे घञ्, व्युत्पत्तिप्रदर्शनमेतत्, शब्दोऽयं मनोविकल्पे रूढः, ।)

यद्वा समन्ततो देहस्य मूर्च्छनम्=अवयवसंयोगस्तेन निवृत्ताः सम्मूर्च्छिमाः=मातापितृसयोगं विनैव स्वयंमुत्पन्नाः=पिपीलिका-मक्षिका-मत्कोटकादयः, (आर्षत्वात्सिद्धिः) । उद्भिज्जाः=उद्भिद्य=पृथिवीं भित्वा जायन्त इति ते शलभादयः । औपपातिकाः=उपपत-

---

उत्पन्न होनेवाले हाथी, शल्लकी, खरगोश, नौला, चूहा आदि पोतज कहलाते हैं (२)' जरायु (आँवल-जड) सहित उत्पन्न होनेवाले मनुष्य महिषादि जरायुज कहलाते है (३), मदिरा आदि रसोमें उत्पन्न होनेवाले तथा स्वादसे चलित अर्थात् सड़े हुए मधुरादि रसोमें उत्पन्न होनेवाले रसज कहलाते हे (४) पसीने से पैदा होनेवाले जू, लीख, खटमल आदि सस्वेदज कहलाते है (५) गर्भाधानके विना शरीरनाम-कर्मके उदयसे शरीरके अवयवोका सग्रह हो जानेसे स्वय ही उत्पन्न होनेवाले जीव सम्मूर्च्छिम कहलाते हे (६), पृथ्वीको भेदकर उत्पन्न होनेवाले शलभ (टिड्डी) आदि उद्भिज्ज है (७), गर्भ और समूर्च्छन जन्मोंसे भिन्न देव और नारकोके जन्मका उपपात कहते है, उमसे उत्पन्न होनेवाले देव और नारकी औपपातिक कहलाते ह (८), देव शय्या पर और नारकी कुम्भीमें स्वयं उत्पन्न होते है ।

લુછેલાની પેઠે સાફ ઉત્પન્ન થનારા હાથી, શેળો, સસલા નોળિયા, ઉંદર આદિ **પોતજ** કહેવાય છે (૨(. જરાયુ (નાળ વગેરે મળ ભાગ) સહિત ઉત્પન્ન થનારા મનુષ્ય મહિષાદિ (ભેંશ વગેરે) **જરાયુજ** કહેવાય છે (૩) મદિરા આદિ રસોમા ઉત્પન્ન થનારા તથા સ્વાદથી ચલિત અર્થાત્ સડેલા મધુરાદિ રસોમા ઉત્પન્ન થનારા **રસજ** કહેવાય છે (૪) પ્રસ્વેદથી પેદા થનારા જૂ, લીખ, માકડ, આદિ **સસ્વેદજ** કહેવાય છે. (૫) ગર્ભાધાન વિના શરીરનામ-કર્મના ઉદયથી શરીરના અવયવોનો સગ્રહ થઇ જવાથી સ્વય ઉત્પન્ન થનારા જીવો સમૂર્ચ્છિમ કહેવાય છે (૬) પૃથ્વીને ભેદીને ઉત્પન્ન થનારા શલભ (ટીડ) આદિ ઉદ્‌ભિજ્જ કહેવાય છે (૭) ગર્ભ અને સમૂર્ચ્છન જન્મોથી ભિન્ન દેવ અને નારકોના જન્મને ઉપપાત કહે છે, તેથી ઉત્પન્ન થનારા દેવ અને નારકી **ઔપપાતિક** કહેવાય છે (૮) દેવ શય્યા પર અને નારકી કુંભીમા સ્વય ઉત્પન્ન થાય છે

---

१. अन्येष्वेपि दृश्यते' इति डः

नमुपपातः (पतधातोर्भावे घञ्) देवनारकाणां प्रसिद्धगर्भसम्मूर्च्छनरूपजन्म प्रकारद्वयविलक्षण उद्भवस्तेन निर्वृत्ताः औपपातिकाः=देवनारकाः, देवा हि पुष्पशय्यायां नारकाश्च कुम्भ्यादिषु स्वयं समुत्पद्यन्ते । तानेव विशिनष्टि –'येषा'-मित्यादीना, येषां केषाश्चित्पूर्वोक्तानां प्राणानां=श्वासोच्छ्वासादिप्राणवताम्, अभिक्रान्तम्=आभिमुख्येन अभिमुखं वा प्रज्ञापकस्य क्रमण = गमनमभिक्रान्तं 'भवती' ति शेषः । प्रतिक्रान्तं=प्रति = प्रातिकूल्येन प्रतिकूलं वा प्रज्ञापकस्य क्रमणम्, यद्वा प्रतिक्रान्त = परावृत्य गमनम्, संकुचितं = सकोचः गात्रावकुञ्चनम्, प्रसारितं = करचरणादिप्रसारण, रुतं = शब्दकरणम्, भ्रान्तम् = इतस्ततो भ्रमणम्, त्रस्तं = त्रासः=उद्वेगः, पलायितं=पलायनं भयादिना स्थानान्तरगमनं 'भवतो' त्यध्याहृतेन प्रत्येकं सम्बन्धः । सर्व एवैतेऽभिक्रान्तादयः शब्दाः भावक्तान्ताः । त्रसाः, आगतिगतिविज्ञातारः = आगतिः = आगमनम्, गतिः = गमनं तयोर्विज्ञातारः = वेदितारः = ओघसज्ञया प्रवृत्तिमन्तः स्वस्वाभिक्रान्त प्रतिक्रान्तादिविषयकाऽवबोधसम्पन्ना भवन्तीत्यर्थः ।

इन्द्रियादिविभागप्रदर्शनेन तानेव परिचाययति- 'ये चे' त्यादि ये च कीटपतङ्गा = कीटाः = कृमयो गण्डोलकप्रभृतयः, तज्जातीया अन्ये द्वीन्द्रियाश्च, पतङ्गाः = शलभाश्चतुरिन्द्रियास्तज्जातीया भ्रमरादयश्च । याश्च कुन्थु-पीपिलिकाः, कुन्थवश्च पिपीलिकाश्चेत्यनयोरितरेतरयोगे 'परवल्लिङ्गं द्वन्द्व-तत्पुरुषयो'-रिति परवल्लिङ्गता । कुन्थवः = चलन्त एव परिज्ञेया न स्थिताः सूक्ष्मत्वात् लघुकायजीवाः, पिपीलिकाः = कीटिकास्तज्जाती-

ये सब पूर्वोक्त जीवोके प्रज्ञापककी अपेक्षा सामने आना, लौटके पीछे जाना, इसी प्रकार अंगको सिकोड़ना, हाथ-पैर फैलाना, बोलना, भ्रमण करना, उद्विग्न होना, भय आदि कारणोसे भागना आदि क्रियाएँ होता है । वे गमन आगमन आदिके जाननेवाले अर्थात् ओघसज्ञासे प्रवृत्ति करनेवाले होते है । अनुकूलता आर प्रतिकूलताको सामान्यतया ओघसज्ञासे जानते है ।

इन्द्रियोका विभाग करके फिर उनका कथन करते हे–

कृमि, लट, गण्डोल आदि उनकी जातिवाले द्वीन्द्रिय है । शलभ और उनकी जातिके भ्रमर आदि चार इन्द्रियवाले हाते हे । कुन्थु और पिपीलिका (चिउंटी) तथा उनकी जातिके अन्य जीव

એ બધા પૂર્વોક્ત જીવોનુ પ્રજ્ઞાપકની અપેક્ષાએ સામે આવવું, ફરીને પાછા જવુ એ જ રીતે અગ સકોચવા, હાથ-પગ ફેલાવવા બોલવુ ભમવુ, ઉદ્વિગ્ન થવુ, ભયાદિ કારણે ભાગી જવુ, વગેરે ક્રિયાઓ હોય છે તેઓ ગમનાગમન આદિને જાણનારા અર્થાત્ ઓઘ-સજ્ઞાથી પ્રવૃત્તિ કરનારા હોય છે. અનુકૂળતા અને પ્રતિકૂળતાને સામાન્ય રીતે ઓઘ-સજ્ઞાએ કરી જાણે છે

ઇંદ્રિયોના વિભાગ કરીને હવે એનુ કથન કરવામા આવે છે —

કૃમિ (કરમિયાં), લટ, અળસીયા વગેરે એની જાતિવાળા દ્વીન્દ્રિય છે તીડ અને એની જાતિવાળા ભ્રમર આદિ ચાર ઇંદ્રિયવાળા છે કુથવા અને કીડી તથા તેની જાતિવાળા બીજા

यास्त्रीन्द्रियाश्च, द्वि-त्रि चतुरिन्द्रियक्रममुल्लङ्घ्य द्विचतुस्त्रीन्द्रियेति व्युत्क्रमेणोपादानमार्षत्वात्सूत्रगतेर्वैचित्र्याच्च । ततः सर्वे द्वीन्द्रियाः, सर्वेत्रीन्द्रियाः, सर्वे चतुरिन्द्रयाः, सर्वे पञ्चेन्द्रियाः. सर्वे तिर्यग्योनिकाः, सर्वे नैरयिकाः, सर्वे मनुष्याः, सर्वे देवाः, सर्वे प्राणाः =पूर्वोक्ताः सकलप्राणिनः परमधर्माणः=परमं सुखमेव धर्मो येषां ते सुखाभिलाषुका इत्यर्थः'परमा' इत्यत्र दीर्घ आर्षत्वात् । एषः=अनन्तरोदीरितस्वरूपो अण्डजादिलक्षणः खलु=निश्चयेन षष्ठः=स्थावरपञ्चकापेक्षया षष्ठत्वमापन्नः जीवनिकायः=प्राणिसमूहः 'त्रसकाय' इति प्रोच्यते=कथ्यते त्रसकायनाम्ना ख्यात इत्यर्थः ॥६॥

सर्वे प्राणिनः सुखाभिलाषिणो भवन्ति, सुख च तेषामनारम्भेणैव सम्पद्यतेऽत इदानीमनारम्भोपदेशः-'इच्चेसिं' इत्यादि ।

मूलम्—इच्चेसिं छण्हं जीवनिकायाणं नेव सयं दंडं समारंभिज्जा. नेवन्नेहिं दंडंसमारंभाविज्जा, दंडं समारंभंतेवि अन्ने समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि तस्स भंते ! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि; अप्पाणं वोसिरामि ।७।

छाया—इत्येषां षण्णां जीवनिकायानां नैव स्वयं दण्डं समारभेत, नैवान्यैर्दण्डं समारम्भयेत, दण्डं समारभमाणानप्यन्यान् न समनुजानीयात् , यावज्जीवया त्रिविधं त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्य न समनुजानामि । तस्य भदन्त ! प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हे आत्मनं व्युत्सृजामि ॥७॥

षट्कायका आरम्भ न करनेका उपदेश देते हैं—

सान्वयार्थः—इच्चेसिं=इन पूर्वोक्त छण्हं=छह जीवनिकायाणं=जीवनिकायोंके दंडं=दण्ड-हिंसा आदि-को सयं=स्वय नेव=न समारंभिज्जा=आरम्भ करे, नेव=न अन्नेहिं=दूसरोंसे दंडं=दण्डको समारंभाविज्जा=आरंभ करावे, दडं=दण्डका

तीन इन्द्रियवाले होते हे । यहाँ द्वीन्द्रिय बतानेके बाद पहले चार इन्द्रिय फिर तीन इन्द्रियवाले जीव बताये है, यह कथन आर्ष होनेसे किया गया है, इसलिए सब द्वीन्द्रिय, सब त्रीन्द्रिय, सब चतुरिन्द्रिय, सब पचेन्द्रिय, सब तिर्यञ्च, सब नारकी, सब मनुष्य, सब देव, इस प्रकार पूर्वोक्त सब प्राणी सुखको अभिलाषावाले है । इस छठे जीवनिकायको भगवानने त्रसकाय कहा है ॥६॥

જીવો ત્રણ ઇંદ્રિયવાળા હોય છે અહીં દ્વીન્દ્રિય બતાવ્યા પછી પહેલા ચાર ઇંદ્રિયવાળા અને પછી ત્રણ ઇંદ્રિયવાળા બતાવ્યા છે, એ કથન આર્ષ હોવાથી કરેલુ છે. એ રીતે બધા દ્વીન્દ્રિય બધા ત્રીન્દ્રિય, બધા ચતુરિન્દ્રિય, બધા પંચેન્દ્રિય, બધા તિર્યંચ, બધા નારકી, બધા મનુષ્ય, બધા દેવ, એ પ્રકારે પૂર્વોક્ત બધા પ્રાણી સુખની અભિલાષાવાળા છે. એ છઠ્ઠા જીવનિકાયને ભગવાને ત્રસ-કાય કહેલ છે. (૬)

समारंभंतेवि = आरम्भ करते हुओंको भी अन्ने = दूसरोंको न = नहीं समणुजाणेज्जा = भलाजाने, जावज्जीवाए = यावज्जीवन-जीवनपर्यन्त तिविहं = कृतकारित-अनुमोदना-रूप तीन-करण-पूर्वक (इस प्रकार) तिविहेणं = तीन प्रकारके मणेणं = मनसे वायाए = वचनसे काएणं = कायासे न करेमि = नहीं करूँगा, न कारवेमि = नहीं कराऊँगा, अन्ने = दूसरे करंतंपि = करनेवालेकोभी न समणुजाणामि = भला नहीं समझूँगा। भंते! = भदन्त ! तस्स = पूर्वोक्त उस दण्डसे पडिक्कमामि = पृथक् होता हू, निंदामि=आत्म-साक्षीसे जुगुप्सा करता हूँ, गरिहामि = गुरुसाक्षीसे गर्हा करता हूँ (और) अप्पाणं = दंडसेवन करनेवाले आत्माका वोसिरामि = त्याग करता हूँ ॥१॥

टीका---इत्येषां पूर्वोक्तस्वरूपाणां षण्णां जीवनिकायानां=त्रसस्थावरलक्षणजीवसमुदायानाम् , दण्डयते = सारहीनः क्रियते आत्माऽनेनेति दण्डः = प्राणव्यपरोपणादिस्तम् , स्वयं = आत्मना नैव = न कदापि समारभेत = विदधीत, = नैव अन्यैः = स्वव्यतिरिक्तैः कैरपि जनैस्तद्द्वारेति भावः, दण्डम् = उक्तलक्षणव्यापारं समारम्भयेत् = कारयेत्, दण्डं समारभमाणान् = कुर्वाणान् अपि अन्यान् न समनुजानीयात् = अनुमन्येत् । कियत्समय-पर्यन्त ? मित्याह–'जावज्जीवाए' इति, अत्र यावच्छब्दः परिमाणार्थको मर्यादार्थकोऽवधारणार्थकोश्चाव्ययः, जीवनं जीवा ('जीव प्राणधारणे) अस्मात् 'गुरोश्च हलः' (३।३।१०३)

समस्त प्राणी सुखके अभिलाषी है, किन्तु सुखकी प्राप्ति तब ही हो सकती है जब आरंभका परित्याग कर दिया जाय, इसलिए आरंभके त्यागका उपदेश देते है–'इच्चेसिं' इत्यादि ।

जिससे आत्मा ज्ञान दर्शन चारित्रसे रहित होजाय उस हिंसा आदि व्यापारको दण्ड कहते है । मुनि पूर्वोक्त छह कायोंके दण्डका यावज्जीव न स्वय समारभ करे न दूसरोसे करावे और न समारंभ करनेवाले दूसरोंको अनुमोदना करे । दण्ड तोन प्रकारका है-(१) कृत, (२) कारित, (३) अनुमोदित ।

कृत–अपनी इच्छासे स्वयं करना ।

कारित–दूसरे व्यक्तिसे कराना ।

બધાં પ્રાણી સુખના અભિલાષી છે, પરન્તુ સુખની પ્રાપ્તિ ત્યારે થાય છે કે જ્યારે આરંભનો પરિત્યાગ કરવામાં આવે, તેથી આરંભના ત્યાગનો ઉપદેશ આપે છે-इच्चेसिं ઈત્યાદિ.

જેથી આત્મા જ્ઞાન દર્શન ચારિત્રથી રહિત થઈ જાય, એ હિંસા આદિ વ્યાપારને દંડ કહે છે. મુનિ પૂર્વોક્ત છ કાયોના દંડનો યાવજ્જીવન પોતે ન સમારંભ કરે, ન બીજાઓ પાસે કરાવે અને સમારંભ કરનારા બીજાઓની ન અનુમોદના કરે દંડ ત્રણ પ્રકારનો છે (૧) કૃત, (૨) કારિત, (૩) અનુમોદિત.

કૃત—પોતાની ઇચ્છાથી પોતે કરવું.

કારિત-બીજી વ્યક્તિ પાસે કરાવવું.

इतिपाणिनिवचनेन स्त्रियामकारप्रत्यये स्त्रीत्वाट्टाप् 'ईहा, ऊहे'-त्यादिवत् ,) तथा जीवया जीवामित्यर्थः ('ततोऽन्यत्रापि दृश्यते') इति वचनबलाद् यावच्छब्दयोगे द्वितीयायाः प्राप्तावपि सौत्रत्वात्तृतीया, तेन यावन्मम जीवनं तावदिति, जीवनं मर्यादीकृत्यार्थान्न केवलं मरणकाल एवाऽपितु ततः प्रागपीति, जीवन एव न तदुत्तरं परलोकेऽपीत्यर्थः । दण्डं किंविध ? मित्याह-त्रिविधं=तिस्रो विधाः प्रकारा यस्य स तम्=कृत-कारिताऽनुमतरूपम् , तत्र कृतं=स्वतन्त्रेणाऽऽत्मना सम्पादितम् , कारितम्=अन्य-(व्यक्त्यन्तर)-द्वारा निष्पादितम्, अनुमतं=सावद्यव्यापारमारभमाणस्य 'त्वं साधु करोषि, एवमेव कुर्वन्नास्त्व' इत्यादिना प्रोत्साहितम् , त्रिविधेन=प्रकारत्रयविशिष्टेन करणभूतेन, केने ? त्याह मनसा वाचा कायेने ' ति ।

ननु त्रिविधेने त्यनेन यत्प्रकारत्रयं गृह्यते तत् 'मनसे' त्यादिना प्रतिपदमेवोक्तम् एवं सति त्रिविधेनेत्युपादनं पौनरुक्त्यदोषग्रस्तं भवति । यद्वा 'त्रिविधेने' ति विशेषणं मनसे'-त्यादेरेव संभवति, ततश्च 'त्रिविधेन मनसा, त्रिविधया वाचा, त्रिविधेन कायेने' -त्यन्वये मनोवाक्कायानां प्रत्येकं त्रैविध्यं प्राप्नोति तच्चाऽनिष्टं, नह्यत्र मनआदीनि प्रत्येकं त्रैविध्यमर्हन्ति किं तर्हि ? तद्व्यापारा एवेति चेन्न,

---

अनुमोदित—जो सावद्य व्यापार कर रहा हो उसे अच्छा समझना ।

यह सब सावद्य व्यापार तीन करण तीन योगसे न करे । वे तीन योग ये है—(१) मन, (२) वचन, (३) काय ।

प्रश्न—सूत्रमें 'त्रिविधेन' (तीन प्रकारसे) कहा ही है फिर 'मनसा' (मनसे) 'वाचा' (वचनसे) 'कायेन' (कायसे) कहनेसे पुनरुक्ति (कहे हुए को पुनः कहना) होती है । या 'तीन प्रकारसे' यह विशेषण 'मन' वचन, काय' का ही हो सकता है । यदि ऐसा मान लिया जाय तो इसका अर्थ होगा कि 'तीन प्रकारके वचनसे' और तीन प्रकारके कायसे' आरम्भ न करे । अर्थात् मन वचन कायके तीन तीन भेद होगे । ऐसा अर्थ शास्त्रविरुद्ध है—शास्त्रोमें भगवानने मन आदिके तीन तीन भेद नहीं बताये है, किन्तु मन आदिके व्यापारोको तीन प्रकारका बताया है ।

અનુમોદિત-જે સાવદ્ય વ્યાપાર કરી રહ્યો હોય તેને સારૂ જાણવું

એ બધા સાવદ્ય વ્યાપાર ત્રણ કરણ ત્રણ યોગથી ન કરે. તે ત્રણ યોગ, આ છે-(૧) મન, (૨) વચન, (૩) કાયા

પ્રશ્ન—સૂત્રમાં **त्रिविधेन** (ત્રણ પ્રકારે) કહેલું જ છે, પછી **मनसा** (મનથી), **वाचा** (વચનથી) **कायेन** (કાયાથી) કહેવાથી પુનરૂક્તિ (કહેલાને ફરી કહેવું) થાય છે. આ ' ત્રણ પ્રકારે ' એ વિશેષણ 'મન વચન કાયા' નું જ હોઇ શકે છે જો એમ માનવામાં આવે તો એનો અર્થ એવો થશે કે ત્રણ પ્રકારના મનથી, ત્રણ પ્રકારના વચનથી, અને ત્રણ પ્રકારની કાયાથી' આરભ ન કરે અર્થાત્ મન વચન કાયાના પણ ત્રણ ભેદ બનશે. એવો અર્થ શાસ્ત્ર વિરૂદ્ધ છે. શાસ્ત્રમાં ભગવાને મન આદિના ત્રણ ભેદ બતાવ્યા નથી, પરન્તુ મન આદિના વ્યાપારોને ત્રણ પ્રકારના બતાવ્યા છે.

तदभावे हि 'मनसा वाचा कायेन' इत्येतावन्मात्रोक्तौ 'न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामी'-त्यनेन सह 'यथासंख्यमनुदेशः समानाम्, (१।३।१०) इति वचनानुरोधेन' शत्रु मित्रं विपत्ति च जय रञ्जय भञ्जये' त्यादिवत्, एचोऽयवायावः' (६।१।७८) इत्यादिवद्वा क्रमिकान्वये 'मनसा न करोमि, वाचा न कारयामि कायेन कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामी'-त्यनभीष्टोऽर्थ आपद्येत तद्वारणाय त्रिविधेनेत्युक्तम्, तेन मनसा न करोमि, न कारयोमि, कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामि; वाचा न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामि; एवं कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामीत्यर्थो भवति, यद्वा पूर्वं सामान्यतस्त्रिविधेनेत्युक्त्वा केन त्रिविधेने? ति जिज्ञासायां तत्प्रकारान् दर्शयितु विशेषणाऽऽह-'मनसे'-त्यादीति नास्ति पौनरुक्त्यदो-

---

उत्तर-यह शका ठीक नहीं है। यदि 'त्रिविधेन' न कहकर केवल 'मनसा वाचा कायेन' कह देते तो अर्थ ठीक न बैठता, क्योंकि जैसे कोई कहे कि "हेय और उपादेयको त्यागो और ग्रहण करो।" तो इस वाक्यमें क्रमसे 'हेय' के साथ 'त्यागो' का सम्बन्ध होजाता है और 'उपादेय' के साथ ग्रहण करो' का। इसी प्रकार 'चोलपट्टा चादर पहनो, ओढो' कहनेसे यह अर्थ होता है कि "चोलपट्टा पहनो-और चादर ओढो।" इसीप्रकार 'त्रिविधेन' (तीन प्रकारसे) पद न रखते तो ऐसा अनिष्ट अर्थ होजाता कि-मनसे न करे, वचनसे न करावे और कायसे अनुमोदना न करे। इस अनिष्ट अर्थका परिहार करनेके लिए 'त्रिविधेन' पद रखनेसे यह अर्थ हुआ कि-(१) मनसे न करूँ, (२) न कराऊँ, (३) न करते हुए को भला जानूँ। (४) वचनसे न करूँ, (५) न कराऊँ, (६) न करते हुएको भला जानूँ। (७) कायसे न करूँ, (८) न कराऊँ (९) न करनेवालेको भला जानूँ।

अथवा पहले सामान्य रूपसे कहा है कि तीन प्रकारसे न करूँ, परन्तु तीन प्रकार कौन-कौनसे है? ऐसी जिज्ञासा होने पर विशेष बता दिया कि "मनसा वाचा कायेन" ये तीन

ઉત્તર—એ શંકા બરાબર નથી જો त्रिविधेन ન કહીને કેવળ मनसा वाचा कायेन કહ્યુ હોત તો અર્થ બરાબર બંધ બેસત નહિ. કારણ કે જેમ કોઈ કહે કે "હેય અને ઉપાદેયને ત્યાગો અને ગ્રહણ કરો." તો એ વાકયમા ક્રમાનુસાર 'હેય'ની સાથે 'ત્યાગ'નો સંબંધ થઈ જાય છે. અને 'ઉપાદેય'ની સાથે 'ગ્રહણ કરો'નો એજ રીતે 'ચોલપટ્ટો ચાદર પહેરો ઓઢો' કહેવાથી એ અર્થ થાય છે કે 'ચોલપટ્ટો પહેરો અને ચાદર ઓઢો। એ રીતે त्रिविधेन (ત્રણ પ્રકારે) શબ્દ ન રાખ્યો હોત તો એવો અનિષ્ટ અર્થ થઈ જાત કે મનથી ન કરો, વચનથી ન કરાવો અને કાયાથી ન અનુમોદના કરો. આ અનિષ્ટ અર્થનો પરિહાર કરવાને માટે त्रिविधेन શબ્દ આપ્યો છે, એમ त्रिविधेन શબ્દ આપવાથી એવો અર્થ થયો કે-(૧) મનથી ન કરૂં (૨) ન કરાવું, (૩) કરનારને ભલો ન જાણું, (૪) વચનથી ન કરૂં. (૫) ન કરાવું, (૬) ન કરનારને ભલો જાણું, (૭) કાયાથી ન કરૂ, (૮) ન કરાવું, (૯) ન કરનારને ભલો જાણુ

અથવા પહેલાં સામાન્યરૂપે કહ્યુ છે કે 'ત્રણે પ્રકારે ન કરૂ' પરન્તુ ત્રણ પ્રકાર કયા કયા છે? એવી જિજ્ઞાસા થતાં વિશેષ બતાવી આપ્યું છે કે मनसा वाचा कायेन એ ત્રણ

पाऽऽपानः । केचित् 'मनसा वा वाचा वा कायेन वेति विकल्पसंग्रहार्थं 'त्रिविधेने'-त्युक्त-मित्यूचिरे । 'न कारयामी त्यत्राऽन्येनेतिशेषः पूरणीयः । न समनुजानामि=नानुमन्ये । तस्येति तस्मात्=पूर्वोक्तरूपाद्दण्डादित्यर्थः, अत्रापादानस्य शेषत्वविवक्षया षष्ठी । भंते' भदन्त !' भदन्ते=कल्याणं सुखं वा प्रापयतीति भदन्तः, (अन्तर्भावित-ण्यर्थाद् 'भदि कल्याणे सुखे च' त्यस्माद्धातोः 'भन्देर्नलोपश्चे' त्यौणादिकसूत्रेण झच्-धातुनकारलोपयोः 'झोऽन्त' इति झस्यान्तादेशः ।) यद्वा भवं=संसारमन्तयति=दूरीकरो-तीति, ('कर्मण्यण् (३ । १ ।) इत्यण शकन्ध्वादेराकृतिगणत्वात्पररूपे पृषोदरादित्वा-द्वस्य दः । (अथवा भवस्य=संसारस्यान्तो=ऽवसान येनेति व्यधिकरणपदो बहुव्रीहिः पररूपादेशो प्राग्वत् । भयस्य=जन्म-जरा-मरण-निमित्तकस्यऽन्तो=नाशो येनेति भयान्तः, स एव भदन्त इति वा, पृषोदरादित्वादेकस्याकारस्य लोपो यस्य च दः । अपि-

---

प्रकार है इसलिए पुनरुक्ति आदि कोई दोष नहीं है ।

अथवा मन वचन और कायके निमित्तसे होनेवाले तीन भेदोंका सग्रह करनेके लिए 'त्रिविधेन' पद रखा है ।

व्याकरणमें 'भंते' शब्द अनेक प्रकारसे सिद्ध होता है, इसलिए उसके अर्थ बहुतसे है । जैसे (१) कल्याण और सुखको देनेवाले, (२) ससारका अन्त करनेवाले, (३) जिनकी सेवा-भक्ति करनेसे समारका अन्त हो जाता है, (४) जन्म–जरा–मरणके भयका नाश करनेवाले, (५) भोगोंको त्याग देनेवाले, (६) भयको दमन करनेवाले निर्भय, (७) इन्द्रियोका दमन करनेवाले, (८) सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक् चारित्रसे दीपनेवाले । इन सबको 'भंते' कहते हे । इसी प्रकार और अर्थ भी समझने चाहिए । 'भदन्त!, इस सम्बोधनसे यह प्रगट होता है कि समस्त क्रियाएँ गुरु महाराजकी साक्षी से ही करनी चाहिए ।

हे भगवन् ! मै दण्डसे निवृत्त होता हूँ, निन्दा करता हूँ, और गर्हा करता हूँ । कोशोमें निन्दा और गर्हा शब्दका एक ही अर्थ है इसलिए पुनरुक्ति होती है, ऐसा नहीं समझना चाहिए,

---

પ્રકાર છે. એથી કરીને પુનરૂક્તિ આદિ કોઇ દોષ થતો નથી

અથવા મન વચન અને કાયાના નિમિત્તે થનારા ત્રણુ ભેદોનો સંગ્રહ કરવાને માટે **त्रिविधेन** શબ્દ રાખ્યો છે

વ્યાકરણમાં **भंते** શબ્દ અનેક પ્રકારે સિદ્ધ થાય છે, તેથી એના અર્થ ઘણા છે જેવા કે (૧) કલ્યાણ અને સુખને આપનાર, (૨) સંસારનો અંત કરનાર,)૩) જેની સેવાભક્તિ કરવાથી સસારનો અત આવી જાય છે, (૪) જન્મ જરામરણના ભયનો નાશ કરનાર, (૫) ભોગોનો ત્યાગ કરનાર, (૬) ભયનુ દમન કરનાર–નિર્ભય, (૭) સમ્યગ્જ્ઞાન, સમ્યગ્દર્શન અને સમ્યક્–ચારિત્રથી દીપ્તિમાન, એ બધાને **भंते** કહે છે એજ રીતે બીજા અર્થો પણ સમજી લેવા '**भदन्त**' એ સબોધનથી એમ પ્રકટ થાય છે કે બધી ક્રિયાઓ ગુરુ મહારાજની સાક્ષીએ જ કરવી જોઇએ.

હે ભગવન ! હું દંડથી નિવૃત્ત થઉં છું, નિન્દા કરૂં છું અને ગર્હા કરૂં છું, શબ્દ-કોશોમાં 'નિન્દા' અને 'ગર્હા' શબ્દનો એકજ અર્થ છે, તેથી પુનરૂક્તિ થાય છે, એમ ન

वा भयं ददतीति भयदाः = भोगास्तानन्तयतीति कर्मण्यणिति सूत्रविहिताऽणन्त-भयदाः न्त शब्दस्य पृषोदरादित्वाद् भदन्त इति ।

यद्वा दान्तं भयं येन स भयदान्तः निष्ठान्तस्य परनिपात अहिताग्न्यादिपाठात्, स एव तदन्तः 'यलोप ह्रस्वौ पृषोदरादिपाठकृतौ ।

अथच भान्ति=दीप्यन्ते (समुल्लसन्तीत्यर्थात्) स्वस्वविषयेष्विति भानि=इन्द्रियाणि, तानि दान्तानि येन स भदान्तः, सएव भदन्तः, (निष्ठान्तपरनिपातः प्रग्वत्, पृषोदरादित्वादाकारस्य ह्रस्वः) । यद्वा भाति=सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्रैर्दीप्यते इति भान्तः ('भा दीप्तौ' अस्मादौणादिकोऽन्तप्रत्ययः) स एव भदन्तः, ('सिद्धिः पृषोदरादित्वादेव') ।

(एवं यथामति व्युत्पत्त्यन्तरेष्वपि निरुक्तोक्तशाकटायनादिप्रतिपादितरीत्या साधनप्रक्रिया बोद्धव्या ।) तत्सम्बोधने हे भदन्त !=हे भगवन् ! अनेन सम्बोधननिर्देशेन व्रतप्रत्याख्यानादिकः सर्वोऽपि क्रियाकलापो गुरुसाक्षिक एव विधातव्य इति बोधितम् । प्रतिक्रामामि=प्रतिनिवर्त्ते भूतदण्डात्पृथग्भवामीत्यर्थः । यत्तु टीकान्तरेषु 'पडिक्कमामी'-त्यस्य 'प्रतिक्रमामी' ति छायोपलभ्यते सा प्रमाद-विजृम्भितैव, (क्रमः परस्मैपदेषु' (७।३।७६) इति पाणिनिवचनबलेन क्रमेरुपधादीर्घस्य दुर्वारत्वात् ।) निन्दामि=जुगुप्से । गर्हे

क्योकि निन्दा आत्मसाक्षीसे होती है और गर्हा गुरुसाक्षीसे होती है । अथवा निन्दा साधारण कुत्साको कहते है और गर्हा अत्यन्त निन्दाको कहते है ।

इसका अर्थ यह होता है कि–हे भगवन् ! अतीत कालमें दण्ड (सावद्य व्यापार) करनेवाले आत्मा (आत्मपरिणति) को अनित्य आदि भावना भाकर त्यागता हूँ, निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ । जैसे घरका देहलीपर दीपक रखनेसे भीतर भी प्रकाश होता है और बाहर भी प्रकाश होता है इसको 'देहली–दीपक' न्याय कहते है । कहा भी है–"धरै एक पद बीचमें, दुहु दिस लागै सोय । सो है 'दीपक देहरी', जानत है सब कोय ॥१॥" बीचमें मणि जड देनेसे दोनो ओर मणिका प्रकाश होता है, यह 'मध्यमणि' न्याय कहलाता है, इसी प्रकार 'अप्पाण' का दोनोके साथ सम्बन्ध होता है । अर्थात सावद्य व्यापारवाली आत्माको त्यागता हूँ और उसकी

સમજવુ કારણ કે નિંદા આત્મસાક્ષીએ થાય છે અને ગર્હા ગુરૂ સાક્ષીએ થાય છે અથવા નિંદા સાધારણ કુત્સાને કહે છે અને ગર્હા અત્યંત નિંદાને કહે છે

એનો અર્થ એ થાય છે કે - હે ભગવન્ ! અતીત કાળમા દંડ (સાવદ્ય વ્યાપાર) કરનારા આત્મા (આત્મપરિણતિ)ને અનિત્ય આદિ ભાવના ભાવીને ત્યાગું છુ, નિંદું છુ, ગર્હું છું, જેમ ઘરની ડહેલી (બારણુ) પર દીવો રાખવાથી અંદર પણ પ્રકાશ થાય છે અને બહાર પણ પ્રકાશ થાય છે તેને 'દેહલી-દીપક' ન્યાય કહે છે કહ્યું છે કે- "धरै एक पद बीचमें दुहु दिस लागै सोय, सो है 'दीपक—देहरी' जानत है सब कोय (१)" વચમાં મણિ જડી દેવાથી બેઉ બાજુ મણિનો પ્રકાશ થાય છે તેને 'મધ્ય-મણિ ન્યાય' કહે છે, એ રીતે अप्पाणं નો બેઉની સાથે સબંધ થાય છે અર્થાત્ સાવદ્ય-વ્યાપારવાળા આત્માને ત્યાગું છું અને તેની નિંદા કરૂ છું, તથા ગર્હા કરૂ છુ (૭)

=प्रजुगुप्से इत्येवार्थः ।

ननु तर्हि निन्दा गर्हयोः 'कुत्सा निन्दा च गर्हणे'-ति कोशरीत्या पर्यायत्वेन पौनरुक्त्यं यत्नेनैपायितमेवेति चेन्न, यतः स्वसाक्षिकी निन्दा, गुरुसाक्षिकी च गर्हेति परस्परं भवति भेदः । यद्वा 'निन्दा=पापारगो कुत्सा, गर्हा=सैवातेभूयसी'-ति परस्परमर्थभेदान्नास्ति पर्यायता । यथा प्रवृद्ध एव कोपः क्रोधो न साधारण इति कोप-क्रोधयोः पर्यायत्वाभावेन क्रुध्यर्थत्वाभावात् क्रुधातुयोगे चतुर्थी नेष्यते, 'निन्दामि, गर्हे' इत्यनयोस्तस्येत्यनेन प्रागुक्तेन सम्बन्धनेन -अतीतदण्डसम्बन्धिनीं- स्वसाक्षिकीं गुरुसाक्षिकीं च निन्दां करोमीति निर्गलितोऽर्थः, तस्येत्यत्र सम्बन्ध-सामान्ये षष्ठ्याः प्रागुक्तत्वात् । यद्वा 'आत्मान'-मित्यस्यैव मध्यमणिन्यायाद् देहलीदीपन्यायाद्वा व्युत्सृजामीत्यनेन 'निन्दामि, गर्हे' इत्याभ्यां च सम्बन्धस्तेन भूतकालिकदण्डविधायिनमप्रशस्तमात्मानं जुगुप्से व्युत्सृजामि=विविधाऽनित्यादिभावनया विशिष्य वा परित्यजामीत्यर्थः ॥७॥

दण्डपरित्यागो द्विविधः सामान्यविशेषभेदात्, सामान्यतो दण्डपरित्यागोऽहिंसासामान्यम्, विशेषतो दण्डपरित्यागश्च पञ्च महाव्रतानि ।

ननु पञ्चसु महाव्रतेषु सत्यादिव्रतानामहिंसातो भेदः स्फुटः प्रतीयत इति कथमहिंसया पञ्चानां महाव्रतानां सामान्य-विशेषभाव उपपद्येत ? सामान्यविशेषभावो हि विशेषत्वेन विवक्षितपदार्थस्य सामान्यधर्माक्रान्तत्वादेव संपद्यते, अत एव'व्याप्यव्यापकभावापन्नयोः सामान्यविशेषभावः' इत्युद्घोषः, यथा-'द्रोणो व्रीहि' रित्यत्र प्रथमाविभक्त्यर्थस्य

निन्दा करता हूँ, तथा गर्हा करता हूं ॥७॥

दण्डपरित्याग दो प्रकारका है-(१) सामान्य-दण्डपरित्याग और (१) विशेष-दण्डपरित्याग । अहिंसा-सामान्यको सामान्य-दण्डपरित्याग कहते है और पच महाव्रतोको विशेष-दण्डपरित्याग कहते है ।

प्रश्न-पाच महाव्रतोमें सत्य आदि महाव्रतो का अहिंसासे स्पष्ट भेद प्रतीत होता है, फिर अहिंसाके साथ सत्य आदि महाव्रतों का सामान्यविशेषभाव कैसे हो सकता है ? सामान्य-विशेषभाव वहीं होता है जिसको विशेष बनावे उसमें सामान्य धर्म भी पाया जाय । इसलिए

દંડપરિત્યાગ બે પ્રકારનો છે (૧) સામાન્ય-દંડપરિત્યાગ અને (૨) વિશેષ-દંડપરિત્યાગ અહિંસાસામાન્યને સામાન્ય દંડ-પરિત્યાગ કહે છે, અને પાંચ મહાવ્રતોને વિશેષ-દંડપરિત્યાગ કહે છે.

પ્રશ્ન—પાંચ મહાવ્રતોમાં સત્ય આદિ મહાવ્રતોનો અહિંસાથી સ્પષ્ટ ભેદ પ્રતીત થાય છે. તો પછી અહિંસાની સાથે સત્ય આદિ મહાવ્રતોનો સામાન્યવિશેષ-ભાવ કેવી રીતે હોઈ શકે છે ? સામાન્ય-વિશેષ-ભાવ તેમાં હોઈ શકે છે કે જેને વિશેષ બતાવે તેમાં સામાન્ય

१ क्रुधद्रुहेर्ष्याऽसूयार्थानां यं प्रति कोप" (१।४।३७) इत्यत्र शब्देन्दुशेखरे 'न- ह्यकुपित क्रुध्यती'-ति भाष्येण प्ररूढकोप एव क्रोध इति कुपेस्तदर्थत्वाभावेन न तद्योग इदम् 'कुप्यति कस्मैचि'-दित्याद्यसाध्वेवेति ।

परिमाणसामान्यस्य द्रोणशब्दार्थे चतुराढकात्मके परिमाणविशेषे तादात्म्यसम्बन्धेन (अभेदसम्बन्धेन) अन्वये सति द्रोणाभिन्नं परिमाणमिति बोधः, ततश्च प्रत्ययार्थपरिमाणस्य परिच्छेद्य-परिच्छेदकभावेन व्रीहिपदार्थेऽन्वये द्रोणाभिन्नं यत्परिमाणं तत्परिच्छिन्नो (तत्परिमितो) व्रीहिरिति बोधः, अत्र प्रत्ययार्थस्य व्रीहावन्वयप्रदर्शनं प्रकृतानुपयोग्यपि प्रसङ्गतः कृतम् । यद्वा-यथा 'उपाध्यायो मुनि'-रित्यत्रोपाध्यायशब्दार्थे उपाध्यायपदधारिणि मुनिविशेषे मुनिशब्दार्थस्य मुनिसामान्यस्य तादात्म्यसम्बन्धेन (अभेदसम्बन्धेन) अन्वयः, तथा च-उपाध्यायभिन्नो मुनिरितिबोधः, तत्र विशेषत्वेन विवक्षितपदार्थे उपाध्यायपदधारिणि मुनिविशेषे मुनिशब्दार्थस्य मुनित्वस्य सत्त्वादुभयोः पदार्थयोः सामान्य-

यह कहा गया है कि 'व्याप्य-व्यापक भाव जिनमें होता है उन्हींमें सामान्यविशेषभाव पाया जाता है' जैसे "द्रोणो व्रीहिः," इस वाक्यमे प्रथमा विभक्तिका अर्थ परिमाण-सामान्य है इस-परिमाणसामान्यका द्रोण शब्दके अर्थ चार आढकरूप परिमाण-विशेषमें अभेद सम्बन्धके द्वारा अन्वय होता है । इस अन्वयसे "चार आढकरूप परिमाण" (एक प्रकारका तौल) ऐसा बोध होता है । उस प्रत्ययार्थ परिमाण-सामान्यको परिच्छेद्य-परिच्छेदक-भाव सम्बन्धसे व्रीहि पदार्थमें अन्वय होनेसे "उस परिमाणसे परिमित (मापा हुआ) व्रीहि" ऐसा बोध होता है । यहां व्रीहिमें अन्वय प्रसगवश दिखलाया गया है । अथवा—

"उपाध्यायो मुनिः" यहाँ उपाध्याय शब्दका अर्थ हे उपाध्यायपदधारी मुनिविशेष (१), तथा मुनि शब्दका अर्थ मुनिसामान्य (२), अतः जो उपाध्याय है वही मुनि है, अर्थात् मुनिसे अन्य उपाध्याय नहीं है इसलिए उपाध्याय शब्दार्थको मुनि शब्दार्थके साथ अभेद सम्बन्धसे अन्वय होता है तो 'उपाध्यायसे अभिन्न मुनि' ऐसा बोध होता है । यहां विशेष याने उपाध्यायपदधारी

धर्म पण मळी आवे तेथी करीने એम કહેવામા આવ્યુ છે કે 'જેમાં વ્યાપ્ય-વ્યાપકભાવ હોય છે તેમાં જ સામાન્યવિશેષ-ભાવ મળી આવે છે' જેમકે द्रोणो व्रीहिः એ વાક્યમાં પ્રથમા વિભક્તિનો અર્થ પરિમાણ-સામાન્ય છે એ પરિમાણ-સામાન્યનો, દ્રોણ શબ્દના અર્થ ચાર આઢક રૂપ પરિમાણ-વિશેષમાં અભેદ સંબંધના દ્વારા અન્વય થાય છે એ અન્વયથી "ચાર આઢક રૂપ પરિમાણ" (એક પ્રકારનો તોલ) એવો બોધ થાય છે. એ પ્રત્યયાર્થ-પરિમાણ-સામાન્યનો પરિચ્છેદ્ય-પરિચ્છેદક-ભાવ સંબંધથી વ્રીહિ પદાર્થમા અન્વય થવાથી "એ પરિમાણથી પરિમિત (માપેલા) વ્રીહિ" એવો બોધ થાય છે અહીં વ્રીહિમાં અન્વય પ્રસંગવશ બતાવવામા આવ્યો છે અથવા—

उपाध्यायो मुनि એમા ઉપાધ્યાય શબ્દનો અર્થ છે-ઉપાધ્યાય પદધારી મુનિ-વિશેષ (૧), તથા મુનિ શબ્દનો અર્થ છે મુનિ-સામાન્ય (૨), એટલે તે ઉપાધ્યાય છે તેજ મુનિ છે, અર્થાત્ મુનિથી જૂદો ઉપાધ્યાય નથી એથી કરીને ઉપાધ્યાય શબ્દાર્થનો મુનિ શબ્દાર્થની સાથે અભેદ સંબંધથી અન્વય થાય છે, અને તેથી 'ઉપાધ્યાયથી અભિન્ન મુનિ' એવો બોધ થાય છે. એમા વિશેષ કરીને ઉપાધ્યાય-પદધારી (વ્યક્તિ)મા મુનિના સામાન્ય ધર્મ-

विशेषभावोऽभेदान्वयश्च भवति, तथा प्रकृतेऽन्वयो न संभवति, सत्यादिमहाव्रतानाम हिंसातः सुस्पष्टभेदप्रतीतिवलादभेदान्वयस्य बाधादिति चेन्न-

पञ्चानामपि महाव्रतानां वस्तुतोऽहिंसात्मकत्वात् सामान्य-विशेषभावः सुबोध एव। अहिंसासामान्यस्वरूपावदातकरणाय शिष्याणां सुस्पष्टप्रतिपत्तये च दण्ड-परित्यागस्य द्वैविध्यं कृतम्, एकैवाऽहिंसा पञ्चधा विभाजिता।

ननु यथा 'द्रोणो व्रीहि' रित्यादौ द्रोणादिशब्दार्थचतुराढकात्मकपरिमाणे चतुराढकत्वादिधर्मेण परिमाणत्वादिसामान्यधर्माक्रान्तात् प्रत्ययार्थपरिमाणादितो विशेषत्वं प्रतीयते, यथा च नीलघटो घट इत्यादौ नीलगुणविशिष्टत्वेन नीलघटे घटसामान्यापेक्षया

(व्यक्ति) में मुनिके सामान्यधर्म मुनित्वका अस्तित्व पाया जाता है, अत एव दोनो पदार्थोंका सामान्य-विशेपभावमें अभेदान्वय होता है।

अर्थात् जैसे इन दो उदाहरणो से अभेदमें सामान्य-विशेषभेद पाया जाता है, वैसा अहिसाके साथ सत्यादि व्रतोका अभेद नहीं है, अतएव सामान्य-विशेपभाव नहीं हो सकता, क्योंकि उनका स्पष्ट भेद प्रतीत होता है।

उत्तर-पाँचो महाव्रत वास्तवमें अहिसास्वरूप है, इसलिये अहिसासे भिन्न नहीं है। अहिंसा के स्वरूपको स्पष्ट करने के लिये और शिष्यों को स्पष्ट बोध करने के लिये दण्ड परित्याग के दो भेद कर दिये है, अर्थात् एक ही अहिसा को पाच महाव्रतोमें विभक्त कर दिया है।

प्रश्न-जैसे "द्रोणो व्रीहिः" इत्यादि वाक्योमें परिमाणत्व आदि सामान्यधर्मसे युक्त प्रत्ययार्थ परिमाण-सामान्यसे द्रोण शब्दार्थ चार आढकरूप परिमाणमें चार अढकत्व आदि धर्मसे विशेपता प्रतीत होती है। अथवा "जो नीला घडा है वह घड़ा ही है" इत्यादि वाक्यो में अन्य घडोकी

રૂપ મુનિત્વનું અસ્તિત્વ મળી આવે છે. તેથી કરીને બેઉ શબ્દોના અર્થોનો સામાન્ય-વિશેષ ભાવમાં અભેદાન્વય થાય છે.

અર્થાત-જેમ એ બેઉ ઉદાહરણોથી અભેદમાં સામાન્ય-વિશેષ ભાવ મળી આવે છે, તેમ અહિંસાની સાથે સત્યાદિ વ્રતોનો અભેદ નથી તેથી સામાન્યવિશેષ-ભાવ થઈ શકતો નથી, કારણ કે એનો સ્પષ્ટ ભેદ પ્રતીત થાય છે

ઉત્તર—પાંચે મહાવ્રત વસ્તુતાએ અહિંસાસ્વરૂપ છે, તેથી કરી અહિંસાથી ભિન્ન નથી અહિંસાના સ્વરૂપને સ્પષ્ટ કરવાને માટે અને શિષ્યોને સ્પષ્ટ બોધ કરાવવાને માટે દંડ પરિત્યાગના બે ભેદ કરવામા આવ્યા છે, અર્થાત્ એક જ અહિંસાને પાંચ મહાવ્રતોમાં વિભક્ત કરી નાખવામાં આવી છે

પ્રશ્ન—જેમ द्रोणो व्रीहिः ઇત્યાદિ વાકયોમાં પરિમાણત્વ આદિ સામાન્ય ધર્મથી યુક્ત પ્રત્યયાર્થ પરિમાણ-સામાન્યથી દ્રોણ શબ્દાર્થ ચાર આઢકરૂપ પરિમાણમા ચાર આઢકત્વ આદિ ધર્મથી વિશેષતા પ્રતીત થાય છે, અથવા 'જે નીલો ઘડો છે તે ઘડોજ છે' ઇત્યાદિ વાકયોમા અન્ય ઘડાની અપેક્ષાએ નીલા ઘડામા નીલાપણાથી વિશેષતા મળી આવે છે અને

विशेषत्वं विद्यते, विशेषत्वं चात्र व्याप्यत्वमेव, तथा प्रकृते :पञ्चमहाव्रतलक्षणेऽहिंसा-विशेषे कथं विशेषत्वमिति चेच्छृणु-

प्राणातिपातविरमणत्वादिना व्याप्यधर्मेण पञ्चसु महाव्रतेषु विशेषत्वं सुवचमेवेति।

ननु तर्हि अहिंसासामान्यस्य किं लक्षणं यत् पञ्चसु महाव्रतेषु व्यापकं भवे? दि-ति चेद् उच्यते-षड्जीवनिकायेषु दण्डसमारम्भवर्जनत्वमेवाऽहिंसा-सामान्यस्य लक्षणम्, तच्च पञ्चसु महाव्रतेषु प्रत्येकं भवतीति लक्षणसमन्वयो बोध्यः, तथा च महाव्रतान्यत्र व्याप्यानि सामान्यत्तो दण्डपरित्यागो व्यापकस्तस्य पञ्चमहाव्रतरू-पागेर्पाविशेपनिष्ठत्वा-दतो व्यापकस्वरूपसामान्यदण्डपरित्यागं व्याख्याय विशेपदण्डपरित्यागलक्षणमहाव्रतान्य-भिधत्ते, तेषु प्राणातिपातविरमणात्मिकाया अहिंसायाः प्रधानत्वम्, इतरेषां सस्यक्षेत्र-

---

अपेक्षा नीले घड़ेमें नीलेपनसे विशेषता पाई जाती है और वह विशेषता व्याप्यतारूप है, वैसे पंच महाव्रतरूप अहिंसाविशेषमें विशेषता किस धर्मके कारण है ?।

उत्तर-प्राणातिपातविरमणत्व आदि व्याप्यधर्मसे पांच महाव्रतोमें विशेषता पाई हो जाती है। अर्थात् जहाँ प्राणातिपातविरमणत्व आदि व्याप्य धर्म पाये जाते है वहाँ अहिंसा-सामान्यका अस्तित्व रहता ही है।

प्रश्न-अहिंसासामान्यका लक्षण क्या है? जिससे वह पांच महाव्रतोमें व्यापक होजावे ?।

उत्तर-षड्जीवनिकायोमें दण्डका परित्याग करना अहिंसा-सामान्यका लक्षण है। यह लक्षण पाँचोही महाव्रतोमें पाया जाता है, अत: महाव्रत व्याप्य है और सामान्य-दण्डपरित्याग व्यापक है।

व्यापकरूप सामान्य-दण्डपरित्यागका पूर्व सूत्रमें व्याख्यान किया है। अब विशेष-दण्ड-परित्यागरूप पांच महाव्रतोका व्याख्यान आरंभ करते हैं, उनमें प्राणातिपातविरमणरूप अहिंसा

તે વિશેષતા વ્યાપ્યતારૂપ છે તેમ પંચમહાવ્રતરૂપ અહિંસા-વિશેષમા વિશેષતા કયા ધર્મને કારણે છે?

ઉત્તર—પ્રાણાતિપાતવિરમણત્વ આદિ વ્યાપ્ય-ધર્મોથી પાચ મહાવ્રતોમા વિશેષતા મળી આવે છે. અર્થાત્ જ્યાં પ્રાણાતિપાતવિરમણત્વ આદિ વ્યાપ્ય ધર્મ મળી આવે છે ત્યા અહિંસા સામાન્યનુ અસ્તિત્વ રહેલુ જ હોય છે.

પ્રશ્ન—અહિંસા-સામાન્યનુ લક્ષણ કયુ છે કે જેથી તે પાચ મહાવ્રતોમાં વ્યાપક થઇ જાય છે?

ઉત્તર—ષડ્જીવનિકાયમા દંડનો પરિત્યાગ કરવો એ અહિંસા-સામાન્યનુ લક્ષણ છે, એ લક્ષણ પાચે મહાવ્રતોમા મળી આવે છે, તેથી મહાવ્રત વ્યાપ્ય છે અને સામાન્ય દંડ-પરિત્યાગ વ્યાપક છે

વ્યાપકરૂપ-સામાન્ય-દંડપરિત્યાગનું વ્યાખ્યાન આગળના-સૂત્રમાં કહેલુ છે હવે વિશેષ-દંડપરિત્યાગરૂપ પાંચ મહાવ્રતોનુ વ્યાખ્યાન શરૂ કરવામા આવે છે. તેમા પ્રાણાતિપાતવિ-

वर्ति-वृति (वाड) वत्तत्परिपालनार्थतया तदङ्गत्वात्, तथाचोक्तम्-—

"अहिंसैका मता मुख्या, स्वर्गमोक्षप्रसाधनी ।
अस्याः संरक्षणार्थं च, न्याय्यं सत्यादिपालनम् ॥१॥"

अन्यच्च—

"आत्मपरिणामहिंसनहेतुत्वात्सर्वमेव हिंसैतत् ।
अनृतवचनादिकेवल,-मुदाहृतं शिष्यबोधाय ॥२॥" किञ्च—
"एगं चिय इत्थ वयं, निद्दिट्ठं जिणवरेहिं ।
पाणाइवायविरमण,-मवसेसा तस्स रक्खट्ठा ॥३॥ सू० ७॥

अनश्चादौ प्राणातिपातविरमणाख्यं प्रथमं महाव्रतमाह—'पढमे०' इत्यादि ।

मूलम्—पढमे भंते ! महव्वए पाणाइवायाओ वेरमणं, सव्वं भंते ! पाणाइवायं पच्चक्खामि, से सुहुमं वा बायरं वा तसं वा थावरं वा नेव

प्रधान है, जैसे धान्यकी रक्षाके लिए खेतके चारो ओर वाड होती है, उसी प्रकार अन्य महाव्रत अहिंसाके रक्षक होनेसे अग है । कहा भी है—

"स्वर्ग और मोक्षको सिद्ध करनेवाली एक अहिसा ही मुख्य है इसीको रक्षाके लिए सत्यादि महाव्रतोका पालन करना उचित है ।" ॥१॥

और भी कहा है—

"असत्य-वचन बोलने आदिसे भी आत्माके परिणामोकी हिंसा होती है, अत. असत्य आदि सभी हिसारूप है। असत्य आदिका अलग कथन शिष्योको स्पष्ट समझानेके लिये किया गया है ॥२॥"

तथा—

"भगवानने एक प्राणातिपातविरमणको ही मुख्य कहा है अन्य व्रत उसीकी रक्षाके लिए है ॥३॥"

रमणरूप અહિંસા પ્રધાન છે જેમ ધાન્યની રક્ષાને માટે ખેતરની ચારે બાજુએ વાડ હોય છે, તેમ અન્ય મહાવ્રતો અહિંસાના રક્ષક હોવાને લીધે અંગરૂપ છે કહ્યું છે કે—

"સ્વર્ગ અને મોક્ષને સિદ્ધ કરવાવાળી એક અહિંસા જ મુખ્ય છે. તેની રક્ષાને માટે સત્યાદિ મહાવ્રતોનું પાલન કરવું ઉચિત છે" (૧)

વળી કહ્યું છે કે—

"અસત્ય વચન બોલવા વગેરેથી પણ આત્માના પરિણામોની હિંસા થાય છે, તેથી અસત્ય આદિ બધા હિંસારૂપ છે અસત્ય આદિનું જૂદું કથન શિષ્યોને સ્પષ્ટ સમજાવવાને માટે કરવામાં આવ્યું છે" (૨)

તથા—

"ભગવાને એક પ્રાણાતિપાત વિરમણને જ મુખ્ય કહ્યું છે. અન્ય વ્રતો તેની રક્ષાને માટે છે" (૩)

सयं पाणे अइवाइज्जा नेवन्नेहिं पाणे अइवायाविज्जा पाणे अइवायं-तेवि अन्ने न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेण मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि, तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। पढमे भंते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ पाणाइवायाओ वेर-मणं ॥८॥

छाया-प्रथमे भदन्त ! महाव्रते प्राणातिपाताद्विरमणं, सर्वं भदन्त ! प्राणातिपातं प्रत्याख्यामि, अथ सूक्ष्मं वा बादरं वा स्थावरं वा नैव स्वयं प्राणानतिपातयामि, नैवान्यैः प्राणानतिपातयामि, प्राणानतिपातयतोऽप्यन्यान्न समनुजानामि यावज्जीवया त्रिविधं-त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्य न समनुजानामि, तस्माद् भदन्त ! प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हे आत्मानं व्युत्सृजामि, प्रथमे मथन्त ! महा-व्रते उपस्थितोऽस्मि सर्वस्मात् प्राणातिपाताद्विरमणम् ॥

शिष्य षट्कायकी विराधना का त्याग करके अब पाँच महाव्रत और छठे रात्रि भोज-नविरामणव्रतको ग्रहण करता है—

(१) प्राणातिपातविरमण.

सान्वयार्थः-भंते ! हे भदन्त !-हे भगवन् ! पढमे = प्रथम महव्वए = महाव्रतमें पाणाइवायाओ = प्राणातिपातसे वेरमणं = विरमण होता है, (अतः मैं) भंते !=हे भगवन् ! सव्वं = सब प्रकारके पाणाइवायं = प्राणातिपात (हिंसा) का पच्चक्खामि = त्याग करता हूँ। से=अथ-अबसे लेकर (मैं) सुहुमं = सूक्ष्म वा = अथवा बायर = बादर वा = अथवा तसं = त्रस वा = अथवा थावरं = स्थावर पाणे = प्राणियोंका सयं = स्वयं-खुद नेव = नहीं अइवाइज्जा = अतिपात-हनन-करूँगा, नेव = न अन्नेहिं = दूसरोंसे पाणे = प्रणियोंको अइवायाविज्जा = हनन कराऊंगा, (और) पाणे = प्राणियोंको अइवायंतेवि = हनन करते हुए भी अन्ने = दूसरोंको न = नहीं = समणुजाणिज्जा = भला जानूँगा, जावज्जीवाए = जीवनपर्यन्त (इसको) तिविहं=कृतकारितअनुमोदनारूप तीन करणसे (तथा) तिविहेणं= तीन प्रकारके मणेणं=मनसे वायाए=वचनसे काएणं-कायसे न करेमि=न करूँगा, न कारवेमि=न कराऊँगा, करंतंपि=करते हुए भी अन्नं=दूसरे को न समणुजाणामि=भला नहीं समझूंगा। भंते !=हे भगवन् ! तस्स=उसदण्डसे पडिक्कमामि=पृथक् होता हूँ, निंदामि=आत्मसाक्षीसे निन्दा करता हूँ, गरिहामि=गुरुसाक्षीसे गर्हा करता हूँ, अप्पाणं= दण्ड सेवन करनेवाले आत्माको वोसिरामि=त्यागता हूँ। भंते=हे भगवन् ! पढमे=प्रथ-म महव्वए=महाव्रतमें मैं उवट्ठिओमि=उपस्थित हुआ हूँ, इसलिये मुझे सव्वाओ=सब प्रकारके पाणाइवायाओ=प्राणातिपातका वेरमणं=त्याग है ॥८॥ (१)

(१) प्राणातिपात-विरमणव्रतम् ।

टीका- भदन्त !=हे भगवन्!प्रथमे=आद्य महाव्रते=महत्-विशाल व्रतं=शास्त्रीयमर्यादानुसरणम् , महच्च तद् व्रतं च महाव्रतम् , महत्त्वं चास्य श्रावकाणुव्रतापेक्षया, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावतः सर्वव्यापकत्वेन, महद्भिस्तीर्थकरगणधरादिभिराचरितत्वेन' महापुरुषाचर्यमाणत्वेन चास्ति, तस्मिन् , प्राणातिपातात्=प्राणः=स्पर्शनेन्द्रियादयः सन्त्येषामिति प्राणाः=एकेन्द्रियादयो जीवाः (अर्श आदित्वादच्) तेषामतिपातो=वियोजनं हिंसनमित्यर्थः, तस्माद् विरमण=निवर्त्तनम् 'अस्ती 'ति शेषः, अतोऽहं भदन्त !=हे भगवन् ! सर्वं=स्थूलसूक्ष्मादियावद्भेदविशिष्टं कृतकारिताऽनुमोदितस्वरूपं वा प्राणातिपातं प्रत्याख्यामि=प्रति=प्रातिकूल्येन आख्यामि=कथयामि सर्वथा परित्यजामीति भावः, तदेव विशेषयति-"से० ' इति, से=अथ=अनन्तरम् अद्यारभ्य सूक्ष्मं=सूक्ष्मनामकर्मप्रकृत्युदयसंपन्नम् । यद्यप्यस्य कायिकी हिंसा न भवति तथाऽपि तद्ग्रहण 'न केवल कायिक्येव हिंसा किन्तु वाङ्मनसयोर्दुष्प्रणिधानेनापि हिंसा संभवत्येवेति ज्ञापनार्थम् । यद्वा सूक्ष्मं=लघुकायिकं

इसलिये पहले-पहल प्राणातिपात-विरमण महाव्रतका कथन करते है- "पढमे भते० " इत्यादि ।

(१) प्राणातिपातविरमण ।

ये श्रावकके व्रतोकी अपेक्षा विशाल होनेसे महाव्रत कहलाते है (१), अथवा सर्व-द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकी अपेक्षा प्राणातिपात आदिका सर्वथा त्याग होता है इस कारण महाव्रत कहलाते है (२) या तीर्थंकर गणधर आदि महापुरुषोंने इनको अगीकार किया है और वर्त्तमानमें भी महापुरुष इनको अंगीकार करते है इससे ये महाव्रत कहलाते है (३)।

हे भगवन ! प्रथम महाव्रतमें प्राणातिपातसे विरमण होता है इसलिए हे भगवन ! मै कृत कारित-अनुमोदनासे सूक्ष्म-स्थूल सब प्रकारके प्राणातिपातका परित्याग करता हू । अर्थात् सूक्ष्म

તેથી કરીને સૌથી પહેલાં પ્રાણાતિપાત-વિરમણ મહાવ્રતનું કથન કરે છે-પઢમે ભતે ઇત્યાદિ.

(૧) પ્રાણાતિપાતવિરમણ

એ શ્રાવકનાં વ્રતોની અપેક્ષાએ વિશાળ હોવાને લીધે મહાવ્રત કહેવાય છે. (૧) અથવા સર્વ દ્રવ્ય-ક્ષેત્ર-કાળ-ભાવની અપેક્ષાએ પ્રાણાતિપાત આદિનો સર્વથા ત્યાગ થાય છે એ કારણે તે મહાવ્રત કહેવાય છે (૨) અથવા તીર્થંકર ગણધર આદિ મહાપુરૂષો એનો અંગીકાર કરે છે તેથી એ મહાવ્રત કહેવાય છે. (૩)

હે ભગવન્ ! પ્રથમ મહાવ્રતમા પ્રાણાતિપાતથી વિરમણ હોય છે, તેથી, હે ભગવન્ ! હું કૃત-કારિત-અનુમોદનાથી સૂક્ષ્મ સ્થૂલ સર્વ પ્રકારના પ્રાણાતિપાતનો પરિત્યાગ કરૂં છું. અર્થાત સૂક્ષ્મ-નામકર્મની પ્રકૃતિથી ઉત્પન્ન સૂક્ષ્મ અથવા સૂક્ષ્મ કાયવાળા કુંથવા આદિ

१ देशीशब्दोऽयम् ।

कुन्थ्वादिकम् , वादरं=स्थूलकायिकं गोगजादिकम् , अनयोरपि त्रस-स्थावरभेदाद्द्वैविध्यं,तदाह—त्रसं स्थावरं च, तत्र सूक्ष्मत्रसं=कुन्थ्वादिकम् , सूक्ष्मस्थावरं=पनकादिवनस्पतिम् , वादरत्रसम्=अज-गज-गवयादिकम् , वादरस्थावरं=भूम्यादिकम् , इतोमान् प्राणान्=जीवान् नैवस्वयम्=आत्मना अतिपातयामि=हन्मि'नैवान्यैः प्राणानतिपातयामि=घातयामि, प्राणानतिपातयतोऽन्यान् न समनुजानामि,इत्यादि प्राग्वत् ।

सम्प्रति शिष्यः स्वस्य महाव्रतित्वं ख्यापयन्नुपसंहरति—हे भगवन् ! प्रथमे महाव्रते उपस्थितोऽस्मि=अभ्युद्यतोऽस्मि कृतोद्यमोऽस्मीत्यर्थः । अतोऽद्यप्रभृति मम सर्वस्मात् प्राणातिपाताद् विरमण सकलप्राणातिपातालम्बनसावद्यव्यापारप्रत्याख्यानम् 'अस्ती'-ति शेषः ॥ ८ ॥ (१)

सलिलेन तरुगुल्मलतादीनामिव प्राणातिपातविरमणस्य परिपुष्टिर्मृषावादपरित्यागेन

नामकर्मकी प्रकृतिसे उत्पन्न सूक्ष्म अथवा सूक्ष्म कायवाले कुंथवा आदि और बादर (स्थूल) कायवाले गो-हस्ती आदि जीवोंके प्राणोंका कभी अतिपात नहीं करूँगा । यद्यपि सूक्ष्म नामकर्मकी प्रकृतिवाले सूक्ष्म प्राणियोंकी कायिक हिंसा नहीं होती परन्तु वचन और मनसे हो सकती है, जैसे—'यह मर जाय तो अच्छा है' ऐसा कहना वचनसे हिंसा है, और घातकी भावना करना मनसे हिंसा है, इसलिए सूक्ष्मका भी यहाँ ग्रहण किया है । सूक्ष्म और बादरके भी दो दो भेद है—(१) त्रस और (२) स्थावर । सूक्ष्म-त्रस कुंथवा आद है, सूक्ष्म स्थावर, पनक आदि वनस्पति (नीलण-फूलण) है । बादर-त्रस मेंढा घोडा रोझ आदि । और बादर-स्थावर भूमि आदि है । इन सब प्राणियोंको कभी प्राणोंसे वियुक्त नहीं करूगा, न दूसरेसे कराऊगा न करनेवालेको भला जानूँगा ।

हे भगवन् ! मै प्रथम महाव्रतको पालनेके लिये उद्यत हुआ हूँ, इसलिए आजसे मुझे समस्त प्रकारके प्राणातिपातका प्रत्याख्यान है। (१) ॥८॥

जैसे वृक्ष-लता आदि पानीसे पुष्ट होते है वैसेही मृषावादका त्याग करनेसे प्राणातिपातवि-

---

અને બાદર (સ્થૂલ) કાયવાળા ગાય હાથી આદિ જીવોના પ્રાણોનો કદાપિ અતિપાત નહિ કરૂં, જો કે સૂક્ષ્મ-નામકર્મની પ્રકૃતિવાળા સૂક્ષ્મ પ્રાણીઓની કાયિક હિંસા થતી નથી. તોપણ વચન અને મનથી થઈ શકે છે, જેમકે-'એ મરી જાય તો સારૂં' એમ કહેવું તે વચનથી હિંસા છે, અને ઘાતની ભાવના કરવી એ મનથી હિંસા છે, તેથી કરીને સૂક્ષ્મને પણ અહીં ગ્રહણ કરેલ છે. સૂક્ષ્મ અને બાદરના પણ બે-બે ભેદ છે (૧) ત્રસ, અને (૨) સ્થાવર, સૂક્ષ્મ ત્રસ કુંથુવા આદિ છે. સૂક્ષ્મ સ્થાવર લીલન-ફૂલન આદિ વનસ્પતિ છે. બાદર ત્રસ-મેંઢા ઘોડા રોઝ વગેરે છે અને બાદર સ્થાવર-ભૂમિ આદિ છે એ સર્વ પ્રાણીઓને કદાપિ પ્રાણથી વિયુક્ત કરીશ નહી, બીજા વડે કરાવીશ નહીં અને કરનારને ભલો જાણીશ નહીં

હે ભગવન્ ! હું પ્રથમ મહાવ્રતને પાળવા માટે ઉદ્યત થયો છું, તેથી આજથી મારે બધા પ્રકારના પ્રાણાતિપાતના પ્રત્યાખ્યાન છે (૧) (૮)

જેમ વૃક્ષ—લતા આદિ પાણીથી પુષ્ટ થાય છે તેમ મૃષાવાદનો ત્યાગ કરવાથી પ્રાણા-

भवतीत्यतस्तदनन्तरं मृषावादपरित्यागलक्षणं द्वितीयं महाव्रतमाह– 'अहावरे दोच्चे' इत्यादि ।

मूलम्–अहावरे दोच्चे भंते ! महव्वए मुसावायाओ वेरमणं. सव्वं भंते ! मुसावायं पच्चक्खामि से कोहा वा लोहा वा भया वा हासा वा नेव सयं मुसं वइज्जा नेवन्नेहिं मुसं वायाविज्जा मुसं वयंतेवि अन्ने न समणुजाणिज्जा ! जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि । तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि । दोच्चे भंते । महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं ॥९॥

छाया–अथापरे द्वितीये भदन्त ! महाव्रते मृषावादाद्विरमणं, सर्वं भदन्त ! मृषावादं प्रत्याख्यामि, अथ क्रोधाद्वा लोभाद्वा भयाद्वा हासाद्वा नैव स्वयं मृषा वदामि नैवान्यैर्मृषा वादयामि, मृषा वदतोऽप्यन्यान् न समनुजानामि । यावज्जीवया त्रिविधं त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामि । तस्माद् भदन्त ! प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हे आत्मानं व्युत्सृजामि । द्वितीये भदन्त ! महाव्रते उपस्थितोऽस्मि (अतः) सर्वस्मात् मृषावादाद्विरमणम् ॥ ९ ॥

(२) मृषावादविरमण.

सान्वयार्थः–भंते !=हे भगवन् ! अहावरे=इसके बाद दोच्चे=दूसरे महव्वए=महाव्रतमें मुसावायाओ=मृषावादसे वेरमणं=विरमण होता है (अतः में) भंते !=हे भगवन् ! सव्वं=सब प्रकारके मुसावायं=मृषावादका पचक्खामि=त्याग करता हूं । से=अथ-अब से लेकर में कोहा वा=क्रोध से लोहावा=लोभ से भयावा=भय से हासावा=हास्यसे सयं=खुद मुसावायं=असत्य नेव=नहीं वइज्जा=बोलूंगा, नेव=न अन्नेहिं=दूसरों से मुसं=असत्य वायाविज्जा=बोलाऊंगा, मुसं=असत्य वयंतेवि=बोलते हुए भी अन्ने=दूसरों को न समणुजाणिज्जा=भला नहीं जानूंगा । जावज्जीवाए=जीवनपर्यन्त (इसका) तिविहं=कृत कारित-अनुमोदनारूप तीन कारणसे (तथा) तिविहेणं=तीन प्रकारके मणेणं=मनसे वायाए=वचन से काएणं=कायसे न करेमि=न करूंगा, न कारवेमि=न कराऊंगा, करंतंपि =करते हुए भी अन्नं=दूसरेको न समणुजाणामि=भला नहीं समझूंगा, । भंते !=हे भगवन् तस्स=उस दण्ड से पडिक्कमामि=पृथक् होता हूं, निंदामि=आत्मसाक्षीसे निन्दा करता हूं, गरिहामि=गुरु साक्षी से गर्हा करता हूं, अप्पाणं=दण्ड सेवन करनेवाले आत्माको वोसिरामि=त्यागता हू, भंते !=हे भगवन् ! दोच्चे=दूसरे महव्वए=महाव्रतमें उवट्ठिओमि=उपस्थित हुवा हूं, इसलिये मुझे सव्वाओ=सब प्रकारके मुसावायाओ=असत्य से वेरमणं=त्याग है ॥९॥ (२)

(२) मृषावादविरमणव्रतम् ।

टीका—अथ=प्रथममहाव्रतानन्तरं हे भदन्त ! हे भगवन् ! अपरे—समनन्तरोदीरितमहाव्रतापेक्षया भिन्ने द्वितीये महाव्रते मृषावादात्—मिथ्याभाषणात् 'विरमण'मित्यनेन सम्बन्धो वक्ष्यते । मृषावादो हि सद्भावप्रतिषेधा-ऽभूतोद्भावना-ऽर्थान्तराभिधान-गर्हेतिभेदैश्चतुर्विधः, तत्र सद्भावप्रतिषेधः—जीवाजीवादिपदार्थसत्तानिराकरणम्, यथा—'नास्त्यात्मा परलोकः, पुण्यपापादिकं, चेति (१) । अभूतोद्भावनम्—जीवाजीवादितत्त्वानामतद्रूपत्वेन प्रतिपादनम्, यथा—"आत्माऽयमङ्गुष्ठमात्रो, निष्क्रियः, सर्वगतो वेत्यादि (२) । अर्थान्तराभिधानम्—प्रसिद्धपदार्थस्य पदार्थान्तरत्वेन कथनम्, यथा—गोर्गर्दभत्वेन, गर्दभस्य गोत्वेनाभिधानम् (३) । गर्हा—गर्हितं—हीनताप्रदर्शनम्, यद्वा हिंसापारुष्यादियुक्तं सत्यमपि वचः, यथा='अयं हन्तव्यः' इत्यादि, 'एहि अन्ध !, आयाहि बधिर !, आगच्छ पङ्गो !, इत्यादि च (४) इमेऽपि (चत्वारो भेदाः) प्रत्येकं चतुर्धा—द्रव्य-क्षेत्र काल-भाव-भेदात् ।

रमण महाव्रतकी पुष्टि होती है, अत. प्राणातिपातविरमणके वाद दूसरे मृषावादविरमण महाव्रतका व्याख्यान करते है—'अहावरे दोच्चे०' इत्यादि ।

(२) मृषावादविरमणव्रत ।

हे भगवन् ! प्रथम महाव्रतके अनन्तर दूसरे महाव्रतमें मृषावादसे विरमण होता है । मृषावाद चार प्रकारका है—(१) सदभावप्रतिषेध, (२) अभूतोद्भावन, (३) अर्थान्तराभिधान, (४) गर्हा । जीव अजीव आदि पदार्थोंके अस्तित्वका निराकरण करना सद्भावप्रतिषेध मृषावाद है, जैसे—'आत्मा नहीं, परलोक नहीं, पुण्य नहीं, पाप नहीं' इत्यादि (१) । जीव अजीव आदि तत्त्वोंका अयथार्थ स्वरूप प्रतिपादन करना अभूतोद्भावन मृषावाद है, जैसे—आत्मा अंगूठेके बराबर है, निष्क्रिय है या सर्वगत है' (२) एक पदार्थको दूसरा पदार्थ कह देना अर्थान्तराभिधान मृषावाद है जैसे—'गायको गधा बताना, या गधेको गाय कहना' (३) । दूसरेकी हीनता प्रकट करना

તિપાતવિરમણ મહાવ્રતની પુષ્ટિ થાય છે. એટલે પ્રાણાતિપાતવિરમણની પછી બીજા મૃષાવાદવિરમણ મહાવ્રતનું વ્યાખ્યાન કરે છે-अहावरे दोच्चे० ઇત્યાદિ

(૨) મૃષાવાદવિરમણવ્રત.

હે ભગવન્ પ્રથમ મહાવ્રતની પછી બીજા મહાવ્રતમાં મૃષાવાદથી વિરમણ હોય છે. મૃષવાદ ચાર પ્રકારનો છે. તે આપ્રમાણે-(૧) સદ્‌ભાવપ્રતિષેધ, (૨) અભૂતોદ્‌ભાવન (૩) અર્થાન્તરાભિધાન, (૪) ગર્હા..જીવ અજીવ આદિ પદાર્થોના અસ્તિત્વનું નિરાકરણ કરવું એ સદ્‌ભાવપ્રતિષેધ મૃષાવાદ છે, જેમકે-'આત્મા નથી, પરલોક નથી, પુણ્ય નથી પાપ નથી, ઇત્યાદિ. (૧) જીવ અજીવ આદિ તત્ત્વોનું અયથાર્થ સ્વરૂપ પ્રતિપાદન કરવુ એ અભૂતોદ્‌ભાવન મૃષાવાદ છે, જેમકે-'આત્મા અગૂઠા જેવડો છે, નિષ્ક્રિય છે યા સર્વગત છે' (૨) એક પદાર્થને બીજો પદાર્થ કહી દેવો એ અર્થાન્તરાભિધાન મૃષાવાદ છે, જેમકે-'ગાયને ગધેડો કહેવો યા ગધેડાને ગાય કહેવી.' (૩) બીજાની હીનતા પ્રકટ કરવી, અથવા હિંસા તથા કઠોરતા-યુક્ત

तत्र द्रव्यविषयकसद्भावप्रतिषेधः-धर्माधर्मादिषड्द्रव्याणामन्यथा प्ररूपणम् । क्षेत्रविषयसद्भावप्रतिषेधः-लोकालोकयोरन्यथा निरूपणम् । कालविषयक सद्भाव प्रतिषेधः क्षण-मुहूर्त-दिवसादि स्वरूपाणामन्यथानिरूपणम् । भावविषयकसद्भावप्रतिषेधः-रागद्वेषादीनामन्यथा प्रतिपादनम् । एवमेवाऽभूतोद्भावनादित्रयेऽपि द्रव्यादिचतुर्भङ्गी योजनीया । तस्माद्विरमणमिति । हे भगवन् ! सर्व-समस्तं मृषावादं प्रत्याख्यामीति पूर्ववद्बोद्धव्यम् ।

तदेव विशदयति-'से' -इति, अथ-अनन्तरम्-अद्यारभ्य-क्रोधात्-क्रोधः-आत्मनः क्रोधमोहनीयप्रकृत्युदयेन स्वपरचित्तविकृतिजनको निरनुकम्पक्रौर्यवैभाविकपरिणामविशेषस्तस्मात् । लोभात्-लोभः-लोभप्रकृत्युदयवशाद्द्रव्याद्यभिलाषलक्षणो जीवस्य वैभाविक-

---

अथवा हिंसा और कठोरतायुक्त सत्य वचन कहना गर्हारूप असत्य है, जैसे-यह मार डालने योग्य है, ओ अंधे ! इधर आ, ओ बहिरे ! या लंगडे ! यहाँ आ' इत्यादि (४)

इन चार प्रकारके मृषावादोके भी द्रव्य क्षेत्र काल भावके भेदसे चार चार भेद होते है ॥ धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय आदि षड्द्रव्योंके स्वरूपकी अन्यथा प्ररूपणा करना द्रव्य-सद्भवप्रतिषेध है । लोक और अलोकका अयथार्थ निरूपण करना क्षेत्र-सद्भावप्रतिषेध है । क्षण मूहूर्त दिन आदिके स्वरूपका मिथ्या कथन करना काल-सद्भावप्रतिपेध है । रागद्वेष आदि भावो का विपरीत स्वरूपबताना भावसद्भावप्रनिषेध है । इसो प्रकार अन्य तीन भेदोकी चतुर्भंगी समझ लेनी चाहिये, जैसे-द्रव्य अभूतोद्भावन, क्षेत्र अभूतोद्भावन, इत्यादि ।

हे भगवन् ! मैं सब प्रकारके मृषावादका प्रत्याख्यान करता हूँ ।

मृषावाद किस किस कारणसे होता है ? सो कहते है—

जीवके क्रोध-मोहनीय प्रकृतिके उदयसे स्व-परके चित्तमें विकार करनेवाला अनुकम्पा-रहित क्रूरतारूप वैभाविक परिणाम क्रोध है ।

સત્યવચન કહેવા એ ગર્હારૂપ અસત્ય છે, જેમકે- 'એ મારી નાંખવા યોગ્ય છે; ઓ આંધળા ! અહીં આવ. ઓ બહેરા ! ઓ લંગડા ! અહીં આવ' ઈત્યાદિ (૪)

એ ચાર પ્રકારના મૃષાવાદોના પણ દ્રવ્ય ક્ષેત્ર કાળ ભાવના ભેદે કરીને ચાર ચાર ભેદ થાય છે ધર્માસ્તિકાય અધર્માસ્તિકાય આદિ છ દ્રવ્યોના સ્વરૂપની અન્યથા પ્રરૂપણા કરવી એ દ્રવ્ય-સદ્ભાવપ્રતિષેધ છે લોક અને અલોકનુ અયથાર્થ નિરૂપણ કરવું એ ક્ષેત્ર-સદ્ભાવ પ્રતિષેધ છે, ક્ષણ મુહૂર્ત દિન આદિના સ્વરૂપનું મિથ્યા કથન કરવું એ કાળ-સદ્ભાવપ્રતિષેધ છે. રાગ દ્વેષ આદિ ભાવોનુ વિપરીત સ્વરૂપ બતાવવું એ ભાવ-સદ્ભાવપ્રતિષેધ છે. એ પ્રકારે અન્ય ત્રણ ભેદોની ચતુર્ભંગી સમજી લેવી, જેમકે-દ્રવ્ય-અભૂતોદ્ભાવન ક્ષેત્રઅભૂતોદ્ભાવન ઈત્યાદિ.

હે ભગવન્ હું સર્વ પ્રકારના મૃષાવાદના પ્રત્યાખ્યાન કરૂં છું

મૃષાવાદ કયા કયા કારણથી થાય છે ? તે હવે કહે છે—

જીવના ક્રોધ-મોહનીય પ્રકૃતિના ઉદયથી સ્વ-પરના ચિત્તમા વિકાર કરવાવાળો અનુકંપારહિત ક્રૂરતારૂપ જીવનો વૈભાવિક-પરિણામ એ ક્રોધ છે.

परिणामस्तस्मात् । भयात्–भयं–भयमोहनीयप्रकृत्युदयेनोद्वेगाऽऽवेदको विकारविशेषस्तस्मात् हासात्–हासः-हास्यमोहनीयप्रकृत्युदयेन वागादिविकृत्या कपोलयुगलोल्लासन-लोचनसंकोचन-दशनप्रकाशन-सहकृतसशब्दप्राय-वदनव्यादानादिलक्षणश्चेतो विकाश-स्तस्मात् । नैव स्वयं मृषा–मिथ्या वदामि, नैवान्यैर्मृषा वादयामि, मृषा वदतोऽप्यन्यान्न समनुजानामीत्यादि पूर्ववत् ॥ ९ ॥ (२)

सत्यपरिपालनं चाऽदत्तादान-(चौर्य)-परित्यागपूर्वकं कर्त्तुं सुशकमिति तदनन्तरमदत्तादानविरमणमञ्जकं तृतीयं महाव्रतमाह–'अहावरे तच्चे' इत्यादि ।

मूलम्–अहावरे तच्चे भंते ! महव्वए अदिन्नादाणाओ वेरमणं, सव्वं भंते ? आदिन्नादाणं पच्चक्खामि से गामे वा नगरे वा रन्ने वा अप्पं वा बहुं वा अणुं वा थूलं वा चित्तमंतं वा अचित्तमंतं वा नेव सयं अदिन्नं गिण्हिज्जा नेवन्नेहिं अदिन्नं गिण्हाविज्जा अदिन्नं गिण्हंतेवि अन्ने न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि, न कारवेमि,करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि । तस्स भंते ? पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि । तच्चे भंते !महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ अदिन्नादाणाओ वेरमणं ॥१०॥

लोभ-प्रकृतिके उदयसे द्रव्य आदिकी अभिलाषारूप जीवके वैभाविक भावको लोभ कहते है,

भय-मोहनीयके उदयसे उद्वेगको उत्पन्न करनेवाला विकार भय कहलाता है ।

हास्य–मोहनीयके उदयसे वचनोकी विकृतिके साथ गाल फुलाकर आँखे कुछ २ मूंदकर दाँत निकालकर 'ही–ही' शब्द करके मुखको प्रफुल्लित करना हास्य कहलाता है ।

इन सब कारणोसे मृषावाद होता है । मै इन कारणोके वश होकर न स्वयं मृषा बोलूँगा, न दूसरोसे बोलाऊँगा, न किसी मृषा बोलते हुएको भला जानूँगा (२) ॥९॥

લોભ-પ્રકૃતિના ઉદયે કરીને દ્રવ્ય આદિની અભિલાષારૂપ જીવના વૈભાવિકભાવને લોભ કહે છે

ભય-મોહનીયના ઉદયથી ઉદ્વેગને ઉત્પન્ન કરવાવાળો વિકાર ભય કહેવાય છે.

હાસ્ય-મોહનીયના ઉદયથી વચનોની વિકૃતિની સાથે ગાલ ફુલાવીને આંખો કાંઈક મીંચીને દાંત કાઢીને 'હી-હી' શબ્દ કરીને મુખને પ્રફુલ્લિત કરવું એ હાસ્ય કહેવાય છે.

એ સર્વ કારણોથી મૃષાવાદ ઉત્પન્ન થાય છે. હું એ કારણોને વશ થઈને નહીં સ્વયં મૃષા (જૂઠું) બોલું, નહીં બીજા પાસે બોલાવું, કે નહીં મૃષા બોલનારને ભલો જાણું. (૨)૯

छाया–अथापरे तृतीये भदन्त ! महाव्रतेऽदत्तादानाद्विरमणं, सर्वं भदन्त ! अदत्तादानं प्रत्याख्यामि, अथ ग्रामे वा नगरे वा अरण्ये वा अल्पं वा बहु वा अणु वा स्थूलं वा चित्तवद्वा अचित्तवद्वा नैव स्वयमदत्तं गृह्णामि नेवान्यैरदत्तं ग्राहयामि, अदत्तं गृह्णतोऽप्यन्यान्न समनुजानामि, यावज्जीवया त्रिविधं त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामि । तस्मात् भदन्त ! प्रतिक्रामामि गर्हे आत्मानं व्युत्सृजामि । तृतीये भदन्त ! महाव्रते उपस्थितोऽस्मि सर्वस्माददत्तादानाद्विरमणम् ॥१८॥

(३) अदत्तादानविरमण.

सान्वयार्थः—भंते !=हे भगवन् ! अहावरे=इसके बाद तच्चे=तीसरे महव्वए=महाव्रतमें अदिन्नादाणाओ=अदत्तादानसे वेरमणं=विरमण होता है (अतः मैं) भंते !=हे भगवन् ! सव्वं=सब प्रकार के अदिन्नादाणं=अदत्तादान (चोरी) का पच्चक्खामि=प्रत्याख्यान करता हूँ से=अथ-अब से लेकर मैं–गामे वा=ग्राममें नयरे वा=नगरमें रण्णे वा=अरण्यमें अप्पं वा=अल्प-थोडा बहुं वा=बहुत-घणा अणुं वा=सूक्ष्म-छोटा थूलं वा=स्थूल-मोटा चित्तमंतं वा=सचेतन अचित्तमंतं वा=अचेतन (आदि किसी भी) अदिन्नं=विना दिये हुए पदार्थको सयं=स्वय नेव=नहीं गिण्हिज्जा=ग्रहण करूंगा, नेवन्नेहिं=न दूसरोंसे अदिन्नं=विना दिया हुआ गिण्हाविज्जा=ग्रहण कराऊँगा, अदिन्नं=विना दिये हुए पदार्थ को गिण्हंतेवि=ग्रहण करते हुए भी अन्ने=दूसरे को न समणुजाणामि=भला नहीं जानूँगा, जावज्जीवाए=जीवनपर्यन्त (इसको) तिविहं=कृत-कारित-अनुमोदनारूप तीन कारणसे (तथा) तिविहेणं=तीन प्रकारसे मणेणं=मनसे वायाए=वचनसे काएणं=कायसे न करेमि=न करूंगा, न कारवेमि=न कराऊँगा, करं[illegible]पि=करते हुए भी अन्नं=दूसरे को न समणुजाणामि=भला नहीं समझूंगा । भंते ! हे भगवन् ! तस्स=उस दण्डसे पडिक्कमामि=पृथक् होता हूँ, निंदामि=आत्मसाक्षीसे निन्दा करता हूँ, गरिहामि=गुरुसाक्षी से गर्हा करता हूँ, अप्पाणं=दण्ड सेवन करनेवाले आत्माको वोसिरामि=त्यागता हूँ । भंते !=हे भगवन् ! तच्चे=तीसरे= महव्वए=महाव्रतमें उवट्ठिओमि=उपस्थित हुआ हूँ, इसलिये मुझे सव्वाओ=सब अदिन्नादाणाओ=अदत्तादानसे वेरमणं=विरमणं-त्याग है ॥१०॥ (३)

अदत्तादानविरामणव्रतम्

टीका—हे भगवन् ! अथ=मृषावादविरमणानन्तरम् अपरे=तृतीये महाव्रते अदत्तादानात्=न दत्तमदत्त=देवगुरु भूपगाथापतिसाधर्मिकैरननुज्ञातं तस्याऽऽदानं=ग्रहणमदत्तादानं तस्मा द्विरमणम्, सर्वं भगवान् ! अदत्तादान प्रत्याख्यामि, एतत्तु व्याख्यातपूर्वम् । तदेव विशदयति–'से'-इति, अथ=अनन्तरम्-अद्यारभ्य-ग्रामे=ग्रस्यन्ते=अद्यन्ते=विनाश्यन्ते बुद्धिविद्याविवेकादयो गुणा यत्र स इति, गम्यो गोमहिषादीनां करैरिति वा ग्रामः (सिद्धिः पृषोदरादित्वात्) कृषिप्रचुरभूमागो, हट्टादिशून्यवसतिः, कण्टकमय-

वृत्तिपरिवेष्टितगृहसमूहसम्पन्नो वा तस्मिन्। नगरे = न गच्छन्तीति नगाः = वृक्षाः पर्वताश्च, त इव समुन्नताः प्रासादादयो यस्मिंस्तन्नगरम्, ('नग-पांसु पाण्डुभ्यश्चे'-ति वार्त्तिकेन नगशब्दाद्रः) नकरमितिच्छायापक्षे तु न विद्यते गोमहिषादीनामष्टादशविधः करः =

सत्य महाव्रतका पालन अदत्तादानका त्याग करनेसे ही हो सकता है, इस कारण सत्य महाव्रतके पश्चात् अदत्तादानविरमण नामक तीसरे महाव्रतका कथन करते हैं-' अहावरे तच्चे' इत्यादि।

(३) अदत्तादानविरमण।

मृषावादविरमणके बाद तीसरे महाव्रतमें देव गुरु राजा गाथापति और साधर्मिकके द्वारा न दिये हुए पदार्थके ग्रहणका त्याग किया जाता है, इसलिए हे भगवन्! मै सर्व अदत्तादानका परित्याग करता हूँ। वह इस प्रकार—

जहाँ रहने से बुद्धि, विद्या, विवेक आदि गुण नष्ट हो, जाते है उसे ग्राम कहते है। अथवा पृथ्वीके अधिक भागमे कृपि होती हो, बाजार या दुकाने हों, काँटोकी वाडसे घिरे हुए घर हों उस वस्तीको ग्राम (गाँव) कहते है।

जहाँ वृक्ष तथा पर्वतकी तरह अत्यन्त उन्नत महल-हवेलियाँ हो अथवा गो महिष आदि पर कर (जकात) न लगता हो, अथवा जिस वस्तीमें पुण्य-पाप क्रियाओके ज्ञाता, दया-दानके प्रवर्त्तक, कलाओमें कुशल चारो वर्ण हों, और जहाँ नाना देशकी भाषा बोलनेवाले मनुष्य रहते हो उसे नगर कहते हे।

સત્ય મહાવ્રતનુ પાલન અદત્તાદાનનો ત્યાગ કરવાથી જ થઈ શકે છે, તે કારણથી સત્ય મહાવ્રતની પછી અદત્તાદાન-વિરમણ નામના ત્રીજા મહાવ્રતનું કથન કરે છે-**अहावरे तच्चे** ઇત્યાદિ.

(૩) અદત્તાદાનવિરમણ.

મૃષાવાદવિરમણની પછી ત્રીજા મહાવ્રતમા દેવ ગુરૂ, રાજા, ગાથાપતિ અને સાધર્મિકે ન આપેલા એવા પદાર્થનું ગ્રહણ કરવાનો ત્યાગ કરવામાં આવે છે, તેથી હે ભગવન્! હું સર્વ અદત્તાદાનનો પરિત્યાગ કરૂં છું તે આ પ્રકારે—

જ્યા રહેવાથી બુદ્ધિ, વિદ્યા, વિવેકાદિ ગુણો નષ્ટ થઈ જાય છે તેને ગ્રામ કહે છે અથવા જ્યા ગાય ભેંશ આદિનો કર (ટેકસ) લેવામા આવે છે, અથવા પૃથ્વીના વધારે ભાગમાં ખેતી થાય છે, બજાર અથવા દુકાનો હોય નહીં, કાટાની વાડથી ઘેરાયેલા ઘર હોય એ વસ્તીને ગ્રામ (ગામ) કહે છે.

જ્યા વૃક્ષ કે પર્વત જેવી અત્યત ઉચી મહેલ-હવેલીઓ હોય, અથવા ગાય-ભેંશ આદિ પર કર (જકાત) ન લાગતો હોય, અથવા જે વસ્તીમા પુણ્ય-પાપ ક્રિયાઓના જ્ઞાતા, દયા-દાનના પ્રવર્તક, કળાઓમા કુશળ ચારે વર્ણો હોય, અને જ્યા જૂદા જૂદા દેશોની ભાષાઓ બોલનારા મનુષ્યો રહેતા હોય, તેને નગર કહે છે.

रापग्राह्यभागः (जकात) यत्र तत् । यद्वा—

"पुण्यपापक्रियाविज्ञै,-र्दयादानप्रवर्त्तकैः ।
कलाकलापकुशलैः, सर्ववर्णैः समाकुलम् ॥
भाषाभिर्विविधाभिश्च, युक्तं 'नगर'-मुच्यते ॥"

इत्युक्तलक्षणं तस्मिन् ।अरण्ये = अर्यते-गम्यते एकान्तविविक्तदेशप्रियैर्ध्यानार्थिभिः, काष्ठ-घारकैस्तु काष्ठहारकैर्वेत्यरण्यं तस्मिन्, उपलक्षणात्खेट आदौ । एतेषां मध्ये कस्मिंश्चिदपि स्थले अल्पं = मूल्यतो न्यूनं दन्तादिपरिशोधनार्थं तृणादिकम् , बहु = अधिकमूल्यकं सुवर्णा-दिकम् , अणु = प्रमाणतो लघु माणिक्यादिकम्, स्थूलम् = प्रमाणतो विशालमेरण्डकाष्ठा-दिकम् , चित्तवत् = सचेत्तनम् , अचित्तवत् = अचेतनं वा, एतत्सर्वम् एतदन्यतमं वा अदत्तं = तत्स्वामिना ग्रहणायाऽननुमतं नैव स्वयं गृह्णामि, नैवान्यैरदत्तं ग्राहयामि अदत्तं गृह्णतोऽप्यन्यान्न समनुजानामीत्यादिकं सर्वं व्याख्यातपूर्वम् ।

ननु सामान्येनाऽदत्ताऽदानस्य स्तेयत्वे प्रतिक्षणमनन्यदेयकर्माण्याददानस्य समिति-गुप्तिप्रभृतिभिर्धर्मं वा समुपार्जयतः साधोरदत्तादानापत्तिप्रसक्तिरिति चेन्न,

---

एकान्त और पवित्र स्थानके अभिलाषी ध्यानार्थी योगी अथवा लकडी लानेके लिए लकड़-हारे जहाँ जाते है वह अरण्य कहलाता है ।

इन ग्राम, नगर, अरण्य और उपलक्षसे खेटक (खेड़ा) आदि किसी स्थानमें कम मूल्य-वाला—दाँत खुजानेका तिनका आदि, अधिक कीमतवाला—सुवर्ण अदि, प्रमाणकी अपेक्षा अणु—माणिक्य आदि, प्रमाणकी अपेक्षा बडा—एरण्डकाष्ठ आदि, सचेतन अथवा अचेतन कोई पदार्थ या सब पदार्थ विना स्वामीकी अनुमतिके न स्वयं ग्रहण करूँगा, न दूसरोसे ग्रहण कराऊँगा और न ग्रहण करनेवालेको भला जानूँगा ।

प्रश्न—हे गुरु महाराज ! विना दी हुई सब वस्तुओंको ग्रहण करना यदि अदत्तादान है तो मुनियो को भी अदत्तादानका प्रसग आवेगा, क्योकि मुनि विना दिये हुए कर्मोंको प्रतिक्षण

એકાન્ત અને પવિત્ર સ્થાનના અભિલાષી ધ્યાનાર્થી યોગી અથવા લાકડા લેવાને માટે કઠિયારા જ્યાં જાય છે તે અરણ્ય (જંગલ) કહેવાય છે

એ ગામ નગર અરણ્ય અને ઉપલક્ષણે કરીને ખેટક (ગામડુ) આદિ કોઈ સ્થાનમા ઓછા મૂલ્યવાળુ દાંત ખોતરવાનુ તણખલું વગેરે વધારે મૂલ્યવાળું સોનુ વગેરે પ્રમાણની અપેક્ષાએ નાનું માણિક્યાદિ પ્રમાણની અપેક્ષાએ મોટું એરંડાનું લાકડું આદિ સચેતન અથવા અચેતન કોઈ પદાર્થ યા સર્વ પદાર્થ તેના સ્વામીની અનુમતિ વિના નહિ સ્વય હું ગ્રહણ કરૂ નહિ બીજા પાસે ગ્રહણ કરાવું અને નહિ ગ્રહણ કરનારને ભલો જાણુ

પ્રશ્ન—હે ગુરૂ મહારાજ ! આપવામાં આવ્યા વિનાની બધી વસ્તુઓને ગ્રહણ કરવી એ જો અદત્તાદાન છે તો મુનિઓને પણ અદત્તાદાનનોનપ્રસંગ આવશે કારણ કે મુનિ વિના અપાયલા કર્મોને પ્રતિક્ષણ ગ્રહણ કરે છે અને સમિતિ ગુપ્તિનું પાલન કરીને ધર્મનુ પણ ઉપાર્જન કરે છે.

लोकप्रसिद्धहस्तादिकरणकदानाऽऽदानादिव्यवहारस्य कर्मादिष्वभावात् , तथाहि लोके वस्त्रपात्रादिकमन्यस्मै हस्तेन दीयतेऽन्यस्माद्वाऽऽदीयते, इत्येव दानाऽऽदानादि-व्यवहारो दृश्यते तस्य न कर्मविषयकत्वं संभवति, तेषां सूक्ष्मत्वात् , नहि सूक्ष्मं कर्मादि-कं हस्तादिकरणकग्रहणवितरणयोग्यतां भजते इति ।

धर्ममुपार्जयतश्चाऽप्रमत्तत्वात्तीर्थंकराणां धर्मार्जनोपदेशाच्च न स्तेयप्रसङ्गः, अत एवाऽल्प-बहु-स्थूलाऽणुग्रहणं सूत्रे कृतमिति ॥१०॥ (३)

ग्रहण करते है और समिति–गुप्तिका पालन करके धर्मका भी उपार्जन करते है ।

उत्तर–हे शिष्य ! ऐसा नहीं है हाथोंसे लेने-देनेका जैसा व्यवहार लोकमें प्रसिद्ध है वैसा कर्मोंमें नहीं हो सकता, अर्थात् लोकमें ऐसा व्यवहार होता है कि–वस्त्र पात्र दूसरोंको हाथ से दिया जाता है, दूसरेसे लिया जाता है ।' इस प्रकारका व्यवहार कर्मोंके विषयमें नहीं होता, क्योंकि कर्म अत्यन्त सूक्ष्म है, वे इन्द्रियके विषय भी नहीं होते तो उनका लेन देन कैसे हो सकता है ? दूसरी बात यह है कि प्रमादके योगसे अदत्त पदार्थका आदान (ग्रहण) करना अदत्तादान कहलाता है, मुनिराजको तद्विषयक प्रमाद नहीं है इसलिए उन्हे अदत्तादानका दोष नहीं लगता । मुनिराज तो कभी नहीं चाहते कि हम कर्मोंको ग्रहण करे, किन्तु ससारी आत्मा और कर्मोंका स्वभाव ही ऐसा है कि जिससे कर्म बध जाते है । रहा धर्मोपार्जन, सो तीर्थंकर भगवानने धर्मोपार्जन करनेका आदेश तथा उपदेश दिया है इसलिए अदत्तादानका प्रसग नही आता ।

सूत्रमें अल्प, बहु, स्थूल, और अणु, इन शब्दोका ग्रहण भी इसी आशयसे किया गया है, अत एव कर्मोंके बन्धन तथा समिति–गुप्ति द्वारा धर्मोपार्जनमें अदत्तादान नहीं लगता है ।'३ ॥१०॥

ઉત્તર—હે શિષ્ય ? એમ નથી. હાથેથી લેવા-દેવાનો જેવો વહેવાર લોકમા પ્રસિદ્ધ છે તેવો વહેવાર કર્મોમા નથી હોઇ શકતો, અર્થાત્ લોકોમાં એવો વહેવાર થાય છે કે—વસ્ત્ર પાત્ર બીજાઓને હાથથી આપવામાં આવે છે બીજા પાસેથી લેવામા આવે છે' એ પ્રકારનો વહેવાર કર્મોની બાબતમાં થતો નથી કેમકે–કર્મ અત્યન્ત સૂક્ષ્મ છે તે ઇંદ્રિયનો વિષય જ નથી હોતો તો એની લેણુ–દેણુ કેવી રીતે થઇ શકે ? બીજી વાત એ છે કે પ્રમાદના યોગથી અદત્ત પદાર્થનું આદાન (ગ્રહણ) કરવુ એ. અદત્તાદાન કહેવાય છે મુનિરાજને તદ્વિષયક પ્રમાદ હોતો નથી તેથી તેમને અદત્તાદાનનો દોષ લાગતો નથી મુનિરાજ તો કદાપિ એમ નથી ઇચ્છતા કે હુ કર્મોને ગ્રહણ કરૂ . કિન્તુ સંસારી આત્મા અને કર્મોનો સ્વભાવ જ એવો છે કે જેથી કર્મ બંધાઇ જાય છે બાકી રહ્યુ ધર્મોપાર્જન તે તીર્થંકર ભગવાને ધર્મોપાર્જન કરવાનો આદેશ તથા ઉપદેશ આપ્યો છે તેથી તેમા અદત્તાદાનનો પ્રસગ જ આવતો નથી.

સૂત્રમાં અલ્પ, બહુ, સ્થૂલ, અને અણુ, એ શબ્દોનુ ગ્રહણ પણ એ જ આશયથી કરવામા આવ્યુ છે. એટલે કર્મોના બંધન તથા સમિતિ-ગુપ્તિ દ્વારા ધર્મોપાર્જન, એમા અદત્તાદાન લાગતું નથી (૩) (૧૦)

मैथुनविरमणमन्तरेण ह्यहिंसादिमहाव्रतानां संरक्षणं न भवितुं शक्नोति, यतो मैथुनपरायणः प्राणी त्रस-स्थावर जीवन हिनस्ति, मिथ्या वदति, अदत्तं चाऽऽदत्तेऽतस्तेषां निरपायपरिपालनाय 'मैथुनविरमण' नामधेयं चतुर्थं महाव्रतमाह-'अहावरे चउत्थे ' इत्यादि

मूलम्-अहावरे चउत्थे भंते ? महव्वए मेहुणाओ वेरमणं, सव्वं भंते ? मेहुणं पच्चक्खामि. से दिव्वं वा माणसं वा तिरिक्खजोणियं वा नेव सयं मेहुणं सेविज्जा, नेवन्नेहि मेहुणं सेवाविज्जा, मेहुणं सेवंतेवि अन्ने न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं-तिविहणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि, करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि । तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। चउत्थे भंते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ मेहुणाओ वेरमणं ॥११॥ (४)

छाया-अथापरे चतुर्थे भदन्त ? महाव्रते मैथुनाद्विरमणं, सर्वं भदन्त! मैथुन प्रत्याख्यामि, अथ दैवं वा मानुषं वा तैर्यग्योन वा नैव स्वयं मैथुनं सेवे, नैवान्यैर्मैथुनं सेवयामि, मैथुनं सेवमानानप्यन्यान्न=समनुजानामि, यावज्जीवया त्रिविधं त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि, न कारयामि, कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामि । तस्माद् भदन्त !प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हे आत्मानं व्युत्सृजामि । चतुर्थे भदन्त ! महाव्रते उपस्थितोऽस्मि सर्वस्मान्मैथुनाद्विरमणम् ॥११॥

(४) मैथुनविरमण.

सान्वयार्थः-भंते!=हे भगवन् ! अहावरे=इसके बाद चउत्थे=चौथे महव्वए=महाव्रतमें मेहुणाओ=मैथुनसे वेरमणं=विरमण होता है, (अतः मैं)भंते !=हे भगवन् ! सव्वं=सब प्रकारके मेहुणं=मैथुनका पच्चक्खामि=प्रत्याख्यान करता हूं. से=अब से लेकर मैं दिव्वं वा=देवसम्बन्धी माणुसं वा=मनुष्यसम्बन्धी तिरिक्खजोणियं वा=तिर्यञ्चसम्बन्धी मेहुणं=मैथुनको सयं=स्वयं नेव=न सेविज्जा=सेवन करूंगा, मेहुणं=मैथुन सेवंतेवि=सेवन करते हुएभी अन्ने=दूसरोंको न समणुजाणिज्जा=भला नहीं समझूंगा, जावज्जीवाए=जीवनपर्यन्त (इसको) तिविहं=कृत कारित अनुमोदनारूप तीन करणसे (तथा) तिविहेणं=तीन प्रकारके मणेणं=मनसे वायाए=वचनसे काएणं=कायसे न करेमि=न करूंगा न कारवेमि=न कराऊँगा करंतंपि=करते हुएभी अन्न =दूसरे को न समणुजाणामि=भला नहीं समझूंगा । भंते !=हे भगवन् ! तस्स=उस दण्डसे पडिक्कमामि=पृथक् होताहूँ, निंदामि=आत्मसाक्षीसे निन्दा करता हूँ, गरिहामि=गुरु साक्षीसे गर्हा करता हूँ, अप्पाणं = दण्ड सेवन करनेवाले आत्माको वोसिरामि=त्यागता हूं । भंते !=हे भगवन् ! चउत्थे=चौथे महव्वए=महाव्रतमें उवट्ठिओमि=उपस्थित होता हूं, इसलिये मुझे सव्वाओ=सब प्रकारके मेहुणाओ=मैथुनसे वेरमणं=त्याग है ॥११॥(४)

(४) मैथुनविरमणव्रतम्

टीका—हे भगवन् ! अथ अपरे चतुर्थे महाव्रते मैथुनात्=मिथुनेन=स्त्रीपुंसाभ्यां निर्वृत्तं कर्म मैथुनं प्रत्याख्यामीति प्राग्वत्, तदेव विशदयति-'से' इति । अथ=अनन्तरम्-अप्सरस्य दैवं=देवानामिदं मानुषं=स्त्री-पुंससम्बन्धीत्यर्थः, तैर्यग्योनं=तिर्यग्योनं=पश्वादि-सम्बन्धीत्यर्थः, मैथुनं नैव स्वयं सेवे, इत्यादि सर्वं पूर्ववत् । द्रव्यादिचतुर्भङ्ग्यपि प्राग्वद्-योजनीया ॥११॥ (४)

(५) परिग्रहविरमण.

मैथुनविरमणं च परिग्रहविरमणमन्तरेण न भवितुं सुशकमिति मैथुनविरमणानन्तरं परिग्रहविरमणनामकं पञ्चमं महाव्रतमाह -'अहावरे पंचमे' इत्यादि ।

मूलम्—अहावरे पंचमे भंते ! महव्वए परिग्गहाओ वेरमणं सव्वं भंते ! परिग्गहं पच्चक्खामि, से अप्पं वा बहुं वा अणुं वा थूलं वा चित्तमंतं वा अचित्तमंतं वा नेव सयं परिग्गहं परिगिण्हिज्जा, नेवन्नेहिं परिग्गहं परिगिण्हाविज्जा, परिग्गहं परिगिण्हंतेवि अन्ने न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए

मैथुनविरमणके विना अहिंसा आदि महाव्रतोंकी रक्षा नहीं हो सकती, क्योंकि मैथुन सेवन करनेवाला त्रस स्थावर जीवोंकी हिंसा करता है, असत्य बोलता है, और अदत्तका आदान करता है । अत एव अहिंसादि महाव्रतोंका निरतिचार पालन करनेके लिए मैथुन–विरमण नामक चतुर्थ महाव्रतका प्रतिपादन किया जाता है–अहावरे चउत्थे, इत्यादि ।

(४) मैथुनविरमण

हे भगवन् ! चौथे महाव्रतमें समस्त प्रकारके मैथुनसे विरमण किया जाता है, इसलिए हे भगवन् ! मै सब तरहके मैथुनका प्रत्याख्यान करता हूँ । अप्सराओं सम्बन्धी दैवी स्त्री पुरुष सबंधी मानुषी पशु आदि सबंधी तैर्यग्योनिक मैथुनको मै न स्वय सेवन करूँगा न दूसरो से सेवन कराऊंगा न सेवन करते हुए को भला जानूंगा । । द्रव्य क्षेत्र काल भावकी चौभंगी यहाँ पर भी लगानी चाहिए, अर्थात् द्रव्यसे स्त्री आदिके साथ, क्षेत्रसे किसी क्षेत्रमें, कालसे-किसी कालमें और भावसे–किसी भी भावसे, तीन करण तीन योगसे मैथुन सेवन नहीं करूँगा ॥११॥ (४)

મૈથુનવિરમણ વિના અહિંસા આદિ મહાવ્રતોની રક્ષા થઇ શકતી નથી, કારણ કે-મૈથુન સેવન કરવાવાળો ત્રસ-સ્થાવર જીવોની હિંસા કરે છે, અસત્ય બોલે છે અને અદત્તનું આદાન કરે છે તેથી કરીને અહિંસાદિ મહાવ્રતોનું નિરતિચાર પાલન કરવાને માટે મૈથુન-વિરમણ નામનું ચોથા મહાવ્રતનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવે છે-અહાવરે ચઉત્થે ઇત્યાદિ

(૪) **મૈથુનવિરમણ.**

હે ભગવન્ ! ચોથા મહાવ્રતમાં સર્વ પ્રકારના મૈથુનનું વિરમણ કરવામાં આવે છે, તેથી હે ભગવન્ ! હું સર્વ પ્રકારના મૈથુનનું પ્રત્યાખ્યાન કરૂં છું અપ્સરાઓ સંબંધી દેવી, સ્ત્રી-પુરૂષ-સંબંધી માનુષિક પશુ-આદિ-સંબંધી તૈર્યગ્યોનિક મૈથુન નહીં હું સ્વયં સેવું, નહીં બીજાઓ પાસે સેવન કરાવું અને નહીં સેવન કરનારને ભલો ન જાણું દ્રવ્ય-ક્ષેત્ર-કાળ-ભાવની ચૌભંગી એમાં પણ લગાડવી, અર્થાત્ દ્રવ્યથી સ્ત્રીઆદિની સાથે, ક્ષેત્રથી કોઇ પણ ક્ષેત્રમાં, કાળથી કોઇ કાળમાં અને ભાવથી કોઈ પણ ભાવે કરીને ત્રણ કરણ ત્રણ યોગથી મૈથુન સેવીશ નહીં. (૪) (૧૧)

काएणं न करेमि न कारवेमि, करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। पंचमे भंते! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमणं ॥१२॥ (५)

छाया—अथापरे पञ्चमे भदन्त! महाव्रते परिग्रहाद्विरमणं, सर्वं भदन्त! परिग्रहं प्रत्याख्यामि, अथ अल्पं वा बहुं वा अणुं वा स्थूलं वा चित्तवन्तं वा अचित्तवन्तं वा नैव स्वयं परिग्रहं परिगृह्णामि, नैवान्यैः परिग्रहं परिग्राहयामि, परिग्रहं परिगृह्णतोऽप्यन्यान्न समनुजानामि, यावज्जीवया त्रिविधं त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामि भदन्त! प्रतिक्रमामि निन्दामि गर्हे आत्मानं व्युत्सृजामि। पञ्चमे भदन्त! महाव्रते उपस्थितोऽस्मि सर्वस्मात्परिग्रहाद्विरमणम् ॥१२॥ (५)

सान्वयार्थः-भंते!=हे भगवन्! अहावरे=इसके बाद पंचमे=पांचवें महव्वए=महाव्रतमें परिग्गहाओ=परिग्रहसे वेरमणं=विरमण होता है, अतः मैं भंते=हे भगवन् सव्वं=सब प्रकारके परिग्गहं=परिग्रहको पच्चक्खामि=त्यागता हूँ, से=अब से लेकर मैं अप्पंवा=अल्प बहुंवा=बहुत अणुंवा=अणु-छोटा थूलंवा=स्थूल मोटा चित्तमंतंवा=सचेतन अचित्तमंतंवा=अचेतन परिग्गहं=परिग्रहको सयं=स्वयं नेव=नहीं परिगिण्हाविज्जा=ग्रहण कराऊँगा, परिग्गहं=परिग्रहको परिगिण्हंतेवि=ग्रहण करनेवालेभी अन्ने=दूसरोंको न समणुजाणिज्जा=भला नहीं जानूंगा। जावज्जीवाए=जीवनपर्यन्त (इसको) तिविहं=कृत कारित अनुमोदनारूप तीन करणसे (तथा) तिविहेणं=तीन प्रकारके मणेणं=मनसे वायाए=वचनसे काएणं=कायसे न करेमि न करूँगा, न कारवेमि=न कराऊँगा, करंतपि=करते हुए भी अन्नं=दूसरेको न समणुजाणामि=भला न समझूंगा। भंते=हे भगवन्! तस्स=उसदंडसे पडिक्कमामि पृथक् होता हूं, निंदामि=आत्मसाक्षीसे निन्दा करता हूँ, गरिहामि=गुरुसाक्षीसे गर्हा करता हूं, अप्पाणं=दण्ड सेवन करनेवाले आत्माको वोसिरामि=त्यागता हूँ। =हे भगवन्! पंचमे=पांचवें महव्वए=महाव्रतमें उवट्ठिओमि=उपस्थित होता हूँ, इसलिये मुझे सव्वाओ=सब परिग्गहाओ=परिग्रहसे वेरमणं-विरमण त्याग है ॥१२॥ (५)

(५) परिग्रहविरमणव्रतम्

टीका— हे भगवन्! अथापरे पञ्चमे महाव्रते परिग्रहः 'मुच्छा परिग्गहो वुत्तो' इति वचनात्, धर्मोपकरणभिन्नं सर्वमित्यर्थस्तस्माद्विरमणम्। हे भगवन्! सर्वं परिग्रहं प्रत्याख्यामि, अथ ग्रामे वा नगरे वेत्यादि प्राग्वद्बोद्धव्यम् ॥१२॥ (५)

मैथुनविरमण, परिग्रहके त्यागे विना नहीं हो सकता, इसलिए मैथुनविरमणके अनन्तर परिग्रहविरमणनामक पांचवा महाव्रत कहते हैं— अहावरे पंचमे' इत्यादि।

મૈથુન-વિરમણ, પરિગ્રહના ત્યાગ વિના થઈ શકતું નથી, તેથી મૈથુન વિરમણની પછી પરિગ્રહવિરમણ નામનું પાંચમું મહાવ્રત કહે છે—અહાવરે પંચમે ઇત્યાદિ

द्वाविंशतितीर्थंकरशासने ऋजुप्रज्ञापुरुषापेक्षयाऽस्योत्तरगुणत्वेऽपि आद्यान्तिमतीर्थंकरसाधूनामृजुजड-वक्रजडत्वादनर्थप्रतिरोधार्थं स्फुटप्रतिबोधार्थ च महाव्रतानन्तरं मूलगुणत्वेनोपादातुं षष्ठं रात्रिभोजनविरमणव्रतमाह—'अहावरे छट्ठे इत्यादि ।

मूलम्—अहावरे छट्ठे भंते! वए राइभोयणाओ वेरमणं. सव्वं भंते! राइभोयणं पच्चक्खामि, से असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा नेव सयं राइं भुंजिज्जा, नेवन्नेहिं राइं भुंजाविज्जा, राइं भुंजंतेवि अन्ने न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। छट्ठे भंते! वए उवट्ठिओमि सव्वाओ राइभोयणाओ वेरमणं ॥१३॥ (६)

छाया—अथापरे षष्ठे भदन्त! व्रते रात्रिभोजनाद्विरमणं, सर्वं भदन्त! रात्रिभोजनं प्रत्याख्यामि, अथ अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा नैव स्वयं रात्रौ भुञ्जे, नैवान्यान् रात्रौ भोजयामि, रात्रौ भुञ्जानानप्यन्यान्न समनुजानामि यावज्जीवया त्रिविधं त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामि। तस्माद् भदन्त! प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हे आत्मानं व्युत्सृजामि। तस्माद् भदन्त! व्रते उपस्थितोऽस्मि सर्वस्माद्रात्रिभोजनाद्विरमणम् ॥१३॥ (६)

---

(५) परिग्रहविरमण.

हे भगवन्! चतुर्थ महाव्रतके पश्चात् पाँचवे महाव्रतमें परिग्रहका पूर्ण प्रत्याख्यान किया जाता है। जिससे आत्मा जन्म-जरा, मरण-आदि-जनित नाना दुःखोसे गृहीत होता है, अथवा जो मूर्च्छा-पूर्वक स्वीकार किया जाता है वह परिग्रह कहलाता है, क्योंकि भगवानने मूर्च्छाको ही परिग्रह बतलाया है। अतएव तीन करण तीन योगसे ग्राम नगर आदिमें न स्वयं परिग्रह धारण करूँगा, न दूसरेसे धारण कराऊँगा, न धारण करते हुऐंको भला जानूँगा ॥१२॥ (५)

---

(૫) પરિગ્રહવિરમણ.

હે ભગવન્! ચતુર્થ મહવ્રતની પછી પાંચમા મહાવ્રતમા પરિગ્રહનાં પૂર્ણ પ્રત્યાખ્યાન કરવામા આવે છે. જેથી આત્મા જન્મ જરા મરણાદિજનિત નાના પ્રકારના દુઃખોથી ગ્રસ્ત થાય છે. અથવા જે મૂર્ચ્છાપૂર્વક સ્વીકારવામા આવે છે તે પરિગ્રહ કહેવાય છે, કારણ કે ભગવાને મૂર્ચ્છાનેજ પરિગ્રહરૂપ બતાવી છે તેથી કરીને ત્રણ કરણ ત્રણ યોગે ગ્રામ નગર આદિમા ન સ્વયં પરિગ્રહ ધારણ કરીશ, ન બીજાએ દ્વારા ધારણ કરાવીશ, ન ધારણ કરનારને ભલો જાણીશ (૫) (૧૨)

(६) रात्रिभोजनविरमण

सान्वयार्थः-भंते ! = हे भगवन् ! अहावरे=इसके अनन्तर छट्ठे = छठे वए = व्रतमें राइभोयणाओ = रात्रिभोजनसे वेरमणं = विरमण होता है, (अतः मैं) भंते ! = हे भगवन् सव्वं = सब प्रकारके राइभोयणं = रात्रिभोजनको पच्चक्खामि = त्यागता हूँ, से = अब से लेकर मैं-असणं वा = लड्डू पूरी घी सत्तू आदि अशन, पाणं वा = दूध शर्बत आदि पान-पीने योग्य, खाइमं वा = दाख खजूर आदि खाद्य, साइमं वा लौंग इलायची आदि स्वाद्य, नेव = न सयं = स्वयं राइं = रात्रिमें भुंजिज्जा खाऊंगा, नेवन्नेहिं न दूसरों को राइं = रात्रि में भुंजाविज्जा = खिलाऊंगा, राइं = भुंजं तेवि अन्ने = रात्रिमें भोजन करनेवाले दूसरोंको भी न समणुजाणिज्जा = भला नहीं जानुंगा, जावज्जीवाए = जीवनपर्यन्त (इसको) तिविहं = कृत कारित अनुमोदनारूप तीन करण से (तथा) तिविहेणं = तीन प्रकारके मणेणं = मनसे वायाए = वचन से काएणं = कायसे न करेमि = न करूंगा न कारवेमि = न कराऊँगा, करंतंपि = करते हुए भी अन्नं = दूसरें को न समणुजाणामि = भला नहीं समझूंगा । भंते ! = हे भगवन् तस्स = उस दण्डसे पडिक्कमामि = पृथक् होता हूँ, निंदामि = आत्मसाक्षी से निन्दाकरता हूं, गरिहामि = गुरु साक्षी से गर्हा करता हूं अप्पाणं = दण्ड सेवन करनेवाले आत्मा को वोसिरामि = त्यागता हूँ, भंते ! = हे भगवन् ! छट्ठे-छठे वए = व्रतमें उवट्ठिओमि = उपस्थित होता हूँ, इसलिये मुझे सव्वाओ = सब प्रकारके राइभोयणाओ = रात्रिभोजनसे वेरमणं = विरमण-त्याग है ॥१३॥ (६)

(६) रात्रिभोजनविरमणव्रतम्

टीका—हे भगवन् ! अथापरे षष्ठे व्रते रात्रिभोजनात् = रात्रौ = निशि भोजनं रात्रिभोजनं तस्माद् विरमणम् । रात्रिभोजनेन हि सकलमहाव्रतेषु दोषो जन्यते, तथाहि-

---

श्रीजितनाथ भगवान्से लेकर श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्र पर्यन्त बाईस तीर्थंकरोंके शिष्य ऋजु (सरल स्वभावके) और प्राज्ञ (समझानेसे समझनेवाले) होते हैं । उन शिष्योंकी अपेक्षासे रात्रिभोजन उत्तरगुण है । किन्तु ऋषभदेवके शिष्य ऋजु-जड़ तथा वर्द्धमान-स्वामीके शिष्य वक्र और जड़ होते हैं, अत एव अनर्थको रोकनेके लिए और स्पष्ट बोध करानेके लिए पंच महाव्रतोंके बाद मूल-गुणोंमें गिनानेके लिए छट्ठे रात्रिभोजन विरमण व्रतको कहते हैं—'अहावरे छट्ठे' इत्यादि ।

અજિતનાથ ભગવાન્‌થી લઇને પાર્શ્વનાથ જિનેન્દ્ર સુધીના બાવીસ તીર્થંકરોના શિષ્યો ઋજુ (સરલ સ્વભાવવાળા) અને પ્રાજ્ઞ (સમજાવવાથી સમજનારા) હતા, તે શિષ્યોની અપેક્ષાએ રાત્રિભોજન ઉત્તરગુણ છે, પરંતુ ઋષભદેવના શિષ્યો ઋજુજડ તથા વર્ધમાનસ્વામીના શિષ્યો વક્ર અને જડ હતા તેથી અનર્થને રોકવાને માટે અને સ્પષ્ટ બોધ કરાવવાને માટે પાંચ મહાવ્રતોની પછી મૂલ-ગુણોમાં ગણાવવાને માટે છટ્ઠું રાત્રિભોજનવિરમણ વ્રત કહે છે—અહાવરે છટ્ઠે ઇત્યાદિ.

रात्रौ दिनकरकिरणाभावान्नानाविधसूक्ष्मतनुधारिजन्तुजातसमुत्पातावपातसञ्चारबाहुल्यात् हिंसाऽवश्यम्भाविनी. दीक्षाग्रहणसमये प्रतिज्ञा कृता यदद्यप्रभृति न कस्यापि प्राणिनः प्राणान् पीडयिष्यामीति, रात्रिभोजनेन तु प्राणिवधस्याऽ-निवार्यत्वात्कृतप्रतिज्ञाभङ्गो भवितुमर्हतीति मृषवादः, यद्वा तीर्थकरैर्लोकालोकाऽव[1]-लोकिकेवलालोकेनै[2]-तत्संयमविराधकमालोच्याऽऽदित्यालोके आलोकितान्नपाना-द्यदनमप्राणातिपातायोक्तम् । अपिच रात्रिभोजनव्यवस्थापने रात्रौ भुक्त्वाऽऽ-त्मनः साधुत्वकथने च मृषावादः । रात्राभ्यवहरणे हन्यमानप्राणिनिदेशमन्तरेण तत्प्राणापहरणाद्रजन्यधिकरणकभोजननिषेधलक्षणजिनाज्ञा-

(६) रात्रिभोजनविरमण ।

हे भगवन् ! पांच महाव्रतोके पश्चात् छट्ठे व्रतमें रात्रिभोजनसे विरमण किया जाता है। रात्रिभोजनसे समस्त महाव्रतोंमें दोष लगता है । रात्रिके समय सूर्यकी किरणोके अभावसे सूक्ष्म--शरीरवाले भाँति-भाँतिके जन्तु इधर-उधर उड़ते है, नवीन उत्पन्न होते है, नीचे ऊपर आते-जाते हैं, इसलिए हिंसा अवश्य ही होती है । दीक्षा लेते समय ऐसी प्रतिज्ञा की थी कि-'आजसे किसी प्राणीके प्राणोंको पीड़ा नहीं पहुँचाऊँगा' जब रात्रिभोजन किया तो हिंसा अवश्य हुई, इसलिए मृषावादका भी दोष लगा । अथवा लोक और अलोकको अवलोकन करनेवाले अलौकिक केवल-आलोकसे अवलोकन करके केवली भगवान्ने कहा है कि-सूर्यके आलोकमें अवलोकन किया हुआ अशन आदिक सेवन करनेसे ही हिंसाका परिहार हो सकता है । रात्रिभोजनका कर्त्तव्यरूपसे निरूपण करना और रात्रिभोजन करके अपनेको साधु कहना मृषावाद है ।

रात्रिभोजनसे विराधित होनेवाले प्राणियोकी आज्ञाके विना ही उनके प्राणोका अपहरण करनेसे, तथा रात्रिभोजन न करनेकी जिन भगवानकी आज्ञाका लोप करनेसे, अदत्तादानका दोष

(६) રાત્રિભોજનવિરમણ

હે ભગવન્ ! પાંચ મહાવ્રતોની પછી છઠ્ઠા વ્રતમાં રાત્રિભોજનથી વિરમણ કરવામાં આવે છે. રાત્રિભોજનથી સર્વ મહાવ્રતોમાં દોષ લાગે છે. રાત્રિને સમયે સૂર્યના કિરણોના અભાવથી સૂક્ષ્મ-શરીરવાળા ભાત-ભાતના જન્તુઓ અહીં-તહીં ઊડે છે, નવીન ઉત્પન્ન થાય છે, નીચે-ઉપર આવ-જા કરે છે, તેથી હિંસા જરૂર થાય છે

દીક્ષા લેતી વખતે એવી પ્રતિજ્ઞા કરી હતી કે 'આજથી કોઈ પ્રાણીના પ્રાણોને પીડા નહીં ઉપજાવું' જો રાત્રિભોજન કર્યું તો હિંસા અવશ્ય થઇ, તેથી મૃષાવાદનો દોષ લાગ્યો. અથવા લોક અને અલોકનું અવલોકન કરનારા અલૌકિક કેવળ જ્ઞાનથી અવલોકન કરીને કેવલી ભગવાને કહ્યુ છે કે સૂર્યના પ્રકાશમા અવલોકન કરેલુ અશન આદિ સેવવાથી જ હિંસાનો પરિહાર થઇ શકે છે રાત્રિભોજનનુ કર્તવ્યરૂપે નિરૂપણ કરવુ અને રાત્રિભોજન કરીને પોતાને સાધુ કહેવડાવવો એ મૃષાવાદ છે

રાત્રિભોજનથી વિરાધિત થનારા પ્રાણીઓની આજ્ઞા વિના જ એમના પ્રાણનુ અપ-

१ केवलालोकस्य करणस्य कर्तृत्वविवक्षया णिनिः । २ एतत्=रात्रिभोजनम् ।

भङ्गाच्च स्तेयम् । रात्रि-भोजनशीलस्यावश्यमेव भिक्षार्थं रात्रावितस्ततः परिभ्रमतः स्त्र्यादिसंसर्गादब्रह्म-दोषप्रसङ्गः । रात्रिभोजने संग्रहोऽनिवार्यस्तेन च मूर्च्छाऽवश्यम्भाविनी, सैव परिग्रहः 'मुच्छा परिग्गहो वुत्तो' इति भगवता स्वयमेवाऽभिधानादतो निशाशनमशेषदोषराशिभूतम्, न तत्त्यागादृते व्रतपरिपोषस्तस्मात्सर्वं भगवन् ! रात्रिभोजनं प्रत्याख्यामि, तदेव विशदयति-'से'इति, अथ=अनन्तरम्-अद्यारभ्य अशनम्=अश्यते=भुज्यते क्षुधोपशमनार्थं यत् तत्=ओदन-सूप-सक्तु-मुद्गमोदक-घृतपूर-लपन-श्रीप्रभृतिकम्, पानं=पीयते यत्तत्पानं=दुग्धादिकं तिलतण्डुलादिधावनोदकं च । खाद्यं=खादितुं योग्यं खाद्यम्=अचित्तद्राक्षाखर्जूरादि । स्वाद्यं=स्वादितु योग्यं स्वाद्य=लवङ्गचूर्णपूगीफलादि । रात्रिभोजनमपि द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव भेदाच्चतुर्द्धा, तत्र द्रव्यतोऽशनपानादिकम्, क्षेत्रतोऽर्द्धतृतीयद्वीपसमुद्रलक्षितं, तद्बहिः प्रसिद्धदिनरात्र्यभावात्, कालतो रात्रौ, भावतो निशाशनाभिलाषः । रात्रिभोजनस्य स्वरूपतश्चतुर्भङ्गी यथा-(१) रात्रौ गृहीत्वा रात्रौ भुङ्क्ते,

---

लगता है । रात्रिमें भोजन करनेवाला भिक्षाके लिए रात्रीमें भ्रमण भी करेगा, भ्रमण करते समय स्त्री आदिका ससर्ग होनेसे अब्रह्मचर्यका भी दोष लगेगा ।

रात्रिभोजन करनेसे अन्न आदि सामानका भी सग्रह करना पड़ेगा इससे संनिधि–दोष लगेगा । संग्रह करनेसे मूर्च्छा भी होगी, मूर्च्छाको भगवानने स्वय परिग्रह कहा है, इसलिए रात्रिभोजन सब दोषोका कोष है, उसका त्याग किये विना व्रतोका पालन नहीं हो सकता । इसलिए हे भगवन् ! मै समस्त–रात्रिभोजनका प्रत्याख्यान करता हूँ । अर्थात् भात, दाल, सत्तू, मूंगके लड्डू, घेवर, लप्सी आदि अशन, दूध, तिल और चावलका धोवन आदि पान, प्रासुक दाख, खजूर आदि खाद्य, लोंगका चूर्ण, सुपारी आदि स्वाद्य, इन चार प्रकारके आहारोमेंसे किसी एक प्रकारका भी आहार रात्रिमें नहीं करूँगा ।

रात्रिभोजन भी द्रव्य क्षेत्र काल भावसे चार प्रकारका है । अशन पान आदि द्रव्यसे रात्रि-

---

હરણુ કરવાથી તથા રાત્રિભોજન ન કરવાની જિનભગવાનની આજ્ઞાનો લોપ કરવાથી અદત્તાદાનનો દોષ લાગે છે રાત્રે ભોજન કરનારાઓ ભિક્ષાને માટે રાત્રે ભ્રમણ પણ કરશે. ભ્રમણ કરતી વખતે સ્ત્રીઆદિનો સસર્ગ થવાથી અબ્રહ્મચર્યનો પણ દોષ લાગશે.

રાત્રિભોજન કરવાથી અન્ન આદિ સામાનનો પણ સંગ્રહ કરવો પડશે. તેથી સનિધિ દોષ લાગશે સંગ્રહ કરવાથી મૂર્ચ્છા પણ ઉત્પન્ન થશે મૂર્ચ્છાને ભગવાને પોતે પરિગ્રહરૂપ કહી છે, તેથી રાત્રિભોજન સર્વ દોષોનો કોષ છે

એનો ત્યાગ કર્યા વિના વ્રતોનુ પાલન થઇ શકતુ નથી તેથી હે ભગવન્ ! હું સર્વ રાત્રિભોજનનાં પ્રત્યાખ્યાન કરૂ છું અર્થાત્–ભાત, દાળ, મગજ મગના લાડુ, ઘેબર, લાપસી આદિ અશન દૂધ તલ અને ચોખાનું ધોવણુ આદિ પાન, પ્રાસુક દ્રાક્ષ ખજુર આદિ ખાદ્ય, લવંગનું ચૂર્ણ, સોપારી આદિ સ્વાદ્ય એ ચારે પ્રકારના આહારમાંથી કોઈ પણ એક પ્રકારનો આહાર રાત્રે હુ કરીશ નહીં.

રાત્રિભોજન પણ દ્રવ્ય=ક્ષેત્ર–કાળ–ભાવથી ચાર પ્રકારનું છે. અશન–પાન આદિ દ્રવ્યથી

(२) रात्रौ गृहीत्वा दिवा भुङ्क्ते, (३) दिवा गृहीत्वा रात्रौ भुङ्क्ते, (४) दिवा गृहीत्वा रात्रिव्यवधानेन दिवा भुङ्क्ते। उक्तम् भगवता निशीथसूत्रस्यैकादशोद्देशे-

"जे भिक्खू दिया आसणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिगाहित्ता दिया भुंजइ भुंजंतं वा साइज्जइ ॥सू. ७३॥ जे भिक्खू दिया असणं वा ४ पडिगाहित्ता रत्तिं भुंजइ भुंजंतं वा साइज्जइ ॥सू. ७४॥ जे भिक्खू रत्तिं आसणं वा ४ पडिगाहित्ता दिया भुंजइ भुंजंतं वा साइज्जइ ॥सू. ७५॥ जे भिक्खू रत्तिं असणं वा ४ पडिगाहित्ता रत्तिं भुं-

---

भोजन करना क्षेत्र-रात्रिभोजन है, क्योंकि अढाई द्वीपके बाहर दिन रात्रिका व्यवहार नहीं है। रात्रिमें भोजन करना कालकी अपेक्षा रात्रिभोजन है। रात्रिमें भोजन करनेकी इच्छा करना भाव-रात्रिभोजन है। रात्रिभोजनकी चतुर्भंगी इस प्रकार है—

(१) रात्रिमें ग्रहण करके रात्रिमें ही भोजन करना।
(२) रात्रिमें ग्रहण करके दिनमें भोजन करना।
(३) दिनमें ग्रहण करके रात्रिमें भोजन करना।
(४) दिनमें ग्रहण करके (रात्रिभर रखकर दूसरे) दिनमें भोजन करना।

भगवान्ने निशीथ सूत्रके ग्यारहवे उद्देशमें कहा है—

"जो भिक्षु दिनमें अशन पान खाद्य स्वाद्य ग्रहण करके (दूसरे) दिन भोगे, दूसरेको भोगवावे और अन्य भोगनेवालेको भला जाने ॥७३॥

जो साधु दिनमें अशनादिक लेकर रात्रिमें स्वयं भोगे दूसरेको भोगवावे और अन्य भोगनेवालेको भला जाने ॥सू. ७४॥

जो साधु रात्रिमें अशनादिक लेकर दिनमें भोगे भोगवावे या भोगनेवाले अन्यको भला जाने ॥सू ७५॥

રાત્રિભોજન છે. અઢી-દ્વીપમાં રાત્રિભોજન કરવું એ ક્ષેત્ર-રાત્રિભોજન છે, કેમકે-અઢી દ્વીપની બહાર દિવસ-રાત્રિનો વ્યવહાર નથી. રાત્રે ભોજન કરવું એ કાળની અપેક્ષાએ રાત્રિભોજન છે. રાત્રે ભોજન કરવાની ઇચ્છા કરવી એ ભાવરાત્રિભોજન છે.

રાત્રિભોજનની ચતુર્ભંગી આ પ્રમાણે છેઃ—

(૧) રાત્રે ગ્રહણ કરીને રાત્રે જ ભોજન કરવું.
(૨) રાત્રે ગ્રહણ કરીને દિવસે ભોજન કરવું
(૩) દિવસે ગ્રહણ કરીને રાત્રે ભોજન કરવું.
(૪) દિવસે ગ્રહણ કરીને (રાતભર રાખીને બીજે) દિવસે ભોજન કરવું.

ભગવાને નિશીથ-સૂત્રના અગીઆરમા ઉદ્દેશમાં કહ્યું છે—

"જે ભિક્ષુ દિવસમાં અશન-પાન-ખાદ્ય-સ્વાદ્ય ગ્રહણ કરીને (બીજે) દિવસે ભોગવે, બીજાને ભોગવાવે, અન્ય ભોગવનારને ભલો જાણે (સૂ, ૭૩)

જે સાધુ દિવસે અશનાદિ લઈને રાત્રે પોતે ભોગવે, બીજાને ભોગવાવે અને અન્ય ભોગવનારને ભલો જાણે (સૂ ૭૪)

જે સાધુ રાત્રે અશનાદિ લઈને દિવસે ભોગવે, ભોગવાવે યા ભોગવનારને ભલો જાણે (સૂ ૭૫)

जइ भुंजंतं वा साइज्जइ ××××आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं ॥सू. ७६॥" इति ।

तच्च सर्वमशनादिकं रात्रौ नैव स्वयं भुञ्जे, इत्यादि सर्वं व्याख्यातपूर्वम् ॥१३॥

सम्प्रति गृहीतमहाव्रतः शिष्य उपसंहरन्नाह-'इच्चेयाइं' इत्यादि ।

मूलम्—इच्चेयाइं पंच महव्वयाइं राइभोयणवेरमणछट्ठाइं अत्तहियट्ठयाए उवसंपज्जित्ताणं विहरामि ॥१४॥

छाया—इत्येतानि पञ्च महाव्रतानि रात्रिभोजनविरमणषष्ठानि आत्महितार्थायोपसम्पद्य विहरामि ॥१४॥

उपसंहारः

सन्वयार्थः—इच्चेयाइं=ये पहले कहे हुए राइभोयणवेरमणछट्ठाइं=छठे रात्रिभोजनविरमण व्रतके साथ पंच महव्वयाइं=पांच महाव्रतोंको अत्तहियट्ठयाए=आत्मकल्याणके लिये उवसंपज्जित्ताणं=स्वीकार करके विहरामि=संयममें विचरता हूँ ॥१४॥

टीका—इत्येतानि=समनन्तरोदीरितलक्षणानि रात्रिभोजनविरमणषष्ठानि= रात्रौ भोजनं रात्रिभोजनं, रात्रिभोजनाद्विरमणं रात्रिभोजनविरमणं, षण्णां पूरणं षष्ठं=षट्संख्याप्रपूरकं, रात्रिभोजनविरमणं षष्ठं येषु तानि पञ्च महाव्रतानि आत्महितार्थाय=आत्मने हितम्=इष्टमिति आत्महितम्, आत्मनो हितं= मङ्गल मस्मादिति वाऽऽत्महितो मोक्षः, स एवार्थः=प्रयोजनम् आत्महितार्थस्तस्मै तथोक्ताय उपसम्पद्य=सामस्त्येन स्वीकृत्य विहरामि=संयमविषये विचरामि ॥१४॥

जो साधु रात्रिमें अशनादिक लेकरके रात्रिमें भोगे दूसरेको भोगवावे और अन्य भोगनेवालेको भला जाने उसे चातुर्मासिक प्रायश्चित्त लगता है । ॥सू. ७६॥

इन सब अशन आदि चार प्रकारके आहारको रात्रिमें नहीं भोगूँगा, इत्यादिका व्याख्यान पहले कर चुके हैं ॥१३॥ (६)

अब महाव्रतोको स्वीकार करनेवाला शिष्य उपसंहार करता हुआ कहता है—'इच्चेयाइं' इत्यादि ।

हे भगवन् ! मैं पांच महाव्रतोको और छठे रात्रिभोजनविरमण व्रतको आत्माके हित—मोक्ष—के लिए स्वीकार करके संयममार्गमें विचरता हूँ ॥१४॥

જે સાધુ રાત્રે અશનાદિ લઈને રાત્રે ભોગવે, બીજાને ભોગવાવે અન્ય ભોગવનારને ભલો જાણે. (સૂ. ૭૬) તેને ચાતુર્માસિક પ્રાયશ્ચિત્ત લાગે છે"

એ સર્વ અશનાદિ ચાર પ્રકારના આહારને રાત્રે નહિ ભોગવું. ઇત્યાદિનુ વ્યાખ્યાન પહેલાં કરવામાં આવેલું છે. (૧૩) (૬)

હવે મહાવ્રતોનો સ્વીકાર કરવાવાળો શિષ્ય ઉપસંહાર કરતો છતો કહે છે-इच्चेयाइं ઇત્યાદિ.

હે ભગવન્ ! હું પાંચ મહાવ્રતોને અને છઠા રાત્રિભોજનવિરમણ વ્રતને આત્માને હિત-સ્વરૂપ મોક્ષને માટે સ્વીકાર કરીને સંયમ-માર્ગમાં વિચરૂં છું. (૧૪)

यतनापुरस्सरमेव व्रतग्रहणं सफलं भवतीत्यतस्तद्यतनास्वरूपं प्रदर्श्यते-'से भिक्खू वा" इत्यादि ।

मूलम्--से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजयविरयपडिहयपच्चक्खाय पावकम्मे दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से पुढविं वा भित्तिं वा सिलं वा लेलुं वा ससरक्खं वा कायं ससरक्खं वा वत्थं हत्थेण वा पाएण वा कट्ठेण वा किलिंचेण वा अंगुलियाए वा सिलागाए वा सिलागहत्थेण वा न आलिहिज्जा न विलिहिज्जा न घट्टिज्जा न भिंदिज्जा, अन्नं न आलिहाविज्जा, न विलिहाविज्जा, न घट्टाविज्जा, न भिंदाविज्जा, अन्नं आलिहंतं वा, विलिहंतं वा, घट्टंतं वा भिंदंतं वा न समणुजाणिज्जा. जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि ! तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥ १ ॥१५॥

छाया--सभिक्षुर्वा भिक्षुकी वा संयत-विरत-प्रतिहत-प्रत्याख्यातपापकर्मा दिवा वा रात्रौ वा एकको वा परिपद्गतो वा सुप्तो वा जाग्रद्वा, स पृथिवीं वा भित्तिं वा शिलां वा लेष्टुं वा सरजस्कं वा कायं सरजस्कं वा वस्त्रं हस्तेन वा पादेन वा काष्ठेन वा किलिञ्चेन वा अङ्गुल्या वा शलाकया वा शलाकाहस्तेन वा नाऽऽलिखेत् न विलिखेत् न घट्टयेत् न भिन्द्यात्, अन्यं नाऽऽलेखयेन्न विलेखयेन्न घट्टयेन्न भेदयेद्, अन्यमालिखन्तं वा विलिखन्तं वा घट्टयन्तं वा भिन्दन्तं वा न समनुजानीयात्, यावज्जीवया त्रिविधं त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामि। तस्माद् भदन्त ! प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हे आत्मानं व्युत्सृजामि ॥१॥ १५॥

(१) पृथ्वीकाययतना.

सान्वयार्थः-संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे=वर्त्तमानकालीन सावद्य व्यापारोंसे रहित, भूत भविष्यत्कालीन सावद्यव्यापारोंसे रहित, वर्त्तमान कालमें भी स्थिति और अनुभागको न्यूनता करकेतथा पहले किये हुए अतिचारोंको निन्दा करके सावद्य व्यापारके त्यागी, से=वह पूर्वोक्त भिक्खू वा= साधु भिक्खुणी वा=अथवा साध्वी दिया वा=दिनमें राओ वा= अथवा रात्रिमें एगओ वा= अकेला परिसागओ वा=अथवा संघमें स्थित सुत्ते वा=सोया हुआ जागरमाणे वा=अथवा जागता हुआ रहे, वहां से=वह पुढविं वा=पृथ्वीको भित्तिं वा=भीत-दीवार-को सिलं वा=शिलाको लेलुं वा= ढेलेको ससर-

क्खं=सचित्तरजसहित कायं वा=शरीरको ससरक्ख=सचि ।सहित वत्थं वा वस्त्र को हत्थेण वा=हाथसे पाएण वा परसे कट्ठेण वा =काष्ठसे किलिंचेण वा=वांस आदि की खपच्चसे अंगुलियाए वा=अंगुलीसे सिलागाए वा=छडसे सिलागहत्थेण वा= वहुतसी छड़ोंसे न आलिहिज्जा=जराभी संघर्षण न करे न विलिहिज्जा=बारम्बार संघर्षण न करे, न घट्टिज्जा=न घट्टन करे-न चलावे न भिंदिज्जा=न भेदे,अन्नं=दूसरेसे न आलिहाविज्जा=जराभी संघर्षण न करावे, न विलिहाविज्जा=न बारम्बार संघर्षण करावे, न घट्टाविज्जा=न घट्टन करावे, न भिंदाविज्जा=न भेदन करावे, आलिहंतं वा=संघर्षण करनेवाले विलिहतं वा=बार-बार संघर्षण करनेवाले घट्टंतं वा=घट्टन करनेवाले भिंदंतं वा=भेदन करनेवाले अन्नं=दूसरेको न समणुजाणिज्जा=भला न समझे। इसलिये मैं जावज्जीवाए=जीवनपर्यन्त (इसको) तिविहं=कृतकारित अनु-मोदनारूप तीन करणसे (तथा) तिविहेणं=तीन प्रकारके मणेणं=मनसे वायाए= वचनसे काएणं=कायसे न करेमि=न करूँगा, न कारवेमि=न कराऊँगा, करंतंपि =करते हुए भी अन्नं=दूसरेको न समणुजाणामि=भला नहीं समझूँगा। भंते! =हे भगवन्! तस्स=उस दण्डसे पडिक्कमामि=पृथक् होता हूँ, निंदामि=आत्म-साक्षीसे निन्दा करता हूँ, गरिहामि गुरुसाक्षीसे गर्हा करता हूँ, अप्पाणं=दण्ड सेवन करनेवालेआत्माको वोसिरामि=त्यागता हूँ ॥१॥ १५॥

टीका–से=सः=भिक्षावृत्तिकत्वेन प्रसिद्धः, भिक्षुः=भिक्षितुं=याचितुं शीलं धर्मो वा यस्य स भिक्षुः। ('भिक्ष याञ्चायामलाभे लाभे च'-इत्यस्माद्धातोः 'आक्वेस्तच्छील-तद्धर्म-तत्साधुकारिषु' इत्यधिकारे 'सनाशंसभिक्ष उः' (३।२। १६२) इत्युप्रत्यये भिक्षुपदं सिध्यति)। अत्र 'उ' प्रत्ययेन ताच्छील्यद्योतनाद् भिक्षणशीलत्वं भिक्षुत्वमिति पर्यवस्यति।

व्रतोको यतनापूर्वक स्वीकार किया जाय तभी वे सफल होते है, इसलिए यतनाका कथन करते है–'से भिक्खू०' इत्यादि।

भिक्षावृत्तिसे प्रसिद्ध भिक्षु कहलाते है, अर्थात् याचना करके आहारादि लेनेवाले लेको भिक्षु कहते है।

सस्कृत व्याकरणके अनुसार 'भिक्षु' पदमें 'उ' प्रत्यय लगा हुआ है। उससे यह प्रगट होता

વ્રતોનો યતનાપૂર્વક સ્વીકાર કરવામા આવે ત્યારે તે સફળ થાય છે, તેથી યતનાનું કથન કરે છે–સે ભિક્ખૂ૦ ઇત્યાદિ

ભિક્ષાવૃત્તિથી પ્રસિદ્ધ હોય તે ભિક્ષુ કહેવાય છે અર્થાત્ યાચના કરીને આહારાદિ લેવાવાળા ને ભિક્ષુ કહે છે,

સંસ્કૃત વ્યાકરણને અનુસરીને ભિક્ષુ શબ્દમા ઉ પ્રત્યય લાગેલો છે. તેથી એમ પ્રકટ થાય છે કે ભિક્ષુ એને કહેવો જોઈએ કે જે કોઈ વસ્તુને ભિક્ષા વિના લે નહી, અર્થાત્ ભિક્ષણ-શીલ હોય તે ભિક્ષુ કહેવાય છે.

ननु काषायाम्बरधारिणामपि भिक्षोपजीवित्वेन तत्रोक्तभिक्षुलक्षणमतिव्याप्तमिति चेन्न

भिक्षावृत्तिकत्वे सति भिक्षेतरवृत्तिरहितत्वं हि भिक्षुत्वम्, तथा च स्वामिनिदेशमन्तरेणापि जलाशयादितोऽपि स्वहस्तेनापि जलादिग्रहणस्य तद्गीबीजविकान्तमणस्वेन तथा कदाचिद् भिक्षाया अलाभे पचन-पाचनादिक्रियया, कन्दमूलफलादिना च जीवननिर्वाहात्तेषामुक्तलक्षणभिक्षुत्वाभावात्।

न च 'भिक्षवो यदा भिक्षमाणास्तदा तत्रास्तु भिक्षुत्वं परन्त्वभिक्षमाणत्वावस्थायां कथं तेषु भिक्षुशब्दः प्रवर्त्तेत तदानीं भिक्षणव्यापाराभावात्?' इति वयम्। उभयत्रापम्य-

---

है कि- भिक्षु उसे कहना चाहिए जो किसी वस्तुको विना भिक्षाके न ले, अर्थात् भिक्षणशील-भिक्षु कहलाते है ।

प्रश्न–गेरुआ या अन्य किसी प्रकारके रंगसे रंगे हुए कपड़े पहननेवाले संन्यासी आदि भी भिक्षा मांग कर अपने जीवनका निर्वाह करते है, इसलिए यह भिक्षुका लक्षण उनमें भी चला जाता है, वे भी भिक्षु कहलावेगे ?

उत्तर–जो भिक्षासे ही अपना निर्वाह करते है और सिवाय भिक्षाके अन्य वृत्तिको कदापि स्वीकार नहीं करते वे ही भिक्षु कहलाते है, सन्यासी आदि स्वामीकी आज्ञाके विना भी जलाशय आदिसे भी जल आदि अपने हाथोंसे ले लेते हैं। जब भिक्षा नहीं मिलती तब पचन-पाचनादि करते कराते हैं, तथा कन्द-मूल-फल-आदिसे निर्वाह कर लेते है, इसलिए वे भिक्षु नहीं कहला सकते ।

प्रश्न–अच्छा, जो भिक्षासे ही अपना निर्वाह करे उसे भिक्षु कहते है तो साधु जब भिक्षाकी गवेषणा करेगे तब ही भिक्षु कहलावेगे, जिस समय स्वाध्याय आदि अन्य क्रिया करते होंगे उस समय भिक्षु कैसे कहलावेगे ?

પ્રશ્ન—ગેરૂથી યા અન્ય કોઈ પ્રકારના રંગથી રંગેલાં કપડાં પહેરનારા સંન્યાસીઆદિ પણ ભિક્ષા માગીને પોતાના જીવનનો નિર્વાહ કરે છે. તેથી એ ભિક્ષુનું લક્ષણ એને પણ લાગુ પડે છે; તેઓ પણ ભિક્ષુ કહેવાશે ?

ઉત્તર–જેઓ ભિક્ષાથી જ પોતાનો નિર્વાહ કરે છે અને ભિક્ષા સિવાય અન્યવૃત્તિને કદાપિ સ્વીકારતા નથી તેઓ જ ભિક્ષુ કહેવાય છે સંન્યાસી આદિ સ્વામીની આજ્ઞા વિના પણ જળાશય આદિથી પણ જળ આદિ પોતાના હાથે લઇ લે છે, જ્યારે ભિક્ષા નથી મળતી ત્યારે રાંધવા-રંધાવવાની ક્રિયા કરે છે, તથા કંદ મૂલ ફળ આદિથી નિર્વાહ કરી લે છે; તેથી તેઓ ભિક્ષુ કહેવાઇ શકતા નથી

પ્રશ્ન–ઠીક, જેઓ ભિક્ષાથી જ પોતાનો નિર્વાહ કરે તેમને ભિક્ષુ કહે છે તો સાધુ જ્યારે ભિક્ષાની ગવેષણા કરશે ત્યારે જ ભિક્ષુ કહેવાશે, જે સમયે સ્વાધ્યાય આદિ અન્ય ક્રિયા કરતા હશે તે સમયે ભિક્ષુ કેવી રીતે કહેવાશે !

वस्थायां भिक्षुशब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्तसद्भावेन भिक्षुशब्दप्रवृत्तिसंभवात्, तथाहि शब्दस्य द्वे निमित्ते व्युत्पत्तिनिमित्तं प्रवृत्तिनिमित्तं चेति, तत्र व्युत्पत्तिलभ्यार्थप्रतीतौ प्रकारीभूतो धर्मो व्युत्पत्तिनिमित्तम्, यथा पङ्कजशब्दस्य पङ्कजनिकर्तृत्वम् । सङ्केतग्रहे प्रकारीभूतो धर्मः प्रवृत्तिनिमित्तम्, यथा पद्मत्वजातिः ।

न च शब्दानां व्युत्पत्तिनिमित्तमेव प्रवृत्तिनिमित्तमिति वाच्यम्, पाचकादिशब्दे तथात्वेऽपि पङ्कजादिशब्दे तद्व्यभिचारात् । तथाहि–पङ्कजपदं 'पङ्काज्जायते' इति व्युत्पत्त्या पङ्कजनिकर्तृत्वावच्छिन्ने शक्ततया पद्मरूपार्थबोधकं सदपि शैवालादिष्वतिप्रसङ्गवारणाय

उत्तर–भिक्षाकी गवेषणा करते समय भी साधुको भिक्षु कह सकते है और न करते समय भी कह सकते है । दोनो अवस्थाओंमें भिक्षु शब्दकी प्रवृत्तिका कारण मौजूद है ।

शब्दोकी प्रवृत्ति दो प्रकार से होती है । जैसे कमलका वाचक एक पङ्कज शब्द है दूसरा पद्म शब्द है । पंकज शब्द का अर्थ है कीचडसे उत्पन्न होनेवाला, कमल कीचडसे उत्पन्न होता है इसलिए पंकजत्व व्युत्पत्तिनिमित्त है । अर्थात् पङ्कज शब्दकी व्युत्पत्ति करनेसे जो अर्थ निकलता है वही अर्थ उसके वाच्यमें (अर्थमें) ठीक–ठीक घट जाता है, इसे व्युत्पत्तिनिमित्त कहते है ।

दूसरा प्रवृत्तिनिमित्त है । शब्दके संकेतसे बोध्य अर्थमें विशेषणभूत धर्मको प्रवृत्तिनिमित्त कहते है, जैसे पद्मत्व या कमलत्व (कमलपन) जाति ।

यदि कोई कहे कि–'जो व्युत्पत्तिनिमित्त है वही प्रवृत्तिनिमित्त है तो ठीक नहीं है, क्योकि यद्यपि 'पाचक' आदि शब्दोमें जो व्युत्पत्तिनिमित्त है वही प्रवृत्तिनिमित्त है तथापि पङ्कज आदि शब्दोमें यह कथन नहीं घटता, 'पंक' (कीचड) से उत्पन्न होनेवाला पकज है" इस व्युत्पत्ति से पंकज शब्द कमलका बोध तो कराता है परन्तु साथही साथ शैवाल तथा इस प्रकारसे पैदा

ઉત્તર–ભિક્ષાની ગવેષણા કરતી વખતે સાધુને ભિક્ષુ કહી શકાય છે અને ન કરતી વખતે પણ કહી શકાય છે બેઉ અવસ્થામાં ભિક્ષુ શબ્દની પ્રવૃત્તિનુ કારણ મોજુદ છે.

શબ્દોની પ્રવૃત્તિ બે પ્રકારે થાય છે જેમકે–કમળનો વાચક એક પંકજ શબ્દ છે, બીજો પદ્મ શબ્દ છે પંકજ શબ્દનો અર્થ કાદવમા ઉત્પન્ન થએલ એવો થાય છે કમલ કાદવમાં ઉત્પન્ન થાય છે, તેથી પંકજત્વ વ્યુત્પત્તિનિમિત્ત છે અર્થાત્ પંકજ–શબ્દની વ્યુત્પત્તિ કરવાથી જે અર્થ નીકળે છે તેજ અર્થ તેના વાચ્યમાં (અર્થમા) બરાબર બંધ બેસે છે, તેથી તેને વ્યુત્પત્તિનિમિત્ત કહે છે

બીજો પ્રવૃત્તિનિમિત્ત છે શબ્દના સંકેતથી બોધ્ય અર્થમાં વિશેષણભૂત ધર્મને પ્રવૃત્તિનિમિત્ત કહે છે જેમકે–પદ્મત્વ યા કમલત્વ (કમળપણું) જાતિ.

જો કોઈ કહે કે–'જે વ્યુત્પત્તિનિમિત્ત છે તેજ પ્રવૃત્તિનિમિત્ત છે, તો તે બરાબર નથી. કારણ કે જો કે 'પાચક' આદિ શબ્દોમાં જે વ્યુત્પત્તિનિમિત્ત છે તેજ પ્રવૃત્તિનિમિત્ત છે, તથાપિ પંકજ આદિ શબ્દોમાં એ કથન બંધ બેસતું નથી, કારણ કે 'પંક (કાદવ) માંથી ઉત્પન્ન થવાવાળું પંકજ છે, –એ વ્યુત્પત્તિથી પંકજ શબ્દ કમળનો બોધ તો કરાવે છે, પરન્તુ સાથે

पद्म(जाति)रूपं प्रवृत्तिनिमित्तमादायैव पद्मं बोधयति न त्वितरथा ।

एवमत्रापि भिक्षुशब्दस्य भिक्षणं व्युत्पत्तिनिमित्तम्, भिक्षत इत्येवंशीलो भिक्षुरिति व्युत्पत्तिः। तथा चाऽभिक्षमाणत्वावस्थायां भिक्षुत्वाप्रसक्तावपि ऐहिकपारत्रिकाऽऽशंसाविरहेण समितिगुप्त्यादिधारित्वरूपप्रवृत्तिनिमित्तमादाय भिक्षुत्व-समित्यादिपालकत्वयोर्भिक्षुलक्षणैकार्थसमवायेन कथञ्चित्तादात्म्यलक्षणेन भिक्षमाणेऽभिक्षमाणे वा भिक्षौ भिक्षुशब्दप्रवृत्तेः, वर्त्तमानपर्यायमात्रग्रहणलक्षणऋजुसूत्रनयाभिप्रायाच्च भिक्षुत्वसिद्धिः ।

ननु पूर्वोक्तलक्षणं प्रवृत्तिनिमित्तकाषायाम्बरधारिप्रभृतिष्वपि विद्यते, तेऽपि मार्गं

होनेवाले गड्डुलके फूल आदिका अर्थ भी उससे निकलता है, क्योंकि वे भी कीचड़से पैदा होते है । यदि व्युत्पत्तिनिमित्तको ही शब्दकी प्रवृत्तिमें कारण माना जाय तो शैवाल आदिमें भी पङ्कज शब्दका प्रयोग हो जायगा, इस आपत्तिका निवारण करनेके लिए व्युत्पत्तिनिमित्तके सिवाय प्रवृत्तिनिमित्त कमलत्व धर्मकी भी आवश्यकता है, इससे शैवाल आदिका निराकरण हो जाता है, दोनो निमित्तोसे ठीक-ठीक अर्थका प्रतिपादन हो जाता है कि जो कीचडसे उत्पन्न हो और जिसमें कमलस्वरूप सामान्य (जाति) पाया जाय उसे पङ्कज कहते है ।

इसी प्रकार यहाँ 'भिक्षु' शब्दका व्युत्पत्तिनिमित्त भिक्षण (याचना) धर्म है, जिस समय साधु भिक्षण नहीं करते उस समय व्युत्पत्तिनिमित्त से भिक्षु नहीं कहला सकते, फिर भी 'समितिगुप्तिपालकत्व'—रूप प्रवृत्तिनिमित्त से भिक्षु शब्दकी प्रवृत्ति होती है क्योंकि भिक्षुत्व और समितिगुप्तिपालकत्व दोनो धर्म भिक्षुमें कथञ्चित् तादात्म्यसम्बन्धरूप एकार्थसमवायसे रहते है । इसलिए भिक्षा न करते समय भी 'समितिगुप्तिपालकत्व'—रूप प्रवृत्ति—निमित्तसे भिक्षु शब्द की प्रवृत्ति होती है ।

शङ्का—समिति—गुप्तिपालकता तो गेरुआ आदि वस्त्र पहननेवालोमें भी पाई जाती है । वे

શેવાળ તથા એ પ્રકારે પેદા થનારા ધીનેલાં શીંગોડા આદિનો અર્થ પણ તેમાથી નીકળે છે, કારણ કે તે પણ કીચડમાંથી પેદા થાય છે જો વ્યુત્પત્તિનિમિત્તને જ શબ્દની પ્રવૃત્તિમાં કારણ રૂપ માનવમાં આવે તો શેવાળ આદિમા પણ પંકજ શબ્દનો પ્રયોગ થઈ જશે એ આપત્તિનું નિવારણ કરવાને માટે વ્યુત્પત્તિનિમિત્ત ઉપરાત પ્રવૃત્તિનિમિત્ત કમળત્વ ધર્મની પણ આવશ્યકતા છે તેથી શેવાળ આદિનુ નિરાકરણ થઈ જાય છે બેઉ નિમિત્તથી બરાબર અર્થનું પ્રતિપાદન થઈ જાય છે કે જે કીચડમાંથી ઉત્પન્ન થાય અને જેમા કમલત્વરૂપ સામાન્ય (જાતિ) મળી આવે તેને પંકજ કહે છે.

એ રીતે અહીં 'ભિક્ષુ' શબ્દનો વ્યુત્પત્તિનિમિત્ત ભિક્ષણ (યાચના) ધર્મ છે જે સમયે સાધુ ભિક્ષણ કરતો નથી તે સમયે વ્યુત્પત્તિનિમિત્તથી ભિક્ષુ નથી કહેવાતો, તો પણ 'સમિતિ-ગુપ્તિ-પાલકત્વ' રૂપ પ્રવૃત્તિનિમિત્તથી ભિક્ષુ શબ્દની પ્રવૃત્તિ થાય છે, કારણ કે ભિક્ષુત્વ અને સમિતિગુપ્તિ-પાલકત્વ બેઉ ધર્મો ભિક્ષુમાં કોઈપણ રીતે તાદાત્મ્ય સંબંધરૂપ એકાર્થ-સમવાયથી રહે છે, તેથી ભિક્ષા ન કરતી સમયે પણ 'સમિતિગુપ્તિ પાલકત્વ' રૂપ પ્રવૃત્તિનિમિત્તથી ભિક્ષુ શબ્દની પ્રવૃત્તિ થાય છે

पश्यन्त एव गच्छन्ति, तेन च तेषां समित्यादिपालकत्व, मौनादिसमवलम्बनेन गुप्तिपालकत्व चास्ति, ततश्च समिति, गुप्तिपालकत्वरूपप्रवृत्तिनिमित्तस्य तेष्वपि सत्वे कुतो न तेषां भिक्षुशब्दव्यवहार्यत्वमिति चेत् ?

यत् इहलोकाद्याशंसाविरहिततया समित्यादिपालकत्वमेव भिक्षुशब्दप्रवृत्तिनिमित्तम्, तच्च तेषु न विद्यते तेषां तथाविधप्रवृत्तेः, ऐहिककण्टकादिनिवृत्त्यर्थत्वात्, यशःकीर्त्यादिसम्पादनार्थत्वाच्च, नातस्तेषां वस्तुतः समितिगुप्त्यादिपालकत्वं विद्यते । अन्यथा-'यावन्निगडबद्धोऽहं तावदेनं न हनिष्यामि, यावन्न समालपामि तावदहं मृषात्यागी, यावत्सनिद्रोऽहं तावदचौर्यव्रतो'-त्यादाभिमाना अपि केचिद् व्रतधारित्वेन व्यवह्रियेरन्, किन्तु तेषामान्तरिकेच्छायाः सततानुवन्धितया विद्यमानत्वान्न व्रतित्वमस्ति ।

भी मार्ग देखकर ही चलते है इसलिए वे समितिका पालन करते है । और कभी मौन रखते हे इसलिए गुप्तिका भी पालन करते है । जब उनमें समिति-गुप्तिपालकता पाई जाती है तो उन्हें भी भिक्षु क्यो नहीं कहना चाहिए ?

समाधान–इहलोक और परलोक सम्बन्धी आकांक्षा या स्वार्थरहित होकर जो समिति-गुप्तिका पालन करते है वे ही भिक्षु कहलाते है । उनमें ऐसा नहीं पाया जाता । वे हिंसासे बचने के लिए मार्ग देख कर गमन नहीं करते, किन्तु काँटे आदि लग जानेके भयसे मार्ग देखकर गमन करते है, और यश-कीर्त्ति सम्पादन करनेके लिए मौन रखते है, इसलिए वे वास्तवमें समिति–गुप्तिके पालक नहीं हो सकते । यदि उन्हे समितिगुप्तिका पालक माना जाय तो वह मनुष्य भी व्रती कहलायगा जो ऐसी प्रतिज्ञा करे कि "मै जब तक बेड़ीमें जकडा हुआ हू तबतक इसे नही मारूँगा" "जब तक न बोलूँ तब तक मृषावादका त्यागी हूँ" "जब तक सोया रहूँगा

શંકા–સમિતિગુપ્તિ પાલકતા તો ગેરૂઆ આદિ વસ્ત્ર પહેરનારાઓમાં પણ જોવામાં આવે છે. તેઓ પણ માર્ગ જોઈને જ ચાલે છે, તેથી તેઓ સમિતિનું પાલન કરે છે, અને કોઈ-કોઈવાર મૌન રહે છે તેથી ગુપ્તિનુ પણ પાલન કરે છે, જો તેઓમા સમિતિગુપ્તિ-પાલકતા જોવામા આવે છે, તો તેમને પણ ભિક્ષુ કેમ ન કહેવા જોઈએ ?

સામાધાન–ઇહલોક અને પરલોક સબંધી આકાક્ષા અથવા સ્વાર્થરહિત થઈને જેઓ સમિતિ ગુપ્તિનુ પાલન કરે છે તેઓજ ભિક્ષુ કહેવાય છે તેઓમાં એવું જોવામા આવતું નથી. તેઓ હિંસાથી બચવાને માટે માર્ગ જોઈને ગમન કરતા નથી, પરન્તુ કાટા વગેરે વાગી જવાના ભયથી માર્ગ જોઈને ચાલે છે અને યશ કીર્તિ સંપાદન કરવાને માટે મૌન રાખે છે, તેથી તેઓ વસ્તુતાએ સમિતિ–ગુપ્તિના પાલક નથી થઈ શકતા. જો તેમને સમિતિ-ગુપ્તિના પાલક માનવામાં આવે તો એ માણસ પણ વ્રતી કહેવાશે કે જે એવી પ્રતિજ્ઞા કરે કે–"જ્યાં સુધી હુ બેડીથી બધાયલો છુ ત્યાસુધી હું તેને નહિ મારૂં" "જ્યાં સુધી હું ન બોલુ ત્યાં સુધી મૃષાવાદનો ત્યાગી છુ" "જયા સુધી સૂઇ રહીશ ત્યાં સુધી અચૌર્ય વ્રતનુ પાલન

किञ्च भिक्षुम्मन्येषु काषायाम्बरधारिषु नैवाऽयं भिक्षुशब्द आत्मसत्तां लभते, तेषामुद्गमोत्पादनादिदोषदुष्टान्नभोजित्व- सचित्ततोयकन्दमूलाद्यासेवित्व- पचन-पाचनादिक्रियेच्छानिवृत्त्यभावादिदोषदूषितत्वात् , अतो समितिगुप्तिधारका भिक्षामात्रोपजीविनोऽचित्तामेषणीयामुद्गमोत्पादनादिदोषराहित्येन विशुद्धां प्रमाणोपेतां च भिक्षां गृह्णन्ति, प्राणात्ययसमयेऽपि पचनपाचनादिनवकोटिविशुद्धिं नैव खण्डयन्ति त एव भिक्षुपदव्यवहारयोग्यतां लभन्ते, इति विदेलिमम् ।

यद्वा क्षोभते क्षुभ्यति वा=अन्तर्भावितण्यर्थतया क्षोभयति=संचालयति चतुर्गतिससारे सकलप्राणिन इति क्षुप्=अष्टविधं कर्म (अन्तर्भावितण्यर्थाद्भौवादिकाद् दैवादिकाद्वा 'क्षुभ सञ्चलने' अस्माद्धातोः 'सम्पदादित्वात् क्विप्) तद् ज्ञानदर्शनादिना भिनत्ति=क्षपयतीति भिक्षुः (पृषोदरादित्वात्सिद्धिः) ॥

भिक्षुकी=साध्वी । 'संजय०' इत्यादीनि भिक्षु विशेषणानि भिक्षुक्या अपि बोध्यानि उभयोः समानाचारशीलत्वात् ।

तब तक अचौर्य व्रतका पालन करूँगा वास्तवमें ऐसे मनुष्य व्रती नहीं कहलाते है, क्योंकि उनकी आन्तरिक इच्छा पापोसे निवृत्त नहीं हुई है

गेरुआ आदि वस्त्र धारण करनेवाले और अपनेको भिक्षु समझने वाले सन्यासी आदि वास्तव में भिक्षु नहीं कहला सकते, क्योंकि वे उद्गम–उत्पादना आदि दोषोसे दूषित अन्न आदि अंगीकार करते है , सचित्त जल लेते है, सचित्त कन्द मूल आदिका सेवन करते है, पचनपाचनादि क्रियाएँ करते है और इच्छाका दमन नहीं करते है । अत वास्तवमें वे ही भिक्षु कहलाने योग्य है जो समिति–गुप्तिके धारक तथा भिक्षामात्रसे उपजीवी हे, अचित्त एषणीय उद्गम आदि दोषरहित विशुद्ध प्रमाणोपेत भिक्षा लेते है और प्राण जानेका अवसर आ जाने पर भी पचन–पाचन आदि नव कोटिकी विशुद्धताको खण्डित नहीं करते ।

अथवा ससारके समस्त शरीरधारियोको क्षोभित करनेवाले ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मोको भेदनेवाले भिक्षु कहलाते है ।

કરીશ" વસ્તુત એવો માણુસ વ્રતી નથી કહેવાતો, કારણ કે એની આંતરિક ઇચ્છા પાપથી નિવૃત્ત થઇ નથી

ગેરૂઆ આદિ વસ્ત્રો ધારણ કરનારા અને પોતાને ભિક્ષુ માનનારા સન્યાસી આદિ વસ્તુતઃ ભિક્ષુ કહેવાઈ શકતા નથી, કારણ કે તેઓ ઉદ્ગમ ઉત્પાદના આદિ દોષોથી દૂષિત અન્ન આદિ અંગીકાર કરે છે, સચિત્ત જળ લે છે, સચિત્ત કંદ-મૂળ આદિનું સેવક કરે છે પચન-પાચનાદિ ક્રિયાઓ કરે છે અને ઇચ્છાનું દમન કરતા નથી એથી કરીને વસ્તુતઃ તેઓ જ ભિક્ષુ કહેવાવા યોગ્ય છે કે જેઓ સમિતિ-ગુપ્તિના ધારક તથા ભિક્ષામાત્રથી ઉપજીવી છે, અચિત્ત, એષણીય, ઉદ્ગમાદિ-દોષથી રહિત, વિશુદ્ધ, પ્રમાણોપેત ભિક્ષા લે છે, અને પ્રાણ જવાનો અવસર આવે તો પણ પચન-પાચનાદિ નવ કોટિની વિશુદ્ધતાને ખંડિત કરતા નથી

અથવા સસારના સર્વ શરીરધારીઓને ક્ષોભિત કરનારા જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ કર્મોને ભેદનારા ભિક્ષુ કહેવાય છે.

(१) पृथिवीकाययतना ।

संयत– विरत-प्रतिहत-प्रत्याख्यात-पापकर्मा=संयतः- वर्त्तमानकालिकसर्वसावद्यानुष्ठान-निवृत्तः, विरतः अतीतकालिकपापाज्जुगुप्सापूर्वकं, भविष्यति च संवरपूर्वकमुपरतो निवृत्त इत्यर्थः अत एव प्रतिहतं=वर्तमानकाले स्थित्यनुभागह्रासेन नाशितं, प्रत्याख्यातं=पूर्वकृतातिचारनिन्दया भविष्यत्यकरणेन निराकृतं पापकर्म=पापानुष्ठानं येन स प्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा, संयतश्चासौ विरतश्च (विशेषयोरपि परस्परविशेष्यविशेषण-भावविवक्षया समासो गतप्रत्यागतादिवत्) संयतविरतश्चासौ प्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा चेति तथोक्तः, दिवा=दिवसे, रात्रौ=रजन्याम् , एककः=एकाकी द्रव्यतो ध्यानादिहेतो-रेकान्तस्थानस्थितोऽद्वितीयः, भावतो रागद्वेषरहितो वा, परिषद्गतः=परि=समन्ततः सीदन्ति=गच्छन्ति गत्वा संहता भवन्ति जना अस्यामिति परिषत्=सभा, तां गतः परिषद्गतः=साध्वादिसङ्घस्थित इत्यर्थः, सुप्तः=स्वाध्यायादिजनितश्रमापनोदार्थं रजनी मध्यमयामयुगलमात्रं निद्रितः, जाग्रत्=इन्द्रियादिकरणकविषयज्ञानयोग्यावस्था प्राप्तःनिद्रा-विमुक्तो भवेत् । एवंविधो भिक्षुर्वक्ष्यमाणरीत्या दुष्कृत्यं न करोतीति प्रदर्श्यते-'से' इति

भिक्षुकी साध्वीको कहते है । सजय आदि विशेषण साध्वीके साथ भी समझना चाहिए क्योकि साधु और साध्वीका आचार प्राय समान है ।

(१) पृथ्वीकाययतना ।

वर्त्तमान कालके सब प्रकारके सावद्य व्यापार से निवृत्त होने के कारण सयत, अतीतकालीन पापोंसे जुगुप्सा-पूर्वक और भविष्यत्कालीन पापोसे सवर-पूर्वक निवृत्त होनेसे विरत, संयत और विरत होनेके कारण वर्त्तमान कालमें स्थितिबन्ध और अनुभागबन्धका ह्रास करके पापकर्म को नष्ट करनेवाले, दिनमें, रात्रिमें, द्रव्यसे ध्यान आदिके लिए एकान्तमेंस्थित और भावसे राग-द्वेषरहित होनेसे एकाकी, अथवा साधुओके सघमें स्थित, स्वाध्याय आदिसे उत्पन्न श्रमको दूर करनेके लिए रात्रिके बीचके दो प्रहरोंमें सोते हुए,तथा जागते हुए भिक्षु, आगे कहे हुए सावद्य व्यापार नहीं करते है ।

ભિક્ષુકી સાધ્વીને કહે છે સજય આદિ વિશેષણ સાધ્વીની સાથે પણ સમજવાનું છે, કારણ કે સાધુ અને સાધ્વીનો આચાર પ્રાય સમાન છે

(૧)પૃથિવીકાયયતના

વર્તમાનકાળના સર્વ પ્રકારના સાવદ્ય-વ્યાપારથી નિવૃત્ત હોવાને કારણે સ યત, અતીતકાલીન પાપોથી જુગુપ્સાપૂર્વક અને ભવિષ્યતકાલીન પાપોથી સ વરપૂર્વક નિવૃત્ત હોવાથી વિરત, સ ંયત અને વિરત હોવાને કારણે વર્તમાન કાળમા સ્થિતિબ ધ અને અનુભાગબંધનો હ્રાસ કરીને પાપકર્મને નષ્ટ કરનાર , દિવસમા અને રાત્રે, દ્રવ્યથી ધ્યાન આદિને માટે એકાન્તમા સ્થિર અને ભાવથી રાગ-દ્વેષ આદિથી રહિત હોવાને કારણે એકાકી અથવા સાધુઓના સ ઘમા સ્થિત સ્વાધ્યાય આદિથી ઉત્પન્ન થતા શ્રમને દૂર કરવાને માટે રાત્રિની વચ્ચેના બે પહોરમા સૂતા તથા જાગતા ભિક્ષુ, આગળ કહેલા સાવદ્ય વ્યાપારને કરતા નથી.

सः-भिक्षुः पृथिवीं=खनिसमुद्भूतमृत्तिकारूपाम् , भित्तिं=सरित्तीरमृत्तिकाम् , शिलां=विशालपाषाणलक्षणाम् लेष्टुं=पिण्डात्मकमृत्खण्डम् , सरजस्कं=सचित्तरजोऽवगुण्ठितम् , कायं=शरीरम् , वस्त्रं=चोलपट्टप्रमुखं च, पात्रादीनामप्युपलक्षणमेतत् , एतेषु अन्यतमं किमपि वस्तु हस्तेन=करेण, पादेन=चरणेन , काष्ठेन=खदिरादिदारुखण्डेन, किलिञ्चेन=वंशादिकम्बिकया, अङ्गुल्या=करचरणावयवविशेषेण, शलाकया=लोहादिरचितया, शलाकाहस्तेन=पुञ्जीकृतशलाकाभिर्वा नाऽऽलिखेत्=सकृत् अल्पं वा न स्पर्शयेत् न विलिखेत्=बहुशोऽविरतं विशेषतो वा न घट्टयेत्=चालयेत्, न भिन्द्यात्=न विदारयेत्=न विदीर्णतां नयेत्, तथाऽन्येन=(सूत्रे त्वार्षत्वाद्द्वितीया) स्वव्यतिरिक्तजनेन नाऽऽलेखयेत्, न विलेखयेत् न घट्टयेत्=न भेदयेत्, अलिखन्तं वा विलिखन्तं वा घट्टयन्तं वा भिन्दन्तं वा अन्यं=व्यक्त्यन्तरं न समनुजानीयात्=नानुमन्येत, इत्येवं भगवदुपदिष्टाचारपद्धतिसंरक्षणपरायणान्तःकरणोऽहं यावज्जीवया त्रिविधं त्रिविधेनेत्यादि पूर्ववत् ।१। ॥१५॥

सम्प्रति क्रमप्राप्तामप्काययतनामाह—'से भिक्खू वा०' इत्यादि ।

मूलम्— भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय-विरय-पडिहय-पच्च-क्खायपावकम्मे दिया वा राओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जाग-रमाणे वा से उदगं वा ओसं वा हिमं वा महियं वा करगं वा हर-

---

खानसे निकली हुई मृत्तिकारूप पृथ्वीपर, नदी के किनारेकी मिट्टी पर, पत्थरकी शिलापर, मिट्टीके ढेलेपर, सचित्त धूलीसे धूसर काय, चोलपट्ट आदि वस्त्र तथा पात्र पर, अर्थात् इनमेंसे किसी भी पदार्थ पर हाथसे, पैरसे, काष्ठसे, वास आदिको सटक (छडो-खापटो)से, अंगुलीसे, लोहे आदि की बनी हुई छड़से, अथवा बहुतसी छडो (सलाइयो)से, न स्वयं एकबार लकीर खींचे, न बार-बार लकीर खींचे अर्थात् इनको न घिसे तथा न हिलावे, न विदारे, न दूसरेसे ये सब क्रियाएँ करावे और न ये सब क्रियाएँ करते हुए अन्यको भला जाने ।

हे गुरुमहाराज ! इस प्रकार सर्वज्ञ भगवान् द्वारा उपदेश किए हुए आचारकी रक्षा करने में मनको तत्पर रखनेवाला मै तीन करण तीन योगसे यह सब कार्य नहीं करूँगा ॥१॥१५॥

ખાણમાંથી નીકળેલી માટીરૂપ પૃથ્વી પર, નદીના કિનારાની માટી પર પત્થરની શિલા પર, માટીના ઢેફાં પર, સચિત્ત ધૂળથી ધૂસર કાય, ચોલપટ્ટો આદિ વસ્ત્ર તથા પાત્ર પર અર્થાત્ એમાંના કોઈ પણ પદાર્થ પર હાથથી, પગથી, કાષ્ઠથી વાંસ આદિની ખપાટથી, આંગળીથી, લોઢા આદિની સળીથી અથવા કોઈપણ સળીઓથી ન પોતે એકવાર રેખા દોરે, ન વારંવાર રેખા દોરે, અર્થાત્ એને ન ઘસે તથા ન હલાવે, ન વિદારે, ન બીજાઓ પાસે એ બધી ક્રિયાઓ કરાવે અને ન એ બધી ક્રિયાઓ કરનારા અન્યને ભલો જાણે

હે ગુરૂ મહારાજ ! એ પ્રકારે સર્વજ્ઞ ભગવાને ઉપદેશેલા આચારની રક્ષા કરવામાં મનને તત્પર રાખનારો એવો હું ત્રણ કરણ ત્રણ યોગથી એ બધા કાર્ય કરીશ નહી. (૧)(૧૫)

तणुगं वा सुद्धोदगं वा उदउल्लं वा कायं उदउल्लं वा वत्थं ससिणिद्धं वा कायं ससिणिद्धं वा वत्थं न आमुसिज्जा न संफुसिज्जा न आवि- लिज्जा, न पविलिज्जा न अक्खोडिज्जा, न पक्खोडिज्जा, न आया' विज्जा, न पायाविज्जा, अन्नं आमुसंतं वा, संफुसंतं वा अवीलंतं वा पवीलंतं वा, अक्खोडंतं वा, पक्खोडंतं वा, आयावंतं वा, पया वंतं वा न समणुजाणिज्जा । जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं

अन्नं न आमुसाविज्जा संफुसाविज्जा न अविलाविज्जा न पविला- विज्जा न अक्खोडाविज्जा न पक्खोडाविज्जा न आयाविज्जा. न पयाविज्जा,

अन्यं न आमृश्येन्न संस्पृशेन्न आस्फोटयेत् न प्रस्फोटयेत् न आस्फोटापयेत् प्रस्फोटापयेत् न आनापयेत् न प्रतापयेन्

और अनुभागकी न्यूनता करके तथा पहले किये हुए अतिचारोंकी निन्दा करके सावद्य व्यापारके त्यागी से=वह पूर्वोक्त भिक्खू वा=साधु भिक्खुणी वा=अथवा साध्वी दिया वा=दिन मे राओवा=अथवा रात्रि में एगओ वा=अकेला परिसागओ वा=अथवा संघमे स्थित सुत्तेवा=सोया हुआ जागरमाणे वा=अथवा जागता हुवा रहे वहां से=वह उदगं वा=जलको हिम वा=हिमको महियं वा=कुहरे-धूअर-को करगं वा=ओलेको हरतणुगं वा=घास पर बूंद-बूंद पड़ा हुआ जलविशेषको सुद्धोदगं वा=आकाशसे गिरे हुए निर्मल जलको (और) उदउल्लं वा=जलसे भीने हुए-गीले काय=शरीरको उदउल्लं वा वत्थं= जलसे भीगे हुए वस्त्रको ससिणिद्धं वा कायं=कुछ-कुछ गीले शरीरको ससिणिद्धं वा वत्थं=कुछ-कुछ गीले वस्त्रको न आमुसिज्जा=जराभी स्पर्श न करे न संफुसिज्जा=

सः-भिक्षुः पृथिवीं=खनिसमुद्भूतमृत्तिकारूपाम्, भित्तिं=सरित्तीरमृत्तिकाम्, शिलां=विशालपाषाणलक्षणाम् लेष्टुं=पिण्डात्मकमृत्खण्डम्, सरजस्कं=सचित्तरजोऽवगुण्ठितम्, कायं=शरीरम्, वस्त्रं=चोलपट्टप्रमुखं च, पात्रादीनामप्युपलक्षणमेतत्, एतेषु अन्यतमं किमपि वस्तु हस्तेन=करेण, पादेन=चरणेन, काष्ठेन=खदिरादिदारुखण्डेन, किलिञ्चेन=वंशादिकम्बिकया, अङ्गुल्या=करचरणावयवविशेषेण शलाकया=लोहादिरचितया, शलाकाहस्तेन=पुञ्जीकृतशलाकाभिर्वा नाऽऽलिखेत्=सकृत् अल्पं वा न संघर्षयेत् न विलिखेत्=बहुशोऽविरतं विशेषतो वा न घट्टयेत्=चालयेत्, न भिन्द्यात्=न विदारयेत्=न विदीर्णतां नयेत्, तथाऽन्येन=(सूत्रे त्वार्षत्वाद्द्वितीया) स्वव्यतिरिक्तजनेन नाऽऽलेखयेत्, न विले-

हे गुरुमहाराज ! इस प्रकार सर्वज्ञ भगवान् द्वारा उपदेश किए हुए आचारकी रक्षा करनेमें मनको तत्पर रखनेवाला मैं तीन करण तीन योगसे यह सब कार्य नहीं करूंगा ॥१॥१५॥

ખાણુમાંથી નીકળેલી માટીરૂપ પૃથ્વી પર, નદીના કિનારાની માટી પર પત્થરની શિલા પર, માટીના ઢેફાં પર, સચિત્ત ધૂળથી ધૂસર કાય, ચોલપટ્ટો આદિ વસ્ત્ર તથા પાત્ર પર અર્થાત્ એમાંના કોઈ પણ પદાર્થ પર હાથથી, પગથી, કાષ્ઠથી વાંસ આદિની ખપાટથી, આંગળીથી, લોઢા આદિની સળીથી અથવા કોઈપણ સળીઓથી ન પોતે એકવાર રેખા દોરે, ન વારંવાર રેખા દોરે, અર્થાત્ એને ન ઘસે તથા ન હલાવે, ન વિદારે, ન બીજાઓ પાસે એ બધી ક્રિયાઓ કરાવે અને ન એ બધી ક્રિયાઓ કરનારા અન્યને ભલો જાણે

હે ગુરૂ મહારાજ ! એ પ્રકારે સર્વજ્ઞ ભગવાને ઉપદેશેલા આચારની રક્ષા કરવામાં મનને તત્પર રાખનારા એવો હું ત્રણ કરણ ત્રણ યોગથી એ બધા કાર્ય કરીશ નહીં. (૧)(૧૫)

तणुगं वा सुद्धोदगं वा उदउल्लं वा कायं उदउल्लं वा वत्थं ससिणिद्धं वा कायं ससिणिद्धं वा वत्थं न आमुसिज्जा न संफुसिज्जा न आविलिज्जा, न पविलिज्जा न अक्खोडिज्जा, न पक्खोडिज्जा, न आयाविज्जा, न पयाविज्जा, अन्नं आमुसंतं वा, संफुसंतं वा अवीलंतं वा पवीलंतं वा, अक्खोडंतं वा, पक्खोडंतं वा, आयावंतं वा, पयावंतं वा न समणुजाणिज्जा । जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि । तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥२॥१६॥

छाया—स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा संयत-विरत-प्रतिहत-प्रत्याख्यातपापकर्मा दिवा वा रात्रौ वा एकको वा परिषद्गतो वा सुप्तो वा जाग्रद्वा स उदकं वा अवश्यायं वा हिमं वा मिहिकां वा करकं वा हरतनुं वा शुद्धोदकं वा उदकार्द्रं वा कायं उदकार्द्रं वा वस्त्रं, सस्निग्धं वा कायं, सस्निग्धं वा वस्त्रं नाऽऽमृशेन्न संस्पृशेन्नाऽऽपीडयेन्न प्रपीडयेन्नास्फोटयेन्न प्रस्फोटयेन्नातापयेन्न प्रतापयेत्, अन्यमामृशन्तं वा, संस्पृशन्तं वा, आपीडयन्तं वा, प्रपीडयन्तं वा, आस्फोटयन्तं वा, प्रस्फोटयन्तं वा, आतापयन्तं वा, प्रतापयन्तं वा न समनुजानीयात् । यावज्जीवया त्रिविधं त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि, न कारयामि, कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामि ॥२॥१६॥

(२) अप्काययतना.

सान्वयार्थः—संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे=वर्त्तमानकालीन सावद्य व्यापारोंसे रहित, भूत-भविष्यत्कालीन सावद्य व्यापारोंसे रहित, वर्त्तमान कालमें भी स्थिति और अनुभागकी न्यूनता करके तथा पहले किये हुए अतिचारोंकी निन्दा करके सावद्य व्यापारके त्यागी से=वह पूर्वोक्त भिक्खू वा=साधु भिक्खुणी वा=अथवा साध्वी दिया वा=दिन मे राओवा=अथवा रात्रि में एगओ वा=अकेला परिसागओ वा=अथवा संघमें स्थित सुत्तेवा=सोया हुआ जागरमाणे वा=अथवा जागता हुवा रहे वहां से=वह उदगं वा=जलको हिमं वा=हिमको महियं वा=कुहरे-धूअर-को करगं वा=ओलेको हरतणुगं वा=घास पर बूंद-बूंद पड़ा हुआ जलविशेषको सुद्धोदगं वा=आकाशसे गिरे हुए निर्मल जलको (और) उदउल्लं वा=जलसे भीने हुए-गीले कायं=शरीरको उदउल्लं वा वत्थं=जलसे भीगे हुए वस्त्रको ससिणिद्धं वा कायं=कुछ-कुछ गीले शरीरको ससिणिद्धं वा वत्थं=कुछ-कुछ गीले वस्त्रको न आमुसिज्जा=जराभी स्पर्श न करे न संफुसिज्जा=

अधिक स्पर्श न करे, न आवीलिज्जा=पीडित न करे, न पवीलिज्जा=अधिक पीडित न करे, न अक्खोडिज्जा=स्फोटन न करे, न पक्खोडिज्जा=प्रस्फोटन न करे, न आयाविज्जा=तपावे नहीं, न पयाविज्जा=अधिक तपावे नहीं, अन्नं=दूसरेसे न आमुसाविज्जा=जराभी स्पर्श न करावे, न संफुसाविज्जा=अधिक स्पर्श न करावे, न आवीलाविज्जा=पीडित न करावे, न पवीलाविज्जा=अधिक पीडित न करावे, न अक्खोडाविज्जा=स्फोटन न करावे, न पक्खोडाविज्जा=प्रस्फोटन न करावे, न आयाविज्जा=तपवावे नहीं, न पयाविज्जा=अधिक तपवावे नहीं, आमुसंतं वा=जराभी स्पर्श करनेवाले संफुसंतं वा=अधिक स्पर्श करनेवाले आवीलंतं वा=पीडित करनेवाले पवीलंतं वा=अधिक पीडित करनेवाले अक्खोडंतं वा=स्फोटन करनेवाले पक्खोडंतं वा=प्रस्फोटन करनेवाले आयावंत वा=तपानेवाले पयावंत वा=अधिक तपानेवाले अन्नं=दूसरेको न समणुजाणिज्जा=भला न समझे। जावज्जीवाए=जीवनपर्यन्त (इसको) तिविहं=कृत कारित अनुमोदनारूप तीन करणसे (तथा) तिविहेणं=तीन प्रकारके मणेणं=मनसे वायाए=वचनसे काएणं=कायसे न करेमि=न करूँगा, न कारवेमि=न कराऊँगा, करंतंपि=करते हुएभी अन्नं=दूसरेको न समणुजाणामि=भला नहीं समझूँगा। भंते!=हे भगवन्! तस्स=उस दण्डसे पडिक्कमामि=पृथक् होता हूँ, निंदामि=आत्मसाक्षीसे निन्दा करता हूँ, गरिहामि=गुरु साक्षीसे गर्हा करता हूँ, अप्पाणं—दण्ड सेवन करनेवाले आत्माको वोसिरामि=त्यागता हूँ ॥२॥१६॥

(२) अप्काययतना।

टीका—स भिक्षुर्वेत्यादि पूर्ववत्। उदकं=प्रसङ्गात्कूपादिजलम् भूगर्भोद्भूतस्रोतोजलमित्यर्थः, अवश्यायं=मेघमन्तरेण रात्रौ पतितं सूक्ष्मतुषाररूपमप्कायम्। हिमं=शीतर्त्तौ शीताधिक्येन घनीभूतमप्कायम् -'बर्फ' इति लोके प्रसिद्धम्। मिहिकां=हेमन्तशिशिरयोः कदाचित्२ सान्द्रतया धूमवत्प्रतिभासमानस्वरूपां कुज्झटिकाम् 'धूँअर' इति

अब अप्कायकी यतनाका प्रतिपादन करते हैं—'से भिक्खू०' इत्यादि।

(२) अप्काययतना।

भिक्षु और भिक्षुकी आदि पदोका अर्थ पहलेकी भाँति समझना चाहिए। कुएका पानी अर्थात् भूमिमें सोता (झरना)से निकलनेवाला जल, ओस, पाला, कुहरा (धूँअर), क्षाला (गड़ा), हरतनु (भूमिको भेद कर गेहूँ आदिके अकुरोपर जमनेवाले जलबिन्दु), वर्षाका निर्मल जल, इन

હવે અપ્કાયની યતનાનું પ્રતિપાદન કરે છે 'से भिक्खू' ઇત્યાદિ.

(૨) અપ્કાયયતના

ભિક્ષુ અને ભિક્ષુકી આદિ શબ્દોનો અર્થ પહેલાની પેઠે સમજવો. કૂવાનું પાણી અર્થાત્ ભૂમિમાંનો સ્રોત (ઝરણું) થી નીકળતું જળ, ઓસ, ઠાર, ઝાકળ, કરા, હરતનું (ભૂમિને ભેદીને ઘઉં આદિના અંકુરો ઉપર જામનારાં જલબિન્દુઓ) વરસાદનું નિર્મળ

लोकप्रसिद्धाम् । करकं = क्रिरति = क्षरति पानीयमिति करकं = वर्षोपलम् । हरतनुम्= भूमिमुद्भिद्य तृणाङ्कुराद्युपरि बिन्दुरूपेण स्थितमप्कायविशेषम् । शुद्धोदकम् = आकाशात्पतितं स्वभावनिर्मलं सलिलम् । तथा उदकार्द्र=जलक्लिन्नं कायं वस्त्रं च । सस्निग्धम् स्निग्धमिति भावक्तान्तम्, स्नेहः = स्निग्धत्वमिति तदर्थस्तेन सह वर्त्तमानं तत् = बिन्दुरहितमीषदार्द्रं कायं वस्त्रं च, स्वयं न आमृशेत् = आ = ईषत् 'आङीषदर्थेऽभिव्याप्तौ सीमार्थे धातुयोगजे' इति कोशात्, मृशेत् = स्पृशेत्, न स्पर्शयुक्त कुर्यादित्यर्थः । न संस्पृशेत् = न सं=प्रकर्षेण स्पृशेत् । नापीडयेत्, न प्रपीडयेत् । नाऽऽस्फोटयेत्, न प्रस्फोटयेत् । नाऽऽतापयेत्, प्रतापयेत् । शेषं सुगमम् । एषु ('आमृशेत् संस्पृशेत्' इत्यादिषु) सर्वत्र धात्वर्थाऽविशेषेऽप्युपसर्ग (आ. सं. प्र) कृतवाच्यवैलक्षण्यान्न पौनरुक्त्यदोषावसर इति बोध्यम् ॥२॥१६॥

सम्प्रति तेजस्काययतनामाह-'से भिक्खू वा' इत्यादि ।

मूलम्-से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय-विरय-पडिहय पच्चक्खायपावकम्मे दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा; से अगणिं वा इंगालं वा मुम्मुरं वा अच्चिं वा जालं वा अलायं वा सुद्धागणिं वा उक्कं वा न उंजेज्जा न घट्टेज्जा न भिंदेज्जा न उज्जालेज्जा न पज्जालेज्जा न निव्वावेज्जा, अन्नं न उंजावेज्जा न घट्टावेज्जा न भिंदावेज्जा, न उज्जालावेज्जा न पज्जालावेज्जा न निव्वावेज्जा, अन्नं उंजंतं वा घट्टंतं वा भिंदंतं वा उज्जालंतं वा पज्जालंतं वा निव्वावंतं वा न समणुजाणिज्जा । जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतंपि अन्नं

सबको, तथा जलसे बहुत गीला या थोडा गीला शरीर या वस्त्र, इन सबको स्वयं एक बार स्पर्श न करे, बार-बार स्पर्श न करे, वस्त्रको एकबार न निचोड़े, बार-बार न निचोड़े, न एकबार झटके न बार-बार झटके, न एकवार धूपमें सुखावे, न बार-बार सुखावे, न ये सब क्रियाएँ दूसरे से करावे, न करते हुएको भला जाने, शेष सुगम है ॥२॥१६॥

જળ એ સર્વને, તથા જળથી બહુ લીલુ અથવા થોડું લીલુ શરીર યા વસ્ત્ર, એ સર્વને સ્વયં એકવાર સ્પર્શ નહી, કરૂં વારવાર સ્પર્શ નહીં કરૂં વસ્ત્રને એકવાર નહીં નીચોવું, વારંવાર નહિ નીચોવુ, એકવાર નહિ ઝાટકુ, વારવાર નહિ ઝાટકું, એકવાર તડકામાં નહીં સુકાવું, વારંવાર નહીં સુકાવું, નહીં એ બધી ક્રિયાઓ બીજા પાસે ન કરાવું, અને કરનારને નહીં ભલો જાણુ શેષ ભાગ સહેલો છે. (૨) (૧૬)

न समणुजाणामि ! तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥३॥१७॥

छाया—स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा संयतविरतप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा दिवा वा रात्रौ वा एकको वा परिषद्गतो वा सुप्तो वा जाग्रद्वा, सः अग्निं वा अङ्गारं वा मुर्मुरं वा अर्चिर्वा ज्वालां वा अलातं वा शुद्धाग्निं वा उल्कां वा नोत्सिञ्चेत् न घट्टयेत् न भिन्द्यान्नोज्ज्वालयेन्न प्रज्वालयेन्न निर्वापयेद्, अन्येन नोत्सेचयेन्न घट्टयेन्न भेदयेन्नोज्ज्वालयेन्न प्रज्वालयेन्न निर्वापयेद् अन्यमुत्सिञ्चन्तं वा घट्टयन्तं वा भिन्दन्तं वा उज्ज्वालयन्तं वा प्रज्वालयन्तं वा निर्वापयन्तं वा न समनुजानीयात् । यावज्जीवया त्रिविधं त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामि । तस्माद् भदन्त ! प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हे आत्मानं व्युत्सृजामि ॥३॥१७॥

(३) तेजस्काययतना.

सान्वयार्थः—संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे=वर्त्तमानकालीन सावद्य व्यापारो से रहित, वर्त्तमान कालमें भी स्थिति और अनुभागकी न्यूनता करके तथा पहले किये हुए अतिचारोंकी निन्दा करके सावद्य व्यापारके त्यागी, से=वह पूर्वोक्त भिक्खू वा=साधु भिक्खुणी वा=अथवा साध्वी; दिया वा=दिनमें राओ वा=अथवा रात्रिमें; एगओ वा=अकेला परिसागओ वा=अथवा संघमें स्थित, सुत्ते वा=सोया हुआ जागरमाणे वा=अथवा जागता हुआ रहे, वहां से=वह अगणि वा=अग्निको इंगालं वा=अंगारेको मुम्मुरं वा=मुर्मुर-सू मूदर-(तुषाग्नि) को अच्चि वा=ज्योति-मूलाग्निसे विच्छिन्न ज्वालाको, जालं वा=मूलाग्निसे अविच्छिन्न जलती हुई ज्वालाको, अलाय वा=जिसका अग्रभाग जल रहा हो ऐसे काठको, सुद्धागणि वा=शुद्ध अग्नि-लोहापिण्डमें संबद्ध अग्नि अथवा बिजलीरूप अग्निको, उक्कं वा=चिनगारियोंको न उंजेज्जा=ईंधन डालकर अग्निको बढावे नहीं, न घट्टेज्जा=चलावे नहीं न भिंदेज्जा=भेदे नहीं, न उज्जालेज्जा=थोडाभी जलावे नहीं, न पज्जालेज्जा=प्रज्वलित करे नहीं, न निव्वावेज्जा=बुझावे नहीं. अन्नं=दूसरेसे न उंजावेज्जा=बढवावे नहीं, न घट्टावेज्जा=चलवावे नहीं, न भिंदावेज्जा=भिदावे नहीं न उज्जालावेज्जा=न जलवावे, न पज्जालावेज्जा=न प्रज्वलित करावे, न निव्वावेज्जा=न बुझवावे, उंजंत वा=बढानेवाले घट्टंतं वा=चलानेवाले भिंदंतं वा=भेदनेवाले उज्जालंत वा=जलानेवाले पज्जालंत वा=प्रज्वलित करनेवाले निव्वावंतं वा=बुझानेवाले अन्नं=दूसरेको न समणुजाणिज्जा=भला न समझे । जावज्जीवाए=जीवनपर्यन्त (इसको) तिविहं=कृत-कारित-अनुमोदनारूप तीन करणसे (तथा) तिविहेणं=तीन प्रकारके मणेणं=मनसे वायाए=वचनसे काएणं=कायसे न करेमि=न करूँगा, न कारवेमि=न कराऊँगा, करंतंपि=करते हुएको भी अन्नं=दूसरेको न समणुजाणामि=भला नहीं समझूंगा । भंते !=हे भगवन् ! तस्स=उस दण्डसे पडिक्कमामि=पृथक् होता हूं, निंदामि=आत्म-

साक्षी से निन्दा करता हूँ, गरिहामि=गुरु साक्षीसे गर्हा करता हूँ, अप्पाणं=दण्डसेवन करनेवाले आत्माको वोसिरामि=त्यागता हूँ ॥३॥१७॥

टीका-अग्नि=वह्निम्, अङ्गारं=निर्धूमज्वालं ज्वलदिन्धनम्, मुम्मुरं=प्रविरलस्फुलिङ्गसंमिश्रभस्मरूपं तुषानलं वा, 'मुर्मुरस्तु तुषानलः' इति वैजयन्तिकोशात्, अजालिण्डिकाग्निं वा, अर्चिः=मूलाग्निविच्छिन्नां ज्वालाम्, ज्वालां=दह्यमानतृणादिसम्बद्धाऽऽमूलोदूर्ध्वप्रसारितेजोराशिम्, अलातं=ज्वलदग्रभागं काष्ठम्, शुद्धाग्निम्=अयः पिण्डानुसंबद्ध विद्युदादिरूपं वा, उल्कां=मूलवह्नेर्विच्छिद्य२ समन्तात्प्रसर्पदग्निकणात्मिकाम्, (चिनगारी, तडंगिया, इति भाषा) स्वयं न उत्सिञ्चेत्=न तत्रेन्धनादिकं प्रक्षिपेत्, न घट्टयेत्=न सञ्चालयेत्, न भिन्द्यात्=दण्डेष्टकखण्डादिना न स्फोटयेत्, न उज्ज्वालयेत्=तालवृन्तादिना सकृदल्पं वा न ध्मापयेत्-न वर्धयेदित्यर्थः, न प्रज्वालयेत्=सततं बहुशो वा न प्रज्वलितं कुर्यात्, न निर्वापयेत्=न विध्यापयेत् न निर्वाणं नयेदित्यर्थः, अन्येन न उत्सेचयेदित्यादि सर्वं सुगमम् ।३।१७।

वायुकाययतनामाह-'से भिक्खू वा०' इत्यादि ।

मूलम्-से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय-विरय पडिहय पच्चक्खाय पावकम्मे दिया वा राओ वा परिसागओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्तेवा जागरमाणेवा, से सिएण वा विहुणेण वा

अग्निकायकी यतना कहते है-'से भिक्खू वा० इत्यादि ।

(३) तेजस्काययतना ।

अग्नि, अंगारा, भूभल (गर्म राख) बकरीकी लेडीकी आग, मूलसे टूटी हुई ज्वाला, मूलसे अविच्छिन्न ज्वाला, लुआठा (जलती हुई लकडी), गर्म लोहेके गोलेकी या बिजलीकी अग्नि, अथवा चिनगारी आदिमें स्वयं इन्धन न डाले, न संचालन करे (न सघटा करे), न दंड ईंट आदि से उसे भेदे, न पंखा आदिसे एकबार प्रज्वलित करे, न वार-वार प्रज्वलित करे, न बुझावे । न ये सब क्रियाएँ दूसरेस करावे, न करते हुएकी अनुमोदना करे. इत्यादि सब पूर्ववत् ॥३॥१७॥

અગ્નિકાયની યતના કહે છે-'से भिक्खू वा०' ઈત્યાદિ

(૩) તેજસ્કાયયતના.

અગ્નિ, અંગારા, ગરમ રાખ, બકરીની લીંડીની આગ મૂળથી તૂટેલી જ્વાળા, મૂળથી અવિચ્છિન્ન જ્વાલા, બળતા લાકડા, ગરમ લોખંડના ગોળાનો અથવા વિજળીનો અગ્નિ, અથવા ચીણગારી આદિમાં પોતે ઇધન (બળતણ) નહી નાખે, નહીં સચાલન કરે (નહી સંઘટન કરે), નહી દંડ કે ઈંટ આદિથી તેને ભેદે, નહી પંખા વગેરેથી તેને એકવાર પ્રજ્વલિત કરે નહીં વારંવાર પ્રજ્વલિત કરે, નહીં બુઝાવે, નહી એ બધી ક્રિયાઓ બીજા પાસે કરાવે નહીં, કરનારની નહી અનુમોદના કરે ઈત્યાદિ પૂર્વવત્ (૩) (૧૭)

तालिअंटेण वा पत्तेण वा पत्तभंगेण वा साहाए वा साहाभंगेण वा पिहुणेण वा पिहुणहत्थेणं वा चेलेण वा चेलकन्नेण वा हत्थेण वा मुहेण वा अप्पणो वा कायं बाहिरं वावि पुग्गलं न फुमेज्जा न वीएज्जा, अन्नं न फुसावेज्जा न वीआवेज्जा, अन्नं फुमंतं वा वीअंतं वा न समणुजाणिज्जा। जावज्जीवाए तिविहं तिविहेण मणेणं वायाए काएणं न करेमि. न कारवेमि करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥४॥१८॥

छाया—स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा संयतविरतप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा दिवा वा रात्रौ वा एकको वा परिषद्गतो वा जाग्रद्वा, स सितेन वा विधूननेन वा तालवृन्तेन वा पत्रेण वा पत्रभङ्गेन वा शाखया वा पिहुनेन वा पिहुनहस्तेन वा चैलेन वा चैलकर्णेन वा हस्तेन मुखेन वा, आत्मनो वा कायं बाह्यं वाऽपि पुद्गलं न फूत्कुर्यात्, न वीजयेत्, अन्येन न फूत्कारयेन्न वीजयेद्, अन्यं फूत्कुर्वन्तं वा वीजयन्तं वा न समनुजानीयात्। यावज्जीवया त्रिविधं त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामि। तस्य भदन्त! प्रतिक्रमामि निन्दामि गर्हे आत्मानं व्युत्सृजामि ॥४॥१८॥

(४) वायुकाययतना.

सान्वयार्थः—संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे=वर्त्तमानकालीन सावद्य व्यापारोंसे रहित, भूत-भविष्यत्कालीन सावद्य व्यापारोंसे रहित, वर्त्तमान कालमें भी स्थिति और अनुभागकी न्यूनता करके तथा पहले किये हुए अतिचारोंकी निन्दा करके सावद्य व्यापारके त्यागी से=वह पूर्वोक्त भिक्खू वा=साधु भिक्खुणी वा=अथवा साध्वी दिया वा=दिनमें राओ वा=अथवा रात्रिमें एगओ वा अकेला परिसागओ वा=अथवा संघमें स्थित सुत्ते वा=सोया हुआ जागरमाणे वा=अथवा जागता हुवा रहे, वहाँ से=वह सिएण वा=चामरसे, विहुणेणवा=पंखेसे, तालिअंटेण वा ताडके पंखेसे पत्तेण वा=पत्तेसे, पत्तभंगेण वा=बहुतसे पत्तोंसे, साहाए वा=शाखा-डाली-से, साहाभंगेण वा=शाखाके खण्डसे, पिहुणेण वा मोरपीछीसे, पिहुणहत्थेण वा=मोरपीछियोंके समूहसे, चेलेण वा कपडेसे, चेलकण्णेण वा=कपडेके छोर-पल्ले से, हत्थेण वा=हाथसे, मुहेणवा=मुखसे, अप्पाणो वा=अपने काय=शरीरको, वा=अथवा बाहिरं वि पुग्गल=बाहरी पुद्गलोंको भी न फुमेज्जा=फूक न मारे, न वीएज्जा=चँवर आदिसे हवा न करे, अन्नं=दूसरेसे न फुमावेज्जा=फूक न मरावे, न वीआवेज्जा=हवा न करावे, फुमतं वा=फूंकनेवाले वीअंतं वा=हवा करनेवाले अन्नं=दूसरेको न समणुजाणिज्जा=भला न समझे। जावज्जीवाए=जीवनपर्यन्त (इसको) तिविहं=कृत कारित अनुमोदनारूप तीन करणसे (तथा) तिविहेणं=तीन प्रकार

के मणेणं=मनसे वायाए=वचनसे काएणं=कायसे न करेमि=न करूँगा, न कारवेमि=न कराऊँगा, करंतंपि=करते हुए भी अन्नं=दूसरेको न समणुजाणामि= भला नहीं समझूँगा। भंते !=हे भगवन्! तस्स=उस दण्डसे पडिक्कमामि=पृथक् होता हूँ, निंदामि=आत्मसाक्षीसे निन्दा करता हूँ, गरिहामि=गुरुसाक्षीसे गर्हा करता हूँ, अप्पाणं=दण्ड सेवन करनेवाले आत्माको वोसिरामि=त्यागता हूँ ॥४॥१८॥

(४) वायुकाययतना।

टीका-सितेन=चामरेण श्वेतत्वगुणवत्त्वेनोपचारात्, विधूननेन=वीजनकेन, तालवृन्तेन=ताले=करतले=वृन्तं=बन्धनमस्येति, तालस्येव वृन्तमस्येति, ताड्यते=करादिनाऽऽहन्यत इति तालम्, उभयोरेकत्वसमणात्, तादृशं वृन्तं यस्येति वा तालवृन्तं=तालपत्रादिरचितं व्यजनं तेन, उपलक्षणमिदं विद्युद्व्यजनादीनामपि, पत्रेण=कमलिनीदलादिना, पत्रभङ्गेन=दलशकलेन, शाखया=वृक्षभुजया, शाखाभङ्गेन=तदेकदेशेन, पिहुनेन=बर्हिबर्हेण (मयूरपिच्छेन) पिहुनहस्तेन=पुञ्जीकृतमयूरपिच्छेन' चैलेन=वस्त्रेण, चैलकर्णेन=अञ्चलेन (वस्त्रप्रान्तेन) हस्तेन=करेण, मुखेन=वदनेन, आत्मनः=स्वस्य कायं=शरीरं बाह्यमपि पुद्गलम्=उष्णदुग्धादिकं वा स्वयं न फूत्कुर्यात् न मुखेन धमेत्, न वीजयेत्=चामरादिना वातं न सञ्चालयेत्, अन्येन वा न फूत्कारयेत्, इत्याद्यन्यत्सुबोधम् ॥४॥१८॥

वायुकायकी यतना कहते है-'से भिक्खू वा०' इत्यादि।

(४) वायुकाययतना।

चाँवरसे, पंखेसे, ताडके बने हुए पंखेसे अथा अन्य बिजली आदिके किसी प्रकार के पंखेसे, कमल आदिके पत्तेसे, पत्तेके टुकड़ेसे, वृक्षकी शाखासे, शाखाके खण्डसे, मयूरके पिच्छसे मयूरके बहुतसे पिच्छोसे, वस्त्रसे, वस्त्रके पल्ले (छोर) से, हाथसे, मुखसे, अपने शरीरको तथा अन्य गरम दूध आदि पुद्गलोको न स्वयं फूँके न चाँवर आदिसे वीजे-वायुका सचालन करे, न दूसरेसे फूँकावे, न वींजावे, न फूँकते हुए तथा वींजते हुए अन्यको भला जाने, इत्यादि सुगम ही है ॥

વાયુકાયની યતના કહે છે-'से भिक्खू वा०' ઇત્યાદિ

(૪) વાયુકાયયતના.

ચામરથી, પંખાથી, તાડના બનાવેલા પંખાથી અથવા અન્ય વિજળી આદિના કોઇ પ્રકારના પંખાથી, કમળ આદિના પાંદડાથી, પાંદડાના ટુકડાથી, વૃક્ષની શાખાથી, શાખાના ખંડથી, મયૂરના પિચ્છથી, મયૂરના અનેક પીંછાથી, વસ્ત્રથી, વસ્ત્રના છેડાથી, હાથથી, મુખથી, પોતાના શરીરને, તથા બીજા ગરમ દૂધ આદિ પુદ્ગલોને નહિ સ્વયં ફૂંકે નહી ચામર આદિથી વીંઝે-વાયુનું સંચાલન કરે નહીં, નહિ બીજા પાસે ફૂંકાવે, તથા ફૂંકનાર તથા વીંઝનાર અન્યને ભલો જાણે નહી. ઇત્યાદિ સરલ છે. (૪) (૧૮)

वनस्पतिकाययतनामाह-'से भिक्खू वा०' इत्यादि

मूलम्--से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय-विरय पडिहयपच्चक्खाय पावकम्मे दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागतो वा सुत्ते वा जागरमाणे वा, से बीएसु वा बीयपइट्ठेसु वा रूढेसु वा रूढपइट्ठेसु वा जाएसु वा जायपइट्ठेसु वा हरिएसु वा हरियपइट्ठेसु वा छिन्नेसु वा छिन्नपइट्ठेसु वा सचित्तेसु वा सचित्तकोलपडिनिस्सिएसु वा न गच्छेज्जा न चिट्ठेज्जा न निसीइज्जा न तुयट्टिज्जा, अन्नं न गच्छाविज्जा न चिट्ठाविज्जा न निसीयाविज्जा न तुयट्टाविज्जा अन्नं गच्छंतं वा चिट्ठंतं वा निसीयंतं वा तुयट्टंतं वा न समणुजाणिज्जा। जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥५॥१९॥

छाया—स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा संयतविरतप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा दिवा वा रात्रौ वा एकको वा परिषद्गतो वा सुप्तो वा जाग्रद्वा, स बीजेषु वा बीजप्रतिष्ठितेषु वा रूढेषु वा रूढप्रतिष्ठितेषु वा जातेषु वा जातप्रतिष्ठितेषु वा हरितेषु वा हरितप्रतिष्ठितेषु वा छिन्नेषु वा छिन्नप्रतिष्ठितेषु वा सचित्तेषु वा सचित्तकोलप्रतिनिश्रितेषु वा न गच्छेन्न तिष्ठेन्न निषीदेन्न त्वग्वर्त्तयेत्, अन्यं न गमयेन्न स्थापयेन्न निषादयेन्न त्वग्वर्त्तयेत्, अन्यं गच्छन्तं वा तिष्ठन्तं वा निषीदन्तं वा त्वग्वर्त्तयन्तं वा न समनुजानीयात्। यावज्जीवया त्रिविधं त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामि। तस्य भदन्त! प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हे आत्मानं व्युत्सृजामि ॥५॥१९॥

(५) वनस्पतिकाययतना.

सान्वयार्थः—संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे = वर्त्तमानकालीन सावद्य व्यापारोंसे रहित, भूत-भविष्यत्कालीन सावद्य व्यापारोंसे रहित, वर्त्तमान काल में स्थिति और अनुभागकी न्यूनता करके, तथा पहले किये हुए अतिचारोंकी निन्दा करके सावद्य व्यापारके त्यागी से = वह पूर्वोक्त भिक्खू वा = साधु भिक्खुणी वा = अथवा साध्वी दिया वा = दिनमें, राओ वा = अथवा रात्रिमें, एगओ वा = अकेला परिसागओ वा = अथवा संघमें स्थित सुत्ते वा = सोया हुआ जागरमाणे वा = अथवा जागता हुआ रहे, वहाँ से =

वह वीएसु वा = शालि आदि बीजों पर, वीयपइट्ठेसु वा = बीजों पर रखे हुए शयन आसन आदि पर, रूढेसु वा = अङ्कुरित वनस्पति पर रूढ पइट्ठिएसु वा = अङ्कुरित वनस्पति पर रखे हुए शयन आसन आदि पर, जाएसु वा = पत्ते आनेकी अवस्थावाली वनस्पति पर, जायपइट्ठेसु वा = पत्ते आनेकी अवस्थावाली वनस्पति पर रखे हुए शयन आसन आदि पर, हरिएसु वा = हरित पर, हरियपइट्ठेसु वा = हरित पर रखे हुए शयन आसन आदि पर, छिन्नेसु वा = कटे हुए हरित पर छिन्नपइट्ठेसु वा = कटे हुए हरित पर रखे हुए शयन आसन पर सचित्तसु वा = फिर अन्य सचित्त अण्डा आदि सहित वनस्पति पर, सचित्तकोलपडिनिस्सिएसु वा = घुने हुए-सडे हुए काठ पर न गच्छेज्जा = गमन न करे, न चिट्ठेज्जा = न खड़ा होवे न निसीइज्जा = न बैठे, न तुअट्टिज्जा = न सोवे, अन्नं = दूसरेको न गच्छावेज्जा = न चलावे न चिट्ठावेज्जा = न खडा करे न निसीयावेज्जा = न बैठावे, न तुअट्टाविज्जा = न सुलावे, गच्छंतं वा = सोते हुए अन्नं = दूसरेको न समणुजाणेज्जा=भला न जाने । जावज्जीवाए = जीवनपर्यन्त (इसको) तिविहं = कृत कारित अनुमोदनारूप तीन करणसे (तथा) तिविहेणं = तीन प्रकारके मणेणं=मनसे वायाए = वचनसे काएणं = कायासे नकरेमि न करूंगा न कारवेमि न कराऊँगा, करंतंपि=करते हुए भी अन्नं = दूसरेको न समणुजानामि = भला नहीं समझूंगा भंते ! हे भगवन् ! तस्स=उस दण्डसे पडिक्कमामि= पृथक् होता हूँ, निंदामि=आत्मसाक्षीसे निन्दा करता हूँ, गरिहामि=गुरुसाक्षीसे गर्हा करता हूँ, अप्पाणं = दण्ड सेवन करनेवाले आत्माको वोसिरामि = त्यागता हूँ ॥५॥१९॥

(५) वनस्पतिकाययतना.

टीका—बीजेषु = शाल्यादिषु, बीजप्रतिष्ठितेषु=बीजोपरिस्थितेषु शयनाऽऽसनादिषु, एवमग्रेऽपि प्रतिष्ठितपदव्याख्या कार्या, रूढेषु=अङ्कुरितेषु, जातेषु=प्ररोहणानन्तरकालिकावस्थां सम्प्राप्तेषु पत्रितेष्वित्यर्थः, हरितेषु = कीरमयूरपक्षसच्छायतां गतेषु, छिन्नेषु = कुठारादिना संछिद्य पृथक्कृतेषु आर्द्रेषु = सचित्तेषु = अन्येष्वपि सजीवाण्डा-

---

वनस्पतिकायकी यतना कहते है—से भिक्खू वा०' इत्यादि ।

(५) वनस्पतिकाययतना

शालि आदि बीजो पर, बीजो पर रक्खे हुए शय्या आसन आदि पर, अंकुरो पर अंकुरोपर रक्खे हुए शयन आदि पर, अकुर अवस्थाके पश्चात् पत्रित अवस्थाको प्राप्त वनस्पतिपर, अथवा उसपर रक्खे हुए शयन आदिपर, कटी हुई वनस्पतिपर, हरी वनस्पतिपर, तथा इनके सिवाय

વનસ્પતિકાયની યતના કહે છે-से भिक्खू वा० ઇત્યાદિ.

(૫) વનસ્પતિકાયયતના.

ડાંગર આદિ બીજો પર, બીજો પર મૂકેલા શય્યા આસન આદિ પર, અંકુરો પર, અંકુરો ઉપર મૂકેલાં શયનાદિ પર, અંકુર અવસ્થા પછી પત્રિત અવસ્થાને પ્રાપ્ત થએલી વનસ્પતિ પર, અથવા તે પર મૂકેલાં શયનાદિ પર, કાપેલી વનસ્પતિ પર, લીલી વનસ્પતિ

दिषु, सचित्तकोलप्रतिनिश्रितेषु=सचित्तैः सचेतनैः, कोलैः=घुणैः प्रतिनिश्रितेषु=आश्रितेषु जीवद्घुणयुक्तकाष्ठादिष्वित्यर्थः, न गच्छेत्, न तिष्ठेत्, न निषीदेत्=नोपविशेत्, न त्वग्वर्त्तयेत्=वर्त्तनं वर्त्तः=परिवर्त्तनम् (भावे घञ्) त्वचः=त्वगिन्द्रियस्य शरीरस्येत्यर्थात् वर्त्तः त्वग्वर्त्तः=वामपार्श्वतः परावृत्त्य दक्षिण पार्श्वेन दक्षिणपार्श्वतः परावृत्त्य वामपार्श्वेन वा स्वपनम्, त्वग्वर्त्तं करोति त्वग्वर्त्तयति (त्वग्वर्त्तशब्दात् 'तत्करोति तदाचष्टे' इति णिचि टिलोपे धातुत्वाल्लडादयः) तस्य विधौ त्वग्वर्त्तयेत्=सुप्यादित्यर्थः ॥५॥१९॥

अथ त्रसकाययतनामाह—'भिक्खू वा०' इत्यादि ।

मूलम्—से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से कीडं वा पयंगं वा कुंथुं वा पिवीलियं वा हत्थंसि वा पायंसि वा बाहुंसि वा ऊरुंसि वा उदरंसि वा सीसंसि वा वत्थंसि वा पडिग्गहंसि वा कंबलंसि वा पायपुच्छणंसि वा रयहरणंसि वा गोच्छगंसि वा उंडगंसि वा दंडगंसि वा पीढगंसि वा फलगंसि वा सेज्जंसि वा संथारगंसि वा अन्नयरंसि वा तहप्पगारे उवगरणजाए तओ संजयामेव पडिलेहिय पडिलेहिय पमज्जिय पमज्जिय एगंतमवणेज्जा नो संघायमावज्जेज्जा ॥६॥२०॥

छाया—स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा संयतविरतप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा दिवा वा रात्रौ वा एकको वा परिषद्गतो वा सुप्तो वा जाग्रद्वा स, कीटं वा पतङ्गं वा कुन्थुं वा पिपीलिकां वा हस्ते वा पादे वा बाहौ वा ऊरौ वा उदरे वा शीर्षे वा वस्त्रे वा पात्रे वा कम्बले वा पादप्रोञ्छनके वा रजोहरणे वा गोच्छे वा उन्दके वा दण्डके वा पीठके वा फलके वा

सजीव अन्डा आदि पर, घुने (सुले) हुए काष्ठ आदिपर न स्वयं गमन करे, न खड़ा होवे, न बैठे, तथा बाँयाँ पसवाडा बदलकर दाहिने पसवाडेसे और न दाहिना पसवाडा बदलकर बाये पसवाडे से सोवे अर्थात् पसवाड़ा न बदले, ये सब क्रियाएँ दूसरे से भी न करावे, न करते हुए को भला जाने। इसलिए तीन करण तीन योगसे इनका त्याग करता हूँ, इत्यादि व्याख्यान पूर्ववत् ॥५॥१९॥

પર તથા એ ઉપરાંત સજીવ ઇંડા આદિ પર, સડેલા કાષ્ઠ આદિ પર નહિ હું સ્વયં ગમન કરૂં, નહીં ઉભો રહું, નહીં બેસું, તથા ડાબું પડખું બદલીને જમણે પડખે અને જમણું પડખું બદલીને ડાબે પડખે નહીં સૂવું અર્થાત્ પડખા નહીં બદલું, એ બધી ક્રિયાઓ બીજા પાસે નહીં કરાવું, નહીં કરનારને ભલો જાણું. એ રીતે ત્રણ કરણ ત્રણ યોગથી એનો ત્યાગ કરૂં છું ઇત્યાદિ વ્યાખ્યાન પૂર્વવત્ (૫) (૧૯)

शय्यायां वा संस्तारके वा अन्यतरस्मिन् वा तथाप्रकारे उपकरणजाते ततः संयत एव प्रत्युपेक्ष्य२ प्रमृज्य२ एकान्तेऽपनयेन्नैनं संघातमापादयेत् ॥६॥२०॥

(६) त्रसकाययतना.

सान्वयार्थः—संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे = वर्त्तमानकालीन सावद्य व्यापारों से रहित, भूत-भविष्यत्कालीन सावद्य व्यापारोंसे रहित, वर्त्तमान कालमें भी स्थिति और अनुभागकी न्यूनता करके तथा पहले किये हुए अतिचारोंकी निन्दा करके सावद्य व्यापारके त्यागी से=वह पूर्वोक्त भिक्खू वा=साधु भिक्खुणी वा=अथवा साध्वी दिया वा=दिनमें राओ वा = अथवा रात्रिमें एगओ वा अकेला परिसागओ वा=अथवा संघमें स्थित सुत्ते वा=सोया हुआ अथवा जागरमाणे वा = जागता हुआ रहे, वहां से=वह कीडं वा = कीडेको पयंगं वा = पतंगेको कुंथुं वा = कुंथुवाको पिवीलियं वा = कीडी-चिऊंटीको हत्थंसि वा हाथ पर पायंसि वा = पैरपर बाहुंसि वा = भुजापर ऊरुंसि वा= जांघपर उदरंसि वा = पेट पर सीसंसि वा = सिरपर वत्थंसि वा = वस्त्रपर पडिग्गहंसि वा = पात्रपर कंबलंसि वा = कम्बल पर पायपुच्छणंसि वा = पैर पोछनेके उपकरणविशेष पर रयहरणंसि वा = रजोहरण पर गोच्छगंसि वा = पूजनी पर उंडगंसि वा = स्थण्डिलपात्र पर दंडगंसि वा = दंड पर पीढगंसि वा = चौकी पर फलगंसि वा = पाटे पर सेज्जंसि वा = शरीरपरिमित शयन करनेके उपकरण पर संथारगंसि वा = संस्तारक-साढे तीन हाथ परिमित बिछौने पर (अथवा) अन्नयरंसि वा = फिर दूसरे तहप्पगारे = इसी प्रकार के उवगरणजाए = उपकरणो पर (लगे हुए पूर्वोक्त कीडे आदिको) तओ = उस स्थान—हाथ पैर आदिसे संजयामेव = यतनाके साथही पडिलेहिय२ = बार-बार प्रतिलेखन करके पमज्जिय२ = बार-बार पूंजकर एगंतं = एकान्त—निरुपद्रव स्थान-में अवणेज्जा = ले जाकर रखदे. (किन्तु उनको) नो णं संघायमावज्जेज्जा=एकट्ठा न करे ॥२०॥

(६) त्रसकाययतना ।

टीका—हस्ते, पादे, बाहौ, ऊरौ = जानूपरिभागे, उदरे, शीर्षे, वस्त्रे = मुख-वस्त्रिकाचोलपट्टादौ, प्रतिग्रहे = प्रतिगृण्हाति = आधत्ते स्वस्मिन् भक्तपानादिकमिति प्रतिग्रहः

अब त्रसकायकी यतना कहते है—'से भिक्खू वा०' इत्यादि ।

(६) त्रसकाययतना ।

हाथ, पैर, भुजा, जाँघ, उदर, मस्तक, मुखवस्त्रिका, चोलपट्ट आदि वस्त्र, पात्र, कम्बल, पाद–प्रोञ्छन=पैर पोछने का वस्त्रखण्ड, रजोहरण, गोछा=पूँजनी (पैरोमें लगी हुई रजको पोछने

હવે ત્રસકાયની યતના કહે છે–'से भिक्खू वा०' ઇત્યાદિ

(૬) ત્રસકાયયતના.

હાથ, પગ, ભુજા, જાંઘ, ઉદર, મસ્તક, મુખવસ્ત્રિકા, ચોળપટા આદિ વસ્ત્ર પાત્ર, કામળી, પગલૂંછણુ, રજોહરણુ, પૂંજણી, સ્થંડિલપાત્ર, વૃદ્ધાવસ્થાઆદિને કારણે ચાલવામાં

=पात्रं तस्मिन्, कम्बले, पादप्रोञ्छने = प्रोञ्छ्यते = प्रमृज्यतेऽनेनेति प्रोञ्छनं = प्रमार्जनसाधनम्, पादयोः प्रोञ्छनं = पादप्रोञ्छनं तस्मिन् = पादप्रोञ्छन-साधने वस्त्रखण्डे, रजोहरणे, गोच्छे सचित्तरजः -संसृष्टचरणप्रमार्जनिकाम् 'पूँजनी' इति भाषाप्रसिद्धाम्, उण्डके = स्थलिण्डपात्रे, दण्डे वृद्धत्वादिना प्रस्थानविप्लवगतिभिरवलम्बनाय धार्यमाणे, नान्यथा, "थेराणं थेरभूमिपत्ताणं कप्पइ दंडए वा" इत्यादिना स्थविर-स्थविरभूमिप्राप्तातिरिक्तमुनीनां दण्डाग्राह्यत्वस्य भगवता स्पष्टं प्रतिपादितत्वात्, पीठके = काष्ठनिर्मितचतुरस्राद्यासनविशेषे ',चौकी, चौरंग' इति–भाषाप्रसिद्धे, फलके = शयनोपयोगिकाष्ठविरचितपट्टादिरूपे, शय्यायां = शयनोपकरणरूपायां वसतौ वा, अस्या अपि धर्मोपकरणत्वात्, संस्तारके = संस्तार्यते=विस्तार्यते शयनार्थिभिरिति संस्तारः (सं+स्तृञः कर्मणि घञ्) स एव संस्तारकः = (स्वार्थिकः कः) अर्द्धतृतीयहस्तप्रमाणस्तस्मिन्, दर्भादिनिर्मितास्तरणे इत्यर्थः । अन्यतरस्मिन् वा तथाप्रकारे = तत्सदृशे संयमोपयोगिनि उपकरणजाते = उपक्रियन्ते = उपयुज्यन्ते संयमादिदार्ढ्यकृते यानि तान्युपकरणानि–साधूनां संयमसाधनाङ्गीभूतोपकारकवस्त्रपात्रादीनि तेषां जातं = समूहस्तस्मिन् उपकरणमात्रे इत्यर्थः, समापतितं कीटादिकत्रसजीवम्, ततःतस्मात् हस्तादेः स्थानात् संयत एव=सम्यग् यतमान एव 'सजयामेव' इति मूलपाठे आर्षत्वाद्दीर्घो मकारश्च, प्रतिलेख्य२=प्रत्यवेक्ष्य२ सम्यगवलोक्येत्यर्थः, प्रमृज्य२ = पौनःपुन्येन प्रमार्जनिकादिद्वारा निस्सार्य एकान्ते = निरुपद्रवस्थाने अपनयेत् = नीत्वा स्थापयेत् किन्तु संघातम् = एकत्र पुञ्जीकरणेन पीडाजनकपरस्परशरीरसंघर्षकारणदृढसंयोगं सामान्येन सम्मेलन वा नो = नैव आपादयेत् = सम्प्रापयेत्

का उपकरण), स्थण्डिलपात्र, वृद्धावस्था आदि के कारण गमन करनेमें असमर्थ मुनिके (चलनेमें) सहायक दण्ड, क्योंकि भगवानने "स्थविर और स्थविरभूमिको प्राप्त मुनियोंको ही दण्ड धारण करना कल्पनीय है" ऐसा कहा है, अन्यको दण्ड धारण करना मना है । अत एव उनके द्वारा गृहीत दण्ड पर तथा चौकी पाटा (पट्ट) शय्या अर्थात् उपाश्रय, क्योंकि यह भी एक धर्मोपकरण है, सस्तारक अर्थात् दर्भ आदिका बिछौना, तथा सयममें उपयोगी इस प्रकार का अन्य कोई उपकरण, इन सबमें कीट आदि त्रस जन्तु हो तो उन्हे सयमी स्वयं सम्यक् प्रकार प्रतिलेखन करके बार-बार पूँजनी आदिसे पूँजकर बाधारहित एकान्त स्थानमें यतनासे रक्खे, किन्तु उन्हें

અસમર્થ મુનિનો સહાયક એવો દંડ, કારણ કે ભગવાને "સ્થવિર અને સ્થવિર ભૂમિને પ્રાપ્ત મુનિઓને માટે જ દંડ ધારણ કલ્પનીય છે' એવું કહ્યું છે, અન્યને દંડ ધારણની મનાઈ છે, એટલે એમણે ધારણ કરેલા દંડ પર, તથા ચોકી, પાટ, શય્યા અર્થાત્ ઉપાશ્રય કારણ કે એ પણ એક ધર્મોપકરણ છે સસ્તારક અર્થાત્ દર્ભ આદિનું બિછાનું, તથા સંયમમા ઉપયોગી એ પ્રકારના અન્ય કોઈ ઉપકરણો, એ સર્વમાં કીડી–કીડા આદિ ત્રસ જંતુ હોય તો તેને સયમી સ્વયં સમ્યક્ પ્રકારે પ્રતિલેખન કરીને વારંવાર પૂંજણી આદિથી પૂંજીને બાધારહિત એકાન્ત સ્થાનમા યતનાથી મૂકે, પરન્તુ એને એકઠા કરીને ન રાખે,

'ण' -मिति वाक्यालङ्कारे। 'संघातो दृढसंयोगः' इति वाचस्पत्यम्। यत्तु केचित्-एकान्तप्रदेशे रक्षार्थं त्रसजीवानां स्थापने साधूनामसंयतिवैयावृत्त्यदोषेण महाव्रतभङ्गो भवतीत्याहुस्तदेतद्भगवदाज्ञाविरुद्धम्, अनेनापि सूत्रेण धर्मोपकरणस्थानां त्रसजीवानां निरुपद्रवप्रदेशे रक्षार्थं यतनया स्थापनविधानात् ।६। ॥२०॥

इत्येवं षट्काययतनामभिधाय सम्प्रति तदपरिपालनपरिणामदारुणत्वं वर्ण्यते-'अजयं चरमाणो' इत्यादि।

१ २ ५ ३ ४
मूलम्—अजयं चरमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ।
८ ६ ७ ९ १० १३ १२ ११
बंधई पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं ॥१॥

छाया—अयतं चरंश्च, प्राणभूतानि हिनस्ति।
बध्नाति पापकं कर्म, तत्तस्य भवति कटुकं फलम् ॥१॥

यतना न पालन करने का बुरा फल कहते हैं—

सान्वयार्थः—अजयं= अयतनापूर्वक चरमाणो=गमन करता हुआ साधु पाणभूयाइं =त्रस स्थावर जीवोंकी हिंसइ=हिंसा करता है य=और पावयं कम्मं=पापकर्मको बंधई =बांधता है, तं=उस कारण से=उस पाप कर्मका फलं=फल कडुयं=दुःखदायी होइ =होता है ॥१॥

इकट्ठा करके न रक्खे, क्योकि ऐसा करनेसे उनको पीडा होने की सभावना है। कितनेक कहते है कि-रक्षाके लिए त्रस जीवको एकान्त स्थानमें रखनेमें साधुको असयति की वेयावच करनेरूप दोष लगता है और उससे महाव्रतका भग होता है। यह उनका कहना भगवानकी आज्ञासे विरुद्ध है, क्योकि इस सूत्रसे भगवानने स्पष्ट विधान किया है कि धर्मोपकरणमें स्थित त्रस जीवोको रक्षा के लिए निरुपद्रव स्थानमें यतनासे रखना चाहिये ॥६॥२०॥

इस प्रकार षट्कायकी यतना कहकर "उसकी रक्षा नहीं करनेसे भयंकर परिणाम होता है" इस बातका उपदेश देते है-'अजय चरमाणो' इत्यादि।

यतना रहित गमन करनेवाला सयत (साधु) द्वीन्द्रिय आदि प्राणोकी तथा एकेन्द्रिय पृथ्वीकाय आदि भूतोकी अर्थात् त्रस और स्थावर जीवोकी हिसा करता है, और ज्ञानोवरणीयादि पाप

કારણ કે એમ કરવાથી તેમને પીડા થવાની સંભાવના રહે છે કેટલાકો કહે છે કે રક્ષાને માટે ત્રસ જીવને એકાત સ્થાનમા રાખવામાં સાધુને અસંયતિની વૈયાવચ્ચ કરવા રૂપ દોષ લાગે છે અને તેથી મહાવ્રતનો ભગ થાય છે. એમનુ એવું કથન ભગવાનની આજ્ઞાથી વિરૂદ્ધ છે, કારણ કે આ સૂત્રથી ભગવાને સ્પષ્ટ વિધાન કર્યું છે કે ધર્મોપકરણમાં સ્થિત ત્રસ જીવોની રક્ષાને માટે નિરૂપદ્રવ સ્થાનમા યતનાથી તેમને મૂકવા જોઇએ (૬) (૨૦)

એ રીતે ષટ્કાયની યતના કહીને 'એમની રક્ષા નહિ કરવાથી ભયકર પરિણામ આવે છે, એ વાતનો ઉપદેશ આપે છે-અજયં ચરમાણો ઇત્યાદિ

યતનારહિતપણે ગમન કરનાર સંયત (સાધુ) દ્વીન્દ્રિય આદિ પ્રાણોની તથા એકેન્દ્રિય પૃથિવીકાય આદિ ભૂતોની અર્થાત્ ત્રસ અને સ્થાવર જીવોની હિસા કરે છે અને જ્ઞાનાવરણી-

टीका-अयतं=यतनारहितं यथास्यात्तथा चरन्=गच्छन् 'संयतः' इति शेषः, प्राण-भूतानि=प्राणन्तीति प्राणाः=उच्छ्वासादिमन्तो द्वीन्द्रियप्रभृतयो जीवाः, भूतानि=भवनशीला एकेन्द्रिया पृथिव्यादयः, प्राणाश्च भूतानि चेति प्राणभूतानि (द्वन्द्वत्वात्परवल्लिङ्गता) तानि=त्रसस्थावराणीत्यर्थः, हिनस्ति=हन्ति, च=तथा पापकं=पं=पङ्किलमर्थान्मलिनं भावमापयति,=प्रापयतीति, प=क्षेमम् आ=समन्तात् पिबति=नाशयतीति, पानं-पास्तमर्थात्प्राणिनामात्मानन्दरसपानम् आप्नोति प्राप्नोति=गृह्णातीति, नरकादिकुगतिषु जीवन पातयतीति, कर्मरजोभिरात्मान पांशयति[1] =मलिनयतीति वा पापं तदेव पापकं =(कुत्सायां कन्) ज्ञानावरणीयादि, कर्म=तत्समवन्ध्यतिसूक्ष्मपुद्गलसञ्चयं बन्धाति= उपार्जयति, तत्=तेन हेतुना, तस्य=पापकर्मणः फलं=परिणतिः कटुकं=दुःखदम्, यद्वा 'कटुकफल' मिति च्छाया, तत्=पापकर्म तस्य अयतनया गच्छतः कटुकफलं= कटुकम् अनिष्टं फलं=परिणामो यस्य तत् अशुभफलप्रदमित्यर्थः. भवति=जायते। अत्र पक्षे 'कटुक'-मित्यत्रानुस्वार आर्षत्वात् ॥१॥

मूलम्-अजयं[1] चिट्ठमाणो[2] य[5] पाणभूयाइं[3] हिंसइ[4]।
बंधई[8] पावयं[6] कम्मं[7] तं[9] से[10] होइ[13] कडुयं[12] फलं[11] ॥२॥

छाया--अयतं तिष्ठंश्च, प्राणभूतानि हिनस्ति।
बन्धाति पापकं कर्म, तत्तस्य भवति कटुकं फलम् ॥२॥

सान्वयार्थः अजयं=अयतनापूर्वक चिट्ठमाणो=खड़ा होता हुआ साधु पाणभू-

---

कर्मका उपार्ज करता है। पाप (१) मलिनताको प्राप्त कराता है, (२) नरक आदि अधोगतिमें पहुँचाता है, (३) आत्माके हितका नाश करता है, (४) प्राणियो के आत्मिक आनन्द रसको सुखा डालता है, (५) आत्माको कर्मरूपी रजसे मलिन कर देता है, इसलिए उसे पाप कहते है। अर्थात् अयतनापूर्वक प्रवृत्ति करनेसे जीवोंकी हिंसा होती है, और ज्ञानावरणीय आदि अशुभ कर्मोंका वन्ध भी होता है, और उस पापकर्मका परिणाम दुखदायी होता है, तथा उसका कडुआ फल भोगना पडता है ॥१॥

યાદિ પાપકર્મનું ઉપાર્જન કરે છે પાપ-(૧) મલિનતાને પ્રાપ્ત કરાવે છે, (૨) નરક આદિ અધોગતિમા પહોચાડે છે, (૩) આત્માના હિતનો નાશ કરે છે, (૪) પ્રાણીઓના આત્મિક આનંદ રસને સુકાવી નાખે છે (૫) આત્માને કર્મરૂપી રજથી મલિન કરી નાંખે છે, તેથી તેને પાપ કહે છે અર્થાત્ અયતનાપૂર્વક પ્રવૃત્તિ કરવાથી જીવોની હિંસા થાય છે અને જ્ઞાનાવરણીય આદિ અશુભ કર્મોનો બંધ પણ ઉત્પન્ન થાય છે. એ પાપકર્મનુ પરિણામ દુઃખદાયી આવે છે, તથા એનાં કડવાં ફળ ભોગવવા પડે છે (૧)

---

१ पांशयति=पांशु-धूलि, 'पांशुर्ना न द्वयो रजः' इत्यमरः' सोऽस्यास्तीति पांशुमान् पांशुमन्तं करोति पांशयति 'तत्करोति तदाचष्टे' इति णिचीष्ठवद्भावात् 'विन्मतोर्लुग्' इति मतुपो लुक्' तत्तष्टिलोपः।

याइं = त्रस स्थावर जीवोंकी हिंसइ = हिंसा करता है य = और पावयं कम्मं = पाप कर्मको बंधई = बांधता है, तं = उस कारण से = पापकर्म का फलं = फल कडुयं = दुःखदायी होइ = होता है ॥२॥

टीका—'अजयं चिट्ठमाणो' इत्यादि। अयतं = यतनारहितं तिष्ठन् = करचरणादिप्रसारणेनाऽनवहितं दण्डवदूर्ध्वावस्थानं कुर्वन्। प्राग्वद्व्याख्येयम् ॥२॥

१ २ ५ ३ ४
मूलम्–अजयं आसमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ।
८ ६ ७ ९ १० १३ १२ ११
बंधई पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं ॥३॥

छाया—अयतमासीनश्च, प्राणभूतानि हिनस्ति।
बध्नाति पापकं कर्म, तत्तस्य भवति कटुकं फलम् ॥३॥

सान्वयार्थः-अजयं=अयतना-पूर्वक आसमाणो=बैठता हुआ साधु पाणभूयाइं=त्रस स्थावर जीवोंकी हिंसइ=हिंसा करता है, य और पावयं कम्मं=पापकर्मको बंधई=बांधता है, तं=उस कारण से=उस पापकर्म का फलं=फल कडुयं=दुःखदायी होइ=होता है ॥३॥

टीका—'अजयं आसमाणो' इत्यादि। अयतमासीनः=प्रमार्जन विनाऽनुपयुक्तोऽनवहित उपविशन्नित्यर्थः। शेषं पूर्ववत् ॥३॥

१ २ ५ ३ ४
मूलम्–अजयं सयमाणो य पाणभूयाइं हिंसइ।
८ ६ ७ ९ १० १३ १२ ११
बंधई पावयं कम्मं. तं से होइ कडयं फलं ॥४॥

छाया—अयतं स्वपंश्च, प्राणभूतानि हिनस्ति।
बध्नाति पापकं कर्म, तत्तस्य भवति कटुकं फलम् ॥४॥

सान्वयार्थः–अजयं=अयतना पूर्वक सयमाणो=सोता हुआ साधु पाणभूयाइं=त्रस-स्थावर जीवोंकी हिंसइ=हिंसा करता है, य=और पावयं कम्मं=पापकर्मको बंधई=बांधता है, तं=उस कारण उस पापकर्म का फलं=फल कडुयं=दुःखदायी होइ=होता है ॥४॥

टीका—'अजयं सयमाणो' इत्यादि अयतं स्वपन्=शय्या प्रमार्जनादिकं विना प्रकामशय्यादिना दिवसे वा शयानः। शेषं पूर्ववत् ॥४॥

"अजय चिट्ठमाणो' इत्यादि। अयतनापूर्वक खडा होने,,से पापकर्म बंधता है और उसका कडुआ फल होना ॥२॥

'अजयं आसमाणो' इत्यादि। भूमि आदिकी विना प्रमार्जना किये ही अयतनापूर्वक बैठनेसे पापकर्म बधता है और उसका कडुआ फल होता है ॥३॥

'अजयं चिट्ठमाणो' ઇત્યાદિ અયતનાપૂર્વક ઊભા રહેવાથી પાપકર્મ બંધાય છે અને તેના કડવા ફળ આવે છે (૨)

'अजयं आसमाणो' ઇત્યાદિ ભૂમિ આદિની પ્રમાર્જના કર્યા વિના અયતનાપૂર્વક બેસવાથી પાપકર્મ બંધાય છે, અને તેનાં કડવાં ફળ મળે છે. (૩)

१ २ ५ ३ ४
मूलम्–अजयं भुंजमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ ।
८ ६ ७ ९ १० १३ १२ ११
बंधई पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं ॥५॥

छाया—अयतं भुञ्जानश्च, प्राणभूतानि हिनस्ति ।
बध्नाति पापकं कर्म, तत्तस्य भवति कटुकं फलम् ॥५॥

सान्वयार्थः–अजयं=अयतना-पूर्वक भुंजामाणो=खाता हुआ साधु पाणभूयाइं=त्रस-स्थावर जीवोंकी हिंसइ=हिंसा करता है, य=और पावयं कम्मं=पाप-कर्मको बंधता है, तं=उस कारण से=उस पापकर्मका फलं=फल कडुयं=दुःखदायी होइ=होता है ॥५॥

टीका—'अजयं भुंजमाणो' इत्यादि । अयतं भुञ्जानः=यथाकल्पलब्धान्त प्रान्ताद्याहारं संयोजनादिमण्डलदोषापरिहारेण चपड़-चपड़-शब्दपूर्वकमभ्यवहरन् । अन्यत् सुबोधम् ॥५॥

१ २ ५ ३ ४
मूलम्–अजयं भासमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ ।
८ ६ ७ ९ १० १३ १२ ११
बंधई पावयं कम्मं, तं से होइ कडुअं फलं ॥६॥

छाया—अयतं भाषमाणश्च, प्राणभूतानि हिनस्ति ।
बध्नाति पापकं कर्म, तत्तस्य भवति कटुकं फलम् ॥६॥

सान्वयार्थः–अजयं=अयतना-पूर्वक= भासमाणो=बोलता हुआ साधु पाणभूयाइं=त्रस स्थावर जीवोंकी हिंसइ=हिंसा करता है, य=और पावयं कम्म=पापकर्मको बंधई=बांधता है, तं=उस कारण से=उस पापकर्मके फलं=फल कडुयं=दुःखदायी होइ=होता है ॥६॥

टीका—'अजयं भासमाणो' । इत्यादि । अयतं भाषमाणः=अयतनया ब्रुवन् । ननु यतनापूर्वकभाषणार्थमेव मुनिर्मुखवस्त्रिकां बध्नातीति त प्रति पुनरयं विधि-

---

'अजय सयमाणो' इत्यादि । अयतनासे अर्थात् शय्याकी प्रमार्जना न करके शयन करनेसे पापकर्म बंधता है और उसका कडुआ फल होता है ॥४॥

'अजयं भुंजमाणो' इत्यादि । साधुके कल्पके अनुसार प्राप्त हुए आहारका सयोजना आदि मण्डल दोषोका परित्याग न करके 'चपड–चपड़' आदि शब्द करते हुए भोजन करनेसे पापकर्म बंधता है और उसका फल कडुआ होता है ॥५॥

'अजय भासमाणो' इत्यादि । अयतनापूर्वक भाषण करनेसे हिंसा होती है और पापकर्मका

अजयं सयमाणो ઇત્યાદિ અયતનાથી અર્થાત્ શય્યાની પ્રમાર્જના કર્યા વિના શયન કરવાથી પાપકર્મ બંધાય છે અને એના કડવા ફળ મળે છે (૪)

अजयं भुंजमाणो ઇત્યાદિ સાધુના કલ્પને અનુસાર પ્રાપ્ત થએલા આહારના સંયોજના આદિ મંડલ દોષોનો પરિત્યાગ કર્યા વિના 'ચપડ–ચપડ' અવાજ કરતા ભોજન કરવાથી પાપકર્મ બંધાય છે. અને તેના કડવા ફળ આવે છે (૫)

र्थ्यर्थ एवेति चेन्न, यथाविधिनिबद्धमुखवस्त्रिकस्यापि मुनेरनृतकर्कशादिसावद्य-भाषणेऽना-वृतमुखेन भाषणवदयतना भवतीति सर्वथा भाषासमितिसमाराधनाऽवधानमाधातुमस्योपदेशस्य सार्थक्यात् । शेषं पूर्ववद्व्याख्येयम् ॥६॥

मूलम्-कहं चरे कहं चिट्ठे कहमासे कहं सए ।
कहं भुंजंतो भासंतो, पावकम्मं न बंधई ॥७॥

छाया--कथं चरेत् कथं तिष्ठेत्, कथमासीत कथ शयीत ।
कथं भुञ्जानो भाषमाणः, पापकर्म न बध्नाति ॥७॥

सान्वयार्थः-शिष्य पूछता है-(अगर ऐसा है तो हे गुरु महाराज !)कहं=कैसे चरे=गमन करे ?, कहं=कैसे चिट्ठे=खड़ा हो ?, कहं=कैसे आसे=बैठे ?, कहं=कैसे सए=सोवे ?, कहं=किस प्रकार भुंजतो=आहार करता हुआ (तथा) भासंतो=बोलता हुआ पावकम्मं=पापकर्म न बंधई=नहीं बांधता है ॥७॥

शिष्यः पृच्छति-'कह चरे' इत्यादि ।

टीका--हे भगवन् ! यद्येवं तर्हि संयतः कथं=केन प्रकारेण चरेत्=विहरेत् ?, कथं

बन्ध होता है । उस पापकर्मका फल कडुआ होता है ।

प्रश्न-हे गुरु महारज ! अयतनाको दूर करनेके लिए ही मुखवस्त्रिका मुख पर बाँधी जाती है, फिर उनके प्रति 'अजय भासमाणो य' ऐसा उपदेश देना कैसे सगत है ?।

उत्तर-हे शिष्य ! सुनो, मुख पर मुखवस्त्रिका सदा बाँधी रहने पर भी असत्य कर्कश कठोर आदि बोलनेसे तथा सावद्य उपदेश देनेसे उसी प्रकार अयतना होती है जिस प्रकार खुले मुख बोलनेसे होती है । साधुको भाषासबन्धी सब प्रकारकी अयतनाका त्याग करना चाहिए इस-लिए यह अयतनाके त्यागका उपदेश दिया गया है ॥६॥

शिष्य पूछता है-'कहं चरे०' इत्यादि ।

हे भगवन् ! यदि ऐसा है तो मुनि कैसे चले ? कैसे खडा रहे ? कैसे बैठे ? कैसे शयन

अजय भासमाणो ઇત્યાદિ અયતનાપૂર્વક ભાષણ કરવાથી હિંસા થાય છે અને પાપકર્મ બધાય છે. એ પાપકર્મના ફળ કડવા આવે છે

પ્રશ્ન-હે ગુરૂ મહારાજ ! અયતનાને દૂર કરવાને માટે મુખવસ્ત્રિકા મુખ પર બાધવામાં આવે છે, પછી તેમની પ્રત્યે 'अजयं भासमाणो य' એવો ઉપદેશ આપવો કેવી રીતે સંગત છે ?

ઉત્તર—હે શિષ્ય ! મુખ પર મુખવસ્ત્રિકા સદા બાધી રહેવા છતા પણ અસત્ય કર્કશ કઠોર આદિ બોલવાથી તથા સાવદ્ય ઉપદેશ આપવાથી એવા પ્રકારની અયતના થાય છે કે જેવા પ્રકારની અયતના ઉઘાડે મ્હોએ બોલવાથી થાય છે સાધુએ ભાષાસંબધી સર્વ પ્રકારની અયતનાનો ત્યાગ કરવો જોઈએ, તેથી આ અયતનાના ત્યાગનો ઉપદેશ આપવામા આવ્યો છે (૬)

શિષ્ય પૂછે છે-'कह चरे०' ઇત્યાદિ

=केन प्रकारेण तिष्ठेत्=स्थितो भवेत् ?, कथं=केन रूपेण आसीत=उपविशेत् ?, कथं शयीत=स्वप्यात् ?, कथं वा भुञ्जानः=अभ्यवहरमाणः, भाषमाणश्च पापकर्म=व्याख्यातपूर्वं न बध्नाति ? ॥७॥

मूलम्—जयं[1] चरे[2] जयं[3] चिट्ठे[4], जयमासे[5][6] जयं[7] सए[8]
जयं[9] भुंजंतो[10] भासंतो[11], पावकम्मं[12] न[13] बंधई[14] ॥८॥

छाया—यतं चरेद् यतं तिष्ठेद्, यतमासीत यतं शयीत ।
यतं भुञ्जानो भाषमाणः, पापकर्म न बध्नाति ॥८॥

सान्वयार्थः—गुरु महाराज उत्तर देते हैं—जयं=यतनापूर्वक चरे=गमन करे जयं=यतनापूर्वक चिट्ठे=खड़ा होवे जयं=यतनापूर्वक आसे=बैठे जयं=यतना पूर्वक सए=सोवे (और) जयं=यतना पूर्वक भुजतो=खाता हुआ तथा भासंतो=बोलता हुआ पावं कम्मं=पापकर्म न बंधई=नहीं बांधता है ॥८।

टीका—यतम्=ईर्यादिसमितिसमन्वितं यथा तथा चरेत्=विहरेत्, यतं तिष्ठेत्=करचरणादिकमविक्षिपन् समग्रहितो दण्डावस्थितिं विदध्यात्, यतमासीत=यतनया—हस्तपादाद्याकुञ्चनप्रसारणादिकमकुर्वन् सोपयोगमुपविशेत्—दृढासनादिना स्थिरः सन्नावश्यककार्यमन्तरेण नेतस्ततो भ्रम्येदित्यर्थः, यतं शयीत=प्रकाम-शयनीयादिपरिहारेण स्वप्यात्, यतं भुञ्जानः=यथाकल्पप्राप्ताहारं संयोजनादिमण्डलदोषवर्जनपुरस्सर 'चपड-चपड़' इति-

करे ? कैसे आहार करे ? और कैसे बोले ? जिससे पापकर्म न बंधने पावे ॥७॥

गुरु महारज उत्तर देते है—'जयं चरे०' इत्यादि ।

हे शिष्य ! संयत ईर्यासमितियुक्त होकर चले, यतनासे खड़ा रहे, अर्थात् हाथ—पैर न हिलाता हुआ सावधान होकर दडकी तरह खडा रहे यतनासे बैठे अर्थात् वृथा हाथ पैर न हिलावे, उपयोग-सहित दृढासन आदिसे बैठे, विना कार्यके इधर उधर न हिले, यतनासे शयन करे अर्थात प्रकाम शय्याका परिहार करता हुआ सोवे, यतनासे आहार करे अर्थात् जैसा निरवद्य आहार मिल जाय उसीमे सन्तुष्ट रहे और 'चपड़-चपड' आदि शब्द न करते हुए भोजन करे, न भोजन

હે ભગવન્ ! જો એમ છે તો મુનિ કેવી રીતે ચાલે ? કેવી રીતે ઉભો રહે ? કેવી રીતે બેસે ? કેવી રીતે સૂએ ? કેવી રીતે આહાર કરે ? અને કેવી રીતે બોલે ? કે જેથી પાપ કર્મ બંધવા ન પામે ? (૭)

ગુરૂ મહારાજ ઉત્તર આપે છે—'जयं चरे०' ઇત્યાદિ

હે શિષ્ય ! સંયત ઇર્યાસમિતિયુક્ત થઈને ચાલે, યતનાથી ઉભો રહે, અર્થાત્ હાથ—પગ ન હલાવે ને દંડની જેમ ઉભો રહે યતનાથી બેસે અર્થાત્ વૃથા હાથ—પગ ન હલાવે ઉપયોગ સહિત દૃઢાસન આદિથી બેસે, કાર્ય વિના આમ—તેમ હલે નહીં, યતનાથી શયન કરે, યતનાથી આહાર કરે, અર્થાત્ જે નિરવદ્ય આહાર મળી જાય તેમાં જ સંતુષ્ટ રહે અને 'ચપડ—ચપડ' અવાજ કર્યા વિના ભોજન કરે, ભોજનમાં રાગ—દ્વેષ ન કરે યતનાથી

शब्दमकुर्वाणोऽभ्यवहरमाणः, यतं भाषमाणः=निबद्धमुखवस्त्रिकः सन् हितमितमृद्वादिनिरवद्यभाषयाऽवसरे समालपन् पापकर्म न बध्नाति=न बध्नीयात् ॥८॥

किञ्च-'सव्वभूय०' इत्यादि ।

मूलम्-सव्वभूयप्पभूयस्स, सम्मं भूयाइं पासओ ।
पिहिआसवस्स दंतस्स, पावकम्मं न बंधई ॥९॥

छाया—सर्वभूतात्मभूतस्य, सम्यग् भूतानि पश्यतः ।
पिहितास्रवस्य दान्तस्य, पापकर्म न बध्यते ॥९॥

सान्वयार्थः-सव्वभूयप्पभूयस्स=सब प्राणियोंको अपने समान समझनेवाले सम्मं=सम्यक् प्रकार-आगमानुसार भूयाइं=जीवोंको पासओ=देखने-समझने-वाले पिहिआसवस्स=आस्रवको रोकनेवाले दंतस्स=जितेन्द्रिय साधुके पावकम्मं=पापकर्म न बंधई=नहीं बंधता है ॥९॥

टीका—सर्वभूतात्मभूतस्य=सर्वाणि च तानि भूतानि सर्वभूतानि=एकेन्द्रियादारभ्य पञ्चेन्द्रियपर्यन्तं सर्वे जीवास्तेषु आत्मभूतः=आत्मसदृशः, जीव आत्मानं रक्षितुं यथा प्रयतते तथा यथाविधिसकलजीवरक्षासावधान इत्यर्थः, तस्य, भूतानि सम्यक्=प्रवचनप्रतिपादितस्वरूपेण पश्यतः=प्रेक्षमाणस्य निखिलप्राणिगणस्वरूपं याथातथ्येन पर्यालोचयत इत्यर्थः । पिहितास्रवस्य=पिहिताः=आच्छादिता आस्रवाः=कर्मागमहेतवो येन स पिहितास्रवः=प्रतिरुद्धकर्मद्वारस्तस्य; दान्तस्य=दमयति वशं नयति इन्द्रियाऽश्वानिति दान्तः=जितेन्द्रियस्तस्य पापकर्म न बध्यते=तस्य पापलेपो न जायत इत्यर्थः ॥९॥

में राग-द्वेष करे । यतनासे भाषण करे अर्थात् हित मित मधुर और निरवद्य भाषा बोले, खुले मुंह न बोले, तथा कर्कश कठोर शब्दोका उच्चारण न करे और निष्प्रयोजन न बोले । ऐसा करनेसे पापकर्म नहीं बंधता है ॥८॥

और-'सव्वभूय०' इत्यादि ।

समस्त प्राणियोमें आत्मतुल्य बुद्धि रखनेवाले, तथा आगमके अनुसार जीवोंका स्वरूप समझनेवालेको, कर्मोके आगमनके कारण (आस्रव) का निरोध करनेवालेको पापकर्मका बंध नहीं होता है ॥९॥

ભાષણ કરે અર્થાત્ હિત મિત મધુર અને નિરવદ્ય ભાષા બોલે, ખુલે મોઢે બોલે નહિ. એમ કરવાથી પાપકર્મ બંધાતું નથી (૮)

અને-સવ્વભૂય૦ ઈત્યાદિ

બધાં પ્રાણીઓમાં આત્મતુલ્ય બુદ્ધિ રાખનાર, અને આગમ અનુસાર જીવોનું સ્વરૂપ સમજનારાને, કર્મોના આગમનનાં કારણો (આસવો) નો નિરોધ કરનારાઓને પાપકર્મનું બંધન થતું નથી. (૯)

ननु क्रियैव पापकर्मावरोधश्चेत्तर्हि तदर्थमेव यतनीयं कृतं ज्ञानेनेति चेदत्रोच्यते—

नहि ज्ञानमन्तरेण क्रिया कदाचिदपि फलाय कल्पते प्रत्युतोन्मत्तक्रियावदनर्थानुबन्धिनी स्यादिति ज्ञानविरहितकेवलक्रियाप्रवृत्तिर्लोकानां मा स्म भूदतो ज्ञानस्य क्रियापेक्षया प्राथम्यं दर्शयति–'पढमं नाणं' इत्यादि ।

१ २ ३ ४ ५ ७ ६

मूलम्—पढमं नाणं तओ दया, एवं चिट्ठइ सव्वसंजए ।

८ ९ १० ११ १२ १४ १३

अन्नाणी किं काही; किं वा नाही छेय-पावगं ॥१०॥

छाया—प्रथमं ज्ञानं ततो दया, एवं तिष्ठति सर्वसंयतः ।

अज्ञानी किं करिष्यति, किं वा ज्ञास्यति छेक-पापकम् ॥१०॥

सान्वयार्थ.–पढमं=पहले नाणं ज्ञान है तओ=उसके पश्चात् दया=दया अर्थात् चारित्र है एवं=इसी प्रकार सव्वसंजए=सर्वसंयत साधु चिट्ठइ=आचरण करते हैं, अन्नाणी=सम्यग्ज्ञानसे रहित पुरुष किंकाही=क्या कर सकता है–कैसे संयम पाल सकता है, अर्थात् नहीं पाल सकता । (और) किं वा=कैसे छेयपावगं=उपादेय और हेयको नाही=जान सकता है ?, अर्थात् नहीं जान सकता ॥१०॥

टीका—प्रथमम्=आदौ ज्ञानं=ज्ञायन्ते–बुध्यन्ते जीवाजीवादयः पदार्था येन यस्माद् यस्मिन् वा तज्ज्ञानं=स्वपरस्वरूपपरिच्छेदलक्षणम्, अपेक्ष्यं भवतीत्याशयः, क्रियामात्रस्य ज्ञानपूर्वकत्वे हि स्वाभीष्टसिद्धिकत्वात्, ततः=तदनन्तरं दया=क्लेशाकुलप्राणिसंकष्टमोचनेच्छालक्षणाऽनुकम्पा, दयाशब्देन चात्र क्रियामात्रमुपलक्ष्यते, एवम्=अनेन प्रका-

---

प्रश्न – हे गुरुमहराज ! यदि केवल क्रियासे पापकर्मोंका निरोध हो जाता है तो क्रिया ही करनी चाहिए, ज्ञानकी क्या आवश्यकता है ?

उत्तर— हे शिष्य ! ज्ञानके विना क्रियाका कुछ फल नहीं होता, ज्ञानरहित क्रिया उन्मत्त (पागल) पुरुषकी क्रियाके समान अनर्थको उत्पन्न करती है । 'कोई जीव ज्ञानरहित क्रिया न करे' इस अभिप्रायसे 'पहले ज्ञान फिर क्रिया होनी चाहिए ',–इस बातको शास्त्रकार कहते है–'पढमं नाण०' इत्यादि ।

जिससे स्व–परका बोध होता है उसे ज्ञान कहते है । वह ज्ञान प्रथम है, क्योंकि जीव आदि नव पदार्थका ज्ञान होने पर ही संयम अर्थात् षड्जीवनिकायकी दया का पालन हो सकता

પ્રશ્ન–હે ગુરુ મહારાજ ! જો કેવળ ક્રિયાથી પાપકર્મોનો નિરોધ થઇ જાય છે તો ક્રિયા જ કરવી જોઇએ; જ્ઞાનની શી આવશ્યકતા છે ?

ઉત્તર—હે શિષ્ય ! જ્ઞાન વિના ક્રિયાનું કશું ફળ હોતું નથી જ્ઞાનરહિત ક્રિયા ઉન્મત્ત (ગાંડા) પુરૂષની ક્રિયાની પેઠે અનર્થને ઉત્પન્ન કરે છે. 'કોઇ જીવ જ્ઞાનરહિત ક્રિયા ન કરે' એવા હેતુથી 'પ્રથમ જ્ઞાન પછી ક્રિયા હોવી જોઇએ આ વાતને સૂત્રકાર કહે છે-पढमं नाणं० ઇત્યાદિ. જે વડે સ્વપરનો બોધ થાય છે તેને જ્ઞાન કહેછે એ જ્ઞાન પ્રથમ છે કેમકે જીવ આદિ નવ પદાર્થનું જ્ઞાન થયા પછી જ સંયમ અર્થાત્ ષડ્જીવનિકાયની દયાનું પાલન થઇ શકે છે અહીં દયા

रेण क्रियाया ज्ञानपूर्वकत्वाऽवबोधरूपेण सर्वसंयतः=सर्वविरतः साधुरित्यर्थः, तिष्ठति=वर्त्तते, कथमिदमुच्यते ? इत्याशङ्कायामाह–अज्ञानी=तत्त्वातत्त्वविवेकलक्षणज्ञानविरहितः किं करिष्यति=किं विधास्यति, किं वा=कथं वा छेकं-पापकं, छेकश्च पापकं, चानयोः समाहारे छेकपापकं, तत्र छेकं–कल्याणम् उपादेयमित्यर्थः, पापकम्=अकल्याणं हेयमित्यर्थः, ज्ञास्यति वेत्स्यति जन्मनाऽन्ध वदून्न किञ्चिदपीत्यर्थः, अतो ज्ञानार्थमेव प्रथमं यतनीयम् "हेया अन्नाणिणं किया" इत्युक्तेः ॥१०॥

ज्ञानमहत्त्वं प्रदर्श्य सम्प्रति तत्प्राप्त्युपायमाह–"सोच्चा जाणइ" इत्यादि ।

मूलम्–सोच्चा जाणइ कल्लाणं, सोच्चा जाणइ पावगं ।
उभयंपि जाणई सोच्चा. जं सेयं तं समायरे ॥११॥

छाया—श्रुत्वा जानाति कल्याणं, श्रुत्वा जानाति पापकम् ।
उभयमपि जानाति श्रुत्वा, यच्छ्रेयस्तत्समाचरेत् ॥११॥

अब जानने का उपाय बताते हैं–

सान्वयार्थः–सोच्चा=गुरुमुखसे सुनकर कल्लाणं कल्याण–दयारूप संयमको जाणइ=जानता है, (तथा) सोच्चा=सुनकर ही पावगं=पाप हिंसारूप असंयमको जाणइ=जानता है, (और) उभयंपि=दोनोंको भी सोच्चा=सुनकर ही जाणई=जानता है। (अतः) जं=जो सेयं=आत्माके हितकारी हो तं=उसका समायरे=आचरण करे ॥११॥

टीका–श्रुत्वा=गुरुमुखादाकर्ण्य श्रुतज्ञानविषयीकृत्येत्यर्थः, कल्याणम्=कल्यो मोक्षः कर्मबद्धसकलोपाधिव्याधिबाधाविधुरत्वात्, तम् आ=समन्तादणति–प्रापयतीति,

---

है। यहाँ दया शब्दसे समस्त क्रियाओंका ग्रहण होता है। अर्थात् सम्यग्ज्ञानपूर्वक की हुई ही क्रिया सफल होती है, इसलिए मुनि ज्ञानपूर्वक ही क्रियाएँ करते है, क्योंकि तत्त्व और अतत्त्वके विवेकसे रहित अज्ञानी क्या करसकता है ? अर्थात् कुछ नहीं कर सकता, और जन्मान्धके समान उसे हेय–उपादेयका ज्ञान ही कैसे हो सकता है। ? अर्थात् नहीं हो सकता, अतः पहले ज्ञानके लिए प्रयत्न करना चाहिए। कहा भी है–"ज्ञानके विना क्रिया निरर्थक है" ।१०।

ज्ञानका महत्त्व बताकर अब उसकी प्राप्तिका उपाय कहते है–"सोच्चा जाणइ०" इत्यादि

कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाली समस्त आधि–व्याधि और बाधासे रहित मोक्षकी प्राप्ति कराने

શબ્દથી બધી ક્રિયાઓનું ગ્રહણ થાય છે. અર્થાત્ સમ્યગ્જ્ઞાનપૂર્વક કરેલી ક્રિયા જ સફળ થાય છે તેથી મુનિ જ્ઞાનપૂર્વક જ ક્રિયાઓ કરે છે કારણ કે–તત્ત્વ અને અતત્ત્વના વિવેકથી રહિત અજ્ઞાની શું કરી શકે ? અર્થાત્ કશું નથી કરી શકતો અને જન્માંધની પેઠે એને હેય–ઉપાદેયનું જ્ઞાન કેવી રીતે થઈ શકે ? અર્થાત્ નથી થઇ શકતુ, તેથી પહેલા જ્ઞાનને માટેપ્ર યત્ન કરવો જોઇએ કહ્યુ છે કે–"જ્ઞાન વિનાની ક્રિયા નિરર્થક છે" (૧૦)

જ્ઞાનનુ મહત્ત્વ બતાવીને હવે એની પ્રાપ્તિનો ઉપાય કહે છે–સોચ્ચા જાણઇ૦ ઇત્યાદિ.

कल्येन=आरोग्येण आरोग्यकरणेनेत्यर्थः ज्ञानदर्शनचारित्रलक्षणमोक्षमार्गोपदेशद्वारेति भावः, आनयति=जीवयति सांसारिकविशालविषयकाननसंलग्नेष्टवियोगानिष्टसंयोगदावानलज्वालामालावलीढान् प्राणिन इति कल्याणं=दयाभिधानसंयमस्वरूपं, निपातनाणत्वम्, तदुपादेयभूतं जानाति, श्रुत्वा च पापकं=नरकादिकुगतिपातिनं हेयभूतमसंयमं जानाति, उभयमपि-उपादेयानुपादेयभूतसंयमासंयमलक्षणं द्वयमपि श्रुत्वैव जानाति। निष्कर्षमाह-अत्र यत् श्रेयः=हितं तत् समाचरेत्=विदध्यात् ॥११॥

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९
मूलम्-जो जीवे वि न याणेइ अजीवे वि न याणइ।
१० ११ १३ १२ १५ १४
जीवजीवे अयाणंतो, कहं सो नाहीइ संजमं ॥१२॥

छाया-यो जीवानपि न जानाति, अजीवानपि न जानाति।
जीवाऽजीवानजानन् कथं, स ज्ञास्यति संयमम् ॥१२॥

सान्वयार्थः-जो=जो जीवेवि=जीवोंकोभी न याणेइ=नहीं जानता है (और) अजीवेवि=अजीवोंकोभी न याणेइ=नहीं जानता है, जीवाजीवे=जीवों और अजीवोंको अयाणंतो=नहीं जानता हुआ सो=वह संजमं=संयमको कहं=कैसे नाहीइ=जानेगा' अर्थात् नहीं जान सकता ॥१२॥

टीका—जो 'जीवेवि' इत्यादि। यः जीवान्=एकेन्द्रियादीन्, जीवलक्षणं तु मत्कृतात्तत्त्वप्रदीपाद्विशेषतोऽवगन्तव्यम्, न जानाति=न वेत्ति, तथा अजीवान्=जीवविपरीतलक्ष-

---

वालेको, अथवा ज्ञान-दर्शन-चारित्र-रूपी आरोग्यसे, हितवचन अथवा उपदेशसे ससारके विषय रूपी विशाल वनमें धधकती हुई इष्टवियोग अनिष्टसयोगरूप दावाग्निकी ज्वालाओमें जलते हुए जीवोंको शान्ति देनेवालेको कल्याण कहते है। इस कल्याण (सयम) का ज्ञान गुरुमुखसे सुनकर ही होता है। पाप अर्थात् नरक आदि कुगतियोमें गिरानेवाले असयमका ज्ञान भी सुननेसे ही होता है, तथा इन दोनों का भी ज्ञान सुननेसे ही होता है। इसलिए इनमेंसे जो श्रेष्ठ (हितकर) हो उसमें प्रवृत्ति करनी चाहिए ॥११॥

'जो जीवे वि०' इत्यादि। जो पुरुष एकेन्द्रिय आदि जीवोके स्वरूपको नहीं जानता और न

કર્મોથી ઉત્પન્ન થનારી બધી આધિ-વ્યાધિ અને બાધાથી રહિત મોક્ષની પ્રાપ્તિ કરાવનારને અથવા જ્ઞાન દર્શન ચારિત્રરૂપી આરોગ્યથી, હિતવચન અથવા ઉપદેશથી સંસારના વિષયરૂપી વિશાળ વનમા ભભુકતા ઇષ્ટવિયોગ-અનિષ્ટસ યોગરૂપી દાવાગ્નિની જ્વાળાઓમાં બળતા જીવોને શાન્તિ દેનારને કલ્યાણ (સયમ) નું જ્ઞાન ગુરૂમુખથી શ્રવણ કરવાથી જ થાય છે પાપ અર્થાત્ નરક આદિ કુગતિઓમા પાડનારા અસયમનુ જ્ઞાન પણ સાભળવાથી જ થાય છે; તથા એ બેઉનુ જ્ઞાન પણ સાભળવાથી જ થાય છે, તેથી એમાં જે શ્રેષ્ઠ (હિતકર) હોય એમાં પ્રવૃત્તિ કરવી જોએ (૧૧)

જો જીવે વિ૦ ઇત્યાદિ- જે પુરૂષ એકેન્દ્રિય આદિ જીવોના સ્વરૂપને જાણતો નથી અને

णान् संयमपरिपन्थिनः काञ्चनरजतादीन् धर्मास्तिकायादीन् वा न जानाति, इत्थं जीवाजीवान्=जीवान् अजीवाँश्चोभयानपि अजानन् सन् स-संयमं=प्राणातिपातविरमणादिलक्षणं सप्तदशविधं कथं=केन प्रकारेण ज्ञास्यति=वेत्स्यति, संयमस्य जीवाजीवोभयविषयकज्ञानजन्यत्वात् ॥१२॥

ननु कस्तार्हि संयमं विज्ञातुमर्हती 'त्याह-'जो जीवे वि० इत्यादि ।

मूलम्-जो जीवे वियाणेइ, अजीवे वि वियाणइ ।
जीवाजीवे वियाणंतो, सा हु नाहीइ संजमं ॥१३॥

छाया—यो जीवानपि विजानाति (तथा) अजीवानपि विजानाति ।
(इत्थं) जीवाजीवानन् स खलु संयमं ज्ञास्यति ॥१३॥

सान्वयार्थः-जो=जो जीवे वि=जीवोंकोभी वियाणेइ=जानता है, (तथा) अजीवे वि=अजीवोंकोभी वियाणेइ=जानता है, इस तरह जीवाजीवे=जीवों और अजीवोंको वियाणंतो=जानता हुआ सो=वह हु=निश्चय ही संजमं=संयमको नाहीइ=जानेगा ॥१३॥

टीका-यो जीवाजीवपदार्थान् जानाति स हु=खलु-निश्चयेन संयमं ज्ञास्यतीतिभावः॥१३॥

मूलम्-जया जीवमजीवे य, दोवि एए वियाणइ ।
तया गइं बहुविहं सव्वजीवाण जाणइ ॥१४॥

छाया—यदा जीवमजीवांश्च द्वावप्येतौ विजानाति ।
तदा गतिं बहुविधां, सर्वजीवानां जानाति ॥१४॥

सान्वयार्थः-जया=जब जीवमजीवे य=जीव और अजीव एए=इन दोवि=दोनों-

जीवसे भिन्न पुद्गल आदि अजीवोंको जानता है । इस प्रकार दोनोंको ही नहीं जानता हुआ वह अज्ञानी प्राणातिपात आदिसे विरमणरूप सत्रह प्रकारके सयमको कैसे जानेगा ? अर्थात् नहीं जान सकेगा, क्योंकि सयम तब ही हो सकता जब जीव और अजीवका ज्ञान हो जाय ॥१२॥

सयमका ज्ञाता कौन हो सकता है ? सो कहते है-'जो जीवे वि०' इत्यादि ।

जो जिवोको जानता है और अजीवोंको जानता है वही जीव और अजीवको जानता हुआ मुनि संयमका ज्ञाता हो सकेगा ॥१३ ॥

જીવથી ભિન્ન પુદ્ગલ આદિ અજીવોને જાણતો નથી, એ રીતે બેઉને જાણતો નથી તે અજ્ઞાની પ્રાણાતિપાત આદિથી વિરમણરૂપ સત્તર પ્રકારના સંયમને કેવી રીતે જાણશે ? અર્થાત્ નહિ જાણી શકે, કારણ કે સંયમ ત્યારે જ થઈ શકે છે કે જ્યારે જીવ અને અજીવનું જ્ઞાન થાય છે (૧૨)

સંયમનો જ્ઞાતા કોણ થઈ શકે છે ? તે હવે કહે છે-જો જીવે વિ૦ ઇત્યાદિ.

જે જીવોને જાણે છે, અને અજીવોને જાણે છે તે જીવ અને અજીવને જાણનાર મુનિ સંયમનો જ્ઞાતા થઈ શકશે. (૧૩)

को वियाणइ=जानता है, तया तब सव्वजीवाण=सब जीवोंकी बहुविहं=अनेक प्रकारकी गइं=गतिको जाणइ=जानता है ॥१४॥

टीका—'जया जीव' इत्यादि । यदा जीवाजीवौ एतौ द्वावपि पदार्थौ विजानाति तदा सर्वेषां जीवानां बहुविधां=नानाविधां देव मनुष्यतिर्यङ्नारकरूपां गति=गम्यते-प्राप्यते स्वस्वकृतकर्माकृष्टैर्जीवैरिति गतिः=भवाद्भवान्तरे गमनं, तां तथोक्तं जानाति=अवगच्छति ॥१४॥

१ ४ ३ २ ५
मूलम्—जया गइं बहुविहं, सव्वजीवाण जाणइ ।
६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४
तया पुण्णं च पावं च, बंधं मुक्खं च जाणइ ॥१५॥

छाया—यदा गतिं बहुविधां, सर्वजीवानां जानाति ।
तदा पुण्यं च पापं च, बन्धं मोक्षं च जानाति ॥१५॥

सान्वयार्थः—जया=जब सव्वजीवाण=सब जीवोंकी बहुविहं=अनेक प्रकारकी गइं=गतिको जाणइ=जानता है, तया=तब पुण्णं च पावं=पुण्य और पापको च=तथा बंधं=बन्धको मुक्खं च=और मोक्षको जाणइ=जानता है ॥१५॥

टीका—'जया गइं' इत्यादि । यदा सर्वजीवानां बहुविधां गतिं जानाति तदा पुण्यम्=पुणति=शुभयत्यात्मानमिति तत् ('पुण् शुभे' इति धातोरौणादिको यत्) । यद्वा पूयते=पवित्रीक्रियते आत्माऽनेनेति, पुनात्यात्मानमिति वा पुण्यं=शुभकर्म, ('पूञ् पवने'

'जया जीव०' इत्यादि । जब जीव और अजीवका ज्ञान हो जावेगा तब सब जीवो की नाना प्रकारकी देव मनुष्य तिर्यंच और नरक रूप गतियोको भी जानेगा । एक भवसे दूसरे भव में जाने को गति कहते है ॥१४

'जया गइ' इत्यादि । जब सर्व जीवोकी बहुत प्रकारकी गतियोंको जानेगा तब पुण्य, पाप, बन्ध और मोक्षको भी जानेगा ।

जो आत्मा को पवित्र करता है शुभ बनाता है उसे पुण्य कहते है । संसार-सागरसे पार उतरनेके लिए पुण्य तरणि(नौका) के समान है । पुण्यसे ही आर्य देश तथा उत्तम कुलमें जन्म और बोधिबीज-जिन धर्मकी प्राप्ति-होती है । अधिक क्या कहा जाय ? तीर्थङ्कर गोत्र भी पुण्यसे ही बंधता है ।

जया जीव० ઈત્યાદિ જ્યારે જીવ અને અજીવનું જ્ઞાન થઈ જાય-ત્યારે સર્વ જીવોની નાના પ્રકારની દેવ મનુષ્ય તિર્યંચ અને નારક રૂપ ગતિઓનું પણ જ્ઞાન થાય. એક ભવમાથી બીજા ભવમાં જવાને ગતિ કહે છે (૧૪)

जया गइ ઇત્યાદિ જ્યારે સર્વ જીવોની ઘણા પ્રકારની ગતિઓને જાણે ત્યારે પુણ્ય, પાપ, બંધ અને મોક્ષને પણ જાણે.

જે આત્માને પવિત્ર કરે છે, શુભ બનાવે છે, તેને પુણ્ય કહે છે. સંસારસાગરથી પાર ઊતરવાને માટે પુણ્ય એ તરણી (નૌકા) સમાન છે. પુણ્યથી જ આર્યદેશ તથા ઉત્તમ કુળ-

इत्यस्माधातोः पूञो यण्णुक् ह्रस्वश्च'-त्यौणादिकसूत्रेण सिद्धिः,) जानातीत्यग्रेण सम्बन्धः

पुण्यं हि संसारपारावारोत्तरणे तरणिभूतम्, अनेनैवाऽऽर्यजनपदाभिजनकुलबोधिवीजजिनधर्मादिप्राप्तिर्जायते, किंबहुना तीर्थंकरगोत्रमपि पुण्येनैव वध्यते, यो हि पुण्य सर्वथा हेयं मन्यमानस्तत्त्यजति असौ समुपेक्षिततरिरिवाऽप्राप्तपरतीरो मध्येसमुद्रं मज्जन्नवसीदति।

ननु पुण्यपापक्षयानन्तरमेव मोक्षप्राप्तिः शास्त्रे श्रूयते इति पापवत्पुण्यमप्यनुपादेयं मोक्षार्थिनामिति चेन्न,

द्विविध हि पुण्यं-पुण्यानुवन्धि पापानुवन्धि च, तत्र पुण्यानुवन्धिपुण्यस्य लक्षणमुक्तम्-

"दया भूतेषु वैराग्यं, विधिवद्गुरुपूजनम्।
विशुद्धा शीलवृत्तिश्च, पुण्य पुण्यानुवन्ध्यदः ॥१॥ इति
(स्थानाङ्ग१स्था. टीका)

जो पुण्यको सर्वथा हेय मानता हुआ उसका त्याग करता है वह ससार सागर में गोते लगाता है। जैसे मध्य समुद्रमें नौकाका त्याग कर देनेवाला पुरुष समुद्रमें डूबता हुआ दुःख पाता है।

शङ्का-पुण्य और पाप दोनोका क्षय होने के बाद मोक्षको प्राप्ति होती है, ऐसा शास्त्रोमें सुना जाता है, इसलिए पापकी तरह पुण्य भी मोक्षार्थियोके लिए उपादेय नहीं है।

समाधान- ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि पुण्य दो प्रकारका है-(१) पुण्यानुवन्धि, (२) पापानुवन्धि पुण्य। पुण्यानुवन्धि पुण्यका लक्षण यह है-

प्राणियो पर दया रखना, वैराग्य-भाव होना, आगमके अनुसार गुरुओकी भक्ति करना शुद्ध शील का पालन करना, यह पुण्यानुवन्धि पुण्य है। (स्थानाङ्ग०१स्था० टीका)

માં જન્મ અને બોધિબીજ-જિનધર્મની પ્રાપ્તિ થાય છે વધારે શું કહેવું ? તીર્થંકર-ગોત્ર પણ પુણ્યથી જ બંધાય છે

જે પુણ્યને સર્વથા હેય માનીને તેનો ત્યાગ કરે છે, તે સંસાર સાગરમાં ગોથાં ખાય છે, જેમકે મધ્ય-સમુદ્રમાં નૌકાનો ત્યાગ કરી નાખનાર પુરૂપ સમુદ્રમા ડુબતાં દુઃખ પામે છે

શંકા-પુણ્ય અને પાપ એ બેઉનો ક્ષય થયા પછી મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે, એવું શાસ્ત્રોમાં સાંભળવામાં આવે છે તેથી પાપની પેઠે પુણ્ય પણ મોક્ષાર્થીઓને માટે ઉપાદેય નથી

સમાધાન-એમ કહેવુ તે બરાબર નથી, કારણ કે પુણ્ય બે પ્રકારના છે. (૧) પુણ્યાનુબંધિ પુણ્ય, (૨) પાપનુબંધિ પુણ્ય. પુણ્યાનુબંધિ પુણ્યનુ લક્ષણ એવુ છે કે—

પ્રાણીઓ ઉપર દયારાખવી, વૈરાગ્યભાવ થવો, આગમને અનુસાર ગુરૂઓની ભક્તિ કરવી, શુદ્ધ શીલ પાળવુ, એ પુણ્યાનુબંધિ પુણ્ય છે (સ્થાનાંગ૦૧સ્થા૦ટીકા)

हरिभद्रसूरिरप्याह—

"गेहाद् गेहान्तरं कश्चिच्छोभनादधिकं नरः ।
याति यद्वत् सुधर्मेण, तद्वदेव भवाद्भवम् ॥१॥" इति ।

एतच्च मोक्षार्थिनामप्यादरणीयमेव, पुण्यानुबन्धिपुण्यस्याऽपतनशीलमोक्षसम्पज्जनकत्वात्, तथा चोक्तम्—

"शुभानुबन्ध्यतः पुण्यं, कर्त्तव्यं सर्वथा नरैः ।
यत्प्रभावादपातिन्यो, जायन्ते सर्वसम्पदः ॥१॥" इति ।

किञ्च—मनुष्यजन्मनोऽपि मोक्षप्राप्तिकारत्वेन शास्त्रे प्रतिपादनात्पुण्यं मोक्षार्थिनामुपादेयमेवेत्यवसीयते, पुण्यमन्तरेण मनुष्यजन्मनो दुर्लभत्वात्, तथा चोक्तमुत्तराध्यनसूत्रे तृतीयाध्ययने—

हरिभद्रसूरिने भी कहा है—

"जसे कोई मनुष्य एक अच्छे गृहसे दूसरे वहुत ही अच्छे गृहमें जाता है वैसेही पुण्यके प्रभावसे जीव अत्यन्त शुभ गतिको प्राप्त होता है ॥१॥"

यह पुण्य मोक्षार्थी पुरषोके लिए भी उपादेय है, क्योंकि इससे अविनश्वर-शाश्वत -मोक्षरूपी सम्पत्तिकी उत्पत्ति होती है । कहा भी है —

"मनुष्यो को पुण्यानुबन्धि पुण्य अवश्य करना चाहिए, जिसके प्रभावसे कभी नष्ट न होनेवाली सब प्रकार की सम्पदाएँ प्राप्त होती हैं ॥१॥"

दूसरी बात यह है कि—शास्त्रोंमें मनुष्यभवकी प्राप्ति पुण्यके उदयसे कही गई है, मनुष्यभव मोक्ष-प्राप्तिका कारण माना गया है, इससे भी यही सिद्ध होता है कि पुण्य मुमुक्षुओंके लिए उपादेय है, क्योंकि पुण्यके विना मनुष्य–पर्याय मिलना दुर्लभ है । उत्तराध्ययन सूत्रके तीसरे अध्ययनमें कहा है—

હરિભદ્રસૂરિએ પણ કહ્યું છે કે—

"જેમ કોઈ મનુષ્ય એક સારા ગૃહમાથી બીજા બહુ જ સારા ગૃહમાં જાય છે, તેમ પુણ્યના પ્રભાવથી જીવ અત્યંત શુભ ગતિને પામે છે"

એ પુણ્ય મોક્ષાર્થી પુરૂષોને માટે પણ ઉપાદેય છે, કારણ કે તેથી અવિનશ્વર–શાશ્વત મોક્ષરૂપી સંપત્તિની ઉત્પત્તિ થાય છે. કહ્યું છે કે—

મનુષ્યોએ પુણ્ય અવશ્ય કરવું જોઈએ. જેના પ્રભાવથી કદાપિ નષ્ટ ન થાય તેવી સર્વ પ્રકારની સંપદાઓ પ્રાપ્ત થાય છે"

બીજી વાત એ છે કે–શાસ્ત્રમાં મનુષ્યભવની પ્રાપ્તિ પુણ્યના ઉદયથી કહી છે અને મનુષ્યભવ મોક્ષપ્રાપ્તિનું કારણ માન્યું છે, તેથી પણ એમ સિદ્ધ થાય છે કે પુણ્ય મુમુક્ષુઓને માટે ઉપાદેય છે, કારણ કે પુણ્ય વિના મનુષ્ય પર્યાય મળવો દુર્લભ છે. ઉત્તરાધ્યયનમાં કહ્યું છે કે—

"चत्तारि[1] परमंगाणि, दुल्लहाणि य जंतुणो ।
माणुसत्तं सुई सद्धा, संजमम्मि य वीरियं ॥१॥" इति ।

संसारार्णवोत्तरणाय नरशरीरस्य नौकारूपत्वेन प्रतिपादनान्मोक्षकारणत्वं गम्यते, तथा चोत्तराध्ययनसूत्रे त्रयोविंशाध्ययने--

"शरीरमाहु[1] नावत्ति, जीवो उच्चइ नाविओ ।
संसारो अण्णवो वुत्तो, जं तरंति महेसिणो ॥१॥" इति ।

तत्रैव दशमाध्ययने मनुष्यजन्मनो दौर्लभ्यं चोक्तम्—
"[2]दुल्लहे खलु माणुसे भवे, चिरकालेणवि सव्वपाणिणं" इति ।
स्थानाङ्गसूत्रेऽपि तृतीयस्थानके च—

"चार परमांग जीवके लिए दुर्लभ है-(१)मनुष्य भव, (२)शुचिता, (३) सत्य धर्ममें श्रद्धा संयममें पराक्रम ॥"

मनुष्य ससाररूपी समुद्रको पार करनेके लिए नौकाके समान है, इसलिए ज्ञात होता है कि मनुष्य-शरीर मोक्षका कारण है । उत्तराध्ययन सूत्रके तेईसवें अध्ययनमें कहा है-

"(मनुष्यका)शरीर, नौकाके समान है, जीव, नाविक (खेवटिया) के सदृश है और ससार समुद्र सरीखा है, इसे महर्षि पार करते है ।"

इसी उत्तराध्ययनके दसवें अध्ययनमें मनुष्य—जन्मकी दुर्लभता बताई है-
"चिरकाल तक सब प्राणियोके लिए मनुष्य-भव अत्यन्त दुर्लभ है ।" स्थानाङ्गसूत्रमें तीसरे स्थानकमें कहा है-

---

"ચાર પરમાંગ જીવને માટે દુર્લભ છે-(૧) મનુષ્યભવ, (૨) શુચિતા, (૩) સત્યધર્મમા શ્રદ્ધા, (૪) સંયમમાં પરાક્રમ."

મનુષ્ય શરીર સંસારરૂપી સમુદ્રને પાર કરવાને માટે નૌકા-સમાન છે, તેથી સમજાય છે કે મનુષ્ય-શરીર મોક્ષનું કારણ છે. ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રના તેવીસમા અધ્યયનમા કહ્યું છેકે—

"(મનુષ્યનું) શરીર, નૌકા સમાન છે, જીવ, નાવિક (ખલાસી) સમાન છે અને સંસાર, સમુદ્ર સરખો છે, તેને મહર્ષિ પાર કરે છે"

એજ ઉત્તરાધ્યયનના દસમા અધ્યયનમાં મનુષ્ય જન્મની દુર્લભતા બતાવી છે-
"ચિરકાળ સુધી સર્વ-પ્રાણીઓને માટે મનુષ્યભવ અત્યંત દુર્લભ છે."
સ્થાનાંગ—સૂત્રમાં ત્રીજા સ્થાનકમાં કહ્યું છે કે—
"આ ત્રણ બોલોની અભિલાષા દેવ પણ રાખે છે. (૧) મનુષ્યભવ, (૨) આર્યક્ષેત્રમા

---

१ "चत्वारि परमाङ्गानि दुर्लभानि च जन्तोः ।
मानुषत्व शुचिः श्रद्धा, संयमे च वीर्यम् ॥१॥"

१"शरीरमाहुः नौ इति, जीव उच्यते नाविकः
संसारः अर्णवः उक्तः, यं तरन्ति महर्षयः ॥१॥"

२ दुर्लभः खलु मानुष्यो भवः चिरकालेनापि सर्वप्राणिनाम् ।

"[३]तओ ठाणाइं देवेवीहेज्जा तं जहा–(१) माणुसंभवं, (२) आरिए खेते जम्मं (३) सुकुलपच्चायातिं ।" इति ।

उत्तराध्ययनसूत्रे त्रयोदशाध्ययने पुण्यसंग्रहस्य परमावश्यकता प्रतिपादिता, तथाहि–

"[१]इह जीविए राय ! असासयम्मि, धणियं तु पुण्णाइं अकुव्वमाणे ।
से सोयइ मच्चुमुहोवणीए, धम्मं अकाऊण परम्मि लोए ॥२१॥"

किञ्चागमे साधुप्रभृतये आहारोपकरणादिवितरणलक्षणस्य पुण्यस्य कर्त्तव्यत्वेनोपदिष्टतयाऽऽगमप्रमाणेनोपादेयत्वसिद्धिः, तथा चागमः—

"[२]नवविहे पुण्णे पण्णत्ते, तं जहा–(१) अन्नपुण्णे, (२) पाणपुण्णे, (३) वत्थपुण्णे, (४) लेणपुण्णे, (५) सयणपुण्णे, (६) मणपुण्णे, (७) वयपुण्णे, (८) कायपुण्णे, (९) नमोक्कारपुण्णे" इति ।

"इन तीन बोलोकी देव भी अभिलाषा रखते है-(१)मनुष्य-भव,(२)आर्यक्षेत्रमें जन्म (३) सुकुलकी प्राप्ति"।

उत्तराध्ययनके तेरहवे अध्ययनमें पुण्यके सग्रह करनेकी अत्यन्त आवश्कता प्रतिपादन की है–

"हे राजन् ! इस नश्वर जीवनमें पुण्य और धर्म न करनेवाले इहलोक पर लोकमें मृत्युके मुखमें गये हुए शोच करते है।"

आगममें साधु आदिके लिए आहार–उपकरण आदिका दान करने रूप पुण्य कर्त्तव्य माना है। आगममें कहा है कि—

"पुण्य नव प्रकारका है वह इस प्रकार (१)अन्न पुण्य (२) पान-पुण्य' (३) वस्त्र पुण्य

જન્મ, (૩) સુકુળની પ્રાપ્તિ."

ઉત્તરાધ્યયનના તેરમા અધ્યયનમા પુણ્યનો સંગ્રહ કરવાની અત્યત આવશ્યકતા પ્રતિપાદન કરવામા આવી છે–

"હે રાજન્ ! આ નશ્વર જીવનમા પુણ્ય અને ધર્મ ન કરનારા ઇહલોક પરલોકમા મૃત્યુના મુખમા ગયેલા શોચ કરે છે"

આગમમા સાધુ આદિને માટે આહાર–ઉપકરણ આદિનુ દાન કરવારૂપ પુણ્યને કર્તવ્ય માન્યું છે આગમમા કહ્યુ છે કે—

"પુણ્ય નવ પ્રકારનું છે તે આ પ્રમાણે–(૧) અન્ન પુણ્ય, (૨) પાન–પુણ્ય, (૩)

---

३ त्रीणी स्थानानि देवा अपीहेरन् तद्यथा–(१) मानुष्यं भवम् (२) आर्ये क्षेत्रे जन्म, (३) सुकुलप्रत्यायातिम् ।

छाया—इह जीविते राजन् ! अशाश्वते, अधिकं तु पुण्यान्यकुर्वाणः ।
स शोचति मृत्यु मुखोपनीतः, धर्ममकृत्वा परस्मिन् लोके ॥१॥

छाया—नवविधं पुण्यं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—(१) अन्नपुण्यम्, (२) पानपुण्यम्, (३) वस्त्रपुण्यम् (४) लयनपुण्यम्, (५) शयनपुण्यम्, (६) मनः पुण्यम्, (७) वचः पुण्यम्, (८) कायपुण्यम्, (९) नमस्कारपुण्यम् । इति ।

"पुण्णाइं खलु आउसो ? किच्चाइं, तरणिज्जाइं, पायकराइं, धणकराइं, जसकराइं" इति।

किञ्च पुण्ये हेयत्वहेतुभूतस्य मिथ्यात्वाऽविरतिप्रमादकषायाऽशुभयोगाऽन्यतमजनकत्वस्याभावात् तस्यानुपादेयत्वापादनं गगनकुसुमायितमेव, प्रत्युताऽशुभभावपरिपन्थितया तस्य कर्त्तव्यत्वमेव सुतरां दृढीभवति, अशुभभावपरिपन्थिनः कर्त्तव्यकोटौ विनिविष्टत्वाद् यथा संयमस्य।

"दुविहं खवेऊण य पुण्ण-पावं" (द्विविधं क्षपयित्वा च पुण्य-पापम्) इति यच्छ्रूयते शास्त्रे तत् पारमासाद्य तरणिपरित्यजनमिव मुक्तिप्राप्तिसमयापेक्षम्। यथा समुद्रस्य पर-

(४) लयन पुण्य(५) शयन पुण्य (६) मनः-पुण्य (७) वचनपुण्य (८) कायपुण्य (९) नमस्कार पुण्य।" इति। फिर भी कहा है—

"हे आयुष्मन्! पुण्य-कृत्य करने योग्य है, पुण्य ही पात्र बनाता है, पुण्य ही सम्पत्ति और यशको बढाता है"—इति।

जिससे मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और अशुभ योग उत्पन्न हो या इनमेंसे कोई एक उत्पन्न होता हो, वह त्याज्य होता है। पुण्य इनमेसे किसीको भी उत्पन्न नहीं करता अतः उसे अनुपादेय बतलाना आकाशके पुष्पके समान असत् है। पुण्य अशुभ भावोंको दूर करता है इसलिए उसकी कर्त्तव्यता स्वयसिद्ध है। जो अशुभ भावोका विरोधी होता है वह अवश्य कर्त्तव्य होता है, जैसे-संयम।

शास्त्रोमें यह कथन किया गया है कि—"पुण्य और पाप दोनोंका क्षय होनेसे मोक्षकी प्राप्ती होती हे" सो इस प्रकार समझना चाहिए कि—जैसे समुद्र को पार करके फिर नौकाका त्याग किया जाता है। जैसे समुद्रके दूसरे किनारे पर बने हुए घरमें जानेकी इच्छा करनेवाला पथिक

વસ્ત્ર-પુણ્ય, (૪) લયન-પુણ્ય, (૫) શયન-પુણ્ય, (૬) મનઃ-પુણ્ય, (૭) વચન-પુણ્ય, (૮) કાય-પુણ્ય, (૯) નમસ્કાર-પુણ્ય" ઇતિ. વળી કહ્યુ છે કે—

"હે આયુષ્મન્ પુણ્ય-કૃત્ય કરવા યોગ્ય છે, પુણ્ય જ પાત્ર બનાવે છે, પુણ્ય જ સપત્તિ અને યશને વધારે છે" ઇતિ.

જેથી મિથ્યાત્વ અવિરતિ પ્રમાદ કષાય અને અશુભ યોગ ઉત્પન્ન થાય, યા એમાનુ કોઇ એક ઉત્પન્ન થાય, તે ત્યાજ્ય હોય છે. પુણ્ય એમાંના કોઇને ઉત્પન્ન કરતુ નથી. તેથી તેને અનુપાદેય બતાવવુ એ આકાશના પુષ્પની સમાન અસત છે પુણ્ય અશુભ ભાવોને દૂર કરે છે, તેથી તેની કર્તવ્યતા સ્વય સિદ્ધ છે. જે અશુભ ભાવોનુ વિરોધી હોય છે તે અવશ્ય કર્તવ્ય હોય છે. જેમકે સયમ

શાસ્ત્રોમા એમ કહ્યુ છે કે-"પુણ્ય અને પાપ બન્નેનો ક્ષય થવાથી મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે" તે એ પ્રકારે સમજવુ કે-જેમ સમુદ્રને પાર કરીને પછી નૌકાનો ત્યાગ કરવામા આવે

छाया—पुण्यानि खलु आयुष्मन्! कृत्यानि करणीयानि, तरणीयानि, पात्रकराणि, धनकराणि, यशःकराणि।

स्मिन् पारे विद्यमानं गृहं गन्तुकामः पथिकोऽपरतीरे विभावयति-'कथमहं तरिष्यामी' ति, तदानीं नावं विलोक्य "नौरियं परपारप्रापिकैव न तु मदीयगृहप्रापिका, अलमस्या आश्रयणेन" इत्यालोच्य यदि नावं नावलम्बते तदाऽसौ गृहं गन्तुं न शक्नोति। यदि कश्चिन्नावि संस्थितः समुद्रमध्ये पूर्वोक्तभावनां कुर्वाणो नावं परित्यजेत् तदाऽपि नासौ गृहमुपैति प्रत्युत समुद्रस्य तरलतरकल्लोलावर्त्तयुक्ताऽगाधजले पतितो निमज्जति म्रियतेऽपि च। यस्तु पुनर्विवेकी पथिको नावमाश्रयति तयाऽसौ परं पारं चलितुमक्षमां तरणिं परित्यजति, एवं तरणितो विप्रयुक्तः पान्थः स्वालम्बनो भूत्वा सुखेन सत्वरं स्वकीयं धाम समवाप्नोति, तथा भव्यजीवः ससारतः परस्मिन् पारे विद्यमानं मोक्ष गन्तुकामोऽपरपारे मनुष्यशरीरे तिष्ठन् विभावयति-"कथमहं दुःखबहुलं चतुर्गतिकसंसारं तरिष्यामि?" इति, तदानीं मुनिजनोपदेशश्रवणतो जैनागमाद्वा दयादानादिपुण्यमहिमानमवगत्य तत्र यदि विवेकी पुण्यमाश्रयते तदा स सुखेन ससारसागरमुत्तरति।

सोचता है कि-'मै समुद्रको कैसे पार कर सकूँगा ?' उसी समय नौकाको देखकर वह पथिक यदि यह विचार करने लगे कि'इससे तो मै परले पार तक ही पहुँच सकूंगा घर तक नहीं पहुँचूंगा ऐसे विचार से नौकाका अवलम्बन न करे तो कभी घर नहीं पहुँच सकता। यदि नौकामें बैठा हुआ कोई पथिक बीच समुद्रमें उक्त विचार करके नौकाका त्याग करदे तो भी घर नहीं पहुँच सकता, बल्कि समुद्रकी चंचल तरगो और भवरोसे युक्त अथाह जलमें गिर पडेगा और मृत्युको भी प्राप्त हो जायगा किन्तु जो विवेकी पथिक नौकाका सहारा लेता है उसे नौका परले पार पहूँचा देती है, आगे गति करनेमें असमर्थ होनेसे पथिक उसका त्याग करके स्वावलम्बी बनकर अपने घर पहुँच जाता है।

इसी प्रकार भव्य जीव ससार से परले पार पर अर्थात् मोक्ष को जाना चाहता है। वह मनुष्यशरीररूपी इस पार पर ठहरा हुआ विचार करता है कि- 'मै दुःखोंसे भरे हुए चतुर्ग-

---

છે. જેમ સમુદ્રના બીજા કિનારા પર બનેલા ઘરમાં જવાની ઇચ્છા કરનારો પથિક વિચારે છે કે " હું સમુદ્રને કેવી રીતે ઊતરી શકીશ ?" એ વખતે નૌકાને જોઈને એ પથિક જો એમ વિચાર કરવા લાગે કે "આથી તો હું પેલા કિનારા સુધી જ પહોચી શકીશ, ઘર સુધી નહી પહોચી શકું," એવા વિચારથી નૌકાનું અવલબન ન કરે તો તે કદાપિ ઘેર પહોંચી શકશે નહિ જો નૌકામાં બેઠેલો કોઈ પથિક સમુદ્રની વચ્ચે એવો વિચાર કરીને નૌકાનો ત્યાગ કરી દે તો પણ ઘેર પહોચતો નથી બલ્કે સમુદ્રના ચંચળ તરગો અને ભમ્મરીઓથી યુક્તઅથાગ જલમા પડી જશે અને મરણ પણ પામશે પરન્તુ જે વિવેકી પથિક નૌકાનો આશ્રય લે છે તેને નૌકા પેલે પાર પહોચાડી દે છે નૌકા આગળ ગતિ કરવામાં અસમર્થ હોવાથી પથિક એનો ત્યાગ કરીને સ્વાવલંબી બનીને પોતાને ઘેર પહોંચી જાય છે.

એ પ્રકારે ભવ્ય જીવ સસારને પેલેપાર અર્થાત્ મોક્ષે જવા ઇચ્છતો હોય છે તે મનુષ્ય શરીરરૂપી આ કિનારા પર ઉભો રહીને વિચાર કરે છે કે 'હુ દુઃખોથી ભરેલાં ચતુર્ગતિક

अथवा यथाऽङ्गारकामस्तावत् काष्ठादिषु वह्निं प्रज्वलयति, अन्येन वा प्रज्वलित वह्निमुपादत्ते, ततः काष्ठगतानल जलेन निर्वापयति, वह्निविनाशे च सति अङ्गारोत्पत्तिर्भवति, एवं वह्न्युपादानं विनाऽङ्गारो लब्धुमशक्यः यथाऽङ्गारं प्रति वह्निध्वंसस्य कारणता, ध्वंसस्य च प्रतियोगिसापेक्षत्वेन प्रतियोगि वह्निरुपादेयो भवति, तद्वत् मोक्षं प्रति पुण्यध्वंसस्य कारणतायां तत्प्रतियोगितया पुण्यमप्युपादेयमेव । पुण्यमर्जयित्वा शुभपरिणामरूप पुण्यं ध्यानादिशुद्धपरिणामेन क्षपयित्वा मोक्षो लब्धुं शक्यते । इत्थं चाऽऽगमप्रामाण्येन पुण्यस्य भव्यकर्त्तव्यता गुरुपदृ सिध्यति, भव्यकर्त्तव्यतयाऽऽगमे प्रतिपादितत्वात् , शुद्धभावकारणत्वाच्चेति ।

तिक ससार–सागरको कैसे पार कर सकूँगा ?" तब मुनिजनोके उपदेशसे, अथवा शास्त्रोसे दया दान आदि पुण्यकी महिमा जान कर पुण्यका आश्रय लेवे तो सुखपूर्वक ससार–सागरके पार पहुँच सकता है ।

अथवा जैसे कोयले चाहनेवाले पुरुष काष्ठ आदिमें अग्नि जलाता है, अथवा दूसरेके द्वारा जलाई हुई अग्निको ग्रहण करता है, फिर उस अग्निको बुझा देता है । अग्नि बुझ जाने पर कोयला उत्पन्न होता है । इस प्रकार अग्निका आश्रय लिए विना कोयला कदापि नहीं प्राप्त हो सकता । अर्थात् जैसे कोयलेकी प्राप्तीके लिए अग्निका ध्वंस कारण होता है और ध्वंस प्रतियोगिसापेक्ष होता है इसलिए अग्निके ध्वसका प्रतियोगी अग्नि भी उपादेय होती है । इसी प्रकार मोक्षका कारण पुण्यका ध्वंस है, अतः ध्वंसका प्रतियोगी पुण्य भी मोक्षके लिए उपादेय है । उसका उपादान किये विना मोक्षकी प्राप्ती नहीं हो सकती' क्योकि पहले शुभ परिणाम रूप पुण्यका उपार्जन करके फिर ध्यान आदि शुद्ध परिणामोसे उनका क्षय करके मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है ।

સંસાર–સાગરને કેવી રીતે પાર કરી શકીશ ?" ત્યારે મુનિજનોના ઉપદેશથી, અથવા શાસ્ત્રો દ્વારા દયા દાન આદિ પુણ્યનો મહિમા જાણીને પુણ્યનો આશ્રય લે તો સુખપૂર્વક સંસાર-સાગરને પેલેપાર પહોંચી શકે છે.

અથવા જેને કોયલા જોઇતા હોય છે તે પુરૂષ લાકડાને અગ્નિ લગાડે છે અથવા બીજાઓએ સળગાવેલા અગ્નિને ગ્રહણ કરે છે, અને પછી એ અગ્નિને હોલવી નાંખે છે. અગ્નિ હોલવાઈ જતાં કોયલા ઉત્પન્ન થાય છે, એ રીતે અગ્નિનો આશ્રય લીધા વિના કોયલા કદાપિ પ્રાપ્ત થતા નથી અર્થાત જેમ કોયલાની પ્રાપ્તિ માટે અગ્નિના ધ્વંસ કારણ બને છે અને ધ્વંસ પ્રતિયોગિ-સાપેક્ષ હોય છે, માટે અગ્નિનો ધ્વંસનો પ્રતિયોગી અગ્નિ પણ ઉપાદેય બને છે એજ રીતે મોક્ષનુ કારણ પુણ્યનો ધ્વંસ છે એટલે ધ્વંસનુ પ્રતિયોગી પુણ્ય પણ મોક્ષને માટે ઉપાદેય છે એનું ઉપાદાન કર્યા વિના મોક્ષની પ્રાપ્તિ થઇ શકતી નથી કારણ કે પહેલાં શુભ–પરિણામરૂપ પુણ્યનું ઉપાર્જન કરીને પછી ધ્યાન આદિ શુદ્ધ પરિણામોથી એનો ક્ષય કરીને મોક્ષ પ્રાપ્ત કરી શકાય છે.

पापम्=पातयति=शुभपरिणामाद्ध्वंसयत्यात्मानमिति, यद्वा पाति=रक्षत्यात्मनोऽशुभपरिणामम्मिति पापं=पुण्यपरिपन्थि तत्, विस्तरस्तु श्रमणसूत्रीय-सत्कृतमुनि-तोषिणीटीकातोऽवगन्तव्यः। बन्धम्-बध्यते=परतन्त्रीक्रियतेऽनेनाऽऽत्मेति बन्धः=अभीप्सितस्थानप्राप्तिगतिप्रतिरोधलक्षणः, जीवकर्मणोरयोगोलकवह्न्योरिव तादात्म्योपन्नत्वं वा, स च द्रव्यतो निगडादिः, भावतो रागद्वेषादिः, यथा द्रव्यबन्धनबद्धो जनोऽभिमतस्थानलाभाभावेन कारागारादावेव विविधवेदनादारुणां दशामासादयन् विषीदति, तथाऽयमात्मा ज्ञानावरणीयादिकर्माष्टक-निगडसन्दानितोऽनन्ताऽक्षय्यसुखसम्पदुल्लसिताऽव्याबाधाऽभिमतशिवस्थानप्राप्ति विना जन्मजरामरणादिजन्यानन्यसामान्यकष्टसमष्टि स्पष्टमनुभवन्निहैवसंसारगह्वरे विषीदति, तम्।

इस प्रकार आगममें कर्त्तव्य रूपसे प्रतिपादन करनेसे शुद्ध भावका कारण होनेसे यह भली भाँति सिद्ध हो गया कि पुण्य अवश्य कर्त्तव्य है।

जो शुभ परिणामोसे आत्माको दूर रखता है-शुभ परिणाम नहीं होने देता उसे पाप कहते है। वह पुण्यका विरोधी है।

आत्मा जिससे बद्ध-परतन्त्र हो जाती है' वह अर्थात्-अभीष्ट स्थानकी प्राप्ति करानेवाली गतिको रोकनेवाला बन्ध कहलाता है। अथवा जैसे लोहेका गोला और अग्नि एकमेकसे हो जाते है, उसी प्रकार जीव और कर्मोंमें एकताका ज्ञान करानेवाला बन्ध होता है। वेडी अदि द्रव्यबन्ध है और रागद्वेष आदि भावबन्ध है जेसे द्रव्यबन्ध-निगड आदि-से बंधा हुआ मनुष्य अभिमत स्थान पर न पहुँच सकनेके कारण कारागार आदिमें विविध वेदनाओके द्वारा दारुण दशा प्राप्त करताहुआ दुःख पाता है, वैसे ही ज्ञानावरण आदि आठ कर्म-स्वरूप भाव-बन्धरूपी वेड़ाके कारण अनन्त अविनाशी सुखरूपी सम्पत्तिसे शोभित, अव्याबाध और अभीष्ट मोक्ष-स्थानकी प्राप्तीके विना जन्म जरा मरण आदिसे होनेवाले अपरमित दुःख भोगता हुआइसी ससाररूपी

એ રીતે આગમમા કર્તવ્યરૂપે પ્રતિપાદન કર્યું હોવાથી તથા શુદ્ધ ભાવનુ કારણ હોવાથી એ સારી રીતે સિદ્ધ થઈ ગયુ કે પુણ્ય અવશ્ય કર્તવ્ય છે

આત્માને શુભ પરિણામોથી દૂર રાખે છે—શુભ પરિણામ થવા દેતું નથી તેને પાપ કહે છે. તે પુણ્યનુ વિરોધી છે

આત્મા જેથી બદ્ધ-પરતત્ર થઈ જાય છે તે અર્થાત્ અભીષ્ટ સ્થાનની પ્રાપ્તિ કરાવનારી ગતિને રોકનાર બંધ કહેવાય છે. અથવા જેમ લોઢાનો ગોળો અને અગ્નિ એક-મેક બની જાય છે, તેમ જીવ અને કર્મોમા એકતાનુ જ્ઞાન કરાવનાર બંધ હોય છે બેડી આદિ દ્રવ્ય બધ છે અને રાગદ્વેષ આદિ ભાવ-બધ છે જેમ દ્રવ્ય બંધ હેડ કે બેડી આદિથી બધાયેલો મનુષ્ય ધારેલે સ્થાને ન પહોચી શકવાને કારણે કારાગાર આદિમા જ વિવિધ વેદનાઓ દ્વારા દારૂણ દશા પ્રાપ્ત કરતા દુઃખ પામે છે તેમ જ્ઞાનાવરણ આદિ આઠ કર્મસ્વરૂપ ભાવ-બધરૂપી બેડીને કારણે, અનંત અવિનાશી સુખરૂપી સંપત્તિથી શોભિત, અવ્યાબાધ અને અભીષ્ટ

ननात्मनोऽमूर्त्तत्वात्कर्मणां च मूर्त्तत्वान्न तयोः परस्परं सम्बन्धः संभवति, अमूर्त्तत्वेऽपि सम्बन्धस्वीकारे आकाशधर्माधर्मास्तिकायकालैः सहापि सम्बन्धप्रसङ्ग इति चेन्न, आत्मनः कर्मणा सह सम्बन्धाभावाऽऽपादने हेतुत्वेनोपन्यस्तममूर्त्तत्वं किं सर्वथारूपेण किं वा कथञ्चिद्रूपेण स्वीक्रियते ? नाद्यः, हेत्वसिद्धेः, सर्वथैवाऽमूर्त्तभूतस्य सिद्धात्मनः कर्मसम्बन्धाभावो मयाऽपीष्यत एव । आत्मत्वावच्छिन्नस्य सर्वथैवाऽमूर्त्तत्वं तु दुर्वचं, संसारिजीवानां कथञ्चिन्मूर्त्तत्वासद्भावात् । कथञ्चित् स्वीक्रियेत चेत्तदा यदपेक्षया मूर्त्तत्वं तदपेक्षया सम्बन्धोऽसन्दिग्ध एव । मुक्तात्मनश्च मूर्त्तत्वाभावान्न सम्बन्धाभ्युपगमः ।

गड्डेमें पडा हुआ कष्ट उठाता है ।

प्रश्न–आत्मा अमूर्त्त (अरूपी) है और कर्म मूर्त्त (रूपी) है । इस कारणसे इन दोनोका परस्पर बन्ध कैसे हो सकता है ? यदि मूर्त्तका बन्ध अमूर्त्तके साथ हो सकता है तो आकाशास्तिकाय धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और कालके साथ भी कर्मोका बन्ध हो जायगा, क्योंकि वे भी अमूर्त्त है ।

उत्तर––तुम कहते हो कि आत्मा अमूर्त्त है, सो यह बताओकि आत्मा सर्वथा अमूर्त्त है या कथञ्चित् अमूर्त्त है ? यदि कहोगे कि आत्मा सर्वथा अमूर्त्त है तो हेतु असिद्ध हो जायेगा, क्योंकि आगममें आत्माको सर्वथा अमूर्त्त नहीं माना गया है ।

अगर 'कथञ्चित् अमूर्त्त' कहोगे तो कथञ्चित् मूर्त्त भी होगी, और जिस(ससारावस्थाकी) अपेक्षासे आत्मा मूर्त्त है उसी अपेक्षा से कर्मोका बध होता है । मुक्तात्मा मूर्त्त नहीं है इसलिए वहाँ बध भी नहीं होता ।

अथवा जैसे आकाश अमूर्त्त है और घट मूर्त्त है तथापि उन दोनोका सयोग सम्बन्ध होता है, और जैसे मूर्त्त हाथ तथा हाथसे होनेवाली अमूर्त्त क्रियाका दूसरोंने समवाय–सम्बन्ध

મોક્ષસ્થાનની પ્રાપ્તિ વિના જન્મ જરા મરણ આદિથી થતા અપરિમિત દુઃખ ભોગવતાં જીવ આ સંસારરૂપી ખાડામાં પડીને કષ્ટ ભોગવે છે

પ્રશ્ન-આત્મા અમૂર્ત (અરૂપી) છે અને કર્મ મૂર્ત (રૂપી) છે. એ કારણે એ બેઉનો પરસ્પર બંધ કેવી રીતે થઇ શકે ? જો મૂર્તનો બંધ અમૂર્તની સાથે થઇ શકે તો આકાશાસ્તિકાય, ધર્માસ્તિકાય, અધર્માસ્તિકાય અને કાલની સાથે પણ કર્મોનો બંધ થઇ જશે, કારણ કે તે પણ અમૂર્ત છે

ઉત્તર-તમે કહો છો કે આત્મા અમૂર્ત છે, તો બતાવો કે આત્મા સર્વથા અમૂર્ત છે કે કથંચિત અમૂર્ત છે ? જો કહેશો કે આત્મા સર્વથા અમૂર્ત છે તો હેતુ અસિદ્ધ થઇ જશે, કારણ કે આગમમાં આત્માને સર્વથા અમૂર્ત માન્યો નથી

અગર 'કથંચિત અમૂર્ત' કહેશો તો કથંચિત્ મૂર્ત પણ થશે , અને જે (સંસારાવસ્થાની) અપેક્ષાએ આત્મા મૂર્ત છે તે અપેક્ષાએ કર્મોનો બંધ થાય છે મુક્તાત્મા મૂર્ત નથી તેથી તેને બંધ પણ થતો નથી

અથવા જેમ આકાશ અમૂર્ત છે અને ઘટ મૂર્ત છે, તથાપિ એ બેઉનો સંયોગ-સંબંધ

किञ्च—यथा मूर्त्तामूर्त्तयोः घटाकाशयोः संयोगरूपः सम्बन्धः, करक्रिययोर्मूर्त्तामूर्त्तयोः समवायसम्बन्धः परैरङ्गीक्रियते तथाऽऽत्मकर्मणोरमूर्त्तमूर्त्तयोः सम्बन्धे न काचिदनुपपत्तिर्नाम। अपि च यथा शरीरमिदमात्मसम्बद्धं प्रत्यक्षमुपलभ्यते तथा प्रेत्य भवान्तरगमननिमित्तं कार्मणलक्षणं शरीरान्तरमप्यात्मसम्बद्धमिति स्वीकर्त्तव्यम्।

नन्वपूर्वापरपर्यायाऽदृष्टहेतुकमिदमेव शरीरं तत्रास्ति न कार्मणशरीरमिति चेत्, अदृष्टममूर्त्तं मूर्त्तं वा? अमूर्त्तत्वे कथं स्थूलमूर्त्तशरीरेण तत्सम्बन्धः? भवन्मते तदसम्भवात्। सम्भवे चाऽऽत्मकर्मसंयोगेन किमपराद्धम्?, अथ मूर्त्तत्वमङ्गीक्रियते तदाऽन्धसर्पबिलप्रवेशन्यायेन मूर्त्तामूर्त्तयोः सम्बन्धः स्वीकृत एव॥

स्वीकार किया है, उसी प्रकार अमूर्त्त आत्मा और मूर्त्त कर्मका बन्ध भी युक्ति—युक्त ही है।

अथवा जैसे आत्मासे सबद्ध यह शरीर प्रत्यक्षसे सिद्ध है उसी प्रकार परलोकमें गमन करनेवाला कार्मण शरीर भी आत्मासे सम्बन्ध है, ऐसा स्वीकार करना चाहिए।

यदि ऐसा कहो कि— 'अपूर्व' 'अदृष्ट' के कारण यही शरीर परलोकके लिए गति कराता है तो हम पूछगे कि वह अदृष्ट अमूर्त्त है या मूर्त ? अमूर्त्त है तो स्थूल मूर्त शरीरके साथ अदृष्टका सयोग कैसे हुआ ? क्योंकि तुम्हारे मतसे ऐसा होना असभव है। बिना अदृष्टके सम्बन्धके स्थूल शरीरमें चेष्टा नहीं हो सकती। सभव मानो तो आत्मा और कर्मके संयोगने क्या अपराध किया है ? अर्थात् जब अमूर्त्त अदृष्ट और मूर्त्त शरीरका सम्बन्ध हो सकता है तो आत्मा और कर्मका भी सयोग हो सकता हैं।

अगर अदृष्ट(भाग्य) को मूर्त मानो तो अमूर्त्त आत्माके साथ उसका सम्बन्ध स्वीकार करनेसे यह मान लियाकि अमूर्त्त और मूर्तका सम्बन्ध होता है। जैसे अंधा सर्प इधर उधर भटककर फिर बिलमें प्रवेश करता है वैसेही तुमने कल्पनासे इधर उधर दौडकर अतमें अमूर्तका मूर्त्त के साथ सबन्ध स्वीकार करही लिया।

થાય છે, અને જેમ મૂર્ત હાથ તથા હાથથી થનારી અમૂર્ત ક્રિયાનો બીજાઓએ સમવાય-સંબંધ સ્વીકાર્યો છે, એ પ્રકારે અમૂર્ત આત્મા અને મૂર્ત કર્મનો બંધ પણ યુક્તિયુક્ત જ છે

અથવા જેમ આત્માથી સબદ્ધ આ શરીર પ્રત્યક્ષથી સિદ્ધ છે તેમ પરલોકમાં ગમન કરાવનારૂ કાર્મણ શરીર પણ આત્માથી સબદ્ધ છે એવો સ્વીકાર કરવો જોઈએ.

જો એમ કહો કે 'અપૂર્વ' યા 'અદૃષ્ટ' ને કારણે આ શરીર પરલોકને માટે ગતિ કરાવે છે, તો અમે પૂછીશુ કે એ અદૃષ્ટ અમુર્ત છે કે મૂર્ત ? અમૂર્ત છે તો સ્થૂલ મૂર્ત શરીરની સાથે અદૃષ્ટનો સયોગ કેવી રીતે થયો ?, તમારે મતે એમ થવું અસંભવિત છે. અદૃષ્ટના સંબંધ વિના સ્થૂલ શરીરમા ચેષ્ટા થઈ શકતી નથી સભવ માનો તો આત્મા અને કર્મના સંયોગે શો અપરાધ કર્યો છે ? અર્થાત્ જો અમૂર્ત અદૃષ્ટ અને મૂર્ત શરીરનો સંબંધ થઈ શકે છે તો આત્મા અને કર્મનો પણ સંયોગ થઈ શકે છે

અગર અદૃષ્ટ (ભાગ્ય) ને મૂર્ત માનો તો અમૂર્ત આત્માની સાથે એનો સંબંધ સ્વી-

ननु कर्मसंयोगादात्मनो मूर्त्तत्वं संपद्यते, तस्मिंश्च सति बन्धसम्बन्धो युज्यते, कर्मबन्धात्पूर्वं तु आत्मनो मूर्त्तत्वाभावात् कथमिव बन्धः संभावनासरणिमारोढुं प्रभवेदिति चेन्न, जीवकर्मणोः खनौ सुवर्णोपलयोरिव संयोगस्याऽनादिकालिकत्वात् ।

न च 'जीवकर्मणोः सम्बन्धस्याऽनादित्वे मोक्षो नैव संभवति अनादेरन्ताभावादाकाशात्मनोरिवे'-ति वाच्यम् अनाद्यनन्तत्वयोरविनाभावाऽभावात्, अनादेरपि घटादिप्रागभावस्य सान्तत्वोपलम्भात्, अनादेरपि बीजाङ्कुरादिसन्तानस्य दाहादिकारणवशात्सान्तताद‍र्शनाच्च, इत्यलमतिविस्तरेण । बन्धस्वरूपमुच्यते—

प्रश्न—कर्मका सयोग होनेपर आत्मा मूर्त्त होती है और मूर्त्त हो जाने पर बंध हो सकता है किन्तु कर्मबंध होनेसे पहले तो आत्मा मूर्त्त नहीं थी, फिर बंवकी सभावना कैसे हो सकती है।

उत्तर—जैसे खानमें रहे हुए सुवर्ण तथा पाषाणका सम्बन्ध अनादिकालीन है, वैसेही जीव और कर्मका भी सम्बन्ध अनादिकालीन है ।

कोई—कोई ऐसाकहते है कि जिसकी आदी नहीं होती उसका अंत भी नहीं होता है, जैसे जीव और आकाशका सम्बन्ध कभी नष्ट नहीं होता. इस नियमके अनुसार यदि जीव—कर्मका सम्बन्ध अनादिकालिन हे तो कभी उसका भी अंत न होगा, फिर किसीको मोक्ष मिल ही नहीं सकेगा ।

उनका यह कथन दूषित है, क्योंकि घट आदिका प्राग् अभाव यद्यपि अनादिकालीन है फिर भी घट उत्पन्न होते ही उसका अन्त हो जाता है ।

बीज तथा वृक्षकी परम्परा भी अनादिकालीन है तथापि यदि बीज जल जाय तो उस

કારવાથી એમ માની લીધું કે અમૂર્ત અને મૂર્તનો સંબધ થાય છે, જેમ આવળો સર્પ અહીં-તહીં ભટકીને પછી દરમાં પ્રવેશ કરે છે, તેમ તમે કલ્પનાથી અહી-તહી દોડાને છેવટે અમૂર્તનો મૂર્તની સાથે સબંધ સ્વીકાર કરી લીધો.

પ્રશ્ન-કર્મનો સંયોગ થયા પછી આત્મા મૂર્ત થાય છે અને મૂર્ત થયા પછી બંધ થઈ શકે છે, પરન્તુ કર્મબધ થયા પહેલા તો આત્મા મૂર્ત ન હતો, અમૂર્ત હતો, પછી બંધની સંભાવના કેવી રીતે હોઇ શકે છે ?

ઉત્તર-જેમ ખાણુમાં રહેલા સુવર્ણ તથા પાષાણુનો સંબધ અનાદિ કાળનો છે તેમ જીવ અને કર્મનો પણ સબધ અનાદિકાળનો છે

કોઈ-કોઈ એમ કહે છે કે જેની આદિ નથી તેનો અંત પણ હોતો નથી, જેમકે જીવ અને આકાશનો સંબધ કદાપિ નષ્ટ થતો નથી. એ નિયમાનુસાર જો જીવ-કર્મનો સંબંધ અનાદિકાળનો છે તો કદાપિ તેનો અંત થશે નહિ, પછી કોઇને મોક્ષ મળી શકશે નહિ

એનુ એ કથન દૂષિત છે, કારણુ કે ઘટ આદિનો પ્રાગ્ અભાવ જો કે અનાદિકાળનો છે; તોપણુ ઘટ ઉત્પન્ન થતા જ તેનો અંત થઈ જાય છે. બીજ તથા વૃક્ષની પરંપરા પણ અનાદિકાળની છે તથાપિ જો બીજ બળી જાય તો એ પરપરાનો અભાવ થઈ જાય છે, તેથી

बन्धश्चतुर्विधः-प्रकृति-स्थित्य-नुभाग-प्रदेशभेदात्, तत्र-प्रकृति =स्वभावः आत्म-गृहीतकर्मपुद्गलानां तत्तच्छक्तिरूपतया परिणमनलक्षणः, यथा=निम्बस्य तिक्तत्वम्, गुडस्य मधुरत्वमित्यादि, तथा ज्ञानावरणीयस्य जीवादिपदार्थानवबोधकत्वम् (१), दर्शनावरणीयस्य जीवादीनामनालोचकत्वम् (२), वेदनीयस्याऽव्याबाधकत्वम् (३), मोहनीयस्य तत्त्वारुचित्वमप्रतित्वं च (४), आयुषो भवाधायकत्वम् मोक्षस्य साद्यनन्तस्थित्याच्छादकत्वमित्यर्थः (५), नाम्नोऽमूर्त्तत्वगुणनिरोधकत्वम् (६), गोत्रस्यागुरुलघुगुणघातकत्वम् (७), अन्तरायस्य च दानादिप्रतिघातकत्वम् (८), तद्रूपो बन्धः प्रकृतिबन्धः १ ।

परम्पराका अभाव हो जाता है, इसलिए आत्मकर्म सयोग अनादि होनेपर भी सान्त हो सकता है।

बन्धका स्वरूप कहते है-बन्ध चार प्रकारका है-(१) प्रकृतिबंध, (२) स्थितिबंध, प्रदेशबंध (३) अनुभागबन्ध, और (४)

(१) प्रकृतिबध-प्रकृति स्वभावको कहते है। अर्थात् आत्माके द्वारा ग्रहण किये हुए कर्मो में अमुक अमुक प्रकारकी शक्तिका आजाना। जैसे-नीमका स्वभाव कटुकता, गुडका स्वभाव माधुर्य इत्यादि। इसी प्रकार ज्ञानावरण कर्मका स्वभाव है-आत्माके ज्ञानको आच्छादित करना १ दर्शनावरणका स्वभाव है-दर्शनको रोकना २। अव्याबाध गुणको प्रगट न होने देना वेदनीय कर्मका ३। जीवादि तत्त्वोमें रुचि न होने देना तथा चारित्रको रोकना मोहनीय कर्मका ४। किसी शरीरमें रोक रखना आयुकर्मका ५। अमूर्त्तत्व गुणको प्रगट न होने देना नामकर्मका ६। अगुरुलघुत्व गुणका नाश कर देना गोत्रकर्मका ७। तथा दान लाभ भोग उपभोग और वीर्यमें विघ्न डालना अन्तराय कर्मका स्वभाव है। ८। इसीको प्रकृतिबन्ध कहते है।

આત્મ-કર્મ-સંયોગ અનાદિ હોવા છતાં પણ સાન્ત થઇ શકે છે બંધનુ સ્વરૂપ કહે છે-બંધ ચાર પ્રકારનો છે (૧) પ્રકૃતિ-બંધ (૨) સ્થિતિ-બંધ, (૩) અનુભાગબંધ અને પ્રદેશ-બંધ

(૧) પ્રકૃતિ-બંધ-પ્રકૃતિ સ્વભાવને કહે છે, અર્થાત્ આત્મા વડે ગ્રહણ કરાયલાં કર્મોમાં અમુક-અમુક પ્રકારની શક્તિ આવિ જવી તે જેમ લીંબડાનો સ્વભાવ કટુતા (કડવાશ) છે, ગોળનો સ્વભાવ મધુરતા (મિઠાશ) છે, ઈત્યાદિ. એ રીતે જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો સ્વભાવ આત્માના જ્ઞાનને આચ્છાદિત કરવાનો (ઢાકવાનો) છે ૧. દર્શનાવરણનો સ્વભાવ દર્શનને રોકવાનો છે ૨. અવ્યાબાધ ગુણને પ્રકટ ન થવા દેવા એ વેદનીય-કર્મનો સ્વભાવ છે ૩ જીવાદિ તત્ત્વોમાં રૂચિ ન થવા દેવી: તથા ચારિત્રને રોકવું એ મોહનીય-કર્મનો સ્વભાવ છે ૪. કોઈ શરીરમા આત્માને રોકી રાખવો એ આયુ-કર્મનો સ્વભાવ છે ૫ અમૂર્તત્વ ગુણને પ્રકટ થવા ન દેવો એ નામકર્મનો સ્વભાવ છે ૬ અગુરૂ-લઘુત્વ ગુણનો નાશ કરવો એ ગોત્રકર્મનો સ્વભાવ છે ૭ તથા દાન લાભ ભોગ ઉપભોગ અને વીર્યમા વિઘ્ન નાખવું એ અંતરાય-કર્મનો સ્વભાવ છે ૮ એને પ્રકૃતિ-બંધ કહે છે.

स्थितिः=जघन्यादिभेदेन कर्मणामात्मना सहावस्थानं, तल्लक्षणो बन्धः स्थितिबन्धः २।

अनुभागो=रसः-कर्मणां फलदातृत्वशक्तितारतम्यं, तत्स्वरूपो बन्धोऽनुभागबन्धः ३।

प्रदेशः=कर्मदलसञ्चयस्वरूपः=अनन्तानन्तकर्मप्रदेशानामियत्तारूपेण जीवप्रदेशेषु सम्बन्धस्तल्लक्षणो बन्धः प्रदेशबन्धः ४। उक्तश्च—

"स्वभावः प्रकृतिः प्रोक्तः, स्थितिः कालावधारणम् ।
अनुभागो रसो ज्ञेयः, प्रदेशो दलसञ्चयः ॥१॥" इति ।

एतेषां स्वरूपं च सुखावबोधाय मोदकदृष्टान्तेन प्रदर्श्यते—

यथा कस्यचिदौषधमोदकस्य प्रकृतिर्वातहारिका, कस्यचित्पित्तहारिका, कस्यचित्कफहारिणी, कस्यचिद् बुद्धिनाशिनी, तथा कस्यचित्कर्मणः प्रकृतिर्ज्ञानावरणकारिणी, कस्यचिद्दर्शनावरणविधायिनीत्येवमादिविभिन्नशक्तिमतां कर्मणां बन्धः प्रकृतिबन्धः (१)।

---

(२) स्थितिबन्ध–बंधे हुए कर्म आत्माके साथ जघन्य कितने काल तक रहेंगे और उत्कृष्ट कितने काल तक रहेंगे, इस कालकी मर्यादाको स्थितिबन्ध कहते हैं।

(३) अनुभागबन्ध–फल देनेवाली कर्मोंकी शक्तिके तरतम्यको अनुभागबन्ध कहते है।

(४) प्रदेशबन्ध–कितने कर्म आत्माके साथ बन्धको प्राप्त हुए है, इस प्रकार कर्मप्रदेशोंकी परिगणनाको प्रदेशबन्ध कहते है। कहा भी है–

"स्वभावको प्रकृतिबन्ध, कालकी मर्यादाको स्थितिबन्ध, रसको अनुभागबन्ध और कर्मपुद्गलोके समूहको प्रदेशबन्ध कहते है ॥१॥"

सरलतासे समझानेके लिए मोदकका दृष्टान्त देकर चारो बन्धोका स्वरूप दिखलाते हैं–

(१) जैसे किसी औषध–मोदककी प्रकृति वातको हरने वाली होती है किसी की पित्तको हरने वाली होती है, किसी की कफको हरने वाली होती है और किसी मोदककी प्रकृति बुद्धिको

---

(૨) સ્થિતિબંધ-બંધાયલાં કર્મ આત્માની સાથે જઘન્ય કેટલા કાળસુધી રહેશે અને ઉત્કૃષ્ટ કેટલા કાળસુધી રહેશે એ કાળની મર્યાદાને સ્થિતિબંધ કહે છે.

(૩) અનુભાગ બંધ-ફળ આપનારી કર્મોની શક્તિના તારતમ્યને અનુભાગ-બંધ-કહે છે.

(૪) પ્રદેશબંધ-કેટલા કર્મો આત્માની સાથે બંધને પ્રાપ્ત થયા છે, એ પ્રકારે કર્મ પ્રદેશોની પરિગણનાને પ્રદેશ બંધ કહે છે કહ્યુ છે કે-

"સ્વભાવને પ્રકૃતિબંધ, કાળની મર્યાદાને સ્થિતિબંધ, રસને અનુભાગ-બંધ અને કર્મ પુદ્ગલોના સમૂહને પ્રદેશબંધ કહે છે." (૧)

સરળતાથી સમજવાને માટે મોદકનું દૃષ્ટાંત આપીને ચારે બંધોનું સ્વરૂપ બતાવે છે-

(૧) જેમ કોઈ ઔષધ-મોદકની પ્રકૃતિ વાયુને હરવાવાળી છે કોઈની શક્તિ પિત્તને હરવાવાળી છે, અને કોઈ મોદકની પ્રકૃતિ બુદ્ધિને નષ્ટ કરવાવાળી હોય છે. એ રીતે કોઈ કર્મની પ્રકૃતિ જ્ઞાનનું આવરણ કરનારી હોય છે, કોઈની દર્શનનું આવરણ કરનારી હોય છે

यथा कस्यचिन्मोदकस्य स्थितिः सप्ताहोरात्रव्यापिनी, कस्यचित्पक्षव्यापिनी, कस्यचनैकादिकमासं यावत् स्थितिस्तथा कस्यचित्कर्मणस्त्रिंशत्कोटीकोटीसागरोपमा स्थितिः, कस्यचिद्विंशतिकोटीकोटीसागरोपमा, कस्यचन सप्ततिकोटीकोटीसागरोपमा, कस्यचिच्चान्तर्मुहूर्त्तपरिच्छिन्ना, एवं विभिन्नकर्मणां नियतकालावस्थानं स्थितिबन्धः (२)।

यथा कस्यचिन्मोदकस्यानुभागो(रसो) ऽतिमधुरः स्वल्पमधुरो वा, कस्यचिदतिकटुकः स्वल्पकटुको वा, कस्यचिच्च नातिमधुरो नाप्यतिकटुको भवति, द्विगुणीकरणादिना च स एव मन्द-मन्दतरत्वादिव्यपदेशं च लभते, तथा कर्मणामपि शुभाशुभादिरू-

नष्ट करनेवाली होती है। इसी प्रकार किसी कर्मकी प्रकृति ज्ञानका आवरण करनेवाली होती है और किसीकी दर्शनका आवरण करनेवाली होती है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न शक्तिवाले कर्मोंका बन्ध होना प्रकृतिबन्ध है।

(२) जैसे किसी मोदककी स्थिति एक सप्ताहकी होती है, किसी मोदककी स्थिति एक पक्ष (पखवाड़े) की होती है, किसी मोदककी स्थिति एक मासकी होती है, वैसे ही किसी कर्मकी स्थिति तीस कोडाकोडी सागरोपमकी होती है, किसीकी वीस कोडाकोडी सागरोपमकी होती है, किसी की सत्तर कोड़ाकोडी सागरोपमकी होती है, किसी कर्मकी अन्तर्मुहूर्त्त मात्रकी होती है, इस प्रकार विभिन्न कर्मोंका अमुक समय तक आत्माके साथ स्थित रहना स्थितिबन्ध कहलाता है।

(३) जैसे किसी मोदकका स्वाद (रस) बहुत मीठा होता है, किसी मोदकका कम मीठा होता है, किसीका स्वाद बहुत कडुआ होता है, किसीका कम कडुआ होता है, किसी का स्वाद न अधिक मीठा होता है, न अधिक कडुआ होता है, उसे ही द्विगुण आदि करदेनेसे वही मन्द मन्दतर आदि कहलाने लगता है। वैसे ही कर्मोंका रस शुभ अशुभ रूपसे तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम, मन्द मन्दतर और मन्दतम आदि भेदोंसे विविध प्रकारका होता है उसे ही

એ રીતે ભિન્ન-ભિન્ન શક્તિવાળા કર્મોનો બંધ થવો એ પ્રકૃતિબંધ કહેવાય છે

(૨) જેમ કોઈ મોદકની સ્થિતિ એક સપ્તાહની હોય છે, કોઇ મોદકની સ્થિતિ એક પક્ષ (પખવાડિયું) ની હોય છે, કોઈ મોદકની સ્થિતિ એક માસની હોય છે, તેમજ કોઇ કર્મની સ્થિતિ ત્રીસ કોડાકોડી સાગરોપમની હોય છે, કોઇની વીસ કોડાકોડી સાગરોપમની હોય છે, કોઇની સત્તર કોડાકોડી સાગરોપમની હોય છે., કોઇ કર્મની સ્થિતિ માત્ર અંતર્મુહૂર્તની હોય છે એ પ્રકારે વિભિન્ન કર્મોનું અમુક સમય સુધી આત્માની સાથે સ્થિત રહેવું એ સ્થિતિબંધ કહેવાય છે,

(૩) જેમ કોઈ મોદકનો સ્વાદ (રસ) બહુ મીઠો હોય છે. કોઈ મોદકનો ઓછો મીઠો હોય છે, કોઇ મોદકનો સ્વાદ બહુ કડવો હોય છે, કોઇનો ઓછો કડવો હોય છે, કોઇનો સ્વાદ ન વધુ મીઠો કે ન વધુ કડવો હોય છે, તેને દ્વિગુણ (બેવડો) કરવાથી તે મંદ-મંદતર આદિ કહેવાવા લાગે છે, એજ રીતે કર્મોનો રસ શુભ અશુભ રૂપથી તીવ્ર, તીવ્રતર, તીવ્રતમ, મંદ, મંદતર, મંદતમ આદિ ભેદોએ કરીને વિવિધ પ્રકારનો થાય છે એને

पेण तीव्र-तीव्रतर-तीव्रतम-मन्द मन्दतर मन्दतमत्वादिभेदभिन्नो बन्धोऽनुभागबन्धो रस-बन्धव्यपदेश्यः (३) ।

१ शुभकर्मणामनुभागो (रसो) द्राक्षेक्षुक्षीरमाक्षीकवदतिमधुरो भवति, यदनुभवेन जीवः सान्द्रानन्दसन्दोहतुन्दिलान्तःकरणो जायते । अशुभकर्मणां रसस्तु निम्बकिरातनिक्तादिवद-तितरां तिक्तो भवति, यदनुभवेन जीवोऽनिर्वचनीयं व्याकुलीभावं भजते, तीव्रतीव्रतरत्वा-दिबोधनार्थं च दृष्टान्तः प्रदर्श्यते इक्षुनिम्बयोरन्यतरस्य चतुःशेटकपरिमितो रसः 'स्वाभा विकरस' इत्युच्यते, वह्नितापद्वारोत्कालितो यदा शेटकचतुष्टयस्थाने शेटकत्रितयमात्रोऽव-शिष्येत तदाऽसौ 'तीव्र' इत्युच्यते, पुनरुत्कालनेन शेटकद्वितयमात्रोऽवशिष्यते तदा तीव्र-तर' इत्यभिधीयते, पुनरप्युत्कालनेन शेटकैकमात्रेऽवशिष्टे 'तीव्रतम' इति कथ्यते ।

इक्षु निम्बयोरेव शेटकैकमात्रो रसः 'स्वाभाविकरसः' इत्युच्यते, एकशेटकजलमेलनेन 'मन्दरस' इति, द्विशेटकजलसंयोजनेन 'मन्दतरो रस' इति, शेटकत्रितयपरिमितजलसम्बन्धेन 'मन्दतमो रस' इति व्यपदेशं लभते ।

अनुभागबन्ध कहते है । शुभ कर्मोंका अनुभाग (रस) दाख, सांठा, गन्ना दूध या मधुके समान अतिमधुर होता है, इसके उपभोगसे आत्मामें अत्यन्त आनन्द उत्पन्न होता है । अशुभ कर्मोंका फल नीम चिरायता आदिके समान अत्यन्त तिक्त होता है, इसका अनुभव करनेसे जीव अतिशय व्याकुलता प्राप्त करता है । तीव्र तीव्रतर आदि समझाने के लिये उदाहरण देते है इक्षु या नींममें से किसीका चार सेर रस 'स्वाभाविक रस' कहलाता है यदि अग्निमें उकालने पर तीन सेर रह जाय तो वह तीव्रतम कहलाता है ।

इक्षु और निम्बका एक सेर रस स्वभाविक रस, उसमे एक सेर जल मिला दिया जाय तो मन्द, दो सेर मिलानेसे मन्दतर, तीन सेर मिलानेसे मन्दतम रस कहलाता है ।

---

४ અનુભાગબંધ યા રસબંધ કહે છે.

૧. શુભ કર્મોનો અનુભાગ (રસ) દ્રાક્ષ, શેરડી, દૂધ યા મધના જેવો અતિમધુર હોય છે

એના ઉપભોગથી આત્મામાં અત્યંત આનંદ ઉત્પન્ન થાય છે અશુભ કર્મોનું ફળ લીંબડો, કરિયાતું આદિની પેઠે અત્યંત તિક્ત હોય છે એનો અનુભવ કરવાથી જીવ અતિ-શય વ્યાકુળતા પ્રાપ્ત કરે છે તીવ્ર તીવ્રતર આદિ સમજાવવાને ઉદાહરણ આપે છે-શેરડી યા લીંબડામાંથી કાઢેલો કોઈનો ચાર શેર રસ 'સ્વભાવિક રસ' કહેવાય છે તો તેને અગ્નિ પર ઉકાળવાથી ત્રણ શેર રહે તો તે તીવ્ર કહેવાય છે, ફરી ઉકાળવાથી બે શેર રહે તો તે તીવ્ર-તર કહેવાય છે અને તેને ફરીથી ઉકાળતા માત્ર શેર બાકી રહે તો તે તીવ્રતમ કહેવાય છે

શેરડી અને લીંબડાના એક શેર સ્વાભાવિક રસમાં તો એક શેર પાણી મેળવવામાં આવે તો મંદ બશેર પાણી મેળવતા મંદતર અને ત્રણ શેર પાણી મેળવવાથી મંદતમ રસ કહેવાય છે.

यथा कस्यचिन्मोदकस्य प्रदेशः=कणिक्कादिदलसञ्चयः परिमाणेन द्विकर्षमितः, कस्यचित्कर्षत्रयमितः, एवं कस्मिंश्चित् कर्मदले परिमाणतोऽधिकसंख्याकाः, कस्मिंश्चिन्न्यूनसंख्यकाः, इत्येवं न्यूनाधिक्यरूपेण कर्मवर्गणाभिरात्मनोऽभिसम्बन्धः प्रदेशबन्धः (४)।

मोक्षम्=मोक्षणं मोक्षः स च द्रव्यभावभेदाद्द्विविधः, तत्र द्रव्यतो निगडादितः, भावतो ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मपाशतः पृथग्भवनमात्मनः, प्रकृते च भावमोक्षस्य आत्मनः पुनरप्रादुर्भावयोग्यकर्मक्षयादनन्तज्ञानशाश्वतावस्थिति--कृतकृत्यत्वाऽव्याबाधसुखस्वरूपस्य ग्रहणम्।

अत्र बौद्धा-"दीपनिर्वाणवदात्मनो निर्वाणं मोक्षः" यथोक्तम्—

"दीपो यथा निर्वृतिमभ्युपेतो, नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम्।
दिशं न काञ्चिद्विदिशं न काञ्चित्, स्नेहक्षयात्केवलमेति शान्तिम् ॥१॥

---

(४) जैसे किसी मोदकमें आटे आदिके प्रदेश, परिमाणमें दो तोला होता है, किसीका तीन तोला होता है। इसी प्रकार किसी कर्मदलमें अधिक सख्यावाले प्रदेश है, किसी कर्मदलमें कम सख्यावाले प्रदेश होते है, अतः न्यूनाधिक रूपसे कर्मवर्गणाओके साथ आत्माका सम्बन्ध होना प्रदेशबन्ध है।

छूटनेको मोक्ष कहते है, मोक्ष भी दो प्रकारका है-(१) द्रव्यमोक्ष और (२) भावमोक्ष बेड़ी आदिसे छूटना द्रव्यमोक्ष है और ज्ञानावरण आदि आठ कर्मरूपी पाशसे आत्माका मुक्त हो जाना भावमोक्ष है।

यहां समस्त कर्मोके आत्यन्तिक अभावसे उत्पन्न होनेवाले अनन्त ज्ञान, शाश्वत स्थिति, कृत-कृत्यता, अव्याबाव सुखस्वरूप भाव-मोक्षका ग्रहण किया गया है।

बौद्धमतावलम्बी मानते है कि–"जैसे दीपक बुझ जाता है उसी प्रकार आत्माका अभाव हो जाना मोक्ष है"। कहाभी है—

---

(૪) જેમ કોઈ મોદકમા આટા આદિનો પ્રદેશ પરિમાણમાં બે તોલા હોય છે, કોઈમાં ત્રણ તોલા હોય છે, એજ રીતે કોઈ કર્મદળમાં અધિક સખ્યાવાળા પ્રદેશો હોય છે, કોઈ કર્મદળમા ઓછી સખ્યાવાળા પ્રદેશો હોય છે, એમ ન્યૂનાધિક રૂપે કર્મવર્ગણાઓની સાથે આત્માનો સબંધ થવો એ પ્રદેશબધ છે.

છૂટવાને મોક્ષ કહે છે મોક્ષના પણ બે પ્રકાર છે (૧) દ્રવ્ય-મોક્ષ અને (૨) ભાવમોક્ષ બેડી વગેરેથી છૂટવુ એ દ્રવ્યમોક્ષ છે અને જ્ઞાનાવરણ આદિ આઠ કર્મરૂપી પાશથી આત્માનું મુક્ત થઈ જવું તે ભાવમોક્ષ છે.

અહી સર્વ કર્મોના આત્યન્તિક અભાવથી ઉત્પન્ન થનારાં અનત જ્ઞાન, શાશ્વત-સ્થિતિ કૃતકૃત્યતા, અવ્યાબાધ-સુખ-સ્વરૂપ ભાવમોક્ષને ગ્રહણ કરવામા આવેલ છે

બોધમતાવલબીઓ માને છે કે—"જેમ દીપક બુઝાઈ જાય છે તેમ આત્માનો અભાવ થઈ જવો એ મોક્ષ છે," કહ્યુ છે કે—

जीवस्तथा निर्वृतिमभ्युपेतो, नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम् ।
दिशं न काञ्चिद्विदिशं न काञ्चित्, क्लेशक्षयात्केवलमेति शान्तिम् ॥२॥"

इत्याहुस्तच्छाश्वतावस्थितिपदेन निराकृतम्, सतोऽत्यन्तविनाशाभावात्, तस्मादात्मनः सकलकर्ममलविरहिता सद्भावस्वरूपा काचिदवस्थाऽवश्यम्भाविनी ।

न च 'दीपस्याभ्रस्य वा निरन्वयविनाशदर्शनादात्मनः स (निरन्वयविनाशः) कथं ने'ति शङ्कनीयम्; तयोरपि निरन्वयविनाशानभ्युपगमात्, यथा कर्पूरस्य 'पिपरमेण्ट' इति ख्यातपदार्थस्य वा वातेन ह्रियमाणस्य परिणमनसौक्ष्म्यादिन्द्रियगोचरत्वापायेऽपि न सर्व-

---

जैसे दीपककी ज्वाला जब नष्ट हो जाती है, तब न भूमिको ओर जाती है न आकाशकी ओर जाती है, न किसी दिशामें जाती है, न किसी विदिशामें जाती है, किन्तु स्नेह (तेल) का अभाव हो जानेसे शान्त हो जाती है ॥१॥

इसी प्रकार मुक्त जीव न भूमिकी ओर जाता है, न आकाशकी ओर जाता है, न किसी दिशामें जाता है, न विदिशामें जाता है, हां, दुःखोंका क्षय होजानेसे शान्त हो जाता है, अर्थात् मुक्त अवस्थामें जीवका अभाव हो जाता है ॥२॥"

ऐसा माननेवाले बौद्धोंका खण्डन मोक्षके लक्षणमें आये हुए 'शाश्वत अवस्थिति' पदसे किया गया है, क्योंकि सत् पदार्थका कभी अभाव नहीं होता जब सत् पदार्थका अभाव नहीं हो सकता तो आत्माकी भी समस्त कर्मोंसे रहित विद्यमान अवस्था अवश्य होनी चाहिये ।

बौद्ध–जब दीपककी ज्वालाका तथा मेघका निरन्तर नाश देखा जाता है तो आत्माका निरन्वय (सर्वथा) नाश क्यों नहीं हो सकता ? ।

जैन–यह कहना सत्य नहीं है कि दीपककी ज्वाला और मेघ का निरन्वय नाश होजाता है । वह सूक्ष्म रूपसे परिणमन होनेसे यद्यपि इन्द्रियगोचर नहीं होता तथापि उसका सर्वथा अभाव

"જેમ દીપકની જ્વાલા જ્યારે નષ્ટ થઈ જાય છે, ત્યારે નથી તે ભૂમિની તરફ જતી, નથી વિદિશામાં જતી પરંતુ સ્નેહ (તેલ) નો અભાવ થવાથી શાન્ત થઈ જાય છે (૧)

એ રીતે મુક્ત જીવ નથી ભૂમિની તરફ જતો, નથી આકાશની તરફ જતો, નથી કોઈ દિશામાં જતો, હા, દુઃખોનો ક્ષય થઈ જવાથી શાન્ત થઈ જાય છે, અર્થાત્ મુક્ત અવસ્થામાં જીવનો અભાવ થઈ જાય છે." (૧)

એમ માનનારા બૌદ્ધોનું ખંડન મોક્ષના લક્ષણમાં આવેલા 'શાશ્વત અવસ્થિતિ' શબ્દ વડે કરવામાં આવ્યું છે, કારણ કે સત્ પદાર્થનો કદાપિ અભાવ થતો નથી જો સત્ પદાર્થનો અભાવ થઈ શકતો નથી તો આત્માની પણ સર્વ કર્મોથી રહિત વિદ્યમાન અવસ્થા અવશ્ય હોવી જોઈએ.

બૌધ—જો દીપકની જ્વાલાનો તથા મેઘનો નિરન્વય નાશ જોવામાં આવે છે, તો આત્માનો નિરન્વય (સર્વથા) નાશ કેમ ન થઈ શકે ?

જૈન—એમ કહેવું સત્ય નથી કે દીપક જ્વાલાઅને મેઘનો નિરન્વય નાશ થઈ જાય

थाऽभावः किन्त्ववस्थान्तरेण परिणतिमात्रम् , तथैव प्रदीपपर्यायाऽऽपन्नाः पुद्गलास्तमस्त्वेन परिणमन्ति, एवमभ्रस्यापि विशीर्यमाणस्य पुद्गलपुञ्जः परिणामसूक्ष्मत्वेन दृष्टिपथमप्राप्तोऽपि न पुद्गलत्वेनाऽसद्भूतः । एवमेवाऽऽत्माऽपि कृत्स्नकर्मकलापविप्रमुक्तः शुद्धः-सिद्धो बुद्धोऽनन्तगुणसमृद्धो मोक्षावस्थायामपि विद्यत एवेति ।

अत्र 'अनन्तज्ञाने'- तिविशेषणेन नैयायिकवैशेपिकाभिमत मतं निरस्तम् । तथाच "बुद्धि सुख-दुःखेच्छा-द्वेष प्रयत्न-धर्मा-ऽधर्म-संस्कारस्वरूपाणां नवानामात्मविशेषणगुणानामत्यन्तविच्छेदो मोक्षः" इति । अत्रोच्यते-बुद्ध्यादयो गुणा आत्मनो भिन्ना अभिन्ना वा ?, अभिन्नाश्चेत्तद्विनाशे आत्मनोऽपि विनाशोऽवश्यम्भावी तत्स्वरूपत्वात् , औष्ण्यविनाशे वन्हिविनाशवत् , तथा च तदानीं कस्य मोक्षः ? । भिन्नाश्चेत्तर्हि वन्हिशैत्ययो-

---

नहीं होजाता, वह दूसरी सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त होजाता है । इसी तरह प्रदीप अवस्था वाले पुद्गल अन्धकाररूपमें परिणत होजाते है। मेघ जब छिन्न–भिन्न हो जाता है तो सूक्ष्मरूपमें परिणत होजाने से इन्द्रियोंद्वारा गृहीत नहीं हो सकता तथापि पुद्गल के रूपमें विद्यमान रहता ही है। ऐसे ही समस्त कर्मोसे रहित, शुद्ध, सिद्ध, बुद्ध, और अनन्त गुणो से समृद्ध आत्मा मोक्ष–अवस्थामें भी विद्यमान रहती है।

'अनन्तज्ञान' विशेषण से नैयायिक–वैशेषिक मत का निराकरण किया गया है। उनकी मान्यता है कि "बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, और सस्कार, इन आत्मा के नौ विशेष गुणोका अत्यन्त विनाश हो जाना मोक्ष है।"

यहाँ पूछना यह है कि–बुद्धि आदि गुण आत्मा से भिन्न है या अभिन्न ? यदि अभिन्न है तो गुणोका नाश होने पर आत्माका भी नाश हो जायगा, क्योकि आत्मा और गुण भिन्न नहीं है–एक ही है, जैसे उष्णता का नाश होनेपर अग्निका नाश हो जाता है । जब आत्मा का

છે સૂક્ષ્મરૂપથી પરિણમન થવાથી જો કે તે ઇન્દ્રિયગોચર થતાં નથી, તથાપિ એનો સર્વથા અભાવ થઇ જતો નથી તે બીજી સૂક્ષ્મ અવસ્થાને પામે છે એ રીતે પ્રદીપ અવસ્થાવાળાં પુદ્ગલ અંધકારરૂપમાં પરિણત થઇ જાય છે મેઘ જ્યારે છિન્ન–ભિન્ન થઇ જાય છે ત્યારે તે સૂક્ષ્મરૂપમાં પરિણત થઇ જવાથી ઇન્દ્રિયોદ્વારા ગ્રહણ થઇ શકતો નથી, તોપણ પુદ્ગલના રૂપમાં વિદ્યમાન તો રહે જ છે, એવી જ રીતે સર્વ કર્મોથી રહિત, શુદ્ધ, સિદ્ધ, બુદ્ધ અને અનંત ગુણોથી સમૃદ્ધ આત્મા મોક્ષ અવસ્થામાંપણ વિદ્યમાન રહે છે

'અનન્ત જ્ઞાન' વિશેષણથી નૈયાયિક–વૈશેષિક મતનું નિરાકરણ કરવામાં આવ્યું છે તેની માન્યતા એવી છે કે "બુદ્ધિ, સુખ, ઇચ્છા, દ્વેષ, પ્રયત્ન, ધર્મ, અધર્મ અને સંસ્કાર, એ આત્માના નવ વિશેષ ગુણોનો અત્યંત વિનાશ થઇ જવો એ મોક્ષ છે."

અહીં પૂછવાનું એ છે કે–બુદ્ધિ આદિ ગુણ આત્માથી ભિન્ન છે કે અભિન્ન ? જો અભિન્ન છે તો ગુણોનો નાશ થયા બાદ આત્માનો પણ નાશ થઇ જશે, કારણ કે આત્મા અને ગુણ ભિન્ન નથી–જેમકે ઉષ્ણતાનો નાશ થવાથી અગ્નિનો પણ નાશ થઇ જાય છે, જો

रिव तयोर्गुणगुणिभावोऽनुपपन्नः समवायस्याऽसिद्धत्वात्, अत एव न बुद्ध्यादीनामात्मगुणत्वम्। अस्तु वा अयौक्तिकोऽपि गुणगुणिभावस्तथापि ज्ञानसुखाद्यभावादात्मानं को जडीकर्तुमुद्यच्छेदिच्छेदपि? ईदृशाद्भवदभिमतान्मोक्षात्संसारावस्थैव सम्यक्तराऽस्माकमस्तु, यस्मिन् सत्यपि क्लेशे कादाचित्कं स्वल्पमपि सुखं लभ्यत एव।

लोकेऽपि भवदभिमतमोक्षमाहात्म्यमुपहस्यते यथा—

"वरं वृन्दावने रम्ये, शृगालत्वं व्रजाम्यहम्।
न तु वैशेषिकीं मुक्तिं, प्रार्थयामि कदाचन ॥१॥" इति।

नाश होजायगा तो मोक्ष किस का होगा? अगर कहो कि ये गुण आत्मा से भिन्न है तो उनका आत्मा के साथ गुण-गुणि सम्बन्ध कैसे हुआ? भिन्न होनेके कारण जैसे अग्नि और शीतलता में गुण–गुणी सम्बन्ध नहीं होता वैसे ही आत्मा और बुद्धि आदि का भी सम्बन्ध नहीं हो सकता। यदि समवाय सम्बन्ध से गुण गुणिभाव मान लोगे तो बुद्धि आदि गुणो का नाश नहीं हो सकता क्योंकि समवाय सम्बन्धको तुमने नित्य माना है, अतः बुद्धि आदि आत्मा के गुण ही सिद्ध नहीं होते। यद्यपि यह सम्बन्ध युक्ति से तो सिद्ध नहीं होता फिर भी मान लोगे तो जबकी मोक्ष में ज्ञान और सुख आदिका अभाव हो जाता है तो कौन बुद्धिमान् अपनी आत्मा को इन गुणोसे रहित जड के समान बनाने का प्रयत्न करेगा? तुम्हारे इस मोक्षसे तो ससार ही भला जिसमें दुःखोके साथ-साथ कभी-कभी थोडा बहुत सुख भी मिल जाता है। लोकमें भी तुम्हारे माने हुए मोक्षकी हँसी उडाई जाती है, सुनो—

"मै मनोहर वृन्दावन में शृगाल हो जाना पसद करता हूँ, किन्तु वैशेषिकका मोक्ष नहीं चाहता ॥१॥"

આત્માનો નાશ થઈ જશે તો પછી મોક્ષ કોનો થશે? અગર જો કહો કે એ ગુણ આત્માથી ભિન્ન છે તો આત્માની સાથે એનો ગુણગુણીનો સબધ કેવી રીતે થયો? ભિન્ન હોવાને કારણે જેમ અગ્નિ અને શીતલતામાં ગુણ-ગુણી સંબંધ નથી હોતો તેવી રીતે આત્મા અને બુદ્ધિ આદિનો પણ સંબંધ નથી હોઇ શકતો જો સમવાય સંબંધથી ગુણ-ગુણીભાવ માની લેશો તો બુદ્ધિ આદિ ગુણોનો નાશ નથી થઈ શકતો, કારણ કે સમવાય સંબંધને તમે નિત્ય માન્યો છે એથી બુદ્ધિ આદિ આત્માના ગુણ જ સિદ્ધ થતા નથી. જો કે એ સંબંધ યુક્તિથી તો સિદ્ધ નથી થતો, તોપણ માની લેશો તો જો મોક્ષમાં જ્ઞાન અને સુખ આદિનો અભાવ થઇ જાય છે તો કયો બુદ્ધિમાન પોતાના આત્માને એ ગુણોથી રહિત જડની સમાન બનાવવાનો પ્રયત્ન કરશે? તમારા એવા મોક્ષ કરતા તો સસાર જ સારો કે જેમાં દુઃખોની સાથે સાથે કોઈ-કોઇવાર થોડુ-ઘણું સુખ પણ મળી જાય છે લોકોમાં પણ તમારા માનેલા મોક્ષની હાંસી ઉડાવવામા આવે છે સાભળો—

"હુ મનોહર વૃન્દાવનમાં શૃગાળ (શિયાળ) થઇ જવાનું પસંદ કરૂ છુ, પરંતુ વૈશેષિકનો મોક્ષ નથી પસંદ કરતો." (૧)

यत्तु "अनन्तसुखरूपो मोक्षः" इति तदप्यसमीचीनम्, तथाहि–तदनन्त-सुखं मुक्तात्मनो ज्ञानगोचरं भवति न वा?, आद्ये पक्षे ज्ञानाऽऽनन्त्यप्रसङ्गः, सातसंवेदनस्यैव सुखत्वात्, अत एवाऽनन्तज्ञानविरहितसुखस्वभावत्वं मोक्षस्य न सिध्यति। "प्रकृतावुपरतायां[1] पुरुषस्य स्वरूपेणाऽवस्थानं मोक्षः" इति हि साङ्ख्याः, तद् आत्मनः' इतिपदेन प्रत्यादिष्टम्। किञ्च–तन्मते प्रकृति-पुरुषयोः संयोगोऽपि न घटते कुतो मोक्षचर्चा?, तथाहि–नित्या प्रकृतिः प्रवृत्तिस्वभावा तदितरस्वभावा वा? तयोराद्यः सावद्य पक्षः, तत्र त-

जो कहते है कि–"मोक्ष अनन्तसुखस्वरूप है" अर्थात् मोक्ष में सुख ही अवशिष्ट रह जाता है और कुछ नहीं रहता। उनका यह मानना समीचीन नहीं है। वह अनन्त सुख मुक्तात्मा के ज्ञान का विषय है या नहीं? पहला पक्ष स्वीकार करो तो अनन्त सुखको जाननेके लिए अनन्त ज्ञान भी चाहिए। अनन्त ज्ञानके बिना अनन्त सुखका बोध नहीं हो सकता। दूसरा पक्ष अंगीकार करो तो सुखस्वभावता सिद्ध नहीं हो सकती, क्योंकि, सातारूप संवेदनको ही सुख कहते है। जब संवेदन ही नहीं तो सुख हो ही नहीं सकता है, इसलिए "अनन्त ज्ञानसे रहित सुखस्वभाववाला मोक्ष" नहीं मानना चाहिए।

"प्रकृति जब उपरत हो जाती है तब पुरुष अपने स्वरूपमें स्थित हो जाता है, इसी अवस्था को मोक्ष कहते हैं।"

ऐसी सांख्यमतानुयायिओंकी मान्यता है। 'आत्मनः' पदसे उसका निराकरण किया गया है। सांख्यमतमें प्रकृति और पुरुषका संयोग ही सिद्ध नहीं होता तब मोक्ष की चर्चा ही क्या करना? सो ही आगे दिखलाते है कि–प्रकृति का स्वभाव प्रवृत्ति करनेका है या नहीं?, पहला पक्ष दूषित है, क्योंकि प्रकृतिका स्वभाव यदि सर्वदा प्रवृत्ति करने का है तो उस प्रवृत्तिकी निवृत्ति

જેઓ કહે છે કે "મોક્ષ અનંત સુખસ્વરૂપ છે" અર્થાત્ મોક્ષમાં સુખ જ અવશિષ્ટ રહી જાય છે. બીજું કશું નથી રહેતું, તેઓનું એ માનવું પણ સમીચીન નથી એ અનંત સુખ મુક્તાત્માના જ્ઞાનનો વિષય છે કે નહિ? પહેલો પક્ષ સ્વીકારો તો અનંત સુખને જાણવાને માટે અનંત જ્ઞાન પણ જોઈએ અનંત જ્ઞાન વિના અનંત સુખનો બોધ થઈ શકતો નથી બીજો પક્ષ સ્વીકારો તો સુખ-સ્વભાવતા સિદ્ધ થઈ શકતી નથી કારણ કે સાતારૂપ સંવેદનને જ સુખ કહે છે જો સંવેદન જ હોતું નથી તો સુખ થઈ જ શકતું નથી તેથી "અનંત જ્ઞાનથી રહિત સુખ-સ્વભાવવાળો મોક્ષ" નહિ માનવો જોઈએ.

પ્રકૃતિ જ્યારે ઉપરત થઈ જાય છે ત્યારે પુરૂષ પોતાના સ્વરૂપમાં સ્થિત થઈ જાય છે;" એવી સાંખ્યમતાનુયાયીઓની માન્યતા છે आत्मनः શબ્દથી એનું નિરાકરણ કરવામાં આવ્યું છે સાંખ્યમતમાં પ્રકૃતિ અને પુરૂષનો સંયોગ જ સિદ્ધ નથી થતો તો મોક્ષની ચર્ચા જ શું કરવી? તેજ આગળ બતાવવામાં આવે છે કે–પ્રકૃતિનો સ્વભાવ પ્રવૃત્તિ કરવાનો છે કે નહિ? પહેલો પક્ષ દૂષિત છે, કારણ કે પ્રકૃતિનો સ્વભાવ જો સર્વદા પ્રવૃત્તિ કરવાનો

१ उपरतायां = निवृत्तायाम्।

त्प्रवृत्तेरुपरत्यभावेन मोक्षासम्भवात्, उपरत्यभ्युपगमे च प्रकृतेरनित्यत्वप्रसङ्गः। द्वितीयोऽपि पक्षो न क्षोदक्षमः प्रवृत्तेरेवाऽसम्भवतः कथमिवः भवसम्भवतः ?, भवाभावे कस्य मोक्षः ? एव तन्मते मोक्षस्यैवायौक्तिकत्वात्कथं तल्लक्षणस्य समीचीनत्वं सिध्येत् ?।

यच्चाऽऽजीवकाः (सम्प्रदायविशेषाः) मुक्तेः सकाशादात्मनः पुनरागमनमामनन्ति, तथाहि—

"ज्ञानिनो धर्मतीर्थस्य, कर्त्तारः परमं पदम्।
गत्वाऽऽगच्छन्ति भूयोऽपि, भवं तीर्थनिकारतः ॥१॥" इति,

तत् "पुनरप्रादुर्भावतये"-ति पदेनाऽपाकृतम्, यतो मोक्षः कर्मनाशे सति सम्पद्यते, कर्म च कर्मणैव जन्यते, ततश्च मुक्तावस्थायां कर्माभावात्कुतः पुनः कर्मोत्पत्तिः ?, तदभावे च कुतस्तरां संसारागमनम् ? संसारस्य कर्महेतुकत्वात्, न कारणमन्तरेण कार्योत्पत्तिरिति सर्वसंमतत्वाच्चेति।

नहीं हो सकती और इसी कारणसे कभी मोक्ष भी नहीं होगा। दूसरा पक्ष भी विचार करनेसे बाधित हो जाता है। जब प्रकृति प्रवृत्ति ही नहीं करेगी तो ससार कैसे होगा ?, और जब ससार (कर्मसहित अवस्था) ही नहीं तो मोक्ष किससे होगा ?, अर्थात् किसी प्रकार मोक्ष ही नहीं बनता जब मोक्ष नहीं बनता तो उसके लक्षण की निर्दोषता भी सिद्ध नहीं हो सकती।

आजीवक सम्प्रदाय वाले ऐसा कहते है कि-"आत्मा मोक्ष से वापस लौट आती है। कहा भी है—

" धर्मतीर्थ की स्थापना करने वाले ज्ञानी परम पदको प्राप्त होकर जब तीर्थका अनादर होने लगता है तब मोक्षसे फिर ससारमें आ जाते है ॥१॥"

इनका यह मत 'पुनरप्रादुर्भावतया' इस विशेषण से खण्डित हो गया है। क्योकि कर्मोके नाश होने पर ही मोक्ष होता है, और कर्म कर्मोसे ही उत्पन्न होते है। मोक्षमें कर्मोका अभाव

છે તો એ પ્રવૃત્તિની નિવૃત્તિ થઇ શકતી નથી, અને તે કારણે કદાપિ મોક્ષ પણ થશે નહિ બીજો પક્ષ પણ વિચાર કરવાથી બાધિત થઇ જાય છે. જો પ્રકૃતિ પ્રવૃત્તિ જ નહિ કરે તો સંસાર કેવી રીતે થશે ? અને જો સંસાર (કર્મસહિત અવસ્થા) જ નથી તો મોક્ષ શાનાથી થશે ? અર્થાત્ કોઇ પ્રકારે મોક્ષ જ નથી બનતો, જો મોક્ષ નથી બનતો તો તેના લક્ષણની નિર્દોષતા પણ સિદ્ધ થઈ શકે નહિ.

આજીવક સપ્રદાયવાળા એમ કહે છે કે-"આત્મા મોક્ષથી પાછો ફરી આવે છે. કહ્યું છે કે—

"ધર્મતીર્થની સ્થાપના કરનારા જ્ઞાનીઓ પરમ પદને પ્રાપ્ત થઇને જ્યારે તીર્થનો અનાદર થવા લાગે છે ત્યારે મોક્ષમાંથી પાછા સસારમાં આવી જાય છે." (૧)

એનો એ મત 'पुनरप्रादुर्भावतया' એ વિશેષણથી ખંડિત થઈ ગયો છે કારણ કે કર્મોનો નાશ થવાથી જ મોક્ષ થાય છે અને કર્મ કર્મોથી જ ઉત્પન્ન થાય છે. મોક્ષમાં કર્મોનો અભાવ થઈ જવાથી કર્મોની ઉત્પત્તિ થતી નથી, તેથી સસારમા ફરી આવવાનો

"आत्मनः सततमूर्ध्वगतिर्मुक्ति"—रिति मण्डलीमतानुयायिनः, तच्च प्रमत्तप्रलपनप्रायम् , लोकाकाशानन्तरं धर्मास्तिकायस्यास्तित्वाभावात् । धर्मास्तिकायस्य जीवपुद्गलानां गतिनिमित्तत्वं प्रमाणासिद्धं, तथाहि—गमनोन्मुखानां जीवपुद्गलानां गतिर्बाह्यनिमित्तसापेक्षा गतित्वात् , बाह्यनिमित्तमत्र धर्मास्तिकायोऽन्यस्यासम्भवात् , लोकाकाशाऽनन्तर तदभावान्न तस्मादूर्ध्वं गतिसंभवः । अत एवाऽगर्हणीयमार्हतमताभिमतमुक्तिस्वरूपमवेति ।

ननु नरामरतिर्यङ्नारकपर्यायस्वरूप एव संसारस्तेभ्यः पृथग्भावेन न कस्यचिदात्मन उपलब्धिस्ततश्च मनुष्यादिस्वरूपसंसाराभावे तल्लक्षणस्याऽऽत्मनोऽपि विनाशः, अत एव 'अभावलक्षणो मोक्षः' इति चेदत्रोच्यते—

नारकादयो जीवस्य पर्यायाः, नहि पर्यायनाशे पर्यायिणोऽपि नाशः प्रत्युत पर्यायान्तरोत्पत्तिरेव संजायते, यथा कटकाऽऽकृतिविनाशेऽपि सुवर्णस्य न विनाशः किन्तु कुण्डलाद्याकारान्तरोत्पत्तिर्दृश्यते, तथैव नारकादिपर्यायनाशे नात्मनोऽपि नाशः किन्तु

हो जाने से कर्मोकी उत्पत्ति नहीं होती, इसलिए ससारमें आगमन सभव नहीं है । कारणके बिना कार्यकी उत्पत्ति नहीं हो सकती, ऐसा सब सिद्धान्त वाले स्वाकार करते है ।

मण्डलीमत के माननेवाले कहते है कि-"आत्मा सदा ऊपर चली जाती है कहीं ठहरती नहीं है" यह कथन उन्मत्त पुरुपके प्रलापके सदृश है, क्योकि लोकाकाशके बाद धर्मास्तिकायका सद्भाव नहीं है । यह बात प्रमाण से सिद्ध है कि धर्मास्तिकायके विना जीव और पुद्गलोकी गति विना बाह्य कारण के नहीं हो सकती, क्योकि-'वह गति है, जो जो गति होती है वह बाह्य निमित्तकी अपेक्षा रखती है' । गति में बाह्य निमित्त धर्मास्तिकाय ही हो सकता, क्योकि अन्य किसीमें ऐसी शक्ति नहीं है । यह धर्मास्तिकाय लोकाकाशसे आगे नहीं है, इसलिए लोकाकाशसे आत्मा गमन भी नहीं कर सकती' । अत एव सिद्ध हुआ कि 'आर्हतमत (जिनमत) में माना हुआ मोक्षका लक्षण ही सर्वथा निर्दोप है' ।

સભવ નથી, કારણ વિના કાર્યની ઉત્પત્તિ થઇ શકતી નથી, એવુ સર્વ સિદ્ધાન્તવાળાઓ સ્વીકારે છે.

મંડલીમતના માનનારાઓ કહે છે કે "આત્મા સદા ઉપર ચાલ્યો જાય છે, કયાય થોભતો-રહેતો નથી" આ કથન ઉન્મત્ત પુરૂપના પ્રલાપ જેવું છે, કારણ કે લોકાકાશની પછી ધર્માસ્તિકાયનો સદ્ભાવ જ નથી. એ વાત પ્રમાણથી સિદ્ધ થએલી છે કે ધર્માસ્તિકાય વિના જીવ અને પુદ્ગલોની ગતિ બાહ્ય કારણ વિના થઇ શકતી નથી, કારણ કે 'એ ગતિ છે, જે જે ગતિ હોય છે તે તે બાહ્ય નિમિત્તની અપેક્ષા રાખે છે,' ગતિમાં બાહ્ય નિમિત્ત ધર્માસ્તિકાય જ હોઇ શકે છે કારણ કે અન્ય કોઇમાં એવી શકિત નથી એ ધર્માસ્તિકાય લોકાકાશથી આગળ નથી, તેથી લોકાકાશથી આગળ આત્મા ગમન કરી શકતો નથી એટલે સિદ્ધ થયું કે "આર્હતમત (જૈનમત)મા માનેલુ મોક્ષનુ લક્ષણ જ સર્વથા નિર્દોપ છે."

પ્રશ્ન—મનુષ્ય, દેવ, તિર્યંચ અને નારકી—પર્યાયસ્વરૂપ જ સંસાર છે. એ ચારે અવ-

सिद्धत्वपर्यायान्तरं सम्पद्यते । किञ्च नारकादयः तर्यायाः कर्मकृताः सन्त्यतो हि कर्माभावे पर्यायाभावः, कारणाभावे कार्यस्याप्यभावाद् वह्न्यभावे धूमाभावात् , जीवत्वं तु न कर्मकृतं तस्य स्वाभाविकत्वादतो न खलु कर्माभावे जीवाभावस्तन्त्वभावे घटाभाववत् , तस्मान्नाऽभावलक्षणमोक्षः किन्तु शाश्वतिकावस्थितिरूपः ।

असौ (मोक्षः) च सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूपरत्नत्रयहेतुकः, अन्यतमाभावे तदसम्भवात् काञ्चनोपलवियोगवत् , यथा हि न केवलं ज्ञानमात्रेणोपलात्सुवर्णवियोगः सुस-

---

प्रश्न-मनुष्य, देव, तिर्यञ्च और नारकी- पर्यायस्वरूप ही ससार है इन चारो अवस्थाओ से भिन्न किसी आत्माकी उपलब्धि नहीं होती, इसलिए ससारका अभाव होने से आत्माका भी अभाव हो जायगा, अतएव मोक्षको अभावस्वरूप मानना चाहिए।

उत्तर-नारक आदि जीवकी पर्याये है । पर्यायोका नाश होनेसे पर्यायी (आत्मद्रव्य) का नाश नहीं होता । बल्कि दूसरी पर्याय उत्पन्न हो जाती है । जैसे सोनेके कडेका नाश होनेसे सोनेका नाश नहीं होता किन्तु कुण्डल आदि दूसरी पर्याय उत्पन्न हो जाती है, वैसे ही नारक आदि पर्यायोंका नाश होनेपर भी आत्माका नाश नहीं होता किन्तु सिद्ध पर्याय उत्पन्न हो जातीहै।

अथवा-नारक आदि पर्याये कर्मकृत है अतः कर्मके कभाव होनेपर उनका भी अभाव होताहै, क्योकि कारणके अभाव होनेसे कार्यका भी अभाव हो जाता है, जैसे अग्निका अभाव होनेसे धूमका अभाव होता है । आत्मा कर्मकृत नहीं है, वह स्वाभाविक है, अतएव कर्मका अभाव होनेसे आत्माका नाश सभव नहीं है ।जैसे तन्तुओका नाश होनसे घटका अभाव नहीं होता, इसलिए मोक्ष अभाव स्वरूप नहीं है किन्तु शाश्वत स्थितिवाला है ।

सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र स्वरूप रत्नत्रय मोक्षका कारण है । रत्नत्रयमेंसे

સ્થાથી ભિન્ન કોઇ આત્માની ઉપલબ્ધિ થતી નથી. તેથી સ સારનો અભાવ હોવાથી આત્માનો પણ અભાવ થઇ જશે તેથી મોક્ષને અભાવસ્વરૂપ માનવો જોઈએ

ઉત્તર—નારક આદિ જીવના પર્યાયો છે પર્યાયોનો નાશ થવાથી પર્યાયી (આત્મદ્રવ્ય) નો નાશ નથી થતો, બલ્કે બીજો પર્યાય ઉત્પન્ન થઇ જાય છે જેમકે સોનાના કડાનો નાશ થવાથી સોનાનો નાશ નથી થતો, પરન્તુ કુંડલ આદિ બીજો પર્યાય ઉત્પન્ન થાય છે તેવી રીતે નારક આદિ પર્યાયોનો નાશ થતા પણ આત્માનો નાશ નથી થતો કિન્તુ સિદ્ધપર્યાય ઉત્પન્ન થાય છે અથવા—

નારક આદિ પર્યાયો કર્મકૃત છે તેથી કર્મનો અભાવ થતાં તેનો પણ અભાવ થાય છે. કારણનો અભાવ થવાથી કાર્યનો પણ અભાવ થઇ જાય છે, જેવી રીતે અગ્નિનો અભાવ થવાથી ધુમાડાનો પણ અભાવ થાય છે આત્મા કર્મકૃત નથી, એ સ્વાભાવિક છે તેથી કર્મનો અભાવ થતાં આત્માનો નાશ સભવિત નથી, જેમ તંતુઓનો નાશ થવાથી ઘટનો અભાવ થતો નથીએથી કરીને મોક્ષ એ અભાવસ્વરૂપ નથી શાશ્વત સ્થિતિવાળો છે

સમ્યક્જ્ઞાન, સમ્યગ્દર્શન અને સમ્યક્ચારિત્ર-સ્વરૂપ રત્નત્રય મોક્ષનું કારણ છે. રત્ન-

म्पाद्यो भवितुमर्हति श्रद्धान-क्रिययोरभावात् (१), न श्रद्धानमात्रेण ज्ञान-क्रिययोरभावात् (२), नापि क्रियामात्रेण ज्ञान-श्रद्धानयोरभावात् (३), न ज्ञान-श्रद्धानमात्रेण क्रियाया अभावात् (४), न ज्ञान-क्रियामात्रेण श्रद्धानाभावात् (५),नापि श्रद्धानक्रियामात्रेण ज्ञानाऽभावात् (६)। एवमेव मोक्षोऽप्यन्यतमाभावे न संभवत्यपि तु समुदितरत्नत्रयादेवेति । तं मोक्षं च जानीयात्=विद्यादित्यर्थः ॥१५॥

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९
मूलम्–जया पुण्णं च, पावं च बंधं मोक्खं च जाणइ ।
१० १७ १६ १९ १२ १३ १४ १५
तया निव्विदए भोए, जे दिव्वे जे य माणुसे ॥१६॥

कोई एक न हो तो मोक्ष नहीं हो सकता, जैसे सुवर्ण और पाषाणका वियोग। अर्थात् जैसे (१) अकेले ज्ञान द्वारा पाषाणसे सुवर्णको पृथक् नहीं कर सकते, क्योंकि श्रद्धान और क्रियाका अभाव है। (२) केवल श्रद्धानसे भी पृथक् नहीं कर सकते, क्योंकि ज्ञान और क्रियाका अभाव है। (३) केवल क्रियासे भी पृथक् नहीं कर सकते, क्योंकि ज्ञान और श्रद्धान नहीं है । (४) ज्ञान और श्रद्धानसे ही सुवर्ण और पाषाणको पृथक् नहीं कर सकते, क्योंकि वहाँ क्रिया नहीं है । (५) ज्ञान और क्रियामात्रसे भी पृथक् नहीं कर सकते, क्योंकि श्रद्धान नहीं है । (६) श्रद्धान और क्रिया मात्रसे भी पृथक् नहीं कर सकते, क्योंकि ज्ञानका अभाव है। इसी प्रकार मोक्ष भी समुदित तीनोंसे प्राप्त होता है, किसी एकके अभावमें नहीं हो सकता ।

जिस प्रकार वन में आग लगने पर, वहाँ रहे हुए अन्धा नेत्रोंके अभावसे, पङ्गु चरणो के अभावसे और अश्रद्धालु अग्निकी दाहकता-शक्ति के प्रति श्रद्धा के अभावसे उस वन से नहीं निकल सकते है उसी प्रकार सम्यग्ज्ञानरूपी नेत्रो से रहित होनेके कारण अन्ध जीव, सम्यक्चारित्र से रहित होने के कारण पंगु जीव और सम्यग्दर्शन के अभाव से अश्रद्धालु जीव भी जन्म-जरा-मरण रूपी भीषण दुःखोंकी प्रचण्ड अग्नि से जलते हुए इस ससार रूपी वन से नहीं निकल

त्रयमाथी કोઈ એક ન હોય તો મોક્ષ થઈ શકતો નથી જેમ કે સુવર્ણ અને પાષાણનો વિયોગ, અર્થાત્ જેમ-(૧) એકલા જ્ઞાનદ્વારા પાષાણથી સુવર્ણ અલગ કરી શકાતું નથી, કારણ કે શ્રદ્ધાન તથા ક્રિયાનો અભાવ છે (૨) કેવળ શ્રદ્ધાનથી પણ અલગ કરી શકાતું નથી, કારણ કે જ્ઞાન અને ક્રિયાનો અભાવ છે (૩) કેવલ ક્રિયાથી પણ અલગ કરી શકાતું નથી કારણ કે જ્ઞાન અને શ્રદ્ધાન નથી (૪) જ્ઞાન અને શ્રદ્ધાનથી પણ સુવર્ણ અને પાષાણ અલગ કરી શકાતા નથી કારણ કે ત્યા ક્રિયા નથી (૫) જ્ઞાન અને ક્રિયા માત્રથી પણ અલગ કરી શકાતા નથી કારણ કે શ્રદ્ધાન નથી (૬) શ્રદ્ધાન અને ક્રિયાથી પણ અલગ કરી શકાતાં નથી કારણ કે જ્ઞાનનો અભાવ છે એ રીતે મોક્ષ પણ સમુદિત ત્રણેથી પ્રાપ્ત થાય છે, કોઈ એકનો અભાવ હોય તો મોક્ષ પ્રાપ્ત થતો નથી.

જેમ વનમાં આગ લાગવાથી, ત્યા રહેલો આંધળો નેત્રો ન હોવાથી, લંગડો પગો ન હોવાથી, અને અશ્રદ્ધાળુ અગ્નિની દાહકતા-શક્તિ પ્રત્યે શ્રદ્ધા ન હોવાથી તે વનમાથી નીકળી શકતા નથી તેમ સમ્યગ્જ્ઞાનરૂપી નેત્રો ન હોવાથી આધળો જીવ, સમ્યક્ ચારિત્ર ન

छाया—यदा पुण्यं च पापं च, बन्धं मोक्षं च जानाति ।
तदा निर्विन्ते भोगान्, ये दिव्या ये च मानुषाः ॥१६॥

सान्वयार्थः-जया=जब पुण्णं च पावं च=पुण्य और पापको, च=तथा बंधं मुक्खं= बंध और मोक्षको जाणइ=जानता है, तया=तब जे दिव्वे=जो देव सम्बन्धी य= और जे माणुसे=जो मनुष्यसम्बन्धी (भोग हैं, उन) भोए=भोगोंको निव्विदए=तत्त्वसे विचारता है, अर्थात् निस्सार समझने लगता है ॥१६॥

टीका—'जया पुण्ण'-मित्यादि । यदा पूर्वप्रतिपादितलक्षणलक्षितं पुण्यादिकं जानाति तदा ये दिव्याः=दिवि=स्वर्गे भवाः देवसम्बन्धिनः, च=तथा ये मानुषाः=मनुष्य-

---

सकते हैं । जैसे-अन्ध, पंगु, और अश्रद्धालु वनाग्नि में जल मरते हैं उसी प्रकार ये भी ससाराग्नि में जल मरते है । परन्तु जिनके नेत्र और दोनो चरण अक्षत हैं, और अग्निकी दाहकता-शक्ति के प्रति भी श्रद्धा है वे जिस प्रकार दावाग्नि-प्रज्वलित बनको पार कर जाते है उसी प्रकार जो जीव सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यग्दर्शनसे युक्त है वे भी जन्म-जरा-मरणरूप भीषण दु खो के प्रचण्ड-अग्नि से जलते हुए इस ससाररूपी वनको पार कर जाते है ।

इससे सिद्ध है कि रत्नत्रयमेंसे किसी एककी भी कमी होनेसे सिद्धि नहीं प्राप्त हो सकती । इस प्रकारके मोक्षको जाने ॥१५॥

'जया पुण्ण०' इत्यादि । जब पूर्वोक्तस्वरूपवाले पुण्य, पाप, बन्ध और मोक्षको जानता है तब देवों तथा मनुष्योके सम्बन्धी भोगोका वास्तविक विचार करता है । इन्द्रिय और मनकी अनूकूलतारूपसे जिनका उपयोग किया जाता है उन्हे भोग कहते है । भोगोके विषयमें साधु ऐसा विचार करते हे कि-"ये भोग भुजगके समान भयकर है, अशुचि है, अशुचि पदार्थोसे उत्पन्न होते है, सड जाते है, गल जाते हैं, नष्ट हो जाते है, नित्य नहीं रहते । कौन विवेकी ऐसे भोगो को

હોવાથી લગડો જીવ, અને સમ્યક દર્શન ન હોવાથી અશ્રદ્ધાળુ જીવ પણ જન્મ-જરા-મરણરૂપી ભીષણ દુ.ખોના પ્રચંડ અગ્નિથી પ્રજવલિત આસંસારરૂપી વનમાંથી નીકળી શકતો નથી. જેમ આંધળો, લગડો અને અશ્રદ્ધાળુ વનાગ્નિમા બળી મરે છે તેમ આજીવો પણ સંસારાગ્નિમાં બળી મરે છે પરન્તુ જેના નેત્રો અને બેઉ ચરણો સાબૂત છે, અને અગ્નિની દાહકતા-શક્તિ પ્રત્યે પણ શ્રદ્ધા છે તે જેમ દાવાગ્નિ થી પ્રજવલિત વનને પાર કરી જાય છે તેજ પ્રકારે જે જીવો સમ્યગ્જ્ઞાન, સમ્યક્ચારિત્ર અને સમ્યગ્દર્શનથી યુક્ત છે તે જીવો પણ જન્મ-જરા-મરણરૂપ ભીષણ દુઃખોના પ્રચંડ અગ્નિથી પ્રજવલિત આ સંસારરૂપી વનને પાર કરી જાય છે

એથી સિદ્ધ થાય છે કે એ રત્નત્રયમાથી કોઈએક પણ જો ઓછુ હોય તો સિદ્ધિ પ્રાપ્ત થઈ શકતી નથી, એ પ્રકારના મોક્ષને જાણે (૧૫)

જયા પુણ્ણં૦ ઈત્યાદિ જ્યારે પૂર્વોક્ત-સ્વરૂપવાળા પુણ્ય પાપ બધ અને મોક્ષને જાણે છે ત્યારે દેવો તથા મનુષ્યો સબધી ભોગોનો વાસ્તવિક વિચાર કરે છે ઇંદ્રિય અને મનની અનુકૂલતારૂપે જેનો ઉપયોગ કરવામા આવે છે એને ભોગ કહે છે. ભોગોના વિષયમા સાધુ

सम्बन्धिनः (भोगाः सन्ति तान् सर्वानपि) भोगान्=भुज्यन्ते=निर्विश्यन्ते=तत्तदिन्द्रियनोऽन्द्रियानुकूलतयोपयुज्यन्त इति भोगाः=शब्दादिविषयास्तान् निर्विन्ते=तत्वतो विचारयति–'भोगि भोगोपमा खल्विमे भोगा अशुचयोऽशुचिसम्भवाः शटन-पतन-विध्वंसनस्वभावा अशाश्वताश्च, को नाम विवेकी एवंविधानिमान् भोगानुपभोक्तुमभिलपेदिति ? कस्य वा विवेकिनो वान्ताशनेच्छा, अतिपूतिगन्धिपूयरुधिरप्रवाहेऽवगाहनाऽऽकाङ्क्षा, शार्दूलसदननिवासाभिलापः, कलकलायमाने सीसककटाहादौ पतनस्पृहा, समन्ततो दन्दह्यमान भवनान्तरालपरिभ्रमणसाहसम् अजगर विषधरमुपधानीकृत्य शयनेच्छा वा जायेत? । "खणमित्तसुक्खा बहुकालदुक्खा" इत्यादि पर्यालोचयन् निर्वेदं प्राप्नोतीत्यर्थः ॥१६॥

मूलम्–जया[1] निव्विए[8] भोए[7], जे[2] दिव्वे[3] जे[4] य[5] माणुसे[6] ।
तया[8] चयइ[12] संजोगं[11], सब्भिंतर[10]–बाहिरियं ॥१७॥

छाया–यदा निर्विन्ते भोगान्, ये दिव्या ये च मानुषाः ।
तदा त्यजति संयोगं, साभ्यन्तर-बाह्यम् ॥१७॥

भोगनेकी अभिलाषा करेगा ?, किस विवेकशील व्यक्तिको वमन भक्षण करनेकी इच्छा होगी ?, अहा ! कौन चाहेगा कि–'मै अत्यन्त दुर्गन्धवाले पीप और रुधिरके प्रवाहमें अवगाहन (स्नान) करूं ?, क्या कोई सिंहकी माद (गुफा) में निवास करनेकी इच्छा करता है ?, उकलते हुए शीशे की कडाहीमें कौन बुद्धिमान् कूदनेकी कामना करता है ? कोई नहीं करता है । अथवा चारो ओर से धधकते हुए घरमें घुसनेका कौन साहस कर सकता है ?, और अजगर सर्पको उपधान (उसीसा –सिरहाना) बनाकर कौन शयन करना चाहेगा ? । ये विषय-भोग क्षणमात्र सुख देनेवाले है और बहुत काल तक दुःख देने वाले है ॥" ऐसा विचार कर मुनि जन निर्वेद (वैराग्य) को प्राप्त करते है ॥१६॥

એવો વિચાર કરે છે કે "એ ભોગો ભુજગ (સર્પ)ના જેવા ભયંકર છે, અશુચિ છે, અશુચિ પદાર્થોથી ઉત્પન્ન થાય છે સડી જાય છે, ગળી જાય છે, નષ્ટ થઈ જાય છે, નિત્ય રહેતા નથી. કયો વિવેકી મનુષ્ય એવા ભોગો ભોગવવાની અભિલાષા કરશે ? કઈ વિવેકશીલ વ્યકિતને વમન કરેલાનુ ભક્ષણ કરવાની ઇચ્છા થશે ? અહા ! કોણ ઇચ્છશે કે–હુ અત્યંત દુર્ગંધવાળા પરૂ અને રૂધિરના પ્રવાહમાં અવગાહન (સ્નાન) કરીશ ? શુ કોઈ સિંહની ગુફામા નિવાસ કરવાની ઇચ્છા કરે છે ? ઊકળતા સીસાંની કડાઈમાં કયો બુદ્ધિમાન્ મનુષ્ય કૂદી પડવાની કામના કરે ? કોઇ કરે નહિ અથવા ચારે બાજુએથી અગ્નિથી ધગી રહેલા ઘરમા પેસવાનુ સાહસ કોણ કરી શકે ? અને અજગર સર્પનુ ઉપધાન (ઓશીકુ) બનાવીને સૂવાની કોણ ઈચ્છા કરશે ? એ વિષય–ભોગ ક્ષણમાત્ર સુખ દેવાવાળા છે અને ઘણા કાળ સુધી દુઃખ દેવાવાળા છે." એવો વિચાર કરીને મુનિજન નિર્વેદ (વૈરાગ્ય) ને પ્રાપ્ત કરે છે. (૧૬)

सान्वयार्थः—जया=जब जे दिव्वे=जो देवसंबंधी और जे य=जो माणुसे=मनुष्य-सम्बन्धी भोए=भोगोंको निव्विंदए=तत्त्वसे विचारता है, तया=तब सब्भिंतरबाहिरियं=आभ्यन्तर और बाह्य संजोगं=संयोगको चयइ=त्याग देता है ॥१७॥

टीका—'जया निव्विंदए' इत्यादि । यदा दिव्य-मानुष-भोगोपभोगेषु निर्वेदो जायते तदा साऽऽभ्यन्तरबाह्यम्=बहिर्भवो बाह्यः=सुवर्णमणिमाणिक्यादिः, अभ्यन्तरे=अन्तःकरणे भव आभ्यन्तरः=क्रोधादिः, आभ्यन्तरेण सहितः साऽऽभ्यन्तरः स चासौ बाह्यश्चेति साभ्यन्तरबाह्यस्तम्, संयोगं=संयुज्यते=सम्बध्यतेऽनेनाऽऽत्मेति संयोगः=ममत्वकृतसम्बन्धस्तम् त्यजति=परिहरति ॥१७॥

मूलम्—जया[१] चयइ[४] संयोगं[३], सब्भिंतर–बाहिरियं[२] ।
तया[५] मुंडे[६] भवित्ताणं[७], पव्वइए[९] अणगारियं[८] ॥१८॥

छाया—यदा त्यजति संयोगं, साभ्यन्तर-बाह्यम् ।
तदा मुण्डो भूत्वा, प्रव्रजत्यनगारिताम् ॥१८॥

सान्वयार्थः—जया=जब सब्भिंरबाहिरियं=आभ्यन्तर और बाह्य संजोगं=संयोगको चयइ=त्याग देता है, तया=तब मुंडे=द्रव्यभावसे मुण्डित भवित्ता=होकर अणगारियं=साधुपनेको पव्वइए=प्राप्त होता है ॥१८॥

टीका—'जया चयइ' इत्यादि । यदा बाह्याऽऽभ्यन्तरसंयोगविरहितो भवति तदा मुण्डः=मुण्डनं मुण्डः ('मुडि खण्डने' इत्यस्माद्भावे घञ्) स च द्वेधा–द्रव्यतो भावतश्च, तत्र द्रव्यतो मस्तककेशापनयनम्, भावतो रागद्वेषापनयनम्, मुण्डनधर्मयोगाद्धर्म्यपि

'जया निव्विंदए०' इत्यादि । जब देवसम्बन्धी और मनुष्य सम्बन्धी भोगोको जान लेता है, तब सुवर्ण-मणि-माणिक्य आदि बाह्य परिग्रहका तथा क्रोधादि आन्तरिक परिग्रहका अर्थात् बाह्याभ्यन्तर परिग्रहका त्याग कर देता है ॥१७॥

'जया चयइ' इत्यादि । जब बाह्याभ्यन्तर परिग्रहका परित्याग करता है तब मुण्डित हो जाता है । मुण्डन दो प्रकारका होता है–

(१) द्रव्य मुण्डन, (२) भावमुण्डन । मस्तकके केशोका लुञ्चन करना द्रव्यमुण्डन कहलाता है । राग द्वेष आदिको दूर करना भावमुण्डन है । दोनों प्रकारोसे मुण्डित होकर सर्वविरतिरूप

जया निव्विंदए० ઈત્યાદિ. જ્યારે દેવસબંધી અને મનુષ્ય સબંધી ભોગોને જાણી લે ત્યારે મુનિ સુવર્ણ-મણિ-માણિકયાદિ બાહ્ય પરિગ્રહને તથા ક્રોધાદિ આંતરિક પરિગ્રહને અર્થાત્ બાહ્યાભ્યંતર પરિગ્રહને ત્યજી દે છે (૧૭)

जया चयइ० ઇત્યાદિ જ્યારે બાહ્યાભ્યંતર પરિગ્રહનો મુનિ પરિત્યાગ કરે છે ત્યારે મુંડિત થઈ જાય છે. મુંડન બે પ્રકારના હોય છે-(૧) દ્રવ્ય-મુંડન અને (૨) ભાવ મુંડન. મસ્તકના કેશનું લુંચન કરવું એ દ્રવ્યમુંડન કહેવાય છે. રાગ-દ્વેષ આદિને દૂર કરવા એ

मुण्डः=मुण्डित इत्यर्थः, भूत्वा अनगारिताम्=अनगारिणो भावोऽनगारिता=साधुत्वं सर्वविरतिलक्षण सामायिकादिकमित्यर्थः, ताम् प्रव्रजति=प्राप्नोति-प्रव्रजितो भवतीत्यर्थः ॥१८॥

मूलम्–जया मुंडे भवित्ताणं, पव्वइ अणगारियं ।
तया संवरमुक्किट्ठं धम्मं फासे अणुत्तरं ॥१९॥

छाया—यदा मुण्डो भूत्वा, प्रव्रजत्यनगारिताम् ।
तदा सवरमुत्कृष्टं, धर्मं स्पृशत्यनुत्तरम् ॥१९॥

सान्वयार्थः–जया=जब मुंडे=द्रव्यभावसे मुण्डित भवित्ता=होकर अणगारियं=साधुपने को पव्वइए=प्राप्त होता है, तया=तब उक्किट्ठं=अत्यन्त प्रशस्त अणुत्तरं=सर्वश्रेष्ठ संवरं=संवर धम्मं=धर्मको फासे=स्पर्श करता है-प्राप्त होता है ॥

टीका–'जया मुंडे०' इत्यादि । यदा मुण्डो भूत्वाऽनगारितां प्रव्रजति=प्राप्नोति, तदा उत्कृष्टम्=अतिप्रशस्तम् , अनुत्तरं=निरतिचारतया सर्वश्रेष्ठम् । यद्वा स्थिरं=निश्चलम् । अथवा जिनागमसिद्धत्वात् प्रतिजल्पविवर्जितम् ,यद्वा 'अनुत्तर' मित्येतत् क्रियाविशेषणम् अनुत्तरम्=उक्तार्थकं यथा स्यात्तथा स्पृशतीति सम्बन्धः । संवरं=संव्रियते=निरुध्यते आस्रवत्कर्म येन सः, यद्वा सवरणं संवरः=स्थगनम् । स द्रव्य-भावभेदाभ्यां द्विविधः । तत्र द्रव्यतस्तथाविधद्रव्येण (मसृणमृत्तिकादिना) सलिलोपरि तरत्तरण्यादेरनारतप्रविशन्नी-

सामायिक आदि चारित्रको प्राप्त होता है ॥१८॥

'जया मुंडे०' इत्यादि । जब मुण्डित होकर सर्वविरतिको प्राप्त होता है तब अत्यन्त प्रशस्त निरतिचार होनेके कारण सर्वश्रेष्ठ निश्चल आचरणीय सवर धर्मको स्पर्श करता है । आते हुए कर्म जिस आत्मपरिणामसे रुक जाते हैं उसे सवर कहते हैं । सवर, द्रव्य-भावके भेदसे दो प्रकारका है । जल पर चलती हुई नौकाके छेदोंसे उसमें प्रवेश करनेवाले जलको चिकनी मिट्टी वस्त्र आदिसे बन्द कर देना द्रव्य-सवर है । आत्मारूपी नौकामें आस्रवरूपी छिद्रो द्वारा आनेवाले कर्मरूपी जलको रोक देना भाव-सवर है । यहा भाव-सवर अर्थात् चारित्रका अधिकार है । अर्थात् सर्वविरत मुनि

ભાવ મુંડન છે એઉ પ્રકારે મુંડિત થઇને સર્વવિરતિરૂપ સામાયિક આદિ ચારિત્રને પ્રાપ્ત થાય છે (૧૮)

जया मुंडे० ઈત્યાદિ જ્યારે મુંડિત થઇને સર્વ વિરતિને પ્રાપ્ત થાય છે અત્યંત પ્રશસ્ત નિરતિચાર થવાને કારણે સર્વશ્રેષ્ઠ નિશ્ચલ આચરણીય સંવરધર્મને સ્પર્શ કરે છે આવતાં કર્મ જે આત્મપરિણામથી રોકાઈ જાય છે તેને સંવર કહે છે સંવર દ્રવ્ય-ભાવના ભેદે કરીને બે પ્રકારનો છે જળપર ચાલતી નૌકાના છિદ્રદ્વારા નૌકામાં પ્રવેશ કરનારા જળને ચીકણી માટી, વસ્ત્ર આદિથી બંધ કરી દેવુ તે દ્રવ્યસંવર છે આત્મારૂપી નૌકામા આસ્રવરૂપી છિદ્રોદ્વારા આવનારા કર્મરૂપી જળને રોકી દેવું એ ભાવ-સંવર છે. અહીં ભાવસંવર એટલે

अनुत्तरम् श्रेष्ठं, प्रतिजल्पविवर्जितम् , स्थिरमिति शब्दकल्पद्रुमः ।

राणां विवराणां पिधानम् , भावतः समिति-गुप्तिप्रभृतिभिरात्मतरण्यां क्षरत्कर्मसलिलानां स्थगनम् । अत्र च भावसंवरश्चारित्रलक्षणो गृह्यते, तं तल्लक्षणं धर्मं स्पृशति=प्राप्नोति, अन्तःकरणत आत्मना सम्बन्धयतीत्यर्थः ॥१९॥

१ ४ २ ५ ६ ३

मूलम्—जया संवरमुक्किट्ठं धम्मं फासे अणुत्तरं ।

७ १० ९ ८

तया धुणइ कम्मरयं अबोहिकलुसंकडं ॥२०॥

छाया—यदा संवरमुत्कृष्टं धर्मं स्पृशत्यनुत्तरम् ।
तदा धुनाति कर्मरजोऽबोधिकलुपकृतम् ॥२०॥

सान्वयार्थः-जया=जब उक्किट्ठं=अत्यन्त प्रशस्त अणुत्तरं=सर्वश्रेष्ठ संवरं=संवर धम्मं=धर्मको फासे=स्पर्श करता है, तया=तब अबोहिकलुसंकडं=आत्माके मिथ्यात्व परिणाम द्वारा उपार्जित किये हुए कम्मरयं=कर्मरूपी रजको धुणइ=हटा देता है ॥२०॥

टीका—'जया संवरं०' इत्यादि । यदा उत्कृष्टम् अनुत्तरं धर्मं स्पृशति तदा अबोधिकलुपकृतम्=बोधनं बोधिः=आत्मनः सम्यक्त्वपरिणामः, तद्विपरीतोऽबोधिः=मिथ्यात्वाध्यवसायः स एव कलुपं=पापं तेन कृतं=जनितम् अबोधिकलुपकृतम् , तत् , 'कलुप' मित्यत्रानुस्वर आर्पः । कर्मरजः=क्रियते=मिथ्यात्वादिपरिणामैः सम्पाद्यते यत्तत् कर्म, तद्विधा-द्रव्य-भावभेदात् , तत्र द्रव्यतः कूपिकासभृतकज्जलवत् सकललोकसभृता आत्मना

भाव-सवर रूपी धर्मको प्राप्त करते है अथवा अनुत्तर रूपसे स्पर्श करते है, क्योकि 'अनुत्तर' यह क्रियाविशेषण भी हो सकता है ॥१९॥

'जया सवर०' इत्यादि । जब साधु उत्कृष्ट अनुत्तर सवरधर्मको स्पर्श करते है तब आत्माके मिथ्यात्वपरिणामरूपी पापसे उत्पन्न हुए कर्मरूपी रजको धो डालते है ।

कर्मरज दो प्रकार है (१) द्रव्यकर्मरज, और (२) भावकर्मरज । कुप्पीमें भरे हुए कज्जल की तरह समस्त लोकाकाशमें व्याप्त तथा आत्माके साथ बंधे हुए या बंधनेवाले और बधते हुए विशेष प्रकारके (कार्मण जातिके) पुद्‌गलपरमाणुओको द्रव्यकर्म कहते है । आत्माके राग-द्वेप आदि विभाव-परिणामोको भावकर्म कहते है । वृक्षसे बीज उत्पन्न होता है और बीजसे वृक्ष उत्पन्न होता

ચારિત્રનો અધિકાર છે અર્થાત્ સર્વવિરત મુનિ ભાવસવરરૂપી ધર્મને પ્રાપ્ત કરે છે, અથવા અનુત્તર-રૂપે સ્પર્શ કરે છે, કારણકે 'અનુત્તર' એ ક્રિયાવિશેષણ પણ હોઈ શકે છે. (૧૯)

जया संवर० ઈત્યાદિ જ્યારે સાધુ ઉત્કૃષ્ટ અનુત્તર સંવરધર્મને સ્પર્શ કરે છે ત્યારે આત્માના મિથ્યાત્વ-પરિણામરૂપી પાપથી ઉત્પન્ન થએલ કર્મરૂપ રજને ધોઈ નાંખે છે.

કર્મરજ બે પ્રકારની છે :-(૧) દ્રવ્યકર્મરજ, અને (૨) ભાવકર્મરજ કુપ્પીમાં ભરેલા કાજળની પેઠે પ્રસરત લોકાકાશમા વ્યાપ્ત તથા આત્માની સાથે બંધાયલા તથા બંધાનારા અને બંધાતા વિશેષ પ્રકારના (કાર્મણ જાતિના) પુદ્‌ગલપરમાણુઓને દ્રવ્યકર્મ કહે છે. આત્માના રાગ-દ્વેષ આદિ વિભાવ-પરિણામોને ભાવકર્મ કહે છે વૃક્ષથી બીજ ઉત્પન્ન થાય

सह बद्धा बध्यमाना बन्धार्हाश्च तथाविध पुद्गलपरमाणवः । भावतस्तु आत्मनो रागद्वेषादि परिणामः अनयोश्च बीजवृक्षयोरनादिकालिककार्यकारणभाववत् पारस्परिकार्यकारणभावः, तथा च-द्रव्यकर्मभावकर्मणः कारण कार्यं च । भावकर्म च द्रव्य-कर्मणः कारणं कार्यं च । उक्तञ्च—

" जीवस्याशुद्धरागादिभावानां कर्म कारणम् ।
कर्मणस्तस्य रागादिभावः प्रत्युपकारिवत् ॥ १ ॥" इति ।

संसारी खल्वात्माऽनादिकालतः कर्म बध्नाति तदुदयादात्मनि रागद्वेषाद्युत्पत्तिः तदनु यथा वह्निसंतप्तायःपिन्डः समन्तात् स्वसंसृष्टजलमाकर्षति तथाऽऽत्मैकक्षेत्रावगाहिकर्मपुद्गलानादत्ते, तैश्च रागादिकं भावकर्मोत्पाद्यते, तच्च पुनरपि द्रव्यकर्मोत्पादयति, तदेव रज इव रजो जीवस्य मालिन्यहेतुत्वात् घातिकर्मचतुष्टयमित्यर्थः तद् धुनाति=व्यपनयति=दूरीकरोतीत्यर्थः ।

है । दोनो मे कार्य-कारणभाव अनादिकालीन है । इसी प्रकार द्रव्यकर्म और भावकर्ममें कार्य-कारण भाव है, अतः द्रव्यकर्म, भावकर्मका कारण भी है और कार्य भी है । कहा भी है—

"जीवके राग आदि अशुद्ध भावोका कारण द्रव्यकर्म है और रागादि अशुद्ध भाव द्रव्य-कर्मके कारण हैं । जैसे कोई पुरुष किसीका उपकार कर देता है तो वह उपकृत पुरुष उस उपकारीका पीछा उपकार करता है ॥१॥"

ससारी जीव अनादिकालसे कर्मोका बन्ध कर रहा है । उन बंधे हुए कर्मोके उदय होने पर आत्मामें रागद्वेष आदिकी उत्पत्ति होती है । रागादिके उदय होनेपर जैसे तपा हुआ लोहे का गोला आस पासके जलको आकर्षित कर लेता है वैसे ही आत्मा एक क्षेत्रावगाही अर्थात् जिस आकाशके प्रदेशमें आत्मा स्थित है उसी आकाश प्रदेशमें स्थित कर्मके पुद्गलोको ग्रहण करती है, उन रागादि—भावोंसे फिर द्रव्यकर्म बधते है । इस प्रकार द्रव्यकर्म और भावकर्म एक

છે અને બીજથી વૃક્ષ ઉત્પન્ન થાય છે બેઉ કાર્ય--કારણભાવ અનાદિકાળનો છે. એ પ્રકારે દ્રવ્યકર્મ અને ભાવકર્મમાં કાર્ય-કારણભાવ રહેલો છે તેથી દ્રવ્યકર્મ, ભાવકર્મનું કારણ છે અને કાર્યપણ છે, તેમજ ભાવકર્મ દ્રવ્યકર્મનુ કરણ છે અને કાર્યપણ છે. કહ્યું છે કે-

"જીવના રાગાદિ અશુદ્ધ ભાવોનું કારણ દ્રવ્યકર્મ છે, અને રાગાદિ અશુદ્ધ ભાવ દ્રવ્ય-કર્મનુ કારણ છે, જેમ કોઇ પુરૂષ કોઇનો ઉપકાર કરે છે તો એ ઉપકૃત પુરૂષ એનો પાછો ઉપકાર કરે છે (૧)"

સંસારી જીવ અનાદિ કાળથી કર્મોનો બંધ કરી રહ્યો છે. એ બંધાયલા કર્મનો ઉદય થતા આત્મામાં રાગદ્વેષ આદિની ઉત્પત્તિ થાય છે. રાગાદિનો ઉદય થતાં જેમ તપાવેલો લોખંડનો ગોળો આસપાસના જળને આકર્ષિત કરી લે છે તેમ આત્મા એક ક્ષેત્રાવગાહી અર્થાત્ જે આકાશના પ્રદેશમા આત્મા સ્થિત છે એ આકાશપ્રદેશમાં રહેલાં કર્મના પુદ્ગલોને ગ્રહણ કરે છે, એ રાગાદિ-ભાવોથી ફરી દ્રવ્યકર્મ અને ભાવકર્મ એક બીજાના ઉત્પાદક

कर्मरजोधुननं च यद्यपि धर्मध्यानेनापि जायते तथापि आत्यन्तिकतद्विधूननं शुक्लध्यानेनैव भवति, यथा मलापगमेन शुचिताधर्माभिसम्बन्धात् पटः शुक्ल इत्युच्यते तथा रागद्वेषमलापनयनाच्छुचिधर्मसम्बन्धाद् ध्यानमपि शुक्लमित्युच्यते, तच्चतुर्विधम्-(१)पृथक्त्ववितर्कसविचारम् , (२) एकत्ववितर्काविचारम् ,(३)सूक्ष्मक्रियाऽनिवर्त्ति, (४) समुच्छिन्नक्रियाऽप्रतिपाति, इति ।

तत्र पूर्वगतश्रुतज्ञानानुसारेण ध्येयविशेषगतोत्पादादिनानापर्यायाणां द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिकादिनानानयैरर्थव्यञ्जनयोगसंक्रान्तिसहितानुचिन्तनं पृथक्त्ववितर्कसविचारम् ।

तत्रार्थसंक्रान्तिस्तावत्-ध्येयस्यैकपर्यायपरित्यागेन पर्यायान्तरे, व्यञ्जने, योगे वा

दूसरेके उत्पादक है । इन्हीं कर्मोको रज कहते है, क्योकि ये आत्मामें मलिनता उत्पन्न कर देते है । सवरधर्मको ग्रहण करनेसे यह चार-घातिकर्मरूपी रज दूर हो जाती है ।

कर्मरजका दूर होना यद्यपि धर्म ध्यानसे होता है तथापि आत्यन्तिक रूपसे तो शुक्ल-ध्यान से ही होता है । जैसे मैलको दूर करनेसे शुचिताधर्म आ जाता है, इसलिए वस्त्रको शुक्ल (सफेद) वस्त्र कहते है, इसी प्रकार राग द्वेषरूपी मैलके हट जानेपर शुचिताधर्मके सम्बन्धसे ध्यान भी शुक्ल ध्यान कहलाता है ।

शुक्लध्यान चार प्रकारका है-(१) पृथक्त्ववितर्क-सविचार, (२) एकत्ववितर्क-अविचार; (३) सूक्ष्मक्रिय-अनिवर्त्ति, (४) समुच्छिन्नक्रियअप्रतिपाति ।

पृथक्त्ववितर्क-पूर्वगत श्रुतज्ञानके अनुसार किसी ध्येय पदार्थकी उत्पाद आदि पर्यायोका द्रव्यार्थिक या पर्यायार्थिक आदि विविध नयोसे, अर्थ व्यञ्जन और योगकी सक्रान्ति सहित चिन्तन करना पृथक्त्ववितर्क शुक्ल ध्यान है । ध्येय वस्तुको एक पर्यायको छोडकर दूसरी पर्यायका ध्यान करना या व्यञ्जन अथवा योगमें सक्रान्त होजाना अर्थसक्रान्ति है । यहाँ चौदह पूर्वरूप

છે. એજ કર્મોને રજ કહે છે, કારણ કે તે આત્મામાં મલિનતા ઉત્પન્ન કરે છે સવરધર્મને ગ્રહણ કરવાથી એ ચાર ઘાતિકર્મરૂપી રજ દૂર થઈ જાય છે,

જો કે કર્મરજ ધર્મધ્યાનથી દૂર થાય છે તોપણ આત્યન્તિક રૂપથી તો શુક્લ ધ્યાન-થીજ થાય છે. જેમ મેલ દૂર કરવાથી શુચિતા-ધર્મ આવી જાય છે તેથી વસ્ત્રને શુક્લ (સફેદ) વસ્ત્ર કહે છે, તેમ રાગદ્વેષરૂપી મેલ હઠી જતા શુચિતાધર્મના સંબધથી ધ્યાન પણ શુક્લધ્યાન કહેવાય છે

શુકલ ધ્યાનના ચાર પ્રકાર છે. (૧) પૃથક્ત્વવિતર્ક-સવિચાર, (૨) એકત્વવિતર્ક-અવિચાર, (૩) સૂક્ષ્મક્રિય અનિવર્તિ, (૪) સમુચ્છિન્નક્રિય અપ્રતિપાતિ.

(૧) પૃથક્ત્વવિતર્ક-પૂર્વગત શ્રુતજ્ઞાન અનુસાર કોઈ ધ્યેય પદાર્થના ઉત્પાદ આદિ નાના પ્રકારના પર્યાયોનું દ્રવ્યાર્થિક યા પર્યાયાર્થિક આદિ નયોથી, અર્થ વ્યંજન અને યોગની સંક્રાન્તિસહિત ચિંતન કરવું એ પૃથક્ત્વવિતર્ક શુકલધ્યાન છે, ધ્યેયવસ્તુના એક પર્યાયને છોડીને બીજા પર્યાયનું ધ્યાન કરવું યા વ્યજન અથવા યોગમા સંક્રાન્ત થઈ જવું

संक्रमः। व्यञ्जनं चात्र चतुर्दशपूर्वात्मकश्रुतसम्बन्धिशब्दाः, तत्रान्यं किञ्चिदेकं व्यञ्जनमुपादाय ध्यानमारभ्य व्यञ्जनान्तरेऽर्थे योगेवा संक्रमणं व्यञ्जनसक्रान्तिः। योगसंक्रान्तिश्च पुनः काययोगतो मनोयोगे, मनोयोगतो वाग्योगे, इत्येवमेकस्माद् योगादन्यतरस्मिन् योगे सक्रमणम्। त्रिविधमेतत्संक्रमणं च ध्यातुरनिच्छायामपि तादृश-(असंक्रान्त) --ध्यानसंपादनसामर्थ्याभावाज्जायते।

इदमत्र तात्पर्यम् —

अत्र पूर्वगताः शब्दास्तदर्थो वा ध्येया भवन्ति, परन्तु ध्यातुस्तादृशं सामर्थ्यं न भवति येन स कञ्चिदेकं शब्दं वाऽर्थं वा ध्यायेत्, अत एव कञ्चिदेकमर्थं तत्पर्यायं वा परित्यज्येतरमर्थमितरपर्यायं वा ध्यायति। इदमेव च परिवर्त्तनं संक्रमणशब्देनोच्यते। उक्तञ्च—

अर्थादर्थान्तरे शब्दाच्छब्दान्तरे च संक्रमः।
योगाद् योगान्तरे यत्र, सविचारं तदुच्यते॥

श्रुतके शब्दोंको व्यञ्जन कहा है। उन शब्दोमेंसे किसी एक शब्दका ध्यान आरम्भ करके फिर किसी दूसरे व्यञ्जनका ध्यान करने लगना, अथवा अर्थ या योगमें सक्रान्त होजाना व्यञ्जनसक्रान्ति है। काययोगसे मनोयोगमें, मनोयोगसे वचनयोगमें, इस प्रकार एक योगसे दूसरे योगमें सक्रान्त होजाना योगसक्रान्ति है। यह तीनो तरहका सक्रमण ध्याताको इच्छा न होनेपर भी उतनी अधिक सामर्थ्य न होनेके कारण होता है।

तात्पर्य यह है कि–इस ध्यानमें पूर्वगत शब्द या उसके अर्थका ध्यान किया जाता है, किन्तु इतनी सामर्थ्य नहीं होती कि एक ही शब्द या एक ही अर्थका ध्यान करते रहे, अत एव एक पदार्थ या उसकी पर्यायको छोड कर दूसरी पर्यायका ध्यान करते है। इसी प्रकरके परिवर्त्तन या बदलनेको सक्रमण करते है। कहा भी है—

એ અર્થસંક્રાન્તિ છે. અહીં ચૌદ પૂર્વરૂપ શ્રુતના શબ્દોને વ્યંજન કહેલ છે, એ શબ્દોમાંથી કોઈએક શબ્દનું ધ્યાનઆરંભીને પછી કોઈ બીજા વ્યંજનનું ધ્યાન લગાવવું અથવા અર્થ યા યોગમાં સંક્રાન્ત થઈ જવું એ વ્યંજનસંક્રાન્તિ છે. કાયયોગથી મનોયોગમાં, મનોયોગથી વચનયોગમાં, એ પ્રકારે એક યોગથી બીજા યોગમાં સંક્રાન્ત થઈ જવું એ યોગસંક્રાન્તિ છે. એ ત્રણે જાતનું સંક્રમણ, ધ્યાતાની ઈચ્છા ન હોવા છતાં પણ એટલું અધિક સામર્થ્ય ન હોવાને કારણે થાય છે.

તાત્પર્ય એ છે કે–આ ધ્યાનમાં પૂર્વગત શબ્દ યા તેના અર્થનું ધ્યાન કરવામાં આવે છે, કિંતુ એટલું સામર્થ્ય હોતું નથી કે એકજ શબ્દ યા એકજ અર્થનું ધ્યાન કરતો રહે તેથી કરીને એક પદાર્થ યા એના પર્યાયને છોડીને બીજા પર્યાયનું ધ્યાન કરે છે. આ પ્રકારના પરિવર્તનને યા બદલાવાને સંક્રમણ કહે છે કહ્યું છે કે–

"એક અર્થથી બીજા અર્થમાં, એક શબ્દથી બીજા શબ્દમાં તથા એક યોગથી બીજા

द्रव्याद् द्रव्यान्तरं याति गुणाद् याति गुणान्तरम् ।
पर्यायादन्यपर्यायं सपृथक्त्वं भवत्यतः ॥" इति,

नन्वर्थव्यञ्जनयोगान्तरेषु संक्रान्तस्य मनसः स्थैर्यासम्भवाद् ध्यानत्वमनुपपन्नमिति चेन्न, एकमेव ध्येयं लक्ष्यीकृत्य प्रवृत्तस्य ध्यानस्यार्थादौ संक्रमणेऽपि ध्येयैकमात्रोद्देश्यकतया मनःस्थिरीकरणरूपाया ध्यानक्रियायास्तत्रापि सद्भावात् ।

इदं च ध्यान भङ्गिकश्रुतपाठकानां योगत्रयवतां वा मुनिपुङ्गवानां भवति । अनेन ध्यानेन क्षपकश्रेण्यां समारूढो मुनिरष्टमगुणस्थानादारभ्य क्रमशो दशमगुणस्थानचरमसमये बलवदपि मोहनीयकर्म क्षपयित्वा द्वितीयध्यानमाश्रित्य द्वादशं गुण-स्थानमधिरोहति ।

उपशमश्रेण्यां समारूढस्तु तदानीं मोहनीयकर्म शमयित्वा एकादशमुपशान्तमोहगुण-

---

"एक अर्थसे दूसरे अर्थमें, एक शब्दसे दूसरे शब्दमें, तथा एक योगसे दूसरे योगमें सक्रमण होता है, अतः उसे सविचार (सक्रान्ति) कहते है ॥१॥

अर्थ व्यञ्जन और योगकी सक्रान्ति रूप होते हुए निज शुद्ध आत्मद्रव्यको एक गुणसे दूसरे गुणको, एक पर्यायसे दूसरी पर्यायको प्राप्त होता है, अतः उसे सपृथक्त्व कहते है ॥२॥

प्रश्न–हे गुरुमहाराज ! इस ध्यानमें अर्थ, व्यञ्जन और योगोमें मन सक्रान्त होता रहता हैं, इस कारण स्थिरता नहीं रह सकती, फिर इसे ध्यान कैसे कह सकते है ? ।

उत्तर–हे शिष्य ! परिवर्त्तन तो होता रहता है, परन्तु ध्येय एक ही रहता है । ध्येयको एकताके कारण यह ध्यान कहलाता है ।

यह ध्यान पूर्वधारी तीन योगवाले श्रेष्ठ मुनियोको ही होता है । इस ध्यान से दशवे गुणस्थानके अन्त समयमें क्षपकश्रेणीमें आरूढ मुनि बलवान् मोहनीय कर्मका क्षय करके बारहवे गुणस्थानमें पहुँच जाते हैं, और यदि उपशमश्रेणिमें आरूढ हो तो ग्यारहवें उपशान्तमोह गुणस्थानमें जाते है । यह प्रथम ध्यान उपशमश्रेणीकी अपेक्षासे आठवे गुणस्थानसे लेकर ग्यारहवे

યોગમા સંક્રમણ થાય છે, તેથી તેને અવિચાર (સંક્રાન્તિ) કહે છે (૧)

અર્થ વ્યજન અને યોગની સંક્રાન્તિરૂપ થતા નિજ શુદ્ધ આત્મ-દ્રવ્યને, એક ગુણથી બીજા ગુણને, એક પર્યાયથી બીજા પર્યાયને પ્રાપ્ત થાય છે, તેથી તેને સપૃથક્ત્વ કહે છે" (૨)

પ્રશ્ન-હે ગુરૂમહારાજ ! આ ધ્યાનમાં અર્થ વ્યંજન અને યોગમાં મન સક્રાન્ત થયા કરે છે તે કારણથી સ્થિરતા રહી શકતી નથી, તો પછી તેને ધ્યાન કેમ કહી શકાય ?

ઉત્તર –હે શિષ્ય ! પરિવર્તન તો થયા કરે છે, પરન્તુ ધ્યેય એકજ રહે છે. ધ્યેયની એકતાને કારણે એ ધ્યાન કહેવાય છે

એ ધ્યાન પૂર્વધારી ત્રણ યોગવાળા શ્રેષ્ઠ મુનિઓને જ થાય છે. આ ધ્યાનથી દસમા ગુણસ્થાનના અ ત સમયે ક્ષપકશ્રેણીમાં આરૂઢ મુનિ બળવાન્ મોહનીય-કર્મને ક્ષય કરીને બારમા ગુણસ્થાનમાં પહોંચી જાય છે, અને જો ઉપશમ-શ્રેણીમા આરૂઢ હોય તો અગ્યારમા ઉપશાન્તમોહ ગુણસ્થાનમાં જાય છે. એ પ્રથમ ધ્યાન, ઉપશમ-શ્રેણીની અપેક્ષાએ કરીને

स्थानमारोहति । इदं च प्रथमं ध्यानमष्टमगुणस्थानादारभ्य क्षपकश्रेण्यपेक्षया दशमगुणस्थानं यावद्भवतीति विवेकः ।

(२) ततश्चैकत्ववितर्काऽविचारमारभते, यथा सिद्धगारुडिकादिमन्त्रः सकलशरीरस्यापि विषमं विषं मन्त्रसामर्थ्येन सर्वात्रयवेभ्यः समाकृष्य दंशस्थाने समानीय संस्तम्भयति, तथा पूर्वगतश्रुतानुसारतोऽर्थ-व्यञ्जन-योगसंक्रान्तिराहित्येनाशेषविषयेभ्यः संहृत्यैकस्मिन्नेव पर्याये योगस्य निर्वातस्थाने दीपशिखावत्स्थिरीकरणम्-एकत्ववितर्काऽविचारम् ।

अयमाशयः—प्रथम ध्यानं सपृथक्त्वं भवति इदं तु पृथक्त्वरहितम् । अत्रैकमर्थं विहायाऽर्थान्तरे, तथैक शब्दं विहाय शब्दान्तरे, तथा योगाद् योगान्तरे संक्रमणं न

गुणस्थान तक होता है । क्षपकश्रेणीकी अपेक्षासे तो अष्टमसे लेकर दशम गुणस्थान तक होता है, ग्यारहवाँ गुणस्थान उपशान्तमोह होने से क्षपकश्रेणीमें आरूढ मुनि उसका स्पर्श न करते हुए दूसरे ध्यानका आरम्भ करके बारहवे गुणस्थान में जाते हैं ।

(२) एकत्ववितर्क-अविचार—जैसे मन्त्र जाननेवाला पुरुष समस्त शरीरमें व्याप्त विषको मंत्रकी शक्तिद्वारा अन्य-अन्य अवयवोसे खींचकर दशस्थान (जहां विषैला जन्तुने काटा है उस जगह) पर स्तंभित कर देता है, वैसे ही पूर्वगत श्रुतके अनुसार अर्थ, व्यञ्जन और योगोंके परिवर्त्तनसे रहित होकर समस्त विषयोसे विमुख होकर एक ही पर्यायके ध्यानमें वायुरहित स्थानमें रखे हुए दीपककी शिखा के समान स्थिर होजाना 'एकत्ववितर्क' ध्यान कहलाता है ।

तात्पर्य यह है कि पहला ध्यान पृथक्त्व (अनेकप्रकारता) सहित होता है किन्तु दूसरे भेदमें पृथक्त्व नहीं रहता । इसमें एक अर्थसे दूसरे अर्थमें सक्रमण नहीं होता, इसलिए इसे एकत्ववितर्क-ध्यान कहते है ।

આઠમા ગુણસ્થાનથી લઇને અગ્યારમા ગુણસ્થાન સુધી થાય છે. ક્ષપક-શ્રેણીની અપેક્ષાએ કરીને આઠમાથી લઇને દસમા ગુણસ્થાન સુધી થાય છે; અગ્યારમું ગુણસ્થાન ઉપશાન્તમોહ હોવાથી ક્ષપક શ્રેણીમાં આરૂઢ મુનિ એનો સ્પર્શ ન કરતાં બીજા ધ્યાનનો આરંભ કરીને બારમા ગુણસ્થાનમાં જાય છે.

(૨) એકત્વવિતર્ક-અવિચાર—જેમ મંત્ર જાણવાવાળો પુરૂષ આખા શરીરમાં વ્યાપેલા વિષને મંત્રની શક્તિદ્વારા અન્ય-અન્ય અવયવોમાંથી ખેંચી લઇને દંશસ્થાન (જ્યાં ઝેરી જંતુ કરડયો હોય તે સ્થાન) પર સ્તંભિત કરી દે છે, તેમ પૂર્વગત શ્રુત અનુસાર અર્થ વ્યંજન અને યોગના પરિવર્તનથી રહિત થઇને બધા વિષયોથી વિમુખ થઈ એકજ પર્યાયના ધ્યાનમાં ગખેલા દીપકની શિખાની પેઠે સ્થિર થઈ જવું એ 'એકત્વવિતર્ક' કહેવાય છે.

તાત્પર્ય એ છે કે પહેલુ ધ્યાન પૃથક્ત્વ (અનેક-પ્રકારતા) સહિત હોય છે કિન્તુ બીજા ભેદમાં પૃથક્ત્વ રહેતુ નથી. એમાં એક અર્થમાંથી બીજા અર્થમાં, એક શબ્દમાંથી બીજા શબ્દમા અને એક યોગમાથી બીજા યોગમાં સંક્રમણ થતું નથી, તેથી એને એકત્વવિતર્ક ધ્યાન કહે છે.

भवति तस्मादिदमेकत्ववितर्काभिधानं ध्यानमिति। इदं च ध्यानं मनोवाक्काययोगान्यतमवतामेव महामुनीनां जायते, अत्र योगानां संक्रमणाभावात्।

तथ चोक्तम्—"निजात्मद्रव्यमेकं वा, पर्यायमथवा गुणम्।
निश्चलं चिन्त्यते यत्र, तदेकत्वं विदुर्बुधाः ॥१॥
यद्व्यञ्जनार्थयोगेषु, परावर्त्तविवर्जितम्।
चिन्तनं तदविचारं, स्मृतं सद्ध्यानकोविदैः ॥२॥" इति॥

इदं ध्यानं क्षीणमोहनीयगुणस्थाने एव भवति, एतद्ध्यानचरमसमये क्षपकश्रेण्यारूढो मुनिर्ज्ञानावरणीयं दर्शनावरणीयमन्तरायाख्यं च, त्रीणि कर्माणि युगपत् क्षपयति, अस्य ध्यानस्य फलं च केवलज्ञानकेवलदर्शनाऽनन्तवीर्यप्राप्तिरेव, प्रकृतध्यानद्वयमन्तरेण केवलज्ञानं लब्धुमशक्यम्। एतच्चोभयं ध्यानं छद्मस्थानां जायते, तृतीयचतुर्थे तु केवलिनामेव भवत इति बोद्धव्यम् ॥२०॥

यह ध्यान मन वचन काय योगोमेंसे किसी एक योगवाले मुनिराजको ही होता है, अर्थात् इस ध्यानके समय एक ही योगमें स्थिर रहते है, क्योकि इसमें योगोका सक्रमण नहीं होता। कहा भी है—

"जिस ध्यानमें केवल निज आत्मा का अथवा उसकी एक पर्यायका या एक गुणका ध्यान किया जाता है उसे 'एकत्व' कहते है ॥१॥ जो व्यञ्जन अर्थ और यागोके परिवर्त्तनसे रहित चिन्तन किया जाता है उसे 'अविचार' कहते है ॥२॥"

यह ध्यान क्षीणमोहनीय गुणस्थानमें ही होता है। इस ध्यानके अन्तमें ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय नामक तीन घातिकर्मोंका एक साथ ही क्षय हो जाता है। इस ध्यानका फल केवलज्ञान, केवलदर्शन और अनन्तवीर्यकी प्राप्ति है। इन दोनो ध्यानोके विना केवलज्ञान नहीं प्राप्त होसकता। ये दोनो ध्यान छद्मस्थोको होते है, तथा तीसरा और चौथा ध्यान केवलियो को होता है ॥२०॥

એ ધ્યાન મન વચન કાયાના યોગોમાંના કોઈ એક યોગવાળા મુનિરાજનેજ થાય છે, અર્થાત્ એ ધ્યાનને સમયે એકજ યોગમાં સ્થિર રહે છે, કારણ કે એમા યોગોનુ સંક્રમણ થતું નથી. કહ્યુ છે કે—

"જે ધ્યાનમા કેવળ નિજ આત્માનું અથવા એના એક પર્યાયનું યા એક ગુણનું ધ્યાન કરવામાં આવે છે, તેને 'એકત્વ' કહે છે (૧) વ્યંજન અર્થ અને યોગોના પરિવર્તનથી રહિત ચિંતન કરવામાં આવે છે તેને 'અવિચાર' કહે છે (૨)"

એ ધ્યાન ક્ષીણમોહનીય ગુણસ્થાનમા જ થાય છે. એ ધ્યાનના અ તમાં જ્ઞાનાવરણીય' અને અન્તરાય નામનાં ત્રણ ઘાતિ-કર્મોને એકીસાથે જ ક્ષય થઈ જાય છે. એ ધ્યાનનું ફલ કેવળજ્ઞાન, કેવળદર્શન અને અનંત વીર્યની પ્રાપ્તિ છે. એ બેઉ ધ્યાન વિના કેવળ જ્ઞાન પ્રપ્ત થઈ શકતુ એ બેઉ ધ્યાન છદ્મસ્થોને થાય છે, તથા ત્રીજું અને ચોથું ધ્યાન કેવળીઓને થાય છે. (૨૦)

घातिकर्मक्षयजनितफलं प्रदर्शयितुमुपक्रमते—'जया धुणइ' इत्यादि ।

मूलम्—जया धुणइ कम्मरयं अबोहिकलुसंकडं ।
तया सव्वत्तगं नाणं दंसणं चाभिगच्छइ ॥२१॥

छाया—यदा धुनाति कर्मरजोऽबोधिकलुषकृतम् ।
तदा सर्वत्रगं ज्ञानं, दर्शनं चाभिगच्छति ॥२१॥

सान्वयार्थः—जया=जब अबोहिकलुसंकडं=आत्माके मिथ्यात्वपरिणामद्वारा उपार्जित किये हुए कम्मरयं=कर्मरूपी रजको धुणइ=घटा देता है, तया=तब सव्वत्तगं=सब जगह जानेवाले-सब पदार्थोंको जाननेवाले नाणं=ज्ञानको च=और दंसणं=दर्शनको अभिगच्छइ=प्राप्त करता है ॥२१॥

टीका—यदाऽबोधिकलुषकृतं कर्मरजो धुनाति तदा सर्वत्रगं-सर्वत्र गच्छति=व्याप्नोतीति सर्वत्रगं=सकललोकव्यापि तत्, ज्ञानं=ज्ञायन्ते=परिच्छिद्यन्ते द्रव्य-गुण-पर्यायादयोऽनेनेति ज्ञानं केवलज्ञानमित्यर्थस्तत्, दर्शनं=दृश्यन्ते=साक्षात्क्रियन्ते द्रव्यादयो येनेति दर्शनम्=केवलदर्शनमित्यर्थस्तत् । "सामान्यार्थावबोधो दर्शनं, विशेषार्थावबोधो ज्ञान"-मित्युभयोर्भेदः, तथाहि—

"जं सामण्णग्गहणं दंसणमेयं नाणं" इति, चः समुच्चये, अभिगच्छति=कर्मजनितसकलाऽऽवरणाभावादतिशयेन सम्प्राप्नोति सयोगिकेवलिगुणस्थानमारोहतीत्यर्थः ॥२१॥

घातिकर्मोंके क्षय होनेसे उत्पन्न होनेवाला फल बतलाते है—'जया धुणइ' इत्यादि ।

जब साधु मिथ्यात्वरूपी पापसे उत्पन्न हुए कर्मरजको नष्ट कर देते है तब समस्त लोकाकाश और अलोकाकाशमें व्यापी द्रव्य पर्यायोको जाननेवाला केवलज्ञान तथा केवलदर्शन प्राप्त होता है । पदार्थोंका सामान्य ज्ञान होना दर्शन है और विशेष ज्ञान होना ज्ञान है, यही दोनोंमें भेद है, कहाभी है—

"सामान्यका ग्रहण होना दर्शन है और विशेष का ग्रहण होना ज्ञान है ।"

कर्मोंसे उत्पन्न हुए समस्त आवरणोके अभावसे इन दोनो (ज्ञानदर्शन) को प्राप्त करते है ॥२१॥

ઘાતીકર્મોનો ક્ષય થવાથી ઉત્પન્ન થનારૂ ફળ બતાવે છે-जया धुणइ ઇત્યાદિ.

જ્યારે સાધુ મિથ્યાત્વરૂપી પાપથી ઉત્પન્ન થએલી કર્મરજને નષ્ટ કરી નાખે છે, ત્યારે સમસ્ત લોકાકાશ અને અલોકાકાશમા વ્યાપેલા દ્રવ્ય પર્યાયોને જાણવાવાળુ કેવાળજ્ઞાન તથા કેવળદર્શન પ્રાપ્ત થાય છે પદાર્થોનુ સામાન્ય જ્ઞાન થવુ એ દર્શન છે અને વિશેષ જ્ઞાન થવુ તે જ્ઞાન છે એ બેઉમા ભેદ છે. કહ્યુ છે કે-

"સામાન્યનું ગ્રહણ થવું દર્શન છે અને વિશેષનુ ગ્રહણ થવું એ જ્ઞાન છે."

કર્મોથી ઉત્પન્ન થએલા સર્વ આવરણોના અભાવથી એ બેઉ (જ્ઞાન-દર્શન) ને પ્રાપ્ત કરે છે. (૨૧)

केवलज्ञान-केवलदर्शनयोः फलमाह-'जया सव्वत्तगं' इत्यादि ।

१ २ ३ ४ ५

मूलम्-जया सव्वत्तगं नाणं, दंसणं चाभिगच्छइ ।

६ ९ १० ११ ७ १२ ८

तया लोगमलोगं च, जिणो जाणइ केवली ॥२२॥

छाया--यदा सर्वत्रगं ज्ञानं दर्शनं चाभिगच्छति ।

तदा लोकमलोकं च जिनो जानाति केवली ॥२२॥

सान्वयार्थः-जया=जब सव्वत्तगं=सब जगह जानेवाले-सब पदार्थों को जाननेवाले नाणं=ज्ञानको च=और दंसणं=दर्शनको अभिगच्छइ=प्राप्त करता है, तया=तब जिणो=वीतराग केवली=केवलज्ञानी होते-हुए लोगमलोगं च=लोक और अलोकको जाणइ=जानते हैं ॥२२॥

टीका--यदा केवलज्ञानं केवलदर्शनं च प्राप्नोति तदा जिनः=घातिकर्मविजेता, केवली=केवलज्ञानी सन् लोकं=लोक्यत इति लोकस्तं जानाति=करतलामलकवज्ज्ञानविषयीकरोति ।

आह-ननु कोऽयं लोकपदार्थः ? यदि केनचिदेको ग्रामोऽवलोकितस्तर्हि किं तावानेव लोकः ? न, अपरेण ततोऽप्यधिकग्रामदर्शनात् । तर्हि यावद् ग्रामादिकमस्माभिरवलोक्यते तावानेव लोकः ?, नहि अनन्तज्ञानसम्पन्नेन सर्वज्ञेन यो लोक्यते स लोक इति ।

केवलज्ञान और केवलदर्शन का फल कहते है-'जया सव्वत्तग' इत्यादि ।

जब सर्वव्यापी ज्ञान तथा दर्शनको प्राप्त करते है तब केवली होकर लोक और अलोकको जानते हैं ।

जो देखा जाता है उसे लोक कहते है ।

प्रश्न-यदि किसीने एक ग्राम देखा हो तो लोक क्या उतना ही होगा ?

उत्तर-उतना ही नहीं होगा, क्योकि दूसरे उससे अधिक ग्राम देखते है ?

प्रश्न-तो हमलोग जितने ग्रामोको देखते है उतना ही लोक है ?

उत्तर-उतना ही नहीं है । अनन्तज्ञानी सर्वज्ञ भगवान् द्वारा जितना देखा जाता है उतना

કેવલજ્ઞાન અને કેવલદર્શનનુ ફળ કહે છે-जया सव्वत्तगं ઇત્યાદિ

જ્યારે સર્વવ્યાપી જ્ઞાન તથા દર્શનને પ્રાપ્ત કરે છે ત્યારે કેવળી થઈને લોક અને અલોકને જાણે છે.

જે જોઈ શકાય તેને લોક કહે છે.

પ્રશ્ન-જો કોઈએ એક ગ્રામ જોયુ હોય તો લોક શું એટલો જ હોય ?

ઉત્તર-એટલો જ નહિ હોય, કારણ કે બીજાઓ એથી વધારે ગ્રામો જુએ છે.

પ્રશ્ન-તો આપણે જેટલા ગ્રામોને જોઈએ છીએ એટલો જ લોક છે ?

ઉત્તર-એટલો જ નહિ. અનંતજ્ઞાની સર્વજ્ઞ ભગવાનદ્વારા જેટલો જોવાય છે એટલો લોક છે,

नन्वेतेनाऽलोकस्यापि लोकत्वप्रसङ्गस्तस्यापि सर्वज्ञेनावलोकितत्वात्, तथाचाऽलोकोऽपि किं लोकः? न, यतो लोक्यते धर्मास्तिकायाद्याधारभूत आकाशविशेषो यः स लोक इत्यवधार्यम्। स च कटितटोभयपार्श्वतो निहितहस्तद्वयो विस्फारितपादयुगलोऽवस्थितः पुरुष इव नृत्यद्भैरवोपासकाकृतिको वा ऊर्ध्वाऽधस्तिर्यग्भेदभिन्नश्चतुर्दशरज्जुपरिमितोऽसंख्यातप्रदेशात्मक आकाशविशेषस्तम्। तद्विपरीतोऽलोकः।

अस्तु लोको जीवपुद्गलादीनामनाधारतयाऽवस्थानासम्भवात्, अलोकस्तु कथम्?, तस्याऽमूर्त्तत्वेनेन्द्रियागोचरतयाऽस्तित्वसाधकप्रमाणाभावात्, इन्द्रियागोचरे चार्थे मनः-

---

लोक है।

प्रश्न–केवली भगवान् अलोकको भी देखते है तो उनके देखनेसे अलोक भी लोक हो जायगा?

उत्तर–नहीं होगा। भगवान्ने धर्मास्तिकाय आदि द्रव्यो का आधारभूत जो आकाश देखा है उसे लोक कहते हैं, ऐसा समझना चाहिये।

वह लोक कमरपर दोनो हाथ रखकर, पैर फैलाकर खड़े हुए पुरुष के आकारका, अथवा नाचते हुए भैरवोपासक (भोपा) की आकृतिका है। इसके तीन भेद है–(१) उदर्ध्वलोक, (२) मध्यलोक, (३) अधोलोक। यह चौदह राजू जितना ऊंचा और असंख्यात–प्रदेशमय है। अलोकाकाश इससे विपरीत है।

प्रश्न–जीव और पुद्गल आदि विना आधारके नहीं ठहर सकते, अतः लोकाकाश मानना तो ठीक है, परन्तु लोकाकाशके अस्तित्वमें क्या प्रमाण है?, कारण यह कि इन्द्रियोंका यह विषय नहीं है, क्योंकि अमूर्त्त है। जिस विषयमें इन्द्रियोकी प्रवृत्ति नहीं होती उसमें मन भी प्रवृत्त नहीं हो सकता। अत एव न इन्द्रियोसे अलोकाकाशको जान सकते है और न मनसे।

પ્રશ્ન–કેવળી ભગવાન્ તો અલોકને પણ જુએ છે તો એમના જોવાથી અલોક પણ લોક થઈ જશે?

ઉત્તર–નહિ થાય. ભગવાને ધર્માસ્તિકાય આદિ દ્રવ્યોનું આધારભૂત જે આકાશ જોયું છે એને લોક કહે છે, એમ સમજવું જોઇએ

એ લોક કમર પર બેઉ હાથ રાખીને, પગ ફેલાવીને ઊભેલા પુરૂષના આકારનો, અથવા નાચતા ભૈરવોપાસક (ભુવા) ની આકૃતિનો છે. તેના ત્રણ ભેદ છે. (૧) ઊર્ધ્વલોક, (૨) મધ્યલોક, (૩) અને અધોલોક એ ચૌદ રાજુ જેવડો ઉંચો અને અસંખ્યાત પ્રદેશમય છે. અલોકાકાશ એથી વિપરીત છે.

પ્રશ્ન–જીવ અને પુદ્ગલ આદિ આધાર વિના રહી શકતા નથી, તેથી લોકાકાશ માનવું એ તો બરાબર છે, પરન્તુ અલોકાકાશના અસ્તિત્વનું શું પ્રમાણ છે? કારણ એ છે કે ઇંદ્રિયોનો એ વિષય નથી કેમકે અમૂર્ત છે જે વિષયમા ઇન્દ્રિયોની પ્રવૃત્તિ થતી નથી તેમા મન પણ પ્રવૃત્ત થઈ શકતું નથી. એથી કરીને ઇન્દ્રિયોથી અલોકાકાશને જાણી શકાતુ નથી તેમજ મનથી પણ જાણી શકાતું નથી.

प्रवृत्तेः कदाऽप्यसम्भवादिति न शङ्कनीयम्, इन्द्रियनोइन्द्रियविषयत्वाभावमात्रदर्शनेन तदस्तित्वनिराकरणस्याऽशक्यत्वात्. अन्यथा हि प्रपितामहादीनामपि तत एवाभावः प्राप्नुयात्। यतः 'आसन् प्रपितामहादयोऽस्मादादिशरीरस्याऽन्यथाऽनुपपन्नत्वात्' इत्यनुमानेन तेषामस्तित्वं साध्यते चेदलोकस्याप्यनुमानेन सिद्धिरनवद्यैव, तथाहि—

लोकः सप्रतिपक्षः, व्युत्पत्तिमच्छुद्धपदाभिधेयत्वात्, यो हि व्युत्पत्तिमच्छुद्धपदाभिधेयः स सप्रतिपक्ष एव भवति, यथा घटः। यश्च लोकप्रतिपक्षः स एव सद्भूतोऽलोकः, अस्तित्ववत एव प्रतिपक्षित्वसम्भवात्।

ननु 'न लोकोऽलोकः' इति व्युत्पत्त्या घटादिष्वन्यतम एवालोकः सिध्यति किं

उत्तर–यह प्रश्न ठीक नहीं है, क्योंकि इन्द्रिय और मनका विषय न होनेसे उसके अस्तित्वका खण्डन नहीं हो सकता, अन्यथा दादे परदादे आदि पूर्वजोका भी अस्तित्व सिद्ध नहीं होगा, क्योंकि वे भी इन्द्रिय और मनके विषय नहीं होते। यदि कोई इस अनुमानसे पूर्वजोका अस्तितत्व सिद्ध करे कि–पितामह (दादा) आदि पूर्वजोका किसी समयमें अस्तित्व था, क्योंकि उनके विना हमारा शरीर नहीं बन सकता तो अनुमानसे ही अलोकको भी सिद्धि मान लेनी चाहिए। अनुमान यह है–

लोक अपने प्रतिपक्ष (विरोधी-अलोक) की अपेक्षा रखता है, क्योंकि वह व्युत्पत्तिवाले समासरहित पदका वाच्य (अर्थ) है। जो जो व्युत्पत्तिवाले समासरहित पदका वाच्य होता है वह प्रतिपक्षसहित ही होता है, जैसे घट। घट व्युत्पत्तिवाला है और समासरहित है, अर्थात् दो पद मिल कर नही बना हुआ है, अत एव घटके प्रतिपक्ष-अघट-पट, मुकुट शकट, कट आदि भी अवश्य होते हैं। लोकका जो प्रतिपक्ष है वह अस्तित्ववान् अलोक है, क्योंकि अस्तित्ववान् पदार्थ किसीका प्रतिपक्ष हो सकता है। गधेका सींग आदि नास्तित्ववान् पदार्थ किसीके प्रतिपक्ष नहीं होते॥

ઉત્તર–એ પ્રશ્ન બરાબર નથી કેમકે ઈન્દ્રિય અને મનનો વિષય ન હોવાથી તેના અસ્તિત્વનુ ખંડન થઇ શકતું નથી. એમ તો દાદા પરદાદા આદિ પૂર્વજોનું પણ અસ્તિત્વ સિદ્ધ નહિ થાય, કેમકે તે પણ ઈન્દ્રિય અને મનના વિષય નથી હોતા જો કોઇ અનુમાનથી પૂર્વજોનુ અસ્તિતવ સિદ્ધ કરે કે પિતામહ (દાદા) આદિ પૂર્વજોનું કોઈ સમયે અસ્તિત્વ હતુ, કારણ કે એના વિના આપણુ શરીર બની શકે નહિ, તો અનુમાનથી જ અલોકની પણ સિદ્ધિ માની લેવી જોઇએ, અનુમાન એ છે કે–

લોક પોતાના પ્રતિપક્ષ (વિરોધી-અલોક) ની અપેક્ષા રાખે છે, કારણ કે એ વ્યુત્પત્તિવાળા સમાસરહિત શબ્દનો વાચ્ય (અર્થ) છે. જે જે વ્યુત્પત્તિવાળા સમાસરહિત શબ્દનો વાચ્ય હોય છે તે પ્રતિપક્ષસહિત જ હોય છે. જેમ ઘટ, ઘટ-વ્યુત્પત્તિવાળો છે અને સમાસરહિત છે, અર્થાત બે શબ્દો મળવાથી બનેલો નથી, તેથી ઘટનો પ્રતિપક્ષ–અઘટ–પટ, મુકુટ, શકટ, કટ આદિ પણ અવશ્ય હોય છે લોકનો જે પ્રતિપક્ષ છે તે અસ્તિત્વવાન્ અલોક છે, કારણ કે અસ્તિત્વવાન્ પદાર્થ જ કોઈનો પ્રતિપક્ષ થઈ શકે છે. ગધેડાનુ શીંગડું વગેરે નાસ્તિત્વવાન્ પદાર્થ કોઇનો પ્રતિપક્ષ થતો નથી

पदार्थान्तरकल्पनया ? इति चेदुच्यते-'न लोकः' इत्यत्र नञः पर्युदासार्थकत्वात्, 'पर्युदासः सदृशग्राही'-ति नियमान्निषेध्यसदृशेनैव भाव्यम्, निषेध्यश्चात्र जीवाऽजीवाऽऽदि-द्रव्याधारभूत आकाशविशेषात्मको लोकः, अतोऽलोकोऽप्याकाशविशेषरूप एव भवितुं योग्यः यथा 'अधनोऽयम्' इत्युक्ते धनरहितो मनुष्य एव गृह्यते न तु घटपटादिः, तथेहाऽप्यलोको लोकानुरूप एव बोद्धव्य इति ॥२२॥

प्रश्न-'जो लोक नहीं वह अलोक है' ऐसा माननेसे लोकसे भिन्न जितने घट पट आदि पदार्थ है वे सब अलोक होगे, क्योकि वे लोक नहीं है-लोकसे भिन्न है। फिर घट आदि पदार्थोंसे भिन्न एक अलग अलोक क्यों मानते हो ?

उत्तर-जो लोक नहीं वह अलोक है। यहाँ नञ्समास है। नञर्थ दो प्रकारका होता है। एक नञर्थ ऐसा होता है कि वह जिसका निषेध किया जाता है उस निषेध्यके समानका ही ग्रहण करनेवाला होता है उसे पर्युदास कहते है। कहा भी है कि-"पर्युदास सदृशका बोधक होता है।" अत एव लोकका निषेध रूप अलोक भी लोकहीके समान होना चाहिए। निषेध्य यहां जीव अजीव आदि द्रव्योका आधारभूत आकाशविशेष है, अतः अलोक भी आकाशविशेष (जीव अजीव आदि द्रव्योंके आधारसे भिन्न) होना चाहिए। जैसे किसीने काहाकि यह 'अधन' है। इस वाक्यमें 'अधन' शब्दसे यह नहीं समझा जाता है कि यह घडा है या कपड़ा है, किन्तु धनरहित मनुष्य अर्थ ही समझा जाता है। इसी प्रकार यहाँ 'अलोक' शब्दसे घडा नहीं समझना चाहिए किन्तु आकाशविशेष ही समझना चाहिए। केवली भगवान् इन लोक अलोक दोनोंको जानते है ॥२२॥

પ્રશ્ન-'જે લોક નથી તે અલોક છે' એમ માનવાથી લોકથી ભિન્ન જેટલા ઘટ પટ આદિ-પદાર્થો છે તે બધા અલોક થશે, કારણ કે તે લોક નથી-લોકથી ભિન્ન છે. પછી ઘટ આદિ પદાર્થોથી ભિન્ન એક જૂદો અલોક કેમ માનો છો ?

ઉત્તર—જે લોક નથી તે અલોક છે. એમાં નઞ્ સમાસ છે નઞર્થ બે પ્રકારના હોય છે એક નઞર્થ એવો હોય છે કે તે જેનો નિષેધ કરવામાં આવે છે એ નિષેધ્યની સમાનને જ ગ્રહણ કરનાર હોય છે, તેને પર્યુદાસ કહે છે, કહ્યું છે કે- "પર્યુદાસ સદૃશનો બોધક હોય છે" તેથી કરીને લોકના નિષેધરૂપ અલોક પણ લોકની જ સમાન હોવો જોઈએ અહીં નિષેધ્ય જીવ-અજીવ આદિ દ્રવ્યોનો આધારભૂત આકાશ-વિશેષ છે, તેથી અલોક પણ આકાશ વિશેષ (જીવ અજીવ આદિ દ્રવ્યોના આધારથી ભિન્ન) હોવો જોઈએ, જેમકે કોઈએ કહ્યુ કે એ 'અધન' છે, એ વાક્યમાં 'અધન' શબ્દથી એમ નથી સમજાતું કે એ ઘડો છે યા કપડું છે, કિન્તુ 'ધનરહિત મનુષ્ય' એવો અર્થ જ સમજાય છે. એ રીતે અહીં 'અલોક' શબ્દથી ઘડો યા કપડું નસમજવું જોઈએ, કિન્તુ આકાશવિશેષ જ સમજવું જોઈએ. કેવળી ભગવાન્ એ લોક અને અલોક બેઉને જાણે છે. (૨૨)

१ ४ ५ ६ २ ७ ३
मूलम्–जया लोगमलोगं च, जिणो जाणइ केवली ।
८ ९ १० ११ १२
तया जोगे निरूंभित्ता. सेलेसिं पडिवज्जइ ॥२३॥

छाया—यदा लोकमलोकं च, जिनो जानाति केवली ।
तदा योगान्निरुध्य, शैलेशीं प्रतिपद्यते ॥२३॥

सान्वयार्थः—जया=जब जिणो=वीतराग केवली=केवलज्ञानी होये हुए: लोगमलोगं च=लोक और अलोकको जाणइ=जानते हैं, तया=तव जोगे=मनवचन-कायके योगों का निरुंभित्ता=निरोध करके सेलेसिं=शैलेशीकरणको पडिवज्जइ=प्राप्त करते हैं ॥२४॥

टीका––'जया लोग'-मित्यादि । यदा जिनः केवली लोकालोकं जानाति तदा योगान्=मनोवाक्कायलक्षणान् निरुध्य, तथाहि–मुक्तिपदेऽन्तर्मुहूर्त्तभाविनि आयुष्यन्तर्मुहूर्त्तमात्राविशेषे सति यद्यघातिकर्मचतुष्टयं स्वभावतः समस्थितिकं स्यात्तदा निष्कलङ्कः परमकल्याणाऽऽस्पदीभूतःकेवली सूक्ष्मक्रियाऽनिवर्त्याख्यं ध्यानमारभते। उत्कृष्टत आयुषः षण्मासावशेषे समुत्पन्नकेवलस्य भगवतस्तु तदायुषोऽल्पत्वाद् वेदनीयनामगोत्रकर्मणां च स्थितिबाहुल्याच्च नियतसमुद्घातत्वात्, तत्कृत्वा वेदनीयादिषु चतुर्षु समस्थितिकेषु सत्सु तदारम्भः।

"जया लोग०" इत्यादि । जब घातीकर्मोंको जीतनेवाले केवली भगवान् लोक और अलोकको जान लेते है तब योगोका निरोध करके शैलेशी अवस्थाको प्राप्त करते है ।

(३) अन्तर्मुहूर्त्त मात्र आयु शेष रहने पर यदि बाकी रहे हुए चारो अघातिया कर्मोकी स्थिति स्वभावसे ही बराबर हो तो निष्कलङ्क परम कल्याणके आश्रयभूत केवली प्रभु सूक्ष्मक्रिय नामक शुक्ल ध्यानके तीसरे पायेका ध्यान प्रारम्भ करते है, किन्तु जिन्हें उत्कृष्ट आयुकर्म छह मास अवशेष रहने पर केवलज्ञान उत्पन्न होता है उन्हे नियमसे केवलिसमुद्घात करना पड़ता है, क्योंकि उनका आयुकर्म अल्प होता है और उनके वेदनीय नाम गोत्र कर्मोंकी स्थिति अधिक होती है, इसलिए वे पहले समुद्घातके द्वारा चारो कर्मोंकी स्थिति बराबर करके फिर तीसरे पायेका ध्यान आरम्भ करते है ।

जया लोगं०ઇત્યાદિ. જ્યારે ઘાતી કર્મોને જીતવાવાળા કેવળી ભગવાન્ લોક અને અલોકને જાણી લે છે ત્યારે યોગોના નિરોધ કરીને શૈલીશી અવસ્થાને પ્રાપ્ત કરે છે.

(૩) અન્તર્મુહૂર્ત માત્ર આયુ શેષ રહેતાં બાકી રહેલા ચારે અઘાતી કર્મોની સ્થિતિ સ્વભાવથી બરાબર હોય તો નિષ્કલંક પરમ કલ્યાણના આશ્રયભૂત કેવળી પ્રભુ સૂક્ષ્મક્રિય નામના શુક્લ ધ્યાનના ત્રીજા પાયાનું ધ્યાન પ્રારંભે છે. કિન્તુ જેમને ઉત્કૃષ્ટ આયુકર્મ છ માસ અવશેષ રહેતાં કેવળજ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે, તેમને નિયમથી કેવળી સમુદ્ઘાત કરવો પડે છે, કારણ કે એમનું આયુકર્મ અલ્પ હોય છે અને એમનાં વેદનીય નામ ગોત્ર કર્મોની સ્થિતિ વધારે હોય છે. તેથી કરીને તે પહેલાં સમુદ્ઘાતની દ્વારા ચારે કર્મોની સ્થિતિ

यदा जघन्ययोगवतः सञ्ज्ञिपर्याप्तस्य मनोद्रव्याणि समये२ निरुन्धन् असंख्यातसमयैः सम्पूर्ण मनोयोगं, तत्पश्चात्पर्याप्तद्वीन्द्रियस्य वाग्योगपर्यायतोऽसंख्यातगुणन्यूनवाग्योगपर्यायान् प्रतिसमयं निरुन्धन् असंख्यातसमयैः सम्पूर्णवाग्योगं, ततश्च प्रथमसमयसमुत्पन्ननिगोदजीवस्य जघन्यकाययोगपर्यायतोऽसंख्यातगुणहीनकाययोगं प्रतिसमयं निरुन्धन् असंख्यातसमयैर्बादरकाययोगं च सर्वथा निरुणाद्धि तदेदं सूक्ष्मक्रियाऽनिवर्त्तिध्यानमुपक्रमते । तत्र श्वासोच्छ्वासस्वरूपं सूक्ष्ममपि काययोग निरुध्य=अयोगित्वं प्राप्येत्यर्थः, शैलीशीम्=शैलाः=पर्वतास्तेपामीशः शैलेशः=सुमेरुस्तद्वत् स्थैर्यं यस्यामवस्थायां

जब जघन्य योगवाले सञ्ज्ञी पर्याप्तकके मनोद्रव्य और मनोद्रव्य के व्यापारोसे असख्यात गुणहीन मनोद्रव्योका प्रतिसमयमें निरोध करते हुए असख्यात समयोमें सम्पूर्ण मनोयोगका निरोधक कर देते है । तब मनोयोगका निरोध करके पर्याप्त द्वीन्द्रियके वचनयोगकी पर्यायोंसे असख्यात गुणहीन वचनयोगकी पर्यायोका प्रतिसमय निरोध कहते हुए समस्त वचनयोगका निरोध करते है । वचन योगका सपूर्ण निरोध करके प्रथम समयमें उत्पन्न निगोदिया जीवके जघन्य काययोग की पर्यायो से असख्यातगुणहीन काययोगका प्रतिसमय निरोध करते हुए असख्यात समयोमें बादर काययोगका भी सर्वथा निरोध कर देते है । अर्थात् समस्त मनोयोग और वचनयोगका तथा बादर काययोगका निरोध होने पर सूक्ष्मक्रियाऽनिवर्त्ति नामक तीसरे ध्यानको आरभ काते है । तीसरे ध्यानके समय श्वासोच्छ्वासरूप काययोगकी सूक्ष्मक्रिया ही रहती है । इस ध्यानसे उस सूक्ष्मक्रियाका भी निरोध करके अयोगी हो जाते हैं । अयोगी होकर अर्थात् तेरहवे गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थानमें पहुंचकर शैलेशी अवस्थाको प्राप्त होते है । जिसमें शैलो (पर्वतो) के ईश (स्वामी) सुमेरु पर्वतके समान स्थिरता रहती है उसे शैलेशी अवस्था कहते है । अथवा–शील (यथाख्यातचारित्र) के ईश (स्वामी) को शीलेश कहते है, उनकी

બરાબર કરીને પછી ત્રીજા પાયાનું ધ્યાન આરંભે છે.

જ્યારે જઘન્ય યોગવાળા સંજ્ઞી પર્યાપ્તકના મનોદ્રવ્ય અને મનોદ્રવ્યના વ્યાપારોથી અસખ્યાતગુણહીન મનોદ્રવ્યોનો પ્રતિ સમયે નિરોધ કરતાં અસંખ્યાત સમયોમાં સપૂર્ણ મનોયોગનો નિરોધ કરીને પર્યાપ્ત દ્વીન્દ્રિયના વચનયોગના પર્યાયોથી અસખ્યાતગુણહીન વચનયોગના પર્યાયોનો પ્રતિસમય નિરોધ કરતાં સમસ્ત વચનયોગનો નિરોધ કરે છે. વચનયોગનો સંપૂર્ણ નિરોધ કરીને પ્રથમ સમયમા ઉત્પન્ન નિગોદિયા જીવના જઘન્ય કાયયોગના પર્યાયોથી અસંખ્યાતગુણહીન કાયયોગનો પ્રતિસમય નિરોધ કરતાં અસંખ્યાત સમયોમાં બાદર કાયયોગનો પણ સર્વથા નિરોધ કરી નાખે છે. અર્થાત્ સમસ્ત મનોયોગ અને વચનયોગના તથા બાદર-કાયયોગનો નિરોધ થતાં સૂક્ષ્મક્રિયાઽનિવર્તિ નામના ત્રીજા ધ્યાનનો આરભ કરે છે ત્રીજા ધ્યાનને સમયે શ્વાસોચ્છ્વાસરૂપ કાયયોગની સૂક્ષ્મ-ક્રિયા જ રહે છે, એ ધ્યાનથી તે સૂક્ષ્મ ક્રિયાનો પણ નિરોધ કરીને અયોગી થઇ જાય છે અયોગી થઇને અર્થાત્ તેરમે ગુણ સ્થાન થી ચૌદમાં ગુણસ્થાનમા પહોચીને શૈલશી અવસ્થાને પ્રાપ્ત થાય છે જેમાં શૈલો (પર્વતો)ના ઈશ (સ્વામી) સુમેરૂ પર્વતની પેઠે સ્થિરતા રહે છે તેને

सा, यद्वा शीलं=यथाख्यातचारित्रं तस्येशः=स्वामी शीलेशस्तस्येयमवस्था शैलेशी तां प्रतिपद्यते मध्यमकालेन 'अ-इ-उ-ऋ-ऌ' इत्येवंरूपपञ्चलध्वक्षरोच्चारणसमकालस्थितिकं समुच्छिन्नक्रियाऽप्रतिपातिध्यानमनुभवतीत्यर्थः,

ननु सूक्ष्मक्रियाऽनिवर्त्याख्यस्य शुक्लध्यानस्य कथं ध्यानपदप्रतिपाद्यता ?, ध्यानं हि नाम मनःस्थैर्यम् , केवलिनश्च तदानीं मनसोऽसत्त्वादिति चेन्न,

स्थैर्यावस्थापन्नत्वमेव ध्यानत्वम् , तच्च यथा स्थिरीभावमापन्नस्य छद्मस्थीयमनसस्तथैव केवलिकाययोगस्यापि सुस्थिरतया सुवचम् ।

नन्वेवमपि समुच्छिन्नक्रियाऽप्रतिपात्याख्यस्य शुक्लध्यानस्य कथं ध्यानत्वम् ? तत्र काययोगस्याप्यभावात् , इति चेदुच्यते-यथा कुम्भकारचक्रं तद्भ्रामकदण्डादिसम्बन्धा-

---

अवस्थाको शैलेशी कहते है । इस शैलेशी अवस्थाको प्राप्त होकर न धीमे न जल्दी अर्थात मध्यम काल से 'अ-इ-उ-ऋ-ऌ' इन पांच ह्रस्व अक्षरोंके उच्चारणमें जितना समय लगता है उतने समय तक चौदहवें अयोगिकेवली गुणस्थानमें रहकर समुच्छिन्नक्रियाऽप्रतिपाति ध्यान ध्याते है ॥

प्रश्न–हे गुरुमहाराज ! मनकी स्थिरताको ध्यान कहते है । केवली भगवान के उस समय मन नहीं रहता, अतः सूक्ष्मक्रियाऽनिवर्त्ति शुक्लध्यान को ध्यान कैसे कहा जा सकता है ?

उत्तर–स्थिरता को ही ध्यान कहते है । वह स्थिरता जैसे छद्मस्थके मनोयोगकी होती है वैसे ही केवलीके काययोगकी स्थिरता होती है इसीलिए उसे ध्यान कहते है ।

प्रश्न–तो समुच्छिन्नक्रियाऽप्रतिपाति–शुक्ल–ध्यानको ध्यान कैसे कह सकते है ? क्योंकि वहां काययोगका भी अभाव है ? ।

उत्तर–जैसे कुंभारका चाक, घुमानेवाले दण्ड आदिके सयोग न होनेपर भी पूर्वकालके

શૈલેશી અવસ્થા કહે છે, અથવા શીલ (યથાખ્યાત–ચારિત્ર) ના ઈશ (સ્વામી) ને શીલેશ કહે છે, એની અવસ્થાને શૈલેશી કહે છે એ શૈલેશી અવસ્થાને પ્રાપ્ત થઇને, નહી ધીમે કે નહિ જલદી અર્થાત્ મધ્યમ કાલથી अ–इ–उ–ऋ–ऌ એ પાંચ હ્રસ્વ અક્ષરોના ઉચ્ચારણમાં જેટલો સમય લાગે એટલા સમય સુધી ચૌદમે અયોગિકેવળી ગુણસ્થાનમાં રહીને સમુચ્છિન્નક્રિયાઽપ્રતિપાતિ ધ્યાન ધ્યાવે છે

પ્રશ્ન—હે ગુરૂ મહારાજ ! મનની સ્થિરતાને ધ્યાન કહે છે કેવળી ભગવાનને એ સમયે મન રહેતું નથી, એટલે સૂક્ષ્મક્રિયાઽનિવર્તિ શુકલધ્યાનને ધ્યાન કેવી રીતે કહી શકાય ?

ઉત્તર—સ્થિરતાને જ ધ્યાન કહે છે. એ સ્થિરતા જેવી છદ્મસ્થના મનોયોગની હોય છે તેવીજ કેવળીના કાયયોગની સ્થિરતા હોય છે, તેથી તેને ધ્યાન કહે છે.

પ્રશ્ન—તો સમુચ્છિન્નક્રિયા–અપ્રતિપાતિ–શુકલ–ધ્યાનને ધ્યાન કેવી રીતે કહી શકાય ? કારણ કે ત્યાં કાયયોગનો પણ અભાવ છે

ઉત્તર—જેમ કુંભારનો ચાકડો, તેને ફેરવનાર દંડ આદિનો સંયોગ ન થવા છતાં પણ પૂર્વકાળના વેગથી ઘુમ્યા કરે છે, તેમજ મન વચન કાયનો નિરોધ થઈ ગયા પછી

भावेऽपि प्राक्कालीनवेगतो भ्रमति तथा मनोवाक्काययोगनिरोधेऽप्ययोगिनः प्राक्कृतध्यानधारावेगतो ध्यानं सम्पद्यते ।

किञ्च—तत्र द्रव्ययोगाभावेऽपि भावयोगस्य सत्त्वाद् ध्यानमुपपद्यते, जीवोपयोगरूपस्य भावमनसस्तत्रापि सद्भावात् । अथ च-यथा पुत्रभिन्नोऽपि पुत्रकार्यकरणेन पुत्र उच्यते तथा भवोपग्राहिकर्मनिर्जरणरूपस्य ध्यानकार्यस्य करणेन ध्यानत्वोपाचाराद् ध्यानशब्दाभिधेयत्वं सिद्धम् ।

अथ च=यथैकस्य नानार्थकशब्दस्य बहवोऽर्था भवन्ति, तथा धातूनामनेकार्थत्वाद् ध्यैधातुनिष्पादितस्य ध्यानशब्दस्यापि समुच्छिन्नक्रियाख्यं शुक्लध्यानमप्यर्थः । अपरं च—उक्तशुक्लध्यानस्य ध्यानत्वेन जिनागमप्रतिपाद्यतया ध्यानत्वं निर्बाधमित्यलम् ॥२३॥

मूलम्—जया[1] जोगे[2] निरुंभित्ता[3] सेलेसिं[4] पडिवज्जइ[5] ।
तया[6] कम्मं[7] खवित्ताणं,[8] सिद्धिं[10] गच्छइ[11] नीरओ[9] ॥२४॥

वेगसे घूमता रहता है वैसे ही मन वचन कायका निरोध होजाने परभी पूर्व ध्यानकी धारा के वेगसे अयोगी केवलीके ध्यान होता है ।

अथवा—द्रव्ययोगका अभाव होने पर भाव योगके सद्भावसे ध्यान होता है, क्योकि जीवका उपयोगरूप भावमन उस अवस्थामें भी रहता है । अथवा जैसे पुत्र न होकर भी यदि कोई पुत्रका कार्य करता है तो वह पुत्र कहलाता है । वैसे ही भवोपग्राही कर्मोंकी निर्जरारूप ध्यान का कार्य करनेसे उपचार से वह ध्यान कहलाता है । अथवा—जैसे नानार्थक शब्दके बहुत से अर्थ होते हैं वैसे ही धातुओके भी अनेक अर्थ होते है इसलिए यहाँ 'ध्यै' धातुसे बने हुए ध्यान शब्द का अर्थ समुच्छिन्नक्रियाऽप्रतिपाति–शुक्ल–ध्यान अर्थात् अयोगी गुणस्थानवालो की क्रिया भी समझ लेना चाहिए । अथवा जिनागममें इसको ध्यान कहा है अतः इसमें ध्यानत्व निर्वाघ है ॥२३॥

પણ પૂર્વ ધ્યાનની ધારાના વેગથી અયોગી કેવળીને ધ્યાન હોય છે

અથવા દ્રવ્યયોગનો અભાવ થયા છતા પણ ભાવયોગના સદ્‌ભાવથી ધ્યાન થાય છે. કારણ કે જીવના ઉપયોગરૂપ ભાવમન એ અવસ્થામા પણ રહે છે અથવા જેમ પુત્ર ન હોવા છતા જો કોઈ પુત્રનું કાર્ય કરે છે તો તે પુત્ર કહેવાય છે, તેમજ ભવોપગ્રાહી કર્મોની નિર્જરારૂપ ધ્યાનનું કાર્ય કરવાથી ઉપચારે કરીને તે ધ્યાન કહેવાય છે અથવા જેમ વિવિધાર્થક શબ્દના ઘણાય અર્થો થાય છે તેમ ધાતુઓના પણ અનેક અર્થો થય છે, અહીં ધ્યૈ ધાતુથી બનેલા ધ્યાન શબ્દનો અર્થ સમુચ્છિન્નક્રિયાઽપ્રતિપાતિ–શુકલ–ધ્યાન અર્થાત્ અયોગી ગુણસ્થાન વાળાઓની ક્રિયા પણ સમજી લેવી અથવા જિનાગમમાં એને ધ્યાન કહ્યું છે તેથી એમા ધ્યાનત્વ નિર્બાધ છે (૨૩)

छाया—यदा योगान्निरुध्य, शैलेशीं प्रतिपद्यते ।
तदा कर्म क्षपयित्वा, सिद्धिं गच्छति नीरजाः ॥२४॥

सान्वयार्थः—जया=जब जोगे=योगोंका निरुंभित्ता=निरोध करके सेलेसिं=शैलेशीकरणको पडिवज्जइ=प्राप्त करते हैं, तया=तब कम्मं=कर्ममात्रको खवित्ता=खपा करके नीरओ=कर्मरजरहित-सब कर्मों से मुक्त-होकर सिद्धिं=मोक्षको गच्छइ=जाते हैं ॥२४॥

टीका—'जया जोगे०' इत्यादि । यदा योगनिरोधं कृत्वा शैलेशीं प्राप्नोति तदा कर्म=वेदनीयाऽऽयुर्नामगोत्राख्यमघातिकर्मचतुष्टयलक्षणं क्षपयित्वा=क्षयं नीत्वा सर्वथा विनाश्येत्यर्थः 'ण'-मिति वाक्यालङ्कारे, नीरजाः=निर्गतं रजः=सकलकर्ममलं यस्मादिति, रजसः=उक्तलक्षणान्निष्क्रान्तो वा नीरजाः=सकलर्मोपाधिरहितः साधितात्मा प्रभुः सिद्धिं= सिध्यन्ति=निष्ठितार्था भवन्ति यस्यां सा सिद्धि=र्मुक्तिलक्षणा तां गच्छति=प्राप्नोति; गत्यर्थधातुनां प्राप्त्यर्थत्वात् ॥२४॥

मूलम्-जया[1] कम्मं[2] खवित्ताणं[3], सिद्धिं[5] गच्छइ[6] नीरओ[4] ।
तया[7] लोगमत्थयत्थो[8], सिद्धो[10] हवइ[11] सासओ[9] ॥२५॥

छाया—यदा कर्म क्षययित्वा, सिद्धिं गच्छति नीरजाः ।
तदा लोकमस्तकस्थः, सिद्धो भवति शाश्वतः ॥२५॥

सान्वयार्थः—जया=जब कम्मं=कर्ममात्रको खवित्ता=खपा करके नीरओ=कर्मरजरहित होकर सिद्धिं=मोक्षको गच्छइ=जाते हैं, तया=तब लोगमत्थयत्थो=लोगके अग्रभाग पर स्थित सासओ=शाश्वत-नित्य सिद्धो=सिद्ध हवइ=हो जाते हैं ॥२५॥

टीका—'जया कम्मं' इत्यादि । यदा सर्वकर्मक्षयं कृत्वा नीरजाः सिद्धिं गच्छति तदा लोकमस्तकस्थः=सर्वलोकोपरिस्थितः, शाश्वतः=दग्धकर्मबीजत्वात्पुनः संसारसंसरणरहितो नित्यः, सिद्धः=कृतकृत्यो भवतीति ।

'जया जोगे' इत्यादि । जब योगोका निरोध करके शैलेशी अवस्थाको प्राप्त होते है तब वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र, इन चार अघाति कर्मोका क्षय करके सर्व कर्मोसे मुक्त होकर भगवान मोक्षको प्राप्त होते है ॥२४॥

'जया कम्मं' इत्यादि । जब सब कर्मोका क्षय करके निष्कर्म होकर मोक्षगमन करते है तब लोकके अग्रभाग पर स्थित, सब कर्मोसे रहित होनेके कारण सभी ससार में न आनेसे

जया जोगे ઇત્યાદિ જ્યારે યોગોનો નિરોધ કરીને શૈલેશી અવસ્થાને પ્રાપ્ત થાય છે, ત્યારે વેદનીય, આયુ, નામ અને ગોત્ર એ ચાર અઘાતી કર્મોનો ક્ષય કરીને સર્વ કર્મોથી મુક્ત થઈને ભગવાન્ મોક્ષને પ્રાપ્ત થાય છે. (૨૪)

जया कम्मं ઇત્યાદિ જ્યારે સર્વ કર્મોનો ક્ષય કરીને નિષ્કર્મ થઈને મોક્ષગમન કરે છે, ત્યારે લોકના અગ્રભાગ પર સ્થિત, સર્વ કર્મોથી રહિત હોવાને કારણે કદાપિ સંસારમાં

ननु सिद्धानां सर्वकर्मक्षयात् त्रसनामकर्मणोऽप्यविद्यमानत्वेन कथं गतिसम्भवः ? इति चेदुच्यते—–

यथा धनुर्मुक्तस्य वाणस्य तद्विरहेऽपि पूर्वप्रयोगसामर्थ्याद्गतिर्भवति तथा संसारावस्थायामपवर्गप्राप्तये कृतानेकविधप्रणिधानबलान्मुक्तात्मनोऽपीति ।

ननु भवतु गतिः किन्तु सा तिर्यगधस्ताद्वा न भूत्वोर्ध्वमेव भवतीति कथमवसीयते ? इति चेच्छ्रूयताम्—तेषां गुरुत्वगुणाभावान्नाधस्तात् , कायादियोगपरप्रेरणयोरभावाच्च न तिर्यग्गतिर्भवति,

यथा-नीरन्ध्रामतिशुष्कामनुपहतां चाऽलाबूं कुशादितृणैः परितः संवेष्ट्य तदुपरि

शाश्वत सिद्ध हो जाते हैं ।

प्रश्न—हे गुरुमहराज ! सिद्धोके समस्त कर्मोका नाश होजाता है अत एव त्रस नाम कर्म भी नहीं रहता, फिर सिद्ध भगवान लोकके अग्र भाग तक किस प्रकार गमन कर सकते है ।

उत्तर—हे शिष्य जैसे धनुषसे छूटा हुआ बाण धनुषका सम्बन्ध न होने पर भी गति करता है, क्योकि उसमें पहलेका व्यापार का सामर्थ्य रहता हैं । वैसे ही ससार अवस्थामें मोक्ष प्राप्त करनेके लिए किये हुए अनेक प्रकारके अनुष्ठानके वेगसे मुक्तात्मा भी गमन करते है ।

प्रश्न—हे गुरुमहाराज ! गति तो होती है पर ऊर्ध्व गति ही क्यो होती है ? नीचेकी ओर अथवा तिरछी गति क्यो नहीं होती ?

उत्तर—हे शिष्य ? नीचे की ओर उसीकि गति होती है, जिसमें गुरुत्व गुण (भारी पन) पाया जाता हैं । सिद्धोमें गुरुत्व गुण नहीं है अत एव उनकी गति नीचेकी ओर नहीं होती काय आदि योग और दूसरेकी प्रेरणा न होनेसे तिरछी गति भी नहीं होती ।

ન આવવાથી શાશ્વત સિદ્ધ થઇ જાય છે

પ્રશ્ન—હે ગુરૂ મહારાજ ! સિધ્ધોના બધા કર્મોનો નાશ થઇ જાય છે, એટલે ત્રસનામ-કર્મ પણ રહેતું નથી, તો પછી સિદ્ધ ભગવાન્ લોકના અગ્રભાગ સુધી કેવા પ્રકારે ગમન કરી શકે છે ?

ઉત્તર—હે શિષ્ય ! જેવી રીતે ધનુષ્યથી છૂટેલું બાણ ધનુષ્યનો સંબંધ ન હોવા છતાં ગતિ કરે છે, કારણ કે તેમા પહેલાના વ્યાપારનુ સામર્થ્ય રહેલું છે, તેવી રીતે સંસાર અવસ્થામાં મોક્ષ પ્રાપ્ત કરવાને માટે કરેલાં અનેક પ્રકારનાં અનુષ્ઠાનોના વેગથી મુક્તાત્મા પણ ગમન કરે છે.

પ્રશ્ન—હે ગુરૂ-મહારાજ ! ગતિ તો હોય છે પણ ઊર્ધ્વ ગતિ જ કેમ થાય છે ? નીચેની બાજુએ અથવા તિર્છી ગતિ કેમ નથી થતી ?

ઉત્તર—હે શિષ્ય ! નીચેની બાજુએ તેની ગતિ થાય છે કે જેમાં ગુરૂત્વગુણ (ભારેપણું) હોય છે. સિદ્ધોમાં ગુરૂત્વ ગુણ નથી, તેથી તેમની ગતિ નીચેની બાજુએ નથી થતી કાય આદિ યોગ અને બીજાની પ્રેરણા ન હોવાથી તિર્છી ગતિ પણ થતી નથી

स्निग्धमृत्तिकया सान्द्रं विलिप्याऽऽतपे संशोषयेत्, इत्थमष्टवारानुक्तप्रक्रियया यथाक्रम तृणवेष्टन-मृल्लेपन-संशोषणादीनि विधायाऽगाधसलिले प्रक्षिप्ता साऽलाबूरष्टकृत्वोदत्तमृल्लेपजनितगौरवेणोर्ध्वसलिलतलमतिक्रम्य तदधस्ताद् भूतलसंलग्ना भवति, तदनु मन्दमन्दमनुक्रमतस्तेष्वष्टवारविनिहितमृल्लेपेषु सार्द्रतामुपगम्य विशीर्णेषु सत्सु मृत्तिकालेपजन्यभारराहित्येन लघुतामुपगता साऽलाबूरधोभूतलमतिक्रम्य जलोपरिप्रतिष्ठाना भवति तथाऽष्टविधकर्मलेपसंभारभराक्रान्त आत्मा जगज्जलधौ निमज्जति, तद्विरहितश्चोर्ध्वगतिधर्मत्वादूर्ध्वमेव गच्छति।

तथा चोक्तं भगवता—

"जह मिउलेवालित्तं, गरुयं तुंबं अहो वयइ एवं।
आसवकयकम्मगुरू, जीवा वच्चंति अहरगइं ॥१॥
तं चेव तव्विमुक्कं, जलोवरिं ठाइ जायलहुभावं।
जह तह कम्मविमुक्का, लोयग्गपइट्ठिया होंति ॥२॥" इति।

जैसे–छिद्ररहित बिलकुल सूखी हुई, बिना टूटी फूटी तुम्बीको चारों ओर तृणपुञ्जसे बांध करके धूपमें सुखा ले, आठ बार ऐसा करके अगाध जलमें तुम्बी को डाल दे तो आठबार के लेप के भारीपनसे जलके तलमें पहुँचकर वह पृथ्वी से लग जाती है। उसके पश्चात् गीलेपनसे जब धीरे धीरे वह मिट्टीका लेप छूटने लगता तो क्रमशः मिट्टीके भारसे रहित होकर लघुता(हलकापन) पाकर वह तुम्बी नीचेसे उठकर जलके ऊपर आजाती है। इसी प्रकार आठ कर्मरूपी लेपके भारसे भारी आत्मा ससाररूपी समुद्रमें डूबी रहती है। जब कर्मरूपी लेपसे रहित हो जाती है तब ऊर्ध्व गमनका स्वभाव होनेसे ऊर्ध्वगमन करती है। भगवान ने कहा भी है—

"जैसे मिट्टीके लेपसे लिप्त तुम्बी भारी होनेसे नीचेकी ओर जाती है वैसेही आस्रवसे उत्पन्न कर्मोंसे आत्मा अधोगतिको प्राप्त होती है ॥१॥ जैसे तुम्बी लेपसे मुक्त होनेपर लघु

જેમ છિદ્રરહિત, બિલકુલ સુકાયલી, તૂટયા ફૂટયા વિનાની તુંબડીને ચારે બાજુએ ઘાસ–તરણાથી બાંધીને તેની ઉપર ચીકણી માટીનો સારી પેઠે લેપ કરીને તડકામાં સૂકવી નાંખે, આઠ વાર એમ કરીને અગાધ જળમા એ તુંબડીને નાખી દે તો આઠ વારના લેપના ભારે પણાથી જળને તળીયે પહોચીને તે પૃથ્વીને અડીને રહે છે. પછી જ્યારે લીલાપણાથી ધીરે ધીરે એ માટીનો લેપ છૂટવા લાગે છે ત્યારે ક્રમશઃ માટીના ભારથી રહિત થઇને લઘુતા (હલકાપણું) પામીને એ તુંબડી નીચેથી ઉઠીને જળની ઉપર આવી જાય છે એજ પ્રકારે આઠ કર્મરૂપી લેપના ભારથી ભારે એવો આત્મા સંસારરૂપી સમુદ્રમાં ડુબી રહે છે. જ્યારે કર્મરૂપી લેપથી રહિત થઇ જાય છે ત્યારે ઉર્ધ્વગમનનો સ્વભાવ હોવાથી ઊર્ધ્વ ગમન કરે છે ભગવાને કહ્યુ પણ છે કે—

'જેમ માટીના લેપથી લિપ્ત તુંબડી ભારે હોવાથી નીચેની બાજુએ જાય છે, તેમજ આસ્રવથી ઉત્પન્ન થએલાં કર્મોથી આત્મા અધોગતિને પ્રાપ્ત થાય છે. (૧) જેમ તુંબડી

छाया–" यथामृल्लेपाऽऽलिप्तं, गुरुकं तुम्बमधो व्रजत्येवम् ।
आश्रवकृतकर्मगुरवो, जीवा व्रजन्ति अधरगतिम् ॥१॥
तदेव (तुम्बं) तद्विमुक्त (मृल्लेपविमुक्तं), जलोपरि तिष्ठति जातलघुभावम् ।
यथा तथा कर्मविमुक्ता (सिद्धाः) लोकाग्रप्रतिष्ठिता भवन्ति ॥२॥

अथवा–यथा वातादिरूपबाधक विरहादूर्ध्वगतिस्वभावायाः प्रदीपकलिकायाः, बीजबन्धविच्छेदाद्बीजकोशगतैरण्डबीजस्य चोर्ध्वगतिः संजायते तथाऽऽत्मनोऽपि तादृशगतिस्वभावस्य विरोधिकर्मबन्धविच्छेदादूर्ध्वगतिरेवेति ।

यथैरण्डबीजमूर्ध्वं गत्वा पुनःपतति तथा तु न मुक्तात्मनः पातसम्भवः, अधःपतनहेतुभूतगुरुत्वगुणाभावादिति प्रागुक्तमेव ।

ननु शरीराभावात्तेषामात्मप्रदेशाः पारदद्रव्यवत् कथ न विकीर्णा भवन्तीति चेन्न, तद्विसर्पकनामकर्माभावात्प्रदेशवत्त्वगुणसद्भावाच्च ।

होकर जलके ऊपर आजाती है उसी प्रकार कर्मसे मुक्त होकर आत्मा लोकके अग्रभाग पर विराजमान हो जाती है ॥२॥"

अथवा-जैसे हवा आदि किसी बाधकके न होनेसे दीपककी लौ ऊपरको जाती है, बीजकोषके बन्धके टूटनेपर एरण्डका बीज ऊपरको जाता है, उसी प्रकार आत्माके ऊर्ध्वगमन के विरोधी कर्मबन्ध का सर्वथा अभाव हो जाने से आत्मा ऊर्ध्वगति करती है

जैसे एरण्डका बीज पहले ऊपरको जाकर फिर नीचे गिर पडता है वैसे आत्मा नहीं गिर सकती, क्योकि नीचे गिरानेका कारण गुरुत्वगुण आत्मामें नहीं है, यह पहले ही कह चुके है।

प्रश्न–हे गुरुमहाराज ! शरीरका अभाव होनेसे सिद्धोके आत्माके प्रदेश पारेके समान फैल क्यो नहीं जाते ?

उत्तर–हे शिष्य । आत्मप्रदेशोको फैलानेवाले नामकर्मका अभाव होनेसे तथा प्रदेशवत्त्व गुणके सद्भावसे सिद्धोके आत्मप्रदेश नहीं फैलते है ।

લેપથી મુક્ત થતાં લઘુ થઇને જલની ઉપર આવી જાય છે, તેમ કર્મથી મુક્ત થઇને આત્મા લોકના અગ્રભાગ પર વિરાજમાન થઈ જાય છે. (૨)"

અથવા, જેમ હવા આદિ કોઇ બાધક ન હોવાથી દીપની જ્યોત ઉપર જ જાય છે, બીજકોષનો બંધ તૂટવાથી એરંડાનું બીજ ઉપર જ જાય છે, તેમ આત્માના ઊર્ધ્વગમનના વિરોધી કર્મબંધનો સર્વથા અભાવ થઇ જવાથી આત્મા ઊર્ધ્વગતિ જ કરે છે

જેમ એરંડાનું બીજ પહેલા ઉપર જઇને પછી નીચે પડી જાય છે, તેમ આત્મા પડી શકતો નથી કારણ કે નીચે પાડવાનુ કારણ ગુરૂત્વ ગુણ આત્મામાં નથી એ પહેલાં કહેવામા આવેલું જ છે

પ્રશ્ન—હે ગુરૂ મહારાજ ! શરીરનો અભાવ હોવાથી સિદ્ધોના આત્માના પ્રદેશો પારાની પેઠે ફેલાઇ કેમ જતા નથી ?

उक्तस्वरूपाः सिद्धाश्चरमशरीरतस्तृतीयभागन्यूना उत्कृष्टतो द्वात्रिंशदङ्गुलसमधिक-त्रयस्त्रिंशदुत्तरशतत्रयधनुः परिमिताः, जघन्यतोऽष्टाङ्गुलाधिकरत्निप्रमाणाः।

यच्च मरुदेवीदेहप्रमाणस्य सपादपञ्चशतधनुष्कात्तृतीयभागे पातिते तस्याः सार्द्धत्रि-शतधनुः परिमिताऽवगाहना भवति तेनात्र न विरोधः, गजाधिरूढत्वेन वृद्धत्वेन वा शरी-रसङ्कोचसम्भवात्।

यत्तु जघन्यतः सप्तहस्तोच्छ्रितानां सिद्धिः शास्त्रेषु श्रूयते तत्तीर्थकरापेक्षया, अन्ये तु द्विहस्तोच्छ्रिता अपि सिध्यन्ति, तदपेक्षया हि प्रोक्तस्वरूपा जघन्याऽवगाहनाऽवसेया।

एवमुक्तस्वरूपो जन्म-जरा-मरणा-ऽऽधिव्याधिबाधापटलीकलङ्कलोभावगर्भनिवासत्रास-

---

सिद्धोके चरम शरीरसे त्रिभाग कम, उत्कृष्ट तीनसौ तेतीस (३३३) धनुष और बत्तीस (३२) अंगुलकी, तथा जघन्य एकरत्नि (एकहाथ) और आठ अंगुलकी अवगाहना होती है।

मरुदेवीके शरीरकी अवगाहना सवा पाँचसौ (५२५) धनुषकी थी, उसमेंसे तीसरा हिस्सा कम करनेसे साढे तीनसौ (३५०) धनुषकी अवगाहना होती है, किन्तु यहाँ पर उत्कृष्ट अवगाहना तीनसौ तेतीस धनुष और बत्तीस अंगुलकी बताई गई है, इससे यहाँ विरोध नहीं समझना चाहिये, क्योंकि मरुदेवी हाथी पर आरुढ थी, इसलिए या वृद्धावस्थाके कारण शरीरका (संकुचित होना) संभव है।

यह जो आगममें सुना जाता है कि जघन्य सात हाथ ऊंचे शरीरवालोको मोक्ष प्राप्त होता है सो यह नियम तीर्थंकरोंकी अपेक्षासे समझना चाहिए। तीर्थंकरोके सिवाय अन्य भव्य जीव दो हाथ ऊँचे शरीरवाले होनेपर भी मुक्त हो जाते है। उनकी अपेक्षासे ही सिद्धोकी जघन्य-अवगाहना एकरत्नि (एकहाथ) और आठ अंगुलकी कही गई है।

ઉત્તર—હે શિષ્ય ! આત્મપ્રદેશોને ફેલાવનારા નામકર્મનો અભાવ હોવાથી તથા પ્રદેશ-વત્ત્વ ગુણનો સદ્ભાવ હોવાથી સિદ્ધોના આત્મપ્રદેશ ફેલાતા નથી.

સિદ્ધોના ચરમ શરીરથી ત્રિભાગ ઓછી, એકહાથત્રણસો તેત્રીસ (૩૩૩) ધનુષ અને બત્રીસ (૩૨) આંગળની તથા જઘન્ય એક રત્નિ અને ઉત્કૃષ્ટ આઠ આંગળની અવગાહના હોય છે.

મરૂદેવીના શરીરની અવગાહના સવા પાચસો (૫૨૫) ધનુષ્યની હતી, તેમાંથી ત્રીજો ભાગ ઓછો કરવાથી સાડા ત્રણસો (૩૫૦) ધનુષ્યની અવગાહના થાય છે. કિન્તુ અહીં ઉત્કૃષ્ટ અવગાહના ત્રણસોને તેત્રીસ ધનુષ અને બત્રીસ આગળની બતાવી છે, તેથી વિરોધ સમજવો નહીં, કારણ કે મરૂદેવી હાથી પર આરૂઢ હતી. તેને લીધે યા વૃદ્ધાવસ્થાને કારણે શરીરનુ સંકુચિત થવુ એ સંભવિત છે.

આગમમા જે સંભળાય છે કે—જઘન્ય સાત હાથ ઉચા શરીરવાળાઓને જ મોક્ષ પ્રાપ્ત થાય છે તે નિયમ તીર્થંકરોની અપેક્ષાએ સમજવો જોઇએ તીર્થંકરો સિવાયના બીજા ભવ્ય જીવો બે હાથ ઉચા શરીરવાળા હોવા છતાં પણ મુક્ત થઇ જાય છે. એમની અપે-ક્ષાએ જ સિધ્ધોની જઘન્ય અવગાહના એક રત્નિ અને આઠ આંગળની કહેવામાં આવી છે.

सन्ततिविनिष्क्रान्तः शाश्वतः सिद्धो भवतीत्यर्थः । 'शाश्वत' पदेन चात्र "सम्प्राप्तसिद्धिपदो ह्यात्मा न पुनः संसारित्वमवाप्नोति हेतोरभावात् , न च कारणमन्तरेण कार्योत्पत्तिर्जायते" इति बोधितम् ॥२५॥

उक्तं सुगतिरूपं धर्मफल, सम्प्रति तत् कस्य दुर्लभं भवती ?–तिदर्शति–'सुहसायगस्स०' इत्यादि ।

मूलम्–सुहसायगस्स[1] समणस्स[6], सायाउलगस्स[2] निगामसाइस्स[3] ।
उच्छोलणापहोयस्स[4], दुल्लहा[8] सुगई[7] तारिसगस्स[5] ॥२६॥

छाया—सुखास्वादकस्य श्रमणस्य, शाताकुलस्य निकामशायिनः ।
उत्क्षालनाप्रधौतस्य दुर्लभा सुगतिस्तादृशकस्य ॥२५॥

सुगति की दुर्लभता बतलाते हैं—

सान्वयार्थः––सुहसायगस्स=सुखकी आसक्ति रखनेवाले सायाउलगस्स=सुख के लिए व्याकुल रहनेवाले निगामसाइस्स=मर्यादासे अधिक सोनेवाले उच्छोलणापहोयस्स=शरीरकी विभूषा करनेवाले तारिसगस्स=ऐसे समणस्स=साधुको सुगई=सुगति दुल्लहा=दुर्लभ है ॥२६॥

टीका-सुखास्वादकस्य=सुखस्य=प्राप्तमनोरमशब्दाद्युपभोगस्य आस्वादकः=आसक्त्या ग्राहकस्तस्य, शाताकुलकस्य=शातार्थम् आकुलकः=व्यग्रः उद्विग्नो वा तस्य, निकाम-

---

ऐसे सिद्ध जन्म-जरा-मरण, आधि, व्याधि, बाधा, कलङ्कलीभाव(ससारपरिभ्रमण), गर्भवासके दुःखोसे रहित शाश्वत सिद्ध हो जाते है । यहाँ 'शाश्वत' पदसे यह बोधित किया जाता है कि सिद्धि पदको प्राप्त आत्मा फिर ससार अवस्थाको प्राप्त नहीं होती है, क्योंकि ससारमें आनेके कारणभूत कर्मोंका अभाव है । कारणके विना कार्य की उत्पत्ति नहीं होती ॥२५॥

यहाँ तक धर्मका सुगतिरूप फल कहा यह फल किसे दुर्लभ होता है सो दिखाते है–'सुहसायगस्स' इत्यादि ।

प्राप्त हुए मनोज्ञ शब्दादि उपभोगोको आसक्तिपूर्वक ग्रहण करनेवाले, सुखप्राप्ति के लिए

એવા સિદ્ધો જન્મ-જરા-મરણ, આધિ-વ્યાધિ બાધા, કલંકલીભાવ (સંસાર-પરિભ્રમણ), ગર્ભવાસના દુઃખોથી રહિત શાશ્વત સિદ્ધ થઈ જાય છે અહીં 'શાશ્વત' શબ્દથી એમ બોધિત કરવામાં આવ્યું છે કે સિદ્ધિપદને પ્રાપ્ત થએલો આત્મા ફરી સંસારી અવસ્થાને પ્રાપ્ત થતો નથી, કારણ કે સંસારમાં આવવાના કારણભૂત કર્મોનો અભાવ છે. કારણ વિના કાર્યની ઉત્પત્તિ થતી નથી (૨૫)

અહીં સુધી ધર્મનું સુગતિરૂપ ફળ કહ્યું, એ ફળ કોને દુર્લભ થાય છે તે દર્શાવે છે-સુહસાયગસ્સ ઇત્યાદિ

પ્રાપ્ત થએલા મનોજ્ઞ શબ્દાદિ ઉપભોગોને આસકિતપૂર્વક ગ્રહણ કરનારા, સુખપ્રાપ્તિને

शायिनः=निकामम्=अतिशयितं मध्यवर्त्तियामद्वयादधिकं रात्रौ, निष्कारणं दिवसे वा शेते =स्वपिति तच्छीलो निकामशायी=सूत्रार्थमननादिसमयमुल्लङ्घ्य शयानस्तस्य, उत्क्षालना-प्रधौतस्य=उत्क्षुलनया=प्रक्षालनया प्र=प्रकर्षार्थे=विभूषार्थे धौतानि=उज्ज्वलीकृतानि नयन -वदन-कर-चरण-वस्त्रादीनि येन स तस्य शरीरादिविभूषाकारिण इत्यर्थः। तादृशकस्य=तीर्थ-कराऽऽज्ञाऽनाराधकस्य, श्रमणस्य=श्रमणब्रुवस्य वेशमात्रेण साधोः सुगतिः=सिद्धिलक्षणा गतिः दुर्लभा=दुष्प्रापा 'भवती'-ति शेषः।

'सुखास्वादकस्ये'-त्यनेन सम्प्राप्तमनोज्ञशब्दादिविषयकाऽऽसक्तिर्निराकृता। 'शा-ताकुलकस्ये' त्यनेनाऽप्राप्तसुखव्याक्षिप्तिर्निरस्ता। 'निकामशायिनः' इत्यनेन च प्रमाद-निवृत्तिः सूचिता। 'उत्क्षालनाप्रधौतस्ये'-त्यनेन च ब्रह्मचर्यरक्षार्थं विभूषाऽपाकृता।२६।

एवं तर्हि कस्य मुक्तिः सुलभा ! इति जिज्ञासायामाह--'तवोगुण०' इत्यादि।

मूलम्-तवोगुणपहाणस्य, उज्जुमइ खंतिसंजमरयस्स।
परीसहे जिणंतस्य, सुलहा सुगई तारिसगस्स॥ २७॥

छाया—तपोगुणप्रधानस्य, ऋजुमतेः क्षान्तिसंयमरतस्य।
परीषहान् जयतः, सुलभा सुगतिस्तादृशकस्य॥२७॥

व्याकुल रहनेवाले, दो मध्य प्रहरोसे अधिक रात्रिमें, या कारणविशेष विना दिनमें अर्थात् सूत्रार्थके मनन करनेके समयका उल्लंघन होने तक सोनेवाले, तथा विभूषा के लिऐ आंख, मुख, नख हाथ-पैर वस्त्र आदि को धोनेवाले अर्थात् शरीर को विभूषित करनेवाले, अतः तीर्थंकरकी आज्ञाके विराधक, ऐसे श्रमणको सिद्धिगतिकी प्राप्ति दुर्लभ है।

'सुहसायगस्स' पदसे यह सूचित किया है कि साधुको प्राप्त, शब्दादि विषयोमें आसक्ति नहीं रखनी चाहिए। 'सायाउलगस्स' पदसे अप्राप्त विषयसुखोके लिए आकुल नहीं होना चाहिए, ऐसा सूचित किया है। 'निगामसाइस्स' पदसे प्रमादका परित्याग करना प्रदर्शित किया है। 'उच्छोलणापहोयस्स' पदसे ब्रह्मचर्यके सरक्षणके लिए शरीरको विभूषित करनेका निषेध किया गया है॥२६॥

માટે વ્યાકુળ રહેનારા, બે મધ્ય પ્રહરોથી વધુ રાત્રિમા યા કારણ-વિશેષ વિના દિવસમાં અર્થાત્ સૂત્રાર્થનું મનન કરવાના સમયનું ઉલ્લંઘન થાય ત્યા સુધી સૂનારા તથા વિભૂષા (શોભા) ને માટે આખ, મુખ, નખ હાથ-પગ વસ્ત્ર આદિને ધોનારા અર્થાત્ શરીરને વિભૂષિત કરનારા એટલે કે તીર્થંકરની આજ્ઞાના વિરાધક, એવા શ્રમણને સિદ્ધિગતિની પ્રાપ્તિ દુર્લભ છે

સુહસાયગસ્સ શબ્દથી એમ સૂચિત કરવામા આવ્યું છે કે સાધુએ પ્રાપ્ત શબ્દાદિ વિષયોમાં આસક્તિ રાખવી ન જોઇએ, **સાયાઉલગસ્સ** શબ્દથી અપ્રાપ્ત વિષયસુખોને માટે આકુળ ન થવું જોઇએ એવું સૂચિત કર્યું છે **નિગામસાઇસ્સ** શબ્દથી પ્રમાદને પરિત્યાગ કરવાનુ પ્રદર્શિત કર્યું છે **ઉચ્છોલણાપહોયસ્સ** શબ્દથી બ્રહ્મચર્યના રક્ષણને માટે શરીરને વિભૂષિત કવારને નિષેધ કરવામાં આવ્યો છે (૨૬)

सान्वयार्थः–तवोगुणपहाणस्स=तपरूपी गुणोंको मुख्य समझनेवाले उज्जुमइ=सरल बुद्धिवाले खंतिसंजमरयस्स=क्षान्ति और संयममें लीन परीसहे=परीषहोंको जिणंतस्स=जीतनेवाले तारिसगस्स=ऐसे (श्रमणोंको) सुगई=सुगति सुलहा सुलभ है ॥२७॥

टीका— तपोगुणप्रधानस्य तपति=अन्तर्भावितण्यर्थतया तापयति दहत्यष्टविधं कर्मेति तपः=षष्ठभक्तादि तदेव गुणस्तपोगुणः स प्रधानं=मुख्यो यस्य स तस्य, ऋजुमतेः=ऋज्वी=सरला मति=र्बुद्धिर्यस्य स तस्य, क्षान्तिसंयमरतस्य=क्षान्तिः=कषायनिग्रहः सयमः सावद्यव्यपारोपरतिस्तयोः रतः=तत्परस्तस्य, परीषहान्=अनूकूललक्षणान् जयतः=अभिभवतः, तादृशकस्य=रत्नत्रयाराधकस्य 'श्रमणस्ये' -त्यनुपज्यते; सुगतिः सुलभा ।

'तपोगुणप्रधानस्ये'-त्यनेनेन्द्रिय-नोइन्द्रिविजेतृत्वं सूचितम् । 'ऋजुमते'-रित्यनेन मोक्षार्थिना कपटकदाग्रहरहितेन भवितव्यमिति बोधितम् । 'क्षान्तिसंयमरतस्ये'–त्यनेन' क्षमायुक्त एव संयमः फलदः' इति द्योतितम् । 'परीषहान् जयतः' इत्यनेन च मनःस्थैर्यं शरीरसमत्वपरित्यागश्चेति ध्वनितम् ॥२७॥

यदि ऐसा है तो सुगति किसके लिए सुलभ होती है ? ऐसी जिज्ञासा होने पर कहते हैं- 'तवोगुणपहाणस्स' इत्यादि ।

जो आठ कर्मोंको भस्म करनेवाले षष्ठ अष्टम आदि तप-गुणसे प्रधान है, सरल-बुद्धी है। तथा क्रोधादि कषाय के निग्रह और सावद्य व्यापारके त्याग स्वरूप सयममें लीन है, अनुकूल–प्रतिकूल–परीषहोको जीतनेवाले है, उन मोक्षके मार्ग–रत्नत्रय-के आराधक मुनियोको सिद्धिस्वरूप सुगतिकी प्राप्ति सुलभ है ।

'तवोगुणपहाणस्स' इस पदसे इन्द्रियो तथा मनका जीतना सूचित किया है । 'उज्जुमइ' पदसे यह सूचित किया गया है कि मोक्षार्थीको कपट और कदाग्रहसे रहित होना चाहिए । 'खतिसजमरयस्स' पदसे सूचित होता है कि वही सयम फलदाता होता है जो क्षमासे युक्त हो । 'परीसहे जिणंतस्स' पदसे मनकी स्थिरता शरीरकी ममताका त्याग बतलाया है ॥२७॥

જો એમ છે તો સુગતિ કોને માટે સુલભ હોય છે? એવી જિજ્ઞાસા થતા. કહે છે- तवोगुणपहाणस्स ઇત્યાદિ

જે આઠ કર્મોને ભસ્મ કરનારા છટ્ઠ અટ્ઠમ આદિ તપગુણથી પ્રધ ન છે, સરલ-બુદ્ધિ છે, તથા ક્રોધાદિકષાયના નિગ્રહ અને સાવદ્ય વ્યાપારના ત્યાગસ્વરૂપ સયમમાં લીન છે, અનુકૂળ-પ્રતિકૂળ-પરીષહોને જીતવાવાળા, એવા મોક્ષના માર્ગ રત્નત્રયના આરાધક મુનિઓને સિદ્ધિ સ્વરૂપ સુગતિની પ્રાપ્તિ સુલભ છે

तवोगुणपहाणस्स એ શબ્દથી ઇન્દ્રિયો તથા મનને જીતવાનુ સૂચિત કરેલુ છે उज्जुमइ શબ્દથી સૂચવ્યું છે કે મોક્ષાર્થીએ કપટ અને કદાગ્રહથી રહિત થવુ જોઇએ खतिसंजमरयस्स એ પદથી સૂચિત થાય છે કે તેજ સયમ ફળદાતા થાય છે કે જે ક્ષમાથી યુક્ત હોય परीसहे जिणंतस्स પદથી મનની સ્થિરતા તથા શરીરની મમતાનો ત્યાગ બતાવેલો છે (૨૭)

चारित्रस्य महत्त्वमाह–'पच्छावि ते' इत्यादि ।

११ १० १२ १३ १५ १४
मूलम्–पच्छावि ते पयाया, खिप्पं गच्छंति अमरभवणाइं ।
१ ९ २ ४ ३ ६ ५ ८ ७
जेसि पिओ तवो संजमो य खंती य बंभचेरं च ॥२८॥

छाया—पश्चादपि ते प्रयाताः, क्षिप्रं गच्छन्त्यमरभवनानि ।
येषां प्रियं तपः संयमश्च, क्षान्तिश्च ब्रह्मचर्य च ॥२८॥

चारित्र का महत्त्व बतलाते हैं—

सान्वयार्थ–जेसिं=जिनको तवो=तपस्या संजमो=संयम य=और खंती=क्षमा य=तथा बंभचेरं=ब्रह्मचर्य पिओ=प्रिय है, ते=वे पच्छावि=पश्चात्भी अर्थात् एकवार चारित्र खण्डित हो जानेपर वापस, अथवा वृद्धावस्थामें भी पयाया=आये हुए अर्थात् चढते परिणामोंसे संयम स्वीकार कियेहुए खिप्पं=शीघ्र अमरभवणाइं=स्वर्ग अथवा अपवर्ग–मोक्ष–कोभी गच्छन्ति=प्राप्त हो जाते हैं ॥२८॥

टीका—येषां (श्रमणानां) तपः=अनशनादि द्वादशविधम्, संयमः=सावद्यव्यापारविरतिलक्षणः सप्तदशविधः, क्षान्तिः=अमर्षोत्पादकाऽऽक्षेपवचनादिसहन स्वरूपा, ब्रह्मचर्यं=विषयसेवनपरिहारलक्षणम्, चकाराः समुच्चायार्थाः, प्रियम्=अभीष्टं रुचिरमित्यर्थः ते (श्रमणाः) पश्चादपि=चारित्रखण्डनानन्तरमपि वृद्धत्वेऽपि वा प्रयाताः=प्रवृद्धभावेन गृहीतसंयमाः सन्त आर्द्रकुमार–पुण्डरीकादिवत्, क्षिप्रं=शीघ्रम् अमरभवनम्=न म्रियन्त इत्यमराः=सिद्धा आयुषोऽभावत्, तेषां भवनम्=आलयः सत्ता वा तत् सिद्धक्षेत्रं

चारित्रको महत्त्व दिखाते है–'पच्छावि ते–इत्यादि ।

जिनश्रमणोको अनशन आदि बारह प्रकारका तप, सावद्य व्यापारका त्यागरूप सत्रह प्रकारका सयम, क्रोधजनक आक्षेपपूर्ण वचनोका सहन करनारूप क्षान्ति, सर्वथा मैथुनका परित्याग, ये प्रिय होते है, वे कदाचित् मोहकर्मके उदयसे खण्डित–चारित्र होकर भी, अथवा वृद्ध होनेपर भी चढते परिणामोसे आर्द्रकुमार, पुण्डरीक आदिके समान फिर सयमको ग्रहण करके शीघ्रही अमर भवन–(सिद्धिस्थान अथवा स्वर्गलोक) को प्राप्त होते है ।

'अमरभवन' के दो अर्थ होते है–(१) जहा मृत्यु नहीं होती ऐसा स्थान मोक्ष है, क्यो-

---

ચારિત્રનુ મહત્ત્વ બતાવે છે–**पच्छावि ते०** ઈત્યાદિ

જે શ્રમણોને અનશન આદિ બાર પ્રકારના તપ, સાવદ્ય વ્યાપારના ત્યાગરૂપ સત્તર પ્રકારનો સયમ, ક્રોધજનક અક્ષેપપૂર્ણ વચનોને સહન કરવારૂપ ક્ષાન્ત સર્વથા મૈથુનનો પરિત્યાગ, એ પ્રિય હોય છે, તેઓ કદાચિત મોહકર્મના ઉદયથી ખડિતચારિત્ર થઈને પણ અથવા વૃદ્ધ હોવા છતા પણ ચડતા પરિણામોથી આર્દ્રકુમાર, પુડરીક આદિની પેઠે ફરી સંયમને ગ્રહણ કરીને શીઘ્ર અમરભવન (સિદ્ધસ્થાન અથવા સ્વર્ગલોક) ને પ્રાપ્ત થાય છે

'અમરભવન' ના બે અર્થ થાય છે (૧) જ્યાં મૃત્યુ હોતુ નથી એવુ સ્થાન મોક્ષ

सिद्धस्वरूपं वेत्यर्थः। अथवा न म्रियन्ने अकालमृत्युना इत्यमराः = देवास्तेषां भवनं तत् स्वर्गलोकमित्यर्थः। बहुवचनं चोभयार्थद्योत नार्थम्, गच्छन्ति = यान्ति ॥२८॥

अथवा न म्रियन्ते अकालमृत्युना इत्यमराः = देवास्तेषां भवनं तत् स्व

उपसंहारमाह-'इच्चेयं' इत्यादि।

मूलम्-इच्चेयं छज्जीवणियं, सम्मदिट्ठी सया जए।
दुल्लहं लहित्तु सामन्नं, कम्मुणा न विराहिज्जासि-त्तिबमि २९।

छाया--इत्येतं षड्जीवनिकायं, सम्यग्दृष्टिः सदा यतः।
दुर्लभं लब्ध्वा श्रामण्यं, कर्मणा न विराधयेत् ॥२९॥ इति ब्रवीमि।

उपसंहार करते हैं--

सान्वयार्थः-सम्मदिट्ठी= सम्यक्त्वी मनुष्य सया=सदैव जए=यतनावान् होकर दुल्लहं =दुर्लभ ऐसे सामन्नं=साधुपनेको लहित्तु=प्राप्त करके इच्चेय=इस पूर्वोक्त स्वरूपवाले छज्जीवणियं=षड्जीवनिकाय-छह प्रकारके जीवसमूह-की कम्मुणा=मन वचन कायके व्यापारसे न विराहिज्जासि=विराधना न करे त्तिवेमि=श्रीसुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामीसे कहते हैं कि मैंने भगवान् महावीर स्वामीसे जैसा सुना है वैसा ही तुमसे कहता हूँ।२९।

॥इति चतुर्थाध्ययनस्य शब्दार्थः ॥४॥

टीका-सम्यग्दृष्टिः=सम्यक्-यथाऽवस्थिततत्त्वेनाऽविपर्यस्ता दृष्टिः=तत्त्वरुचिरभिप्रायो वा यस्य स तथोक्तः, सम्यग्दर्शनवानित्यर्थः, सदा=नित्यं यतः=यतनावान् दुर्लभं=दुष्प्रापं, श्रमण्यं=श्रमणभावं लब्ध्वा=सम्प्राप्य इत्येतम्=उक्तलक्षणम्, षड्जीवनिकायं कर्मणा=

कि वहां आयुकर्मका सर्वथा अभाव है, और (२) अमरभवन स्वर्गलोकको भी कहते है, क्योंकि स्वर्गलोकमें अकाल मृत्यु नहीं होती ॥२८॥

उपसहार करते है-'इच्चेयं' इत्यादि।

तत्त्वोंके यथार्थ स्वरूपका श्रद्धान करनेवाला सम्यग्दृष्टि जीव दुर्लभ श्रमणताको प्राप्त करके सदैव पहले कहे हुए स्वरूपवाले षड्जीवनिकायकी मन वचन कायसे एकदेशसे या सर्व देशसे

છે, કારણ કે ત્યા આયુકર્મનો સર્વથા અભાવ હોય છે. અને (૨) અમરભવન સ્વર્ગલોકને પણ કહે છે, કારણ કે સ્વર્ગલોકમા અકાલમૃત્યુ થતુ નથી (૨૮)

ઉપસંહાર કરે છે-ઇચ્ચેયં૰ ઇત્યાદિ

તત્ત્વોના યથાર્થ સ્વરૂપનું શ્રદ્ધાન કરવાવાળો સમ્યગ્દષ્ટિ જીવ દુર્લભ શ્રમણતાને પ્રાપ્ત કરીને સદૈવ પહેલા કહેલાસ્વરૂપવાળા ષડ્જીવનિકાયની મન વચન કાયાથી એકદેશ યા સર્વદેશે કરીને કદાપિ વિરાધના ન કરે પીડા ન ઉપજાવે. શ્રીસુધર્માસ્વામી જંબૂસ્વામીને કહે

मनोवाक्कायव्यापारेण न विराधयेत्=देशतः सर्वतो वा न प्रमर्दयेत् न पीडयेदित्यर्थः। 'इति ब्रवीमी'-ति प्राग्वत् ॥२९॥

इति श्री-विश्वविख्यात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभापा-कलित-ललित-कलापाऽऽलापक-प्रविशुद्ध गद्य-पद्य-नैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-शाहूछत्रपति-कोल्हापुरराजप्रदत्त-जैनशास्त्राचार्य-पद-भूपित-पूज्य-श्रीघासीलालव्रतिविरिचितायां श्रीदशवैकालिकसूत्र-स्याऽऽचारमणिमञ्जूपाख्यायां व्याख्यायां चतुर्थं 'पड्जीवनिकाया'-ऽऽख्यमध्ययनं समाप्तम् ॥४॥

*

कभी विराधना न करे 'पीड़ा न पहुँचावे ॥ श्रीसुधर्मास्वामी जम्बूवामीसे कहते हैं-हे जम्बू ! अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान्श्री महावीरस्वामीसे जैसे मैंने सुना है वैसा ही तुझे कहा है-इत्यादि परले के समान समझ लेना ॥२९॥

इति "पड्जीवनिकाया"-नामक चौथा अध्ययनका हिन्दी भापानुवाद समाप्त ॥४॥

—*—

છે-હે જંબૂ ! અંતિમ તીર્થંકર શ્રી ભગવાન્ મહાવીર સ્વામી પાસેથી જેવુ મે સાભળ્યું છે તેવું જ તને કહ્યુ છે-ઇત્યાદિ પહેલાંની પેઠે સમજી લેવું (૨૯)

ઇતિ "ષડ્જીવનિકાયા" નામક ચોથા અધ્યયનનો ગુજરાતીભાષાનુવાદ સમાપ્ત (૪)

अथ पञ्चमाध्ययनम् ।

गतं चतुर्थाध्ययनम्, तत्र च षड्जीवनिकायरक्षणलक्षणो भिक्षोराचारः प्रतिपादितः, स हि शरीरस्थित्यधीनपालनकः, शरीरं चाक्षम्रक्षणमन्तरेण शकटमिव इङ्गालं विना बाष्पयन्त्रमिव जठरानलतापव्याधिवधोपशमनौषधीभूतमाहारमन्तरेण वर्त्तितुमक्षममतोऽस्मिन् पञ्चमाध्ययने 'संयमिना कदा, कस्मात्, केन विधिना, कीदृगाहारो ग्रहीतव्यः !' इति सविस्तरं प्रतिपादयितुमुपक्रमते—

यद्वा—चतुर्थाध्ययने मूलगुणाः सन्दर्शिताः, इह तु मूलगुणपोषकोत्तरगुणान्तर्गता पिण्डैषणाऽभिधीयते । पिण्डैषणा च पिण्डस्य-समयभाषया प्रसिद्धस्यान्नपानस्यैषणारूपा, तत्र पिण्डनं पिण्डः=एकत्र समुदितबहुपदार्थसमुदायः, स द्विविधः—द्रव्यपिण्डो भावपिण्ड-

---

पांचवां अध्ययन ।

चौथे अध्ययनमें षड्जीवनिकायकी रक्षा—रूप भिक्षुका आचार प्रतिपादित किया गया है । इस आचारका पालन शरीरकी स्थिति पर निर्भर है । जैसे विना औंगन (वागण) के गाडी नहीं चल सकती, विना कोयलेके रेलगाडी नहीं चल सकती, उसी प्रकार जठराग्निके संताप रूप व्याधिकी बाधाको शान्त करनेके लिए औषधिके समान आहारको ग्रहण किये विना शरीरकी स्थिति नहीं रह सकती । इसलिए पाचवे अध्ययनमें विस्तारसे यह प्रतिपादन करते है कि 'सयमीको कब, किससे किस विधिसे, और किस प्रकारका आहार ग्रहण करना चाहिये ?' ।

अथवा—चौथे अध्ययनमें मूल गुणोका वर्णन किया गया है, इस अध्ययनमें मूलगुणोको पुष्ट करनेवाले उत्तर गुणोमेंसे पिण्डैषणाका कथन करते हैं । 'पिण्ड' शास्त्रीय भाषामें अन्न—पान नामसे प्रसिद्ध है, उसकी एषणा करना 'पिण्डैषणा' है । एक स्थानपर बहुत पदार्थोंका समुदाय होना पिण्ड कहलाता है । पिण्ड दो प्रकारका है—(१) द्रव्यपिण्ड और (२) भावपिण्ड अशन

પાંચમું અધ્યયન.

ચોથા અધ્યયનમા ષડ્જીવનિકાયની રક્ષારૂપ ભિક્ષુનો આચાર પ્રતિપાદિત કરવામા આવ્યો છે આ આચારનું પાલન શરીરની સ્થિતિ પર નિર્ભર છે જેમ ઉંજણુ વિના ગાડુ ચાલી શકતું નથી અને કોયલા વિના રેલગાડી ચાલી શકતી નથી તેમ જઠરાગ્નિના સંતાપ રૂપ વ્યાધીની બાધાને શાન્ત કર્યા વિના શરીરની સ્થિતિ રહી શકતી નથી. તે માટે પાચમા અધ્યયનમાં વિસ્તારથી એ પ્રતિપાદન કરવામા આવ્યુ છે કે 'સંયમીએ કયારે, કોની પાસેથી, કેવી વિધિથી અને કેવા પ્રકારનો આહાર ગ્રહણ કરવો જોઇએ ?

અથવા—ચોથા અધ્યયનમા મૂળ ગુણોનું વર્ણન કરવામા આવ્યું છે, આ અધ્યયનમા મૂળ ગુણોને પુષ્ટ કરનારા ઉત્તર ગુણોમાથી પિંડૈષણાનુ કથન કરવામા આવે છે 'પિંડ' શબ્દ શાસ્ત્રીય-ભાષામા અન્નપાનના નામે ઓળખાય છે, તેની એષણા કરવી એ પિંડૈષણા કહેવાય છે. એક સ્થાન પર ઘણા પદાર્થોનો સમુદાય હોવો એ 'પિંડ' કહેવાય છે, પિંડ બે પ્રકારના હોય છે, (૧) દ્રવ્ય–પિંડ અને (૨) ભાવપિંડ અશન આદિને દ્રવ્યપિંડ કહે છે

श्च, तत्र क्षुधाविघातकत्वेनाशनादिरूपो द्रव्यपिण्डः, कर्मविघातकत्वेन ज्ञानादिलक्षणः प्रशस्तभावपिण्डः, अप्रशस्तभावपिण्डस्त्वसंयमादिरूपः प्रकृतानुपयोगित्वादुपेक्षितः। द्रव्यपिण्डो हि प्रशस्तभावपिण्डपरिपोषकस्तं विना तस्यासम्पाद्यत्वात्, तथाहि–ज्ञानाद्यात्मकप्रशस्तभावपिण्डस्याराधना शरीरस्थित्यधीना, शरीरपरिस्थितिश्चाहारं विना न यथावत्साधनायालम्, आहारादिकश्च द्रव्यपिण्ड एवेति सिद्धं द्रव्यपिण्डस्य प्रशस्तभावपिण्डपरिपोषकत्वम् तस्य च सावद्यनिरवद्यभेदाभ्यां द्वैविध्येऽपि संयमिभिर्निरवद्यपिण्ड एव ग्राह्य इति तदेषणाधिकारः–'संपत्ते' इत्यादि।

मूलम्–संपत्ते[2] भिक्खकालम्मि[1], असंभंतो[3] अमुच्छिओ[4]।
इमेण[5] कमजोगेण[6], भत्तपाणं[7] गवेसए[8] ॥१॥

छाया–सम्प्राप्ते भिक्षाकालेऽसम्भ्रान्तोऽमूर्च्छितः।
अनेन क्रमयोगेन, भक्तपानं गवेषयेत् ॥१॥

॥अथ पञ्चमाध्ययनम् ॥

सान्वयार्थः–मुनिको आहारपानी लेनेकी विधि कहते है–भिक्खकालम्मि=गोचरीका समय संपत्ते=होनेपर असंभंतो=उद्वेगरहित (और) अमुच्छिओ=आसक्तिरहित हो-

---

आदिको द्रव्यपिण्ड कहते हैं, क्योंकि उससे क्षुधाका नाश होता है। ज्ञानादि प्रशस्त–भावपिण्ड है, क्योकि वह कर्मोंका नाश करनेवाला है, अप्रशस्त–भावपिण्ड असयमादिरूप है, उसका यहाँ अधिकार नहीं है।

द्रव्यपिण्ड, प्रशस्त–भावपिण्डका पोषक है, क्योंकि उसके विना प्रशस्त–भावपिण्डकी प्राप्ति नहीं होसकती, अर्थात् ज्ञानादिरूप प्रशस्त–भावपिण्डकी आराधना शरीरकी स्थितिके अधीन है, और शरीरकी स्थिति आहारके विना नहीं हो सकती। आहार आदि द्रव्यपिण्ड ही है। इससे यह सिद्ध हुआ कि द्रव्यपिण्ड प्रशस्त भावपिण्डका पोषक है। द्रव्यपिण्ड, सावद्य भी होता है और निरवद्य भी होता है। सयमीको निरवद्य पिण्ड ही ग्रहण करना चाहिए; इसलिए द्रव्यपिण्डकी एषणाका अधिकार आरम्भ किया जाता है 'सपत्ते' इत्यादि।

કારણ કે તેથી ક્ષુધાનો નાશ થાય છે જ્ઞાનાદિ એ પ્રશસ્ત–ભાવપિંડ છે, કારણ કે તે કર્મોનો નાશ કરવાવાળુ છે. અપ્રશસ્ત–ભાવપિંડ અસયમાદિરૂપ છે, એનો અહી અધિકાર નથી

દ્રવ્યપિંડ એ પ્રશસ્ત–ભાવપિંડનો પોષક છે કારણ કેતેના વિના પ્રશસ્ત–ભાવપિંડની પ્રાપ્તિ થઇ શકતી નથી. અર્થાત્ જ્ઞાનાદિ–રૂપ પ્રશસ્ત–ભાવપિંડની આરાધના શરીરની સ્થિતિને અધીન છે, અને શરીરની સ્થિતિ આહાર વિના હોઈ શકતી નથી આહારાદિ દ્રવ્યપિંડજ છે તેથી એ સિદ્ધ થયુ કે દ્રવ્યપિંડ પ્રશસ્ત ભાવપિંડનો પોષક છે દ્રવ્યપિંડ સાવદ્ય પણ હોય છે અને નિરવદ્ય પણ હોય છે. સયમીએ તો નિરવદ્યપિંડ જ ગ્રહણ કરવો જોઇએ એટલા માટે દ્રવ્યપિંડની એષણાનો અધિકાર આરંભવામા અવે છે–संपत्ते भिक्खकालम्मि ઇત્યાદિ.

कर इमेण कमजोगेण=इस आगे बताई जानेवाली विधिसे भत्तपाणं=भात-पानीकी गवे-सए=गवेषणा करे ॥

टीका--भिक्षाकाले=गोचरीसमये, सम्प्राप्ते=स्वाध्यायाद्यनन्तरं द्रव्यक्षेत्रकालभावानुकूलतया समायाते.'मुनि'-रिति शेषः, असम्भ्रान्तः=यत्किञ्चिन्निमित्तजनितचित्तव्याक्षेपजन्यत्वरारहितः-अनाक्षिप्तचित्त इत्यर्थः, इर्योपयोगवानिति भावः, 'कदा कुत्र वाऽशनादिप्राप्तिर्भविष्यती' त्यादिचिन्ताऽऽहितचाञ्चल्यरहित इति यावत् , अमूर्च्छितः=आहारादौ मनोरमशब्दादिविषयेषु वा नासक्तः सन् अनेन=वक्ष्यमाणेनैतदध्ययनव्यावर्णितस्वरूपेण क्रमयोगेन=प्रकारेण भक्तपानं=भक्तं च पानं चेत्यनयोः समाहारे भक्तपानम् ,=भक्तम् ,=ओदनादिकम् , पानं=द्राक्षादिजलं मुनियोग्यं गवेषयेत्=अन्वेषयेत् (अन्विच्छेत्) । 'संपत्ते' इत्यनेन मुनिना यथासमयं कार्य सम्पादनीय' मित्याविष्कृतम् ।'असंभंतो' इत्यतो मनः स्थैर्यं विधेयमित्युपदिष्टम् । 'अमुच्छिओ' इत्यनेन विषयगृध्नुत्वमपाकृतम् ॥१॥

गवेषणाविधिमाह-'से गामे वा' इत्यादि ।

मूलम्-से गामे वा नयरे वा, गोयरग्गगओ मुणी ।
चरे मंदमणुव्विग्गो, अव्वक्खित्तेण चेयसा ॥२॥

द्रव्यक्षेत्रकालभावके अनुसार स्वाध्याय आदि क्रियाओंके पश्चात् जब गोचरीका समय हो तब मुनि किसी कारणवश उत्पन्न हुए चित्तविक्षेपजन्य भ्रान्तिरहित होकर, अर्थात् ईर्या (गमन में उपयोग रखकर, अथवा 'कब और कहाँ अशन आदिकी प्राप्ति होगी ?' इस प्रकारकी चिन्ताजन्य चंचलतासे रहित होकर आहार तथा मनोज्ञ शब्दादि विषयोंमें आसक्त न होता हुआ, जैसा इस अध्ययनमें वर्णन किया गया है उस विधिसे, मुनिके योग्य ओदन आदि भक्त तथा दाख आदिका धोवनरूप पानकी गवेषणा करे ।

गाथामे 'सपत्ते' पदसे यह सूचित किया है कि मुनिको समय पर ही कार्य करना चाहिए। असभतो' पदसे यह प्रगट किया है कि साधुको मनकी स्थिरता रखनी चाहिए । 'अमुच्छि-

દ્રવ્ય-ક્ષેત્ર-કાળ-ભાવને અનુસાર સ્વાધ્યાયાદિ ક્રિયાઓની પછી જ્યારે ગોચરીનો સમય થાય ત્યારે મુનિ કોઇ કારણવશ ઉત્પન્ન થએલા ચિત્તવિક્ષેપથી જન્મેલી ભ્રાન્તિથી રહિત થઇને અર્થાત્ ઇર્યા (ગમન) માં ઉપયોગ રાખીને, અથવા ક્યારે અને ક્યાં અશન આદિની પ્રાપ્તિ થશે ? એ પ્રકારની ચિંતાજન્ય ચંચલતાથી રહિત થઇને આહાર તથા મનોજ્ઞ-શબ્દાદિ વિષયોમા આસક્ત ન થતા. આ અધ્યયનમાં વર્ણવ્યા પ્રમાણેની વિધિથી, મુનિને યોગ્ય ઓદન આદિ ભકત તથા દ્રાક્ષ આદિના ધોવણરૂપ પાનની ગવેષણા કરે.

ગાથામાં संपत्ते શબ્દથી એમ સૂચિન કરવામાં આવ્યું છે કે મુનિએ સમય પર જ કાર્ય કરવું જોઇએ असंभतो શબ્દથી એમ પ્રકટ કર્યું છે કે સાધુએ મનની સ્થિરતા રાખવી જોઇએ अमुच्छिओ શબ્દથો વિષયોમા આસકિતનુ નિરાકરણુ કરવામાં આવ્યું છે (૧)

छाया—स ग्रामे वा नगरे वा, गोचराग्रगतो मुनिः ।
चरेन्मन्दमनुद्विग्नोऽव्याक्षिप्तेन चेतसा ॥२॥

सान्वयार्थः—से=वह मुणी=साधु गामे=गाँव वा=अथवा नगरे=नगरमें वा=निश्चयसे गोयरग्गगओ=निर्दोष भिक्षाके लिए गया हुआ अणुव्विग्गो=उद्वेगरहित होता हुआ अव्वक्खित्तेण=शान्त–स्थिर चेयसा=चित्तसे मंद=इर्यासमिति सोधता हुआ चरे=जावे ॥२॥

टीका—से=अथ = पिण्डगवेषणासमये, यद्वा 'से' इति तच्छब्दस्य प्रथमैकवचनरूपं तेन सः=प्रक्रान्तः मुनिः = मुणति=प्रतिजानीते सर्वसावद्यव्यापारोपरतिमिति, मन्यते=जानाति जिनाज्ञयाऽनेकान्तात्मकजीवाऽजीवादिपदार्थसार्थमिति वा [1]मुनिः=अनगारः, स च द्विविधः-द्रव्यतो भावतश्च, तत्र द्रव्यतः–मुनिकर्त्तव्यक्रियाकलापविकलो लिङ्गमात्रोपजीवी, भावतस्तु-मोहनीयकर्मक्षय-क्षयोपशमसमुद्भूतज्ञानादिरत्नत्रयप्रकटीभूतात्मस्वरूपः, प्रकृते च भावमुनिः प्रसङ्गगम्यः ।

१ आद्ये'मुण प्रतिज्ञाने' अस्मादौणादिक इन् , पृषोदरादित्वाणस्य नः । द्वितीये-'मन ज्ञाने' इति धातोः 'मनेरुच्चे'-स्यौणादिकसूत्रेण इन्प्रत्ययः स च कित् अकारस्योकारादेशश्च । यद्वा 'मुणी' इति प्राकृतसमः संस्कृत एव, शब्दसिद्धिरप्युक्तैव, तदा छायायां मुणिः', इत्यपि समावेशमर्हति ।

ओ' पदसे विषयोंमें आसक्तिका निराकरण किया गया है ॥१॥

अब गवेषणाकी विधि बताते है–'से गामे वा' इत्यादि ।

'मुनि' शब्दके अनेक अर्थ है–(१) जो समस्त सावद्य व्यापारके त्यागकी प्रतिज्ञा करते है उन्हे मुनि कहते है । (२) जिनेन्द्र भगवान् की आज्ञाके अनुसार जीव अजीव आदि पदार्थों को अनेकान्तस्वरूप जानने वाले मुनि कहलाते हैं । मुनि दो प्रकारके होते है–(१) द्रव्यमुनि और (२) भावमुनि । मुनियोके आचार का पालन न करनेवाला मुनिवेषधारी द्रव्यमुनि कहलाता है। मोहनीय कर्मके क्षय और क्षयोपशमसे उत्पन्न हुए सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रयके द्वारा जिनकी आत्माका स्वरूप प्रकट हो गया है उन्हे भावमुनि कहते है । यहां भावमुनिका अधिकार समझना चाहिए ।

હવે ગવેષણાની વિધિ બતાવે છે–से गामे वा० ઇત્યાદિ

મુનિ શબ્દના અનેક અર્થો છે (૧) જે સર્વ સાવદ્ય વ્યાપારના ત્યાગની પ્રતિજ્ઞા કરે છે–તેને મુનિ કહે છે (૨) જિનેન્દ્ર ભગવાનની આજ્ઞા અનુસાર જીવ અજીવ આદિ પદાર્થો ને અનેકાન્તસ્વરૂપ જાણવાવાળા મુનિ કહેવાય છે મુનિ બે પ્રકારના હોય છે (૧) દ્રવ્યમુનિ અને (૨) ભાવમુનિ મુનિઓના આચારનું પાલન ન કરનારા મુનિવેષધારી દ્રવ્ય મુનિ કહેવાય છે, મોહનીય કર્મના ક્ષય અને ક્ષયોપશમથી ઉત્પન્ન થએલા સમ્યગ્જ્ઞાન સમ્યગ્દર્શન અને સમ્યક્ચારિત્રરૂપ રત્નત્રયના દ્વારા જેના આત્માનુ સ્વરૂપ પ્રકટ થઇ ગયું છે. તેને ભાવમુનિ કહે છે અહીં ભાવમુનિનો અધિકાર સમજવો જોઇએ,

ग्रामे वा = अथवा नगरे, द्वितीय-'वा'-शब्दात् खेटकर्वटादौ, गोचराग्रगतः गोरिव चरणं = यथायोग्यं स्वल्पस्वल्पग्रहणं गोचरः, अग्रः = आधाकर्मादिदोपरहिततया श्रेष्ठः, स चासौ गोचरश्चेति गोचराग्रः, आर्षत्वाद्विशेषणपूर्वनिपाताभावः, अग्रगोचर इत्यर्थः, तत्र गतः = वर्त्तमानः गोचराग्रगतः अव्याक्षिप्तेन = स्थिरेण भिक्षागतसकलदोपोपयोगवतेत्यथः, चेतसा = चित्तेन अनुद्विग्नः = अलाभादिपरीपहजनितक्षोभरहितः, मन्दं = शनैर्यथास्यात्तथा ईर्यापथं शोधयन्नित्यर्थः, चरेत् = गच्छेत् ।

'गोयरग्गगओ' इत्यनेन नवकोटिविशुद्धाहारो ग्रहीतव्य इति सूचितम् । 'अव्वक्खित्तेण चेयसा' इत्यनेन चित्तस्थैर्यणैव भिक्षादिशुद्धिर्भवतीति ध्वनितम् । 'अणुव्विग्गो' इत्यतः परीपहसहनसामर्थ्यं बोधितम् ॥२

गोचरीगमनप्रकारानाह-'पुरओ' इत्यादि ।

मूलम्-पुरओ[3] जुगमायाए[1], पेहमाणो[4] महिं[2] चरे[10] ।
वज्जंतो[8] बीयहरियाइं[5], पाणे[6] य[8] दगमट्टियं[7] ॥३॥

छाया—पुरतो युगमात्रया, प्रेक्षमाणो महीं चरेत् ।
वर्जयन् बीजहरितानि, प्राणांश्च दकमृत्तिकाम् ॥३॥

गोचरी में चलने की विधि कहते हैं—

सान्वयार्थः-पुरओ = सामने जुगमायाए = धूसर प्रमाण दृष्टिसे महिं = पृथिवी-

---

वह भावमुनि पिण्ड-गवेषणका समय होने पर ग्राम, नगर खेडा, कर्वट आदिमें यथायोग्य थोडा-थोडा निर्दोष आहार ग्रहण करता हुआ भिक्षाके समस्त दोषोका उपयोग रखनेवाले अर्थात् अव्याक्षिप्त चित्तसे अलाभ आदि परीषह जनित क्षोभसे रहित होकर ईर्यापथ शोधते हुए मन्दगति से चले ।

गोयरग्गगओ' पदसे यह सूचित हुआ है कि साधुको नवकोटिविशुद्ध आहार लेना चाहिए । 'अव्वक्खित्तेण चेयसा' इससे यह द्योतित होता है कि चित्तको स्थिरतासे ही भिक्षाकी शुद्धि निभ सकती है । 'अणुव्विग्गो' पदसे परीषह सहनेका सामर्थ्य प्रगट किया है ॥२॥

એ ભાવ મુનિ પિંડગવેષણાનો સમય થતા ગ્રામ, નગર, ગામડું, કર્બટ આદિમાં યથાયોગ્ય થોડો થોડો નિર્દોષ આહાર ગ્રહણ કરતા કરતા, ભિક્ષાના બધા દોષોનો ઉપયોગ રાખવા વાળા અર્થાત્ અવ્યાક્ષિપ્ત-ચિત્તથી અલાભ આદિ પરીષહથી ઉત્પન્ન થતા ક્ષોભથી રહિત થઇને ઇર્યાપથ શોધતા મંદ ગતિએ ચાલે.

ગોયરગ્ગગઓ શબ્દથી એમ સૂચિત થયું છે કે સાધુએ નવકોટિએ વિશુદ્ધ આહાર લેવો જોઇએ અવ્વક્ખિત્તેણ ચેયસા એથી એમ પ્રકટ થાય છે કે ચિત્તની સ્થિરતાથી જ ભિક્ષાની શુદ્ધિ નભી શકે છે, અણુવ્વિગ્ગો શબ્દથી પરીષહ સહવાનું સામર્થ્ય પ્રકટ કર્યું છે. (૨)

को पेहमाणो=देखता हुआ बीयहरियाइं=बीज, हरी, पाणे=द्वीन्द्रियादिक प्राणी य= और दगमट्टियं=सचित्त जल तथा सचित्त मिट्टीको वज्जंतो=वर्जता हुआ चरे= चले ॥३॥

टीका—युगमात्रया=ज्सरप्रमाणया तत्प्रमाणप्रसृतयेत्यर्थः 'दृष्टये'ति शेषः। वस्तुतस्तु 'क्वचिद्द्वितीयादेः' इति नियमादत्र द्वितीयार्थे षष्ठी, तेन 'जुगमायाए' इत्यस्य 'युगमात्रा' मितिच्छाया, तथाच-युगमात्रां= प्रोक्तार्थां स्वशरीरप्रमितामिति भावः, महीं= भूमिं मार्गभूमिमिति भावः, पुरतः=स्वाग्रतः प्रेक्षमाणः=सम्यगवलोकयन् बीजहरितानि= प्रसिद्धानि, प्राणान्=द्वीन्द्रियादिप्राणिनः, दकमृत्तिकां=सचित्तं जलं मृत्तिकां च वर्जयन्= परिहरन् चरेत्=गच्छेत् ॥३॥

मूलम्—ओवायं विसमं खाणुं, विजलं परिवज्जए ।
संकमेण न गच्छिज्जा विज्जमाणे परक्कमे ॥४॥

छाया—अवपातं विषमं स्थाणु, विजलं परिवर्जयेत् ।
संक्रमेण न गच्छेत्, विद्यमाने पराक्रमे ॥४॥

सान्वयार्थः—परक्कमे=दूसरे मार्गके विज्जमाणे=होनेपर (साधु) ओवाय=जिस मार्गमें गिर पड़नेकी शंका हो विसमं=खड्डे आदिके कारण विकट हो खाणुं=काटे हुए धान्यके डठलोसे युक्त (और) विजलं=कीचड़वाला हो उस मार्गको परिवज्जए=छोड़े, तथा संकमेण=कीचड आदिके कारण जिस मार्गमें ईंट काठ आदि लांघनेके लिए रखे हों उससे भी न गच्छेज्जा=नहीं जावे ॥४॥

टीका—'ओवायं०' इत्यादि । 'परक्कमे' इति आक्रमणमाक्रमः=अवलम्बनं परश्चासावाक्रमश्च पराक्रमः परस्याऽऽक्रमो वा पराक्रमस्तस्मिन्, यद्वा 'पराक्रमे' इतिच्छाया, ततश्च परश्चासौ क्रमश्च परक्रमस्तस्मिन् 'सर्वथा गत्यन्तरे' इत्यर्थस्तथा च-पराक्रमे अथवा

गोचरीके लिए गमनविधि बताते है—'पुरओ' इत्यादि ।

अपने शरीर प्रमाण रास्ता सामने भली भाँति अवलोकन करता हुआ, बीज, वनस्पतिकाय, द्वीन्द्रिय आदि प्राणी सचित्तजल और सचित्त मृत्तिकाको बचाता हुआ गमन करे ॥३॥

'ओवायं० इत्यादि । पर अवलम्बको यहाँ पर परक्रम अथवा पराक्रमसे कहा गया है अत एव अर्थ यह है कि दूसरे मार्गके रहते हुए, जिसमें चलनेसे गिर पडनेकी संभावना हो, दुर्गम

ગોચરીને માટે ગમનવિધિ બતાવે છે-પુરઓ ઇત્યાદિ

પોતાના શરીર પ્રમાણુ રસ્તા સામે સારી રીતે અવલોકન કરતાં, બીજ, વનસ્પતિકાય, દ્વીન્દ્રિયાદિ પ્રાણી, સચિત્ત જળ અને સચિત્ત માટીને બચાવી લેતાં ગમન કરે (૩)

ઓવાયં૦ ઇત્યાદિ પર અવલંબન અહીં પરાક્રમ અથવા પરાક્રમથી કહેવામાં આવેલ છે, એથી એવો અર્થ થાય છે કે બીજો માર્ગ હોવા છતાં, જેમાં ચાલવાથી પડી જવાની

परक्रमे उपाये विद्यमाने=वर्त्तमाने सति अवपातः[1]=स्खलनस्थानं सत्यप्यालोके येन सञ्चरणे स्खलनमवश्यसम्भाव्यं तद्, विषमं[2]=दुर्गमत्वाद्विकट मार्गं स्थाणुं=लूनसस्यादिस्थुडं तद्बहुलं क्षेत्रादिमार्गमित्यर्थः, विजलं=विगतं जलं यस्मात्तत् तथोक्तं पङ्किलस्थलं परिवर्जयेत्=परित्यजेत्, संक्रमेण=संक्रम्यते=समुल्लङ्घ्यते जलकर्दमादिबहुलविषमस्थानं येन स संक्रमः=इष्टका-काष्ठ-पाषाणादिनिर्मितमार्गविशेषस्तेन न गच्छेत्=न सञ्चरेत्। 'विज्जमाणे परक्कमे' इत्यनेनोपायान्तराभावे नायं प्रतिषेध इत्यपवादः सूचितः ॥४॥

तत्र गच्छतो हानिमाह-'पवडते' इत्यादि ।

मूलम्-पवडंते[2] व[3] से[6] तत्थ[1] पक्खलंते[4] व[5] संजए[7] ।
हिंसेज्ज[12] पाणभूयाइं[11] तसे[8] अदुव[10] थावरे[9] ॥५॥

छाया—प्रपतंश्च स तत्र प्रस्खलँश्च संयतः ।
हिंस्यात्प्राणभूतानि, त्रसान् अथवा स्थावरान् ॥५॥

होनेके कारण विकट हो, जिसमें काटे हुए ज्वार आदिके डठल हो, और जो कीचड़वाला हो, जल-कीचड आदिकी अधिकता होनेसे लाघनेके लिए ईंट, काष्ठ, पत्थर आदि रखे हुए हों, उस विषम मार्गसे गमन न करे ।

'विज्जमाणे परक्कमे' इस पद से यह सूचित किया है कि दूसरा मार्ग न हो तो यह निषेध नहीं है-अर्थात् अन्य मार्गके अभावमें ऐसे मार्गसे भी जा सकते हैं ॥४॥

ऐसे मार्गमें चलनेसे होनेवाली हानी बताते है-'पवडंते०' इत्यादि ।

यदि अवपात आदि पूर्वोक्त मार्गोंमें गमन करनेसे गिर पड़े या रपट जावे तो द्वीन्द्रिय आदि त्रस या पृथिवीकायिक आदि स्थावर जीवोकी अथवा दोनो प्रकारके जीवोकी हिंसा होती है तथा गिरने आदिसे आत्मविराधना भी अवश्य होती है ॥५॥

સંભાવના હોય, દુર્ગમ હોવાને લીધે વિકટ હોય, જેમા કાપેલી જુવાર આદિનાં ઠુંઠા હોય, અને જે કીચડવાળો હોય, પાણી-કીચડ વગેરે વધુ હોવાના કારણે ઓળંગવા માટે ઈંટ, લાકડું કે પત્થર આદિ રાખેલા હોય. એવા વિષમ માર્ગથી ગમન ન કરે

વિજ્જમાણે પરક્કમે એ શબ્દોથી એમ સૂચવ્યુ છે કે બીજો માર્ગ ન હોય તો એનો નિષેધ નથી-અર્થાત્ અન્ય માર્ગને અભાવે એવા માર્ગથી પણ જઈ શકાય છે. (૪)

એવા માર્ગમા ચાલવાથી થનારી ભીતિ બતાવે છે પવડંતે૦ ઇત્યાદિ.

જો અવપાત આદિ પૂર્વોકત માર્ગોમા ગમન કરવાથી પડી જાય યા લપસી જાય તો દ્વીન્દ્રિયાદિ ત્રસ યા પૃથ્વીકાયિક આદિ સ્થાવર જીવોની અથવા બેઉ પ્રકારના જીવોની હિંસા થાય છે, તથા પડવાથી આત્મવિરાધના પણ અવશ્ય થાય છે (૫)

---

१ गर्त्तमयतया संभावितस्खलनकम् ।

२ उन्नतावनतत्वाद्दुर्गमम् ।

पूर्वोक्त मार्गसे जाने मे दोष बताते हैं—

सान्वयार्थः—से=उस मार्गसे जानेवाला वह संजए=साधु व=यदि तत्थ=वहां पवडंते=गिर जाय व=अथवा पक्खलंते=रपट पड़े तो तसे=त्रस-द्वीन्द्रियादि अदुव=अथवा थावरे=स्थावर-पृथिव्यादि पाणभूयाइं=प्राणी भूतोंकी हिंसेज्जा=हिंसा करे। अर्थात् ऐसे मार्गमें जानेसे साधुको आत्म और संयम दोनोंकी विराधनाका संभव है ॥५॥

टीका—तत्र=तस्मिन् अवपातादौ प्रपतन् प्रस्खलँश्च स संयतः=साधुः त्रसान्=द्वीन्द्रियादिलक्षणान्, स्थावरान्=पृथिव्याद्येकेन्द्रियान्, अथवा प्राणभूतानि=त्रसस्थावरोभयविधान् प्राणिनो हिंस्यात्=मर्दयेत् पीडयेदिति यावत्। पतनादिना चाऽऽत्मविराधनाद्यपि नियतं भवतीति भावः ॥५॥

१ ७ ८ ९ ३ २
मूलम्—तम्हा तेण न गच्छिज्जा, संजए सुसमाहिए।
६ ४ ५ १० ११
सइ अन्नेण मग्गेण, जयमेव परक्कमे ॥६॥

छाया—तस्मात् तेन न गच्छेत्, संयतः सुसमाहितः।
सत्यन्यस्मिन् मार्गे, यतमेव पराक्रामेत् ॥६॥

सान्वयार्थः—तम्हा=इसलिए सइ अन्नेण मग्गेण=दूसरे मार्गके होते हुए सुसमाहिए=भगवान्‌की आज्ञाका आराधक संजए=साधु तेण=उस मार्गसे न गच्छिज्जा=नहीं जावे, (अगर दूसरा मार्ग न हो तो साधु उसी मार्गसे) जयमेव=जीवोंकी यतना करता हुआ परक्कमे=गमन करे ॥ ६ ॥

टीका—'तम्हा' इत्यादि। तस्मात्=त्रसस्थावरादिहिंसाभयाद्धेतोः सुसमाहितः=सकलप्राणिगणसरक्षणप्रवणान्तःकरणः संयतः अन्यस्मिन् मार्गे सति=विद्यमाने तेन=गर्त्तादिमार्गेण न गच्छेत्। अन्यमार्गाभावे तु तेनापि गर्त्तादिमार्गेणापि यतमेव=सयत्नमेव यतनयैवे त्यर्थः, पराक्रामेत्=गच्छेत्। 'संजए' इत्यनेनाऽनगारस्य यत्नवत्त्वम्, 'सुसमाहिए' इत्यनेन चोपयोगवत्त्वं प्रतिपादितम्। अत्रेदमवधेयम्—चतुर्थगाथया प्रतिज्ञातेऽर्थे

'तम्हा' इत्यादि। त्रस स्थावरकी विराधनाके भयसे समस्त प्राणियोंकी रक्षा करनेकी इच्छावाले मुनि अन्य मार्ग होनेपर उस खड्डे आदिवाले मार्गसे गमन न करे। दूसरा मार्ग न हो तो उसी मार्गसे यतनापूर्वक गमन करे। 'संजए' पदसे साधुकी यतनापरायणता और 'सुसमाहिए' पदसे उपयोगवत्ता प्रगट की है।

तम्हा ઇત્યાદિ. ત્રસ સ્થાવરની વિરાધનાના ભયથી બધા પ્રાણીઓની રક્ષા કરવાની ઇચ્છાવાળા મુનિ બીજો માર્ગ હોવા છતા એ ખાડા આદિવાળા માર્ગથી ગમન કરે નહિ બીજો માર્ગ ન હોય તે એ માર્ગે યતનાપૂર્વક ગમન કરે संजए શબ્દથી સાધુની યતના પરાયણતા અને सुसमाहिए શબ્દથી ઉપયોગવત્તા પ્રકટ કરવામા આવી છે અહીં એ વાત સમજવાની છે કે, ચોથી પાચમી અને છઠ્ઠી એ ત્રણ ગાથાઓથી પ્રકાર દર્શાવવામાં આવ્યો

पञ्चमगाथया हेतुमुपन्यस्यानया षष्ठगाथयोपसंहारः कृत इति परार्थानुमानप्रकारो दर्शितो गाथाभिराभिस्तिसृभिरिति ६।

पृथिवीकाययतनामाह—'इंगालं' इत्यादि ।

५ ६ ८ ९ १० ७
मूलम्— इंगालं छारियं रासिं, तुसरासिं च गोमयं ।
२ ३ १ ४ ११
ससरक्खेहिं पाएहिं, संजओ तं नइक्कमे ॥७॥

छाया—अङ्गारं क्षारिकं राशिं, तुषराशिं च गोमयम् ।
सरजस्काभ्यां पादाभ्यां, संयतस्तं नातिक्रामेत् ॥७॥

पृथिवीकाय की यतना कहते हैं—

सान्वयार्थः-संजओ=साधु ससरक्खेहिं=सचित्त रजसे भरे हुए पाएहिं=पैरोंसे तं=उस इंगालं=कोयलेके तथा छारियं=राखके रासिं=पुञ्ज-ढेर-को तुसरासिं=भूसेके पुंजको च=और गोमय=गोबरके पुञ्जको नइक्कमे=आक्रमण न करे अर्थात् इन पर पैर रखकर न जावे ॥७॥

टीका—संयतः सरजस्काभ्यां=सचित्तधूलिधूसरिताभ्यां पादाभ्याम्=चरणाभ्याम् तं=परिहार्यतया प्रसिद्धम् अङ्गारम्=अङ्गारसम्बन्धिनम्, क्षारिकं=भस्मसम्बन्धिनम् गोमयं=गोमय-(गोपुरीष)-सम्बन्धिनम् राशिं=पुञ्जम् तुषराशिं=धान्यत्वक्पुञ्जं च नातिक्रामेत्=तदुपरि सचित्तरजोऽवगुण्ठितचरणावारोप्य न चरेदित्यर्थः, पृथिवीकायविराधनासंभवात् । उपलक्षणतश्च यत्र पृथिवीकायोपमर्दनं संभवति तत्सर्वमतिक्रम्य न क्रामेदिति ॥७॥

यहाँ पर यह बात समझनेकी है कि चौथी, पाचवीं और छठी, इन तीनों गाथाओंसे परमार्थानुमानका प्रकार दर्शाया गया है, अर्थात् चौथी गाथासे प्रतिज्ञा पाँचवीं गाथासे हेतु और छठी गाथासे उपसंहार किया गया है ॥६॥

अब पृथिवीकायकी यतना कहते हैं—'इंगालं' इत्यादि ।

साधु सचित्तधूलियुक्त पैरोंसे अंगार, भस्म (राख) और गोबर आदि की राशिको न लाँघे तथा तुष राशिका भी उल्लंघन करके न जावे । क्योंकि इससे पृथ्वीकायकी हिंसा होती है । उपलक्षणसे यह भी समझना चाहिए कि जिससे पृथ्वीकायकी विराधना हो उसको लांघकर गमन न करे ॥

છે અર્થાત્ ચોથી ગાથાથી પ્રતિજ્ઞા, પાંચમી ગાથાથી હેતુ અને છઠ્ઠી ગાથાથી ઉપસંહાર કરવામાં આવ્યો છે (૬)

હવે પૃથિવીકાયની યતના કહે છે-इंगालं ઇત્યાદિ

સાધુ સચિત્ત-ધુળયુક્ત પગે અંગાર ભસ્મ (રાખ) અને છાણ આદિના ઢગલાને ન ઓળંગે તથા તુષ (ભૂસું) ના ઢગલાનું પણ ઉલ્લંઘન કરીને ન જાય, કારણ કે એથી પૃથ્વીકાયની હિંસા થાય છે. ઉપલક્ષણે કરીને એમ પણ સમજવું કે જેથી પૃથિવીકાયની વિરાધના થાય એને ઉલ્લંઘીને ગમન ન કરે (૭)

अप्कायादियतनामाह–'न चरेज्ज' इत्यादि ।

१० १ ११ २ ३ ४
मूलम्–न चरेज्ज वासे वासंते, मिहियाए पडंतिए ।
५ ७ ६ ८ ९
महावाए व वायंते, तिरिच्छसंपाइमेसु वा ॥८॥

छाया––न चरेद् वर्षे वर्षति, मिहिकायां पतन्त्याम् ।
महावाते वा वाति, तिर्यक्संपातेषु वा ॥८॥

अप्काय आदिकी यतना कहते हैं––

सान्वयार्थः–वासे वासंते=वर्षा बरसते हुवे मिहियाए पडंतिए=धूँअर-कुहरागिरते हुए व=तथा महावाए वायंते=महावायु–आँधी–के चलते हुए वा=और तिरिच्छसंपाइमेसु=तीड-पतंगादिकोंके उडते हुए (साधु) न चरेज्ज=गोचरी न जावे ॥८॥

टीका––वर्षे वर्षति=वृष्टौ सत्याम्, मिहिकायां=धूमिकायां पतन्त्यां सत्यां महावाते =प्रचण्डपवने वाति=वहति सति, तिर्यक्सम्पाते=तिर्यक्पतनशीलेषु शलभादिषु सत्सु न चरेत् । 'वासे वासंते' इत्यनेन शीकरपातसमयेऽपि गमननिषेधः तस्यापि वृष्टावन्तर्भावात् अप्कायविराधनासाधनत्वाच्च ॥८॥

उक्ता प्रथममहाव्रतविराधनाऽधुना चतुर्थमहाव्रतविराधनाया इतरमहाव्रतविराधना हेतुभूततया तामाह–'न चरेज्ज वेस०' इत्यादि ।

३ ४ २ १
मूलम्–न चरेज्ज वेससामंते, बंभचेरवसाणुए ।
७ ६ ९ ५ ८
बंभयारिस्स दंतस्स, हुज्जा तत्थ विसुत्तिया ॥९॥

छाया––न चरेद् वेशसामन्ते, ब्रह्मचर्यवशानुगः ।
ब्रह्मचारिणो दान्तस्य, भवेत्तत्र विस्रोतसिका ॥९॥

अप्कायादिकी यतना कहते है–'न चरेज्ज वासे०' इत्यादि ।

जब वर्षा बरस रही हो, कुहरा (धूँअर) पड रहाहो, आंधी चल रही हो, टिड्डी आदि उड़ रहे हो, तब साधु गमन न करे ।'वासे वासते' इस पद से यह भी ग्रहण कर लेना चाहिए कि जब फुहारे पड रहे हो तब भो गमन न करे. क्योकि वह भी वर्षाहीमें अन्तर्गत है और उस समय जाने से अप्काय की विराधना होती है ॥ ८ ॥

प्रथम महाव्रतकी विराधना बतानेके बाद अब अन्य महाव्रतोकी विराधना के कारण होने

અપ્કાયાદિની યતના કહે છે–ન ચરેજ્જ વાસે૦ ઈત્યાદિ જ્યારે વરસાદ વરસી રહ્યો, હોય, ધુમસ (ઝાકળ) પડી રહ્યો હોય આંધી ચાલી રહી હોય, ટીડ ઉડી રહ્યાં હોય, ત્યારે સાધુ ગમન ન કરે વાસે વાસંતે એ શબ્દથી એમ પણ ગ્રહણ કરી લેવું જોઇએ કે જ્યારે વરસાદની ફરફર પડી રહી હોય ત્યારે પણ ગમન ન કરે, કારણ કે તે પણ વરસાદમા જ આવી જાય છે, અને તે સમયે જવાથી અપૂકાયની વિરાધના થાય છે (૮)

ब्रह्मचर्य ही सब व्रतों का कारण है, अतः चतुर्थव्रत की यतना कहते हैं—

सान्वयार्थः—बंभचेरवसाणुए=ब्रह्मचर्यकी रक्षा चाहनेवाला साधु वेससामंते=वेश्या पाकेड़े -मुहल्ले-में न चरेज्ज=गोचरी नहीं जावे, (क्योंकि) तत्थ=वहां (गोचरी जानेसे) दंतस्स=इन्द्रिय और मनको काबूमें रखनेवाले बंभयारिस्स=ब्रह्मचारी साधुके भी विसुत्तिया=मानसिक विकार हुज्जा=पैदा हो जाता है, साधारण मनुष्यकी तो बात ही क्या? उसके मानसिक विकार जरूर उत्पन्न हो जाता है ॥९॥

टीका—ब्रह्मचर्यवशानुगः=ब्रह्मचर्यं=कामवासनापरित्यागलक्षणव्रतं, वशं=स्वायत्तताम् अनुगमयति=प्रापयतीति स तथोक्तः ब्रह्मचारीत्यर्थः। यद्वा 'ब्रह्मचर्यावसानके' इति 'ब्रह्मचर्यवशाऽऽनये' इति वा संस्कृतं, तस्य 'वेशसमन्ते' इत्यनेन विशेषणतया सम्बन्धस्तथा च–ब्रह्मचर्यस्यावसानम्=अन्तो यस्मात्स तस्मिन्–ब्रह्मचर्यविनाशके इति प्रथमस्यार्थः। ब्रह्मचर्यं वशमानयति=दर्शनादिना स्वाधीनं करोतीति ब्रह्मचर्यवशानयस्तस्मिन् ब्रह्मचर्यभ्रंशके इति द्वितीयस्यार्थः। वेशसामन्ते=वेशः—वेश्यागृहम् 'वेशो वेश्यागृहे गृहे' इति कोशात्, तस्य सामन्ते=समीपे वेश्यापाटके वा न चरेत्=न गच्छेत्। का हानि? रित्याह-'ब्रह्मे'-ति, तत्र=वेशसामन्ते गमनेनेति प्रसङ्गलभ्यम्, दान्तस्य=जितेन्द्रियस्यापि ब्रह्मचारिणः=साधोर्विस्रोतसिका, तद्रूपलावण्यावलोकनचिन्तनादिकचवरेण चेतो नलिकासमागच्छद्भावनासलिलप्रवाहनिरोधे श्रद्धाभूमिसमुत्पन्नब्रह्मचर्यमूलकाऽ-

से चतुर्थ महाव्रत की विराधनाका कथन करते है–'न चरेज्ज वेस०' इत्यादि।

ब्रह्मचारी साधु गोचरी के लिए ब्रह्मचर्यका नाश करने वाला वेश्याघरके समीप में या वेश्याके पाडे (मुहल्ले) में न जावे। वहाँ जाने से क्या हानि है? सो बताते है—वेश्याके पाडे में गमन करने से जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी साधुके भी मनमें विकार उत्पन्न हो सकता है। अर्थात् वेश्या के रूप लावण्य का अवलोकन करने और विचार करनेरूप कचरे से चित्तरूपी नलद्वारा आत्मामें आता हुआ विशुद्ध भावनारूप जलका प्रवाह रुक जाता है। भावना जलका प्रवाह रूक जानेसे वह सयमी रूपी तरु सुख जाता है, जो तरु श्रद्धारूपी भूमी में उत्पन्न होता है, ब्रह्म

પ્રથમ મહાવ્રતની વિરાધના બતાવ્યા પછી હવે બીજાં મહાવ્રતોની વિરાધનાના કારણ હોવાને લીધે ચતુર્થ મહાવ્રતની વિરાધનાનું કથન કરે છે **न चरेज्ज वेस०** ઇત્યાદિ.

બ્રહ્મચારી સાધુ ગોચરીને માટે, બ્રહ્મચર્યનો નાશ કરવાવાળા વેશ્યાગૃહની સમીપે યા વેશ્યાઓના મહોલ્લામા ન જાય, ત્યાં જવામાં શી હાની છે તે શંકાનું નિવારણ કરતાં કહે છે કે વેશ્યાના મહોલ્લામા ગમન કરવાથી જિતેન્દ્રિય બ્રહ્મચારી સાધુના મનમા પણ વિકાર ઉત્પન્ન થઈ શકે છે અર્થાત વેશ્યાના રૂપ-લાવણ્યનું અવલોકન, વિચાર, ઇત્યાદિરૂપ કચરાથી ચિત્તરૂપી નળદ્વારા આત્મામા આવતા વિશુદ્ધ ભાવનાજળનો પ્રવાહ રોકાઈ જવાથી એ સયમ રૂપી તરૂ સુકાઈ જાય છે, છે જે તરૂ શ્રદ્ધારૂપી ભૂમિમાં ઉત્પન્ન થાય છે, બ્રહ્મચર્ય

हिंसासत्याऽस्तेयाऽपरिग्रहरूपाऽऽलवालसंवर्द्धित--ज्ञान-क्रियास्कन्धसुदृढ--समितिगुप्त्यादिशारवप्रशाखावितता-ऽष्टदशसहस्रशीलाङ्गपत्र-ध्यान-कुसुमाऽपवर्ग-फलसम्पत्समृद्धसंयमद्रुमशोपिणी चित्तविकृतिर्भवेदिति सूत्रार्थः ॥९॥

सकृद्गमनदोषं प्रतिपाद्येदानीमसकृद्गमनदोषान् प्रदर्शयति-'अणाययणे' इत्यादि ।

मूलम्-अणाययणे चरंतस्स, संसग्गीए अभिक्खणं ।
हुज्ज वयाणं पीला सामन्नम्मि य संसओ ॥१०॥

छाया—अनायतने चरतः संसर्गेणाऽभीक्ष्णम् ।
भवेद्व्रतानां पीडा, श्रामण्ये च संशयः ॥१०॥

वेश्या के पाड़े में एकवार जाने का दोष कह कर अब अनेक बार जानेका दोष कहते हैं—

सान्वयार्थः—अणाययणे = वेश्याके पाडेमे अथवा इस प्रकारके दूसरे अयोग्य स्थानोंमें चरंतस्स = गोचरी जानेवाले साधु-अभिक्खण = वारंवार संसग्गीए = संसर्ग होनेके कारण वयाणं = महाव्रतोंको पीला = पीडा हुज्ज = होती है अर्थात् वे दूषित हो जाते हैं। (इतना ही नहीं किन्तु उस साधुके) सामन्नम्मि य = चारित्रसाधुपने-में भी संसओ = सन्देह हो जाता है ॥१०॥

टीका—अनायतने = अयोग्यस्थाने वेश्यागृहसमीपादौ अभीक्ष्णं = वारंवारम् चरतः = पर्यटतः साधोः संसर्गेण=प्रेक्षणादिसंपर्केण (मूले प्राकृतत्वात्स्त्रीत्वम्) व्रतानां=

चर्य जिसकी जड़े हैं, अहिसा-सत्य-अस्तेय-अपरिग्रह-रूपी क्यारी है, जो ज्ञान और क्रिया रूपी स्कन्धसे दृढ़ है, समिति गुप्ति आदि शाखा प्रशाखाएँ जिसकी फैली हुई है। अठारह हजार शीलाङ्ग जिसके पत्तेहै, ध्यान ही जिसके पुष्प है, और मुक्ति-सम्पत्तिही जिस वृक्ष के फल है ॥९॥

एकबार गमन करनेके दोष बताकर बारंबार गमन करनेके दोष कहते है — 'अणाययणे० इत्यादि ।

वेश्या-घरके समीप या ऐसेही अन्य अयोग्य स्थानोमें बार बार गमन करनेवाले साधुके वेश्याको देखने आदि ससर्गसे ब्रह्मचर्य आदि व्रतोमें पीड़ा हो जाती है, अर्थात् व्रत दूषित हो

જેના મૂળ છે, અહિંસા સત્યઅસ્તેય-અપરિગ્રહરૂપી ક્યારી છે, જે જ્ઞાન અને ક્રિયારૂપી થડ વડે દૃઢ છે, સમિતિ-ગુપ્તિ આદિ શાખા-પ્રશાખા જેની ફેલાઈ રહી છે, અઢાર હજાર શીલાંગ જેનાં પાંદડાં છે, ધ્યાન જ જેના પુષ્પ છે અને મુક્તિસંપત્તિજ તે તરૂનાં ફળ છે (૯)

એકવાર ગમન કરવાના દોષ બતાવીને વારંવાર ગમન કરવાના દોષો બતાવે છે-અણાયયણે૦ ઇત્યાદિ

વેશ્યાગૃહની સમીપે યા એવાજ અન્ય અયોગ્ય સ્થાનોમાં વારંવાર જવાવડે વેશ્યાને

---

१ कूड़ा-करकट' 'कूचरा' इति भाषा ।

ब्रह्मचर्यादीनां पीडा = विराधना, चकारोऽप्यर्थे, नैतावत्येव हानिः किन्त्वन्याऽपीत्याह-श्रामण्ये = चारित्रेऽपि संशयः = पालनीयतासन्देहो भवेत् तथाहि—

"दुश्चरब्रह्मचर्यादेर्भविष्यति फलं न वा ? ।
चेन्न जाने कियत् कीदृक्, कदा वा तद्भविष्यति ॥१॥
तथाऽप्राप्तसुखप्राप्ति,-मुद्दिश्य विहितो मया ।
उपस्थितसुखत्याग उचितः किं न वोचितः ॥२॥" इत्यादि ।

यद्वा—'चकारादत्र' काङ्क्षा-विचिकित्सा-भेदो-न्माद-दीर्घकालिकरोग-केवलि-प्रज्ञप्तधर्मभ्रंशादयो दोषाः संगृह्यन्ते ॥१०॥

उपसंहरति—'तम्हा एयं' इत्यादि ।

मूलम्—तम्हा एयं वियाणित्ता दोसं दुग्गइवड्ढणं ।
वज्जए वेससामंतं मुणी एगंतमस्सिए ॥११॥

छाया—तस्मादेतं विज्ञाय, दोषं दुर्गतिवर्द्धनम् ।
वर्जयेद्वेशसामन्तं, मुनिरेकान्तमाश्रितः ॥११॥

सान्वयार्थः—तम्हा=इसलिए दुग्गइवड्ढणं = दुर्गतिको बढानेवाले एयं = इस दोसं = दोषको वियाणित्ता=जानकर एगंतमस्सिए = मोक्षाभिलाषी मुणी=मुनि वेससा-

---

जाते है । यही एक हानी नहीं है किन्तु उसके श्रामण्य (चारित्र) में भी सदेह हो जाता है कि—

"इस दुश्चरब्रह्मचर्य का फल मिलेगा या नहीं? यदि मिलेगा भी तो न जाने कितना मिलेगा, कैसा मिलेगा, और कब मिलेगा ? ॥ १ ॥

मैने अप्राप्त सुखकी प्राप्तिके लिए प्राप्त सुखका त्याग कर दिया है सो यह—उचित किया है या अनुचित ? ॥ २ ॥" इत्यादि ।

अथवा गाथामें आये हुए 'च' शब्दसे विषयसेवनकी आकांक्षा, सयमसे घृणा, भेद उन्माद दीर्घकालिक रोग और केवलीप्ररूपित धर्मसे भ्रष्टता आदि अनेक दोष समझ लेना चाहिये अर्थात् ऐसे अयोग्य स्थानोमें गमन करने से पूर्वोक्त दोष होते है ॥ १० ॥

જોવા આદિ સંસર્ગથી સાધુના બ્રહ્મચર્ય આદિ વ્રતોમાં પીડા થઈ જાય છે, અર્થાત્ વ્રત દૂષિત થઈ જાય છે આ એક જ હાનિ નથી પરન્તુ એનાથી શ્રામણ્ય (ચારિત્ર) માં પણ સંદેહ ઉત્પન્ન થાય છે કે-" આ દુશ્ચર બ્રહ્મચર્યનું ફળ મળશે કે નહિ ?, જો મળશે તો પણ શી ખબર કેટલું મળશે, કેમ મળશે અને ક્યારે મળશે ? (૧). મે અપ્રાપ્ત સુખની પ્રાપ્તિને માટે પ્રાપ્ત સુખનો ત્યાગ કરી નાંખ્યો છે તો એ ઉચિત કર્યું છે કે અનુચિત ? (૨) " ઇત્યાદિ,

અથવા ગાથામાં આવેલા ચ શબ્દથી વિષય-સેવનની આકાંક્ષા, સંયમથી ઘૃણા, ભેદ. ઉન્માદ, દીર્ઘકાલિક રોગ અને કેવલી-પ્રરૂપિત ધર્મમાંથી ભ્રષ્ટતા આદિ અનેક દોષો સમજી લેવા અર્થાત્ એવા અયોગ્ય સ્થાનોમાં ગમન કરવાથી એ પ્રકારના દોષ થાય છે. (૧૦)

मते = वेश्याके पाडे-मोहल्ले-को वज्जए = वर्जे अर्थात् भिक्षाके लिए वहां नहीं जावे । भावार्थ—इस प्रकारके संसर्गसे साधुका मन उद्विग्न हो जानेसे मनमे अनेक कुतर्कणाएं होने लग जाती हैं, तव उसका मन ज्ञान-ध्यान-आदि शुभ कार्यों में नहीं लगकर आर्त्त-रौद्र-ध्यान करने लगता है । इसलिए साधु ऐसे संसर्गको ही टाले ॥

टीका— तस्माद्धेतोः एत = पूर्वोक्तं दुर्गतिवर्द्धनं = दुर्गतिप्रापकं दोषं = व्रतविराधनादि लक्षणं विज्ञाय = अवबुध्य एकान्तम् = एकः = अद्वितीयः अन्तो = निश्चयो व्रतरक्षणविषयको मोक्षप्राप्तिविषयको वा एकान्तस्तम् आश्रितः = आस्थितो मुनिः वेशसामन्तं = वेश्यापाटकगमनं वर्जयेत् = परित्यजेत् ।

'वियाणित्ता' इत्यनेन सम्यगवबोधमन्तरेण दोषपरित्यागो याथातथ्येन न संभवतीति, 'एगंतमस्सिए' इत्यनेन च मुनिना सतत मोक्षैकलक्ष्येण भवितव्यमिति सूचितम् ।

मार्गयतनामेव विशिष्याऽऽह—'साणं' इत्यादि ।

मूलम्—साणं(२) सूइयं(३) गाविं(४) दित्तं(१) गोणं(५) हयं(६) गयं(७) ।
संडिब्भं(८) कलहं(९) जुद्धं(१०) दूरओ(११) परिवज्जए(१२) ॥१२॥

छाया— श्वानं सूतां गां दृप्तं गोणं हयं गजम् ।
संडिम्भं कलहं युद्धं, दूरतः परिवर्जयेत् ॥१२॥

साधु जहाँ भिक्षा के लिये न जावे उन स्थानों को विशेष रूपसे कहते हैं—

सान्वयार्थः—साणं = जहां काटनेवाला कुत्ता हो सूइय=थोडे कालकी व्याई हुई गाविं = गाय हो दित्तं = मदमस्त गोणं = गोधा साण्ड अथवा बैल (और) हयं = घोड़ा

उपसहार करते है 'तम्हा एय' इत्यादि ।

इसलिए इस-दुर्गतिको बढानेवाले व्रतोकी विराधनारूप-दोषको जानकर व्रतोकी रक्षा और मोक्ष की प्राप्ति के निश्चयमें स्थित मुनि वेश्या के पाडे (चकले) में भिक्षा आदिके लिए न जावे ।

'वियाणित्ता' पदसे यह सूचित किया है कि भली भाँति जाने विना दोषका अच्छी तरह परित्याग नहीं हो सकता । 'एगतमस्सिए' पद से यह प्रगट किया है । कि मुनि को सदा मोक्ष प्राप्तिका लक्ष्य रखना चाहिये ॥ ११ ॥

ઉપસહાર કરે છે-तम्हा एयं ઈત્યાદિ

એટલા માટે. એ દુર્ગતિને વધારવાવાળા, વ્રતોની વિરાધનારૂપ દોષને જાણીને વ્રતોની રક્ષા અને મોક્ષની પ્રાપ્તિના નિશ્ચયમાં સ્થિત મુનિએ, વેશ્યાના મહોલ્લામા ભિક્ષા આદિને માટે જવુ નહિ.

वियाणित्ता શબ્દથી એમ સૂચિત કર્યું છે કે-સારી રીતે જાણ્યા વિના દોષોનો સારી પેઠે પરિત્યાગ થઈ શકતો નથી एगंतमस्सिए શબ્દથી એમ પ્રકટ કર્યું છે કે મુનિએ સદા મોક્ષપ્રાપ્તિનુ લક્ષ્ય રાખવું જોઈએ (૧૧)

(अथवा) गयं=हाथी हो (तथा) संडिब्भं=जहां बच्चे खेल रहे हो कलहं=परस्पर वाग्युद्ध गाली-गलोच होरहा हो जुद्धं=शस्त्र आदिसे युद्ध होता हो (ऐसे स्थानको साधु) दूरओ=दूरसे ही परिवज्जए=वर्जे, अर्थात् ऐसी जगह साधु कदापि गोचरी नहीं जावे। भावार्थ-ऐसे स्थानमें गोचरी जाने से कुत्ते आदिके काटखाने आदिकेकारण तथा पात्रे फूटजाने आहार गिरजाने आदि अनेक प्रकारसे सयम और आत्मा दोनोंकी विराधना होती है ॥१२॥

टीका--श्वानं कुक्कुरं, 'दृप्त'-मितीहाऽपकृष्य सम्बध्यते, तथाच-दृप्तम्=उद्धतं दंशनस्वभावम् उन्मादिनं वेत्यर्थः, नवप्रसूतशून्या अप्युपलक्षणमेतत्। सूतां=नवप्रसूतां गां=सौरभेयीं, नवप्रसूतमहिष्या अप्युपलक्षणाद् ग्रहणम्, दृप्तं=चण्डस्वभावं गोणं=वृषभं, हय=घोटकं, गज=हस्तिनं च, संडिब्भं=शिशुक्रीडनस्थान, कलहं=वाग्युद्धं, युद्धम्=दण्डादण्डि-शस्त्राशस्त्रि-प्रभृतिकम् दूरतः परिवर्जयेत्, आत्मसंयमोभयविराधनाहेतुत्वात् ॥१२॥

गमनप्रकारमाह-'अणुन्नए' इत्यादि।

मूलम्-अणुन्नए[१] नावणए[२] अप्पहिट्ठे[३] अणाउले[४]।
इंदियाइ[६] जहाभागं[७] दमइत्ता[८] मुणी[५] चरे[९] ॥१३॥

छाया--अनुन्नतो नावनतोऽप्रहृष्टोऽनाकुलः।
इन्द्रियाणि यथाभागं, दमयित्वा मुनिश्चरेत् ॥१३॥

गोचरी में घूमते हुए साधु को किस प्रकार की चेष्टा रखनी चाहिये सो बताते

मार्ग की यतना को विशेषरूप से बताते है-'साणं' इत्यादि।

जहाँ उन्मत्त (पागल-हड़क्या) या काटनेवाला कुत्ता, नयी बियाई हुई (प्रसूता) कुतिया, नवप्रसूता गाय या नव प्रसूता भैंस आदि, मदोन्मत्त बैल, घोडा हाथी हो उस स्थानको, तथा बच्चोंके खेलनेके, कलह (मुँहकी लडाई) के और युद्ध (शस्त्रकी लडाई) के स्थान को साधु दूरसे त्यागे। अर्थात् जहाँ ये सब हो वहाँ न जावे-दूर ही रहे, क्योकि इससे आत्मविराधना होती है।॥ १२ ॥

માર્ગની યતનાને વિશેષરૂપે બતાવે છે साणं० ઇત્યાદિ.

જ્યાં ઉન્મત્ત (ગાંડો-હડકાયો) અથવા કરડનારો કૂતરો, નવી વીયાયલી (પ્રસૂતા) કૂતરી, નવપ્રસૂતા ગાય યા નવપ્રસૂતા ભેંશ આદિ, મદોન્મત્ત બળદ ઘોડો હાથી ઇત્યાદિ હોય તે સ્થાનને, તથા બાળકોએ રમવાના, કલહ (મ્હોની લડાઈ) ના અને યુદ્ધ (શસ્ત્રની લડાઈ) ના સ્થાનને સાધુ દૂરથી જ ત્યાગે, અર્થાત્ જ્યા એ બધાં હોય ત્યાં ન જાય-દૂર જ રહે, કારણ કે તેથી આત્મવિરાધના, સંયમવિરાધના અને ઉભયવિરાધના થાય છે (૧૨)

सान्वयार्थः—मुणी=गोचरीमें घूमता हुआ साधु अणुन्नए=द्रव्यसे ऊंचा नहीं देखनेवाला, भावसे जात्यादिगर्वरहित नावणए=द्रव्यसे शरीरको अत्यन्त नहीं नमानेवाला, भावसे दीनतारहित अप्पहिट्ठे=मिलनेवाले आहार आदिके विचारसे रहित अणाउले=इष्ट अनिष्ट आहार आदिकी प्राप्ति होना न होना आदि व्याकुलतासे रहित (साधु) इंदियाइं=श्रोत्र आदि इन्द्रियोंका जहाभागं=यथाक्रम अर्थात् जिस समय जिस इन्द्रियका विषय उपस्थित हो उस समय उस इन्द्रियका दमइत्ता=दमन-निग्रह करके-चरे=विचरे ॥१३॥

टीका—अनुन्नतः-अनुच्छ्रितः, स च द्रव्यत ऊर्ध्वानवलोकयिता, भावतो जात्यादिगर्वरहितः, नावनतः=नातिप्रह्वः, स द्रव्यतो नातीवनताङ्गः भावतो दैन्यरहितः। अप्रहृष्टः=अप्रमुदितः उपलप्स्यमानाहारवस्त्रपात्रादिभावनाजन्यप्रमोदरहित इत्यर्थः, अनाकुलः=अक्षुब्ध इष्टऽलाभाऽनभीष्टलाभभावनाजनित मनःक्षोभवर्जित इत्यर्थः, मुनिः इन्द्रियाणि=श्रोत्रादीनी यथाभागं=भज्यते-सेव्यते इति भागो=विषयः, भागमनतिक्रम्य यथाभागं=यथाविषयं-यस्येन्द्रियस्य यो विषयः सम्प्राप्तस्तमनुसृत्येत्यर्थः, दमयित्वा=निगृह्य मनोज्ञा-ऽमनोज्ञशब्दादिविषयेषु रागापरागपरित्याग कृत्वेत्यर्थः, चरेत्।

'अणुन्नए' 'नावणए' इत्येताभ्यामीर्यायतनाऽहङ्कारवर्जनदैन्यराहित्यानि सूचितानि। 'अप्पहिट्ठे' इत्यनेन माध्यस्थ्यं बोधितम्। 'अणाउले' इतिपदेन साधो रसलोलुप-

---

चलनेका प्रकार कहते हे—'अणुन्नए०' इत्यादि।

मार्ग म चलते समय साधु अनुन्नत अर्थात् द्रव्य से ऊपरकी ओर न देखता हुआ, और भाव से जाति कुल आदिके अभिमान से रहित नावनत अर्थात् द्रव्य से अत्यन्त न झुका हुआ तथा भाव से दीनतारहित अपहृष्ट अर्थात् मिलनेवाले आहार आदिके विचार से प्रमोद रहित अनाकुल अर्थात इष्टकी अप्राप्ति तथा अनिष्ट को प्राप्ति के विचारसे उत्पन्न होनेवाली व्याकुलता से रहित मुनि जहाँ जिस इन्द्रिय का विषय उपस्थित हो वहाँ उस इन्द्रिय का दमन करके अर्थात् मनोविषयमें राग और अमनोज्ञ विषयमें द्वेषका परित्याग करता हुआ भिक्षा आदिके लिए विचरे।

'अणुन्नए' और 'नावणए' इन दो पदोंसे ईर्याकी यतना, अहङ्कारका परिहार और दीनता का त्याग सूचित किया है। 'अप्पहिट्ठे' पद से मध्यस्थता प्रगट की है। 'अणाउले' पद से

ચાલવાનો પ્રકાર કહે છે—અણુન્નએ૦ ઇત્યાદિ

માર્ગમાં ચાલતી વખતે સાધુ અનુન્નત અર્થાત્ દ્રવ્યથી ઉપરની બાજુએ ન જોતાં અને ભાવથી જાતિકુળના અભિમાનથી રહિત, નાવનત અર્થાત્ દ્રવ્યથી અત્યન્ત ન નમ્યા વિના તથા ભાવથી દીનતા-રહિત, અપ્રહૃષ્ટ અર્થાત્ મળવાવાળા આહારાદિના વિચારથી પ્રમોદરહિત, અનાકુલ અર્થાત્ ઇષ્ટનિ અપ્રાપ્તિ તથા અનિષ્ટની પ્રાપ્તિના વિચારથી ઉત્પન્ન થનારી વ્યાકુળતાથી રહિત જ્યાં જે ઇંદ્રિયનો વિષય ઉપસ્થિત હોય ત્યાં તે ઇંદ્રિયનુ દમન કરીને અર્થાત્ મનોજ્ઞ-વિષયમાં રાગ અને અમનોજ્ઞ-વિષયમાં દ્વેષનો પરિત્યાગ કરતાં, ભિક્ષા આદિને માટે વિચરે.

અણુન્નએ અને નાવણએ એ બે શબ્દોથી ઈર્યાની યતના અહંકારનો પરિહાર અને દીન-

त्वं निराकृतम् । 'जहाभागं' इत्यनेन च यत्र यस्येन्द्रियस्य विषयप्राप्तिस्तत्र तस्यैव दमनं वास्तविकमिन्द्रियदमनं, न तु दर्शनविषये कर्णपिधानमित्यादि बोध्यम् ॥१३॥

मूलम्-दवदवस्स न गच्छेज्जा, भासमाणो य गोयरे ।
हसंतो नाभिगच्छेज्जा, कुलं उच्चावयं सया ॥१४॥

छाया-द्रुतद्रुतस्य न गच्छेत्, भाषमाणश्च गोचरे ।
हसन् नाभिगच्छेत्, कुलमुच्चावचं सदा ॥१४॥

सान्वयार्थः—गोयरे=भिक्षाचरीमे (साधु) दवदवस्स=अति शीघ्रतासे दड़बड़२ दौडता हुआ य=तथा भासमाणो=बोलता हुआ न गच्छेज्जा=नहीं जावे, (तथा) उच्चावयं=उच्च-द्रव्यसे सप्तभूमिक महलोंवाले, भावसे-धन-धान्यादिरहित समृद्ध, नीच-द्रव्य से घास फूसकी झोपडी वाले, भावसे धन-धान्यादिरहित कुल=कुलमें सया=हमेशा जावे । (२ श्रु.१अ.२उ.) आचाराङ्गसूत्रमें बताये हुए सब कुलोंमें भिक्षाके लिए जावे अर्थात् जिस समय जिस देश में जो कुल दुर्गुंछित न हों उन सब कुलोंमें गोचरी जावे, साधुको चाहिए कि ईर्यासमिति शोधता हुआ रागद्वेषरहित होकर भिक्षाके लिए विचरे ॥

टीका—गोचरे=भिक्षायां भिक्षार्थमित्यर्थः, द्रुतद्रुतस्य=शीघ्र-शीघ्रम् 'दवदवे' त्यस्याव्ययत्वेऽप्यार्षत्वात्सविभक्तिकत्वम्, यद्वा क्रियाविशेषणत्वेन द्वितीयान्तत्वौचित्येऽप्यार्षत्वात्षष्ठ्यन्तत्वम्, न गच्छेत्=न यायात् । भाषमाणः=संलपन् च=तथा हसन्=हास्यं कुर्वन नाभिगच्छेत् । उच्चावचम्=उदक् च अवाक् च इत्युच्चावचम्- ('मयूरव्य-

साधु की रसलोलुपताका निराकरण किया है । 'जहाभाग' पदसे यह प्रदर्शित किया है कि ज़हाँ जिस इन्द्रियका विषय उपस्थित हो वहाँ उसका दमन करना ही वास्तवमें इन्द्रियदमन कहलाता है, किन्तु चक्षुइन्द्रियका विषय उपस्थित होनेपर यदि कान मूँद लिए जायँ तो इन्द्रिय दमन नहीं कहला सकता, इत्यादि ॥ १३ ॥

'दवदवस्स०' इत्यादि । साधु गोचरीके लिए जल्दी २(दडबड२) न चले । बातचीत करता हुआ, तथा हसता हुआ भी गमन न करे । उच्चनीच अर्थात् धनवान् और निर्धन आदि

તાનો ત્યાગ સૂચિત કર્યો છે અપ્પહિટ્ઠે શબ્દથી મધ્યસ્થતા પ્રકટ કરી છે અણાઉલે શબ્દથી સાધુની રસલોલુપતાનું નિરાકરણ કર્યું છે જહાભાગં શબ્દથી એમ પ્રદર્શિત કર્યું છે કે જ્યા જે ઇંદ્રિયનો વિષય ઉપસ્થિત હોય ત્યા તેનું દમન કરવુ એજ વસ્તુત ઇંદ્રિયદમન કહેવાય છે, કિંતુ ચક્ષુ ઇન્દ્રિયનો વિષય ઉપસ્થિત થતાં જો કાન સંકોચવામા આવે તો તે ઇંદ્રિયદમન કહેવાતુ નથી ઇત્યાદિ (૧૩)

દવદવસ્સ૦ ઇત્યાદિ. સાધુ ગોચરીને માટે ઉતાવળો ઉતાવળો ન ચાલે વાત-ચીત કરતો કે હસતો-હસતો પણ ન ચાલે ઉચ્ચ-નીચ અર્થાત્ ધનવાન-નિર્ધન આદિના કુળોમા

१ धातूपात्तभावनां प्रति फलांशस्य कर्मभूततया फलसामानाधिकरण्ये द्वितीया ।

सकादयश्च' (२।१।७२) इति निपातनात्समासः सिद्धिश्च) उच्चनीचात्मकमनेकविधमित्यर्थः। 'उच्चावचं नैकभेद'-मित्यमरः। कुलं=गृहम्[1]। तत्र द्रव्यत उच्चगृहं-सप्तभूमिकप्रासादादिकम्, शारदशशाङ्क-घनसार-हार-नीहार-कुन्दा-वदातसुधोज्ज्वलहर्म्यादिक प्रोत्तुङ्ग-तोरणादिक च। भावत उच्चगृहं—धनधान्यादि सम्पदा समृद्धम्। द्रव्यतो नीचगृह-धनधान्यादिरहितं दरिद्रगृहम्, सदा=सर्वदा अभिगच्छेत्=चरेत्।

अथवा उच्चावचशब्देन उग्रकुलादीनि गृह्यन्ते, तथाहि—

'उग्गकुलाणि वा भोगकुलाणि वा राइन्नकुलाणि वा खत्तियकुलाणि वा इक्खागकुलाणि वा हरिवंसकुलाणि वा एसियकुलाणिवा वेसिय कुलाणिकावा कोट्ठागकुलाणि वा गामरक्खकुलाणि वा बुक्कासकुलाणि वा अन्नयरेसु वा तहप्पगारेसु कुलेसु अदुगुंछिएसु अगरहिएसु असण वा४ फासुयं जाव पडिगाहिज्जा (सू.११आचाराङ्ग. २ श्रु० १ अ २ उ.)।

के कुलों में सदा भिक्षा के लिए जावे।

उच्च कुल दो प्रकार का है—(१) द्रव्य से उच्च और (२) भाव से उच्च। सतमंजिला आदि, शरद ऋतु के चन्द्रमा, कपूर, हार, बर्फ, या कुन्द पुष्प के समान स्वच्छ, कलई (चूना) पोतने से जगमगाता हुआ और जिसका फाटक खूब ऊँचा हो ऐसे महल आदि द्रव्य-उच्च कहलाते हैं।

(२)धन-धान्यरूपी सम्पत्ति से समृद्ध कुल भाव से उच्च कहलाता है। नीचा कुल भी दो प्रकारका है—

(१)द्रव्य से नीचा और (२) भाव से नीचा।

१.वांस, लकडी, घास फूस से बने हुए झोपड़े को द्रव्यसे नीचा कहते है। (२) धन-धान्य आदि सम्पत्तिसे रहित निर्धन के कुल को भावसे नीचा कहते है। इन सब प्रकारके घरोमे साधु भिक्षा के लिए जावे।

अथवा 'उच्चावच' शब्द से उग्रकुलादि समझ लेना चाहिए। वे बारह प्रकारके कुल आ

સદા ભિક્ષાને માટે જાય.

ઉચ્ચકુળ બે પ્રકારના છે (૧) દ્રવ્યથી ઉચ્ચ અને (૨) ભાવથી ઉચ્ચ. (૧) સાત-મજલા હોય શરદ્ઋતુનો ચંદ્રમા કપૂર, (મોતીનો) હાર, બરફ યા કુંદપુષ્પની પેઠે સ્વચ્છ (શ્વેત) હોય, ચૂનો ધોળવાથી ઝગમગતો હોય અને જેનું ફાટક ખૂબ ઉંચુ હોય એવો મહેલ આદિ દ્રવ્ય-ઉચ્ચ કહેવાય છે (૨) ધન-ધાન્યરૂપી સંપત્તિથી સમૃદ્ધ કુળ ભાવથી ઉચ્ચ કહેવાય છે.

નીચકુળ પણ બે પ્રકાના હોય છે :—

(૧) દ્રવ્યથી નીચું અને (૨) ભાવથી નીચું. (૧) વાસ, લાકડા, ઘાસ-પાદડાથી બનેલાં ઝુંપડાને દ્રવ્યથી નીચું કહે છે (૨) ધન-ધાન્યાદિ સંપત્તિથી રહિત નિર્ધનના કુળને ભાવથી નીચુ કહે છે એ પ્રકારના બધાજ ઘરોમાં સાધુ ભિક્ષાને માટે જાય

१ 'कुलं जनपदे गोत्रे, सजातीयगणेऽपि च भवने च तनौ क्लीव-मिति मेदिनी॥

अत्र 'अदुगुंछिएसु' 'अगरहिएसु' इति पदाभ्यां यस्मिन् समये यत्कुलमजुगुप्सितमगर्हितं भवेत्तदा तस्मिन्नेव कुले गन्तव्यमिति बोध्यते ।

अत्र 'दवदवस्से'-त्यादिना षट्कायरक्षणविचक्षणता समाख्याता । 'भासमाणो' पदेनैकस्मिन् समये कार्यद्वयं सोपयोगं निष्पत्तुं न संभवतीति, 'हसतो' इत्यनेन गाम्भीर्यम् , 'उच्चावचं॰ इत्यादिना प्रतिबन्धराहित्यं च द्योतितम् ॥१४॥

मूलम्—आलोअं[२] थिग्गलं[३] दारं[४], संधिं[५] दगभवणाणि[६] य[७] ।
चरंतो[१] न[८] विणिज्झाए[९], संकट्ठाणं[१०] विवज्जए[११] ॥१५॥

छाया—आलोकं थिग्गलं द्वारं, सन्धिं दकभवनानि च ।
चरन् न विनिध्यायेत्, शङ्कास्थानं विवर्जयेत् ॥१५॥

सान्वयार्थः—चरंतो=भिक्षाके लिए घूमता हुआ साधु आलोयं=जाली-झरोखेकी तरफ थिग्गलं=ईंट आदिसे भरे हुए भींतके छिद्रको तरफ दारं=दरवाजेकी तरफ संधिं=भींतकी सांधकी तरफ अथवा चोरोंद्वारा किये हुए भींतके छेदकी तरफ य=तथा दगभवणाणि=पलेण्डा आदिकी तरफ न विणिज्झाए=टक-टकी लगाकर नहीं देखे, (क्योंकि ये सब) संकट्ठाणं=शङ्काके स्थान हैं, (इसलिए इन्हें) विवज्जए=विशेषरूपसे त्यागे। भावार्थ=ऐसे स्थानोंको देखनेसे गृहस्थको साधुके प्रति चोर लम्पट आदिका संन्देह उत्पन्न हो जाता है, तथा एषणाकी यथोचित शुद्धि भी नहीं होती ॥१५॥

चरांग सूत्रमें (२श्रु॰ १अ॰ २उ॰ सू. ११ में) भगवानने कहा है । आचारांग सूत्रमें आये हुए 'अदुगुंछिए' और 'अगरहिए' पदसे यह सूचित किया है कि जिस देश और जिस समयमें जो कुल अनन्दित और अगर्हित हो उसमें मुनि, भिक्षाके लिए जावे ।

यहाँ 'दवदवस्स' इत्यादि पद से षटकायकी रक्षा में सावधानी प्रगट की है ।

'भासमाणो' पदसे यह प्रगट किया है कि एक ही साथ दो कार्य उपयोगपूर्वक नहीं हो सकते । हसतो पदसे गंभीरता द्योतित की है और उच्चावयं॰ इत्यादि पदसे प्रतिबन्ध(नेसराय) रहितता और समतासे सहितता प्रगट की है ॥१४॥

અથવા ઉચ્ચાવચ શબ્દથી ઉગ્રકુળાદિ સમજી લેવા જોઈએ એ બાર પ્રકારનાં કુળો આચારાંગ સૂત્રમાં (૨શ્રુ૦ ૧અ ૨ઉ૦સૂ૦ ૧૧ મા) ભગવાને કહ્યા છે. આચારાગ સૂત્રમાં આવેલા અદુગુંછિપ અને અગરહિપ શબ્દોથી એમ સૂચિત કર્યું છે કે જે દેશ અને જે સમયમાં જે કુળ અનિંદિત અને અગર્હિત હોય તેમા મુનિ ભિક્ષાને માટે જાય

અહીં દવદવસ્સ ઇત્યાદિ શબ્દોથી ષટ્કાયની રક્ષામા સાવધાની પ્રકટ કરી છે ભાસમાણો શબ્દથી એમ પ્રકટ કર્યું છે કે એકીસાથે બે કાર્યો ઉપયોગપૂર્વક થઇ શકતાં નથી. હસંતો શબ્દથી ગંભીરતા પ્રકટ કરી છે અને ઉચ્ચાવયં ઇત્યાદિ શબ્દોથી પ્રતિબંધ (નેસરાય) રહિતતા અને સમતા સહિતતા પ્રકટ કરી છે. (૧૪)

टीका—'आलोअं०' इत्यादि । चरन्=भिक्षितुं गच्छन् मुनिः आलोकं=वातायन-जालिकाप्रभृति, थिग्गलं=देशीयभाषया प्रसिद्धं भित्त्यामिष्टकादिरचितम्, द्वार=विवरम्, सन्धि=तस्कराद्विखातभित्तिभागं दकभवनानि=जलस्थानानि, 'चे'ति समुच्चये; न=नैव विनिध्यायेत्=सविशेषं विलोकयेत् । यत एतानि (आलोकादीनि) शङ्कास्थानानि=साधोराचारविषयकसन्देहोत्पादकस्थानानि, सूत्रे जातावेकवचनम्, अतस्तानि विवर्जयेत्=विशेषेण परित्यजेत् ॥१५॥

मूलम्—रन्नो[1] गिहवईणं[2] च, रहस्सारक्खियाण[4] य[3] ।
संकिलेसकरं[5] ठाणं[6], दूरओ[7] परिवज्जए[8] ॥१६॥

छाया—राज्ञो गृहपतीनां च, रहस्यमारक्षकाणां च ।
संक्लेशकरं स्थानं, दूरतः परिवर्जयेत् ॥१६॥

सान्वयार्थः—रन्नो=चक्रवर्त्ती आदि राजा महाराजाओंके च=तथा गिहवईणं=सेठ आदि सद्गृहस्थोंके च=और आरक्खियाण=नगरके रक्षक-कोतवाल आदिके रहस्स=सलाह करनेके एकान्त स्थानको (साधु) दूरओ=दूरहीसे परिवज्जए=त्यागे; (क्योंकि ऐसे) ठाणं=स्थान संकिलेसकरं=असमाधिको पैदा करनेवाले होते हैं । भावार्थ=राजा आदिकोंके एकान्त स्थानकी तर्फ देखनेसे अथवा वहां जानेसे उनको साधुके प्रति क्रोध अश्रद्धा होना आदि अनेक दोषोंकी संभावना है ॥१६॥

टीकाः—'रन्नो०' इत्यादि । राज्ञः=चक्रवर्त्यर्द्धचक्रिप्रभृतेः, गृहीपतीनां=गृहस्वामिनां श्रेष्ठयादीनाम् आरक्षकाणां=नगररक्षिणां च रहस्य=रहसि=एकान्ते भवं रहस्यं=मन्त्र-

---

'आलोयं०' ईत्यादि । भिक्षा लेनेके निमित्त गमन करता हुआ मुनी झरोखा, जाली, भीत, दरवाजा, सेध, (चोरो द्वारा दीवार में किया हुआ छेद—सन्धि) और उदक भवन अर्थात् परेडा आदि की तरफ दृष्टि न डाले, क्योकि ये शंकास्थान है, इनकी ओर देखने से लोगो को साधुके चारित्रमें सदेह उत्पन्न होता है, अतएव इन शंकास्थानो का विशेष रूपसे परित्याग करना चाहिए ॥ १५ ॥

'रन्नो०' इत्यादि । जिस एकान्त भवनमें चक्रवर्त्ती, अर्द्धचक्री, माण्डलिक आदि राजा, श्रेष्ठी (सेठ) आदि गृहस्थ और नगरकी रक्षा करनेवाले (कोटवाल) आदि सलाह करते हो उस भवन

आलोयं ઇત્યાદિ ભિક્ષાને માટે ગમન કરતો મુનિ ઝરૂખો, જાળી, ભીંત, દરવાજો, ચોરે પાડેલું બાકું (ખાતરીયાથી પાડેલું બાકોરૂ) અને ઉદકભવન અર્થાત્ પાણીઆરાની તરફ દૃષ્ટિ ન નાખે, કારણ કે એ બધા શંકાસ્થાનો છે તેની તરફ જોવાથી લોકોને સાધુના ચારિત્રમા સંદેહ ઉત્પન્ન થાય છે તેથી એ શંકાસ્થાનોનો વિશેષરૂપે પરિત્યાગ કરવો (૧૫)

रन्नो० ઇત્યાદિ, જે એકાન્ત ભવનમા ચક્રવર્તી, અર્ધચક્રી, માંડલિક આદિ રાજા, શ્રેષ્ઠી (શેઠ) આદિ ગૃહસ્થ અને નગરની રક્ષા કરનારા (કોટવાળ) વગેરે સલાહ (મંત્રણા) કરતા

गृहम्, संक्लेशकरम्=असमाधिजनकं स्थानं हेतुगर्भमिदं विशेषणं तथा च संक्लेशकरत्वादित्यर्थः, दूरतः परिवर्जयेत्=सर्वथा संत्यजेत् ॥१६॥

मूलम्–पडिकुट्ठं कुलं न पविसे, मामगं परिवज्जए ।
अचियत्तं कुलं न पविसे, चियत्तं पविसे कुलं ॥१७॥

छाया––प्रतिक्रुष्टं कुलं न प्रविशेत्, मामकं परिवर्जयेत् ।
अचियत्तं कुलं न प्रविशेत्, चियत्त प्रविशेत्कुलम् ॥१७॥

सान्वयार्थः–पडिकुट्ठं=शास्त्रनिषिद्ध कुलं=कुल घर में न पविसे=प्रवेश नहीं करे मामगं=कृपणके घरको परिवज्जए=वरजे–नहीं जावे, अचियत्तं=प्रतीतिरहित अथवा प्रीतिरहित कुलं=कुल-घरमें न पविसे=प्रवेश न करे, (किन्तु) चियत्तं=प्रतीति और प्रीतिवाले कुलं=घरमें पविसे=प्रवेश करे ॥१७॥

टीका––'पडिकुट्ठं०' इत्यादि । प्रतिक्रुष्टं=निषिद्ध, कुलं=गृहं न प्रविशेत्, मामकं='मा मदीयं गृहं श्रमणाः प्रविशन्तु'-इति प्रतिषेधकारिणो गृहं तथा सामयिकव्याख्यादर्शनात्, परिवर्जयेत् । अचियत्तं=देशीयशब्दोऽयम्-अप्रीतिमत्, यत्र साधुप्रवेशेन गृहिणामप्रीतिर्भवेत् तत्, अप्रतीतिमद्वा अविश्वस्तमित्यर्थः, यत्र गमनेन परेषां साधुविषयेऽप्यविश्वासो भवेत्, तादृशं कुलं न प्रविशेत्, गृहस्थानां सक्लेशसंभवात् । नन्वेवं तर्हि कुत्र प्रविशेत्तदाह–चियत्तं=प्रीतिमत् प्रतीतिमद्वा कुलं प्रविशेत् ॥१७॥

को दूरहीसे त्यागे, क्योंकि ऐसे स्थान असमाधि को उत्पन्नकरने वाले होते है ॥ १६ ॥

'पडिकुट्ठ' इत्यादि । शास्त्रोंमें निषेध किये हुए घर में साधु प्रवेश न करे । जिसने अपने घर में आने का निषेध कर दिया हो कि 'श्रमण निर्ग्रन्थ हमारे घर पर न आवे' उन घरोंकाभी साधु त्याग करे । साधु के प्रवेश करने से जिस घरवालों को अप्रीति उत्पन्न हो, या जिस कुलमें विश्वास न हो ऐसे कुलमें भी प्रवेश न करे, क्योंकि इससे दूसरोंका साधुपरसे भी विश्वास हट जाता है । साधु उस घरमें प्रवेश करे जिसमें प्रवेश करने से गृहस्थको प्रीति और विश्वास हो ॥ १७ ॥

હોય, એ ભવનને મુનિ દૂરથી જ ત્યાગે, કારણ કે એવા સ્થાનો અસમાધિને ઉત્પન્ન કરવાવાળા હોય છે (૧૬)

પડિકુટ્ઠ ઇત્યાદિ. શાસ્ત્રોમાં નિષેધ કરેલા ગૃહમાં સાધુ પ્રવેશ ન કરે જેણે પોતાના ઘરમાં આવવાનો નિષેધ કર્યો હોય કે 'શ્રમણ નિર્ગ્રન્થે અમારા ઘરમા આવવું નહિ' એવા ઘરોનો પણ સાધુ ત્યાગ કરે સાધુને પ્રવેશ કરવાથી જે ઘરવાળાને અપ્રીતિ ઉત્પન્ન થાય, યા જે કુળમા વિશ્વાસ ન હોય એવા કુળમા પણ સાધુ પ્રવેશ ન કરે, કારણ કે એથી સાધુ પરથી બીજાઓનો પણ વિશ્વાસ હઠી જાય છે સાધુ એ ઘરમા પ્રવેશ કરે કે જેમા પ્રવેશ કરવાથી ગૃહસ્થને પ્રીતિ અને વિશ્વાસ ઉપજે (૧૭)

४ ५ ६
मूलम्-साणीपावारपिहियं, अप्पणा नवपंगुरे ।
७ ८ २ १ ३
कवाडं नोपणुल्लिज्जा, उग्गहं सिं अजाइया ॥१८॥

छाया—शाणी-प्रावारपिहितम् आत्मना नाऽपवृणुयात् ।
कपाटं नो प्रणुदेत्, अवग्रहं तस्याऽयाचित्वा ॥१८॥

सान्वयार्थः—सिं (से) = उस गृहस्वामी को उग्गहं = आज्ञा अजाइया = लिये विना साणीपावारपिहियं = सन आदिके बने हुए परदेसे ढके हुए घरको अप्पणा = साधु खुद नावपंगुरे = नहीं खोले, (तथा) कवाडं = किवाडको भी नोपणुल्लिज्ज = नहीं उघाडे, तात्पर्य यह है कि गृहस्वामीको पूछकर ही उघाडना चाहिए ॥१८॥

टीका—'साणीपावार०' इत्यादि। तस्य = गृहस्वामिनः अवग्रहं = निदेशम्, अयाचित्वा = अगृहीत्वा आज्ञामन्तरेणेत्यर्थः, शाणीप्रावारपिहितं = शाणी=शणवल्कलनिर्मितजवनिका, प्रावारः = ऊर्णादिरचितकम्बलादिस्ताभ्यां पिहितम् = आवृतम्, यद्वा शाणीप्रावारेण = शणरचितपर्दया[1] स्थगितं 'द्वार'-मितिशेषः, आत्मना = स्वयम् न अपवृणुयात् = नापसारयेत्। तथा कपाटम् = अररम् 'किवाडे'-ति भाषाप्रसिद्ध नो प्रणुदेद् = न प्रेरयेत् नोद्घाटयेदित्यर्थः, तदुद्घाटनस्य स्नानभोजनादिसमासक्तानां स्त्र्यादीनामप्रतीतिकारणत्वात्, तादृशव्यवहारानौचित्याच्च, तस्मादावश्यकताया तत्स्वामिनं पृष्ट्वोवोद्घाटयेदिति भावः ॥१८॥

१ २ ३ ४
मूलम्-गोयरग्गपविट्ठो य, वच्च-मुत्तं न धारए ।
६ ५ ७ ८ ९
ओगासं फासुअं नच्चा, अणुन्नविअ वोसिरे ॥१९॥

छाया—गोचराग्रप्रविष्टश्च, वर्चो-मूत्रं न धारयेत् ।
अवकाशं प्रासुकं ज्ञात्वा, अनुज्ञाप्य व्युत्सृजेत् ॥१९॥

सान्वयार्थः—गोयरग्गपविट्ठो=गोचरीमें गया हुआ मुनि वच्च-मुत्तं=मल और मूत्रको न धारए=नहीं रोके अर्थात् मल-मूत्र-को बाधा उपस्थित होनेपर उनके वेगका अवरोध न

'साणीपावार' इत्यादि। गृहस्वामीकी आज्ञा लिये विना टट्टर या कम्बल आदि किसी वस्तुसे ढँके हुए या सनके परदासे बद द्वारको तथा किवाडको स्वयं न खोले, क्योंकि ऐसा करना स्नानादि करती हुई स्त्री आदिको अप्रतीतिका कारण है, तथा लोकव्यवहारसे भी अनुचित है, अत: आवश्यकता होने पर उसके स्वामीको पूछ करके ही किवाड परदा आदि खोलना चाहिए ॥ १८ ॥

साणीपावार० ઇત્યાદિ ગૃહસ્વામીની આજ્ઞા લીધા વિના ટાટ યા કામળી આદિ કોઈ વસ્તુથી ઢાંકેલું યા સણના પડદાથી બંધ કરેલું એવું દ્વાર તથા કમાડ, સાધુ પોતે ન ખોલે, કારણ કે એમ કરવું એ સ્નાનાદિ કરતી સ્ત્રી આદિને અપ્રતીતિનું કારણ બને છે, તથા લોકવ્યવહારની પણ અનુચિત છે તેથી જરૂર પડતાં તેના સ્વામીને પૂછી લઈને જ કમાડ પડદો આદિ ખોલવાં જોઈએ. (૧૮)

---

१ परदा-परान् परपुरुषान् दर्शनादानेन द्यति=खण्डयतीति परदा ।

करे, (किन्तु) फासुयं=प्राशुक-जीवरहित ओगासं=स्थण्डिलभूमिको नच्चा=जानकर अणुन्नविय=गृहस्थकी आज्ञा लेकर वोसिरे=मल-मूत्रका त्याग करे ॥१९॥

टीका--'गोयरग्ग०' इत्यादि। पूर्वं निवृत्तबाधोऽपि गोचराग्रप्रविष्टो मुनिः पुनस्तद्बाधायामुपस्थितायां वर्चो-मूत्रं=मलं प्रस्रवं च न-धारयेत्=नावरुन्ध्यात्। यत उक्तम्—

'जओ मुत्तनिरोहे चक्खूवघाओ भवति, वच्चनिरोहे जीविओवघाओ असोहण य आयविराहणा, इत्यादि।

नन्वेवं तर्हि किं कुर्यात्? इत्याह—प्रासुकं=निर्जन्तुकं निरवद्यमित्यर्थः, अवकाशं=स्थण्डिलं ज्ञात्वा, अनुज्ञाप्य=गृहस्थं संसूच्य तदाज्ञामादायेत्यर्थः, व्युत्सृजेत्=परित्यजेत्।

मूलम्—णीयदुवारं तमसं कुट्ठगं परिवज्जए।
अचक्खुविसओ जत्थ, पाणा दुप्पडिलेहगा ॥२०॥

छाया—नीचद्वारं तामसं, कोष्ठकं परिवर्जयेत्।
अचक्षुर्विषयो यत्र, प्राणाः दुष्प्रतिलेखकाः ॥२०॥

सान्वयार्थः—णीयदुवार=नीचे द्वारवाले तमसं=प्रकाशरहित कुट्ठगं=कोठेको परिवज्जए=वरजे अर्थात् वहां आहार पानी नहीं लेवे, क्योंकि जत्थ=जहां अचक्खुविसओ=आँखका प्रसार नहीं होता (वहां) पाणा=द्वीन्द्रिय आदि प्राणियोंका दुप्पडिलेहगा=प्रतिलेखन नहीं हो सकता ॥२०॥

टीका—'णीयदुवारं०' इत्यादि। नीचद्वारं=नीचं=निम्नं द्वारं प्रवेश-निर्गममार्गो

'गोयरग्ग०' इत्यादि। गोचरी जाने के पहले लघुनीत और बडीनीतकी शंकाको निवृत्त कर लेने पर भी यदि गोचरी के लिए चले जाने पर पुन लघुशंका हो जाय तो मल–मूत्र को रोके नहीं, क्योंकि कहा है–

"मूत्रके निरोध करने से नेत्रो को हानि होती है और मलका निरोध करने से जीवन को हानि पहुचती है, तथा बुरी तरह आत्मविराधना होती है।"

तो क्या करे सो बताते है–जीवरहित (निरवद्य) स्थान देखकर गृहस्थ की आज्ञा लेकर उस स्थानमें मल–मूत्र का त्याग करे ॥ १९ ॥

ગોયરગ્ગ૦ ઈત્યાદિ ગોચરીએ જતા પહેલા લઘુનીતિ અને બડીનીતની શંકાને નિવૃત કરવા છતા પણ જો ગોચરી માટે નીકળી ગયા પછી ફરી લઘુશંકા આદિની શંકા થઈ જાય તો મળ-મૂત્રને રોકવા નહિ, કારણ કે કહ્યુ છે કે-

મૂત્રનો નિરોધ કરવાથી નેત્રોને હાની થાય છે અને મળનો નિરોધ કરવાથી જીવનને હાનિ પહોચે છે, અને ખરાબ રીતે આત્મ-વિરાધના થાય છે,'

તો શું કરવુ, તે હવે બતાવે છે-જીવરહિત (નિરવદ્ય) સ્થાન જોઈને ગૃહસ્થની આજ્ઞા લઈને એ સ્થાનમાં મળ-મૂત્રનો ત્યાગ કરે (૧૯)

यस्य स तं तथोक्तम्, तादृशप्रदेशे प्रवेश-निर्गमाभ्यामात्मसंयमविराधनायाः संभवात्, तामसम्=तमोयुक्तमप्रकाशमित्यर्थः, कोष्ठकं=गृहाभ्यन्तरमपवरकादिकं परिवर्जयेत् न तत्राऽऽहारादिकं गृह्णीयादित्यर्थः। किं सामान्येनायं निषेधः? नेत्याह-यत्र=यस्मिन् कोष्ठकादौ, अचक्षुर्विषयः=अत्र 'अ' 'चक्षुर्विषयः' इति पृथक् पदद्वयं, तत्र 'अ' इति निपातो नञर्थकः 'अभावे नह्य-ऽ-नो-नाऽपि'-त्यमरात्, तथाच-चक्षुर्विषयः=चक्षुरिन्द्रियजन्य-व्यापारप्रसरः अ=न भवेदिति शेषः, ततः किमित्याह=प्राणाः=द्वीन्द्रियादयः दुष्प्रतिलेखकाः =दुर्निरीक्ष्या 'भवन्ती' ति शेषः, तत्र भिक्षां गृह्णतः साधोरीर्यैषणयोः शुद्धिर्न जायते ॥२०॥

मूलम्—जत्थ पुप्फाइं बीजाइं, विप्पइन्नाइं कुट्ठए।
अहुणोवलित्तं उल्लं, दट्ठूणं परिवज्जए ॥२१॥

छाया—यत्र पुष्पाणि बीजानि, विप्रकीर्णानि कोष्ठके।
अधुनोपलिप्तमार्द्रं, दृष्ट्वा परिवर्जयेत् ॥२१॥

सान्वयार्थः—जत्थ=जिस कुट्ठए=कोठेमें पुप्फाइं=फूल (और) बीयाइं=बीज विप्पइन्नाइं=बिखरे हुए हों उस कोठेको, तथा अहुणोवलित्तं=तुरन्तके लिपे हुए उल्लं=गीले कोठेको दट्ठूणं=देखकर परिवज्जए=वरजे ॥२१॥

टीका—'जत्थ' इत्यादि। यत्र कोष्ठके गृहे वा सचित्तानि पुष्पाणि बीजानि वा विप्रकीर्णानि=इतस्ततः प्रसृतानि भवेयुः, यद्वा तत्काललिप्तमत एवार्द्रं कोष्ठकादि तत् साधुः परिवर्जयेत्=तत्र न गच्छेदित्यर्थः ॥२१॥

'णीयदुवारं०' इत्यादि। नीचे द्वारवाले कोठेमें भिक्षाके लिए नहीं जाना चाहिये, क्योंकि उसमें जाने आने से आत्मा और संयमकी विराधनाका संभव है। तथा अन्धकारयुक्त कोठेमें भी आहार आदि ग्रहण न करे। तात्पर्य यह है कि जिस कोठे में अन्धकार के कारण नेत्रोंकी प्रवृत्ति न होती हो, और इसीलिए द्वीन्द्रिय प्राणी सरलता से दिखाई न देते हो उसमें भिक्षा लेने से ईर्या और एषणा की शुद्धि नहीं होती है ॥ २० ॥

'जत्थ पुप्फाइं०' इत्यादि। जिस कोठे आदिमें सचित्त पुष्प सचित्त बीज बिखरे हुए हो, तथा तत्काल लिपने से जो गीला हो उस कोठे या अन्य गृह आदि में प्रवेश न करे ॥२१॥

णोयदुवारं ઇત્યાદિ નીચા દ્વારવાળા ઓરડામાં ભિક્ષા ને માટે ન જવું, કારણ કે તેમાં જવા આવવાથી આત્મા અને સંયમની વિરાધનાનો સંભવ છે તથા અંધકારયુક્ત ઓરડામાં પણ આહાર આદિ ગ્રહણ ન કરવા, તાત્પર્ય એ છે કે જે ઓરડામાં અંધકારને કારણે નેત્રો કામ ન કરી શકતા હોય અને તેથી કરીને દ્વીન્દ્રિયાદિ પ્રાણી સહેલાઈથી ન જોઈ શકાતાં હોય તેમાં ભિક્ષા લેવાથી સાધુની ઈર્યા તથા એષણાની શુદ્ધિ જળવાતી નથી (૨૦)

जत्थ पुप्फाइं० ઇત્યાદિ જે ઓરડા આદિમાં સચિત્ત પુષ્પ સચિત્ત બીજ વેરાયેલા હોય તથા તત્કાળ લીંપવામાં આવેલ હોવાથી લીલો હોય તે ઓરડામાં અથવા ગૃહાદિમાં પ્રવેશ ન કરવો (૨૧)

मूलम्—एलगं दारगं साणं, वच्छगं वावि कोट्टए ।
उल्लंघिया न पविसे, विउहित्ताण व संजए ॥२२॥

छाया—एडकं दारकं श्वानं, वत्सकं वाऽपि कोष्ठके ।
उल्लङ्घ्य न प्रविशेत्, व्यूह्य वा संयतः ॥२२॥

सान्वयार्थः—एलगं=भेड दारगं=बालक साणं=कुत्ते वच्छगं=बछड़े अपिवा=इस प्रकार दूसरे अर्थात् बकरा-बकरी पाडा-पाडी आदिको उल्लंघिया=लांघ-करके, वा=अथवा विउहित्ताण=हाथ आदिसे हटाकर संजए=साधु कोट्टए=कोठ-घर-में न पविसे=प्रवेश नहीं करे ॥२२॥

टीका—'एलगं' इत्यादि । संयतः=भिक्षुः, एडकं=गड्डकं, दारकम्=अर्भकम्=श्वानं=कुक्कुरं, वत्सकं=गोशिशुं वा, अपिशब्दादजामहिष्यादिशिशुग्रहणम्, उल्लङ्घ्य=अतिक्रम्य व्यूह्य=अपोह्य हस्तादिनाऽपसार्येत्यर्थः, कोष्ठके न प्रविशेत् ॥२२॥

मूलम्—असंसत्तं पलोइज्जा, नाइदूरावलोयए ।
उप्फुल्लं न विणिज्झाए नियट्टिज्ज अयंपिरो ॥२३॥

छाया—असंसक्तं प्रलोकेत, नातिदूरमवलोकेत ।
उत्फुल्लं न विनिध्यायेत् निवर्त्तेताऽजल्पन् ॥२३॥

सान्वयार्थः—असंसत्त=आसक्तिरहित होकर पलोइज्जा=देखे अर्थात् रागादिपूर्वक किसीको न देखे, नाइदूरावलोयए=अत्यन्त दूर दृष्टि डालकर-लम्बी दृष्टिसे न देखे तथा उप्फुल्लं=आँखे फाड-फाडकर अथवा मुसकराता हुआ टकटकी लगाकर न विणिज्झाए=न-

---

'एलगं०' इत्यादि । भेड तथा बकरा, बालक, कुत्ता, बछडा, तथा पाडा-पाडी आदिका उल्लंघन करके, अथवा उनको हाथ आदि से हटाकर साधु कोठे आदि में प्रवेश न करे ॥२२॥

'असंसत्तं०' इत्यादि । आसक्त होकर रागादिपूर्वक किसीका अवलोकन न करे । दाता जिस स्थान से आता हो उस स्थान से ज्यादा दूर न देखे, क्योंकि दूर तक देखने से किसीको ऐसी शंका हो जाय कि 'यह चोर है' इत्यादि । किसी पदार्थ की ओर आंखे फाड २ कर न देखे । यदि भिक्षा की प्राप्ति न हो तो दीन वचन न बोले न बडबडावे, किन्तु मौन सहित पीछा फिर जावे ।

एलगं० ઈત્યાદિ. ઘેટું તથા બકરું, બાળક, કૂતરું, વાછડો તથા પાડા પાડી આદિને ઓળંગીને અથવા તેને હાથ આદિથી હડાવીને સાધુ ઓરડામાં પ્રવેશ ન કરે (૨૨)

અસંસત્તં૦ ઇત્યાદિ આસક્ત થઈને રાગાદિપૂર્વક કોઈનું અવલોકન ન કરવું દાતા જે સ્થાનમાંથી આવતો હોય એ સ્થાનથી વધારે દૂર ન જોવું, કારણ કે દૂર સુધી જોવાથી કોઈને એવી શંકા આવી જાય કે 'આ ચોર છે' ઈત્યાદિ જો ભિક્ષાની પ્રાપ્તિ ન થાય તો દીન વચન ન બોલવા, કે ન બડબડવું, પરન્તુ મૌનસહિત પાછા ફરવું

हीं देखे, (भिक्षाकी प्राप्ति न हो तो) अयंपिरो=कुछ भी नहीं बोलता हुआ अर्थात् बड़बड़ाहट नहीं करता हुआ वहां से नियट्टिज्ज=वापस लौट जावे ॥२३॥

टीका—'असंसत्तं०' इत्यादि। असंसक्तम्=आसक्तिरहितं यथास्यात्तथा प्रलोकेत=पश्येत्, अन्यथा रागादिसम्भवात्। अतिदूरं=दातुरागमनप्रदेशात्परं नावलोकेत, साधौ तस्करतादिशङ्कासंभवात्। उत्फुल्लं=स्मेरं यथा स्यात्तथा नेत्रे विस्फार्येत्यर्थः न विनिध्यायेत्=न पश्येत्। कदाचिद्भिक्षाया अलाभे अजल्पन्=दैन्योपालम्भवचनानि अब्रुवन् निवर्त्तेत=प्रत्यावर्त्तेत।

'असंसत्तं' इति पदेन दृष्टचनुरागोऽपाकृतः। 'नाइदूरा०' इत्यादिना साधौ चौरत्वाद्याशङ्का निराकृता। 'उप्फुल्लं०' इत्यादिना, वराकेणानेन साधुना नावलोकितो नाप्यनुभूत एतादृशो विभवोऽतोऽयं दीन' इत्याद्याशङ्का व्युदस्ता ॥२३॥

मूलम्—अइभूमिं न गच्छिज्जा गोयरग्गगओ मुणी।
कुलस्स भूमिं जाणित्ता मियं भूमिं परक्कमे ॥२४॥

छाया—अतिभूमिं न गच्छेत्, गोचराग्रगतो मुनिः।
कुलस्य भूमिं ज्ञात्वा, मितां भूमिं पराक्रमेत् ॥२४॥

सान्वयार्थः—गोयरग्गगओ=गोचरीमे गया हुआ मुणी=साधु अइभूमिं=गृहस्थकी मर्यादित भूमिसे अगाडी उसकी आज्ञाके विना न गच्छिज्जा=नहीं जावे, (किन्तु) कुलस्स=गृहस्थके घरकी भूमिं=मर्यादित भूमिको जाणित्ता=जानकर मियं भूमिं=जिस घर मे जहांतक जानेकी मर्यादा हो वहांतक ही परक्कमे=जावे ॥२४॥

टीका—'अइभूमि०' इत्यादि। गोचराग्रगतो मुनिः अतिभूमिं=परप्रवेशाय गृह-

---

'असंसत्तं' पद से नेत्रविषयक अनुराग का त्याग प्रगट किया है। 'नाइदूरा०' इत्यादि पद से यह सूचित किया है कि साधुको ऐसा आचरण करना चाहिए जिससे किसी को चोर आदि होने का सदेह न हो। 'उप्फुल्लं०' इत्यादि पद से इस सदेह को दूर किया है कि कोई यह न समझे कि—'अरे! इस वेचारे साधुने ऐसी विभूती न कभी देखी है और न कभी भोगी है इसलिए यह वडा दीन है ॥ २३ ॥

'अइभूमिं०' इत्यादि। जिस घर में भूमि की जितनी मर्यादा हो उसे उल्लंघन करके

असंसत्तं० શબ્દથી નેત્રવિષયક અનુરાગનો ત્યાગ પ્રકટ કર્યો છે નાइदूरा० ઇત્યાદિથી એમ સૂચિત કરવામાં આવ્યું છે કે સાધુએ એવું આચરણ કરવું જોઈએ કે જેથી કોઈને ચોર આદિ હોવાનો સંદેહ ન પડે उप्फुल्लं० ઇત્યાદિ શબ્દથી એ સંદેહ દૂર કર્યો છે કે કોઈ એમ ન સમજે કે 'અરે! આ બિચારા સાધુએ એવી વિભૂતિ નથી કોઈવાર જોઈ અને નથી કોઈવાર ભોગવી તેથી એ બહુ જ દીન છે (૨૩)

अइभूमिं० ઇત્યાદિ જે ઘરમાં ભૂમિની જેટલી મર્યાદા હોય એને ઉલ્લંઘીને મુનિ

स्थानननुमतां भूमिमतिक्रम्य = उल्लङ्घ्य न गच्छेत् । तर्हि किं कुर्यात् ? इत्याह-कुलस्य भूमिं = मर्यादां स्थित्यवधिं ज्ञात्वा मितां = परिच्छिन्नां स्वावस्थानयोग्यां भूमिं = स्थानं पराक्रामेत् = गत्वा तिष्ठेत् , विपरीताचरणे हि गृहस्थरोषादिसम्भवः ॥२४॥

मूलम्-तत्थेव पडिलेहिज्जा भूमिभागं वियक्खणो

सिणाणस्स य वच्चस्स संलोगं परिवज्जए ॥२५॥

छाया—तत्रैव प्रतिलिखेत् , भूमिभागं विचक्षणः ।

स्नानस्य च वर्चसः संलोकं परिवर्जयेत् ॥२५॥

सान्वयार्थः—तत्थेव = जिस मर्यादित भूमि पर खडा है उसी भूमिभागे = भूमिभागको वियक्खणो = विचक्षण साधु पडिलेहिज्जा = प्रतिलेखन करे, अर्थात् वहांकी भूमि को पूंजकर खड़ा रहे और सिणाणस्स = स्नानघरकी तर्फ य=तथा वच्चस्स = टट्टी-पेशाब घरकी तर्फ संलोगं = दृष्टि परिवज्जए = न डाले ॥२५॥

टीका—'तत्थेव०' इत्यादि । विचक्षणः=निपुणः तत्रैव=स्वाधिष्ठातस्थान एव भूमिभागं प्रतिलिखेत्=संपश्येत्, स्नानस्य=स्नानगृहस्य वर्चसः=वर्चोगृहस्य च मलपरित्यागगृहस्येत्यर्थः, संलोकं=प्रेक्षणं परिवर्जयेत् । 'विअक्कणो' इत्यनेनाऽगीतार्थस्य स्वतन्त्रतया गोचरीगमनं निषिद्धम् । 'सिणाणस्स' इत्यादिना च नग्नस्त्र्यादिदर्शनाद्रागादिसंभव इति सूचितम् ॥२५॥

मुनि गृहस्थकी आज्ञा विना आगे नहीं जावे, किन्तु उस कुलकी मर्यादा को जानकर गमन करने योग्य परिमित स्थान तक ही जाकर खडा हो जाय—अर्थात् किसीकी मर्यादा का उल्लंघन न करे । इसके विपरीत आचरण करने से गृहस्थ को क्रोध आने आदि की संभावना रहती है ॥

'तत्थेव०' इत्यादि । विचक्षण भिक्षु जिस मर्यादित भूमि पर खडा है वहींके भूमिभागका प्रतिलेखन करे, स्नान घर तथा उच्चार आदिके स्थान की ओर दृष्टि न डाले । 'वियक्खणो' पद से अगीतार्थ साधु को स्वतन्त्र गोचरी करने का निषेध किया गया है । 'सिणाणस्स' इत्यादि पदो से नग्नस्त्री आदि दिख जाने के कारण रागादि भाव उत्पन्न होना सभव है यह सूचित किया गया है ॥ २५ ॥

ગૃહસ્થની આજ્ઞા વિના આગળ ન જાય, પરન્તુ એ કુળની મર્યાદાને જાણીને ગમન કરવા યોગ્ય પરિમિત સ્થાન સુધી જ જઈને ઊભો રહે, અર્થાત્-કોઈની મર્યાદાનુ ઉલ્લઘન ન કરે, એથી વિપરીત આચરણ કરવાથી ગૃહસ્થને ક્રોધ આદિ ઉત્પન્ન થવાની સંભાવના રહે છે (૨૪)

તત્થેવ૦ ઇત્યાદિ વિચક્ષણ ભિક્ષુ જે મર્યાદિત ભૂમિ પર ઊભો હોય ત્યાના ભૂમિભાગનું પ્રતિલેખન કરે, સ્નાન-ઘર તથા ઉચ્ચાર આદિના સ્થાન (જાજરૂ) ની તરફ દૃષ્ટિ ન દે. વિયક્ખણો શબ્દથી અગીતાર્થ સાધુને સ્વતંત્ર ગોચરી કરવાનો નિષેધ કરવામાં આવ્યો છે સિણાણસ્સ ઇત્યાદિ પદોથી 'નગ્ન સ્ત્રી આદિ દેખાઇ જવાને કારણે રાગાદિ ભાવ ઉત્પન્ન થવાનો સભવ છે'-એમ સૂચિત કરવામા આવ્યું છે. (૨૫)

मूलम्–दगमट्टियआयाणे, बीयाणि हरियाणि य ।
परिवज्जंतो चिट्ठिज्जा, सव्विंदियसमाहिए ॥२६॥

छाया—दकमृत्तिकाऽऽदानं, बीजानि हरितानि च ॥२६॥
परिवर्जयंस्तिष्ठेत्, सर्वेन्द्रियसमाहितः ॥२६॥

सान्वयार्थः–(और वहांभी) दगमट्टियआयाणे = सचित्त जल और मिट्टीयुक्त मार्गको बोयाणि=शाली आदि बीजोंको य =और हरियाणि=हरित कायको परिवज्जंतो = वरजता हुआ अर्थात् उससे हटकर सव्विंदियसमाहिए=सब इन्द्रियोंको गोपता हुआ चिट्ठिज्जा = खड़ा रहे ॥२६॥

टीका 'दगमट्टिय०' इत्यादि । 'दकमृत्तिकाऽऽदानं=दकं[1] च मृत्तिका चेति दकमृत्तिके, आदीयते=आनीयतेऽनेनेत्यादानं=मार्गः, दकमृत्तिकयोरादानं दकमृत्तिकाऽऽदानं-=जलमृत्तिकाऽऽनयनमार्गस्तत् । बीजानि = सचित्तानि शाल्यादीनि, हरितानि=वनस्पतिमात्राणि, चकारादन्यान्यप्यकल्प्यवस्तुजातानि परिवर्जयन् = परित्यजन् सर्वेन्द्रियसमाहितः = तत्तदिन्द्रियविषयव्यासङ्गरहितस्तिष्ठेत्=अवस्थिति कुर्यात् ॥२६॥

मूलम्–तत्थ स चिट्ठमाणस्स, आहारे पाणभोयणं ।
अकप्पियं न गेण्हिज्जा, पडिगाहिज्ज कप्पियं ॥२७॥

छाया—तत्र तस्मै तिष्ठते, आहरेत्पान-भोजनम् ।
अकल्पिकं न गृह्णीयात्, प्रतिगृह्णीयात्कल्पिकम् ॥२७॥

सान्वयार्थः–तत्थ = वहां चिट्ठमाणस्स=खड़े हुए तस्स = उस साधुके लिए (गृहस्थ) पाणभोयणं = आहार-पानी आहारे = लाकर देवे तो (साधु उसमें) अकप्पियं = अकल्पनीय आहार आदि न गेण्हिज्जा = नहीं लेवे, (किन्तु) कप्पियं = कल्पनीय होवे तो पडिगाहिज्ज = लेवे ॥२७॥

टीका—'तत्थ से०' इत्यादि । तत्र = गृहस्थगृहे तिष्ठते तस्मै[2] भिक्षवे गृहि-

---

'दगमट्टिय०' इत्यादि । सचित जल और मृतिका लाने का मार्गका, और शालि आदि सचित्त बीज, वनस्पतिकाय तथा अन्य अकल्प्य पदार्थोंका वर्जन करता हुआ-उनसे दूर हट कर सब इन्द्रियोका सयम करता हुआ खडा होवे ॥ २६ ॥

दगमट्टिय० ઇત્યાદિ. સચિત્ત જળ અને માટીનું અને શાલિ (ડાંગર) આદિ સચિત્ત બીજ, વનસ્પતિકાય તથા અન્ય અકલ્પ્ય પદાર્થોનું વર્જન કરતાં-તેનાથી દૂર હઠીને સર્વ ઇંદ્રિયોનો સંયમ કરતા થકા ઉભા રહે (૨૬)

---

१ दकशब्दो जलपर्यायवचन -'प्रोक्तं प्राज्ञैर्भुवनमतं जीवनीयं दक च । इति हालायुधकोशात् । २ सूत्रे प्राकृतत्वाच्चतुर्थ्याः षष्ठी ।

ण्यादिः पानभोजनं = पानं-पेयं तिलतण्डुलादिधावनजलम् भोजनं = भोज्यमन्नादिकम् आहरेत् = उपनयेत्-दद्यादित्यर्थः । तत्रायं विशेषः = उपनतेषु पानभोजनादिषु अकल्पिकं = कल्पितुमयोग्यमनेषणीयमित्यर्थः न गृह्णीयात् = नाददीत, कल्पिकं = कल्प्यं निरवद्यं प्रतिगृण्हीयात् ॥२७॥

१ २ ३ ५ ४

मूलम्–आहरंती सिया तत्थ, परिसाडिज्ज भोयणं ।

६ ७ ८ ११ १० १२ ९

दिंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥२८॥

छाया––आहरन्ती स्यात्तत्र, भोजनं परिशाटयेत् ।

ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥२८॥

सान्वयार्थः–और–आहरती = आहार-पानी देती हुई वह-दात्री सिया = कदाचित् अगर तत्थ = वहां भोयणं = भोजन-पान परिसाडिज्ज = नीचे गिरावे तो दिंतियं = देती-हुई उस बाईसे (साधु) पडियाइक्खे = कहे कि तारिस = इस प्रकारका आहार-पानी मे = मुझे न कप्पइ = नहीं कल्पता है ॥२८॥

टीका–'आहरंती०' इत्यादि । आहरन्ती = भिक्षामानीय ददती गृहिणी स्यात् = कदाचित् तत्र स्थाने भोजनम् = आहारं परिशाटयेत् = इतस्तो विकिरेत् जानुप्रमाणोच्चप्रदेशात् कणादिमात्रमपि, तदधःप्रदेशाच्च निरन्तर पातयेदिति वृद्धः, तदा ददतीं प्रति भिक्षुः आचक्षीत–ब्रुवीत, तादृशम् = उक्तप्रकारकमन्नादिकं मे = मम न-कल्पते = न-युज्यते न ग्राह्यमिति भावः ।

पाकादिगृहकार्याणां प्रायः स्त्र्यधीनत्वेन तत्रोपस्थितिप्राधान्यात्तद्ग्रहणम् ।२८।

'तत्थ से' इत्यादि । गृहस्थके घरमें खड़े हुए साधुको गृहिणी (स्त्री) आदि तिल तण्डुल आदिका धोवन तथा अन्नादिक देवे तो उनमें से अकल्पनीय (अनेषणीय) पदार्थों का ग्रहण न करे, कल्पनीयका ग्रहण करे ॥ २७ ॥

'आहरंती' इत्यादि । अशनादि देते समय दाता के हाथसे घुटनेसे ऊपरके प्रदेशसे यदि एक भी कण गिर जाय, अथवा घुटने से नीचेके प्रदेश से निरन्तर गिर रहा हो तो भिक्षु दाता से कहे कि ऐसा अन्नादिक मेरे लिए ग्राह्य नहीं है ।

तत्थ से ઇત્યાદિ ગૃહસ્થના ઘરમા ઊભેલા સાધુને ગૃહિણી (સ્ત્રી) આદિ તલ તંદુલ (ચોખા) આદિનુ ધોવણ તથા અન્નાદિક આપે તો એમાથી અકલ્પનીય (અનેષણીય) પદાર્થોને ગ્રહણ ન કરે, કલ્પનીયને ગ્રહણ કરે (૨૭)

आहरंती० ઇત્યાદિ. અશનાદિ દેતી વખતે દાતાના હાથમાથી ઘુંટણની ઉપરના પ્રદેશથી જો એક પણ કણ પડી જાય, અથવા ઘુંટણથી નીચેના પ્રદેશથી નિરંતર પડી રહ્યુ હોય તો ભિક્ષુ દાતાને કહે કે એવા અશનાદિ મારે ગ્રાહ્ય નથી

રસોઇનું કામ પ્રાયઃ સ્ત્રીઓને અધીન રહે છે અને રસોઇમા મુખ્યત્વે સ્ત્રી હાજર

मूलम्—संमद्दमाणी पाणाणि, बीयाणि हरियाणि य ।
असंजमकरिं नच्चा, तारिसं परिवज्जए ॥२९॥

छाया—संमर्दयन्ती प्राणान, बीजानि हरितानि च ।
असंयमकरीं ज्ञात्वा तादृशीं परिवर्जयेत् ॥२९॥

सान्वयार्थः—तथा-पाणाणि=बेइन्द्रियादिक प्राणियोंको बीयाणि=शालि आदि बीजोंको य=और हरियाणि=हरि वनस्पतिकायको संमद्दमाणी=पैरोंसे कुचलती हुई (आहार-पानी देवे तो) उसे असंजमकरिं=साधुके लिये अयतना करनेवाली नच्चा=जानकर (साधु) तारिसं=सदोष आहार देने वाली उसे परिवज्जए=वरजे अर्थात् उसके हाथसे आहार-पानी नहीं लेवे ॥२९॥

टीका—'संमद्दमाणी०' इत्यादि । प्राणान् बीजानी हरितानि च संमर्दयन्ती=पादसंघट्टनादिना पीडयन्ती अशनादिकं दद्यादिति शेषः, तदा असंयमकरीं=साधुनिमित्तमयतनाकारिणीम् ज्ञात्वा तादृशीम्=उक्तस्वरूपां सदोषमाहारादिकं ददतीं तां परिवर्जयेत् प्रत्यादिशेत् ,तद्धस्ततो नान्नादिकं गृण्हीयादित्यर्थः । इयं भिक्षादानार्थमागच्छन्ती प्राणादीनि मर्दयतीति तद्विराधना मय्यप्यापद्येतेति भावयन् भिक्षां न गृह्णीयादिति भावः ॥

मूलम्—साहट्टु निक्खवित्ताणं, सचित्तं घट्टियाणि य ।
तहेव समणट्ठाए. उदगं संपणुल्लिया ॥३०॥

रसोई का काम प्राय. स्त्रीयो के अधीन रहता है और रसोईमें मुख्यतया स्त्री मौजूद रहती है, अत एव गाथा में स्त्रीका ग्रहण किया है ॥ २८ ॥

'समद्दमाणी०' इत्यादि । प्राण बीज वनस्पति आदि सचित्त को कुचलती—रौंदती हुई अन्नादि देवे तो साधुके लिए अयतना करनेवाली समझकर उसे त्याग देवे, अर्थात् उसके हाथसे अन्नादि ग्रहण न करे । तात्पर्य यह है कि—'यह भिक्षा देनेके लिए जो अयतना कर रही है ऐसी अवस्थामें आहार लेनेसे मुझे भी इस हिंसाका भागी बनना पडेगा' ऐसा विचार करके मुनि उससे आहार न ले ॥ २९ ॥

रहे छे, तेथी गाथामा स्त्रीने ग्रहण करवामा आवी छे. (२८)

संमद्दमाणी० इत्यादि प्राण बीज वनस्पति आदि सचित्तने कचडती—रोळती (स्त्री) अन्नादि आपे तो साधुने माटे अयतना करनारी समजीने तेने त्यजी दे. अर्थात् एना हाथथी अन्नादि ग्रहण न करे तात्पर्य ए छे के—'आ भिक्षा आपवाने जे अयतना करी रही छे, एवी अवस्थामा आहार लेवाथी मारे पण ए हिंसाना भागी बनवुं पडशे' एवो विचार करीने मुनि तेना हाथथी आहार ले नहि

९ १० १२ ११
ओगाहइत्ता चलइत्ता, आहर पाणभोयणं ।
१३ १४ १७ १५ १८ १६
दिंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥३१॥

छाया—संहृत्य निक्षिप्य, सचित्तं घट्टयित्वा ।
तथैव श्रमणार्थम्, उदकं संप्रणुद्य ॥३०॥
अवगाह्य चालयित्वाऽऽहरेत्पानभोजनम् ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥३१॥

सान्वयार्थः-समणट्ठाए=साधुके लिए साहट्टु=संहरण करके अर्थात् एक वरतनसे दूसरे वरतनमें डालकरके, निक्खवित्ताणं=सचित्त वस्तु पर आहारादिको रखकर अथवा आहारादिके ऊपर सचित्त वस्तुको रखकर, सचित्तं=सचित्त वस्तुका घट्टियाणिय=संघट्टा-स्पर्श-करके, तहेव=उसीप्रकार उदगं=सचित्त अप्कायको सपणुल्लिया=इधर-उधर रखकर, ओगाहइत्ता=वर्षासे ऑगनमें भरे हुए पानीमें अवगाहन-प्रवेश-करके, चलइत्ता=रुके हुए जलको नालीद्वारा या हाथसे वाहर निकालकर यदि पाणभोयण=आहार-पानी आहरे=देवे तो दिंतियं=देती हुई उस वाईसे (साधु) पडियाइक्खे=कहे कि तारिसं=इस प्रकारका आहारपानी मे=मुझे न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥३०-३१॥

टीका—'साहट्टु०' इत्यादि, 'ओगाहइत्ता' इत्यादि च । यदि श्रमणार्थं=भिक्षुनिमित्तं संहृत्य=भाजनाद्भाजनान्तरे संहरण कृत्वा,

संहरणस्य चतुर्भङ्गी यथा-
(१) सचित्ते सचित्तस्य, (२) सचित्तेऽचित्तस्य, (३) अचित्ते सचित्तस्य, (४)

'साहट्टु०' इत्यादि, और 'ओगाहइत्ता०' इत्यादि । यदि श्रमणके लिए एक बर्तन से दूसरे वर्त्तनमें सहरण करके (निकालकर), निक्षेपण करके (एकके ऊपर दूसरेको रखकर), सचित्तके साथ सघटा करके (जलको हिलाकर), तथा अवगाहन करके—वर्षा ऋतुमें घरके आगनमें रुके (भरे) हुए वारिसके जलमें प्रवेश करके या उसे नालीद्वारा निकालकर पान-भोजन देवे तो देनेवालीसे श्रमणकहे कि 'ऐसा अन्न-पान आदि मुझे ग्राह्य नहीं है ।

पहले सहरणका वर्णन करते है—सहरणकी चौभगो इस प्रकार होती है—-

સાહટ્ટુ૦ ઇત્યાદિ, અને ઓગાહઇત્તા૦ ઇત્યાદિ જો શ્રમણને માટે એક વાસણમાંથી બીજા વાસણમા સંહરણ કરીને (કાઢીને), નિક્ષેપણ કરીને (એકની ઉપર બીજાને રાખીને), સચિત્તની સાથે સઘટ્ટો કરીને, જળનુ ઉપમર્દન કરીને (જળને હલાવીને) તથા અવગાહન કરીને, વર્ષા ઋતુમા ઘરના આંગણામાં ભરેલા વરસાદના પાણીમાં પ્રવેશ કરીને યા એને નાળી (ખાળ) વડે કાઢી નાખીને ભોજન-પાન આપે તો એ આપનારીને શ્રમણ કહે કે "એવાં અન્ન-પાન મારે ગ્રાહ્ય નથી."

પહેલાં સંહરણનુ વર્ણન કરે છે સંહણની ચૌભગી આ પ્રકારે થાય છે:—

अचित्तेऽचित्तस्य संहरणम् । एषु चतुर्थो भङ्गो ग्राह्यः । अस्यापि चत्वारो भङ्गा भवन्ति, तद्यथा—

(१) शुष्के शुष्कस्य, (२) शुष्के आर्द्रस्य, (३) आर्द्रे शुष्कस्य, (४) आर्द्रे आर्द्रस्य संहरणम् ।

एतेऽपि पुनः प्रत्येकं स्वगताल्पत्वबहुत्वाभ्यां भिन्नाश्चतुर्भङ्गान् भजन्ते । तत्र [१] 'शुष्के शुष्कस्ये'-त्येतदाख्यप्रथमभङ्गस्य चतुर्भङ्गी यथा—

(१) अल्पशुष्के अल्पशुष्कस्य, (२) अल्पशुष्के बहुशुष्कस्य, (३) बहुशुष्केऽल्पशुष्कस्य, (४) बहुशुष्के बहुशुष्कस्य संहरणम् ।

[२] 'शुष्के आर्द्रस्ये' -त्येतद्द्वीतीयभङ्गस्य चतुर्भङ्गी यथा—

(१) अल्पशुष्केऽल्पार्द्रस्य, (२) अल्पशुष्के बह्वार्द्रस्य, (३) बहुशुष्केऽल्पार्द्रस्य, (४)

---

(१) सचित्तमें सचित्तका, (२) सचित्तमें अचित्तका (३) अचित्तमें सचितका, (४) अचित्तमें अचित्तका ।

इन चार भगोमेंसे चौथा भंग साधुको कल्पनीय है । इसके भी चार भग होते है—

(१) सूखेमें सूखेका (२) सूखेमं गीलेका ।

(३) गीलेमें सूखेका, (४) गीलेमें गीलेका ।

ये चारो भग भी अल्पता और बहुलताके भेदसे चार चार प्रकारके होते हैं—

[१] 'सूखेमें सूखेका' इस प्रथम भंगकी चौभंगी इस तरह है—

(१) थोड़े सूखेमें थोड़े सूखेका, (२) थोड़े सूखेमें बहुत सूखेका । (३) बहुत सूखेमें थोडे सूखेका, (४) बहुत सूखेमें बहुत सूखेका ।

[२] 'सूखेमें गीलेका' इस दूसरे भंगकी चौभगी—

(१) थोडे सूखेमें थोडे गीलेका, (२) थोड़े सूखेमें बहुत गीलेका, (३) बहुत सूखेमें

---

(१) સચિત્તમાં સચિત્તનું, (૨) સચિત્તમા અચિત્તનું, (૩) અચિત્તમાં સચિત્તનુ, (૪) અચિત્તમાં અચિત્તનું

એ ચાર ભાંગામાથી ચોથો ભાંગો સાધુને માટે કલ્પનીય છે એના પણ ચાર ભાગા થાય છે—

[૧] સૂકામાં સૂકાનુ, (૨) સૂકામા લીલાનુ, (૩) લીલામા સૂકાનુ અને (૪) લીલામા લીલાંનુ

એ ચાર ભાગો પણ અલ્પતા અને બહુલતાના ભેદ કરીને ચાર ચાર પ્રકારના થાય છે:—

[૧] 'સૂકામાં સૂકાનુ' એ પ્રથમની ચૌભંગી આ પ્રમાણે છે.-

(૧) થોડા સૂકામા થોડા સૂકાનુ, (૨) થોડા સૂકામા બહુ સૂકાનુ (૩) બહુ સૂકામા થોડા સૂકાનું, (૪) બહુ સૂકામા બહુ સૂકાનુ

[૨] 'સૂકામા લીલાનુ' એ બીજા ભાગાની ચૌભ ગી-

बहुशुष्के बह्वार्द्रस्य संहरणम् ।

[३] 'आर्द्रे शुष्कस्ये'-ति तृतीयभङ्गस्य चतुर्भङ्गी यथा –

(१) अल्पार्द्रेऽल्पशुष्कस्य (२) अल्पार्द्रेबहुशुष्कस्य, (३) बह्वार्द्रेऽल्पशुष्कस्य, (४) बह्वार्द्रे बहुशुष्कस्य संहरणम् ।

[४] 'आर्द्रे आर्द्रस्ये'-ति चतुर्थभङ्गस्य चतुर्भङ्गी यथा—

(१) अल्पार्द्रेऽल्पार्द्रस्य, (२) अल्पार्द्रे-बह्वार्द्रस्य, (३) बह्वार्द्रेऽल्पार्द्रस्य, (४) बह्वार्द्रे बह्वार्द्रस्य संहरणम् ।

आसु पूर्वोक्तभङ्गीषु प्रत्येकचतुर्भङ्ग्याः 'अल्पशुष्केऽल्पशुष्कस्य' बहुशुष्केऽल्पशुष्कस्ये–त्यादिरूपौ प्रथम-तृतीयभङ्गौ कल्प्यौ शेषावकल्प्यौ, तथाग्रहणे पात्रोत्थापनादिना दातुः कष्ट-पात्रस्फुटन-तद्गतवस्तुविकरणाऽप्रीत्यादिसम्भवात्

थोडे गीलेका, (४) बहुत सूखेमे बहुत गीलेका ।

[३] 'गीलेमें सूखेका' इस तीसरे भंगकी चौभंगी—

(१) थोडे गीलेमे थोडे सूखेका, (२) थोड़े गीलेमें बहुत सूखेका, (३) बहुत गीलेमें थोडे सूखेका (४) बहुत गीलेमे बहुत सूखेका ।

[४] 'गीलेमें गीलेका' इस चौथे भंगकी चौभंगी—

(१) थोडे गीलेमें थोडे गीलेका (२) थोडे गीलेमे बहुत गीलेका । (३) बहुत गीलेमें थोडे गीलेका, (४) बहुत गीलेमे बहुत गीलेका ।

इन चारो चौभंगियोंमेंसे 'थोडा सूखेमें थोडा सूखा मिलाना' और बहुत सूखेमें थोडा सूखा मिलाना' ये पहले और तीसरे भंग ग्राह्य है । दूसरे और चौथे भंग ग्राह्य नहीं है । इस प्रकारके ग्रहण करने से वर्त्तन उठानेके कारण दाता को कष्ट, वर्त्तनका फूटजाना, और वस्तुका

---

(१) थोडा सूકામા થોડા લીલાનુ, (૨) થોડા સૂકામા બહુ લીલાનુ (૩) બહુ સૂકામા થોડા લીલાનુ, (૪) બહુ સૂકામા બહુ લીલાનુ.

[૩] 'લીલામાં સૂકાનુ' એ ત્રીજા ભાંગાની ચૌભંગી—

(૧) થોડા લીલામા થોડા સૂકાનુ, (૨) થોડા લીલામા બહુ સૂકાનુ, (૩) બહુ લીલામાં થોડા સૂકાનુ, (૪) બહુ લીલામા બહુ સૂકાનુ

[૪] લીલામા લીલાનુ' એ ચોથી ચૌભંગી—

(૧) થોડા લીલામા થોડા લીલાનુ, (૨) થોડા લીલામા બહુ લીલાનુ (૩) બહુ લીલામા થોડા લીલાનુ, (૪) બહુ લીલામા બહુ લીલાનુ

આ ચાર ચૌભંગીઓમાથી 'થોડા સૂકામા થોડુ સૂકુ મેળવવુ' અને 'બહુ સૂકામા થોડુ સૂકુ મેળવવુ' એ પહેલો અને ત્રીજો એ બે ભાગા ગ્રાહ્ય છે બીજા અને ચોથા ભાગા ગ્રાહ્ય નથી એ પ્રમાણે ગ્રહણ કરવાથી વાસણ ઉપાડવાને કારણે દાતાને કષ્ટ, વાસણ ફૂટી જવુ અને વસ્તુ વેરાઇ–ઢોળાઈ જવી, અને અપ્રીતિ થવી આદિ દૂષણ થાય છે, જેમકે કોઇ

निक्षिप्य=एकस्योपर्यन्यस्य निक्षेपण कृत्वा। निक्षेपणं च त्रिधा-सचित्तमचित्तं-मिश्रं चेति, एतानाश्रित्य तिस्रश्चतुर्भङ्ग्यो भवन्ति। तत्र-

[१] सचित्ता-ऽचित्तयोश्चतुर्भङ्गी यथा—

(१) सचित्ते सचित्तस्य, (२) सचित्तेऽचित्तस्य, (३) अचित्ते सचित्तस्य, (४) अचित्तेऽचित्तस्य निक्षेपणम् ।१।

[२] सचित्तमिश्रयोश्चतुर्भङ्गी यथा--

(१) सचित्त सचित्तस्य, (२) सचित्ते मिश्रस्य, (३) मिश्रे सचित्तस्य, (४) मिश्रे मिश्रस्य निक्षेपणम् ।२।

[३] अचित्त-मिश्रयश्चोतुर्भङ्गी यथा—

(१) अचिचेऽचित्तस्य, (२) अचित्ते मिश्रस्य, (३) मिश्रेऽचित्तस्य, (४) मिश्रे मिश्रस्य निक्षेपणमिति ।३।

विखरजाना और अप्रीति होना आदि दूषण होते है। जैसे किसी दाताने बहुत गीलेका या बहुत सूखेका सहरण करनेके लिए बडा भारी वर्त्तन उठाया तो उसे कष्ट होगा।

निक्षेपण दोष तीन प्रकारका है-(१) सचित्त, (२) अचित्त, (३) मिश्र। इन तीनोंको आश्रित करके तीन चौभंगियाँ होती है।

[१] सचित्त-अचित्तको चौभंगी-

(१) सचित्तपर सचित्तका, (२) सचित्त पर अचित्तका, (३) अचित्त पर सचित्तका, (४) अचित्त पर अचित्तका ॥१॥

[२] सचित्त-मिश्रकी चौभंगी—

(१) सचित्त पर सचित्तका, (२) सचित पर मिश्रका, (३) मिश्रपर सचित्तका, (४) मिश्र पर मिश्रका निक्षेप करना ॥२॥

[३] अचित्त-मिश्रकी चौभंगी

દાતાએ બહુ લીલાનુ યા બહુ સૂકાનુ સહરણ કરવાને માટે બહુ ભારે વાસણ ઉપાડયુ હોય તેને કષ્ટ થાય

નિક્ષેપણ દોષ ત્રણ પ્રકારને છે. (૧) સચિત, (૨) અચિત્ત, (૩) મિશ્ર એ ત્રણને આશ્રિત કરવાથી ત્રણ ચૌભ ગીઓ થાય છે

[૧] સચિત્ત અચિત્તની ચૌભ ગી.

(૧) સચિત્ત પર સચિત્તનુ, (૨) સચિત્તપર અચિત્તનુ, (૩) અચિત્ત પર સચિત્તનું (૪) અચિત્ત પર અચિત્તનું ।૧। (૨) સચિત્ત મિશ્રની ચૌભ ગી-

(૧) સચિત્તપર સચિત્તનુ (૨) સચિત્તપર મિશ્રનું (૩) મિશ્રપર સચિત્તનું ૪)) મિશ્ર પર મિશ્રનુ, નિક્ષેપણ કરવુ ।૨।

[૩] અચિત્ત-મિશ્રની ચૌભંગી—

पुनरपि पृथिव्यादिकायषट्कोपरि पृथिव्यादीनां निक्षेपणेन प्रथमचतुर्भङ्गीस्थित-प्रथमभङ्गस्य 'सचित्ते सचित्तस्ये'-त्येवंरूपस्य षट्त्रिंशद्भेदा भवन्ति, तद्यथा --

(१) पृथिव्यां पृथिव्याः, (२) अपाम्, (३) तेजसः (४) वायोः, (५) वनस्पतेः, (६) त्रसस्य निक्षेपणमिति षट् (६)।

एवमप्कायादावपि प्रत्येककायस्य निक्षेपणेन षट्त्रिंशद् भेदा जायन्ते। एवं शेषभ-ङ्गत्रयस्यापि प्रत्येकं षट्त्रिंशद् भेदा भवन्ति। संकलनया प्रथमचतुर्भङ्ग्याश्चतुश्चत्वारिंशदु-त्तरमेकशतं भङ्गा भवन्ति। उक्तप्रकारेण शेषचतुर्भङ्गीद्विकस्यापि भङ्गसम्पादने संकलनया सर्वे भेदा द्वात्रिंशदधिकानि चतुः शतानि (४३२)सम्पद्यन्ते।

---

(१) अचित्त पर अचित्तका, (२) अचित्त पर मिश्रणका। (३) मिश्रपर अचित्तका, (४) मिश्रपर मिश्रका नक्षेप करना ॥३॥

फिर भी पृथिवी आदि षट्काय पर पृथिवीकायका निक्षेपण करनेसे प्रथम चतुर्भगीके 'सचि-त्त पर सचित्तका' इस प्रथम भंगके छत्तीस भग होते हे। वे इस प्रकार है--

(१) पृथिवी पर पृथिवीका, (२) अप्का, (३) तेजका, (४) वायुका, (५) वनस्पतिका और (६) त्रसका निक्षेपण करना।

इसी प्रकार अप्काय आदि पर पृथिवीकाय आदि छह कायोका निक्षेपण करनेसे छत्तीस भंग होते है, अर्थात् छह काय पर छह कायका निक्षेपण होता है अत' छहसे छहका गुणन करने से प्रथम भंगके छत्तीस भेदोकी सख्या निकलती है। ऐसे 'सचित्त पर सचित्तका' 'सचित्त पर मिश्रका' मिश्र पर सचित्तका, और मिश्र पर मिश्रका' इन सब (४) भगोको छत्तीस छत्तीस सख्या जोड़ देनेसे (३६+३६+३६+३६)--एकसौ चँवालीस (१४४) भंग हो जाते है। दूसरी दो चौभंगियोंके भी इतने ही भंग होते है, उनको जोडनेसे चारसौ बत्तीस (४३२) भग होते है।

---

(१) અચિત પર અચિત્તનું, (૨) અચિત્ત પર મિશ્રનુ (૩) મિશ્ર પર અચિત્તનુ, (૪) મિશ્ર પર મિશ્રનુ નિક્ષેપણુ કરવુ. ૧૩।

વળી પણુ પૃથિવી આદિ ષટ્કાય પર પૃથિવીકાયનુ નિક્ષેપણુ કરવાથી પ્રથમ ચઉભંગીના 'સચિત્ત પર સચિત્તનુ' એ પ્રથમ ભાગાના છત્રીસ ભાગા થાય છે. તે આ પ્રમાણે છે—

(૧) પૃથિવી પર પૃથિવીનું, (૨) અપૂ (જળ) નુ (૩) તેજનુ (૪) વાયુનું, (૫) વન-સ્પતિનુ, (૬) ત્રસનુ નિક્ષેપણુ કરવુ

એ રીતે અપ્કાય આદિ પર પૃથિવીકાય આદિ છ કાયોનુ નિક્ષેપણુ કરવાથી છત્રીસ ભાગા થાય છે, અર્થાત છ કાય પર છકાયનુ નિક્ષેપણુ થાય છે એટલે છને છએ ગુણવાથી પ્રથમ ભંગના છત્રીસ ભેદોની સખ્યા નીકળે છે એમ 'સચિત્ત પર સચિત્તનુ' 'સચિત્ત પર મિશ્રનુ' 'મિશ્ર પર સચિત્તનુ'' અને 'મિશ્ર પર મિશ્રનુ'' એ બધા (૪) ભાગાની છત્રીસ-છત્રીસ સખ્યા જોડી દેવાથી (૩૬+૩૬+૩૬+૩૬) એકસો ચુવાળીસ (૧૪૪) ભાંગા થાય છે. બાકી બે ચૌભગીઓના પણુ એટલાજ ભેદ થાય છે, એને જોડવાથી ચાર-

इमे एककायस्योपर्येकस्यैव कायस्य निक्षेपणभेदाः प्रदर्शिताः, किन्तु 'एककाये कायद्वयस्य चैकस्ये' -त्यादिनिक्षेपणेन चाऽन्येषामपि संभवः, यथा--

'पृथिव्यां पृथिव्यप्काययोरित्यादिपृथिव्यप्काययोर्वनस्पते'-रित्यादि च स्वयमवसेयमिति विस्तरभयाद्विरम्यते।

पूर्वोक्तेषु भङ्गसमुदयेषु 'अचित्तेऽचित्तनिक्षेपण'-लक्षणभङ्गस्य कल्प्यत्वम्, शेषा आनन्तर्यस्वरूपाः पारम्पर्यस्वरूपा वा निखिला अकल्प्या एवेति बोद्धव्यम्।

सचित्तं=सचित्तपृथिव्यादिकं घट्टयित्वा=संस्पृश्य संचाल्य वा, संस्पर्शनं सचित्ताऽचित्त-मिश्रभेदात्त्रिविधं, तदपि पृथिव्यादिकायषट्केन भिद्यमानमष्टादशविधं, पुनर्दातृ-देय-भेदाभ्यां द्विविधतया संकलनया षट्त्रिंशद् भेदा जायन्ते, एतेषामपि पुनः-आनन्तर्य-पारम्पर्यभेदाद् द्वासप्ततिर्भेदा भवन्ति। एवं कायद्वयकायत्रिकादिसंस्पर्शनेनोत्तरोत्तरभूरिभे-

---

ये चारसौ बत्तीस (४३२) भंग एक काय पर एक कायका निक्षेपण करनेसे होते हैं, किन्तु एक काय पर दो कायका, जैसे--

पृथिवीकाय पर पृथिवीकायका और अप्कायका निक्षेपण करनेसे, तथा दो कायों पर एक काय का, जैसे पूर्वोक्त दो कायो पर वनस्पति आदि किसी एक कायका निक्षेपण करनेसे और भी बहुतेरे भग होते हैं। सयोगसे बननेवाले इन उत्तर भंगोको स्वयं समझ लेना चाहिए, विस्तार भयसे यहाँ नहीं बताते।

पूर्वोक्त भंगोमेंसे अचित्त पर अचित्तका निपेक्षण करनेरूप एक भंग कल्पनीय है, अवशेष साक्षात् या पारम्परिक निक्षेपणरूप सब भंग अकल्प्य हैं।

सस्पर्शन तीन प्रकारका है- (१) सचित्त सस्पर्शन, (२) अचित्त सस्पर्शन, और (३) मिश्र सस्पर्शन। इन तीनोके पृथिवी आदि षट्कायके भेदसे अठारह भेद होते है। और अनन्तर

સોને બત્રીસ (૪૩૨) ભાંગા થાય છે.

એ ૪૩૨ ભાંગા એક કાય પર એક કાયનું નિક્ષેપણ કરવાથી થાય છે પરન્તુ એક કાય પર બે કાયનું, જેમકે—

પૃથિવી કાય પર પૃથિવી કાયનું અને અપ્કાયનું નિક્ષેપણ કરવાથી, તથા બે કાયો પર એક કાયનું જેમ પૂર્વોક્ત બે કાયો પર વનસ્પતિ આદિ કોઇ એક કાયનુ નિક્ષેપણ કરવાથી બીજા પણ ઘણા ભાંગા થાય છે. એ સંયોગથી થતા ઉત્તર ભાંગા પોતાની મેળે સમજી લેવા; બહુ વિસ્તાર થવાને કારણે અહીં આપ્યા નથી

પૂર્વોક્ત ભાગામાંથી અચિત્ત પર અચિત્તનુ નિક્ષેપણ કરવારૂપ એક ભાંગો કલ્પનીય છે, બાકીના સાક્ષાત્ અથવા પારંપરિક નિક્ષેપણરૂપ બધા ભાંગા અકલ્પનીય છે.

સંસ્પર્શન ત્રણ પ્રકારનાં છે-(૧) સચિત્ત સંસ્પર્શન, (૨) અચિત્ત સંસ્પર્શન, અને (૩) મિશ્ર સંસ્પર્શન એ ત્રણેના પૃથિવી આદિ ષટ્કાયના ભેદે કરીને અઢાર ભેદ થાય છે દાતા અને દેય (વસ્તુ) ના ભેદે કરીને છત્રીસ ભેદ થાય છે. અને પછી તેવી જ પરંપરાના

दाः स्वयमूहनीयाः प्रेक्षावद्भिरिति ।

ननु पारम्परिकसंघट्टनेन दीयमानाऽऽहारादिवर्जने पृथ्वीसंघट्टनमनिवार्यमितितत्सं-घट्टनेऽपि वर्जनप्रसक्तौ भिक्षूणां सर्वदाऽऽहारप्रतिषेधप्रसङ्ग इति चेन्न, पृथिव्या अचलत-या तत्सञ्चलनाद्यभावेन तत्संघट्टने जीवबाधाया असम्भवात्, तत्संघट्टिताऽऽहाराऽऽदानं भिक्षूणामप्रतिषेध्यमिति भावः उक्तपरम्परिकसंघट्टिताऽऽहाराऽऽदानविषये प्रतिषेधश्चलाऽऽधा-रविषय', तत्र प्राणिपीडासंभवात् व्यवहारदोषाच्चेति भावः ।

एतेषु मध्ये गाथोक्तं सचित्तम्, अन्तर्गर्भितत्वान्मिश्रं च संस्पृश्य सञ्चाल्य वा त थैव= पुनरपि उदकम्= अप्कायं 'सचित्त' - मित्यनुवर्त्तते सम्प्रणुद्य=संप्रेर्य इतस्ततः कृ त्वेत्यर्थः ॥३०॥ तथा—अवगाह्य=वर्षाकाले 'गृहाङ्गणप्रतिरुद्धजलान्तः प्रविश्य,चालयित्वा= प्रणालिकादिना निस्सार्य च पानभोजनमाहरेत् तदा ददतीमित्यादि पूर्ववत् ॥ ३१ ॥

तथा परम्पराके भेदसे बहत्तर (७२) भेद होजाते हैं । इनके सिवाय दो कायका या तीन कायका स्पर्श करनेसे और भी भेद होजाते है, वे भेदबुद्धिमानोंको स्वयं विचार लेने चाहिए ।

प्रश्न— हे गुरुमहाराज ! यदि पारम्परिक सघट्टनसे दिये हुए आहार आदिका भी त्याग किया जायगा तो साधु कभी आहार नहीं ले सकेंगे क्योंकि पृथ्वीका सघट्टन अनिवार्य है —आहार आदि पृथिवीपर रहते है और सचित्त जल भी पृथ्वी पर रहता है, अतः सचित्त जलका पृथिवीका सघटा है और पृथिवीका आहारादिके साथ सघटा है, इसलिए आहारादि तथा सचित्त जलका पारम्परिक सघटा होता ही है ।

उत्तर—हे शिष्य ! पृथिवी अचल है, उसका सचलन नहीं होता, अत एव ऐसे सघटेसे जीवोंको बाधा नहीं होती, इसलिए पृथिवीसे संघट्टित आहारका ग्रहण करना साधुओंके लिए निषिद्ध नहीं है । पहले पारम्परिक सघट्टित आहारका जो त्याग बताया गया है उसे चल आधार विषयक ही समझना चाहिये, क्योंकि उस सघट्टनसे प्राणियोको पीडा होती है तथा व्यवहारदोष

ભેદે કરીને બોતેર (૭૨) ભેદ થાય છે તે ઉપરાંત બે કાયનો યા ત્રણ કાયનો સ્પર્શ કરવાથી બીજા પણ ભેદ થાય છે તે ભેદો બુદ્ધિમાનોએ સ્વયં વિચારી લેવા

પ્રશ્ન--હે ગુરૂ મહારાજ ? જો પારમ્પરિક સંઘટનથી આપેલા આહારાદિનો પણ ત્યાગ કરવામાં આવશે તો સાધુ કદાપિ આહાર લઈ શકશે નહિ, કારણ કે પૃથિવીનું સંઘટન અનિવાર્ય છે—આહારાદિ પૃથિવી પર રહે છે અને સચિત્ત જળ પણ પૃથિવી પર જ રહે છે. એટલે સચિત્ત જળનું પૃથિવી સાથે સંઘટન છે અને પૃથિવીનું આહારાદિ સાથે સંઘટન છે, તેથી કરીને આહારાદિનું તથા સચિત્ત જળનું પારમ્પરિક સંઘટન થતું જ હોય છે.

ઉત્તર—હે શિષ્ય ? પૃથિવી અચલ છે, તેનું સંચલન થતું નથી, તેથી એવા સંઘટનથી જીવોને બાધા થતી નથી એથી કરીને પૃથિવીથી સંઘટ્ટિત આહારનું ગ્રહણ કરવું એ સાધુ-ઓને માટે નિષિદ્ધ નથી પૂર્વે પારમ્પરિક સંઘટિત આહારનો જે ત્યાગ બતાવવામાં આવ્યો છે, તેને ચલ-આધાર વિષયક જ સમજવો જોઈએ, કારણ કે તે સંઘટનથી પ્રાણીઓને

---

१ 'गृहाङ्गने'ति तु सम्यक् तवर्गपञ्चमान्तरस्याङ्गनस्यैवाकारग्रन्थेषु निर्णीतत्वादिति श्रीरुचिपत्युपाध्यायाः ।

पुरःकर्मदोषमाह–'पुरेकम्मेण' इत्यादि ।

मूलम्–पुरेकम्मेण[1] हत्थेण[2], दव्वीए[3] भायणेण[4] वा[5] ।
दितियं[6] पडिआइक्खे[7], न[10] मे[8] कप्पइ[11] तारिसं[9] ॥३२॥

छाया–पुरःकर्मणा हस्तेन, दर्व्या भाजनेन वा ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, तादृशं मे न कल्पते ॥ ३२ ॥

पुरःकर्म दोष कहते हैं–

सान्वयार्थः–पुरेकम्मेण=साधु के आनेके पहले या सामने साधुके लिए सचित जलसे किया हुआ हस्तादिधावन पुरःकर्म कहलाता है, उस पुरःकर्मवाले हत्थेण=हाथसे दव्वीए=उस प्रकारकी कडछी अथवा चमचासे वा=अथवा भायणेण=दूसरे बरतनसे (आहारादि) दितियं=देती हुईको पडियाइक्खे=कहे कि तारिसं=इस प्रकारका आहार मे=मुझे न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥ ३२ ॥

टीका–पुरःकर्मणा=पुरः=पूर्वम् अग्रतो वा कर्म=क्रिया पुरःकर्म, तेन पुरःकर्मणा, लक्षणया पुरःकर्मयुक्तेनेत्यर्थः अस्य च हस्तादिभिस्त्रिभिः सम्बन्धः हस्तेन = करेण, दर्व्या = खजाकया भाजनेन = अमत्रेण वा ददती प्रत्याचक्षीतेत्यादि पूर्ववत् ।

नन्वेवं गृहस्थानां पचन पाचनादिक्रियामन्तरेणाऽऽहाराद्यसंभव इति साध्वागमनात्प्राक् पचनादिक्रियाऽवश्यं कर्त्तव्या, तथा सति पुरःकर्मदोषदूषितत्वेन साधूनामाहारग्रह-

---

भी लगता है ॥३०॥३१॥

अब पुरःकर्मदोष कहते हैं–'पुरेकम्मेण०' इत्यादि

साधुके आनेसे पहले या सामने की जानेवाली क्रिया को पुरः कर्म कहते है । पुरःयुक्त हाथसे, कुडछी (चमचा) से, अथवा वर्तनसे देनेवालीके प्रति साधु कहे कि ऐसा आहार मुझे नहीं कल्पता है ।

प्रश्न– हे गुरुमहाराज ! गृहस्थ जबतक पचन पाचन आदि क्रिया न करे तब तक आहार बन नहीं सकता है' अत एव मुनिके आगमनके पहले पचन पाचन आदि सावद्य क्रिया अवश्य करनी पडती है । ऐसा करनेसे वह आहार पुरः कर्म से दूषित होगा तो भिक्षु कभी भिक्षा ग्रहण

પીડા થાય છે તથા વ્યવહારદોષ પણ લાગે છે (૩૦-૩૧)

હવે પુરઃકર્મ દોષ કહે છે-**પુરેકમ્મેણ૦** ઇત્યાદિ.

સાધુ આવતાની પહેલા યા સાધુની સામે કરવામા આવતી ક્રિયાને પુરઃકર્મ કહે છે, પુર કર્મયુક્ત કડછીથી કે વાસણથી દેનારીની પ્રત્યે સાધુ કહે કે એવો આહાર મને કલ્પતો નથી

પ્રશ્ન—હે ગુરૂ મહારાજ ! ગૃહસ્થ જ્યાંસુધી પચન-પાચન આદિ ક્રિયા કરતો નથી, ત્યાંસુધી આહાર બની શકતો નથી એટલે મુનિના આગમન પહેલાં પચન-પાચનાદિ ક્રિયા જરૂર કરવી પડે છે એમ કરવાથી એ આહાર પુરકર્મથી દૂષિત થાય તો ભિક્ષુ કદાપિ

णाप्रसक्तिः साधुसमक्षं क्रियमाणानां क्रियाणां पुरःकर्मत्वे गृहस्थकृताऽभ्युत्थानाक्रियाणामपि पुरःकर्मत्वापत्तौ तद्गृहस्थप्रदत्तभिक्षाया अपि पुरःकर्मदोषयुक्तत्वेन ग्रहणाभावप्रसङ्गः ? इति चेत्, अत्रोच्यते—

व्युत्पत्त्याऽभ्युत्थानगमनपचनपाचनादीनामपि पुरःकर्मत्वसंभवेऽपि समयपरिभाषाबलात् केवलं भिक्षादानतः प्राक् साधुमुद्दिश्य सचित्तोदकेन हस्तभाजनादिप्रक्षालनस्यैव पुरःकर्मत्वेन सिद्धान्तितत्वम्, न तु पचन-पाचनाभ्युत्थानादेरपीति ।

अत्र दातृ-द्रव्य-गृहाण्याश्रित्याष्टौ भङ्गा भवन्ति यथा—

(१) स दाता (पुरःकर्मकर्त्ता), अन्यद् द्रव्यम्, अन्यद्गृहम् ।

(२) स दाता, अन्यद्द्रव्यम् तद्गृहम् (यत्र पुरःकर्म कृतम्) ।

(३) स दाता, तद्द्रव्यम् (यद्द्रव्यमुद्दिश्य पुरःकर्मः कृतम्), अन्यद्गृहम् ।

नहीं कर सकते, साधुके सामने की जानेवाली क्रियाको भी पुरः कर्म माना जाय तो गृहस्थकी अभ्युत्थान - वन्दन आदि क्रियाएँ भी पुरः कर्म कहलायेंगी, इसलिए उसके द्वारा दिया हुआ पुरः कर्मसे दूषित आहार साधु कैसे ग्रहण करेंगे ?

उत्तर– हे शिष्य ! व्युत्पत्तिसे पचन पाचन आदि क्रियाएँ भले ही पुरःकर्म कहलावें, किन्तु समय- (शास्त्र)- की परिभाषासे भिक्षादान से पहले साधुके उद्देश्य करके सचित्त जलसे हाथ या वर्त्तन आदिका प्रक्षालन करना ही पुरःकर्म कहलाता है, पचन पाचन आदि क्रियाओं को अथवा खडे होने आदिको पुरः कर्म नहीं कहते ।

इस पुरःकर्मके, दाता, द्रव्य और गृहकी विवक्षासे आठ भंग होते है, वे यहाँ बताते है—

१— वही (पुर. कर्म करनेवाला) दाता, अन्य द्रव्य, अन्य गृह ।

२— वही दाता, अन्य द्रव्य, वही गृह ।

३— वही दाता, वही द्रव्य, अन्य गृह ।

ભિક્ષા ગ્રહણ કરી શકે નહિ, સાધુની સામે કરવામાં આવનારી ક્રિયાને પણ જો પુરઃકર્મ માનવામાં આવે તો ગૃહસ્થની અભ્યુત્થાનવંદન-આદિ ક્રિયાઓ પણ પુરઃકર્મ કહેવાશે, તો પછી તેને હાથે આપવામાં આવેલો પુરઃકર્મથી દૂષિત આહાર સાધુ કેવી રીતે ગ્રહણ કરશે ?

ઉત્તર-હે શિષ્ય વ્યુત્પત્તિથી પચન-પાચન-આદિ ક્રિયાઓ ભલે પુરઃકર્મ કહેવાય, પરન્તુ સમય (શાસ્ત્ર)-ની પરિભાષા પ્રમાણે ભિક્ષાદાનની પહેલાં સાધુને ઉદ્દેશ્ય કરીને સચિત્ત જલથી હાથ યા વાસણ આદિ ધોવાં એ જ પુરઃકર્મ કહેવાય છે પચન-પાચન-આદિ ક્રિયાઓ અથવા ઊભા થવા આદિની ક્રિયા એ પુરઃકર્મ કહેવાતાં નથી,

આ પુરકર્મના, દાતા દ્રવ્ય અને ગૃહની વિવક્ષાએ કરીને આઠ ભાગા થાય છે, તે અહીં બતાવે છે—

૧ એજ (પુરઃકર્મ કરનાર) દાતા, અન્ય દ્રવ્ય, અન્ય ગૃહ

૨ એજ દાતા, અન્ય દ્રવ્ય' એજ ગૃહ

૩ એજ દાતા, એજ દ્રવ્ય, અન્ય ગૃહ

(४) स दाता, तद्द्रव्यं, तद्गृहम् ।
(५) अन्यो दाता, तद्द्रव्यम्, तद्गृहम् ।
(६) अन्यो दाता, तद्द्रव्यम्, अन्यद्गृहम् ।
(७) अन्यो दाता, अन्यद्द्रव्यं, तद्गृहम् ।
(८) अन्यो दाता, अन्यद्द्रव्यम्, अन्यद्गृहम् ।

एष्वष्टसु भङ्गेषु प्रथमाऽष्टमौ भङ्गौ साधूनां कल्प्या, तदितरे भङ्गा अकल्प्याः ।

साधूनुद्दिश्य करदर्व्यादिप्रक्षालने पुरःकर्मनिमित्तको दोषो भवत्येवेति न तद्दिने तत्राशनादिकं ग्राह्यम् ।

ननु कस्मिंश्चिद्भवने येन पुरःकर्माचरितं तदितरस्य करतो भिक्षोपादाने कथं दोषः ? इति चेदुच्यते—

४—— वही दाता,	वही द्रव्य,	वही गृह ।
५—— अन्य दाता,	वही द्रव्य'	वही गृह ।
६—— अन्य दाता,	वही द्रव्य,	अन्य गृह ।
७—— अन्य दाता,	अन्य द्रव्य,	वही गृह ।
८—— अन्य दाता,	अन्य द्रव्य,	अन्य गृह ।

इन आठ भंगोमेंसे पहला मग और आठवां भंग साधुके लिये कल्प्य है और अन्य सब अकल्प्य है ।

यह सदा स्मरण रखना चाहिये कि यदि साधुके निमित्त हाथ या कुडछी आदिको धोया हो तो पुरःकर्म दोष लगता ही है, इसलिये उस घरमें साधु, भिक्षा नहीं लेवे ।

प्रश्न— हे गुरुमहाराज ! किसी मकानमें एकने पुरःकर्म किया तो उससे आहार आदि न लेकर, दूसरे वर्त्तन या दूसरे व्यक्तिके हाथसे लिया जाय तो क्यों दोष लगता है ?

४	એજ દાતા,	એજ દ્રવ્ય,	એજ ગૃહ
૫	અન્ય દાતા,	એજ દ્રવ્ય,	એજ ગૃહ
૬	અન્ય દાતા,	એજ દ્રવ્ય,	અન્ય ગૃહ
૭	અન્ય દાતા,	અન્ય દ્રવ્ય,	એજ ગૃહ
૮	અન્ય દાતા,	અન્ય દ્રવ્ય.	અન્ય ગૃહ

આ આઠ ભાંગામાંથી પહેલો ભાગો અને આઠમો ભાગો સાધુને માટે કલ્પનીય છે અન બીજા બધા અકલ્પનીય છે

એ વાત સદા યાદ રાખવી કે જો સાધુને નિમિત્તે હાથ યા કડછી આદિને ધોયા હોય તો પુરકર્મા દોષ લાગે છે જ, તેથી એ દિવસે એ ઘરમાં સાધુ ભિક્ષા લે નહીં.

પ્રશ્ન–હે ગુરૂ મહારાજ ! કોઇ મકાનમા એકે પુરઃકર્મ કર્યું હોય તો તેનાથી આહારાદિ ન લેતા, બીજા વાસણથી યા બીજી વ્યક્તિના હાથથી લેવામાં આવે તો કેમ દોષ લાગે ?

यथा येन विषाक्तमन्नं सम्पाद्यते तदितरस्य हस्तादप्युपादीयमानं तदेवान्नं महतेऽनर्थाय कल्पते, तथा पुरःकर्मदूषितमपि । अत्रायं विशेषः—यत्र गृहे पुरःकर्म समाचरितं तत्र तस्मिन् दिवसे सर्वं द्रव्यमकल्प्यमेव ॥३२॥

मूलम्—एवं[1] उदउल्ले[2] ससिणिद्धे[3] ससरक्खे[4] मट्टिया[5] ऊसे[6] ।

हरियाले[7] हिंगुलए[8], मणोसिला[9] अंजणे[10] लोणे[11] ॥३३॥

गेरुय वन्निय-सेडिय,-सोरट्ठिज-पिट्ठ[12]-कुक्कुसकए[18] य[13] ।

उक्किट्ठ[14]-मसंसट्ठे[15], संसट्ठे[16]चेव[17] बोद्धव्वे[19] ॥३४॥

छाया—एवम् उदकार्द्रः सस्निग्धः, सरजस्को मृत्तिका ऊषः ।

हरितालं हिङ्गुलकं, मनःशिलाऽञ्जनं लवणम् ॥३३॥

गैरिक-वर्णिक-सेटिका,-सौराष्ट्रिका-पिष्ट-कुक्कुसाः कृतश्च ।

उत्कृष्टसंसृष्टः, संसृष्ट एव बोद्धव्यः ॥३४॥

सान्वयार्थः—एवं=इसी प्रकार उदउल्ले=टपकते हुए जलसहित ससिणिद्धे=गीले रेखाओंसे सहित या ससरक्खे=सचित्त रजसे गुण्ठित सहित हाथ आदि हो, (तथा) मट्टिया=सचित्त मिट्टी ऊसे=साजीखार हरियाले=हरताल हिंगुलए=हिंगलू मणोसिला=मैनसिल अंजणे=सौवीराञ्जन लोणे=सचित्त नमक ॥ गेरुय=गेरु वन्नि=पीली मिट्टी सेडिय=श्वेत मिट्टी-खड़ी सोरट्ठिज=सोरठी मिट्टी-गोपीचन्दन पिट्ठ=तत्कालका पीसा हुआ आटा (तथा) कुक्कुस=तत्कालके खांडेहुए धान्यके तुप-भूसे-से भरे हुए य=और उक्किट्ठं=चाकूसे वनाये हुए कोले, तूवे, ककडी आदिके कोमल कोमल टुकडे, इन पूर्वोक्त किसी वस्तुसे भी असंसट्ठे=खरडे-लिपे-हुए हाथ आदिको साधुके लिए किसी प्रकारसे अलिप्त वनाया हो, धोकर या पूंछकर साफ किया हो,

---

उत्तर—हे शिष्य ! जैसे—किसीने विष-मिश्रित आहार बनाया हो तो बनाने वालेसे न लेकर दूसरेके हाथसे लिया जाय तो भी वह आहार महान् अनर्थकारी होता है, उसी प्रकार, पुरःकर्म-दूषित आहार आदि भी अनर्थकारक होता है ।

इतनी फिर विशेषता समझनी चाहिये कि, जिस घरमें पुरःकर्म किया गया हो उस घरमें उस दिन सब द्रव्य अकल्प्य होते हैं ॥३२॥

ઉત્તર—હે શિષ્ય ? જેવી રીતે કોઈએ વિષમિશ્રિત આહાર બનાવ્યો હોય તો બનાવનારના હાથથી ન લેતા બીજાના હાથથી લેવામા આવે તોપણ એ આહાર મહાન અનર્થકારી થાય છે તેમ પુરઃકર્મદૂષિત આહારાદિ પણ અનર્થકારક થાય છે.

એટલી વિશેષતા સમજવી જોઈએ કે, જે ઘરમા પુરઃકર્મ કરવામા આવ્યુ હોય તે ઘરમા એ દિવસે બધા દ્રવ્યો અકલ્પનીય બને છે. (૩૨)

ऐसे हाथको संसट्ठे=चेव कए लिप्तही बोद्धव्वे=जान लेवे, अर्थात् इस प्रकारके असंसृष्ट हाथ आदिसे अथवा इनसे संसृष्ट हाथ आदि से साधु आहार-पानी नहीं लेवे, यह प्रकरणगत सम्बन्ध है ॥३३-३४॥

टीका-'एवम् उदउल्ले०' इत्यादि । एवम् =इत्थमेव पुरःकर्मवदित्यर्थः । उदकार्द्रः=गलत्सचित्तजलविन्दुकः, सस्निग्धः=ईषदार्द्रः=आर्द्रीभूतहस्तरेखादिकः-विन्दुनिपातरहित इति यावत् , सरजस्कः=सचित्तरजोऽवगुण्ठितः, हस्तादिर्बोद्धव्यः. तथा मृत्तिका=साधारणसचित्तमृत्तिका, ऊषः=क्षारमृत्तिका, हरितालं=स्वनामप्रसिद्धपीतवर्णधातुविशेषः, हिङ्गुलकं=स्वनामख्यातपार्थिवरागद्रव्यविशेषः, मनःशिला=स्वनामख्यातरक्तवर्णधातुविशेषः 'मेनसील' इतिप्रसिद्धः अञ्जनं=सौवीराञ्जनम् , लवणं=सचित्तसामुद्रिकलवणम् , गैरिक-वर्णिक-सेटिका-सौराष्ट्रिका-पिष्ट-कुक्कुसा इति, सूले आर्षत्वाल्लुप्तविभक्तिकं पदम् , तत्र गैरिकः=स्वनामप्रसिद्धो धातुः, वर्णिका=पीतवर्णमृत्तिका सेटिका=श्वेतमृत्तिका 'खडी' इतिभाषाप्रसिद्धा, सौराष्टिक=गोपीचन्दनं पिष्टं=गोधूमादिचूर्णम् , कुक्कुसः=तत्कालकण्डितधान्यतुषः, च=पुनः उत्कृष्टं=कूष्माण्डा-लाबू-त्रपुप-तरम्बुजादीनां शस्त्रकृतं श्लक्ष्णखण्डम् , एतैर्मृत्तिकादिभिरसंसृष्टः=साधवे भिक्षां ददामीति कृत्वा संसर्गसम्मार्जनेन तदलिप्तः, संसृष्टः=तत्संसर्गसम्मार्जनेनापि तल्लिप्त एव कृतः=विहितो हस्तादिर्बोध्यः । पुरःकर्मयुक्तेन हस्तादिनेव उदकार्द्रादिहस्तादिना, तथा मृत्तिकादिसंसृष्टहस्तादिकं केनापि विधिना साधुनिमित्तमसंसृष्टीकृत्य सम्मार्ज्य, एवं मृत्तिकादिसंसृष्टहस्तादिना च ददतीं प्रत्याचक्षीत-तादृशं मे न कल्पत इति ॥३३॥३४॥

'एव उदउल्ले' इत्यादि, 'गेरुय' इत्यादि ।

इसी प्रकार, गिरते हुए सचित्त जलकी बुदोसे युक्त, थोडा, गीला (हाथकी रेखा गीली हो), सचित्त रजसे सहित तथा साधारण सचित्त मिट्टी, खारी मिट्टी, हरताल, हिंगुल मेनसील, अजन, सचित्त नमक, गेरू, पीली मिट्टी, खडिया मिट्टी, गोपीचन्दन, ताजा पीसा हुआ गेहू आदिका आटा, तत्काल खांडा हुआ धान्यका तुष (बुस्सा), कुम्भडा (कद्दु), तुम्बा (ककडी), तथा तरबूजके छोटे२ खंड, इन सबसे हाथ लिप्त हो अथवा किसी प्रकारसे साधुके लिये उसे (सचित्तसे लिप्त हाथको) अलिप्त किया हो और उस हाथसे भिक्षा देवे तो साधु कहें कि 'ऐसा

एवं उदउल्ले ઇત્યાદિ गेरुय ઇત્યાદિ

એ પ્રમાણે, પડતાં સચિત્ત જળનાં બિંદુઓથી યુક્ત, થોડા લીલા (હાથની રેખાઓ લીલી હોય,) સચિત્ત રજથી સહિત, તથા સાધારણ સચિત્ત માટી, ખારી માટી, હરતાલ, હિંગળો મણસીલ, સુરમો, સચિત્ત મીઠું, ગેરૂ, પીળી માટી, ખડીની માટી, ગોપીચંદન, તાજા દળેલા ઘઉં આદિનો આટો, તાજા ખાંડેલા ધાન્યના તુષ (થૂલુ), કોહલુ, દૂધી તથા તડબૂચના કકડા, એ બધાથી હાથ લિપ્ત હોય અથવા કોઈ પ્રકારે સાધુને માટે તેને (સચિત્તથી ખરડાયેલા, હાથને) અલિપ્ત કર્યા હોય અને એ હાથથી ભિક્ષા આપે તો સાધુ કહે કે 'એવો

मूलम्-असंसट्ठेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा ।
दिज्जमाणं न इच्छिज्जा, पच्छाकम्मं जहिं भवे ॥३५॥

छाया—असंसृष्टेन हस्तेन, दर्व्या भाजनेन वा ।
दीयमानं नेच्छेत् , पश्चात्कर्म यत्र भवेत् ॥३५॥

सान्वयार्थः—जहिं = जहां पच्छाकम्मं = पश्चात्कर्म-साधुको आहार आदि देनेके बाद सचित्त जलसे हाथ आदिका धोना भवे = होनेवाला हो उस प्रकारके असंसट्ठेण = व्यञ्जन शाक कढ़ी आदि-से अलिप्त याने साफ 'ऐसे' हत्थेण = हाथ दव्वीए = कडछी वा = अथवा भायणेण = वरतनसे दिज्जमाण = दिये जानेवाले आहार आदिको साधु न इच्छिज्जा = इच्छा न करे, अर्थात् उस आहारादिको साधु न लेवे ॥३५॥

टीका—पश्चात्कर्म-दोषमाह-'असंसट्ठेण०' इत्यादि । यत्र = हस्तादौ पश्चात् = दानानन्तरं कर्म भवेत् = सम्भवेत् तादृशेन असंसृष्टेन = व्यञ्जनादिनाऽलिप्तेन हस्तेन दर्व्या भाजनेन वा 'असंसृष्टेने'-त्येतत्प्रत्येक सम्बध्यते, दीयमानमाहारादिकं नेच्छेत = नाभिलषेत मनसाऽपीत्यर्थात । यत्र स्वार्थ व्यञ्जनादिना हस्तादिकं नोपलिप्तं किन्तु भिक्षुमुद्दिश्य भक्तादिदानार्थं हस्ताद्युपलेपो जायते, तत्र दानानन्तरं सचित्तजलेन तत्करादिक्षालनसम्भवः, तच्च प्रक्षालनादिकं भिक्षुनिमित्तकमिति पश्चात्कर्मदोषो विज्ञेयः, यद्ये-

आहार हमें नही कल्पता है' ॥३३॥३४॥

अब पश्चात्कर्मदोष बताते है—'असंसट्ठेण' इत्यादि । भिक्षा देनेके अनन्तर गृहस्थको साधुके निमित्तसे सचित्त जल आदिके द्वारा हाथ आदि प्रक्षालन करनेकी संभावना हो तो साधु ऐसे व्यञ्जन आदिसे अलिप्त हाथ, कुडछी अथवा वर्त्तनसे दिये जानेवाले आहारकी अभिलाषा न करे ।

गृहस्थके हाथ अपनेलिये व्यञ्जन आदिसे लिप्त न हो तो उन हाथोसे साधुको भिक्षा देवे, तदनन्तर सचित्त जलसे हाथका धोना सम्भव है और वह प्रक्षालन साधुके निमित्तसे होगा, इसलिये वहाँ पश्चात्कर्म दोप लगता है । यदि ऐसे (लिप्त किये हुए) ही हाथसे स्वयं भोजन करे

આહાર મને કલ્પતો નથી. (૩૩-૩૪)

હવે પશ્ચાત્કર્મદોષ બતાવે છે-અસંસટ્ઠેણ ઇત્યાદિ

ભિક્ષા આપ્યા પછી સાધુને નિમિત્તે સચિત્ત જળ આદિ દ્વારા હાથ આદિ ધોઈ નાંખવાની ગૃહસ્થને માટે સંભાવના હોય, તો સાધુ એવા વ્યંજન આદિથી અલિપ્ત હાથ, કડછી અથવા વાસણથી આપવામાં આવનારા આહારની અભિલાષા ન કરે.

ગૃહસ્થના હાથ પોતાને માટે વ્યંજનાદિથી લિપ્ત ન હોય તો એ હાથથી સાધુને ભિક્ષા આપે, પછી સચિત્ત જળથી હાથ ધોવાનો સંભવ છે અને એ પ્રક્ષાલન સાધુના નિમિત્તે થાય તેથી તેમાં પશ્ચાત્કર્મદોષ લાગે છે. જો એવા (લિપ્ત કરેલા-ખરડાયેલા) જ હાથથી પોતે

विधेनापि हस्तादिना स्वयं भुञ्जीतान्यस्मै वा परिवेषयेत्तदा न पश्चात्कर्मदोषः, तत्र पश्चाद्भाविनः प्रक्षालनादेर्भिक्षुनिमित्तत्वाभावात्, यत्र दर्व्यादौ पश्चात्कर्मदोषसम्भावनाया अभावस्तत्र नायं प्रतिषेध इत्याशयः ॥३५॥

१ ३ २ ४ ६ ५

मूलम्—संसट्ठेण य हत्थेण दव्वीए भायणेण वा ।

७ ८ ९ १० ११ १२

दिज्जमाणं पडिच्छिज्जा जं तत्थेसणियं भवे ॥३६॥

छाया—संसृष्टेन च हस्तेन, दर्व्या भाजनेन वा ।
दीयमानं प्रतीच्छेत् , यत्तत्रैषणीय भवेत् ॥३६॥

सान्वयार्थः—संसट्ठेण = व्यञ्जनादिसे लिप्त हत्थेण=हाथ य=या दव्वीए=कडछी वा=अथवा = भायणेण = बरतनसे दिज्जमाणं = दियाजानेवाला आहारादि हो तत्थ= वहां-उस आहारादिमें जं=जो एसणियं = उद्गम-उत्पादना-आदि-दोषरहित भवे = हो, उसे पडिच्छिज्जा = लेवे ॥३६॥

टीका—'संसट्ठेण' इत्यादि । टीका स्पष्टा ॥३६॥

२ ४ ३ ५ १ ६

मूलम्—दुण्हं तु भुंजमाणाणं, एगो तत्थ निमंतए ।

७ ८ ९ ११ १० १२

दिज्जमाणं न इच्छिज्जा, छंदं से पडिलेहए ॥३७॥

छाया—द्वयोस्तु भुञ्जानयोः, एकस्तत्र निमन्त्रयेत् ।
दीयमानं नेच्छेत्, छन्दं तस्य प्रतिलेखयेत् ॥द७॥

सान्वयार्थः-तत्थ=वहां भुंजमाणाणं = भोजन करते हुए दुण्हं = दोनोंमेंसे तु = यदि एगो=एक आदमी निमतए=निमन्त्रित करे—आहारादि देना चाहे तो दिज्जमाणं= वह दियाजानेवाला आहारादि (साधु) न इच्छिज्जा = न चाहे-न लेवे; (किन्तु) से = उस नहीं निमन्त्रण करनेवालेके छंदं = अभिप्रायको पडिलेहए=देखे ॥३७

या दूसरेको परोसे तो पश्चात्कर्मदोष नहीं लगता, क्योकि बादमें होनेवाले उस प्रक्षालन आदि कर्मका निमित्त, साधु नहीं रहता है— अर्थात् जिस कुडछी आदिमें पश्चात्कर्म होनेकी सम्भावना न हो वहाँ यह निषेध नहीं है— यानी वह लेना कल्पता है ॥ ३५ ॥

ससट्ठेण' इत्यादि । ससृष्ट हाथ, कुडछी और वर्त्तनसे दिये जाने- वाले आहारमेंसे जो एषणीय अर्थात् उद्गम— उत्पादना— आदिदोषरहित हो वह साधु ग्रहणकरे ॥ ३६ ॥

ભોજન કરે યા બીજાને પીરસે તો પશ્ચાત્કર્મદોષ લાગતો નથી; કારણ કે ત્યારબાદ થનારૂં પ્રક્ષાલન-આદિ કર્મનું નિમિત્ત સાધુ રહેતો નથી અર્થાત્ જે કડછી આદિમાં પશ્ચાત્કર્મ થવાની સંભાવના નહિ હોય ત્યાં એ નિષેધ નથી એટલે કે એ આહાર લેવો સાધુને કલ્પે છે (૩૫)

સંસટ્ઠેણ ઇત્યાદિ સંસૃષ્ટ હાથ, કડછી અને વાસણથી આપવામાં આવતા આહારમાંથી જે એષણીય અર્થાત્ ઉદ્ગમ-ઉત્પાદન-આદિ દોષથી રહિત હોય તે સાધુ ગ્રહણ કરે. (૩૬)

टीका—'दुण्हं तु' इत्यादि। तत्र=तयोः=एकवस्तु स्वामित्वेन प्रसिद्धयोः, द्वयोः भुञ्जानयोः=(अत्र सप्तम्यर्थे षष्ठी भुजधातुश्च पालनाभ्यवहारोभयार्थकस्ततश्च) पालयतोः, भोक्तुमुद्यतयोश्च मध्ये (पालनार्थकत्वे तु परस्मैपदं स्वयमूहनीयम्) (यदि) एकः=अन्यतरः निमन्त्रयेत्=दातुमुद्यतेत, तदा दीयमानम् (आहारादि) भिक्षुः नेच्छेत्, किन्तु तस्य=दानोद्यतेतरस्य छन्दं=अभिप्रायं भ्रू-नेत्रविकारादिरूपचिन्हैः प्रतिलेखयेत्=प्रेक्षेत-'दानमस्येष्टं न वे'-ति निश्चिनुयादित्यर्थः ॥३७॥

ततः किं कुर्यादित्याह—'दुण्हं तु' इत्यादि।

मूलम्—दुण्हं तु भुंजमाणाणं, दोवि तत्थ निमंतए।
दिज्जमाणं पडिच्छिज्जा, जं तत्थेसणियं भवे ॥३८॥

छाया—द्वयोस्तु भुञ्जानयो,-र्द्वावपि तत्र निमन्त्रयेताम्।
दीयमानं प्रतीच्छे,-द्यत्तत्रैषणीयं भवेत् ॥३८॥

सान्वयार्थः—अगर-भुंजमाणाणं=भोजन या खाद्य पदार्थोंके रक्षण करते हुए दुण्हं=दोमेसे तु=यदि तत्थ=वहां दोवी=दोनों ही निमंतए=निमन्त्रण करे-आहारादि धामे तो तत्थ=उस आहारादिमेसे जं=जो एसणियं=एषणीय-निर्दोष हो वह दिज्जमाणं=दिया जानेवाला आहारादि पडिच्छिज्जा=लेवे ॥३८॥

टीका—यद्युभावपि निमन्त्रयेतां तदा तत्र यदेषणीयं तद् गृह्णीयादित्यर्थः ॥३८॥

मूलम्—गुव्विणीए उवण्णत्थं, विविहं पाणभोयणं।
भुंजमाणं विवज्जिज्जा, भुत्तसेसं पडिच्छए ॥३९॥

'दुण्हं तु०' इत्यादि। यदि एक वस्तुके दो स्वामी हो तथा दो गृहस्थ भोजन करनेके लिये उद्यत हुए हो, और उन दोनोंमेंसे एक व्यक्ति आहार देनेके लिये उद्यत हो तो ऐसे आहारकी इच्छा भिक्षु न करे, किन्तु दूसरेके भोंह नेत्र आदि विकारसे अभिप्रायका अनुभव करे कि वहराने (देने)में इसकी सम्मति है या नहीं? ॥३७॥

इसके पश्चात् क्या करे? सो कहते हैं—'दुण्हं तु०' इत्यादि। यदि वे दोनो आहार देनेको उद्यत हो और वह आहार एषणीय हो तो ग्रहण कर लेवे ॥३८॥

दुण्हं तु० ઇત્યાદિ જો એક વસ્તુના બે સ્વામી હોય તથા બે ગૃહસ્થો ભોજન કરતા હોય અને એ બેમાંથી એક આહાર આપવા માટે ઉદ્યત હોય તો એવા આહારની ઇચ્છા ભિક્ષુ ન કરે. પરંતુ બીજાનાં ભ્રમરો, નેત્ર, આદિના વિકારથી અભિપ્રાયનો અનુભવ કરે કે વહોરાવવામાં એની સંમતિ છે કે નહિ? (૩૭)

એ પછી શું કરે? કહે છે-दुण्हं तु० ઇત્યાદિ

જો આહાર આપવામાં એ બેઉ ઉદ્યત હોય અને એ આહાર એષણીય હોય તો સાધુ તે ગ્રહણ કરે (૩૮)

छया—गुर्विण्यै उपन्यस्तं, विविधं पान-भोजनम् ।
भुज्यमानं विवर्ज्जयेद्, भुक्तशेष प्रतीच्छेत् ॥३९॥

सान्वयार्थः-गुव्विणीए=गर्भवतीके लिए उपण्णत्थं=बनाकर रखा हुआ विविह=नाना प्रकारका पाणभोयणं=खान-पान (यदि वह) भुंजमाणं=खा रही हो तो (उस आहारादिको साधु) विवज्जिज्जा=वरजे-न लेवे, (किन्तु) भुत्तसेसं=गर्भवतीके भोजन करलेनेके बाद जो शेष रहा हो तो उसे पडिच्छए=लेवे ॥३९॥

टीका-'गुव्विणीए' इत्यादि । गुर्विण्यै=गर्भवत्यै, उपन्यस्तं=गर्भपोषणार्थं=तदीयरुच्यनुकूलतया सम्पादितं स्थापितं वा विविधं=नैकप्रकारकं पानभोजनं=पानं=पेयं-प्रपाणकादिकं, भोजनं=भोज्यं मोदकादिकं (तया) भुज्यमानम्=उपभुज्यमानं च विवर्जयेत्=न गृह्णीयात् यस्तदर्थोपकल्पिताऽऽहारादिग्रहणे यथारुच्याहाराद्यभावात्तदिच्छाभङ्गस्ततश्च गर्भपीडा-तत्पातादिसम्भवः । ननु तर्हि किं सर्वथा विवर्जयेदित्याह-'भुक्तेति-भुक्तशेषं=भुक्तादवशिष्टं प्रतीच्छेत्=उपाददीत ॥३९॥

मूलम्-सिया य समणट्ठाए, गुव्विणी कालमासिणी ।
उट्ठिया वा निसीएज्जा, निसन्ना वा पुणुट्ठए ॥४०॥
तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं ।
दिंतियं पडिआइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥४१॥

'गुव्विणीए०' इत्यादि । गर्भवती स्त्रीकी इच्छा के अनुसार अर्थात् उसके लिये बनाये हुए तथा गर्भको पुष्ट करनेवाले अनेक प्रकारके पान और भोजन (मोदक आदि) का और वह जिसका उपभोग कर रही हो उस आहारका (साधु) त्याग करे—ग्रहण न करे । क्योंकि उसके लिये बनाये हुए भोजनको ग्रहण करनेसे उसकी इच्छाका भंग होकर गर्भको पीडा पहुँचेगी, और गर्भपात तक होनेका सम्भव होजायगा । तो क्या वैसा आहार लेवे ही नहीं ? सो कहते है-गर्भवती के भोजन कर लेने बाद जो आहार अवशेष रहे उसे ग्रहण करनेमें दोष नहीं है ॥३९ ॥

'गुव्विणीए०' ઇત્યાદિ ગર્ભવતી સ્ત્રીની ઇચ્છાને અનુસરીને અર્થાત્ એને માટે બનાવેલા તથા ગર્ભને પુષ્ટ કરનારા અનેક પ્રકારના પાન અને ભોજન (મોદક આદિ) નો અને તે જેનો ઉપભોગ કરી રહી હોય તે આહારનો સાધુ ત્યાગ કરે—ગ્રહણ ન કરે, કારણ કે એને માટે બનાવવામાં આવેલા ભોજનને ગ્રહણ કરવાથી તેને રુચિને અનુસાર ભોજન નહિ મળે, તેથી એની ઇચ્છાનો ભંગ થશે અને ગર્ભને પીડા પહોંચશે અને ગર્ભપાત પણ થઇ જવાનો સંભવ રહેશે તો શું એવો આહાર લેવો જ નહિ ? તે માટે કહે છે કે-ગર્ભવતી ભોજન કરી રહે ત્યારપછી જે આહાર અવશેષ રહે તેને ગ્રહણ કરવામાં દોષ નથી. (૩૯)

छाया--स्याच्च श्रमणार्थं, गुर्विणी कालमासिनी ।
उत्थिता वा निषीदेत्, निषण्णा वा पुनरुत्तिष्ठेत् ॥४०॥
तद्भवेद्भक्त-पानं तु, संयतानामकल्पिक(त)म् ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥४१॥

सान्वयार्थः-य = और कालमासिणी=नजदीक प्रसवकालवाली गुव्विणी = गर्भवती स्त्री सिया = यदि-कदाचित् उट्ठिया व = पहले से खडी हो (किन्तु) समणट्ठाए = साधुके लिए अर्थात् साधुको आहारादि देनेके लिए निसीएज्जा = बैठे वा = अथवा निसन्ना= पहलेसे बैठी हुई (साधुके लिए) पुण = फिर उट्ठिए = ऊठे, तं तु=तो वह भत्तपाणं = आहार-पानी संजयाणं = साधुओंके लिए अकप्पियं = अकल्पनीय भवे=होता है, (अतः) दिंतियं=देनेवाली से (साधु) पडियाइक्खे=कहे कि तारिसं = इस प्रकारका आहारादि मे=मुझे न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥४०।४१॥

टीका-'सिया य०' 'तं भवे' इत्यादि । च = पुनः उत्थिता = दण्डवत्समवस्थिता, कालमासिनी = कालमासशब्देनात्र प्रसवकालमासो गृह्यते, स च सप्तमासादारभ्य सार्द्धसप्तरात्राधिकं नवमासं यावत्, तद्वती-प्राप्तप्रसवयोग्यसमयेत्यर्थः, गुर्विणी = गर्भवती, स्यात् = कदाचित्, श्रमणार्थं = साधुनिमित्तं-साधवे दातुमित्यर्थः- निषीदेत् = उपविशेत्, वा = अथवा, निषण्णा = उपविष्टा पुनरुत्तिष्ठेत्, तदा तत् = तया दीयमानं भक्तपानं तु संयतानां = संयमवताम् अकल्पिक(त)म् = अग्राह्यम्, अतो ददतीं प्रत्याचक्षीतेत्यादि पूर्ववत् ।

'सर्वं वाक्यं सावधारणं भवती'-तिन्यायेन उत्थिता यदि दातुमुपविशेदेव, उपविष्टा वोत्तिष्ठेदेव तदादीयमानमाहारादिकमकल्पिकं(तं) स्यादिति । तत्तात्पर्योऽवधारणेनेदमा-

---

'सिया य०' इत्यादि 'त भवे०' इत्यादि च । प्रसव-काल- मासवाली अर्थात् सातवें महीनेसे आरम्भ करके साढे सात रात सहित नववे महीने तक, अर्थात् सात वे महीनेके बाद प्रसव होनेतकके समय वाली स्त्री, यदि खडी हुई हो और साधुको भिक्षा देनेके लिए वेठे, अथवा बैठी हुई हो किन्तु भिक्षा देनेके लिये उठे तो उसके द्वारा दिया जानेवाला आहार, सयमियोके लिये कल्प्य नहीं है, ॥ अत देनेवाली (स्त्री) से कहे कि 'ऐसा आहार हमें कल्पता नहीं है ॥'

सव वाक्य, 'सावधारण अर्थात् निश्चय करानेवाले होते है' इस न्यायके बल से यहाँ पर

सिया य० ઇત્યાદિ तं भवे० ઇત્યાદિ પ્રસવકાળ માસવાળી અર્થાત્ સાતમા મહીનાથી આરભીને સાડા સાત રાત સહિત નવમા મહીના સુધી, એટલે કે સાતમા મહિના પછી પ્રસવ થાય ત્યાસુધીના સમયવાળી સ્ત્રી જો ઊભી હોય અને સાધુને ભિક્ષા આપવાને માટે બેસે, અથવા બેઠી હોય પરન્તુ ભિક્ષા આપવાને માટે ઉઠે તો તેણે આપેલો આહાર સયમીઓને માટે કલ્પનીય નથી, દેનારી સ્ત્રીને કહેવું કે 'એવો આહાર મને કલ્પતો નથી.'
બધાં-વાક્યો 'સાવધારણ અર્થાત્ નિશ્ચય કરાવવાવાળા હોય છે' એ ન્યાયાનુસાર અહીં

याति-उत्थिता तादृशी गर्भवती यद्युत्थितैव, उपविष्टा वोपविष्टैव दद्यात्तदा साधूनां नाऽकल्पिक(तं) किन्तु ग्राह्यमेवेति स्थविरकल्पिकापेक्षमिदम् । जिनकल्पिभिस्तु प्रथमदिवसादेव तया दीयमानं न गृह्यते इति वृद्धाः ।।

'कालमासिनी' पदेन, षष्ठमासानन्तरं गर्भस्य गुरुत्वेनोत्थानादिक्रियायां तत्सञ्चलनादिना तस्या गर्भस्य च पीडाऽवश्यभाविनीति संसूचितम् ।।४०।।४१।।

मूलम्—थणगं पिज्जमाणी (य), दारगं वा कुमारियं ।
तं निक्खिवित्तु रोयंतं, आहरे पाण-भोयणं ।।४२।।
तं भवे भत्त-पाणं तु, संजयाण अकप्पियं ।
दिंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ।।४३।।

छया—स्तन्यं पाययन्ती (च), दारकं वा कुमारिकाम् ।
तं निक्षिप्य रुदन्त,-माहरेत्पान-भोजनम् ।।४२।।

यह तात्पर्य निकलता है कि यदि देनेवाली बैठी हो और खडी होकरके ही आहार देवे, या खडी हो किन्तु बैठ करके ही आहार देवे तो उससे दिया जानेवाला आहार अकल्प्य होता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि ऐसी गर्भवती स्त्री यदि बैठी हो और बैठी बैठी ही आहार देवे या खडी हो और खडी-खडी ही आहार देवे तो साधुओंके लिये अकल्प्य नहीं है, किन्तु कल्पनीय ही है। यह बात, स्थविर-कल्पको अपेक्षासे समझनी चाहिए। वृद्धोंका मत है कि जिन कल्पी महाराज, गर्भके प्रथम दिनसे ही गर्भवती स्त्रीके हाथसे दिया जानेवाला आहार सर्वथा नहीं लेते है।

'कालमासिनी' पदसे यह सूचित किया है कि -छठे महीनेके बाद गर्भ भारीहो जाता है, इस कारण हिलने डोलनेसे गर्भवती को तथा उसके गर्भको पीडा अवश्यहोती है ॥ ४० ॥ ४१॥

એ તાત્પર્ય નીકળે છે કે જો આપનારી બેઠી હોય અને ઊભી થઈને જ આહાર આપે યા ઊભી હોય પરન્તુ બેસીને જ આહાર આપે તો એ રીતે આપવામા આવતો આહાર અકલ્પ્ય બને છે એનું તાત્પર્ય એ થયુ કે એવી ગર્ભવતી સ્રી જો બેઠી-બેઠી જ આહાર આપે યા ઊભી હોય તો ઊભી ઊભી આહાર આપે તો સાધુને માટે તે અકલ્પ્ય નથી, પરંતુ કલ્પનીય છે આ વાત સ્થવિર-કલ્પની અપેક્ષાએ સમજવી જોઈએ વૃદ્ધોનો મત એવો છે કે જિનકલ્પી મહારાજ ગર્ભના પ્રથમ દિવસથી જ ગર્ભવતી સ્રીના હાથથી આપવામાં આવતો આહાર સર્વથા લેતા નથી.

કાલમાસિની એ શબ્દથી સૂચિત કરવામા આવ્યું છે કે છઠા મહિના પછી ગર્ભ ભારે **થઈ જાય છે તેથી** હીલ-ચાલ કરવાથી ગર્ભવતી તથા એના ગર્ભને અવશ્ય પીડા થાય છે. **(૪૦-૪૧)**

तद्भवेद्भक्त-पानं तु, संयतानामकल्पिक(त)म् ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥४३॥

सान्वयार्थः- दारगं = लड़के कुमारियं = लडकी वा = अथवा नपुंसक किसीभी बच्चेको थणगं = स्तन्य-दूध पिज्जमाणी = पिलाती हुई तं = उस बच्चेको रोयंत = रोते हुएको निक्खिवित्तु = भूमि आदि पर रखकर (यदि) पाण-भोयणं = आहार-पानी आहरे = देवे, त तु = तो वह भत्तपाणं = आहार-पानी संजयाणं = साधुओंके लिए अकल्पनीय भवे = होता है, (अतः) दितियं = देनेवाली से पडियाइक्खे = कहे कि तारिसं = इस प्रकारका आहारादि मे = मुझे न कप्पइ = नहीं कल्पता है ॥४२-४३॥

टीका--'थणगं' इत्यादि । दारकं = शिशुम्, कुमारिकां = बालिकाम्, 'वा' शब्दात्संगृहीत नपुंसकञ्च, स्तन्यं = दुग्ध पाययन्ती, तं = पिबन्तं शिशुप्रभृतिकं रुदन्त = क्रन्दन्तं निक्षिप्य = भूम्यादौ निधाय पान भोजनमाहरेत् तदा तद्भक्त-पानं तु सयतानामकल्पिकं(तं) भवेत्, अतो 'ददतीं प्रत्याचक्षीत-तादृशं मे न कल्पत इति ।

अत्रायमभिसन्धिः-यदि दारकादिः केवल स्तन्यपानोपजीवी स्तन्यपानान्नभोजनोभयोपजीवी वा भवेत तं पाययन्ती स्तन्यपानं सन्त्यज्य पानभोजनं दद्यात्, अथवा यः शिशुः स्तन्यमपिबन्नङ्के समीपे वा तिष्ठेत्तं परित्यज्य दातुं पृथग्भूतायां तस्यां यदि स रुद्यात् तदापि तया दीयमानमाहारादिकं सयतानामकल्पिक(त)म्, शिश्वाद्याहारान्तराय-कर्कशहस्त-भूमि-मञ्चकादिस्पर्शजनितपीड़ा-मांसाशि-मार्जार-कुक्कुरादिजन्तुकृतोपघातादि-

---

'थणग' इत्यादि, 'त भवे' इत्यादि ।

स्त्री यदि, लडके, लडकी या नपुंसकको दूध पिलाती हो और उस पीनेवाले रोते हुए बालक आदिको, जमीन पर रख कर, पान भोजन देवे तो साधु कहे कि 'ऐसा आहार, मुझे नहीं कल्पता है, 'यहां तात्पर्य यह है कि, यदि बालक दूधमुहाँ हो अथवा दूध भी पीता हो और अन्न भी खाता हो, उस बालकको स्तनपान छुडा कर आहार पानी देवे, या कोई बालक, स्तन पान न करता हुआ भी गोदमें या समीपमे बैठा हो, उसे छोडकर स्त्री आहार देनेके लिये जावे और बालक रोने लगे तो भी उसके द्वारा दिया जानेवाला आहार, सयमियोको ग्राह्य

थणगं० ઇત્યાદિ, तं भवे० ઇત્યાદિ

જો સ્ત્રી પુત્ર પુત્રી કે નપુંસકને દૂધ પાતી હોય અને એ પીનારા રોતા બાળક આદિને જમીન પર મૂકીને ભોજન પાન આપે તો સાધુ કહે કે 'એવો આહાર મને કલ્પતો નથી.' અહીં તાત્પર્ય એ છે કે જો બાળક દૂધમુખ (દૂધ પર જ) હોય અથવા દૂધ પીતુ હોય તથા અન્ન પણ ખાતું હોય તો એવા બાળકને સ્તનપાન છોડાવીને આહાર પાણી આપે, અથવા કોઈ બાળક સ્તનપાન ન કરતુ હોય પણ ખોળામાં યા સમીપમાં બેઠું હોય, તેને છોડીને સ્ત્રી આહાર આપવાને માટે જાય અને બાળક રોવા લાગે તોપણ તેણે આપેલો આહાર, સંયમી-

सम्भवात्, दृश्यते हि क्वचन निर्जनादौ स्थाने शृगालादयो बालानपहृत्य पलायन्त इति ॥४२॥४३॥

मूलम्-जं[1] भवे[6] भत्तपाणं[2] तु[3], कप्पाकप्पंमि[4] संकियं[5] ।
दितियं[7] पडियाइक्खे[8], न[11] मे[10] कप्पइ[12] तारिसं[9] ॥४४॥

छाया-यद्भवेद्भक्त-पानन्तु, कल्प्याकल्प्ये शङ्कितम् ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥४४॥

सान्वयार्थः-जं=जो भत्तपाणं तु=अशनादि कप्पाकप्पम्मि=कल्प्य अकल्प्यके विषयमें संकियं=शङ्कित-शङ्कास्पद भवे=हो तो दिंतिय=देनेवालीसे पडियाइक्खे=कहे कि तारिसं=इस प्रकारका आहारादि मे=मुझे न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥४४॥

टीका—'जं भवे०' इत्यादि । यद्भक्तपानं तु कल्प्याकल्प्ये=कल्प्यं च अकल्प्यञ्चेति समाहारद्वन्द्वे कल्प्याकल्प्यं तस्मिन्, भावप्रधानश्चायं निर्देशस्ततश्च कल्प्यत्वेऽकल्प्यत्वे चेत्यर्थः, कल्प्यत्वमुद्गमादिदोषरहितत्वमकल्प्यत्वं च तत्सहितत्वम्, तत्र शङ्कितं=शङ्का(संशय)युक्तत्वम् 'इदं भक्तपानं कल्प्यमकल्प्यं वे'-त्येवंविधसंशयविषयीभूतमित्यर्थः, भवेत् तत् ददतीं प्रत्याचक्षीत-तादृशं मे न कल्पत इति ॥४४॥

नहीं है, क्योंकि इससे उसके बालकके आहारमें अन्तराय पडती है, मातृ-विरहजन्य दुःख होता है, कठोरहाथ, भूमि, खाट आदिके स्पर्शसे पीडा होती है और मासभोजी बिलाव कुत्ते आदि जानवरोंके द्वारा उपघात होनेका सम्भव रहता है । कहीं२ (पहाडो प्रदेशोंमें) शृगार (गीदड), बालकोंको उठा कर ले भागते है ऐसा देखा जाता है ॥४२ ॥४३॥

'जं भवे' इत्यादि । 'यह भक्त-पान कल्य है या अकल्प्य' इस प्रकार जिसमें सन्देह हो वह भक्त—पान देनेवाली से साधु कहे कि ऐसा आहार मुझे ग्राह्य नहीं है॥ ४४

ઓને માટે ગ્રાહ્ય નથી, કારણ કે તેથી તેના બાળકના આહારમા અતરાય પડે છે, માતૃ-વિરહજન્ય દુઃખ થાય છે, કઠોર હાથ, ભૂમિ, ખાટલા આદિના સ્પર્શથી પીડા થાય છે અને માસભોજી બીલાડા કૂતરાં આદિ જાનવરો દ્વારા ઉપઘાત થવાનો પણ સભવ રહે છે ક્યાંક ક્યાંક (પહાડી પ્રદેશોમા) શિયાળ બાળકોને ઉઠાવી જાય છે, એવુ પણ જોવામા આવે છે (૪૨-૪૩)

जं भवे० ઇત્યાદિ. 'આ ભોજન-પાન કલ્પ્ય છે કે અકલ્પ્ય ?' એ પ્રકારનો જેમા સંદેહ ઉત્પન્ન થાય તે ભોજન-પાન આપનારીને સાધુ કહે કે એવો આહાર મને ગ્રાહ્ય નથી. (૪૪)

'दकवारेण०' ઇત્યાદિ, तं च ઇત્યાદિ.
જળથી ભરેલા વાસણથી. ઘંટીના પડથી, મસાલો વાટવાના પત્થર-શિલાથી બાજોઠથી.

१ ११ २ ३ ४
मूलम्-दगवारेण पिहियं, नीसाए पीढएण वा ।
५ ६ ७ ९ १० ८
लोढेण वा विलेवेण 'सिलेसेण वि केणइ ॥४५॥
१२ १३ १५ १६ १४ १८ १७
तं च उब्भिंदिआ दिज्जा, समणट्ठाए व दावए ।
१९ २० २३ २२ २४ २१
दिंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥४६॥

छाया--दकवारेण पिहितं, निश्रया पीठकेन वा ।
लोष्टेन वाविलेपेन, [१]श्लेषेण वा केनापि ॥४५॥
तच्चोद्भिद्य दद्यात्, श्रमणार्थं वा दापयेत् ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥४६॥

सान्वयार्थः-दगवारेण=जलके भरे हुए घडेसे नीसाए=घंटोके पुडियेसे या पीसनेकी शिलासे वा=अथवा पीढएण=पीढेसे लोढेण=लोढेसे वा=अथवा विलेवेण=मिट्टी आदिके लेपसे वि=अथवा केणइ=दूसरे किसी प्रकारके सिलेसेण=मोम लाख आदि चिकने पदार्थसे पहियं=आच्छादित या मुद्रित कियाहुआ अशनादिका बरतन हो, तं च=उसे यदि समणट्ठाए=साधुके लिए उब्भिंदिआ=उघाड़ (खोल) कर दिज्जा=खुद देवे वा=अथवा दावए=दूसरेसे दिलावे तो दिंतियं=देती हुईसे साधु पडियाइक्खे=कहे कि तारिसं=ऐसा आहारादि मे=मुझे (लेना) न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥४५-४६॥

टीका-'दगवारेण०' 'तं च' इत्यादि । दकेति दकं=जल (प्रोक्तं आज्ञैर्भुवनममृतं जीवनीयं दकं च' इति हलायुधः,) वारयति=बहिर्निःसरणतो निरुणद्धीति दकवारः=जलसंभृत-कलशादिभाजनं तेन, निश्रया=घरट्टेन-पेषणचक्रेण शिलापट्टेन (पेषणार्थपाषाणेन) वा, पीठकेन=काष्ठनिर्मिताऽसनेन, लोष्टेन=शिलादिखण्डेन, विलेपेन=मृत्तिकादिलेपेन, केनापि श्लेषेण=सिक्थ-लाक्षादिना वा पिहितम्=आच्छादितं मुद्रितं वा यदन्नादिभाजनमिति प्रसङ्गलभ्यं भवेत्, तच्च श्रमणार्थमुद्भिद्य=उद्घाट्य (स्वयं) दद्याद्दापयेद्वा तदा गुरुतरवस्तूत्थापनक्लेशहिंसादिसम्भावनया ददतीं प्रत्याचक्षीतेत्यादि पूर्ववत् ॥४५॥४६॥

'दकवारेण०' इत्यादि, 'तं च' इत्यादि ।

जलमे भरेहुए बर्त्तनसे, चक्की के पुडसे, (मलासा आदि पीसनेके वजनदार पत्थर) से ढके हुए, तथा मिट्टी आदिके लेपसे, अथवा अन्य किसीसे छादे या लाखआदिसे मुद्रित किया हुवा अन्न-पान, साधु केलिये उघाडकर स्वय देवे या दूसरे से दिलावे तो क्लेश और हिंसाकी स

મસાલા વાટવાના વજનદાર પત્થરથી ઢાંકેલુ તથા માટી આદિના લેપથી અથવા અન્ય કોઈ પદાર્થથી છાંદેલુ કે લાખ આદિથી બંધ કરેલું વાસણ સાધુને માટે ઉઘાડીને અન્ન-

२ ३ ५ ४ ६ ८ ७
मूलम्—असणं पाणगं वा वि, खाइमं साइमं तहा ।
१ १२ १३ १४ ९ ११ १०
जं जाणेज्ज सुणेज्जा वा, दाणट्ठा पगडं इमं ॥४७॥
१५ २० १६ १७ १८ १९
तं भवे-भत्त-पाणं तु, संजयाण अकप्पियं ।
२१ २२ २५ २४ २६ २३
दितियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥४८॥

छाया—अशनं पानकं वापि खाद्यं स्वाद्यं तथा ।
यज्जानीयात् शृणुयाद्वा, दानार्थं प्रकृतमिदम् ॥४७॥
तद्भवेद्भक्त-पानं तु, संयतानामकल्पिक(त)म् ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥४८॥

सान्वयार्थः-जं=जो असणं=ओदन आदि अशन पाणगं=दाख आदिका धोवन वावि=अथवा खाइमं=केला आदि खाद्य तहा=और साइमं=एलची लूग आदि स्वाद्य इमं=यह 'दाणट्ठा' पथिकोंको देनेके लिए पगडं=उपकल्पितनिकाला हुआ है जो अपने या अपने कुटुम्बके लिए काममें नहीं लाया जावे ऐसा जाणेज्ज=जान लेवे वा=अथवा सुणिज्जा=किसीसे सुन लेवे तो तं=वह भत्तपाणं तु=आहार-पानी संजयाण=साधुओंके लिए अकप्पियं=अकल्पनीय भवे=होता है, (अतः) दितियं=देती हुईसे साधु पडिया-इक्खे=कहे कि तारिसं=इस प्रकारका आहारादि मे=मुझे (लेना) न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥४७-४८॥

टीका-'असणं०' इत्यादि, 'तं भवे०' इत्यादि च । यत् अशनं=भोज्यमोदन-पूरिकादिकं, पानकं=द्राक्षादिजलम्, अपि वा=अथवा खाद्य=कदलीफलादिकं, स्वाद्यम्=एला-

---

म्भावनाके कारण देनेवालीको कहे कि ऐसाआहार हमें ग्राह्य नहीं है । तात्पर्य यह है कि, भारी वस्तुके उठानेमें स्व-पर-विराधना आदि दोषोंकी सम्भावना होनेसे यह निषेध किया गया है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

'असणं० 'इत्यादि, तथा 'तं भवे ० ' इत्यादि ।
ओदन-आदि अशन, दाखका जल आदि पान, केला आदि खाद्य, लोंग, कपूर, इलायची,

---

પાન પોતે આપે યા બીજા પાસે અપાવે તો ક્લેશ અને હિંસાની સંભાવનાથી આપનારીને સાધુ કહે કે એવો આહાર મને ગ્રાહ્ય નથી તાત્પર્ય એ છે કે ભારે વસ્તુ ઉપાડવામાં સ્વપર-વિરાધના આદિ અનેક દોષોની સંભાવના હોવાથી એ નિષેધ કરવામાં આવ્યો છે. (૪૫-૪૬)

અસણં ઇત્યાદિ, તથા તં ભવે૦ ઈત્યાદિ
ઓદન આદિ અશન, દ્રાક્ષના ધોવણનું જળ આદિ પાન, કેળાં આદિ ખાદ્ય, લવીંગ,

लवङ्ग-कर्पूर-पूगीफलादिकम्, 'दानार्थं=देशान्तरादागतेन वणिगादिना साधुवादार्थं स्वकीयप्रशंसानिमित्तं दातुम्, इद प्रकृतं=नियतरूपेणोपकल्पितम्' इति जानीयात्=आमन्त्रणादिना अवगच्छेत्, शृणुयाद्वा=कुतश्चिदाकर्णयेद्वा तद्भक्तपानं तु संयतानामकल्पिकं भवेत्, अतस्तद्ददतीं प्रत्याचक्षीत–तादृशं मे न कल्पत इति ॥४७॥४८॥

२ ३ ५ ४ ६ ८ ७
मूलम्–असणं पाणगं वावि, खाइमं साइमं तहा ।
१ १२ १३ १४ ९ ११ १०
जं जाणेज्ज सुणेज्जा वा, पुण्णट्ठा पगडं इमं ॥४९॥
१५ २० १६ १७ १८ १९
तं भवे भत्त-पाणं तु संजयाण अकप्पियं ।
२१ २२ २५ २४ २६ २३
दितियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥५०॥

छाया--अशनं पानकं वापि, खाद्यं स्वाद्यं तथा ।
यज्जानीयाच्छृणुयाद्वा, पुण्यार्थं प्रकृतमिदम् ॥४९॥
तद्भवेद्भक्तपानं तु, संयतानामकल्पिक(त)म् ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥५०॥

सान्वयार्थः–जं असणं पाणगं वावि खाइमं तहा साइमं=जो अशन पान खादिम स्वादिम इमं पुण्णट्ठा पगडं='यह करुणाबुद्धिसे दीन-हीन-जनोंके लिए पुण्यार्थ निकाल रखा हैं' इस प्रकार जाणेज्ज=जान लेवे वा=अथवा सुणिज्जा=किसी दूसरेसे सुन लेवे तो तं=वह भत्तपाणं तु=आहार-पानी संजयाणं=साधुओंके लिए अकप्पियं=अकल्पनीय भवे=होता है, (अतः) दितियं=देती हुईसे साधु पडियाइक्खे=कहे कि तारिसं=इस प्रकारका आहारादि मे=मुझे (लेना) न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥४९॥–५०॥

सुपारी आदि स्वाद्य, 'यह देशान्तरसे आये हुए वणिक् आदिने अपनी प्रशंसाके निमित्त देनेके लिये रक्खा है ।' ऐसा जो समझे या किसीसे सुने तो वह अशनादि, संयमियोंको कल्पनीय नहीं है, इसलिये ऐसा भक्त-पान आदि देने वाली से कहे कि यह मुझे नहीं कल्पता है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

'असण०' इत्यादि, तथा 'त भवे० ' इत्यादि ।

जो 'अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य दया-बुद्धिसे दीन हीन जनोंको देनेके लियेहै–अर्थात् पुण्या-

---

કપૂર, ઇલાયચી , સોપારી આદિ સ્વાદ્ય "આ દેશાન્તરથી આવેલા વણિક આદિએ પોતાની પ્રશંસાને લીધે આપવાને માટે રાખેલ છે" એવું જો સમજવામાં કે કોઈ પાસેથી સાંભળવામાં આવે તો એ અશનાદિ સંયમીઓને માટે કલ્પનીય નથી તેથી એવા ભોજન-પાન આદિ આપનારીને સાધુ કહે કે એ મને કલ્પતા નથી (૪૭-૪૮)

અસણં૦ ઇત્યાદિ, તથા ત ભવે૦ ઇત્યાદિ

"આ અશન, પાન, ખાદ્ય, દયા બુદ્ધિથી દીન-હીન જનોને આપવાને માટે છે, અર્થાત

टीका – 'असणं०' इत्यादि, 'तं भवे' इत्यादि च । यदशनादिकं 'पुण्यार्थं=पुण्याय=सुकृतायेदं दयाधिया, वनीय (प)क-श्रमणार्थोपकल्पितस्याग्रे वक्ष्यमाणत्वादत्र दीनेभ्यो वितरणार्थमिदं प्रकृतम्=उपकल्पितम्-स्व-स्वपोष्यवर्गोपभोगोपभोग्यभिन्नतया स्थापितमिति यावत् ' इति जानीयात् शृणुयाद्वा तद्भक्तपानमित्यादि पूर्ववत् । पूर्वगाथायां 'दाणट्ठा' इत्यत्र दान-शब्देन स्वप्रशंसार्थं दानं गृह्यते, प्रकृते 'पुण्णट्ठा' इत्यत्र पुण्य-शब्देन स्वप्रशंसाव्यतिरिक्तफलाभिसन्धानेन दानं गृह्यते, इति दानपुण्ययोर्भेदः । 'महाव्रतधारिभ्य एव यद्दीयते तत्रैव पुण्यं न तु तदितरेभ्यः प्रदाने, तथा सति हि प्रत्युत पापकलापः समुत्पद्यते' इति केचिदाहुः, ('तेरहपंथी' शब्देन प्रसिद्धाः साधव आहुः,) तद् भ्रान्तिविलसितम् , भगवता हि 'पुण्णट्ठा पगडं' इत्यनेन 'पुण्यार्थमुपकल्पितं द्रव्यं साधूनामकल्प्य '-मिति बोधितं, तत्र महाव्रतधारकेतरेभ्यः प्रदातुमुपकल्पितस्य द्रव्यस्य तन्मते पुण्यार्थत्वाभावेन 'पुण्णट्ठा पगडं' इति वाक्यं निर्विषयतामापद्येत ।

र्थ बनाया गया है' ऐसा जाने या सुने तो वह सयमीके लिये ग्राह्य नहीं है, अत एव ऐसा आहार देनेवालीसे कहे कि–' यह भक्त-पान लेना मुझे नहीं कल्पता है' । पहली गाथामें आये हुए 'दाणट्ठा' पदके 'दान' शब्दसे 'अपनी प्रशंसाके लिये दिया जाने वाला दान अर्थ' ग्रहण किया है' किन्तु इस गाथामें 'पुण्णट्ठा' के 'पुण्य' शब्दसे अपनी प्रशंसाके सिवाय अन्य किसी प्रयोजनसे दिया जानेवाला 'दान' अर्थ होता है– दान और पुण्यमें यही अन्तर है ।

[1]कोई-कोई कहते है कि–''महाव्रतधारी मुनियोको जो दान दिया जाता है उसीमें पुण्य है – दूसरोको देनेमें नहीं, दूसरोको देनेसे उलटा पाप लगता है'' । उनका यह कहना भ्रान्ति–मूलक है, क्योकि, भगवान्ने 'पुण्णट्ठा पगडं' इस कथनसे पुण्यके लिये निकाले हुए द्रव्यको साधुओके

पुण्यार्थ बनाववामा आव्या छे " एवु जाणवामा या साभळवामा आवे तो ए सयमीने माटे ग्राह्य नथी. तेथी करीने एवो आहार आपनारीने साधु कहे के-ए भोजन-पान लेवा मने कल्पता तथी. पहेली गाथामा आवेला दाणट्ठा पदना दान शब्दथी 'पोतानी प्रशंसाने माटे आपवामां आवतुं दान ' एवो अर्थ ग्रहण कर्यो छे, पण आ गाथामां पुण्णट्ठा माना पुण्य शब्दथी 'पोतानी प्रशसा सिवायना अन्य कोई प्रयोजनथी आपवामा आवतु दान ' एवो अर्थ थाय छे. दान अने पुण्यमा ए अतर छे

[2]कोई-कोई कहे छे के "महाव्रतधारी मुनिओने जे दान आपवामा आवे छे तेमां पुण्य छे बीजाओने देवामा पुण्य नथी, बीजाओने देवामा उलटु पाप लागे छे ' एमनु एवु कहेवु भ्रान्तिमूलक छे, कारण के भगवाने पुण्णट्ठा पगडं ए कथन वडे पुण्यने माटे काढेला द्रव्यने साधुओने माटे अकल्पनीय बनाव्यु छे जो महाव्रतीओ सिवायना बीजाओने आपवामां पुण्य न होय तो भगवाने करेलो ए निषेध कोने लागु पडशे ?. तात्पर्य

---

१ तेरह संप्रदाय के साधु
२ तेरहपथी सप्रदायना साधुओ ।

ननु पुण्यार्थोपकल्पितद्रव्यस्याकल्प्यत्वस्वीकारे साधोः शिष्टकुले भिक्षाग्रहणमेवाकल्प्यं स्यात् , पुण्यार्थमेव तेषां पाकप्रवृत्तेर्न तु क्षुद्रजन्तुवत्स्वोदरपूर्त्तिमात्रार्थमिति चेन्न तथाहि–यद्यपि शिष्टकुले सम्पादितमन्नं पुण्यार्थप्रकृतं तथापि यदन्येभ्यो दातुमेव निष्पादितं न तु स्वोपभोगार्थं तदेवान्न 'पुण्यार्थप्रकृत'–शब्देनात्र गृह्यते, एतदेव देयमित्युच्यते । ईदृशस्यैव ग्रहणे प्रतिषेधः, आरम्भान्तरायादिदोषप्रसङ्गात् । यत्तु स्वस्य स्वपोष्यवर्गस्य चोपभोगार्थमुदारबुद्धया सम्पादितं, तच्चानियतदानार्थत्वाददेयमित्युच्यते । अस्य

वास्ते अकल्पनीय बताया है । यदि महाव्रतियोको छोडकर अन्य किसीको देनेमें पुण्य न हो तो भगवान्‌का किया हुआ यह निषेध किस पर लागू पड़ेगा है तात्पर्य यह है कि पुण्यके लिये निकाले हुए द्रव्यको मुनियोके लिये अकल्प्य बतानेसे यह सिद्ध होता है कि दूसरोको दान देनेसे भी पुण्यकी प्राप्ति होती है ।

शंका– यदि पुण्यार्थ निकाला हुआ द्रव्य, साधुओको ग्राह्य नहीं है तो शिष्टकुलमें साधु, कभी भिक्षा ग्रहण कर ही नहीं सकते, क्योकि शिष्ट जन, पुण्यके लिये ही रसोईका आरम्भ करते है, साधारण (क्षुद्र) प्राणियोकी तरह अपने ही उदरकी पूर्त्तिके लिये नहीं ।

समाधान– यद्यपि शिष्टकुलमें तैयार किया हुआ आहार पुण्यके लिये ही सपादित होता है तथापि जो आहार दूसरोंको ही देनेके लिये बनाया जाता है अपने उपभोगके लिये नही 'पुण्णट्ठा पगडं' (पुण्यार्थ निष्पादित) और वही 'देय' कहलाता है । इस प्रकारके आहारको ही ग्रहण करनेका निषेध किया गया है । क्योकि, उसे लेलेनेसे आरंभ और अन्तराय आदि दोषोका प्रसग आने का सभव होता है ।

जो आहार, अपने और अपने आश्रित जनाके उपभोगके लिये उदार बुद्धिसे निष्पन्न किया जाता है, वह अनियत दानके लिये होनेसे 'अदेय' कहलाता है । इस अदेय आहारको ग्रहण

એ છે કે પુણ્યને માટે કાઢેલા દ્રવ્યને મુનિઓને માટે અકલ્પ્ય બતાવ્યુ હોવાથી એમ સિદ્ધ થાય છે કે બીજાઓને દાન આપવાથી પણ પુણ્યની પ્રાપ્તિ થાય છે.

શકા–જો પુણ્યાર્થ કાઢેલુ દ્રવ્ય સાધુઓને માટે ગ્રાહ્ય ન હોય તો શિષ્ટ કુળમા સાધુ કદાપિ ભિક્ષા ગ્રહણ કરી શકશે જ નહિ, કારણ કે શિષ્ટજન પુણ્યને માટે જ રસોઇનો આરંભ કરે છે સાધારણ (ક્ષુદ્ર) પ્રાણીઓની પેઠે માત્ર પોતાનુ જ ઉદર ભરવાને માટે નહિ

સમાધાન–જો કે શિષ્ટ કુળમા તૈયાર કરવામા આવતો આહાર પુણ્યને માટેજ સંપાદિત હોય છે, તોપણુ જે આહાર બીજાઓને માટે બનાવવામા આવે છે,–પોતાના ઉપભોગને માટે નહિ, તે पुण्णट्ठा पगडं (पुण्यार्थ निष्पादित) અને એજ 'દેય' કહેવાય છે એ પ્રકારના આહારને પણ ગ્રહણ કરવાનો નિષેધ કરવામા આવ્યો છે, કારણ કે એ લેવાથી આરંભ અને અતરાય આદિ દોષોનો પ્રસગ ઉત્પન્ન થાય છે

જે આહાર પોતાને માટે અને પોતાના આશ્રિત જનોના ઉપભોગને માટે ઉદાર-બુદ્ધિથી નિષ્પન્ન કરવામાં આવે છે તે અનિયત દાનને માટે હોવાથી 'અદેય' કહેવાય છે એ

ग्रहणे साधोर्नारम्भादिदोषप्रसङ्गः, साध्वर्थपाकप्रवृत्तेरभावात् । किञ्च-शास्त्रे, शिष्टकुले शिक्षाग्रहणस्य विधानान्न तथाविधाऽऽहारग्रहणे दोष इत्यलं पल्लवितेन ॥४९॥५०॥

२ ३ ५ ४ ६ ८ ७
मूलम्—असणं पाणगं वावि, खाइमं साइमं तहा ।
१ १२ १३ १४ ९ १०
जं जाणेज्ज सुणेज्जा वा, वणिमट्ठा पगडं इमं ॥५१॥
१५ २० १६ १७ १८ १९
मूलम्—तं भवे भत्त-पाणं तु, संजयाण अकप्पियं ।
२१ २२ २५ २४ २६ २३
दिंतियं पडियाइक्खे न मे कप्पइ तारिसं ॥५२॥

छाया—अशनं पानकं वापि, खाद्यं स्वाद्यं तथा ।
यज्जानीयाच्छृणुयाद्वा, वनीय-(प)-कार्थं प्रकृतमिदम् ॥५१॥
तद्भवेद्भक्त-पानं तु, संयतानामकल्पिकम् ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥५२॥

सान्वयार्थः—जं असणं पाणगं वावि खाइमं तहा साइमं=जो अशन पान खादिम स्वादिम इमं वणिमट्ठा पगडं=यह भिखारी और दरिद्रोंके लिए उपकल्पित है ऐसा जाणेज्ज=जान लेवे वा=अथवा सुणिज्जा=किसी दूसरे से सुन लेवे तो तं=वह भत्तपाणं तु=आहार-पानी संजयाणं=साधुओंके लिए अकप्पियं=अकल्पनीय भवे=होता है, (अतः) दिंतियं=देती हुईसे साधु पडियाइक्खे=कहे कि तारिसं=इस प्रकारका आहारादि मे=मुझे (लेना) न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥५१॥५२॥

टीका—'असणं०' इत्यादि 'तं भवे०' इत्यादि च । यद् अशनादिकं वनीप-(प) कार्थम्=वनीय(प)कः=याचकमात्रं, यद्वा सिद्धान्नमात्रोपजीवी, अथवा वनी=स्वकीयदुर-

करनेसे साधुको आरम्भ-आदि दोष नहीं लगते है, क्योंकि वह साधुके निमित्त नहीं बनाया जाता है, तथा शास्त्रमें, शिष्टकुलमें भिक्षा ग्रहण करनेका विधान है, इसलिये भी शिष्टकुलमें आहार ग्रहण करनेमें दोष नहीं आसकता, इतना ही समाधान काफी है ॥४९॥५०॥

'असणं०' इत्यादि, तथा 'तं भवे०' इत्यादि ।

याचकमात्रको अथवा सिद्ध (तैयार) भिक्षा लेकर जीवन-निर्वाह करनेवालेको वनीपक कहते हैं, 'वनीपक पाठ पक्षमें—दाताके माननीय गुरु आदिमें भक्ति प्रकट करके लेजानेवाले भिक्षाको

અદેય આહાર ગ્રહણ કરવાથી સાધુને આરંભાદિ દોષો લાગતા નથી, કારણ કે એ સાધુને માટે બનાવવામાં આવેલો હોતો નથી. તથા શાસ્ત્રમાં શિષ્ટકુળમાં ભિક્ષા ગ્રહણ કરવાનું વિધાન છે, તેથી પણ શિષ્ટકુળમાં આહાર ગ્રહણ કરવામાં દોષ લાગી શકતો નથી. એટલું જ સમાધાન પૂરતું છે (૪૯—૫૦)

અસણં૦ ઈત્યાદિ તથા તં ભવે૦ ઇત્યાદિ

યાચક-માત્રને અથવા સિદ્ધ (તૈયાર) ભિક્ષા લઈને જીવન નિર્વાહ કરનારાને 'વનીપક' કહે છે. વનીપક પાઠથી પક્ષમાં-દાતાના માનનીય ગુરૂઆદિમાં ભક્તિ પ્રકટ કરીને લેવામાં

वंस्थाप्रदर्शनपुरःसरं प्रियाऽऽलापादिना लभ्यद्रव्यं, तां याति=प्राप्नोतीति वनीयः, स एव वनीयकः, 'वनीपके'तिपाठपक्षे तु तां पूर्वोक्तां वनीं पिबति=आस्वादयतीति, पाति=रक्षति वा वनीपः, स एव वनीपकः, अथवा वनुते=प्रायो दातुः सम्माननीयेष्वात्मनो भक्तिं प्रकटयन् याचत् इति वा, ('वनु याचने' अस्माद्धातोरौणादिक ईषकप्रत्ययः। यदिवा वं=सान्त्वनं-बुभुक्षाजनिततापोपशमनलक्षणं नयति=प्रापयतीति वनीः, यद्वा वन्यते=याच्यते=सिक्ष्यते इतिवनी=भिक्षणीयद्रव्यम् , ('वनु याचने' अस्मादौणादिक इन् कृदिकारादिति ङीष्) तां पाति=उपकल्प्य रक्षतीति वनीपः=गृहस्थस्तं कायति=प्रार्थयते प्रियोक्त्यादिनेति वनीपकस्तदर्थमिदं प्रकृतमित्यादि पूर्ववत् ॥५१॥५२॥

२ ३ ५ ४ ६ ८ ७
मूलम्–असणं पाणगं वावि, खाइमं साइमं तहा।
१ १२ १३ १४ ९ ११ १०
जं जाणेज्ज सुणेज्जा वा, समणट्ठा पगडं इमं ॥५३॥
१५ २० १६ १७ १८ १९
तं भव भत्त-पाणं त संजयाण अकप्पियं।
२१ २२ २५ २४ २६ २३
दिंतियं पडियाइक्खे न म कप्पइ तारिसं ॥५४॥

छाया—अशनं पानकं वापि, खाद्यं स्वाद्यं तथा।
यज्जानीयाच्छृणुयाद्वा, श्रमणार्थं प्रकृतमिदम् ॥५३॥
तद्भवेद्भक्त-पानं तु, संयतानामकल्पिकम्।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥५४॥

सान्वयार्थः—जं असणं पाणगं वावि खाइमं तहा साइमं=जो अशन पान खादिम स्वादिम इम समणट्ठा पगडं=यह निर्ग्रन्थ शाक्य तापस गैरिक और आजीवक, इन पाच प्रकारके श्रमणोंके लिए उपकल्पित है, ऐसा जाणेज्ज=जान लेवे वा=अथवा सुणिज्जा=किसी दूसरेसे सुन लेवे तो तं=वह भत्तपाणं तु=आहार-पानी संजयाण=साधुओंके लिए अकप्पियं=अकल्पनीय भवे=होता है, (अतः) दिंतियं = देती हुईसे साधु पडियाइक्खे =

वनी कहते है, और ऐसी भिक्षा लेनेवाला 'वनीपक' कहलाता है, अथवा जो, भूखका तापमिटाकर सान्त्वना प्रदान करे उसे वनी (भिक्षा देनेके लिये रखा हुआ अन्नादि) कहते है, उसको सुरक्षित रखनेवाला (गृहस्थ) से प्रार्थना करके भिक्षा प्राप्त करने वालेको 'वनीपक' कहते है। उस वनीपकके लिये बनाया हुआ देवे तो देनेवालीसे कहे कि ऐसा आहार मुझे कल्पता नहीं है ॥ ५१॥५२॥

આવતી ભિક્ષાને વની કહે છે, અને એવી ભિક્ષા લેનાર વનીપક કહેવાય છે, અથવા જે ભૂખનો તાપ મિટાવીને સાંત્વના આપે તેને વની (ભિક્ષા આપવાને રાખેલા અન્નાદિ) કહે છે એને સુરક્ષિત રાખનાર ને પ્રાર્થના કરીને ભિક્ષા પ્રાપ્ત કરનારને વનીપક કહે છે. એ વનીપકને માટે બનાવેલો આહાર આપે તો આપનારીને સાધુ કહે કે એવો આહાર મને કલ્પતો નથી (૫૧–૫૨)

कहे कि तारिसं = इस प्रकारका आहारादि मे = मुझे (लेना) न कप्पइ = नहीं कल्पता हैं ॥५३॥५४॥

टीका—'असणं०' इत्यादि, तथा 'त' भवे' इत्यादि। श्रमणाय=श्रमणाः लोकप्रसिद्ध्यनुरोधतो निर्ग्रन्थ-शाक्य गैरिका-ऽऽजीवकभेदेन पञ्चधा, तत्र निर्ग्रन्थाः = पञ्चमहाव्रतधारिणः, शाक्याः = सौगताः, तापसाः = जटाधारिणः, गैरिकाः = रक्तवर्णधातुविशेषरञ्जितवस्त्रधारिणः, परिव्राजका इत्यर्थः, आजीवकाः = गोशालकमतानुयायिनस्तदर्थमिदं प्रकृतमित्यादि प्राग्वत् ॥५३॥५४॥

मूलम्—उद्देसियं[1] कीयगडं[2], पूइकम्मं[3] च[7] आहडं[4]।
अज्झोयरय[5] पामिच्चं[6], मीसजायं[8] विवज्जए[9] ॥५५॥

छाया—औद्देशिकं क्रीतकृतं, पूतिकर्म चाभ्याहृतम्।
अध्यवपूरकं प्रामित्यं, मिश्रजातं विवर्जयेत् ॥५५॥

सान्वयार्थः—उद्देसियं = औद्देशिक-किसी एकको उद्देश करके बनाये हुए अशनादिको कीयगडं = खरीदे हुएको पूइकम्मं = आधाकर्मादिदोषसे दूषित ऐसे आहारसे मिले हुए को आहडं=सामने लाये हुए को पामिच्चं=उधार लाये हुए को च=और मीसजाए=अपने तथा साधुओंके लिए मिश्रित (भेला) करके बनाये हुए अशनादिको(साधु) विवज्जए=वरजे, अर्थात् ऐसा आहार हो तो नहीं लेवे ॥ ५५ ॥

टीका—'उद्देसियं०' इत्यादि। १—औद्देशिकम्=उद्देशनमुद्देशस्तेन कृत—मौद्देशिकम्

'असणं०' इत्यादि तथा 'त भवे०' इत्यादि।

लोकमे पाँच प्रकारके श्रमण होते हैं—(१) निर्ग्रन्थ (पंच-महाव्रतधारी), (२) सौगत (बुद्धके अनुयायी), (३) तापस (जटाधारी गैरिक (गेरुआ वस्त्र पहिननेवाले), (५) आजीवक (गोशालके मतानुयायी)। इनके लिये जो आहार बनाया गया हो वह, सयमियोके लिये कल्प्य नहीं है, अत एव ऐसा आहार देनेवालीसे साधु कहे कि मुझे नहीं कल्पता है ॥५३॥५४॥

'उद्देसियं०' इत्यादि। [१]—किसीको उद्देश करके बनाया हुआ आहार, औद्देशिक कह-

---

असणं० ઇત્યાદિ તથા તં ભવે૦ ઇત્યાદિ

લોકમાં પાંચ પ્રકારના શ્રમણો હોય છે. (૧) નિર્ગ્રંથ (પંચમહાવ્રતધારી), (૨) સૌગત (બુદ્ધના અનુયાયી), (૩) તાપસ (જટાધારી), (૪) ગૈરિક (ગેરૂઆં વસ્ત્રો પહેરનારા), (૫) આજીવક (ગોશાળના મતાનુયાયી). એમને માટે જે આહાર બનાવવામાં આવ્યો હોય તે સંયમીઓને માટે કલ્પ્ય નથી, તેથી એવો આહાર આપનારીને સાધુ કહે કે તે મને કલ્પતો નથી (૫૩-૫૪)

ઉદ્દેસિયં૦ ઇત્યાદિ (૧) કોઇને ઉદ્દેશીને બનાવેલો આહાર ઔદ્દેશિક કહેવાય છે તે

तद्विविधं–सामान्यौद्देशिकं विशेषौद्देशिकं च, तत्राद्यं–प्रतिदिनं स्वार्थं सम्पाद्यते तावत्सं-म्पादानप्रवृत्तौ सत्यां 'भिक्षादानं गृहस्थाऽऽचारः' इति बुद्ध्या 'यः कश्चित्साधुरागच्छे-त्तस्मै देय' मिती सामान्यत उद्दिश्य समधिकं निष्पादिनम्। द्वितीयं–कमप्येक साधुं व्यक्ति विशेषरूपेणोद्दिश्य सम्पादितम्। २–क्रीतकृतं=क्रयणं गृहस्थकर्त्तृकं, तेन सम्पा-दितं क्रीतकृत क्रीतमित्यर्थः तत्त्रिविधं–द्रव्यक्रीतं भावक्रीतं, मिश्रक्रीतञ्च, तत्र द्रव्य-क्रीतं =स्वपरतदुभयभेदेन त्रिधा–स्वद्रव्यक्रीतं परद्रव्यक्रीतम्, उभयद्रव्यक्रीतञ्च। तदपि सचित्ताऽचित्त-मिश्रभेदात्प्रत्येकं त्रिविधं सचित्तस्वद्रव्यक्रीतम्, अचित्तस्वद्रव्यक्रीतं, मिश्रस्वद्रव्यक्रीतं, सचित्तपरद्रव्यक्रीतम्, अचित्तपरद्रव्यक्रीतं, मिश्रपरद्रव्यक्रीतं, सचित्तो-भयद्रव्यक्रीतम्, अचित्तोभयद्रव्यक्रीतं, मिश्रोभयद्रव्यक्रीतञ्चेति। इत्थं द्रव्यक्रीतं नवधा भवति।

भाव क्रीतं द्विविधं–स्वभावक्रीतं परभावक्रीतञ्च; तत्र स्वभावक्रीतं–साधौ समुपा-गते तदर्थं गृहस्थेन स्वविद्या[1] मन्त्रादि दत्त्वा क्रीतम्। परभावक्रीत–विद्यामन्त्रादि दत्त्वा

लाता है। वह दो प्रकारका है–१–सामान्य–औद्देशिक और २-विशेष-औद्देशिक। जितना अहार, प्रतिदिन गृहस्थ बनाता है उतना आहार बनाते समय ऐसा विचार करना कि 'भिक्षा देना गृहस्थका कर्त्तव्य है, इसलिये जो कोई साधु आवेगा उसे दे देंगे' ऐसा विचार कर बनाया हुता आहार 'समान्य–औद्देशिक' ओर किसी एक साधुके निमित्त बनाया हुआ आहार, 'विशेष-औ-द्देशिक' कहलाता है।

[२] खरीद किया हुआ आहार क्रीतकृत कहलाता है। वह तीन प्रकारका है (१)-द्रव्य क्रीत (२)–भावक्रीत (३)–मिश्रक्रीत द्रव्यक्रीत तीन प्रकारका है-(१)–अपने द्रव्यसे खरीदा हुआ, (२)–पराये द्रव्यसे खरीदा हुआ, (३)-दोनो द्रव्योसे खरीदा हुआ, । ये तीनो भेद तीन २ प्रकारके है। स्वद्रव्य क्रीतके भेद–(१) अपने सचित्त द्रव्यसे खरीदा हुआ, (२)–अपने अचित्त द्रव्यसे खरीदा हुआ, (३)–अपने सचित्त और अचित्त, दोनो प्रकारके द्रव्यसे खरीदा हुआ।

परद्रव्यक्रीतके भेद–(१)–दूसरेके अचित्त द्रव्यसे खरीदा हुआ, (३) दूसरेके दोनो प्रका-

---

બે પ્રકાનો હોય છે (૧) સામાન્ય ઔદ્દેશિક અને (૨) વિશેષ ઔદ્દેશિક જેટલો આહાર પ્રતિદિન ગૃહસ્થ બનાવે છે એટલો આહાર બનાવતી વખતે એવો વિચાર કરવો કે 'ભિક્ષા આપવી એ ગૃહસ્થનું કર્તવ્ય છે, તેથી જો કોઈ સાધુ આવશે તો તેને આપીશ.' એવો વિચાર કરીને બનાવેલો આહાર સામાન્યઔદ્દેશિક, અને કોઇ એક સાધુને નિમિત્તે બનાવેલો આહાર વિશેષ ઔદ્દેશિક કહેવાય છે

(૨)-ખરીદ કરેલો આહાર ક્રીતકૃત કહેવાય છે તે ત્રણ પ્રકારનો છે-(૧) દ્રવ્યક્રીત, (૨) ભાવક્રીત, (૩) મિશ્રક્રીત, દ્રવ્યક્રીત ત્રણ પ્રકારનો છે-(૧) પોતાના દ્રવ્યથી ખરીદેલો, (૨) પરાયા દ્રવ્યથી ખરીદેલો, (૩) બેઉ દ્રવ્યોથી ખરીદેલો એ ત્રણે ભેદ ત્રણ-ત્રણ પ્રકારના છે. સ્વદ્રવ્યક્રીતના ભેદ-(૧) પોતાના સચિત્ત દ્રવ્યથી ખરીદેલો, (૨) પોતાના અચિત્ત દ્રવ્યથી ખરીદેલો, (૩) પોતાના સચિત્ત અને અચિત્ત બેઉ પ્રકારના દ્રવ્યથી ખરીદેલો

१ विद्या-ससाधना रोहिणी प्रज्ञप्त्यादिरूपा, मन्त्रः-असाधनो वशीकरणादिः।

साधुकृते परेण क्रीतमुपलभ्यान्येन गृहस्थेन दीयमानं तदनेकविधं स्वयमूह्यम् ।

मिश्र-(द्रव्य-भावरूप)-क्रीतस्य च नव भङ्गाः, यथा—

१ स्वकीयेन द्रव्येण स्वकीयेन भावेन ।

२—स्वकीयेन द्रव्येण परकीयेण भावेन ।

३—परकीयेण द्रव्येण स्वकीयेन भावेन ।

४—परकीयेण द्रव्येण परकीयेण भावेन ।

रके द्रव्यसे खरीदा हुआ ।

उभयक्रीतके भेद-(१)-दोनोके सचित्त द्रव्यसे खरीदा हुआ (२) दोनोके अचित्त द्रव्यसे खरीदा हुआ (३) दोनोके सचित्त और अचित्त द्रव्यसे खरीदा हुआ । ये सब द्रव्यक्रीत है ।

भाव-क्रीत, दो-प्रकारका है-(१)-स्व-भावक्रीत, (२)-पर-भावक्रीत । साधुके आने पर, साधुके लिये, अपनी विद्या या अपना मन्त्र दे कर, गृहस्थद्वारा खरीदा हुआ आहार स्व-भावक्रीत है, दूसरेने विद्या-मत्र देकर, साधुके लिये आहार आदि खरीदा हो और साधुके आने पर उस आहारको दूसरा लेलेवे तो उसे परभाव क्रीत कहते है, वह अनेक प्रकारका है सो स्वयं समझ लेना चाहिये ।

मिश्र-(द्रव्य-भावरूप)-क्रीतके नौ भंग होते है—

१-अपने द्रव्यसे अपने भावसे ।

२-अपने द्रव्यसे परके भावसे ।

३-परके द्रव्यसे अपने भावसे ।

४-परके द्रव्यसे परके भावसे ।

परद्रव्यक्रीतના ભેદ-(૧(બીજાના સચિત્ત દ્રવ્યથી ખરીદેલો, (૨) બીજાના અચિત્ત દ્રવ્યથી ખરીદેલો, (૩) બીજાના બેઉ પ્રકારના દ્રવ્યથી ખરીદેલો.

ઉભયક્રીતના ભેદ-(૧) બેઉના સચિત્ત દ્રવ્યથી ખરીદેલો, (૨) બેઉના અચિત્ત દ્રવ્યથી ખરીદેલો, (૩) બેઉના સચિત્ત અને અચિત્ત દ્રવ્યથી ખરીદેલો એ બધા દ્રવ્યક્રીત છે

ભાવક્રીત બે પ્રકારનો છે (૧) સ્વ-ભાવક્રીત, (૨) પર-ભાવક્રીત, સાધુ આવે ત્યારે સાધુને માટે પોતાની વિદ્યા યા પોતાનો મંત્ર આપીને ગૃહસ્થદ્વારા ખરીદેલો આહાર એ સ્વ-ભાવક્રીત છે. બીજાએ વિદ્યા-મંત્ર આપીને સાધુને માટે આહારાદિ ખરીદેલા હોય અને સાધુ આવે ત્યારે એ આહારને બીજો લઇ લે તો તે પરભાવક્રીત કહેવાય છે તે અનેક પ્રકારનો હોય છે તે પોતાની મેળે સમજી લેવું.

મિશ્ર (દ્રવ્ય-ભાવરૂપ) ક્રીતના નવ ભાંગા થાય છે.

૧ પોતાનાવદ્રવ્યથી પોતાના ભાવથી

૨ પોતાનાદ્રવ્યથી પરના ભાવથી.

૩ પરના દ્રવ્યથી પોતાના ભાવથી.

५—स्वकीय-द्रव्य-भावाभ्यां परकीयेण द्रव्येण ।

६—स्वकीय-द्रव्य भावाभ्यां परकीयेण भावेन ।

७—परकीय-द्रव्य भावाभ्यां स्वकीयेन द्रव्येण ।

८—परकीय-द्रव्य भावाभ्यां स्वकीयेन भावेन ।

९ – स्वकीय-द्रव्य-भावाभ्यां परकीय-द्रव्यभावाभ्याञ्च क्रीतम् , इति ।

एष च दोष उद्गमदोपान्तर्गतत्वेन गृहस्थोत्थितः, उक्तञ्च—

"सोलस उग्गम-दोसे, गिहिणो उ समुट्ठिए वियाणाहि ।
ऊप्पायणा य दोसे, साहूओ समुट्ठिए जाण ॥ १ ॥ इति'

३–पूतिकर्म=पूतेः=अपवित्रस्य कर्म=मिलनरूपं पूतिकर्म लक्षणया तेन युक्तं पूतिकर्म । पूतिकरणं द्रव्यभावभेदाद्द्वीप्रकारकम् तत्र—

द्रव्यतो यथा–शुचिद्रव्येऽपवित्र-सम्मेलन, यथा पेय-पयःपरिपूरितपात्रेऽल्पीयानपि सुरासंसर्गः, यद्वा पायसादिपवित्रभोक्तव्यपदार्थे क्षतादिक्षरद्रक्त-पूयादिविन्दुमात्रस्यापि मिश्रणम् ।

५–अपने द्रव्य-भावसे परके द्रव्यसे ।

६–अपने द्रव्य-भावसे परके भावसे ।

७–परके द्रव्य-भावसे अपने द्रव्यसे ।

८–परके द्रव्य-भावसे अपने भावसे ।

९–अपने द्रव्य-भावसे और परके द्रव्य-भावसे खरीदा हुआ ।

यह क्रीतकृत दोष, उद्गमदोषोके अन्तर्गत है, इसलिये गृहस्थके द्वारा लगता है । कहा भी है—
"सोलह उद्गम दोष, गृहस्थके द्वारा लगते है और उत्पादना दोष, साधु द्वारा लगते है ।
[३] पूतिकर्म–पवित्र वस्तुके मिल जानेको पूतिकर्म कहते है, यह दो प्रकारका है–(१)–

---

૪ પરના દ્રવ્યથી પરના ભાવથી.
૫ પોતાના દ્રવ્ય-ભાવથી પરના દ્રવ્યથી
૬ પોતાના દ્રવ્ય-ભાવથી પરના ભાવથી
૭ પરના દ્રવ્ય ભાવથી પોતાના દ્રવ્યથી
૮ પરના દ્રવ્ય-ભાવથી પોતાના ભાવથી.

૯ પોતાના દ્રવ્ય-ભાવથી અને પરના દ્રવ્ય ભાવથી ખરીદેલો.

એ ક્રીતકૃત દોષની અંદર રહેલો છે, તેથી કરીને ગૃહસ્થની દ્વારા લાગે છે કહ્યું છે કે–"સોળ ઉદ્ગમદોષ ગૃહસ્થદ્વારા લાગે છે અને ઉત્પાદનાદોષ સાધુદ્વારા લાગે છે."

(૩) પૂતિકર્મ–પવિત્ર વસ્તુમાં અપવિત્ર વસ્તુ મળી જાય તેને પૂતિકર્મ કહે છે. એ બે પ્રકારનું છે (૧) દ્રવ્ય-પૂતિકર્મ અને (૨) ભાવ-પૂતિકર્મ. (૧) પવિત્ર દ્રવ્યમાં અપવિત્ર

भावतः--विशुद्ध आहारादावाधाकर्मादिदोषदूषितान्नादेः सिक्थमात्रेणापि मेलनम् तदशनेन च साधूनां चारित्रमालिन्यं भवतीति भावपूतिरभिधीयते ।

दोषोऽयमाधाकर्मादिदोषदूषितान्नादिसंस्पृष्टहस्तभाजनादिनिमित्तेनापि सम्भवति।

४-आहृतं=साधुनिमित्तं गृहादितोऽभिमुखमानीतम् । ५-'अज्झोयरय' इति लुप्तविभक्तिकं पदम् 'अध्यवपूरक' मिति तच्छाया, स्वार्थं पाकक्रियायां समारब्धायां ग्रामे साधुसमागमनं निशम्य तदर्थमधिकनिक्षेपणेन सम्पादितमिति तदर्थः । इदमत्र हृदयम्-यद्ये-

द्रव्य-पूतिकर्म और (२) भाव-पूतिकर्म। (१)-पवित्र द्रव्यमें अपवित्र द्रव्य मिलाना द्रव्य-पूति कर्म है, जैसे पीने योग्य दूधसे भरे हुए वर्त्तनमें थोडीसी भी मदिराका मिलजाना, अथवा खाने योग्य खीर आदिमें रक्त पीप आदि अपवित्र पदार्थका मिल जाना।

विशुद्ध आहार आदिमें आधाकर्मी आदि दोषोसे दूषित अन्नका एक भी सीथ (कण) मिल जाना, भाव-पूतिकर्म है। ऐसा आहार लेनेसे मुनियोके चारित्रमें मलिनता आजाती है, इस कारण इसे भावपूति कहते हैं।

आधाकर्मी दोषसे दूषित अन्न आदि से भरे हुए हाँथ या वर्त्तन के निमित्तसे भी यह दोष लग जाता है।

(४)-आहृत-साधु के लिये साधुके सामने लाया हुआ आहार आदि अभ्याहृत कहलाता है, ऐसा आहार लेना अभ्याहृत-दोष-दूषित आहार है।

[५] अध्यवपूरक-अपने लिए भोजन बनाना प्रारम्भ किया हो उस समय, 'गाँवमें साधु पधारे हैं' यह सुनकर और अधिक मिला कर बनाया हुआ आहार अध्यवपूरक कहलाता है, तात्पर्य यह कि यदि अन्यलिङ्गियोके निमित्त अधिक आहार मिला कर बनाया हो तो उन्हे दे

દ્રવ્ય મેળવવું એ દ્રવ્ય-પૂતિકર્મ છે, જેમકે પીવા યોગ્ય દૂધથી ભરેલા વાસણમાં થોડીક મદિરાનું મળી જવું, અથવા પીવા યોગ્ય ખીર આદિમા લોહી પરૂ આદિ અપવિત્ર પદાર્થનું પડી જવું (૨) વિશુદ્ધ આહારાદિ આધાકર્મી આદિ દોષોથી દૂષિત અન્નનો એક પણ કણ મળી જવો એ ભાવપૂતિ કર્મ છે એવો આહાર લેવાથી મુનિઓના ચારિત્રમા મલિનતા આવી જાય છે. તેથી તેને ભાવપૂતિ કહે છે.

આધાકર્મી દોષથી દૂષિત અન્નાદિથી ભરેલા હાથ યા વાસણના નિમિત્તથી પણ એ દોષ લાગી જાય છે.

(૪) આહૃત-સાધુને માટે સાધુની સામે લાવેલો આહાર આદિ અભ્યાહૃત કહેવાય છે. એવો આહાર અભ્યાહૃત-દોષ-દૂષિત આહાર છે,

(૫) અધ્યવપૂરક-પોતાને માટે ભોજન બનાવવાનો પ્રારંભ કર્યો હોય, તે સમયે 'ગામમાં સાધુ પધાર્યા છે' એમ સાંભળીને બીજું વધારે મેળવીને બનાવેલો આહાર અધ્યવપૂરક કહેવાય છે તાત્પર્ય એ છે કે જો અન્યલિંગીઓ (અન્યધર્મીઓ) ને નિમિત્તે વધારે

वमन्यलिङ्गनिमित्तमधिकं पूरितं, तत्र तद्दानानन्तरमवशिष्टमन्नादिकं साधुभिर्ग्राह्यं, तत्रान्तरायदोषानवतारादिति । ६-प्रामित्यं=साधुनिमित्तमुद्धाररूपेण कुतश्चिदानीय दीयमानम् । ७-मिश्रजातं=मिश्रेण मिश्राभावेन [1]पूर्वत एव दातृ-भिक्षा-चरोभयानुसन्धानेनेत्यर्थः जातं =निष्पन्नम् तद्द्विविधं सामान्यमिश्रजात विशेषमिश्रजातं चेति, तत्र—सामान्यमिश्रजातं= सामान्यरूपेण स्वपोष्यवर्गार्थं गृहस्थागृहस्थसाधु-पाखण्डिप्रभृतिभिक्षाचरार्थञ्चैकत्र रन्धितम् , विशेषमिश्रजातं यद्दातृनिमित्तं केवलं[2] साधुनिमित्तञ्च सहैव निष्पन्नमन्नादिकम्, तद् विवर्जयेत्=परित्यजेत् न गृह्णीयादित्यर्थः, साधुरिति शेषः । औद्देशिका-ध्यवपूरक-मिश्राजातेषु परस्परमेष विशेषः-औद्देशिकं—पाकप्रवृत्त्यनन्तरं साध्वागमनात्प्रागेकमेव साधुं

देनेके बाद बचा हुआ आहार साधुओंको ग्राह्य है, क्योंकि वहाँ अन्तराय—दोष नहीं लगता ।

(६) प्रामित्य—साधुके निमित्त कहींसे उधार लेकर दिया जानेवाला आहार, प्रामित्य कहलाता है ।

[७] मिश्रजात-पहलेसे ही दाता और भिक्षु दोनो के लिये बनाया हुआ आहार मिश्रजात है ।

मिश्रजातके दो भेद हैं-(१)-सामान्य मिश्रजात और (२)-विशेष मिश्रजात । (१)-साधारण तौर पर अपने पोष्यवर्गके लिये तथा गृहस्थ, अगृहस्थ, साधु, पाखण्डी आदिके लिये मिलाकर रांधा हुआ आहार 'सामान्य मिश्रजात' कहलाता है । (२)—जो आहार आदि अपने लिये और साधुके लिये मिलाकर बनाया जाय उसे 'विशेषमिश्रजात' कहते है । ऊपर कहे हुए सब प्रकारके आहारका अनगार को परिहार करना चाहिये ।

औद्देशिक, अध्यवपूरक और मिश्रजात दोषोंमें यह भेद है—भोजन बनानेमें प्रवृत्त होनेके पश्चात् और साधुके आनेसे पहले, किसी भी एक साधुके लिये अथवा अमुक एक साधुके लिये

આહાર મેળવીને બનાવ્યો હોય તો તેને આપી દીધા પછી વધેલો આહાર સાધુઓને માટે ગ્રાહ્ય બને છે, કારણ કે તેમા અંતરાય દોષ લાગતો નથી.

(૬) પ્રામિત્ય-સાધુને નિમિત્ત કહીંથી ઉધાર લાવીને આપવામાં આવેલો આહાર પ્રામિત્ય કહેવાય છે.

(૭) મિશ્રજાત-પહેલાં જ દાતા અને ભિક્ષુ બેઉને માટે બનાવેલો આહાર મિશ્રજાત છે મિશ્રજાતના બે ભેદ છે (૧) સામાન્ય-મિશ્રજાત (૨) વિશેષ-મિશ્રજાત (૧) સાધારણ રીતે પોતાના પોષ્યવર્ગને માટે તથા ગૃહસ્થ, અગૃહસ્થ, સાધુ પાખંડી આદિને માટે એકઠો કરીને રાંધેલો આહાર 'સામાન્ય-મિશ્રજાત' કહેવાય છે (૨) જે આહાર આદિ પોતાને માટે અને સાધુને માટે એકઠો કરીને બનાવવામાં આવે તેને વિશેષ મિશ્રજાત કહે છે ઉપર કહેલા બધા પ્રકારના આહારનો અણગારે પરિહાર કરવો જોઇએ

ઔદ્દેશિક, અધ્યવપૂરક અને મિશ્રજાત દોષોમાં આ ભેદ છે-ભોજન બનાવવામા પ્રવૃત્ત થયા પછી અને સાધુ આવ્યા પહેલા, કોઇ પણ એક સાધુને માટે અથવા અમુક એક

---

१ पूर्वतः=पाकार्थं प्रवृत्तं प्रागेव २ इतर भिक्षाचरव्यतिरेकेण

सामान्यरूपेण विशेषरूपेण वोद्दिश्य सम्पादिते सम्भवति। अध्यवपूरकं=साधुसमागमश्रवणसमनन्तरमधिकनिक्षेपेण जायते। मिश्रजातं–पाकप्रवृत्तिसमय एव गृहस्थ-भिक्षाचरयोः कृते संमिश्रितेऽन्नादौ समुत्पद्यते ॥ ५५ ॥

७ ५ ६ ८ १ २ ३ ४
मूलम्–उग्गमं से अ पुच्छिज्जा, कस्सट्ठा केण वा कडं ?।
९ ११ १२ १३ १०
सुच्चा निस्संकियं सुद्धं पडिगाहिज्ज संजओ ॥५६॥

छाया उद्गमं तस्य च पृच्छेत्कस्यार्थं केन वा कृतम् ?।
श्रुत्वा निःशङ्कितं शुद्धं, प्रतिगृह्णीयात्संयतः ॥५६॥

सान्वयार्थः–से=उस आहारादिकी उग्गमं=उत्पत्ति पुच्छिज्जा=पूछे कि-(यह अशनादि) कस्सट्ठा=किसके लिए वा=और केण=किसने कड=बनाया है। फिर सुच्चा=गृहस्थ के मुख से अशनादिकी उत्पत्ति सुनकर (यदि वह) निस्संकियं=औद्देशिक आदि शङ्का-रहित य=और सुद्धं=निर्दोष हो तो संजए=साधु पडिगाहिज्ज=ग्रहण कर लेवे ॥५६॥

टीका–'उग्गमं' इत्यादि। कस्यार्थं=किन्निमित्तम्, केन वा कर्त्रा कृतं=निष्पादितम्, अन्नादौ 'विशुद्धमविशुद्धं वे' ति संशये तन्निराकरणाय तस्य संशयितस्यान्नादेः उद्गमम्=उद्गमनशुद्धसत्तम् उत्पत्तिमित्यर्थः, पृच्छेत्=प्रतिवचनेन ज्ञातुमिच्छेत्, श्रुत्वा 'प्रतिवचन' मितिशेषः संयतः=शङ्किताऽऽहारग्रहणभीरुः साधुः निःशङ्कितं=दोषशङ्कावर्जितम् अत एव शुद्धं=निरवद्यं प्रतिगृह्णीयात्–निरवद्यत्वेन निश्चये सतीति भावः ॥ ५६ ॥

बनाये हुए आहारमें औद्देशिक दोष होता है। आहार बनाते समय, साधुका आगमन सुन कर अधनमें अधिक ऊर (डाल) कर बनानेसे अध्यवपूरक दोष होता है भोजन बनाते समय, गृहस्थ और भिक्षु दोनोके लिये भोजन बनानेसे मिश्रजात दोष लगता हे ॥५५॥

'उग्गमं०' इत्यादि। 'आहार अशुद्ध है' इस प्रकारका सन्देह होने पर साधु, ऐसा पूछ लेवे कि यह आहार, किसके लिये बनाया गया है और किसने बनाया है ?, इसका उत्तर सुनकर निरवद्यताका निश्चय करके निःशंकित अत एव निरवद्य आहार हो तो साधु, ग्रहण करे ॥५६॥

સાધુને માટે બનાવેલા આહારમા ઔદ્દેશિક દોષ લાગે છે આહાર બનાવતી વખતે સાધુનુ આગમન સાભળીને આંધણમા વધારે ઓરી દેવાથી અધ્યવપૂરક દોષ લાગે છે ભોજન બનાવતી વખતે ગૃહસ્થ અને ભિક્ષુ બેઉને માટે ભોજન બનાવવાથી મિશ્રજાત દોષ લાગે છે. (૫૫)

ઉગ્ગમં૦ ઇત્યાદિ 'આહાર અશુદ્ધ છે કે વિશુદ્ધ છે' એ પ્રકારનો સંદેહ પડતાં સાધુ એવુ પૂછી લે કે આહાર કોને માટે બનાવેલો છે અને કોણે બનાવ્યો છે ?, એનો ઉત્તર સાભળીને નિરવદ્યતાનો નિશ્ચય કરીને નિઃશંકિત, એટલે નિરવદ્ય આહાર હોય તો સાધુ ગ્રહણ કરે (૫૬)

१ २ ४ ३ ५ ७ ६
मूलम्—असणं पाणगं वावि, खाइमं साइमं तहा ।
८ १३ १२ ९ १० ११
पुप्फेसु होज्ज उम्मीसं, बीएसु हरिएसु वा ॥५७॥
१४ १९ १५ १६ १७ १८
तं भवे भत्तपाणं तु संजयाण अकप्पियं ।
२० २१ २४ २३ २५ २२
दिंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥५८॥

छाया—अशन पानकं वाऽपि, खाद्यं स्वाद्यं तथा
पुष्पैर्भवेदुन्मिश्रं, बीजैर्हरितैर्वा ॥५७॥
तद्भवेद्भक्त-पान तु, संयतानामकल्पिक (त) म् ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥५८॥

सान्वयार्थः—असणं पाणगं वावि खाइमं तहा साइमं=अशन पान खादिम तथा स्वादिम (यदि) पुप्फेसु=सचित्त फूलों से बीएसु=शालि आदि बीजोंसे वा=अथवा हरिएसु=हरित कायसे उम्मीसं=मिश्रित होज्ज=हो तो तं=वह भत्तपाणं तु=अशनादि संजयाणं =साधुओ के लिए अकप्पियं =अकल्पनीय भवे=है, (अतः) दिंतियं = देती हुईसे साधु पडियाइक्खे = कहे कि तारिसं = इस प्रकारका आहारादि मे = मुझे (लेना) न कप्पइ = नहीं कल्पता है ॥५७॥-५८॥

टीका —'असणं०' इत्यादि, 'तं भवे०' इत्यादि च । यदशनादिकं सचित्त-पुष्प-बीज-हरितकायैरुन्मिश्रं = संयुक्तं भवेत्तदकल्प्यमिति वाक्यार्थः । सूत्रे 'पुप्फेसु' इत्यादौ तृतीयार्थे सप्तमी ॥५७॥५८॥

१ २ ४ ३ ५ ७ ६
मूलम्—असणं पाणगं वावि, खाइमं साइमं तहा ।
८ १२ ११ ९ १०
उदगम्मि होज्ज निक्खित्तं उत्तिंगपणगेसु वा ॥५९॥
१३ १८ १४ १५ १६ १७
तं भवे भत्तपाणं तु संजयाण अकप्पियं ।
१९ २० २३ २२ २४ २१
दिंतियं पडियाइक्ख, न मे कप्पइ तारिसं ॥६०॥

'असण०' इत्यादि, तथा 'तं भवे' इत्यादि । जो अशन पान आदि, सचित्त पुष्प, सचित्त बीज और हरितकायसे युक्त हो वह, संयमीके लिये कल्पनीय नहीं है, अतः ऐसा आहार देनेवाली से साधु कहे कि—ऐसा आहार मुझे नहीं कल्पता है ॥५७॥५८॥

असणं० ઇત્યાદિ, તથા તં ભવે૦ ઇત્યાદિ જે અશનપાન આદિ, સચિત્ત પુષ્પ સચિત્ત બીજ અને હરિતકાય (વનસ્પતિ) થી યુક્ત હોય તે સંયમીને માટે કલ્પનીય નથી, એટલે એવો આહાર આપનારીને સાધુ કહે કે-એવો આહાર મને કલ્પતો નથી (૫૭-૫૮)

छाया—अशनं पानकं वापि, खाद्यं स्वाद्यं तथा ।
उदके भवेन्निक्षिप्तमुत्तिङ्गपनकेषु वा ॥५९॥
तद्भवेद्भक्त-पान तु, संयतानामकल्पिक(त) म् ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥६०॥

सान्वयार्थः—असणं पाणग वावि खाइमं तहा साइमं = जो अशनादि चार प्रकारका आहार (यदि) उदगम्मि = सचित्त जलके ऊपर वा = अथवा उत्तिगपणगेसु = कीड़ियोंके दरके ऊपर या लीलन-फूलन पर निक्खित्तं = रखा हुआ होज्ज = हो त = वह भत्तपाण तु = अशनादि संजयाणं = साधुओंके लिए अकप्पियं=अकल्पनीय भवे=है (अतः) दितियं देती हुई से साधु पडियाइक्खे = कहे कि तारिसं = इस प्रकारका आहारादि मे = मुझे (लेना) न कप्पइ = नहीं कल्पता है ॥५९॥६०॥

टीका—'असणं०' इत्यादि, तं भवे०' इत्यादि च । यदशनादिकमुदके = सचित्तजलोपरि, उत्तिङ्गपनकादिषु = उत्तिङ्गाः = भूमौ वर्त्तुलविवरविधायिनो गर्दभमुखाऽऽकृतयः क्षुद्रकीटविशेषाः, कीटिकानगरादयो वा, पनकः = अङ्कुरितोऽनङ्कुरितो वा पञ्चवर्णानन्तकायवनस्पतिविशेषः, तत्र निक्षिप्तं = स्थापितं भवेत् , तद्भक्त-पानं संयतानामकल्पिक (त)-मित्यादि पूर्ववत् ॥५९॥६०॥

१ २ ४ ३ ५ ७ ६
मूलम्—असणं पाणगं वावि, खाइमं साइमं तहा ।
८ १० ९ ११ १३ १२ १४
तेउम्मि हुज्ज निक्खित्तं तं च संघट्टिया दए ॥६१॥
१५ २० १६ १७ १८ १९
तं भवे भत्तपाणं तु संजयाण अकप्पियं ।
२१ २२ २५ २४ २६ २३
दितियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥६२॥

छाया—अशनं पानकं वापि, खाद्यं स्वाद्यं तथा ।
तेजसि भवेन्निक्षिप्तं, तच्च संघट्य दद्यात् ॥६१॥
तद्भवेद्भक्तपानं तु, संयतानामकल्पिक(त)म् ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥६२॥

'असणं०' 'इत्यादि, तथा 'त भवे०' 'इत्यादि । जो अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य सचित्त जल पर रखा हुआ हो तथा किडीनगर (चिऊँटियोके समूह) या लीलन-फूलन पर रखा हो वह, सयमियोके लिये कल्प्य नहीं है, अतः ऐसा आहार देनेवालीसे कहे कि 'ऐसा आहार मुझे कल्पता नहीं है' ॥ ५९ ॥ ६० ॥

असणं ઇત્યાદિ, તથા तं भवे० ઇત્યાદિ જે અશન, પાન, ખાદ્ય સ્વાદ્ય સચિત્ત જળ પર રાખેલો હોય, તથા કીડીનગર (કીડીયારા) યા લીલન-ફૂલન પર રાખેલો હોય તે સયમીઓને માટે કલ્પનીય નથી એટલે એવો આહાર આપનારીને સાધુ કહે કે-એવો આહાર મને કલ્પતો નથી.' (૫૯-૬૦)

सान्वयार्थः—असणं पाणगं वावि खाइमं तहा साइमं = जो अशन पान खादिम स्वादिम तेउम्मि = तेजस्काय पर निक्खित्त = रखा हुआ हुज्ज = हो च = अथवा तं = उस तेजस्कायको संघट्टिया = संघट्टा (छू) करके दिए = देवे तो तं = वह भत्तपाणं तु = अशनादि संजयाण = साधुओंके लिए अकप्पियं = अकल्पनीय भवे = है, (अतः) दिंतियं = देती हुईसे साधु पडियाइक्खे = कहे कि तारिसं = इस प्रकारका आहारादि मे = मुझे न कप्पइ = नहीं कल्पता है ॥६१॥६२॥

टीका—'असणं०' इत्यादि, तं भवे०' इत्यादि च । यदशनादिकं तेजसि = तेजस्कायोपरिनिक्षिप्तं = निहितं भवेत्, यच्च तत् = तेजः-अग्निकायमित्यर्थः, संघट्टय = संस्पृश्य दद्यात्, तत् = उभयविधं भक्तपानं तु सयतानामकल्पिकं (तं) भवेत्, अतस्तद्ददतीं प्रत्याचक्षीत—तादृशं मे न कल्पत इति ॥६१॥६२॥

१ २ ३ ४ ५
मूलम्—एवं उस्सिक्किया ओसिक्किया, उज्जालिया पज्जालिया ।
६ ७ ८ ९ १० ११
निव्वाविया उस्सिंचिया, निस्सिंचिया ओवत्तिया ओयारिया दए ॥६३॥
१२ १७ १३ १४ १५ १६
तं भवे भत्त-पाणं तु, संजयाण अकप्पियं ।
१८ १९ २२ २१ २३ २०
दिंतियं पडियाइक्खे न मे कप्पइ तारिसं ॥६४॥

छाया—एवम् उत्क्षिप्य अवक्षिप्य, उज्ज्वाल्य प्रज्वाल्य ।
निर्वाप्य उत्सिच्य, निषिच्य अपवर्त्य अवतार्य दद्यात् ॥६३॥
तद्भवेद्भक्त-पानं तु, संयतानामकल्पिक(त) म् ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ।

अग्निकायके साक्षात् संघट्टेका निषेध करके अब परम्परा संघट्टेका निषेध करते हैं—

सान्वयार्थः=एवं=जिस प्रकार अग्निकायको स्पर्श करके दिया जानेवाला अशनादि नहीं लेते, उसी प्रकार उस्सिक्किया = चूल्हे आदिमें इन्धनको अन्दर सरका कर ओसिक्किया=अधिक इन्धनको चूल्हेके अन्दरसे बाहर निकालकर उज्जालिया = बुझी हुई अग्निको फूंक आदि से उद्दीपित-सल्गा-कर पज्जालिया = जलती हुई अग्निको अधि-

'असणं०' इत्यादि, तथा 'तं भवे०' इत्यादि । जो अशन पान आदि, तेजस्काय पर रक्खा हो अथवा अग्निकायका संघट्टा करके देवे तो वह, साधुके लिये ग्राह्य नहीं है । अत. देनेवालीसे कहे कि ऐसा आहार मुझे नहीं कल्पता है ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

असणं० ઇત્યાદિ, તથા તં ભવે० ઇત્યાદિ જે અશન પાન આદિ તેજસ્કાય પર રાખેલ હોય અથવા અગ્નિકાયનું સંઘટ્ટન કરીને આપે તો તે સાધુને માટે ગ્રાહ્ય નથી એટલે તે આપનારીને સાધુ કહે કે 'એવો આહાર મને કલ્પતો નથી.' (૬૧-૬૨)

क प्रदीप्त कर निव्वाविया = एग्निको पानी आदिसे बुझाकर उस्सिंचिया = अग्नि पर पकते हुए अन्नादिको कुछ बाहर निकाल कर निस्सिंचिया = उभरते हुए दुग्धादिमें जल छिडककर ओवत्तिया = अग्निपर रहे हुए अन्नादिको दूसरे बरतनमें निकालकर ओयारिया = अग्निपर रहे हुए अन्नादिके बरतनको नीचे उतारकर अर्थात् अग्निकायका परम्परासे संघट्टा करके दए = अशनादि देवे तो तं = वह भत्तपाणं तु अशनादि संजयाणं = साधुओंके लिए अकप्पियं = अकल्पनीय भवे = है, (अतः) दिंतियं = देती हुई से साधु पडियाइक्खे = कहे कि तारिसं = इस प्रकारका आहारादि मे = मुझे (लेना) न कप्पइ = नहीं कल्पता है ॥६३॥६४॥

टीका—'एवं०' इत्यादि तं भवे०' इत्यादि च। एवम्=उक्तप्रकारेण तेजस्कायविषय इवेति भावः, उत्क्षिप्य=यावत्कालं साधवेऽन्नादिकं ददामि तावत्कालमग्निर्मा प्रशाम्यतु' इति बुद्ध्या चुल्ल्यादाविन्धनमुत्सार्य अवक्षिप्य=दाहभयादिन्धनं निःसार्य उज्ज्वाल्य अनुज्ज्वलितं फूत्कारादिनोद्दीप्य=प्रज्वाल्य=उद्दीप्तं प्रकर्षेण संवर्ध्य निर्वाप्य=उत्सिच्य =अग्न्युपरिस्थितमन्नादिकं किञ्चिद्बहिष्कृत्य, निषिच्य=उद्गलद्दुग्धादिकं जलेन प्रशाम्य अपवर्त्य=भाजनान्तरे निधाय, अवतार्य=अन्नादिसहितं भाजनमेवोत्तार्य वा दद्यात्, तद्भक्तपानं तु सयतानामकल्पिकं (तं) भवेदतस्तद्ददतीं प्रत्याचक्षीत–तादृशं मे न कल्पते' इति ॥६३॥६४॥

'एवं उस्सिक्किया०' इत्यादि, तथा 'तं भवे' इत्यादि ।

'जब तक आहार देती हू तब तक, अग्नि न बुझ जाय' ऐसा विचार कर चूल्हेमें इंधन सुलगाकर, अन्न आदि जलनेके भयसे इंधन बाहर निकाल कर फूँक आदिसे चूल्हा जला कर, जलती अग्निको तेज कर या बुझा कर, अग्नि पर पकते हुए आहार को कुछ एक ओर कर, तथा पानी डाल कर उबाल (उफान) को शान्त कर, अथवा अन्न आदि सहित बर्त्तन को नीचे उतार कर यदि आहार देवे तो वह आहार अनगारके लिये ग्रहण योग्य नहीं है। अतः देनेवालीसे कहे कि ऐसा आहार मुझे नहीं कल्पता है' ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

एवं उस्सिक्किया० ઇત્યાદિ, તથા तं भवे० ઇત્યાદિ.

'જ્યા સુધી આહાર આપતી હોઉં, ત્યાં સુધી અગ્નિ હોલવાઇ ન જાય,' એવો વિચાર કરીને ચૂલામા ઈંધણાં સળગાવીને, અન્નાદિ બળી જવાના ભયથી ઈંધણાં બહાર કાઢીને ફુંક આદિથી ચૂલો સળગાવીને, બળતા અગ્નિને તેજ કરીને યા બુઝાવીને, અગ્નિ પર પાકતા આહારને કોઇ એક બાજુએ કરીને તથા પાણી નાંખીને ઊભરાને શાંત કરીને, અથવા અન્નાદિ સહિત વાસણને નીચે ઉતારીને જો આહાર આપે તો તે આહાર અનગાર ને માટે ગ્રહણ કરવા યોગ્ય નથી એટલે તે આપનારીને સાધુ કહે કે–'એવો આહાર મને કલ્પતો નથી (૬૩–૬૪)

११ २ ५ ४ ३ ८ ७ ६ १

मूलम्—हुज्ज कट्ठं सिलं वावि इट्टालं वावि एगया ।

१० ८ १२ १३ १५ १४

ठवियं संकमट्ठाए, तं च होज्ज चलाचलं ॥६५॥

१९ १६ १८ २० २६ २४ २५

न तेण भिक्खू गच्छेज्जा दिट्ठो तत्थ असंजमो ।

२२ २३ २१ १७

गंभीरं झुसिरं चेव सव्विंदिय समाहिए ॥६६॥

छाया—भवेत्काष्ठं शिला वाऽपि, इट्टालं वाऽप्येकदा ।
स्थापितं संक्रमार्थं तच्च भवेच्चलाचलम् ॥ ६५ ॥
न तेन भिक्षुर्गच्छेद् दृष्टस्तत्रासंयमः ॥
गम्भीरं शुषिरं चैव, सर्वेन्द्रिय-समाहितः ॥ ६६ ॥

सान्वयार्थः—एगया=किसी समय अर्थात् वर्षा आदिके समय संकमट्ठाए=जाने आने के लिए कट्ठं=काठ वावि=या सिलं=शिला वावि=अथवा इट्टालं=ईंटका टुकड़ा ठवियं रखा हुआ हुज्ज=हो च=और तं=वह (यदि) चलाचलं=अस्थिर-डगमगाता हुज्ज हो तो तेण=उस मार्गमें तथा जो गंभीरं=ऊंडा गहरा और झुसिरं=पोला स्थान हो उससे सव्विंदियसमाहिए=समस्त इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाला भिक्खू=साधु न गच्छेज्जा=नहीं जावे (क्योंकि) तत्थ=वहां पर केवली भगवान ने असंजमो=असंयम दिट्ठो=देखा है ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

टीका—'हुज्ज कट्ठं०' इत्यादि, 'न तेण०' इत्यादि च । एकदा=एकस्मिन् काले वर्षादौ यत् काष्ठं=सञ्चरणोपयोगि दारु, अपिवा शिला=प्रस्तरखण्डम् अपिवा इट्टालम्=इष्टकाशकलं, संक्रमार्थं गमनागमनार्थं स्थापितम्=आरोपितम् भवेत् , तच्च काष्ठादिकं यदि चलाचलम्=अस्थिरं कम्पमानं भवेत् तदा तेन काष्ठादिना सर्वेन्द्रियसमा-

---

'हुज्ज कट्ठं' इत्यादि, तथा 'न तेण०' इत्यादि ।

नदी आदिमें बरसात आदिके समय, जाने-आनेके लिये जो काठ, पत्थर या ईंट आदि रख दिया हो और यदि वह हिलता हो तो समाधिमान् संयमी, उस मार्गसे गमन न करे । और जो प्रदेश नीचा होनेसे अन्धकारमय हो या खड्ढेवाला हो उससे भी साधुको गमन नहीं करना चाहिये, क्योंकि ऐसे मार्गमें गमन करनेसे स्व-पर-विराधना-रूप असंयम केवली भगवान् ने देखा है ।

હુજ્જ કટ્ઠં૦ ઈત્યાદિ તથા ન તેણ૦ ઈત્યાદિ

નદી આદિમાં વરસાદને વખતે આવવા જવા માટે જે લાકડા, પત્થર, ઈંટ વગેરે રોપેલાં હોય અને જો તે હલતા હોય તો સમાધિવાન સંયમી એ માર્ગે ગમન ન કરે અને જે પ્રદેશ નીચો હોવાથી અંધકારમય હોય યા ખાડાવાળો હોય તે માર્ગે પણ સાધુએ ગમન ન કરવું જોઈએ, કારણ કે એવા માર્ગે ગમન કરવાથી સ્વ-પર-વિરાધનારૂપ અસંયમ કેવળી ભગવાને જોયો છે

हितः = वशीकृतसकलेन्द्रियो भिक्षुः = साधुः न गच्छेत्। 'चेव' शब्दः समुच्चये अपिचेत्यर्थः. गम्भीरं निम्नत्वेन प्रकाशशून्यं, शुषिरं = गह्वरवत्सावकाश 'प्रदेश' मिति शेषः, न गच्छेदिति पूर्वेण सम्बन्धः। अगमने हेतुमाह—तत्रेति, तत्र = तस्मिन् असंयमः = स्वपरविराधनादिरूपो दृष्टः = अवलोकितः केवलिभिरिति शेषः। चलाचलविशेषणककाष्ठादिपदेन प्रस्खलन पतनादिनाऽऽत्मविराधना, एकेन्द्रियद्वीन्द्रियादिप्राणिगणोपमर्दनेन परविराधनासम्भावना च सूचिता। गम्भीरादिप्रदेशगमनेनापि प्रोक्तदोषसमधिकहिंस्रादिजन्तुजनितोपघातादिप्रचुरदोषसम्भवः सूचितः।

'सव्विंदियसमाहिए' इतिपदेन साधोरिन्द्रियविषयाऽऽसक्तिनिराकरणपरायणता प्रतिपादिता। 'भिक्खु' पदेन च यमनियमपूर्वकमेवभिक्षाग्राहित्वमिति बोधितम्॥ ६५॥ ॥ ६६॥

मूलम्—निस्सेणिं[4] फलगं[5] पीढं[6] उस्सवित्ताणमारुहे[10][12]।
मंचं[7] कीलं[8] च पासायं[9] समणट्ठाए[11] व[2] दावए[3][1]॥६७॥
दुरूहमाणी[13] पवडेज्जा[14] हत्थं[15] पायं[16] च[17] लूसए[18]।
पुढवीजीवेवि[19] हिंसेज्जा[20] जे[21] य[22] तन्निसिया[23] जगे[24]॥६८॥
एयारिसे[26] महादोसे[27] जाणिऊण[28] महेसिणो[30]।
तम्हा[25] मालोहडं[31] भिक्खं[32] न[33] पडिगिण्हंति[34] संजया[29]॥६९॥

हिलते हुए काठ आदि पर चलने से रपटने या गिर पडनेसे आत्मविराधनाकी और एकेन्द्रिय द्वीन्द्रिय आदि प्राणियोके उपमर्दन से पर-विराधनाकी सम्भावना सूचित की है। गहरे(नीचे) प्रदेशमें गमन करनेसे उक्त दोषो के सिवाय हिंसक जन्तुओसे उत्पन्न होने वाला उपघात आदि बहुतसे दोषों का होना सूचित किया है। 'सव्विंदियसमाहिए' पदसे यह प्रगट किया गया है कि साधुओको इन्द्रिय-चपलता का त्याग करना चाहिये। 'भिक्खु' पदसे द्योतित किया गया है कि साधुओको यमनियमो का पालन करते हुए ही भिक्षा ग्रहण करना चाहिये॥ ६५॥ ६६॥

હલતાં લાકડા આદિ પર ચાલવાથી લપસી જવાથી યા પડી જવાથી આત્મવિરાધનાની અને એકેન્દ્રિય દ્વીન્દ્રિય પ્રાણીઓના ઉપમર્દનથી પર-વિરાધનાની સંભાવના સૂચિત્ત કરી છે. નીચાણવાળા પ્રદેશમાં ગમન કરવાથી ઉક્તદોષે ઉપરાંત હિંસક જંતુઓથી ઉત્પન્ન થનારો ઉપઘાત આદિ ઘણા દોષો હોવાનું સૂચિત કર્યું છે સવ્વિંદિયસમાહિએ પદથી એમ કહેવામાં અવ્યું છે કે સાધુઓએ ઇન્દ્રિય ચપલતાનો ત્યાગ કરવો જોઈએ ભિક્ખુ શબ્દથી એમ પ્રકટ કરવામાં આવ્યું છે કે સાધુઓએ યમ-નિયમોનુ પાલન કરતારહીને જ ભિક્ષા ગ્રહણ કરવી જોઈએ (૬૫-૬૬)

छाया—निश्रेणिं फलकपीठम् , उत्सृज्य आरोहेत् ।
मञ्चं कीलञ्च प्रासाद, श्रमणार्थमेव दायिका ॥६७॥
दुरा (दू) रोहन्ति प्रपतेत् , हस्तौ पादौ च लूपयेत् ।
पृथ्वीजीवानपि हिंस्या,-द्यानि च तन्निःश्रितानि जगन्ति ॥६८॥
एतादृशान्महादोषान् , ज्ञात्वा महर्षयः ।
तस्मान्मालापहृतां भिक्षां, न गृह्णन्ति संयताः ॥६९॥

सान्वयार्थः-दावए=दान देने वाली स्त्री यदि समणट्ठा एव=साधुके लिएही निस्सेणिं=नसैनी-निसरणी-सीढी फलग=पाटे पीढं=पीढे मंचं=खाट व =और कील=कीलेको उस्सवित्ताणं=ऊंचा-खड़ा करके पासायं=प्रासाद-मंजिल पर आरुहे =चढे तो दुरूहमाणी=इस प्रकार कष्टसे चढती हुई वह पवडेज्जा= शायद गिर जायगी व=और अपना हत्थं=हाथ पायं=पैर लूसए=तोड़ बैठेगी तथा पुढवीजीवे अवि=पृथ्वीकायके जीवोंको भी च=और जे=जो तन्निस्सिया=उस पृथ्वी की नेसरायमें रहे हुए जगे=द्वीन्द्रियादि जीव हैं उन्हे भी हिंसेज्जा=मारेगी ॥ ६७ ॥ ॥ ६८ ॥

तम्हा=इसीलिए एयारिसे=ऐसे पूर्वोक्त प्रकारके महादोसे=दाताकी मृत्यु तक होनेकी संभावनाके कारण महादोषोंको जाणिऊण=जानकर संजया=सकल सावद्य व्यापार से विरत हुए महेसिणो=महर्षि लोग मालोहडं=मालापहृत (मालसे लाई हुई) भिक्खं=भिक्षाको न पडिगिण्हंति=नहीं लेते हैं ॥६९॥

टीका—मालापहृतभिक्षादोषमाह 'निस्सेणिं' इत्यादि । 'दावए' इत्यत्र प्राकृतत्वा-ल्लिङ्गव्यत्ययस्तथा च दायिका=दात्री श्रमणार्थमेव =साधुनिमित्तमेव साधवे भिक्षा-दानार्थमेवेत्यर्थः, निश्रेणिं=वंशादिनिर्मितं सोपानं फलकं=शयनोपयोगी दारुमयाऽऽ-सनं, पीठं=काष्ठनिर्मितोपवेशनोपयोगि लघ्वासन 'पीढ़ा' इति प्रसिद्धं, मञ्चं=खट्वां वंशदलादिरचितोच्चासनं वा कीलं=शङ्कुं चकारान्मुसलादिकम् उत्सृज्य=ऊर्ध्वीकृत्य,

मालापहृत भिक्षा के दोष बताते हे-'निस्सेणि' इत्यादि, 'दुरूहमाणी' इत्यादि, तथा एया-रिसे' इत्यादि ।

दाता, यदि साधुके लिये नसैनी, सीढी (निसरणी), पाटा, पीढा (बाजोट), मांचा, खूटी अथवा मूसल आदिको ऊँचा करके ऊँचे मकान की दूसरी मंजिल पर चढ़ कर, आहार लावे तो वह आहार आदि, मालापहृत कहलाता है । नसैनी (सीढी) आदि पर चढनेसे यदि गिर पड़े तो

હવે માલાપહૃત ભિક્ષાના દોષો બતાવે છે-निस्सेणिं ઇત્યાદિ दुरूहमाणी ઇત્યાદિ, તથા एयारिसे ઇત્યાદિ

જો દાતા સાધુને માટે સીઢી (નીસરણી), પાટ, બાજોઠ, માચો, ખૂટી અથવા મૂશળ (સાંબેલુ) આદિને ઉંચા કરીને ઉંચા મકાનના બીજા મજલા પર ચઢીને આહાર લાવે તો તે આહાર માલાપહૃત કહેવાય છે. સીઢી આદિ પર ચડવાથી જો પડી જાય તો હાથ-પગ

प्रासादम् = उच्चगृहं तत्रानेकभूमिकासम्भवेनाऽऽरोहणादिकं युज्यत इति तद्भूमिकायां लक्षणा तथा च–उच्चगृहभूमिकामित्यर्थः, आरोहेत् = उपलक्षणया गच्छेदित्यर्थः। तेन तिसृषु वक्ष्यमाणासु मालापहृतासु भिक्षासु समन्वयः। निश्रेण्यादिना सदुःखमारोहणं भवतीत्यत आह–दूरा (दू) रोहन्ती = सदुःखमूर्ध्वप्रदेशमासादयन्ती सती प्रपतेत् हस्तौ पादौ च लूषयेत् = त्रोटयेत् पृथ्वीजीवानपि हिंस्यात् = पीडयेत्, यानि च तन्निःश्रितानि पृथिव्याश्रितानि जगन्ति = प्राणिनस्तानि हिंस्यादिति पूर्वेण सम्बन्धः तस्मात् = यतो निश्रेण्यादिना समारोहणे पतनादिद्वारा दातुः स्व-परोभयविराधना सम्भवति अतः कारणात् एतादृशान् महादोषान् = दातृप्रभृतीनां मृत्योरपि सम्भवेन दारुणकर्मविपाकहेतुत्वात्प्रकृष्टदूषणानि ज्ञात्वा संयताः = सकलसावद्ययोगसमुपरताः महर्षयः = घोरपरीषहोपसर्गसहिष्णुत्वान्महामुनयः मालापहृतां = माल[1] भूमिकावाची देशीयशब्दः, ततः अपहृताम् = आनीतां भिक्षां न प्रतिगृह्णन्ति = न स्वीकुर्वन्ति।

मालापहृता भिक्षा भूमिकाया ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्भेदेन त्रिविधा ऊर्ध्वमालापहृता, अधोमालापहृता, तिर्यङ्मालाऽपहृता चेति। तत्रोर्ध्वमालापहृता पूर्वं व्याख्याता। अधोमालाऽपहृता=यस्या भूमिकाया निश्रेण्यादिनाऽवरुह्य आनीता। तिर्यङ्मालापहृता तु यस्यां भूमिकायां दायिका तिष्ठेत्तस्यामेव, नद्यादौ जलप्रवाहावरोधिसेतुवन्निश्रेण्यादिकं तिर्यक्

हाथ पैर टूट जायँ पृथ्वीकाय-आदि जीवोंकी विराधना हो जाय तथा जो प्राणी, पृथ्वीपर सञ्चार कर रहे हो उनकी भी हिंसा हो जाय इसलिए ऐसी अवस्थामें स्व, पर और उभयकी विराधना का होना सभव है, यहाँ तककि दाताकी मृत्यु भी हो जा सकती है, अतः इन महादोषो को अत्यन्त दुःखदायी जानकर, सयमी महामुनी नसैनी (सीढ़ी) आदि द्वारा माला (मजिल) से उतारा हुआ आहार आदि स्वीकार नहीं करते ॥

मालाके भेदसे मालापहृत भिक्षा, तीन प्रकार की है–(१)ऊर्ध्व-मालापहृत (२) अधो-माला पहृत और (३)–तिर्यग्मालापहृत। इनमें ऊर्ध्वमालापहृत भिक्षाका विवेचन पहले कह आये है। ऊपरके मंजिलसे नीचेकी ओर नसैनी (निसरणी) लगाकर, लाई हुई भिक्षा, अधोमालापहृत कहलाती

तूटी જાય, પૃથ્વીકાય આદિ જીવોની વિરાધના થાય, તથા જે પ્રાણી પૃથ્વી પર સચાર કરી રહ્યા હોય તેમની પણ હિંસા થઈ જાય, તેથી એવી અવસ્થામા સ્વ, પર અને ઉભયની વિરાધના થવી સંભવિત છે, એટલે સુધી કે દાતાનું મૃત્યુ પણ થઈ જઈ શકે છે, તેથી કરીને એ મહાદોષોને અત્યત દુઃખદાયી જાણીને સયમી મહામુનિ નીસરણી આદિ દ્વારા માળથી ઉતારેલા આહાર આદિ ને સ્વીકારે નહિ

માળ-મજલા-ના ભેદે કરીને માલાપહૃત ભિક્ષા ત્રણ પ્રકાની છે. (૧) ઉર્ધ્વમાલાપહૃત, (૧) અધોમાલાપહૃત અને (૩) તિર્યગ્-માલાપહૃત એમા ઉર્ધ્વમાલાપહૃત ભિક્ષાનુ વિવેચન પહેલાં કરવામા આવ્યું છે. ઉપરના મજલાથી નીચેની બાજુએ નીસરણી લગાવીને લાવેલી

---

१ मालः 'मजिल' इति भाषा प्रसिद्ध

संस्थाप्य तद्द्वारा असंश्लिष्टापरभागे गमनागमनेनाऽऽनीता। दुष्प्रापशिक्यादिस्थस्याति-गम्भीरकुसूलादिस्थस्य चान्नादेर्ग्रहणे चरणोन्नमनादिनाऽनेकविधकष्टसम्भवादेवंविधापि भिक्षा तदन्तर्ज्ञेयेति ॥६७॥६८॥६९॥

मूलम्–कंदं मूलं पलंबं वा, आमं छिन्नं च सन्निरं।
तुंबागं सिंगबेरं च, आमगं परिवज्जए ॥७०॥

छाया–कन्दं मूलं प्रलम्बं वा आम छिन्नं च सन्निरम्।
तुम्बकं शृङ्गवेरञ्च, आमकं परिवर्जयेत् ॥७०॥

सान्वयार्थः–आमं=सचित्त कंदं=सूरण आदि कन्द मूलं=विदारिकादि मूलं पलंबं=ताल आदिके फल वा=तथा छिन्न च=काटी हुई भी सन्निरं=बथुए आदिकी भाजीको (तथा) आमगं=सचित्त तुंबागं=तूंबे च=और सिंगबेरं=अदरख–आदे-को साधु परिवज्जए=वरजे ॥७०॥

टीका–'कंदं' इत्यादि। कन्दं, मूलम्, इमे प्राग्व्याख्याते, वा=अथवा प्रलम्बं=तालादिफलम् आमम्=अपक्वं-सचित्तमित्यर्थः। च=पुनः छिन्न=कर्तितमपि सन्निर=पत्रशाकं-वास्तूकादिकं, तुम्बकम्=अलाबूविशेषं, शृङ्गवेरम्=आर्द्रकं चकारा-दन्यदपि प्रत्येकसाधारणवनस्पतिमात्रम् आमकम्=अपक्वं सचित्त परिवर्जयेत्=त्य-जेत्–न गृह्णीयादित्यर्थः ॥७०॥

है। जिस मंजलमें देनेवाली मौजुद हो उसी की बराबरी पर दूसरी ओर जाने के लिये पुल की तरह नसैनी (निसरणी) या लकडी आदिको तिरछा रख कर चढे तो वहाँसे लाई हुई भिक्षा, तिर्यग्मालापहत कहलाती है। बडी कठिनाईसे पहुंचने योग्य छींके या आलेमें तथा गहरी कोठरी में रक्खी हुई भिक्षा ग्रहण करनेसे पैर उठाने आदि अनेक कष्ट होते है। इसलिये ऐसी भिक्षा भी इसी मलापहृत भिक्षा में अन्तर्गत समझनी चाहिये यह सब प्रकार की भिक्षा साधु को अकल्प्य है ॥ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

'कंदं' इत्यादि। सचित्त कन्द, मूल, ताड-फल आदि तथा कटा हुआ भी सचित्त पत्तोंका शाक-बथुआ आदि, और सचित्त तुम्बा तथा अदरख भी साधु ग्रहण न करे। 'च' शब्दसे यह

भिक्षा अधोमालापहृत कहेवाय छे जे मजलामां भिक्षा आपनारी हाजर होय, तेनी बराबर, बीजी बाजुए जवाने माटे पूलनी पेठे नीसरणी या लाकडुं पाटियुं तीछुं राखीने चडे तो त्यांथी लावेली भिक्षा तिर्यग्मालापहृत कहेवाय छे बहु मुश्केलीथी पहोंची शकाय एवा शीका या छाजलीमां तथा ऊंडी कोठडीमां राखेला अशनादि ग्रहण करवाथी पग ऊपाडवा आदिना अनेक कष्टो पडे छे, तेथी एवी भिक्षापण आ (मालापहृत) भिक्षा-मांज समजवी सघळी समजी लेवी ए सर्व प्रकारनी भिक्षा साधुने माटे अकल्प्य छे. (६७-६८-६९)

कंदं० इत्यादि सचित्त कंद, मूल, ताडफळ आदि तथा कापेलां होवा छतां सचित्त

१ २ ३ ११
मूलम्—तहेव सत्तुचुन्नाइं कोल-चुन्नाइं आवणे ।
४ ५ ६ ८ १० ९ ७
सक्कुलिं फाणियं पूअं अन्नं वावि तहाविहं ॥७१॥
१२ १४ १३ १५
विक्कायमाणं पसढं, रएणं परिफासियं ।
१६ १७ २० १९ २१ १८
दितियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥७२॥

छाया—तथैव सक्तु-चूर्णानि, कोल-चूर्णानि आपणे ।
शष्कुलीं फाणितं, पूपमन्यद्वापि तथाविधम् ॥७१॥
विक्रीयमाणं प्रसह्य, रजसा परिस्पृष्टम् ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥७२॥

सान्वयार्थः—तहेव=जिसप्रकार सचित्त कन्दादि अग्राह्य है उसीप्रकार सत्तुचुन्नाइं=भुने हुए जौ या चनेका आटा—सत्तू कोलचुन्नाइं=बेरोंका चूरा सक्कुलिं=तिलपापड़ी फाणियं=गीला गुड पूयं=मालपूवा (तथा) तहाविहं=उसीप्रकारके अन्नं वावि=औरभी पदार्थ जो आवणे=दुकानपर विक्कायमाणं=बेचनेके लिए रखे हुए हैं वे (यदि) पसढं=वस्त्रसे आच्छादित होनेपर भी रएणं=सचित्त सूक्ष्म रजसे परिफासियं=व्याप्त हों तो दितियं=देनेवालीसे पडियाइक्खे=कहे कि तारिसं=इस प्रकारका आहारादि मे=मुझे (लेना) न कप्पइ=नहीं कल्पता हैं ॥७२॥

टीका—'तहेव' इत्यादि, 'विक्कायमाणं' इत्यादि च । तथैव=यथा पूर्वोक्तं सचित्तकन्दादिकमग्राह्यं तेनैव प्रकारेण 'सत्तु-चूर्णानि=सक्तव एव चूर्णानि तानि सक्तूनित्यर्थः, भृष्टयवादिचूर्णान्येव सक्तव उच्यन्ते, कोल-चूर्णानि=बदरीफलचूर्णानि, शष्कुलीं =तिलपर्पटिकां, फाणितं=द्रुतगुडं, पूपम्=अपूपम्, तथाविधं=तादृशम् अन्यदपिवा

भी समझना चाहिये कि इनके सिवाय कोई भी सचित्त—प्रत्येक या साधारण वनस्पति, साधुको नहीं कल्पती है ॥ ७० ॥

'तहेव' इत्यादि, तथा 'विक्कायमाणं' इत्यादि ।

जैसे, सचित्त कन्द, मूल आदि त्याज्य है वैसेही सत्तू ; बेरोका चूर्ण, तिलपापडी, पिघला हुआ गुड, पूआ तथा ऐसी दही आदि अन्यान्य वस्तुएँ, बेचनेके लिये दूकानमें रक्खी हो, और

पांदडांनुं शाक-બथुઆની ભાજી આદિ અને સચિત્ત દૂધી આદિ તથા આદુ પણ સાધુ ગ્રહણ ન કરે च શબ્દથી એમ પણ સમજવું કે તે ઉપરાંત કોઈ પણ સચિત્ત-પ્રત્યેક યા સાધારણ વનસ્પતિ સાધુને કલ્પતી નથી (૭૦)

तहेव ઈત્યાદિ તથા विक्कायमाणं ઇત્યાદિ

જેમ સચિત્ત કંદ-મૂળ આદિ ત્યાજ્ય છે, તેમજ સત્તુ, બોરનું ચૂર્ણ. તલપાપડી, નરમ ગોળ, તથા એવા પ્રકારની બીજી દહીં આદિ નરમ વસ્તુઓ વેચવાને માટે દુકાનમાં રાખી,

दध्यादिकम्, आपणे = क्रय-विक्रयस्थाने, विक्रीयमाणं = विक्रयार्थं स्थाप्यमानं, रजसा= सचित्तरेणुना, प्रसह्य=हठात् वस्त्रादिनाऽऽच्छादनेऽपि यथाकथञ्चित्प्रकारेणेति भावः, परिस्पृष्टं=व्याप्तं वायुसमुत्थितरजः संस्पृष्टम् ददतीं प्रत्याचक्षीत–'तादृशं मे न कल्पत' इति ॥७१॥७२॥

मूलम्–बहुअट्ठियं पुग्गलं, अणिमिसं वा बहुकंटयं ।
अच्छियं मिंदुयं बिल्लं, अच्छुखंडं व सिंबलिं ॥७३॥
अप्पे सिया भोयणजाए, बहु उज्झणधम्मिए ।
दिंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥७४॥

छाया––बह्वस्थिकं पुद्गलम्, अनिमिषं वा बहुकण्टकम् ।
अक्षीव तिन्दुकं बिल्वम्, इक्षुखण्ड वा शाल्मलिम् ॥७३॥
अल्पं स्याद्भोजनजातं, बहूज्झनधर्मिकम् ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥७४॥

सान्वयार्थः–बहुअट्ठियं = बहुबीजा अर्थात् सीताफल अणिमिसं = अनन्नास बहुकंटयं = पनस–कटहल अच्छियं = शोभाञ्जनकी फली, जो 'मुनगा' नामसे प्रसिद्ध है; तिंदुयं = तेन्दु बिल्लं = बेल सिंबलिं=सेमल इन नामके पुग्गलं = फलोंको व=और उच्छुखंडं = गन्ने–शेरडी-के टुकडोंको, तथा जिस पदार्थमें भोयणजाए = खानेयोग्य अंश अप्पे सिया = थोडा हो और उज्झणधम्मि=डालदेनेयोग्य अंश बहु = बहुत हो ऐसे फल आदि दिंतियं=देनेवाली से साधु पडियाइक्खे=कहे कि तारिसं=इस प्रकारका आहारादि मे=मुझे (लेना) न कप्पइ = नहीं कल्पता है ॥७३॥७४॥

टीका–'बहुअट्ठियं०' इत्यादि, 'अप्पे सिया' इत्यादि च । बह्वस्थिकम्=बहूनि, अस्थीनि = बीजानी-अस्थि=बीजमिति रायमुकुटः, वैद्यकश्चेति शब्दकल्पद्रुमः; यस्मिन यद्वा

सचित्त रजसे व्याप्त हो, अर्थात् वस्त्रसे ढँक रखने पर भी पवनके द्वारा पहुँची हुई सूक्ष्म सचित्त रजसे युक्त हो तो वह आहार कल्पनीय नहीं है। इसलिये साधु, देनेवालीसे कहे कि 'ऐसा आहार, मुझे नहीं कल्पता है ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

'बहुअट्ठियं' इत्यादि तथा 'अप्पे सिया' इत्यादि । 'अस्थि' शब्दका अर्थ बीज होता है, रायमुकुट तथा वैद्यकोषोंमें 'अस्थि, शब्दका बीज ही अर्थ है, ऐसा 'शब्दकल्पद्रुम' अभिधानमें

હોય અને સચિત્ત રજથી વ્યાપ્ત હોય અર્થાત્ વસ્ત્રથી ઢાંકી રાખ્યા છતાં પવનદ્વારા પહોંચેલી સૂક્ષ્મ સચિત્ત રજથી યુક્ત હોય તો તે આહાર કલ્પનીય નથી. તેથી સાધુ તે આપનારીને કહે કે એવો આહાર મને કલ્પતો નથી (૭૧ ૭૨)

બહુઅટ્ઠિયં૦ ઈત્યાદિ, તથા અપ્પે સિયા૦ ઈત્યાદિ 'અસ્થિ' શબ્દનો અર્થ બીજ (ઠળીયો) થાય છે. રાયમુકુટ તથા વૈદ્યકોષોમાં અસ્થિ શબ્દનો બીજ એવો જ અર્થ છે,

बहूनि अस्थिकानि 'अस्थिकं=बीजे मेदोजधातौ चेति राजनिघण्टुः' इति वैद्यकशब्दसिन्धुः; यस्मिंस्तत्, बहुबीजकं-योगरूढमेतत्, सीताफलादिकमित्यर्थः—

" सीताफलं गण्डमात्रं, वैदेहीवल्लभं तथा।
कृष्णबीजं चाग्रिमाख्यमातृप्यं बहुबीजकम् ॥ १ ॥" इति निघण्टुकोपः।

यद्वा बहुअट्ठियं इत्यस्य 'बह्वष्ठिक' मितिच्छाया, 'फलबीजे पुमानष्ठिः' इति कोपात्, अर्थस्तूक्त एव। पुग्दलम्=रसवृद्ध्यात्मकपूरण परिपाकानन्तराधःपतनात्मकगलनधर्मकत्वात्पुग्दलः फलसामान्यं तम्, अग्रेऽप्यस्य सम्बन्धः, सीताफलादिनामकं फलमिति भावः अनिमिषम्=अनन्नासम् अन्तर्वहिः सकण्टकं बङ्गादिदेशप्रसिद्धम्। बहुकण्टकं=कण्टकिफलं-पनस 'कटहर' इत्यनेन प्रसिद्धम्, अस्य त्वगभावे, सर्वावयवावच्छेदेन कण्टकव्या-

---

भी लिखा है। अत एव बहस्थिक शब्दका अर्थ है-बहुत बीजोवाला। यह शब्द योगरूढ है, अत एव सीताफल अर्थ होता है। निघण्टुमें भी सीताफल (सरीफा) के इतने नाम गिनाये है—

"सीताफल, गण्डमात्र, वैदेहीवल्लभ, कृष्णबीज, अग्रिम, आतृप्य और बहुबीजक ॥१॥"

इनमें 'बहुबीजक' शब्द भी सीताफलके लिये आया है, और यह ऊपर बताया ही जा चुका है कि 'अस्थि' शब्दका अर्थ बीज होता है। इसलिये बहुबीजक और बहस्थिक एक ही है, अतः बहस्थिकका अर्थ सीताफल ही है। अथवा 'अट्ठिय 'की छाया, 'अष्ठिक' होती है, कोषमें लिखा है कि फलके बीजको 'अष्ठि' कहते है। इससे भी पूर्वोक्त अर्थ ही सिद्ध होता है, इसलिये, सीताफलको तथा बंग आदि अन्य अन्य देशोंमें प्रसिद्ध अनन्नाश (अनास) फल विशेष, कटहर, मुनिगा (सोहिंजन) की फली, तेन्दु, वेल, गन्नेका खण्ड एवं सेमल आदि फल, जिनमें खाद्य अंश कम हो तथा त्याज्य अंश अधिक हो उन सब फल आदिको देनेवालीसे कहे कि ऐसा आहार, मुझे नहीं कल्पता है।

એમ 'શબ્દકલ્પદ્રુમ' મા પણ લખ્યું છે. એટલે બહ્વસ્થિક શબ્દનો અર્થ થાય છે બહુ બીજો વાળું, એ શબ્દ યોગરૂઢ છે, એટલે સીતાફળ અર્થ થાય છે નિઘંટુમાં પણ સીતાફળનાં આટલાં નામ ગણાવ્યાં છે—

"સીતાફળ, ગંડમાત્ર, વૈદેહીવલ્લભ, કૃષ્ણબીજ અગ્રિમ, આતૃપ્ય અને બહુબીજક"

એમાં 'બહુબીજક' શબ્દ પણ સીતાફળને માટે આવ્યો છે, અને ઉપર બતાવવામા આવ્યું જ છે કે 'અસ્થિ' શબ્દનો અર્થ 'બીજ' થાય છે એટલે બહુબીજક અને બહસ્થિક એક જ છે, અર્થાત્ બહસ્થિકનો અર્થ સીતાફળ જ છે. અથવા અટ્ઠિય ની છાયા અષ્ઠિક થાય છે, કોષમાં લખ્યું છે કે ફળના બીજને 'અષ્ઠિ' કહે છે. તેથી પણ પૂર્વોક્ત અર્થ જ સિદ્ધ થાય છે. એ રીતે સીતાફળ, તથા બંગ આદિ અન્ય-અન્ય દેશોમા પ્રસિદ્ધ અનનાસ, કટહર, મુનિગાની (એક પ્રકારની) ફળી, તેન્દુ, બિલ્વફળ, (બીલા) શેરડીની કાતળી, સેમલ આદિ ફળ, જેમાં ખાદ્ય અંશ ઓછો હોય તથા ત્યાજ્ય અંશ વધારે હોય એ બધા ફળ આદિ આપનારીને સાધુ કહે કે—એવો આહાર મને કલ્પતો નથી.

स्या बहुकण्टकत्वं सिध्यति, अनिमिषपदार्थस्य त्वन्तर्बहिः सकण्टकत्वेऽपि विरलकत्वादस्माद्भेदः । अक्षोवं=शोभाञ्जनम् फलप्रकरणात्तत्फलिकाम् , त्वचः स्थौल्य-कार्कश्याधिक्यदोषेभ्यो बीजानां बाहुल्याच्चात्यधिकत्याज्यभागां 'मुनिगा' इति देशविशेषप्रसिद्धाम् तिन्दुकम्=अण्डाकृतिकं फलविशेषम् अल्पाकारस्याप्यस्य फलस्य बीजानां स्थौल्यबाहुल्यादिदं त्याज्यांगबहुलं 'तदु' इति प्रसिद्धम् , इक्षुखण्डं, शाल्मलि च, एतानि प्रसिद्धार्थकानि । तथा यत्र भोजनजातं=भोज्यांशः अल्पं=स्वल्पम् , उज्झनधर्मिकं=त्याज्यांशः बहु=अधिकं स्यात्=भवेत् तत्फलादिकमन्यदपि ददतो प्रत्याचक्षीत–तादृशं मे न कल्पते इति। कतिचित्फलानि प्रदर्श्य त्याज्यसामान्यलक्षणं निरूपित तेन न पूर्वगाथायास्तात्पर्यानुपपत्तिरिति दिक् ॥७३॥७४

मूलम्– तहेवुच्चावयं पाणं, अदुवा वार-धोयणं ।
संसेइमं चाउलोदगं, अहुणाधोयं विवज्जए ॥७५॥

छाया–तथैवोच्चावचं पान,-मथवा वारकधावनम् ।
सस्वेदिमं तण्डुलोदकम्, अधुनाधौतं विवर्जयेत् ॥७५॥

अब पान ग्रहण करनेकी विधि बताते हैं

सान्वयार्थः–तहेव=जैसे अशन उसीप्रकार पाणं=पान उच्चावयं=उच्चा-सुन्दर वर्णादिसे युक्त, जैसे दाख आदिका धोवन, अथवा–सुन्दर वर्णादिसे रहित जैसे मेथी केर आदिका धोवन वारधोयण=गुडके घडेका धोवन संसेइमं=भाजीका अथा आटेकी

अनन्नासमें भीतर भी कांटे होते हे और बाहर भी, और कटहरके छिलकेमें सर्वत्र कांटे ही कांटे होते हैं । दोनो बहुकण्टक हे, किन्तु अनन्नासमें कांटे कम और तीखे होते है, अतः वह कटहरसे भिन्न हे । अन्य भेद लोक-प्रसिद्ध ही है ।

सामान्य लक्षण करनेसे त्यागने योग्य फलोका ज्ञान शिष्योको कठिनतासे होता है, अतः पहले कुछ विशेष फलोंके नाम गिना कर, उस प्रकारके सभी-फलोका त्याग बताया है । इसलिये, पहली गाथामें इसका सम्बन्ध ठीक बैठता है ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

અનનાસમાં અંદર કાંટા હોય છે અને બહાર પણ હોય છે, અને કટહરના છોતરામાં સર્વત્ર કાંટા જ હોય છે બેઉ બહુકંટક છે, પરન્તુ અનનાસમાં કાંટા ઓછા અને તીખાં હોય છે, તેથી તે કટહરથી જૂદું ફળ છે. અન્ય ભેદ લોકપ્રસિદ્ધ છે

સામાન્ય લક્ષણ બતાવવાથી ત્યાગવા યોગ્ય ફળોનું જ્ઞાન શિષ્યોને મુશ્કેલીથી થાય છે, એટલે પહેલાં કેટલાક વિશેષ ફળોના નામ ગણાવીને એ પ્રકારનાં બધા ફળોનો ત્યાગ બતાવ્યો છે. તેથી પહેલી ગાથાથી આનો સંબંધ ઠીક બંધ બેસે છે. (૭૩-૭૪)

थालीका धोवन अदुवा = अथवा चाउलोदगं = चॉवलोंका धोवन (ये सब यदि) अहुणाधोयं = तुरन्तका धोया हुआ हो तो उसे (साधु) विवज्जए = वर्जे — न लेवे ॥७५॥

टीका–अशनग्रहणविधेरनन्तरं पानग्रहणविधिमाह' 'तहेवुच्चावयं' इत्यादि । तथैव यथाऽशनं तेनैव प्रकारेण, पानं = पेयं, कर्मणि ल्युट्, उच्चावचमिति-उदक् च अवाक् च उच्चावचम् अनेकप्रकारम् , उत्कृष्टानुत्कृष्टमित्यर्थः' तत्र उत्कृष्टं = रुचिरवर्णगन्धरसस्पर्शयुक्तं द्राक्षादिधावनजलं प्रपाणकादिकं च, अनुत्कृष्टं = रुचिर-वर्णादिहीनं मेथिका-करीर-शमीफलिका-तिलादिधावनजलम् । वारकधावनं = गुड-घट-घृतघटादि धावनजलं, संस्वेदिमं = क्वथितशाकादिजलं पिष्टस्थालीप्रक्षालनजलञ्च, तण्डुलोदकं = तण्डुलधावनजलम् । एतत्सर्वम् अधुनाधौतम् = तत्काल-धौतम्-अन्तर्मुहूर्त्तान्तर्धौतं चेदित्यर्थस्तदा विवर्जयेत् = न गृह्णीयात् । उपलक्षणमेतत् , उक्तञ्चाऽऽचाराङ्गे श्रीभगवता—

"से भिक्खू वा२ जाव अणुपविट्ठे समाणे से जं पुण पाणगजायं जाणेज्जा, तं जहा— उस्सेइमं वा संसेइमं वा चाउलोदगं वा अन्नयरं वा तहप्पगारं पाणगजातं अहुणाधोय अणबिलं अवोक्कत अपरिणतं अविद्धत्थं अफासुयं जाव णो पडिगाहेज्जा । अह पुण एवं जाणेज्जा चिराधोय अंबिलं वोक्कंतं परिणतं विद्धत्थं फासुयं जाव पडिगाहेज्जा । से भिक्खू वा२ जाव अणुप्पविट्ठे समाणे से जं पुण पाणगजातं जाणेज्जा तं जहा—तिलोदगं वा तुसोदगं वा जवोदगं वा आयामं वा सोवीरं वा सुद्धवियडं वा अण्णयरं वा तहप्पगारं

अशन ग्रहण करनेकी विधी बताकर अब पान ग्रहण करनेको विधी दिखाते है—'तहेवुच्चावयं' इत्यादि ।

उच्च (उत्कृष्ट) मनोज्ञ वर्ण गन्ध रस स्पर्शवाला दाख आदिका धोवन तथा शर्बत आदि पान, अथवा (अनुत्कृष्ट अमनोज्ञ वर्ण गन्ध रस स्पर्शवाला मेथी केर साँगरी तथा तिल छाछ आदिका धोवन आदि पान, गुड या घीके घडेका धोवन, औटाये (उबाले) हुए हरा शाक आदिका पानी, आटेकी थाली आदिका धोवन, चावलका धोवन। ये सब यदि तत्कालके धोये हुए हों अर्थात् अन्तर्मुहूर्त्तके अभ्यन्तरके धोये हो तो इनको ग्रहण न करे । ये तो उपलक्षण मात्र है, आचाराग सूत्रमे भगवानने कहा है —

અશન ગ્રહણ કરવાની વિધિ બતાવીને હવે પાન ગ્રહણ કરવાની વિધિ બતાવે છે:— तहेवुच्चावयं ઈત્યાદિ

ઉચ્ચ (ઉત્કૃષ્ટ) મનોહર વર્ણ ગંધ રસ સ્પર્શવાળુ દ્રાક્ષ આદિનુ ધોવણ તથા શરબત આદિ પાન, અથવા (અનુત્કૃષ્ટ) અમનોજ્ઞ વર્ણ ગંધ રસ સ્પર્શવાળુ મેથી, કેરાં, ખીજડાની ફળી (સાગરિઓ) તથા તલ છાશ આદિનુ ધોવણ આદિ પાન, ગોળ યા ઘીના ઘડાનું ધોવણ, ઉકાળેલા લીલા શાક આદિનુ પાણી, આટાની થાળી આદિનુ ધોવણ, ચોખાનું ધોવણ એ બધા જો તાજા ધોએલાં હોય અર્થાત્ અંતર્મુહૂર્તની અંદર અંદર ધોએલાં હોય તો તેને ગ્રહણ કરવાં નહિ એ તો ઉપલક્ષમાત્ર છે આચારાંગસૂત્રમાં ભગવાને કહ્યું છે કે—

"સાધુ અથવા સાધ્વી પાણીને માટે ગૃહસ્થના ઘરમા પ્રવેશ કરીને, લોટના વાસણનું ધોવણ, શાક આદિ જેમા બાફેલા હોય તે પાણી, ચોખાનું ધોવણ, તથા એ પ્રકારનુ

पाणगजायं पुव्वामेव आलोएज्जा-आलोएज्जा-आउसोत्ति वा० ७। से भिक्खू वा २ जाव समाणे से जं पुण जाणज्जा तं जहा-अंबपाणगं वा अंबाडगपाणगं वा कविट्ठपाणगं वा मातुलिंगपाणग वा मुद्दियापाणगं वा दोलिमपाणगं वा अन्नयरं वा तहप्पगारं पाणगजायं" इत्यादि।

छाया—'अथ भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा यावत् अनुप्रविष्टः सन् स यत्पुनः पानक-जातं जानीयात्, तद्यथा-उत्स्वेदिमं वा संस्वेदिमं वा तण्डुलोदकं वा अन्यतरद् वा तथाप्रकारं पानकजातम् अधुनाधौतम् अनम्लम् अव्युत्क्रान्तम् अपरिणतम् अविध्वस्तम् अप्रासुकं यावत् नो प्रतिगृह्णीयात्। अथ पुनरेवं जानीयात्-चिरधौतम् अम्लं व्युत्क्रान्तं परिणतं विध्वस्तं प्रासुकं यावत् प्रतिगृह्णीयात्। अथ भिक्षुर्वा २ यावत् अनुप्रविष्टः सन् स यत्पुनः पानकजातं जानीयात्- तद्यथा-तिलोदक वा तुषोदकं वा यवोदकं वा आयामं वा सौवीरं वा शुद्धविकृते वा अन्यतरत्तु वा तथा प्रकारं पानकजातं पूर्वमेव आलोचयेत्-आयुष्मन्' इति व० ७३। अथ भिक्षुर्वा२ यावत् अनुप्रविष्टः सन् स यत्पुनर्जानीयात्, तद्यथा—आम्रपानकं वा आम्रातकपानक वा कपित्थपानकं वा मातुलुङ्गपानकं वा मृद्वीकापानकं वा दाडिमपानकं वा खर्जूरपानक वा नालिकेरपानकं वा करीरपानकं वा कोलपानकं वा आमलपानकं वा चिञ्चापानकं वा, अन्यतरद्वा तथाप्रकारं पानकजातम्" इत्यादि।

"साधु अथवा साध्वी पानीके लिए गृहस्थके घरमें प्रवेश करके—आटेके बरतनका धोवन, शाक आदि का वाफा हुआ पानी, चावलोका धोवन तथा इस प्रकारका और भी कोई पानी तुरतका धोया हुआ हो, स्वादसे चलित न हुआ हो अर्थात् जिसका धोवनहो उस वस्तुका स्वाद न आता हो, जिसका वर्ण रस गन्ध स्पर्श—न बदला हो—सर्वथा अचित न हुआ हो शस्त्र-परिणत न हो तो ग्रहण न करे। यदि तुरतका धोया हुआ न हो—बहुत देरका धोया हुआ हो, स्वादसे चलित हो गया हो और शस्त्रपरिणत हो तो ग्रहण करे। तिलोदक, तुषोदक, यवोदक, ओसामण, सोवीर (अगठण),उष्णोदक तथा इस प्रकारका और भी अंबाडगका धोवन, कविठ (कैथ) का धोवन, बिजौरेका धोवन, द्राक्षका धोवन, अनारका धोवन, खजूरका धोवन, नारियलका पानी (धोवन), केरका धोवन, बेरका धोवन, आँवलेका धोवन, इमलीका धोवन, अथवा इस प्रकारका और भी

બીજું પણ કોઇ પાણી તુરતનું ધોએલું હોય, સ્વાદથી ચલિત થયું ન હોય, અર્થાત્ જેનું ધોવણ હોય તે વસ્તુનો સ્વાદ ન આવતો હોય, જેના વર્ણ રસ ગંધ સ્પર્શ ન બદલાયાં હોય-સર્વથા અચિત્ત ન થયુ હોય, શસ્ત્રપરિણત ન હોય, તો તે ગ્રહણ ન કરે જો તુરતનું ધોએલુ ન હોય બહુ વખતનુ ધોએલુ હોય, સ્વાદથી ચલિત થયુ હોય, અને શસ્ત્રપરિણત હોય તો ગ્રહણ કરે. તિલોદક, તુષોદક, યવોદક, ઓસામણ, સૌવીર, ઉષ્ણોદક તથા એ પ્રકારનુ બીજું પણ પાણી ગૃહસ્થે આપેલું હોય તે કલ્પે છે. જો સાધુકેરીનું ધોવણ. અંબાડગ (આંબોળિયાંનું) ધોવણ, કોઠાનું ધોવણ, બીજોરાંનું ધોવણ, દ્રાક્ષનુ ધોવણ, અનારનુ ધોવણ, ખજૂરનુ ધોવણ, નારિયેળનું પાણી (ધોવણ), કેરાંનું ધોવણ, બોરનુ ધોવણ, આમળાંનુ ધોવણ, આમલીનું ધોવણ, અથવા એ પ્રકારનું બીજું પણ ધોવણ જાણે અને

उक्तं दिगम्बराचार्येण वट्टकेरस्वामिनाऽपि मूलाचारे--

"तिलतंडुल-उसणोदय, चणोदय-तुसोदय अविद्धत्थं ।
अण्णं तहाविहं वा, क्षपरिणतं णेव गेण्हिज्जा ॥४७३॥" इति

छाया— तिलतण्डुलोष्णोदकं चणकोदकं तुषोदकम् अविध्वस्तम् ।
अन्यत्तथाविधं वा अपरिणतं नैव गृह्णीयात् ॥४७३॥

इति गाथार्थः ॥७५॥

तर्हि कीदृशं पानं गृह्णीयात्? इत्यत आह—'जं जाणेज्ज' इत्यादि, 'अजीवं' इत्यादि च ।

मूलम्—जं जाणेज्ज चिराधोयं, मईए दंसणेण वा ।
पडिपुच्छिऊण सुच्चा वा, जं च निस्संकियं भवे ॥७६॥
अजीवं परिणयं नच्चा, पडिगाहिज्ज संजए ।
अह संकियं भविज्जा, आसाइत्ताण रोयए ॥७७॥

छाया—यज्जानीयाच्चिराद्धौतं, मत्या दर्शनेन वा ।
प्रतिपृच्छ्य श्रुत्वा वा, यच्च निश्शङ्कितं भवेत् ॥७६॥
अजीवं परिणतं ज्ञात्वा, प्रतिगृह्णीयात्संयतः ।
अथ शङ्कितं भवेत् , आस्वाद्य रोचयेत् ॥७७॥

धोवन जाने और यदि वह अत्यम्ल न हो, तुरतका धोया हुआ न हो, स्वादचलित हो और शस्त्रपरिणत हो तो कल्पता है ।"

दिगम्बराचार्य वट्टकेर-स्वामीने भी मूलाचारमें कहा है—

"तिलोदक, तन्दुलोदक, उष्णोदक, चनेका पानी तुषका पानी, तथा इस प्रकारका और भी जल यदि अविध्वस्त (सचित्त हो और शस्त्रपरिणत न हो तो ग्रहण नहीं करना चाहिए अर्थात् शस्त्रपरिणत हो तो लेना कल्पता है ॥१॥' (मूलाचार गा. (४७३) ॥७५॥

જો તે બહુ અમ્લ (ખાટું) ન હોય. તુરતનું ધોએલું ન હોય, સ્વાદચલિત હોય અને શસ્રપરિણત હોય તો કલ્પે છે."

દિગમ્બરાચાર્ય વટ્ટકેર-સ્વામીએ પણ મૂલાચારમાં કહ્યું છેઃ—

"તિલોદક, તન્દુલોદક, ઉષ્ણોદક, ચણાનું પાણી તુષનું પાણી, તથા એ પ્રકારનું બીજું પણ જળ જો અવિધ્વસ્ત (સચિત્ત) હોય અને શસ્રપરિણત નું હોય તો ગ્રહણ કરવું ન જોઇએ અર્થાત્ શસ્રપરિણત હોય તો લેવું કલ્પે છે (મૂલાચાર ગા. ૪૭૩) (૭૫).

सान्वयार्थः-मईए=बुद्धिसे वा=अथवा दंसणेण=देखनेसे पडिपुच्छिऊण=पूछकर वा=अथवा सुच्चा= बात करते हुए सुनकर जं=जिस धोवनको चिराधोयं= चिराधौत-बहुत देरका धोया हुआ जाणेज्ज=जाने, च=तथा जं=जो निस्संकियं= 'इससे तृषा शान्त होगी या नहीं ?' इस प्रकारकी शङ्कारहित भवे=हो तो उसे अजीवं= जीवरहित-अचित्त और परिणयं=शस्त्रपरिणत नच्चा=जानकर संजए= साधु पडिग्गाहिज्ज=लेवे; अह=अथ-अगर वह संकियं='इससे तृषाबूझेगी या नहीं ?' इस प्रकारकी शङ्कासे युक्त भविज्जा=हो-तो उसे आसाइत्ताण=चखकरके रोयए=निर्णय करे ॥७६॥७७॥

टीका—मत्या=बुद्ध्या दर्शनेन=दृष्ट्या वा धौतजले तदीयवर्णादिपरिज्ञानाय तत्राऽऽगमानुगामिन्या मनीषया दृष्टिनिपातेन वेति भावः, प्रतिपृच्छ्य=सम्यक् पृष्ट्वा श्रुत्वा वा तत्प्रतिवचनं प्रश्नमन्तरेणाऽपि कस्यचिन्मुखाद्वा निशम्य यत् चिराद्धौत जानीयात्,यच्च निश्शङ्कितम्= अनुपयोगित्वशङ्कारहितं भवेत् तद् अजीवं=प्रासुकं परिणतं=स्वपरशस्त्रादिनाऽवस्थान्तरं प्राप्तं ज्ञात्वा संयतः=साधुः प्रतिगृह्णीयात् ।

ये तु 'घटिकाद्वयानन्तरं धावनजलं सचित्तं भवतीति मुहूर्तात्परं तत्तोयमनुपादेय' मित्याहुः, तन्न समीचीनम् , व्यञ्जनाद्युपलिप्तकरदर्वीधावनार्थं पाकप्रदेशे पूर्वस्थापितजलस्य मुहूर्त्तानन्तर तन्मते सचित्ततायां तदानीं तदुदकक्षालितकरदर्व्यादिना निरवद्या-

---

कैसा धोवन ग्रहण करना चाहिए ? सो बताते हैं—'जं जाणेज्ज' इत्यादि, 'अजीवं' इत्यादि ।

आगमानुसार बुद्धि अथवा दृष्टिसे धोवनका वर्ण आदि जान कर पूछ कर अथवा किसीसे सुन कर धोवन बहुत देरका धोया हुआ हो तो ग्रहण करे । तथा उपयोगी है या अनुपयोगी ? इस प्रकारकी शकाका निर्णय करके प्रासुक तथा अवस्थान्तरको प्राप्त होगया जानकर साधु ग्रहण करे ।

जो लोग यह कहते है कि—'धोवन जल दो घडीके बाद सचित्त होनेसे अग्राह्य है' यह उनका कहना ठीक नहीं, क्योंकि, यदि दो घडीके बाद-धोवन जल सचित्त हो जाय तो शाक-आदिसे लिप्त हाथ या कुडछी आदि धोनेके लिये गृहस्थ (रसोया) रसोईके समय अपने पास

કેવુ ધોવણ ગ્રહણ કરવુ જોઈએ ? તે બતાવે છેઃ—जं जाणेज्ज० ઇત્યાદિ, તથા अजीवं ઇત્યાદિ

આગમાનુસારબુદ્ધિ અથવા દૃષ્ટિથી ધોવણનો વર્ણાદિ જાણી-પૂછીને અથવા કોઇ પાસેથી સાભળીને ધોવણ બહુ વખતથી ધોએલુ હોય તો તે ગ્રહણ કરે તેમજ 'ઉપયોગી છે કે અનુપયોગી ?' એ પ્રકારની શકાનો નિર્ણય કરીને પ્રાસુક તથા અવસ્થાનરને પ્રાપ્ત થએલુ જાણીને સાધુ તે ગ્રહણ કરે

જે લોકો કહે છે કે-'ધોવણનુ પાણી બે ઘડી પછી સચિત્ત હોવાથી અગ્રાહ્ય છે' તે તેમનુ કહેવાનુ બરાબર નથી. કારણ કે જો બે ઘડી પછી ધોવણનુ જળ સચિત્ત થઇ જાય તો શાક આદિથી ખરડાયલા હાથ યા કડછી-આદિ ધોવાને માટે ગૃહસ્થ (રસોઈયો) રસોઇને

शनग्रहणमपि तेषां दोषावहं भवेत्, तत्संमतसचित्तजलसंसृष्टकरदर्वीसंसर्गवत्त्वात्। मुहूर्तात्परमेव धावनजलस्य सचित्तत्वाङ्गीकारे 'अहुणाधोयं विवज्जए' इति प्रकृतसूत्रस्य च विरोधापत्तिः, तथाहि–अधुनाधौतस्य मुहूर्त्तान्तर्गततया तत्र तन्मते सचित्ततायाः अभावे तद्वर्जनोपदेशाऽसङ्गतिः चिराद्धौतस्य च मुहूर्त्तानन्तरं तन्मते सचित्तताया अभावे तद्वर्जनोपदेशासङ्गतिः स्यात्, तस्मात् पिपासापनोदनशक्तिशालिनश्चिराद्धौतस्य ग्रहणं शास्त्रसंमतमित्यवधेयम्।

अथ शङ्कितं='पिपासाऽपनोदकं न वा ?' इति संशयविषयो भवेत्तदा आस्वाद्य= उक्तसंशयापनोदनार्थं किञ्चित्पीत्वा रोचयेत्=निर्णयेत ॥

''अजीव''-मित्यनेन जीवराहित्यं 'परिणत'- मित्यनेन च सर्वथाऽचित्तत्वं सूचित्तम् ॥७६॥७७॥

एक पानीका बरतन रखता है, उस जलसे हाथ और कुडछी धो धो कर दाल आदि परोसता है, ऐसी दशामें उक्त मतसे देर तक रक्खे रहनेके कारण यदि वह हाथ या कुडछी आदिका धोवन सचित्त हो जाता है तो उस धोवनमें धोयी हुई कुडली या हाथसे दिया जानेवाला निरवद्य अन्नादि भी उनको अग्राह्य हो जायगा। 'तहेवुच्चावयं' इस गाथा के अन्तिम चरणमें 'अहुणाधोयं विवज्जए' यह कह कर भगवानने यह स्पष्ट कर दिया है कि तुरतका धोया हुआ जल अग्राह्य है, और इसीको 'द्विर्बद्धं सुबद्धं भवति' इस न्यायसे 'ज जाणेज्ज चिराधोयं' इस गाथासे सुस्पष्ट कर दिया है कि देरका धोया हुआ धोवन ग्रहण करना चाहिए। अतः दो घड़ीके बाद धोवन में जीवोंकी उत्पत्ति मानना जैनागमसे विरुद्ध है और उत्सूत्र-प्ररूपणका भागी बनना है।

तथा 'इससे प्यास मिट जायगी या नहीं ?' ऐसा सन्देह उत्पन्न हो जाय तो उस सन्देह को दूर करनेके लिए थोडासा पानी चख कर निर्णय करे।

'अजीवं'-पदसे जीवराहित्य और 'परिणयं' पदसे मिश्रकी शंकाका अभाव सूचित किया है ॥७६॥७७॥

સમયે પોતાની પાસે પાણીનુ એક વાસણ રાખે છે, એ જળથી હાથ અને કડછી ધોઇ-ધોઇને દાળ આદિ પીરસે છે, એવી દશામા ઉક્ત મત પ્રમાણે કેટલાક સમય સુધી રહેલુ હોવાને કારણે જો એ હાથ યા કડછી આદિનું ધોવણ સચિત્ત થઈ જાય તો એ ધોવણમાં ધોએલી કડછી યા હાથથી આપવામાં આવતું નિરવદ્ય અન્નાદિ પણ એમને અગ્રાહ્ય બની જાય. તહેવુચ્ચાવયં એ ગથાના અ'તિમ ચરણમાં अहुणाधोयं विवज्जए એમ કહીને ભગવાને એ સ્પષ્ટ કરી આપ્યુ છે કે તુરતનું ધોએલુ જળ અગ્રાહ્ય છે, અને એને द्विर्बद्धं सुबद्धं भवति એ ન્યાયે-કરી जं जाणेज्ज चिराधोयं એ ગાથાથી સુસ્પષ્ટ કરી આપ્યું છે કે કેટલાક સમય પહેલાંનુ ધોએલુ ધોવણ ગ્રહણ કરવું જોઇએ એટલે બે ઘડી પછી ધોવણમા જીવોની ઉત્પત્તિ માનવી એ જૈનાગમથી વિરુદ્ધ છે અને ઉત્સૂત્રપ્રરૂપણાના ભાગી બનવુ પડે છે

તેમજ 'એથી તરસ મટશે કે નહિં ?' એવો સંદેહ ઉત્પન્ન થાય તો એ સંદેહ દૂર

आस्वादनविधि प्रदर्शयन् निर्णयप्रकारमाह–'थोव०'इत्यादि ।

२ १ ४ ५ ३

मूलम्–थोवमासायणट्ठाए, हत्थगम्मि दलाहि मे ।

१२ ११ ६ ७ १० ८ ९

मा मे अच्चंबिलं पूयं, नालं तिण्हं विणित्तए ॥७८॥

छाया– स्तोकमास्वादनार्थं, हस्तके देहि मे ।

मा मे अत्यम्लं पूति, नालं तृष्णां विनेतुम् ॥७८॥

सान्वयार्थः–(निर्णय करनेके लिए साधु दातासे कहे कि-हे आयुष्मन् !) आसायणट्ठाए=चखनेके लिए थोवं=थोड़ासा धोवन मे=मेरे हत्थगम्मि=हाथमें दलाहि=दो. (हाथमें लेकर चखने पर यदि निश्चय हो जाय कि वह धोवन) अच्चंबिलं=अत्यन्त खट्टा पूयं=दुर्गन्धित और तिण्हं =प्यास विणित्तए=बुझानेके लिए नालं =समर्थ नहीं हैं इसलिए यह मे=मेरे लिए उपयोगी मा=नहीं है॥७८॥

टीका—आस्वादनार्थम् = उपयोगित्वाऽनुपयोगित्वज्ञानार्थं स्तोकं स्वल्पं तिल-तण्डुलादिजलं मे = मम हस्ते 'देहि' इति दात्रीमुद्दिश्य वदेदिति भावः । तद्दत्तं धौत-जलमास्वाद्य निश्चिनुयात्-इदम् अत्यम्लं पूति = अनिष्टगन्धयुक्तं तृष्णां = पिपासां विने-तुम् = अपाकर्त्तुं नालं = न समर्थम्, इति मे = मम मा = नहि उपयोगीति शेषः॥७८ ॥

आस्वादन (चखने) की विधि बताते हुए निर्णय करनेका प्रकार बताते हैं —' थोव० ' इत्यादि ।

'धोवन उपयोगी है या नहीं ?' इस शंकाका निवारण करनेके लिए देनेवाली बाईसे साधु कहे कि–'मेरे हाथमें थोड़ासा पानी दो ।' उस दिये हुए धोवनका आस्वादन करके निश्चय करे कि–'यह बहुत खट्टा है, दुर्गन्धवाला है प्यास शान्त करनेके लिए समर्थ नहीं है अतः मेरे लिए उपयोगी नही है ॥७८॥'

ऐसा निश्चय करके क्या करना चाहिए ? सो कहते है–तं च' इत्यादि ।

કરવાને માટે થોડુ પાણી ચાખીને નિર્ણય કરવો અજીવં શબ્દથી જીવરાહિત્ય અને પરિણયં શબ્દથી મિશ્રની શંકાનો અભાવ સૂચિત કર્યો છે (૭૬–૭૭)

આસ્વાદન (ચાખવા) ની વિધિ બતાવતાં નિર્ણય કરવાનો પ્રકાર બતાવે છે-થોવ૦ ઇત્યાદિ.

'ધોવણ ઉપયોગી છે કે નહિ ?' એ શંકાનું નિવારણ કરવાને માટે ધોવણ આપ-નારી બાઇને સાધુ કહે કે "મારા હાથમાં થોડું પાણી આપો.' એ આપેલા ધોવણનું અસ્વા-દન કરીને નિશ્ચય કરે કે 'આ બહુ ખાટુ છે, દુર્ગંધ વાળું છે, તરસ શાંત કરવા માટે સમર્થ નથી, તેથી મારે માટે ઉપયોગી નથી.' (૭૮)

એવો નિશ્ચય કરીને શું કરવું જોઇએ ? તે હવે કહે છે-તં ચ૦ ઇત્યાદિ.

निश्चयानन्तरं कर्त्तव्यमाह-'तं च' इत्यादि ।

१ २ ३ ४ ७ ५ ६

मूलम्-तं च अच्चंबिलं पूयं, नालं तिण्हं विणित्तए ।

८ ९ ११ १२ १३ १४

दिंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥ ७९ ॥

छाया—तच्चाऽत्यम्लं पूति, नालं तृष्णां विनेतुम् ।

ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥७९॥

तब वह साधु क्या करे ?, सो बताते है—

सान्वयार्थः-अच्चंबिलं=अत्यन्त खट्टे पूयं=दुर्गन्धियुक्त और तिण्हं विणित्तए नालं=प्यास मिटाने के लिए असमर्थ तं च=उस धोवनको दिंतिय=देनेवालीसे साधु पडियाइक्खे=कहे कि तारिसं=इस प्रकारका धोवन मे=मुझे न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥७९॥

टीका—तच्च धौतजलमत्यम्लपूति तृष्णां विनेतुं नालमिति ददतीं प्रत्याचक्षीत-तादृशं मे न कल्पते इति ॥७९॥

१ २ ६ ३ ४ ५

मूलम्-तं च होज्ज अकामेणं, विमणेण पडिच्छियं ।

७ ८ ९ १० ११ १३ १२ १४

तं अप्पणा न पिबे, नो वि अन्नस्स दावए ॥८०॥

छाया—तच्च भवेद् अकामेन, विमनसा प्रतिगृहीतम् ।

तद् आत्मना न पिबेत्, नो अपि अन्यस्मै दापयेत् ॥८०॥

सान्वयार्थः—त=वह उस प्रकारका धोवन यदि अकामेणं=विना इच्छासे दाताके अनुरोधसे च=तथा विमणेणं=मनके दूसरी तरफ होनेके कारण पडिच्छिय=लेलिया गया हो तो तं=उस धोवनको न=न तो अप्पणा=अपने खुद पिबे=पिवे और नो=न अन्नस्स अवि=दूसरोंकोभी दावए=देवे ॥८०॥

टीका—'तं च' इत्यादि । तच्च धौतजलं यदि अकामेन=स्वानिच्छया, दात्रनुरोधेनेति भावः; विमनसा=अन्यमनस्कतया, 'हेतौ तृतीया' प्रतिगृहीतं तद् आत्मना स्वयं न पिबेत् नो अपि अन्यस्मै दापयेत् ॥८०॥

उस बहुत खट्टे, दुर्गन्धित और प्यास बुझानेमें असमर्थ धोवनको देनेवाली बाईसे कहे कि ऐसा धोवन मुझे नहीं कल्पता है ॥७९॥

'तं च' इत्यादि । यदि ऐसा पानी अनिच्छापूर्वक दाताके अनुरोधसे अथवा विना ध्यानसे ग्रहण कर लिया हो तो स्वय उसे न पिये और न दूसरेको पिलावे ॥८०॥

એવા બહુ ખાટા, દુર્ગંધિત અને તરસ છીપાવવામા અસમર્થ ધોવણને આપનારી બાઈને સાધુ કહે કે એવુ ધોવણ મને કલ્પતુ નથી (૭૯)

તં ચ ઈત્યાદિ જો એવું પાણી અનિચ્છાપૂર્વક દાતાના અનુરોધથી અથવા બે-ધ્યાનથી ગ્રહણ કરી લીધું હોય તો પોતે ન પીએ અને ન બીજાને પીવડાવે (૮૦)

तर्हि किं कुर्यात् ? इत्याह–'एगंत०'इत्यादि ।

मूलम्–एगंतमवक्कमित्ता, अचित्तं पडिलेहिया ।
जयं परिट्ठविज्जा, परिट्ठप्प पडिक्कमे ॥ ८१ ॥

छाया––एकान्तमवक्रम्याऽचित्तं प्रत्युपेक्ष्य ।
यतं परिष्ठापयेत्, परिष्ठाप्य प्रतिक्रामेत् ॥८१॥

उसका धोवन का क्या करे ? सो बताते हैं––

सान्वयार्थः–एगंतं = एकान्त स्थानम् अवक्कमित्ता = जाकरके अचित्तं = एकेन्द्रियादिप्राणीरहित अचित्त स्थानको पडिलेहिया = पूजकर उस धोवनको जयं = यतनासे परिट्ठविज्जा = परिठवे-डाले, परिट्ठप्प = परिठवके आकर पडिक्कमे = इरियावहिया पडिक्कमे प्रतिक्रमण करे ॥८१॥

टीका––एकान्तं विविक्तप्रदेशम् , अवक्रम्य = गत्वा तत्र अचित्तम् = एकेन्द्रियादि प्राणिवर्जितं प्रत्युपेक्ष्य = निरीक्ष्य यतं = सयत्नं यथास्यात्तथा परिष्ठापयेत् , सविधि- "वोसिरे" इति त्रिरुच्चार्य व्युत्सृजेत् । परिष्ठाप्य = परिष्ठापनानन्तरं ग्रामाद्बहिरबहिर्वाऽऽसन्नभूमिमागत्य प्रतिक्रामेत् = ऐर्यापथिकीं कुर्यात् ॥८१॥

अशनपानग्रहणविधेरनन्तर भोजनविधिमाह–'सिया' इत्यादि, 'अणुन्नवित्तु' इत्यादि च ।

मूलम्–सिया य गोयरग्गगओ, इच्छिज्जा परिभुत्तुं ।
कुट्ठगं भित्तिमूलं वा, पडिलेहित्ताण फासुयं ॥८२॥
अणुन्नवित्तु मेहावी, पडिच्छन्नम्मि संवुडे ।
हत्थगं संपमज्जित्ता, तत्थ भुंजिज्ज संजए ॥८३॥

छाया–स्याच्च गोचराग्रगतः इच्छेत् परिभोक्तुम्
कोष्ठक भित्तिमूल वा, प्रत्युपेक्ष्य प्रासुकम् ॥८२॥

फिर क्या करे सो कहते है–'एगंत०' इत्यादि ।

एकान्त स्थानमें जाकर एकेन्द्रिय आदि प्राणियोसे रहित स्थान देखकर यतनापूर्वक "वोसिरे" ऐसा तीन बार उच्चारण करके परिठवे परिठवनेके पश्चात् गाँवमें या गाँवके बाहर ठहरने के स्थान पर आकर इरियावहियाका प्रतिक्रमण करे ॥८१॥

પછી શું કરે તે કહે છે–એગંત૦ ઈત્યાદિ

એકાંત સ્થાનમાં જઈને એકેન્દ્રિય આદિ પ્રાણીઓથી રહિત સ્થાન જોઈને યતનાપૂર્વક 'વોસિરે' એવું ત્રણવાર ઉચ્ચારણ કરીને પરિઠવે પરિઠવ્યા પછી ગામમા યા ગામની બહાર રહેવાનાસ્થાન પર આવીને ઈરિયાવહિયાનું પ્રતિક્રમણ કરે (૮૧)

અશન–પાન ગ્રહણ કરવાની વિધિ બતાવ્યા બાદ આહાર કરવાની વિધિ બતાવે છે–

अनुज्ञाप्य मेधावी, प्रतिच्छन्ने संवृते ।
हस्तकं संप्रमृज्य तत्र भुञ्जीत संयतः ॥८३॥

सान्वयार्थः-गोयरग्गगओ = गोचरीमें गया हुआ मेहावी = सामाचारीका जानकार संजए = साधु सिया य = कदाचित् अगर बाल्यावस्थाके अथवा ग्लानपनेके कारण वहीं परिभुत्तुउं = आहार करना इच्छिज्जा = चाहें तो वहां फासुयं = प्रासुक-एकेन्द्रियादिप्राणी रहित कुट्ठगं = कोठेको वा = अथवा भित्तिमूलं = भींतके समीपके स्थानको पडिलेहित्ताण = पूंजकर तथा दृष्टिसे देखकर अणुन्नवित्तु = गृहस्थकी आज्ञा मांगकर तत्थ = वहां पडिच्छन्नम्मि = ऊपरसे छाये हुए और संवुडे = चारों तर्फसे घिरे हुए स्थानमें हत्थगं = हाथोंको अथवा अपने शरीरको संपमज्जित्ता = पूंजकरके (साधु) भुंजिज्ज = आहार करे ॥८२॥८३॥

टीका— स्याच्च = कदाचित् गोचराग्रगतः = भिक्षामनुप्रविष्टो मुनिः, बाल्य-ग्लानत्व-पिपासादिकारणवशात्परिभोक्तुमिच्छेत् तदा प्रासुकम् = एकेन्द्रियादिप्राणिविवर्जितं कोष्ठकम् = अन्तर्मुहूर्त्तादिकं वा = अथवा भित्तिमूलं = कुडयसमीपवर्तिप्रदेशं प्रत्युपेक्ष्य = दृष्ट्वा विलोक्य अनुज्ञाप्य = तत्स्वामिनोऽनुज्ञामादाय तत्र प्रतिच्छन्ने = ऊर्ध्वतस्तृणादिभिराच्छादिते, संवृते किन्तु प्रकाशयुक्ते प्रदेशे, यद्वा 'संवृतः' इति प्रथमान्तं संयतस्य विशेषणं तेन, मेधावी = साधुसामाचारीकुशलः संयतः = साधुः संवृतः = मनोवाक्कायगुप्तः सत् हस्तकं = हस्तौ संप्रमृज्य = संशोध्य, अथवा 'हस्तकम्' इति तृतीयार्थे प्रथमा, तथा

अशन-पान ग्रहण करनेकी विधि बतानेके बाद आहार करनेकी विधि बताते है-'सिया य' इत्यादि, 'अणुन्नवित्तु' इत्यादि ।

यदि भिक्षाके लिए गये हुए भिक्षु बालकपन, ग्लानता अथवा प्यास आदि किसी कारणसे आहार करनेकी इच्छा हो जाय तो वहाँ प्रासुक कोठा अथवा भींतके पास कोने आदिकी प्रतिलेखना करके मकानके स्वामीकी आज्ञा लेकर ऊपरको तृण आदिसे छाये हुए चारो ओरसे बन्द किन्तु प्रकाशयुक्त स्थानमें स्थित होकर मन वचन कायकी सम्यक् प्रकार प्रवृत्ति करता हुआ साधुसामाचारीका ज्ञाता मुनि हाथोको प्रमार्जित (साफ) करके या हस्तक अर्थात् हस्तगत रजोहरणसे काय और स्थानकी प्रमार्जना करके आहार करे ।

सिया य ઇત્યાદિ તથા अणुन्नवित्तु ઈત્યોદિ.

જો ભિક્ષાને માટે ગએલા ભિક્ષુને બાળકપણા, ગ્લાનતા અથવા તરસ આદિ કોઇ કારણે આહાર કરવાની ઇચ્છા થઇ જાય તો ત્યાં પ્રાસુક કોઠો અથવા ભીંતની પાસે ખૂણા આદિની પ્રતિલેખના કરીને મકાનના સ્વામીની આજ્ઞા લઇને ઉપર ઘાસ આદિથી છાએલા ચારે બાજુથી બંધ પરન્તુ પ્રકાશયુક્ત સ્થાનમાં રહીને મન વચન કાયાની સમ્યક્ પ્રકારે પ્રવૃત્તિ કરતાં સાધુ સામાચારીનો જ્ઞાતા મુનિ હાથને પ્રમાર્જિત કરીને(સાફ કરીને) યા હસ્તક (હસ્તગત રજોહરણ) થી કાય અને સ્થાનની પ્રમાર્જના કરીને આહાર કરે.

च—हस्तकेन = हस्त कायति — धातूनामनेकार्थत्वात्प्राप्नोतीति हस्तकम् , ('आतोऽनुपसर्गे कः' इति कप्रत्ययः,) रजोहरणं तेन, तस्य धारणे हस्तस्य सर्वथा निमित्तत्वात् , प्रायः कक्षप्रदेशे धारणेऽपि हस्ताश्रयं विना तदीयधारणासम्भवाच्च । सप्रमृज्य = तत्थानं कायं च संशोध्य भुञ्जीत = अभ्यवहरेत् ।

यत्तु "हस्तकं मुखवस्त्रिकारूपमादाय तेन कायं संप्रमृज्य" इति व्याख्यातं तदयुक्तं 'हस्तक' पदार्थस्य 'संप्रमृज्य' पदार्थेऽन्वयसम्भवे 'आदाये'-ति पदान्तराक्षेपपूर्वकमन्यपदार्थेऽन्वयकल्पनाया अनौचित्यात् । किञ्च कोष व्याकरणादिषु हि हस्तकशब्दो मुखवस्त्रिकारूपेऽर्थे न दृश्यते । शास्त्रेऽपि-"मुहपत्तिं पडिलेहित्ता" इत्यादि दृश्यते न तु 'हत्थगं पडिलेहित्ता' इत्यादि ।

यच्च "विधिना तेन मुखवस्त्रिकारूपेण हस्तकेन कायं प्रमृज्य तत्र भुञ्जीत" इति व्याख्यातं तदप्ययुक्ततरम् । हस्ते मुखवस्त्रिकाधारणे मुखवस्त्रिकाधारणोद्देश्यभूतायाः सूक्ष्म-

किसी-किसीने 'हस्तक सप्रमृज्य' का ऐसा अर्थ किया है कि 'मुखवस्त्रिका लेकर उससे शरीर—प्रमार्जना करे' ऐसा अर्थ करना ठीक नहीं है, क्योंकि मुखवस्त्रिकाके साथ प्रमार्जन करनेका सम्बन्ध मिलते न देख उन्हे एक 'आदाय' शब्द (लेकर) अपनी ओरसे मिला दिया है । इस प्रकार सम्बन्ध मिलाना उचित नहीं है । इसके सिवाय कोषोंमें कहीं 'हस्तक' शब्द का अर्थ मुखवस्त्रिका नहीं किया है और न व्याकरणमें ही ऐसा देखाजाता है । आगमोंमें 'मुहपत्ति पडिलेहित्ता' इत्यादि पद देखे जाते है, किन्तु 'हत्थगं पडिलेहित्ता' कहीं नहीं देखा जाता ।

तथा "मुखवस्त्रिकारूप हस्तकसे कायकी प्रमार्जना करके आहार करे"

ऐसा व्याख्या करना भी अत्यन्त अयुक्त है, क्योंकि मुखवस्त्रिका धारण करनेका प्रयोजन सूक्ष्म, व्यापी, सम्पातिम तथा वायुकाय आदि जीवोंकी हिंसाका परिहार करना है । मुखवस्त्रिकाको हाथमें रखनेसे उक्त प्रयोजन सिद्ध नहीं होता । इससे यह सिद्ध होता है कि मुखवस्त्रिका

કોઈ-કોઈએ हस्तकं संप्रमृज्य નો એવો અર્થ કર્યો છે કે-'મુખવસ્ત્રિકા લઈને તેથી શરીરની પ્રમાર્જના કરે,' પણ એવો અર્થ કરવો એ બરાબર નથી, કારણ કે મુખવસ્ત્રિકાની સાથે પ્રમાર્જન કરવા સબંધ મળતો નહિ જોવાથી તેમણે એક आदाय શબ્દ લઈને પોતાની તરફથી મેળવી દીધો છે આ પ્રમાણે સબધ મેળવી દેવો એ ઉચિત નથી. વળી કોષોમા ક્યાય 'હસ્તક' શબ્દનો અર્થ મુખવસ્ત્રિકા કર્યો નથી અને વ્યાકરણમાં પણ એવો અર્થ જોવામાં આવતો નથી, આગમોમા मुहपत्तिं पडिलेहित्ता ઇત્યાદિ પદ જોવામા આવે છે, કિન્તુ हत्थगं पडिलेहित्ता ક્યાંય જોવામા આવતું નથી

તથા "મુખવસ્ત્રિકારૂપ હસ્તકથી કાયની પ્રમાર્જના કરીને આહાર કરે" એવી વ્યાખ્યા કરવી એ પણ અત્યંત અયુક્ત છે, કારણ કે મુખવસ્ત્રિકા ધારણ કરવાનુ પ્રયોજન સૂક્ષ્મ, વ્યાપી, સમ્પાતિમ તથા વાયુકાય આદિ જીવોની હિંસાનો પરિહાર કરવો એ છે. મુખવસ્ત્રિકાને હાથમાં રાખવા ઉક્ત પ્રયોજન સિદ્ધ થતુ નથી એથી એમ સિદ્ધ થાય છે

व्यापिसम्पातिमवायुकायादिजीवहिंसानिवृत्तेरसिद्ध्या मुखवस्त्रिका मुख एव धारणीयेत्याशयस्य जागरुकत्वात्, अत एव भगवताऽपि सूक्ष्मव्यपिसम्पातिमवायुकायादिजीवाऽयतनानिवृत्तये मुखोपरि धारणीयसदोरकाष्टपुटमुखप्रमाणवस्त्रखण्डरूपेऽर्थे मुखवस्त्रिकाशब्दः प्रयुक्तो; न तु हस्तवस्त्रिकाशब्द इति कथमपि हस्तकशब्देन मुखवस्त्रिकारूपोऽर्थो न लभ्यते एवं च तेन कायप्रमार्जनकथनं सर्वथाऽऽगमविरुद्धमेवेति बोध्यम् ॥८२॥८२॥

मूलम्—तत्थ[1] से[3] भुंजमाणस्स[2], अट्ठियं[4] कंटओ[5] सिया[12] ।
तण-कट्ठ-सक्करं[8] वावि[7], अन्नं[6] वावि[9] तहाविहं[10] ॥८४॥[11]
तं[13] उक्खिवित[14] न निक्खिवे[15], आसएण[16] न[17] छड्डुए[18] ।[19]
हत्थेण[21] तं[20] गहेऊण[22], एगंतमवक्कमे[23] ॥८५॥[24]

छाया—तत्र तस्य भुञ्जानस्य, अस्थिकं कण्टकः स्यात् ।
तृण-काष्ठ-शर्करं वाऽपि, अन्यद्वापि तथाविधम् ॥८४॥
तद् उत्क्षिप्य न निक्षिपेत्, आस्येन होज्झेत् ।
हस्तेन तद् गृहीत्वा, एकान्तमपक्रामेत् ॥८५॥

सान्वयार्थः- तत्थ=वहां कोठे आदि में भुंजमाणस्स=आहार करते हुए से=उस साधु के (आहारमें) अट्ठियं=बीज कंटओ=कांटा तण=तिनका कट्ठ=काठ वावि=और सक्करं=छोटा ककर वा=तथा अन्नं वावि=और भी तहाविहं=उस प्रकार का पदार्थ सिया =आगया हो तो तं=उसे उक्खिवित्तु=निकालकर न निक्खिवे=इधर उधर नहीं डाले तथा आसएणं=मुखसे भी न छड्डुए=न फेके न थूंके (किन्तु) तं=उसे हत्थेण=हाथसे गहेऊण=लेकर एगंतं=एकान्त स्थानमें अवक्कमे=जावे ॥८४॥८५॥

मुखपर ही धारण करनी चाहिए। इसलिए मुखके निमित्तसे होनेवाली, सूक्ष्म, व्यापी, सम्पातिम और वायुकाय आदि जीवोंकी विराधनाकी निवृत्तिके लिए मुख पर धारण करने योग्य उस मुख परिमाण सदोरक और आठ पुड़वाले वस्त्रखण्डको भगवानने 'मुखवस्त्रिका' शब्दसे कहा है, 'हस्तवस्त्रिका' शब्दका प्रयोग कहीं नहीं किया, अत एव 'हस्तक' शब्दसे मुखवस्त्रिकाका अर्थ किसी भी प्रकार नहीं नीकल सकता। इस प्रकार 'उससे कायकी प्रमार्जना करना' यह अर्थ आगमसे सर्वथा विरुद्ध है ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

કે મુખવસ્ત્રિકા મુખ પર જ ધારણ કરવી જોઈએ. તેથી મુખના નિમિત્તે થનારી સૂક્ષ્મ, વ્યાપી, સંપાતિમ અને વાયુકાય આદિ જીવોની વિરાધનાની નિવૃતિને માટે મુખ પર ધારણ કરવા યોગ્ય એ મુખપરિમાણ દોરા સાથેના અને આઠ પડવાળા વસ્ત્રખંડને ભગવાને 'મુખવસ્ત્રિકા' કહી છે, 'હસ્તવસ્ત્રિકા' શબ્દનો પ્રયોગ કર્યો નથી. એટલે 'હસ્તક' શબ્દથી મુખવસ્ત્રિકાનો અર્થ કોઈ પણ પ્રકારે નીકળી શકતો નથી. એ રીતે 'મુખવસ્ત્રિકાથી કાયાની પ્રમાર્જના કરવી' એ અર્થ આગમથી સર્વથા વિરૂદ્ધ છે. (૮૩-૮૩)

टीका—'तत्थ से' इत्यादि, 'तउक्खिविवित्तु' इत्यादि च। तत्र कोष्ठकादिस्थाने भुञ्जानस्य तस्य भिक्षोर्भोजने अष्ठिकं=बीजं, कण्टकः=तीक्ष्णाग्रो द्रुम-गुल्म-लता-धङ्गविशेषः, अपिवा तृण-काष्ठ शर्करं=तृणं च काष्ठ च शर्करा चैतेषां समाहारः। तत्र तृणं=कुशादिकं काष्ठं=खदिरादिसमुद्भवं दारु शर्करा=क्षुद्रपाषाणखण्डम्। अन्यदपि वा तथाविधं=तज्जातीयं स्यात्=भवेत् तद्=अष्ठिकादिकम् उत्क्षिप्य न निक्षिपेत्=उत्क्षेपणं कृत्वा यत्र तत्र न क्षिपेत्, आस्येन=मुखेनापि नोज्झेत=थूत्कृत्य न क्षिपेत्। तर्हि किं कुर्यात्? इत्याह–तद् हस्तेन गृहीत्वा एकान्तमपक्रामेत् गच्छेत् ॥८४॥८५॥

मूलम्–एगंतमवक्कमित्ता[1], अचित्तं[2] पडिलेहिया[3]।
जयं[4] परिट्ठविज्जा[5], परिट्ठप्प[6] पडिक्कमे[7] ॥८६॥

(Superscript numbers above words: १ २ ३ ४ / ५ ६ ७ ८)

छाया—एकान्तमपक्रम्याऽचित्तां प्रत्युपेक्ष्य।
यतं परिष्ठापयेत्, परिष्ठाप्य प्रतिक्रामेत् ॥८६॥

एकान्त में जाकर क्या करे? सो बताते हैं—

सान्वयार्थः–एगंत=एकान्त स्थान में अवक्कमित्ता=जाकरके अचित्तं=एकेन्द्रियादिप्राणीरहित अचित्त स्थान को पडिलेहिय=पूंजकर उस धोवन को जयं=यतनासे परिट्ठविज्जा=परिठवे डाले, परिट्ठप्प=परिठवके आकर पडिक्कमे=इरियावहिया पडिकमे कर ॥८६॥

टीका—'एगंत०' इत्यादि। विजनप्रदेशं गत्वा अचित्तां भूमिं चक्षुषा निरीक्ष्य बीजादिकं सयत्नं व्युत्सृजेत्, तदनु स्थानमागत्य प्रतिक्रामेत्=ऐर्यापथिकीं कुर्यादिति भावः ॥८६॥

'तत्थ से' इत्यादि, 'त उक्खिविवित्तु' इत्यादि। उस कोठे आदिमें आहार करनेवाले भिक्षुके भोजनमें बीज, काँटा, तिनका, लकडी, किरकिरी–कंकर या और कोई उस प्रकारकी वस्तु हो तो उसे निकाल कर जहाँ-तहाँ न डाले तथा मुखसे भी न थूके किन्तु उसको हाथमें लेकर एकान्त स्थानमें जावे ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

'एगंत०' इत्यादि। एकान्तमें जाकर अचित्त भूमि देख कर वहाँ यतनाके साथ उस बीज काँटे आदिको डाले। फिर अपने स्थान पर आकर ईरियावहियाका प्रतिक्रमण करे ॥ ८६ ॥

तत्थ से० ઇત્યાદિ, તથા तं उक्खिविवित्तु० ઇત્યાદિ એ કોઠામા આહાર કરનારા ભિક્ષુના ભોજનમાં બીજ, કાંટા, તણખલાં લાકડું, કાંકરી કાકરા યા એવા પ્રકારની બીજી કોઈ વસ્તુ હોય તો તે કાઢી નાખી જ્યા-ત્યાં નાંખે નહિ, તથા મુખથી પણ થૂકે નહિ, પરંતુ તેને હાથમા લઈને એકાન્ત સ્થાનમાં જાય. (૮૪–૮૫)

एगंत० ઇત્યાદિ એકાન્તમા જઈને અચિત્ત ભૂમિ જોઈને ત્યા યતનાપૂર્વક એ બીજ કાંટા આદિને નાખે પછી પોતાના સ્થાન પર આવીને ઇરિયાવહિયાનું પ્રતિક્રમણ કરે (૮૬)

४ १ २ ७ ३ ६ ६
मूलम्-सिया य भिक्खू इच्छिज्जा, सिज्जमागम्म भुत्तुं[५] ।
८ ९ १३ १२ १४
सपिंडपायमागम्म उंडुअं से पडिलेहिया ॥८७॥
१० ११ १६ १५ १९
विणएणं पविसित्ता सगासे गुरुणो मुणी ।
२० २१ १७ १८ २२
इरियावहियमायाय आगओ य पडिक्कमे ॥८८॥

छाया--स्याच्च भिक्षुरिच्छेत् , शय्यामागम्य भोक्तुम् ।
सपिण्डपातमागम्य, उन्दुकं से (तत्र) प्रत्युपेक्ष्य ॥८७॥
विनयेन प्रविश्य, सकाशे गुरोर्मुनिः ।
ऐर्यापथिकीमादाय, आगतश्च प्रतिक्रामेत् ॥८८॥

सान्वयार्थः--सिया य=अगर भिक्खू=साधु सिज्जं=वसति उपाश्रयमें ही आगम्म आकर भुत्तुं=आहार करना इच्छिज्जा=चाहे तो सपिंडवायं=भिक्षाके सहित आगम्म= आकर विणएणं=मत्थएण वंदामि निस्सीहि' इस प्रकार बोलनेरूप विनय से पविसित्ता उपाश्रयमें प्रवेश करके से-वहां उंडुयं=भोजनके स्थानको पडिलेहिया=अच्छी तरह देखकर गुरुणो=रत्नाधिक के सगासे=समीप आगओ य=आया हुआ मुणी=मुनि इरियावहियं=इरियावहियाका पाठ आयाय=लेकर पढकर पडिक्कमे=कायोत्सर्ग करे तात्पर्य यह है कि प्रबल पिपासा आदि खास कारण के विना तो उपाश्रयमें आकर ही साधुको आहार करना चाहिये किन्तु गृहस्थके घर में नहीं करे ॥८७॥८८॥

टीका-सिया य' इत्यादि, 'विणएणं' इत्यादि च । भिक्षुः=साधुः शय्यां=वसतिं स्यात्=एव आगम्य भोक्तुमिच्छेत् । अत्र स्यादित्यव्ययमवधारणार्थं तेन प्रबलपिपासादिकारणाभावे वसतिं विहायाऽन्यत्र न भोक्तव्य' मिति तात्पर्यं गम्यते । तदा सपिण्डपातं =पिण्डपातो-भिक्षालाभस्तेन सहाऽऽगम्य विनयेन="मत्थएण वंदामि निस्सीहि" इतिपठनलक्षणेन प्रविश्य उपाश्रयमिति शेषः, से=यद्वा से शब्दो मगधदेशप्रसिद्धः 'तत्र'

'सिया य' इत्यादि, 'विणएणं' इत्यादि । साधु उपाश्रयमें आकर ही आहार करनेकी इच्छा करे । यहाँ 'स्यात्' अव्यय निश्चय बोधक है इससे यह तात्पर्य प्रगट होता है कि पिपासा आदि किसी प्रबल कारणके विना उपाश्रयके सिवाय अन्यत्र आहार नहीं करना चाहिए । अत एव भिक्षा लाकर "मत्थएण वंदामि निस्सीहि १" यह पाठ उच्चारण करके उपाश्रयमें प्रवेश करे फिर

सिया य० ઈત્યાદિ, તથા विणएणं ઇત્યાદિ. સાધુ ઉપાશ્રયમાં આવીને જ આહાર કરવાની ઇચ્છા કરે, અહીં स्यात् અવ્યય નિશ્ચયબોધક છે, તેથી એ તાત્પર્ય પ્રકટ થાય છે કે તરસ આદિ કોઇ પ્રબળ કારણ વિના ઉપાશ્રય સિવાય અન્યત્ર આહાર ન કરવો જોઇએ એટલે ભિક્ષા લાવીને मत्थएण वंदामि निस्सीहि એ પાઠ ઉચ્ચારીને ઉપાશ્રયમાં પ્રવેશ કરે. પછી ભોજન કરવાના સ્થાનની સમ્યક્ પ્રકારે પ્રતિલેખના કરીને દીક્ષામાં મોટા મુનિની

शब्दार्थे वर्त्तते तेन से=तत्र उन्दुकं=स्थानं प्रत्युपेक्ष्य=सम्यङ् निरीक्ष्य गुरोः=रत्नाधिकस्य सकाशे आगतश्च मुनिः ऐर्यापथिकीम् "इच्छामि पडिक्कमिउं" इत्यादिलक्षणाम् आदाय=पठित्वा प्रतिक्रामेत्=कायोत्सर्गं कुर्यात् ॥८७॥८८॥

तत्र (कायोत्सर्गे) किं कुर्यात्? इत्याह—आभोइत्ताण इत्यादि 'उज्जुप्पन्नो' इत्यादि च।

मूलम्—आभोइत्ताणं नीसेसं अइयारं जहक्कमं।
गमणागमणे चेव, भत्ते पाणे य संजए ॥८९॥
उज्जुप्पन्नो अणुव्विग्गो, अव्वक्खित्तेण चेयसा।
आलोए गुरुसगासे, जं जहा-गहियं भवे ॥९०॥

छाया—आभोग्य निश्शेषम्, अतिचारं यथाक्रमम्।
गमनागमने चैव, भक्ते पाने च संयतः ॥८९॥
ऋजुप्रज्ञः अनुद्विग्नः, अव्याक्षिप्तेन चेतसा।
आलोचयेद् गुरुसकाशे, यद् यथा गृहीतं भवेत् ॥९०॥

सान्वयार्थः—संजए=कायोत्सर्गमें रहा हुआ मुनि गमणागमणे=जानेआनेमें चेव=और भत्ते=आहार य=तथा पाणे=पानी के ग्रहण करने में (लगे हुए) नीसेसं=सब प्रकार के अइयारं=अतिचारोंको तथा जं=जो अशनादि जहा=जिस प्रकार गहियं भवे=ग्रहण किया हुआ हो उसे भी जहक्कमं=यथाक्रम अनुक्रमसे आभोइत्ताणं=उपयोगसहित चिन्तन करके, उज्जुप्पन्नो=सरल बुद्धिवाला अणुव्विग्गो=उद्वेगरहित वह मुनि अव्वक्खित्तेण=विक्षेपरहित-एकाग्र चेयसा=चित्तसे गुरुके समीप आलोवे ॥८९॥९०॥

टीका—संयतः=कायोत्सर्गस्थो मुनिः, गमनागमने=गतागते चैव भक्ते पाने च संजातं निश्शेषं=समग्रम् अतिचारं=मुनिमर्यादालङ्घनलक्षणम् यथाक्रमम् आभोग्य=सोप-

---

भोजन करनेके स्थानकी सम्यक् प्रकार प्रतिलेखना करके दीक्षामें बड़े मुनिके समीप आकर "इच्छामि पडिक्कमिउं "इत्यादि ईरियावहिया का पाठ बोल करके कायोत्सर्ग करे ॥८७॥८८॥

कायोत्सर्गमें क्या करना चाहिए सो कहते है—'आभोइत्ताण' इत्यादि, 'उज्जुप्पन्नो' इत्यादि।

कायोत्सर्गमें स्थित होकर गमनाऽऽगमनमें, तथा-आहार पानीके, लेनेमें जो अतिचार लगे हो उन सबका क्रमश. चिन्तन करके सरल, बुद्धि-शान्तचित्तवाला संयमी व्याकुलतारहित चित्तसे

સમીપે આવીને इच्छामि पडिक्कमिउं ઈત્યાદિ ઈરિયાવહિયાનો પાઠ બોલીને કાયોત્સર્ગ કરે (૮૭-૮૮)

કાયોત્સર્ગમાં શુ કરવુ જોઈએ તે કહે છે-आभोइत्ताण० ઈત્યાદિ. તથા उज्जुप्पन्नो० ઈત્યાદિ.

કાયોત્સર્ગમાં સ્થિર થઈને ગમનાગમનમાં, તથા આહારપાણી લેવામાં જે અતિચાર લાગ્યા હોય તે સર્વનુ ક્રમશઃ ચિંતન કરીને સરલબુદ્ધિ શાન્ત-ચિત્તવાળો સંયમી વ્યાકુ-

योगं विचिन्त्य ऋजुप्रज्ञः=सरलबुद्धिः अनुद्विग्नः=प्रशान्तः, अव्याक्षिप्तेन=अव्याकुलेन चेतसा=मनसा गुरुसकाशे=शुद्धं प्रमादादिवशेनाऽशुद्ध वा यद् यस्माद् यत्र वा यथा गृहीतं भवेत् तदपि गुरु समीपे कथयेदित्यर्थः ।

'उज्जुप्पन्नो' इत्यनेनाऽकुटिलमतिरेव सम्यगालोचयतीति सूचितम् । अणुव्विग्गो अनेन क्षुधादिपरिषहजेतृत्वमावेदितम् । 'अव्वक्खित्तेण चेयसा' इत्यनेन 'एकाग्रचित्तेनैवाऽतिचारस्य सम्यक् स्मरणं भवती'-ति स्पष्टीकृतम् ॥८९॥९०॥

८ ६ ७ ९ २ ३ ४ १ ५

मूलम्-न सम्ममालोइयं हुज्जा, पुव्विं पच्छा व जं कडं ।

११ १२ १० १३ १५ १४

पुणो पडिक्कमे तस्स वोसट्ठो चिंतए इमं ॥९१॥

छाया—न सम्यगालोचितं भवेत्, पूर्व पश्चाद्वा यत्कृतम् ।
पुनः प्रतिक्रामेत्तस्य, व्युत्सृष्टश्चिन्तयेदिदम् ॥९१॥

सान्वयार्थः-जं=जो अतिचार पुव्विं=पहले व=तथा पच्छा=पीछे कडं=किया है वह सम्मं=सम्यक् प्रकारसे-अच्छी तरह याने पहले लगे हुए पापको पहले आलोवे और पीछे लगे हुए पापको पीछे आलोवे' इस प्रकार आलोइयं=आलोचित न हुज्जा=नहीं किया हो तो तस्स=उस अतिचारको पुणो=फिरसे पडिक्कमे=आलोवे, (और) वोसट्ठो=कायोत्सर्गमें रहा हुआ साधु इमं=इस 'आगे कहा जानेवाला' प्रकार चिंतए=चिन्तन करे ॥९१

टीका 'न सम्म०' इत्यादि । यत्=यस्माद्धेतोः पूर्व पश्चाद्वा कृतमतिचारं सम्यक् प्राक्कृत प्रागालोचितव्यं पश्चात्कृतं च पश्चादालोचितव्यमिति क्रमेण आलोचितं =प्रका-

---

गुरुके समीप आलोचना करे । प्रमाद आदिके वशसे जहा जैसा शुद्ध या अशुद्ध आहार आदि लिया गया हो वह भी गुरुसे निवेदन करे ।

'उज्जुप्पन्नो' पदसे यह सूचित किया है कि कुटिलतारहित बुद्धिवाला ही यथार्थ आलोचना कर सकता है । 'अणुव्विग्गो' पदसे क्षुधा आदि परीपहोका जीतना प्रगट किया है । 'अव्वक्खित्तेण चेयसा' पदसे जह सूचित किया है कि एकाग्र—चित्तसे ही अतिचारोका अच्छी तरह स्मरण हो सकता है ॥८९॥९०॥

'न सम्म०' इत्यादि । आगे पछे किये हुए अतिचारोकी सम्यक् प्रकार अर्थात पहले किये हुओकी पश्चात्—आलोचना न की गई हो तो अतिचारोका पुनः प्रतिक्रमण करना चाहिए

ળતા-રહિત ચિત્તથી ગુરૂની સમીપે આલોચના કરે પ્રમાદ આદિને વશ થઇને જ્યા જેવો શુદ્ધ યા અશુદ્ધ આહાર આદિ લેવાયા આવેલ હોય તે પણ ગુરૂને નિવેદન કરે

ઉજ્જુપ્પન્નો શબ્દથી એમ સૂચિત કરવામાં આવ્યુ છે કે કુટિલતારહિત બુદ્ધિવાલો જ યથાર્થ આલોચના કરી શકે છે, અણુવ્વિગ્ગો શબ્દથી ક્ષુધા આદિ પરીષહોને જીતવાનું પ્રકટ કરવામા આવ્યુ છે અવ્વક્ખિત્તેણ ચેયસા શબ્દથી એમ સૂચિત્ત કર્યું છે કે એકાગ્ર-ચિત્તથી જ અતિચારોનું સારી રીતે સ્મરણ થઈ શકે છે. (૮૯-૯૦)

ન સમ્મ૦ ઇત્યાદિ આગળ પાછળ કરેલા અતિચારોની સમ્યક્ પ્રકારે અર્થાત્ પહેલા

शितं न भवेच्चेदतः तस्य = अतिचारस्य (सम्बन्धसामान्ये षष्ठी) पुनः प्रतिक्रामेत् । व्युत्सृष्टः = कायोत्सर्गस्थः इदं = वक्ष्यमाणं चिन्तयेत् ॥९१॥

तदेवाऽऽह–'अहो' इत्यादि ।

मूलम्–अहो जिणेहिं असावज्जा, वित्ती साहूण देसिया ।
मोक्खसाहणहेउस्स साहूदेहस्स धारणा ॥९२॥

छाया- अहो ! जिनैः असावद्या, वृत्तिः साधुभ्यो देशिता ।
मोक्षसाधनहेतोः, साधुदेहस्य धारणाय ॥९२॥

सान्वयार्थः-अहो = आश्चर्य है कि-मोक्खसाहणहेउस्स = मोक्ष प्राप्तिके निमित्तभूत साहुदेहस्स = साधुशरीरके धारणा = निर्वाह-स्थितिमात्र के लिए साहूण = मुनियोंको जिणेहि–तीर्थङ्कर भगवानने असावज्जा = निर्दोष वित्ती = भिक्षावृत्ति- (आचार)देसिया = बताई है ॥९२॥

टीका––अहो = आश्चर्यं मोक्षसाधनहेतोः = अपवर्गसिद्धनिमित्तभूतस्य साधुशरीरस्य धारणाय = स्थितिमात्रार्थं साधुभ्यः = मुनीनुद्दिश्य जिनैः = तीर्थङ्करैः, असावद्या = दोषरहिता वृत्तिः = भिक्षालक्षणा देशिता = उपदिष्टा ॥९२॥

मूलम्–णमुक्कारेण पारित्ता करित्ता जिणसंथवं ।
सज्झायं पट्ठवित्ताणं वीसमेज्ज खणं मुणी ॥९३॥

छाया—नमस्कारेण पारयित्वा, कृत्वा जिनसंस्तवम् ।
स्वाध्यायं पठित्वा विश्राम्येत् क्षणं मुनिः ॥९३॥

सान्वयार्थ —कायोत्सर्ग में पूर्वोक्त प्रकार से चिन्तन करने के बाद मुणी = साधु नमुक्कारेण = नमस्कार मन्त्रसे पारित्ता = कायोत्सर्गको पार–समाप्त करके जिणसंथवं

और कायोत्सर्गमे स्थित होकर ऐसा (अगली गाथामें कहे जानेवाला विचार करे ॥९१॥

उसी विचार को कहते है–'अहो' इत्यादि ।

अहो ! यह शरीर मोक्षकी सिद्धिका कारण है अतः इसकी स्थितिके लिए तीर्थङ्कर भगवानने साधुओंको निर्दोष भिक्षा लेनेका उपदेश दिया है ।९२॥

કરેલા અતિચારોનો પહેલા અને પાછળ કરેલા અતિચારોની પાછળ આલોચના ન કરવામા આવી હોય તો અતિચારોનુ પુન પ્રતિક્રમણુ કરવુ જોઇએ, અને કાયોત્સર્ગમા સ્થિત થઇને એવો (આગલી ગાથામા કહેવામા આવનારો) વિચાર કરે (૯૧)

એ વિચાર હવે કહે છે-અહો૦ ઈત્યાદિ

અહો ! આ શરીર મોક્ષની સિદ્ધિનુ કારણ છે, એટલે એની સ્થિતિને માટે તીર્થંકર ભગવાને સાધુઓને નિર્દોષ ભિક્ષા લેવાનો જ ઉપદેશ આપ્યો છે (૯૨)

लोगस्य उज्जोयगरे'' इत्यादि संपूर्ण जिणसंथव-(जिन भगवान् की स्तुती) करित्ता = करके तथा सज्झायं = सज्झाय-कमसे कम मूलशास्त्रकी पांच गाथाओंका स्वाध्याय पढ-वित्ता = पढकर खणं = क्षणभर जितने में दूसरे मुनिराज भी शामिल हो जाते हैं' इस अभिप्राय से कुछ देर वीसमेज्ज = विश्राम करे ॥९३॥

टीका—'णमुक्कारेण' इत्यादि । मुनिः संयतः नमस्कारेण = 'णमो अरिहंताणं' इत्युच्चारणलक्षणेन कायोत्सर्गमिति शेषः, पारयित्वा = समाप्य जिनसंस्तवं ''लोगस्स उज्जोयगरे'' इत्यादिलक्षणं सम्पूर्ण कृत्वा = विधाय स्वाध्यायं = धम्मो मंगलमुक्किट्ठं०'' इत्यादिगाथापञ्चकादन्यूनं मूलशास्त्रं पठित्वा क्षणं = क्षणमात्रं 'मण्डलेऽन्यमुनयोऽपि समागत्य संमिलिता भवन्तु' इत्याशयेन विश्रम्येत् विश्रान्ति कुर्यात् ॥९३॥

मूलम्—वीसमंतो[1] इमं[3] चिंते[6] हियमट्ठं[4] लाभमट्ठिओ[5] ।[2]
जइ[7] मे[9] अणुग्गहं[10] कुज्जा[11] साहु[8] हुज्जा[12] तारिओ[13] ॥९४॥

विश्राम्यन् मुनिः किं कुर्यात् ? इत्याह—

छाया—विश्राम्यन् (मुनिः) इद चिन्तयेत् हितमर्थ लाभार्थिकः ।
यदि मम अनुग्रहं कुर्यात् साधुर्भवामि तारितः ॥९४॥

विश्राम के समय मुनि क्या करे सो बताते हैं—

सान्वयार्थः—वीसमंतो = विश्राम करता हुआ लाभमट्ठिओ = कर्मनिर्जराका अभि-लाषी साधु इमं = इस इसी गाथा के उत्तरार्द्धमें कहे जानेवाले-प्रकार हियं = मोक्षप्राप्ति रूप हितके करनेवाले अट्ठं = भावी प्रयोजनको चिंते = चिन्तन करे, जैसे जइ = यदि-अगर साहू = कोई भी मुनिराज मे = मेरे ऊपर अणुग्गहं कुज्जा = अनुग्रह करें अर्थात् मेरे भागके आहारमें से कुछ आहार ले ले तो मैं तारिओ हुज्जा = इस संसार समुद्रको तैर जाऊं पार कर जाऊं ॥९४॥

'णमुक्कारेण' इत्यादि । मुनि 'णमो अरिहंताणं' पदका उच्चारण करके कायोत्सर्ग को समाप्त करे । फिर 'लोगस्स उज्जोयगरे' इत्यादि जिन संस्तव पूर्ण करके 'धम्मो मंगलमुक्किट्ठं' इत्यादि कमसे कम पांच गाथाओंकी मूल शास्त्रकी सज्झाय करके थोडी देर विश्राम करे कि जिससे अन्य मुनि भी आकर शामिल हो जावे ॥९३॥

विश्राम करता हुआ मुनि क्या करे सो कहते है—'वीसमंतो' इत्यादि ।

णमुक्कारेण ઈત્યાદિ. મુનિ णमो अरिहंताणं પદનું ઉચ્ચારણ કરીને કાયોત્સર્ગને સમાપ્ત કરે, પછી लोगस्स उज्जोयगरे ઈત્યાદિ જિનસંસ્તવ પૂર્ણ કરીને धम्मो मंगलमुक्किट्ठं ઈત્યાદિ ઓછામાં ઓછી પાંચ ગાથાઓની મૂળશાસ્ત્રની સજ્ઝાય કરી થોડીવાર વિશ્રામ કરે જેથી અન્ય મુનિ પણ આવીને શામિલ થઈ જાય (૯૩)

વિશ્રામ કરતાં મુનિ શું કરે તે કહે છે—वीसमंतो० ઈત્યાદિ.

टीका विश्राम्यन् = विश्रान्तिं कुर्वाणो लाभार्थिकः = कर्मनिर्जराभिलाषी इदं गाथोत्तरार्द्धे वक्ष्यमाणं हितं = मुक्त्यवाप्तिरूपम् अर्थं = भाविप्रयोजनं चिन्तयेत् = विचारयेत् यदि कोऽपि साधु = मुनिः मम = मदुपरि अनुग्रहं = मया मदर्थं वोपनीतस्याशनादेर्ग्रहणलक्षणं कुर्यात् तर्हि अहं तारितः = दुस्तरभवसागरतः समुत्तारितो भवामीत्यर्थः ॥९४॥

एवं विचिन्त्य स पूर्वं स्वभागमन्नादिकं ग्राहयितुं सर्वेषु मुनिषु रत्नाधिकं प्रार्थयेत् । यदि गृह्णीयात्तर्हि सम्यक्, नाङ्गीकुर्याच्चेदेवं निवेदयेत्-"आर्यपादाः ! कस्मैचिन्मुनये भवद्भिः स्वयमेव वितीर्यत।"-मिति । अथ रत्नाधिको यथेच्छं दद्यात् । यदि चाऽदत्वा रत्नाधिकः 'त्वमेव यथेच्छं प्रयच्छे'-ति ब्रूयात् तदा तेन शिष्येण किं कर्त्तव्यम् ? इत्याह–'साहवो' इत्यादि ।

मूलम्–साहवो तो चियत्तेणं, निमंतिज्ज जहक्कमं ।
जइ तत्थ केइ इच्छिज्जा, तेहिं सद्धिं तु भुंजए ॥९५॥

छाया—साधून् ततः चियत्तेणं, निमन्त्रयेद् यथाक्रमम् ।
यदि तत्र केऽपि इच्छेयुः, तैः सार्द्धं भुञ्जीत ॥९५॥

पूर्वोक्त प्रकार से चिन्तन करके अपने हिस्से का अशनादिको लेनेके लिये सब मुनियों में से रत्नाधिक-दीक्षा में बडे-मुनिसे पहले प्रार्थना करे, यदि वे लें तो अच्छा

कर्मोकी निर्जराका अभिलाषी साधु विश्राम करते समय इस मुक्ति रूप हितके करनेवाले अर्थका चिन्तन करे–यदि कोई मुनिराज मुझ पर अनुग्रह करके मेरे भागके अन्न आदिको ग्रहण करें तो मै इस दुस्तर भवसागरसे तिर जाऊँ ॥९४॥

ऐसा विचार करके प्रथम सब मुनियोंमें जो रत्नाधिक (दीक्षामें बडे) हो उनसे अपना भाग ग्रहण करनेकी प्रार्थना करे। यदि ग्रहण करे तो अच्छा ही है। न ग्रहण करे तो ऐसा निवेदन करे–'हे भदन्त ! आप ही किसी मुनिको यह आहार वितीर्ण कीजिए' फिर रत्नाधिक इच्छानुसार देदेवे। यदि वे न देकर यह आज्ञा देवें कि—'तुम्हीं इच्छानुसार देदो' तो शिष्यको क्या करना चाहिए ? सो बताते है–'साहवो' इत्यादि।

કર્મોની નિર્જરાનો અભિલાષી સાધુ વિશ્રામ કરતી વખતે આવા મુક્તિરૂપ હિતના કરવાવાળા અર્થનું ચિંતન કરે-જો કોઈ મુનિરાજ મારા પર અનુગ્રહ કરીને મારા ભાગના અન્ન આદિને ગ્રહણ કરે તો હું આ દુસ્તર ભવસાગરથી તરી જઉં (૯૪)

એવો વિચાર કરીને પહેલાં બધા મુનિઓમાં જે રત્નાધિક (દીક્ષામાં વડા) હોય તેમને પોતાનો ભાગ ગ્રહણ કરવાની પ્રાર્થના કરે જો તે ગ્રહણ કરે તો સારૂં, ન ગ્રહણ કરે તો એવું નિવેદન કરે-'હે ભદંત ! આપ જ કોઈ મુનિને આહાર વહેંચી આપો' પછી રત્નાધિક ઈચ્છાનુસાર આપે જો તે ન આપતા એવી આજ્ઞા કરે કે 'તમે ઈચ્છાનુસાર આપી દો' તો શિષ્યે શું કરવું જોઈએ ? તે બતાવે છે–સાહવો૦ ઈત્યાદિ

ही है, अगर वे न लें तो उनसे कहे-'हे भगवान् ! आपही अपने हाथ से किसी दूसरे सन्त को दीजिये'। ऐसा कहने पर यदि वे अपने हाथ से किसी को दे तो ठीक ही है, यदि खुद न देकर उसीसे कह देवें कि 'तुमही तुम्हारी इच्छा के अनुसार जो लेवे उसको दे दो' तब उसे क्या करना चाहिये, सो बताते है -

सान्वयार्थः-तो=इस प्रकार गुरु महाराजकी आज्ञा प्राप्त होने पर वह साधु साहवो=सब सन्तोंको चियत्तेणं=त्याग-बुद्धिसे अर्थात् उदार चित्तसे जहक्कमं=रत्नाधिकके क्रमानुसार निमंतिज्ज=निमन्त्रण करे-आहार धामे, जइ=यदि-अगर तत्थ=उनमेसे केइ= कोई साधु इच्छिज्जा=आहार लेना चाहे तो (उन्हें देकर) तेहि सद्धिं तु=उनके साथ बैठकर भुंजए=खुद भी आहार करे ॥९५॥

टीका—तो=ततः गुरोरादेशाऽनन्तरम् असौ साधून् चियत्तेणं=देशीयशब्दोऽयम्' परमप्रीत्या उदारचेतसेत्यर्थः, यथाक्रमं=रत्नाधिकक्रममनुसृत्य निमन्त्रयेत् = स्वभागग्रहणाय प्रार्थयेत्-'इदं गृहीत्वाऽनुगृह्यता'-मिति वदेदित्यर्थः। यदि तत्र = मुनीनां मध्ये केऽपि मुनय इच्छेयुः = ग्रहीतुमभिलषेयुस्तदा तेभ्योऽपि वितीर्य तैःसार्द्धं स्वयमपि भुञ्जीत = 'चपड-चपडे' ति शब्दमकुर्वन्नभ्यवहरेत् ॥९५॥

मूलम्—अह[1] कोइ[2] न[3] इच्छिज्जा[4], तओ[5] भुंजिज्ज[12] एगओ[7]।
आलोए[8] भायणे[9] साहू[6], जयं[10] अपरिस्साडियं[11] ॥९६॥

छाया—अथ कोऽपि न इच्छेत्, ततो भुञ्जीत एककः।
आलोके भाजने साधुः, यतम् अपरिशातयन् ॥९६॥

सान्वयार्थः—अह=अथ-यदि कोइ=कोई न इच्छिज्जा = आहार लेना नहीं चाहे तो तओ = फिर साहू = वह साधु एगओ = अकेला-द्रव्यसे स्वयं एक ही, भावसे राग-द्वेष-संग-रहित आलोए = प्रकाशयुक्त-चौडे मुंहवाले भायणे = पात्रमे जयं = यतनापूर्वक अर्थात् मांडलेके दोषोंको टालकर अपरिसाडियं = सीथ-कणका बिन्दु-मात्र भी आहार नहीं गिराता हुआ भुंजिज्ज=आहार करे ॥९६॥

गुरुकी आज्ञा मिलनेके अनन्तर प्रसन्न चित्तसे उदारताके साथ दीक्षा मे बडे—छोटेके क्रमसे साधुओंको अपना भाग ग्रहण करने की प्रार्थना करे, अर्थात् 'यह आहार ग्रहण करने का अनुग्रह कीजिए' ऐसा कहे। उन मुनियोमेसे कोई ग्रहण करने की इच्छा करे तो उन्हे वितीर्ण करके उनके साथ आप भी चपड—चपड शब्द न करता हुआ आहार करे ॥ ९५ ॥

ગુરૂની આજ્ઞા મળ્યા પછી પ્રસન્ન ચિત્તથી ઉદારતાની સાથે દીક્ષામાં મોટાનાનાના ક્રમે કરીને સાધુઓને પોતાનો ભાગ ગ્રહણ કરવાની પ્રાર્થના કરે અર્થાત્ 'આ આહાર ગ્રહણ કરવાનો અનુગ્રહ કરો' એમ કહે એ મુનિઓમાંથી કોઈ ગ્રહણ કરવાની ઈચ્છા કરે તો તેમને વહેંચી આપીને તેમની સાથે પોતે પણ ચપડ ચપડ અવાજ કર્યા વિના આહાર કરે. (૯૫)

टीका—'अह' इत्यादि । यदि कोऽपि ग्रहीतुं नेच्छेत् तदनन्तरं साधु एककः=द्रव्येण स्वयमेव, भावेन रागद्वेपरहितः आलोके प्रकाशमाने भाजने मशकादिक्षुद्रजन्तवो यथा दृष्टिपथमागच्छेयुस्तदर्थमिति भावः । यतं=सयतनं मण्डलदोषभावानुसन्धानपूर्वकम् अपरिशातयन सिक्थादिकमविकिरन् भुञ्जीत ॥९६॥

२ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ ११ १०

मूलम्—तित्तगं च कडुयं च कसायं. अंबिलं च महुरं लवणं वा ।

१२ १४ १३ १५ १६ १७ १

एय लद्धमन्नट्ठपउत्तं, महुघयं व भुंजिज्ज संजए ॥९६॥

छाया—तिक्तकं च कटुकं च कषायम्, अम्ल च मधुरं लवणं वा ।
एतल्लब्धमन्यार्थप्रयुक्तं, मधु-घृतमिव भुञ्जीत संयतः ॥९७॥

सान्वयार्थः—वह आहार यदि—तित्तगं=तीखा कडुयं=कडवा च=और कसायं=कषायला च=और अंबिलं—खट्टा च=और महुरं=मीठा वा=अथवा लवणं=लवणरसयुक्त, इत्यादि प्रकारका कैसा भी हो; किन्तु-अन्नट्ठपउत्तं=साधुको न उद्देश करके गृहस्थने अपने लिये बनाये हुए, अथवा-स्वादसुखके सिवाय सिर्फ शरीर-निर्वाहके लिए विधान किये हुए और लद्धं=आगमोक्त विधिसे मिले हुए एयं=इस पूर्वोक्त प्रकारके तीखे आदि अशनादिको संजए=रागद्वेपरहित साधु महु-घयं व=मीठे घी शक्करकी तरह अर्थात् जिस प्रकार घी-शक्कर युक्त भोजनको रुचिपूर्वक भोगते हैं उसी प्रकार भुंजिज्ज=भोगवे ॥९७॥

टीका—'तित्तग' इत्यादि । सयतः तिक्तकं, कटुकं, कषायम्, अम्लं, मधुरं, वा=अथवा लवणं=क्षारम्, तत्तद्रसयुक्तमित्यर्थः । एतत्सर्वमन्नादिकम् अन्यार्थप्रयुक्तं=गृह-

---

'अह' इत्यादि । यदि कोई भी मुनि आहार ग्रहण करने की इच्छा प्रकाशित न करें अर्थात् न ले तो अकेला-रागद्वेपरहित वह साधु ऐसे पात्र में भोजन करे जिसमे प्रकाश पड़ रहा हो । प्रकाश-युक्त पात्रमें आहार करने का विधान इसलिए किया है कि मच्छर आदि सूक्ष्म जन्तु दीख सके । मण्डल दोषोंका विचार करता हुआ सीथ-मात्र भी अन्नादि न बिखेरता हुआ आहार करे ॥ ९६ ॥

'तित्तग' इत्यादि । तीखे, कडुवे, कसायले, खट्टे मीठे अथवा क्षाररसवाले पदार्थ जो गृहस्थने अपने लिए बनाये हे अर्थात् साधुके लिए न बनाये हो, अथवा स्वाद-सुखके सिवाय

अह० ઈત્યાદિ જો કોઈ પણ મુનિ આહાર ગ્રહણ કરવાની ઈચ્છા પ્રકાશિત ન કરે અર્થાત્ ન લે તો એકલા-રાગદ્વેષરહિત તે એવા પાત્રમા ભોજન કરે કે જેમાં પ્રકાશ પડતો હોય પ્રકાશયુક્ત પાત્રમા આહાર કરવાનુ વિધાન એટલા માટે કર્યું છે કે મચ્છર આદિ સૂક્ષ્મ જતુ દેખી શકાય મડલ દોષોનો વિચાર કરતાં એક કણ જેટલું પણ અન્ન ન વેગવા દેતાં આહાર કરે. (૯૬)

તિત્તગં ઈત્યાદિ તીખા, કડવા. કસાયલા, ખાટા, મીઠા, અથવા ક્ષારરસવાળા પદાર્થો

स्यैः स्वनिमित्तं सम्पादितं न तु साध्वर्थं शुद्धमित्यर्थः, यद्वा अन्यार्थं = स्वादसुखाद न्यस्मै प्रयोजनाय शरीरमात्रनिर्वाहार्थमिति यावत्, प्रयुक्तम् = आगमेन विहितं लब्धं = प्राप्तं सत् मधु = शर्करादिमधुरद्रव्यं घृतं = प्रतीतं तद्वत्, यथा मधुघृतभोजने प्रवृत्तिर्जायते तथाऽन्यान्यपि तिक्तकादीनि तत्तुल्यभावेन भुञ्जीत । उक्तश्च सङ्ग्रहगाथयोः—

" वल्लचणगाइउसियं, अन्नं तह तक्कमीसियं जाण ।
घयपूराइमणुन्नं, सम्मं उभयंपि भुंजई समणो ॥१॥
उण्हं अन्नमणुण्हं, उण्हाऽणुण्हं करंब-दहिमाई ।
संजमजत्तनिमित्तं, समभावं भुंजई समणो ॥२॥" इति ।

इति गाथार्थः ॥९७॥

छाया—"वल्लचणकादि उषितं (पर्युषितं), अन्नं तथा तक्रमिश्रितं जानीहि ।
घृतपूरादि मनोज्ञं, सम्यक् उभयमपि भुङ्क्ते श्रमणः ॥१॥
उष्णमन्नमनुष्णम् , उष्णानुष्णं करम्बदध्यादि ।
संयमयात्रानिमित्तं समभावं भुङ्क्ते श्रमणः ॥२॥

'सीयं पिंडं पुराणकुम्मास' इत्याद्युत्तराध्ययनसूत्रे । आचाराङ्गसूत्रेऽप्ययमर्थोऽभिहितः । ' अरसाहारे विरसाहारे अंताहारे पंताहारे लूहाहारे" इत्यौपपातिकसूत्रेऽभयदेवसूरिणैवं व्याख्यातम्–'अंताहारे' त्ति अन्ते भवमन्त्यं जघन्यधान्यं वल्लादि । 'पंताहारे त्ति प्रकर्षेणाऽन्त्य वल्लाद्येव भुक्तावशेष पर्युषितं वा" इत्यादि । ज्ञातासूत्रेऽप्येवमेव व्याख्यातम् ॥

अन्य प्रयोजनके लिए अर्थात् शरीरके निर्वाह के लिए यदिआगमानुसार विधिसे प्राप्त हुए हो तो उन्हे ऐसे भोगे जैसे घी-शक्करका आहार किया जाता है । तात्पर्य यह है कि—साधुको निरवद्य अन्त-प्रान्त आदि जैसा आहार मिले उस सबको समभावसे भोगना चाहिए। जैसे संग्रह गाथाओंमें कहा है—'एक तरफ छाछमें भीगी हुई वाल चने आदिकी ठंडी रोटी और एक तरफ

જે ગૃહસ્થે પોતાને માટે બનાવ્યા હોય અર્થાત્ સાધુને માટે ન બનાવ્યા હોય અથવા સ્વાદ-સુખ સિવાય અન્ય પ્રયોજનને માટે અર્થાત્ શરીરના નિર્વાહને માટે જો આગમાનુસાર વિધિથી પ્રાપ્ત થયા હોય તો તેમને એવી રીતે ભોગવે કે જેમ ઘી-સાકરનો આહાર કરવામાં આવતો હોય. તાત્પર્ય એ છે કે સાધુને નિરવદ્ય અંત-પ્રાંત આદિ જેવો આહાર મળે એ બધાને સમભાવથી ભોગવવો જોઈએ સંગ્રહ ગાથામાં કહ્યું છે કે—

'એક તરફ છાશમાં ભીંજવેલી વાલ ચણા આદિની ઠંડી રોટલી અને એક તરફ મનોજ્ઞ ઘેવર આદિ હોય, એ બેઉને જે સમભાવે ભોગવે છે તે શ્રમણ કહેવાય છે (૧) ગરમ યા ઠંડુ અન્નાદિક અને એ જ પ્રકારે ગરમ યા ઠંડો દહીંનો કરંબો ઈત્યાદિને જે સંયમયાત્રાના નિર્વાહને માટે સમભાવે ભોગવે છે તે શ્રમણ કહેવાય છે" (૨) ઈતિ (૯૭)

१ ८ ३ २ ५ ६ ७
मूलम्—अरसं विरसं वावि, सूइयं वा असूइयं।
८ ९ ११ १२ १० १३
उल्लं वा जइ वा सुक्कं, मंथु-कुम्मास-भोयणं ॥९८॥
१४ २० १७ १८ १९ १५
उप्पण्णं नाइहीलिज्जा, अप्पं वा बहु फासुयं।
१६ २१ २३ २२
मुहालद्धं मुहाजीवी भुंजिज्जा दोसवज्जियं ॥९९॥

छाया—अरसं विरसं वाऽपि, सूचितं वा असूचितम् ।
आर्द्रं वा यदि वा शुष्कं, मन्थु-कुल्माष-भोजनम् ॥९८॥
उत्पन्नं नातिहीलयेत्, अल्पं वा बहु प्रासुकम् ।
मुधालब्धं मुधाजीवी भुञ्जीत दोषवर्जितम् ॥९९॥

सान्वयार्थः—अरसं=नमक आदि रसरहित वावि=तथा विरसं=अधिक दिनोंकी बनी हुई विरस-बासी सूखी रोटी आदि या पुराने चॉवल आदिका भोजन सूइयं=हींग आदिका बघार (छौंक) दिया हुआ वा=अथवा असूइयं=नहीं बघार दिया हुआ शाक उल्लं=गीला-करंबा, राइता आदि वा=तथा सुक्कं=सूखा-भुने हुए चने भूंगडे-आदि जइवा अथवा मंथुकुम्मासभोयणं=बेरके चूरेका भोजन या कुलथीका भोजन अथवा उड़दका बाकुला (यह पूर्वोक्त सब प्रकारका अशनादि) उप्पण्णं=जो गोचरी के समय शास्त्रमर्यादा से मिल गया वह अप्प=थोडा हो वा=या बहु=बहुत हो उसकी नाइहीलिज्जा=अवहेलना न करे, किन्तु फासुयं=प्रासुक-अचित्त और मुहालद्धं=निष्काम-विना किसी प्रत्युपकारके प्राप्त हुए उस अशनादिको मुहाजीवी=निष्काम-सिर्फ संयम यात्राका निर्वाह से जीनेवाला अर्थात् निरपेक्ष भिक्षा लेनेवाला साधु दोसवज्जियं=भोजनके संयोजनादि दोषोंको टाल कर भुंजिज्जा=भोगवे ॥९८॥९९॥

टीका-'अरसं' इत्यादि, 'उप्पण्णं' इत्यादि च । अरसं=लवणादिरसरहितम् अप्राप्तरसं बालचणकादिनिष्पादितं वा, अथवा विरसं चिरकालनिष्पादितत्वेन विगतरसं पूराणौदनादिकं वा, सूचितं=हिङ्ग्वादिसंस्कृतं वा=अथवा असूचितं=तद्वर्जितम्

मनोज्ञ घेवर आदि हो, उन दोनोंको समभावसे भोगता है वह श्रमण कहलाता है ॥१॥ गर्म या ठंडा अन्नादिक और उसी प्रकारका-गर्म या ठंडा दही करंबाआदिको जो संयमयात्राका निर्वाहके लिए समभावसे भोगता है । वह श्रमण कहलाता है ।२॥" इति ॥९७॥

'अरस' इत्यादि, 'उप्पण्ण' इत्यादि च । नमकरहित तथा बाल चणक आदि अरस या बहुत पुराना ओदन आदि विरस, हींग आदि द्वारा छोका हुआ, गीला-करंबा आदि, सूखे भुने हुए चने आदि, बेरका चूर्ण आदि, अथवा कुलथी या उड़दके बाकलाका भोजन । ये सब

અરસં ઇત્યાદિ, તથા ઉપ્પણ્ણં૦ ઇત્યાદિ મીઠાથી રહિત તથા બાલ-ચણા આદિ અરસ યા બહુ જૂનો ઓદન-આદિ વિરસ હીંગ આદિથી વઘારેલુ યા ન વઘારેલું, લીલો કરંબો આદિ, સૂકા-મૂંજેલા ચણા આદિ, બોરનું ચૂર્ણ આદિ અથવા કળથી યા અડદના બાકળાનુ

अर्द्रं = करम्भादिकं शुष्कं = भर्जितचणकादिकम् । मन्थुकुल्मापभोजनं = मन्थुश्च कुल्माषश्चाऽनयोः समाहारे मन्थुकुल्मापं तद्, भुज्यते यत्तद्भोजनं, मन्थुकुल्मापं च तद्भोजनं चेति विग्रहः, तत्र मन्थुः = बदरचूर्णादिकम्, कुल्मापः = कुलत्थः, यद्वा अर्द्धस्विन्नमाषः 'उडदवाकुला' इति भाषा प्रसिद्धः । एतत् पूर्वोक्तं सर्वम् उत्पन्नं = शास्त्रमर्यादयोपलब्धं, प्रासुकं = निर्जीवं, मुधालब्धं = मन्त्रतन्त्रादिप्रकारमन्तरेण प्राप्तं, तद् यदि अल्पं = स्वल्पं सरसमन्नादिकं, वा = अथवा बहु प्रचुरम् अरसमशनादिकम् उपलक्ष्येति शेषः, नातिहीलयेत् = न निन्देत् । अल्पीयसि सरसवस्तुनि लब्धे-"कथमेतावतैवोदरपूर्त्तिर्भवेत्" इति, एवमसारवस्तुनि प्रचुरतरे लब्धे सति "किमनेन प्रचुरतरेणापि निष्प्रयोजनेन" -त्येवंरूपां निन्दां न कुर्यादिति हृदयम् । किन्तु मुधाजीवो = मुधा-व्यर्थं निष्प्रयोजनं शरीरेन्द्रियपुष्टिप्रयोजनविकलं जीवितुं शीलमस्येति सः, संयमयात्रानिर्वाहार्थमेव भिक्षाग्रहणशील इति भावः । यद्वा मुधाजीवी = निर्दोपभिक्षाजीवी-जात्याद्यनाविष्करणपूर्वकभिक्षाग्राहक इत्यर्थः, दोपवर्जित = संयोजनादिमण्डलदोपा यथा न भवेयुस्तथा भुञ्जीत । 'उत्पन्नं' इत्यनेन शास्त्रमर्यादयैव गीतार्थेनान्नादिकं ग्राह्यमिति सूचितम् । 'फासुयं' अनेन सचित्तमचित्तं वेति परीक्ष्य ग्रहीतव्यमिति दर्शितम् । 'मुहालद्धं' इतिपदेन दातुरुपकारं विधाय भिक्षाग्रहणे आधाकर्मादयो बहवो दोषाः समापतन्तीति तथा

यदि शास्त्रोक्त विधिसे प्राप्त हुए हो, प्रासुक हों, मंत्र-तंत्र आदिका प्रयोग किया विना मिले हों, थोड़े हो या बहुत हो अर्थात् सरस अन्नादि थोड़ा हो और नीरस आहार बहुत हो तो मुधाजीवी अर्थात् संयमयात्राके निर्वाहके लिए जीवन धारण करनेवाला, अथवा निर्दोप अर्थात जाति आदिको न प्रगट करके भिक्षा लेनेवाला साधु उस आहारकी अवहेलना न करे । तात्पर्य यह है कि-सरस आहार कम मिले तो ऐसा न कहे कि-'इतने थोडे आहारसे उदरपूर्त्ति कैसे होगी ? नीरस आहार अधिक मिले तो ऐसा न कहे कि-'इस बहुतेरे व्यर्थ आहारसे क्या लाभ ? ।' इस प्रकार आहारकी निन्दा न करे, किन्तु आहारके संयोजना आदि मण्डल दोषों को टाल कर भोगे ।

ભોજન, એ સર્વ જો શાસ્ત્રોક્ત વિધિથી પ્રાપ્ત થયા હોય, પ્રાસુક હોય, મંત્ર-તંત્ર આદિનો પ્રયોગ કર્યા વિના મળ્યા હોય, થોડા હોય યા વધારે હોય, અર્થાત્ સરસ અન્નાદિ થોડું હોય અને નીરસ આહાર વધારે હોય, તો મુધાજીવી-અર્થાત્ સંયમયાત્રાના નિર્વાહને માટે જીવન ધારણ કરનારો અથવા નિર્દોષ અર્થાત્ જાતિ આદિને પ્રકટ કર્યા વિના ભિક્ષા લેનારો સાધુ એ આહારની અવહેલના કરે નહિ, તાત્પર્ય એ છે કે-સરસ આહાર ઓછો મળે તો એમ ન કહે કે 'આટલા થોડા આહારથી ઉદરપૂર્તિ કેવી રીતે થશે-?' નીરસ આહાર વધારે મળે તો એમ ન કહે કે 'આ ઘણા બધા વ્યર્થ આહારથી શો લાભ ?' એ પ્રમાણે આહારની નિન્દા ન કરે, પરન્તુ આહારના સંયોજના આદિ મંડલ દોષોને ટાળીને ભોગવે

उत्पन्नं શબ્દથી એમ સૂચિત કરવામાં આવ્યું છે કે ગીતાર્થ સાધુએ શાસ્ત્રની મર્યાદા અનુસાર જ આહાર ગ્રહણ કરવો જોઈએ. **फासुयं** શબ્દથી સચિત્ત અચિત્તની પરીક્ષા

नोपादेयमिति प्रकटितम् । 'दोपवज्जियं' इतिपदेन निर्दोषभिक्षाप्राप्तावपि मण्डलदोपवत्त्वेन सदोषत्वं दुर्निवारमिति मण्डलदोपरहितं भोक्तव्यमिति प्रादुष्कृतम् ॥९८॥९९॥

२ १ ३ ४ ५
मूलम्—दुल्लहाओ मुहादाई, मुहाजीवी वि दुल्लहा ।
६ ७ ८ १० ९
मुहादाई मुहाजीवी, दोवि गच्छंति सुग्गइं ॥१००॥
॥ तिबेमि ॥

छाया—दुर्लभा मुधादातारः, मुधाजीविनोऽपि दुर्लभाः ।
मुधादातारः मुधाजीविनः, द्वावपि गच्छतः सुगतिम् ॥१००॥
इति ब्रवीमि ॥

सान्वयार्थः—मुहादाई = निष्काम–प्रत्युपकारी आशा न रखकर–देनेवाले दुल्लहाओ=दुर्लभ हैं और मुहाजीवीवि=निष्काम–दाताके कार्यकी अपेक्षा न रखकर–निरपेक्ष–लेनेवाले भी दुल्लहा=दुर्लभ हैं. क्योंकि मुहादाई=निष्काम देनेवाले और मुहाजीवी=निष्काम निरपेक्ष लेनेवाले दोवि=ये पूर्वोक्त दोनों ही सुग्गइं=मोक्षगतिको गच्छंति=प्राप्त होते हैं । श्री सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामीसे कहते हैं कि हे जम्बू ! ति = भगवान् श्रीमहावीर स्वामीने जैसा फरमाया है वैसा ही तुझे बेमि = मैं कहता हूं ॥१००॥

॥इति श्रीदशवैकालिक सूत्रके पांचवे अध्ययनके पहले उद्देश्यका सान्वयार्थ संपूर्ण ॥

टीका —'दुल्लहाओ' इत्यादि । मुधादातारः = प्रत्युपकारानभिलाषिणो दायकाः दुर्लभाः = दुष्प्रापास्तादृशानां विरलत्वात् , मुधाजीवीनोऽपि = दातृकार्यानपेक्ष-

'उप्पन्नं' पदसे यह सूचित किया है कि गीतार्थ साधुको शास्त्रकी मर्यादा के अनुसार ही आहार ग्रहण करना चाहिए । 'फासुय' पदसे सचित्त अचित्तकी परीक्षा करके ग्रहण करना द्योतित किया है। 'मुहालद्ध' पदसे यह दर्शाया है को दाता का उपकार करके भिक्षा ग्रहण करने से आधाकर्म आदि बहुत से दोप आते है, अत ऐसी भिक्षा नहीं लेनी चाहिए । 'दोसवज्जियं' पदसे यह प्रगट किया है कि निर्दोष भिक्षा उपलब्ध हो जाने पर भी मण्डल दोप लगनेसे वह भिक्षा अवश्य दूषित हो जाती है, इसलिए उनका परिहार करके ही आहार करना चाहिए ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

'दुल्लहाओ' इत्यादि । प्रत्युपकार (बदला) की आशा न रखनेवाले दाता दुर्लभ है, और दाताका कार्य न करके भिक्षा ग्रहण करनेवाले साधु भी विरले होते है । प्रत्युपकारकी चाह

કરીને ગ્રહણ કરવાનુ કહેવામા આવ્યુ છે મુહાલદ્ધં શબ્દથી એમ દર્શાવવામા આવ્યુ છે કે દાતાનો ઉપકાર કરીને ભિક્ષા ગ્રહણ કરવાથી આધાકર્મ આદિ ઘણા દોષો લાગે છે, તેથી એવી ભિક્ષા ન લેવી જોઇએ દોસવજ્જિય શબ્દથી એમ બતાવવામા આવ્યુ છે કે નિર્દોષ ભિક્ષા ઉપલબ્ધ થતાં પણ મંડલ દોષ લાગવાથી એ ભિક્ષા અવશ્ય દૂષિત થઇ જાય છે તેથી એને પરિહાર કરીને જ આહાર કરવો જોઇએ (૯૮-૯૯)

દુલ્લહાઓ૦ ઈત્યાદિ નિષ્કામ-પ્રત્યુપકાર (બદલા) ની આશા ન રાખનારદાતા દુર્લભ છે અને નિષ્કામ—દાતાનું કાર્ય કર્યા વિના ભિક્ષા ગ્રહણ કરનાર-સાધુ પણ વિરલ જ હોય

निरपेक्षभिक्षाग्राहिणोऽपि दुर्लभाः, मुधादातारः मुधाजीविनश्च द्वावपि=दाता भिक्षुश्च उभावप्युक्तविधौ सुगतिं=सिद्धगतिं गच्छतः=प्राप्नुतः। 'मुधादातारः' मुधाजीविनः' इत्यत्र बहुवचनं व्यक्तिविवक्षया। 'द्वावपि' इत्यत्र द्विवचनं तु मुधादातृत्व-मुधाजीवित्वोभयधर्मगतद्वित्वसंख्याविवक्षयेति बोध्यम् ॥ इति ब्रवीमीति प्राग्वत् ॥१००॥

। इति श्री-दशवैकालिकसूत्रस्याऽऽचारमणिमञ्जूषाख्यायां व्याख्यायां पञ्चमाध्ययनस्य प्रथमोद्देशकः समाप्तः ॥ ५-१ ।

न रखनेवाले दाता और किसीका कार्य विना किये भिक्षा ग्रहण करनेवाला आत्मार्थी साधु, इन दोनोको मोक्षगतिकी प्राप्ति होती है।

श्रीसुधर्मास्वामी जम्बूस्वामीसे कहते है–हे जम्बू ! चरम जिनेश्वर भगवान् महावीर स्वामीने जैसा उपदेश दिया है वैसा मैंने कहा है ॥१००॥

इति दशवैकालिक सूत्रके पाँचवे अध्ययनके पहले उद्देशेका हिन्दी–भाषानुवाद समाप्त ॥५-१॥

છે. પ્રત્યુપકારની ઈચ્છા ન રાખનાર દાતા અને કોઈનું કાર્ય કર્યા વિના ભિક્ષા ગ્રહણ કરનાર આત્માર્થી સાધુ, એ બેઉને મોક્ષ ગતિની પ્રાપ્તિ થાય છે

શ્રી સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂ સ્વામીને કહે છે કે–હે જમ્બૂ ! ચરમ જિનેશ્વર ભગવાન્ મહાવીર સ્વામીએ જેવો ઉપદેશ આપ્યો છે તેવો જ મેં કહ્યો છે (૧૦૦)

ઈતિ દશવૈકાલિકસૂત્રના પાંચમાં અધ્યયનનો પહેલા ઉદ્દેશાનો ગુજરાતીભાષાનુવાદ સમાપ્ત (૫ ૧)

॥ अथ पञ्चमाध्ययनस्य द्वितीय उद्देशः ॥

प्रथमोद्देशकथितपिण्डैषणाया अवशिष्टविधिमाह–'पडिग्गहं' इत्यादि ।

१ ३ २ ४
मूलम्–पडिग्गहं संलिहित्ताणं, लेवमायाइ संजए ।
५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२
दुगंधं वा, सुगंधं वा सव्वं भुंजे न छड्डए ॥ १ ॥

छाया—प्रतिग्रहं संलिह्य, लेपमर्यादया संयत ।
दुर्गन्धं वा सुगन्धं वा, सर्वं भुञ्जीत न मुञ्चेत् ॥ १ ॥

सान्वयार्थः–पडिग्गहं=पात्रेको लेवमायाए=लेपकी मर्यादासे अर्थात् जब तक छांछ आदिका लेप लगा रहे तब तक संलिहित्ताणं=अंगुलीसे पोंछकर संजए=साधु दुगंधं वा=अनिष्ट गन्धवाला हो चाहे सुगंध वा=सुरभिगन्धवाला पदार्थ हो उस सव्वं=सबको भुंजे=भोगवे; किन्तु न छड्डए=कुछभी न छोडे जूठन न डाले ॥१॥

टीका—प्रतिग्रहं=पात्रं लेपमर्यादा=लेपं मर्यादीकृत्य यथा लेपसम्बन्धः पात्रे नावतिष्ठेत तथा संलिह्य पात्रस्थं तक्रादिलेपमङ्गुल्यादिना नश्शेषं प्रोञ्छ्य संयतः=मुनिः दुर्गन्धम्=अनिष्टगन्धयुक्त-पुरातनगोधूमवर्जरिकावल्लचणकादिनिष्पादितं शीतमुष्णं वाऽन्नम्, अम्लतक्रपाचितवल्लचणकचूर्णनिष्पादितं शीतमुष्णं वा शाकविशेषादिकं, पर्युषिततक्रादिरूपं पानं च, तेषाममनोज्ञगन्धवत्त्वादिति भावः। सुगन्धं। सुरभिगन्धयुक्तं वाः।

। पांचवाँ अध्यनका दूसरा उद्देश ।

प्रथम उद्देशमें कही हुई विधिके अतिरिक्त-अवशिष्ट पिण्डैषणाकी विधि इस दूसरे उद्देशमें कहते है–'पडिग्गह' इत्यादि ।

आहार करनेके पात्रमें जो लेप लगा रह जाय उसे अंगुली आदि द्वारा पोछकर मुनि अमनोज्ञ गन्ध या मनोज्ञ गन्धवाले समस्त अन्न पानको भोगे, उसे छोडे नहीं अर्थात् सीथ मात्र भी जूठा न डाले। पुराने गेहूँ, बाजरे, वाल, चने आदिकी बनी हुई ठडी या गर्म रोटी आदि अन्न, खट्टी छाछकी बनी ठडी या गर्म कढी आदि शाक, पर्युषित (वासी) खट्टी छाछ आदि पान, ये अमनोज्ञ गन्धवाले होते है। और घेवर पायस आदि, इलची लवंग केसर आदिके मिश्रित

અધ્યયન પાંચમુ-ઉદ્દેશ બીજો.

પ્રથમ ઉદ્દેશમા કહેલી વિધિ ઉપરાત અવશિષ્ટ પિંડૈષણાની વિધિ આ બીજા ઉદ્દેશમા કહે છે—પડિગ્ગહં ઈત્યાદિ

આહાર કરવામા પાત્રમા જે લેપ લાગેલો રહી જાય, તેને આગળી આદિ વડે લૂછીને મુનિ અમનોજ્ઞ ગધ યા મનોજ્ઞ ગધવાળા બધા અન્ન પાનને ભોગવે, તેને છોડે નહિ, અર્થાત્ જરા પણુ બાકી ન રાખે જૂના ઘઉ, બાજરી, વાલ, ચણુા આદિની બનાવેલી ઠડી યા ગરમ રોટલી આદિ અન્ન, ખાટી છાશની બનેલી ઠંડી યા ગરમ કઢી આદિ શાક, પર્યુષિત ખાટી છાશ આદિ પાન, એ બધા અમનોજ્ઞગંધવાળા હોય છે અને ઘેબર, પાયસ

घृतपूरापायसादि तस्यैलालवङ्गकेसरकर्पूरादिमनोज्ञगन्धवत्त्वादिति भावः । सर्वं = मनोज्ञा मनोज्ञरूपं सकलं भुञ्जीत=न तु मुञ्चेत्-परित्यजेत् नावशेषयेदिति भावः ॥१॥

१ २ ५ ४ ३

मूलम्-सेज्जा निसीहियाए, समावन्नो य गोयरे ।

६ ७ ८ ९ १० ११

अयावयट्ठा भुच्चाणं जइ तेणं न संथरे ॥ २ ॥

१२ १३ १४ २० २१

तओ कारणमुप्पण्ण, भत्तपाणं गवेसए ।

१९ १५ १६ १७ १८

विहिणा पुव्वउत्तेण इमेणं उत्तरेण य ॥ ३ ॥

छाया—शय्यायां नैषेधिक्या, समापन्नश्च गोचरे ।
अयावदर्थं भुक्त्वा, यदि तेन न संस्तरेत् ॥ २ ॥
ततः कारणे उत्पन्ने,भक्तपानं गवेषयेत् ।
विधिना पूर्वोक्तेन, अनेन उत्तरेण च ॥ ३ ॥

सान्वयार्थः—सेज्जा = वसति उपाश्रय में नीसीहियाए = आहार करनेके स्थान पर य = अथवा गोयरे = भिक्षाचरीमें समावन्नो = प्राप्त हुआ मुनि अयावयट्ठा = जरूरी से कम अर्थात् थोड़ा भुच्चाण = खाकर खालेके पर जइ = यदि अगर तेणं = उस अशनादिसे न संथरे = न सस्तरेत् अर्थात् सयमयात्राका निर्वाह के लिए पर्याप्त पूरा न हो तओ = तो कारणं = क्षुधा वेदनीय की शांति न होने रूप कारण के उप्पन्ने = उत्पन्न होने पर साधु पुव्वउत्तेण = पूर्वोक्त "संपत्ते भिक्खकालम्मि" इत्यादिरूप विधी से य = तथा इमेणं = इस उत्तरेणं = आगे कहे जानेवाली "कालेण णिक्खमे भिक्खू" इत्यादि रूप विधिसे भत्तपाणं = आहार पानी गवेसए = गवेपे अर्थात् भिक्षा लेने के लिए जावे ।२।३

टीका—'सेज्जा' इत्यादि, 'तओ' इत्यादि च । शय्यायां=वसतौ, नैषेधिक्यां=निषदनस्थाने स्वाध्यायभूमिकायामित्यर्थः, गोचरे=भिक्षाचर्यायां च=वा समापन्नः=सम्प्राप्तो मुनिः, उपलब्धमन्नादिकम् अयावदर्थम्=अपरिसमाप्तम् अल्पं=क्षुधोपशमनानर्हमि-

होनेसे मनोज्ञ गन्धवाले होते है, उन सबको समभावसे भोगवे ॥१॥

'सेज्जा' इत्यादि, 'तओ' इत्यादि ।उपाश्रयमें बैठनेके स्थानमें अर्थात् स्वाध्याय भूमिमें तथा गोचरीमें गए हुए मुनिको अल्प, अर्थात क्षुधाकी शान्ति न होसकने योग्य अन्न आदि मिला हो और उससे सयमयात्राका निर्वाह न होसके, अर्थात् लाया हुआ आहार पर्याप्त न हो तो

(દૂધપાક) આદિ, એલચી લવીંગ, કેસર આદિથી મિશ્રિત હોવાથી મનોજ્ઞ ગંધવાળા હોય છે, એ બધાને સમભાવે ભોગવે. (૧)

સેજ્જા૦ ઇત્યાદિ, તથા તઓ૦ ઈત્યાદિ ઉપાશ્રયમાં બેસવાના સ્થાનમાં અર્થાત્ સ્વાધ્યાયભૂમિમાં તથા ગોચરીમાં ગએલા મુનિને અલ્પ અર્થાત્ ક્ષુધાની શાન્તિ ન થઇ શકે અર્થાત લાવેલો આહાર પૂરતો ન હોય, તો એવું કારણ ઉત્પન્ન થતાં અર્થાત્ ક્ષુધાવેદનીય શાન્ત

त्यर्थः संयमनिर्वाहार्थं यावताऽन्नादिकेन भाव्यं तावन्नेति यावत्, भुक्त्वा यदि तेन भोजनेन न संस्तरेत्=संयमयात्रां निर्वोढु न शक्नुयात् ।२।

ततः=तदनन्तरं कारणे=प्रयोजने आर्षत्वात्सप्तम्यर्थे प्रथमा, उत्पन्ने सति=क्षुधावेदनोपशमनाभावे पूर्वोक्तेन=" सपत्ते भिक्खकालम्मि" इत्यादिरूपेण अनेन उत्तरेण=" कालेण णिक्खमे भिक्खू०" इत्यादिवक्ष्यमाणलक्षणेन विधिना=प्रकारेण भक्तपान गवेपयेत् पुनर्भिक्षार्थं गच्छेदिति सूत्रार्थः ।३।

तमेव विधिमुपदर्शयन कालयतनामाह–'कालेण' इत्यादि ।

मूलम्–कालेण[2] णिक्खमे[3] भिक्खू[1], कालेण[4] य[5] पडिक्कमे[6] ।
अकालं[7] च[8] विवज्जित्ता[9], काले[10] कालं[11] समायरे[12] ॥ ४ ॥

छाया–कालेन निष्क्रामेद् भिक्षुः, कालेन च प्रतिक्रामेत् ।
अकालं च विवर्ज्य, काले कालं समाचरेत् ॥ ४ ॥

अब भिक्षा लेने की विधी बताते हैं–

सान्वयार्थः– भिक्खू=मुधाजीवी मुनि कालेण=गोचरीके समयसे–जिस देशमें जो समय भोजनका हो उस समयके होनेसे णिक्खमे=भिक्षाके लिये जावे, य=और कालेण =समयसे ही वापस आनेका उचित समय हो जानेसे पडिक्कमे=वापस लौट आवे, च= और अकालं=भिक्षाके अनुचित समयको विवज्जित्ता=छोडकर काले=उचित समयमें कालं=भिक्षादिक समायरे=आचरे–गोचरीके लिए घूमे ॥ ४ ॥

टीका–भिक्षुः=मुधाजीवी मुनिः कालेन=भिक्षोचितसमयेन यस्मिन् देशे यो गृहस्थानां भोजनसमयः स एव भिक्षुणां भिक्षाकालस्तेनेत्यर्थः निष्क्रामेत्=निर्गच्छेत्,

---

ऐसा कारण उत्पन्न होने पर, अर्थात् क्षुधावेदनीयके शान्त न होने पर "सपत्ते भिक्खकालम्भि" इत्यादि पूर्वोक्त विधिसे तथा "कालेण णिक्खमे भिक्खू" इस गाथासे प्रारम्भ करके आगे बताई जानेवाली विधिसे भक्त-पानकी गवेषणा करे, अर्थात् भिक्षाके लिए फिर गमन करे ॥ २ ॥ ३ ॥

उसी विधिको दिखाते हुए कालकी यतना कहते है–'कालेण' इत्यादि ।

जिस देशमे गृहस्थोके भोजनका जो समय हो वही समय भिक्षुको भिक्षाके लिये जाना उचित है, अत एव भिक्षाके लिए उसी समय जाना चाहिए और गोचरीके लिए गए हुवे साधुको ऐसे

न थवाने लीधे संपत्त भिक्खकालम्मि ઇત્યાદિ પૂર્વોક્ત વિધિથી, તથા कालेण णिक्खमे भिक्खू એ ગાથાથી પ્રારંભ કરીને આગળ બતાવવામાં આવનારી વિધિથી ભક્ત પાનની ગવેષણા કરે અર્થાત્ ભિક્ષાને માટે ફરીથી ગમન કરે (૨-૩)

એ વિધિને બતાવતા કાળની યતના કહે છે–कालेण० ઇત્યાદિ

જે દેશમાં ગૃહસ્થોના ભોજનનો જે સમય હોય તે સમય ભિક્ષાને માટે ઉચિત છે. તેથી ભિક્ષાને માટે તે સમયે જવું જોઈએ અને ગોચરીને માટે ગએલા સાધુએ એવા

भिक्षायै इति शेषः; कालेनैव = प्रत्यागमनोचितसमयेनैव, यथा स्वाध्यायप्रतिबन्धो न भवेत् तथा भिक्षां गतस्य साधोः परावर्त्तनसमयो निर्दिष्टस्तेनैवेति भावः। (करणे सहार्थे वा तृतीया)। चकारोऽत्र 'एव'-कारार्थकः' प्रतिक्रामेत् = प्रत्यागच्छेत्। अकालं = भिक्षानुचितसमयं विवर्ज्य = परित्यज्य काले = भिक्षोचितवेलायां काल = लक्षणया तत्कालोचितकृत्यं भिक्षादिकं समाचरेत् = भिक्षार्थं क्रामेदित्यर्थः । बहुशः कालशब्दोपादानं 'मुनीनां यथाकालमेव सकलं कृत्यं विधेय'-मिति ध्वनयति ॥ ४ ॥

अकालचारित्वेनाऽलब्धभिक्षो भिक्षुः केनचित्साधुना "भोः! भिक्षा त्वया लब्धा न वा" इतिपृष्टो वदति-"कुतोऽत्र मितम्पचानां हीनदीनानां ग्रामे भिक्षालाभः?" तदाऽसौ अकालचारिणं कथयति-'अकाले' इत्यादि।

मूलम्-अकाले चरिसी भिक्खू, कालं न पडिलेहिसि।
अप्पाणं च किलामेसि, संनिवसं च गरिहसि ॥ ५ ॥

छाया—अकाले चरसि भिक्षो!, कालं न प्रत्युपेक्षसे।
आत्मानं च क्लमयसि, संनिवेशं च गर्हसे ॥ ५ ॥

अकालचारी होने के कारण भिक्षा नहीं मिलने पर असन्तुष्ट हुए साधुको कालचारी साधु पूछता है-हे साधु! आपको भिक्षा मिली कि नहीं?, तब वह कहता है-इस कंजूसों के गाम में भिक्षा कहाँ पड़ी है। इस पर वह कालचारी साधु उससे कहता है—

सान्वयार्थः-भिक्खू = हे भिक्षु! आप अकाले=असमयमें भिक्षाका समय न होनेपर ही चरिसो=गोचरी फिरते हो, च=और कालं=गोचरीका समय न पडिलेहिसो=नहीं देखते, अतः अप्पाणं = आत्माको किलामेसि=किलामना-खेद-पहुंचाते हो च=और संनिवेस=गामकी गरिहसि=निन्दा करते हो। तात्पर्य यह हुआ कि गोचरीका समय हुए विना घूमनेसे साधु भगवानकी आज्ञाका विराधक होता है, और दीनता प्रगट करनेके कारण उसके चारित्रमें मलिनता होती है; अतः जिस देशमे जो भिक्षाका समय हो उसी समयमें साधुको भिक्षाके लिए जाना चाहिये ॥५॥

उचित समय पर लौट आना चाहिए, जिससे स्वाध्याय आदि क्रियाओंमे अन्तराय न पडे। तथा जो समय भिक्षाके लिए उचित न हो उसका परिहार करके द्रव्य क्षेत्र काल भावसे उचित समय पर ही भिक्षाके लिए जाना चाहिए। गाथामें बहुत वार काल शब्दका प्रयोग करनेसे यह आशय प्रगट होता है कि-साधुओंको प्रत्येक क्रिया उचित समय पर ही करनी चाहिए ॥ ४ ॥

ઉચિત સમયે પાછા ફરવું જોઇએ કે જેથી સ્વાધ્યાય આદિ ક્રિયાઓમા અંતરાય ન પડે તથા જે સમય ભિક્ષાને માટે ઉચિત ન હોય તેનો પરિહાર કરીને દ્રવ્ય ક્ષેત્ર કાળ ભાવથી ઉચિત સમયે જ ભિક્ષાને માટે જવું જોઈએ ગાથામા ઘણીવાર કાલ શબ્દનો પ્રયોગ કરવાથી એ આશય પ્રકટ થાય છે કે-સાધુઓએ પ્રત્યેક ક્રિયા ઉચિત સમયે જ કરવી જોઈએ (૪)

टीका—हे भिक्षो ! त्वम् अकाले=असमये चरसि=भिक्षार्थं गच्छसि किन्तु कालं=भिक्षोचितसमय न प्रत्युपेक्षसे=नाद्रियसे, तेन च हेतुनाऽऽत्मानं क्लमयसि=पीडयसि भिक्षालाभाभावेन श्रमणाधिक्येन चेति भावः। संनिवेशं=ग्रामं च पुनः गर्हसे=निन्दसि। भगवदाज्ञाविराधकत्वेन दैन्यप्रकाशनेन च चारित्रमालिन्य जायते, ततोऽनुचितकाले भिक्षार्थं न गन्तव्यमिति।५॥

मूलम्—सइ काले चरे भिक्खू, कुज्जा पुरिसकारियं।
अलाभु-त्ति न सोइज्जा, तवु-त्ति अहियासए ॥६॥

छाया—सति काले चरेद् भिक्षुः, कुर्यात्पुरुषकारम्।
अलाभ इति न शोचेत्, तप इति अधिषहेत ॥६॥

सान्वयार्थः—भिक्खू=साधुको काले=भिक्षाका समय सइ=होनेपर चरे=गोचरीके लिए घूमना चाहिए और पुरिसकारियं=उत्साह पूर्वक घूमनेरूप पुरुषार्थ भी कुज्जा=करना चाहिये, और भिक्षा न मिलनेपर वह अलाभु=आज मुझे भिक्षा नहीं मिली त्ति=इस प्रकार न सोइज्जा=सोच न करे, किन्तु तवु=आज मेरे अनशन ऊनोदरी आदि तप हुआ है त्ति=इस प्रकार सोचकर अहियासए=क्षुधा-परीषहको सहन करे-सन्तुष्ट रहे। तात्पर्य यह है कि-साधुओंको सिर्फ भिक्षाके ही लिए गोचरीमें घुमना नहीं हैं किन्तु वीर्याचारके लिए भी भगवान्ने गोचरीमें घुमना कहा है ॥६॥

कोई साधु द्वारा असमयमें भिक्षाके लिए जानेवाले दूसरे साधुसे पूछा गया कि—'हे भिक्षु ! तुम्हे भिक्षाका लाभ हुआ या नहीं?' तब उसने कहा—'इन कगाल कजूसोके गाँवमें भिक्षा कहाँ प्राप्त होसकती है?' तब वह अकालमे गोचरी करनेवालेके प्रति कहता है—'अकाले०' इत्यादि।

हे भिक्षु ! आप असमयमें भिक्षाके लिए जाते है, समयका खयाल नहीं रखते। इसी कारण अधिक भ्रमण करने से या भिक्षाके न मिलनेसे तुम अपनी आत्मा को पीडित करते हो, और ग्राम नगर की निन्दा करते हो। अकालमें भिक्षाके लिये गमनरूप भगवान की आज्ञाकी विराधना करने से तथा दीनता प्रगट करनेसे चारित्रमें मलिनता आती है इसलिए अनुचित समय में भिक्षाके लिए नहीं जाना चाहिए ॥५॥

કોઈ સાધુ અસમયના ભિક્ષાને માટે જનારા બીજા સાધુને પૂછ્યું કે—'હે ભિક્ષુ ! તમને ભિક્ષાનો લાભ થયો કે નહી' ત્યારે તેણે કહ્યું 'આ કંગાલ કંજૂસોના ગામમાં ભિક્ષા ક્યાથી પ્રાપ્ત થઈ શકે ?' ત્યારે એ અકાળે ગોચરી કરનારા સાધુ પ્રત્યે કહે છે-अकाले० ઈત્યાદિ

હે ભિક્ષુ ! આપ અસમયમા ભિક્ષાને માટે જાઓ છો, સમયનો ખ્યાલ રાખતા નથી. એ કારણે વધારે ફરવાથી યા ભિક્ષા ન મળવાથી તમે તમારા આત્માને પીડિત કરો છો અને ગ્રામ-નગરની નિંદા કરો છો અકાળે ભિક્ષાને માટે જવારૂપી ભગવાનની આજ્ઞાનો

टीका — 'सइ' इत्यादि । भिक्षुः काले = भिक्षोचितसमये प्राप्ते सति, यद्वा 'सइकाले' इत्यस्य 'स्मृतिकाले' इतिच्छाया तत्र-स्मर्यन्ते साधवो दातृभिर्दानार्थं यस्मिन् समये तस्मिन्नित्यर्थः, चरेत् = भिक्षार्थं गच्छेत् । पुरुषकारं = पराक्रमम् उत्साहपूर्वकभिक्षार्थभ्रमणलक्षणं कुर्यात् = विदध्यात् । कदाचिदलाभे सति अलाभः = अद्य भिक्षालाभो न संजात इति न शोचेत् = न परितपेत्, किन्तु तपः=अद्य मेऽनशनावमौदरिकादिरूपं तपः सम्पन्नमिति कृत्वा अधिसहेत = सन्तुष्येत् । भिक्षाया अलाभेऽपि वीर्यचारो मया सम्यगाराधितः, यतो न केवलमन्नाद्यर्थमेव भिक्षाचरणं भिक्षुणां, किन्तु वीर्याचारार्थमपि भगवता समादिष्टमिति भावार्थः ॥६॥

क्षेत्रयतनामाह-'तहेवु०' इत्यादि ।

मूलम्-तहेवुच्चावया[1] पाणा[2], भत्तट्ठाए[3] समागया[4] ।[5]

तं[6] उज्जुयं[7] न[8] गच्छिज्जा[9], जयमेव[10] परक्कमे[11] ॥७॥

छाया—तथैवोच्चावचाः प्राणाः, भक्तार्थं समागताः ।

तेषामृजुकं न गच्छेत्, यतमेव पराक्रामेत् ॥७॥

सान्वयार्थः-तहेव = उसीप्रकार उच्चावया = उच्च जातिके हंसादिक अवच-नीच जातिके कौए आदि पाणा = प्राणी (यदि) भत्तट्ठाए = चुगा-पानीके लिए समागया = आये हों-इकट्ठे हुए हों-तो तं उज्जुयं=उन प्राणियोंके सामने न गच्छिज्जा=नहीं जावे,

---

'सइकाले' इत्यादि । भिक्षु उचित समय प्राप्त होनेपर ही भिक्षाके लिए जावें । उत्साहपूर्वक भिक्षार्थ भ्रमणरूप पुरुषार्थ करे । कभी भिक्षाका लाभ न हो तो ऐसा सोच न करे कि—आज आज मुझे भिक्षा नहीं मिली, किन्तु ऐसा विचार करके सन्तुष्ट रहे कि आज भिक्षा न मिली तो सहज ही मेरे अनशन आदि तप होगया, अर्थात् भिक्षाका लाभ न होनेपर भी मैंने भली भाँति वीर्याचारका आराधन किया है साधु केवल अन्नादिककी प्राप्तिके लिए भिक्षाचारी नहीं करते किन्तु वीर्याचारकी आराधनाके लिए भी भिक्षाचरी में जाना भगवानने बताया है ॥६॥

(विराधना करवाथी तथा दीनता प्रकट करवाथी चारित्रमा मलिनता आवे छे, तेथी अनुचित समये भिक्षाने माटे जवु न जोईए (५)

सइ काले० ईत्यादि. भिक्षु उचित समय थतां ज भिक्षाने माटे जाय उत्साहपूर्वक भिक्षार्थ भ्रमणुरूप पुरुषार्थ करे कोईवार भिक्षानो लाभ न थाय तो एवो विचार न करे के 'आज मने भिक्षा न मळी ' परतु एवो विचार करीने संतुष्ट रहे के-'आज भिक्षा न मळी तो सहेजे माराथी अनशन आदि तप थइ गयु अर्थात् भिक्षानो लाभ न थवाथी पण मे' भलीपेठे वीर्याचारनु आराधन कर्यु' छे' साधु केवळ अन्नादिनी प्राप्तिने माटे ज भिक्षाचरी करता नथी, किन्तु वीर्याचारनी आराधनाने माटे पण भिक्षाचरीमां जवु' भगवाने बताव्यु' छे (६)

(किन्तु) जयमेव=यतनापूर्वक ही-आसपाससे अथवा अन्य मार्गसे अर्थात् जिस तरह उन प्राणियोंको किसी प्रकारका त्रास न पहुंचे उसीतरह परक्कमे=जावे ॥७॥

टीका--तथैव=तद्वत् उच्चावचाः=तत्र उदञ्चः=उच्चजातीया हंसादयः, अवाञ्चः=नीचजातीयाः काकप्रभृतयः, यद्वा उच्चावचाः=अनेकविधाः "उच्चावचं नैकभेद"मित्यमरात्, प्राणाः=प्राणिनः भक्तार्थम्=अन्न-पानार्थं मार्गादौ समागताः=समायाता भवन्ति चेत् 'तं'-तेषाम्, आर्षत्वात् षष्ठीबहुत्वे प्रथमैकवचनम्, ऋजुकं=संमुखं न गच्छेत्, तेषामन्नपानान्तरायादिप्रचुरदोषापातात् । तर्हि किं कुर्यात्? यतमेव=सयतनमेव=यथा तेषां संत्रासो न भवेत्तथा पराक्रामेत्=चरेत् अन्यमार्गेण तत्पार्श्वतो वा गन्तु यतेतेत्यर्थः, हंसादिभिः प्राणिभिः सर्वतः समाक्रान्ते पथि अन्यमार्गेण, एकदेशावच्छेदेन समाक्रान्ते च पार्श्वतोऽन्यभागेनेति विवेकः ॥७॥

मूलम्--गोयरग्गपविट्ठो[२] य,[३] न[५] निसीइज्ज[६] कत्थइ[४] ।
कहं[१०] च[७] न[११] पवंधिज्जा,[१२] चिट्ठित्ताण[८] व[९] संजए[१] ॥८॥

छाया--गोचराग्रप्रविष्टश्च, न निषीदेत् कुत्रापि ।
कथां च न प्रबध्नीयात्, स्थित्वा च संयतः ॥८॥

सान्वयार्थः--संजए=साधु गोयरग्गपविट्ठो य=गोचरीके लिए गया हुआ कत्थइ=कहींभी न निसीइज्ज=नहीं बैठे, च=और चिट्ठित्ताण व=खडा रहकरभी कहं=धर्मकथा न पवंधिज्जा=न कहे ॥८॥

अब क्षेत्रका यतना कहते है--तहेवु० इत्यादि ।

हंस-आदि उच्च-जातीय और काक आदि नीच-जातीय प्राणी यदि भोजन पानके लिए रास्ते में आये हो तो उनके सामने न जावें । सामने जानेसे उनके चुगे पानीमे विघ्न पड जानेके कारण भक्त-पानकी अन्तराय आदि अनेक दोष लगते है अतः यतना पूर्वक, अर्थात् जिससे वे भयभीत न हो उस प्रकार दूसरे मार्गसे या एक किनारेसे गमन करे ।

तात्पर्य यह है कि-अगर समस्त मार्ग हंस कबूतर कौए आदि प्राणियोसे व्याप्त हो तो दूसरे मार्गसे, और एक तरफ चुगा पानी करते हो तो एक किनारे होकर गमन करना चाहिए ॥७॥

હવે ક્ષેત્રની યતના કહે છે:-તહેવુ૦ ઇત્યાદિ

હંસ-આદિ ઉચ્ચ-જાતીય અને કાગડો-આદિ નીચ જાતીય પ્રાણી જો ભોજન પાનને માટે રસ્તામાં આવેલા હોય તો તેની સામે ન જવું સામે જવાથી તેમને પાણી પીવા ચણવા વગેરેમાં વિઘ્ન પડવાથી ભક્ત-પાનમાં અંતરાય આદિ અનેક દોષો લાગે છે. એટલે યતનાપૂર્વક અર્થાત્ જે રીતે તેઓ ભયભીત ન થાય એ રીતે બીજે માર્ગે યા એક બાજુએથી ગમન કરવું તાત્પર્ય એ છે કે જો આખો માર્ગ હંસ કબૂતર યા કાગડા વગેરે પ્રાણીઓથી ભરેલો હોય તો બીજે માર્ગેથી અને એક તરફ તેઓ ચણતાં કે પાણી પીતા હોયતો તેની બાજુએ થઈને ગમન કરવું જોઈએ (૭)

टीका—'गोयरग्ग०' इत्यादि । संयतः=मुनिः गोचराग्रप्रविष्टः सन् कुत्रापि गृहादौ न निषीदेत्=नोपविशेत्, च=अथच स्थित्वा=तिष्ठन् उपविश्य वा कथां=धर्मकथां न प्रबध्नीयात्=ससन्दर्भं व् नारभेत, किन्त्वेकस्यैव प्रश्नस्य संक्षेपत एकमेव समाधानं कर्त्तुमर्हति अन्यथा दायकाऽरुचिप्रभृतिविविधदोषप्रसङ्गः ॥८॥

द्रव्ययतनामाह–'अग्गलं' इत्यादि ।

४ ५ ६ ९ ८ ७ २

मूलम्–अग्गलं फलिहं दारं, कवाडं वावि संजए ।

१० ११ १२ १ ३

अवलंबिया न चिट्ठिज्जा, गोयरग्गगओ मुणी ॥९॥

छाया—अर्गलं फलकं द्वारं, कपाटं वाऽपि संयतः ।

अवलम्ब्य न तिष्ठेत्, गोचराग्रगतो मुनिः ॥९॥

सान्वयार्थः—गोयरग्गगओ=गोचरीके लिए गया हुआ संजए=इन्द्रियोंका सयम रखनेवाला मुणी=साधु अग्गलं=आगल-भोगल अथवा सकली फलिहं=दोनो किवाडों को रोक रखनेवाला काष्ठ (हुड़ा) को दारं=दरवाजा वावि=अथवा कवाडं=किवाडको अवलंबिया=पकडकर या इनका सहारा लेकर न चिट्ठिज्जा=खड़ा न होवे ॥९॥

टीका—गोचराग्रगतः=भिक्षाचरीनिर्गतः, संयतः संयमी मुनिः, अर्गलं=कपाटपट्टद्वयदृढसंयोजककाष्ठादिनिर्मितकीलविशेषं शृङ्खलादि च फलकम्=अवष्टम्भककाष्ठविशेष, द्वारं=गृहादेर्निर्गमप्रवेशमार्गम्, अपिवा कपाटं=स्वनामप्रसिद्धद्वाराच्छादकदारुफलकविशेषम् अवलम्ब्य=आश्रित्य न तिष्ठेत् ॥९॥

'गोयरग्ग०' इत्यादि । गोचरीके लिए गये हुए मुनि किसी के घरमें न बैठें, न खड़े खड़े सदर्भके साथ धर्मकथा कहना अरम्भ करे, । अवसर हो तो एक प्रश्नका एक ही समाधान खड़े २ सक्षेपसे कर देवे । बैठनेसे या लम्बी धर्मकथा करनेसे दाताकी अरुचि आदि अनेक दोष होते है ॥८॥

अब द्रव्ययतना कहते है–अग्गलं, इत्यादि ।

गोचरीके लिए गये हुए मुनिको आगल, सांकल, फलक (खूंटी आदि)' दरवाजा या किवाडजा सहारा लेकर खडा नही रहना चाहिए ॥९॥

गोयरग्ग० ઇત્યાદિ ગોચરીને માટે ગએલો મુનિ કોઈના ઘરમા ન બેસે, ઊભો ઊભો સદર્ભ સહિત ધર્મ કથા કહેવાનો આરભ ન કરે અવસર હોય તો એક પ્રશ્નનુ એકજ સમાધાન ઊભાં ઊભા સક્ષેપમા કરી દે બેસવાથી યા લાંબી ધર્મકથા કરવાથી દાતાની અરૂચિ આદિ અનેક દોષો થાય છે (૮)

હવે દ્રવ્ય-યતના કહે છે-**અગ્ગલં** ઇત્યાદિ

ગોચરી માટે ગએલા મુનિએ આગળો, સાંકળ, ફલક (ખૂટી આદિ) દરવાજો યા કમાડનો આધાર લઈને ઊભા રહેવુ ન જોઈએ (૯)

સમણં० ઇત્યાદિ તથા **તમઇ**० ઇત્યાદિ શ્રમણ, બ્રાહ્મણ, કૃપણ અને વનીપકને ગૃહ-

६ ९ ८ ७ १० ११ १२
मूलम्—समणं माहणं वावि, किविणं वा वणीमगं ।
५ २ ३ ४ १
उवसंकमंतं भत्तट्ठा, पाणट्ठा एव संजए ॥१०॥
१३ १४ १५ १६ १७ १९ १८
तमइक्कमित्तु न पविसे, नवि चिट्ठे चक्खुगोयरे ।
२१ २२ २३ २४ २०
एगंतमवक्कमित्ता, तत्थ चिट्ठिज्ज संजए ॥११॥

छाया—श्रमणं ब्राह्मणं वाऽपि, कृपणं वा वनीपकम् ।
उपसंक्रामन्तं भिक्षार्थं, पानार्थमेव संयतः ॥१०॥
तम् अतिक्रम्य न प्रविशेत्, नापि तिष्ठेत् चक्षुर्गोचरे ।
एकान्तमवक्रम्य तत्र तिष्ठेत् संयतः ॥११॥

सान्वयार्थः—संजए = साधु भत्तट्ठा=अन्नके लिए और पाणट्ठा एव=पानीके लिए ही उवसंकमंतं = गृहस्थके घर पर आते हुए समणं=निर्ग्रन्थ मुनिको वावि = अथवा माहणं = ब्राह्मणको किविणं = कृपण वा=अथवा वणीमगं = दरिद्री भिखारीको (देखकर) तं= उन श्रमणादिको अइक्कमित्तु = लांघकर न पविसे = गृहस्थके घरमें न जावे, नवि = और न चक्खुगोयरे = उनके दृष्टिगोचर-दृष्टिमार्गमें चिट्ठे = ठहरे, (किन्तु) एगंतं = एकान्त स्थानमें-जहां उनकी दृष्टि न पडती हो ऐसी जगह अवक्कमित्ता = जाकर संजए = इन्द्रियों का संयम करता हुआ—चुप-चाप तत्थ = वहां चिट्ठे = खडा रहे ॥१०॥११॥

टीका—'समणं' इत्यादि, 'तमइ०' इत्यादि च । संयतः, गृहस्थद्वारे भक्तार्थमेव पानार्थमेव, एवशब्दस्योभयत्र सम्बन्धः = उपसंक्रामन्तं = समीपमायान्तं यान्तं वा श्रमणादिवकं दृष्ट्वेति शेषः । तत्र वनीपकः = याचकविशेषः, अन्यत् सुगमम् । तं = श्रमणादिकम् अतिक्रम्य = उल्लङ्घ्य तस्याग्रतो भूत्वेत्यर्थः गृहस्थगृहं न प्रविशेत् एतावदपि न तेषां चक्षुर्गोचरेऽपि = दृष्टिपथेऽपि न तिष्ठेत् किन्तु स संयत एकान्तं = यत्र तेषां दृष्टिर्न पतेत् तं प्रदेशम् अवक्रम्य = गत्वा तत्र तिष्ठेत् ॥१०॥११॥

पूर्वोक्तविधेरपालने दोषमाह—'वणीमगस्स' इत्यादि ।

'समण' 'इत्यादि, 'तमइ०' श्रमण, ब्राह्मण, कृपण और वनीपकको गृहस्थ के दर्वाजे पर भोजन या पानी के लिए आया देखकर साधु उसे उल्लङ्घन करके गृहस्थके घरमें प्रवेश न करे' इतना ही नहीं, जहाँ उनकी दृष्टि पडती हो ऐसे स्थान पर भी खडे न हो किन्तु एकान्त प्रदेश में जाकर स्थित होवे, जहां उनकी दृष्टि न पहुँचे ॥११॥

ऐसा न करने में दोष कहते है—,वणीमगस्स इत्यादि

स्थना दरवाजा पर भोजन या पाणी ने माटे आवेला जोगने साधु ओमने ओळगीने गृहस्थना घरमा प्रवेश न करे, ओटलुं ज नहि ज्यां ओमनी दृष्टि पडती होय ओवा स्थान पर पण ऊभा न रहे, किन्तु ओकांत प्रदेशमां जईने ऊभा रहे के ज्यां ओमनी दृष्टि पहोंचे नहि. (१०-११)
ओम न करवामां दोष कहे छे—'वणीमगस्स०' ईत्यादि

२ ३ ४ ५ ६ ७
मूलम्-वणीमगस्स वो तस्स, दायगस्सुभयस्स वा ।
८ १ १२ ११ ९ १०
अप्पत्तियं सिया हुज्जा, लहुत्तं पवयणस्स वा ॥१२॥

छाया—वनीपकस्य वा तस्य, दायकस्योभयोर्वा ।
अप्रीतिकं स्याद् भवेत्, लघुत्वं प्रवचनस्य वा ॥१२॥

पूर्वोक्त विधिके अपालन मे दोष बताते हैं—

सान्वयार्थः—(ऐसा न करनेसे) सिया=कदाचित्-शायद तस्स=उस वणीमगस्स=श्रमणादि वनीपक पर्यन्तको वा=अथवा दायगस्स=दाताको वा=या उभयस्स=दोनों-दाता और याचक-को अप्पत्तिय=अप्रीति-द्वेष या मनमें खेद हो जाता है, वा=और पवयणस्स=जिनशासनकी लहुत्त=लघुता हुज्ज=होती है ॥१२॥

टीका—स्यात् कदाचित् वनीपकस्य=याचकविशेषस्य वा=अथवा तस्य=श्रमणादेः, दायकस्य=दातुर्वा, उभयो दातृ-याचकयोर्वा अप्रीतिकं=द्वेषः, मनः-खेदो वा भवेत्, प्रवचनस्य=जिनशासनस्य लघुत्वं=लघुता वा भवेदिति सम्बन्धः ॥१२॥

कदा गन्तव्य ?-मित्याह—'पडिसेहिए' इत्यादि ।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७
मूलम्-पडिसेहिए व दिन्ने वा, तओ तम्मि नियत्तिए ।
१२ ९ १० ११ ८
उवसंकमिज्ज भत्तट्ठा पाणट्ठाए व संजए ॥१३॥

छाया—प्रतिषेधिते वा दत्ते वा, ततस्तस्मिन् निवृत्ते ।
उपसंक्रामेत् भक्तार्थं, पानार्थं वा संयतः ॥१३॥

कब जाना चाहिये, सो बताते हैं—

सान्वयार्थः—पडिसेहिए=दाताके निषेध कर देने पर वा=अथवा दिन्ने=अन्नादिके दिये जाने पर वा=या-दाताके मौन साधने पर तओ=उस स्थानसे तम्मि=उन श्रमणादिकोंके नियत्तिए =चले जाने पर संजए=साधु भत्तट्ठा=आहार व=अथवा पाणट्ठाए=पानीके लिए उवसंकमिज्ज=जावे ॥ १३ ॥

सभव है, उन्हे उल्लङ्घन करके जनेसे या उनके सामने खडे रहने से उस वनीपक या दाताको अथवा दोनोको द्वेष तथा खेद उत्पन्न होजाय । तथा प्रवचनकी लघुता होती है । अतः उन्हें उल्लङ्घन करके जाना साधु कल्प नही है ॥१२॥

कब जाना चाहिए ? सो कहते है–'पडिसेहिए' इत्यादि ।

સભવિત છે તેમને ઓળગીને જવાથી યા એમની સામે ઊભા રહેવાથી એ વનીપક યા દાતાને અથવા બેઉને દ્વેષ તથા ખેદ ઉત્પન્ન થઈ જાય તથા પ્રવચનની લઘુતા થાય છે, એટલે એમને ઓળગીને જવુ એ સાધુનો કલ્પ નથી (૧૨)

ક્યારે જવુ જોઈએ ? તે કહે છે-પડિસેહિપ૦ ઈત્યાદિ.

टीका—प्रतिषेधिते = दात्रा प्रतिषेधं प्राप्ते वा = अथवा दत्ते अन्नादिके, वाशब्दाद्दातुस्तूष्णीभावावलम्बनाद् विलम्बादिनिमित्तवशाद्वा ततः = तत्स्थानात् तस्मिन् = वनीपकादौ निवृत्ते प्रतिनिवृत्ते सति संयतः भक्तार्थं पानार्थं वा उपसंक्रामेत् = भिक्षां ग्रहीतुं गच्छेत् ॥ १३ ॥

मूलम्—उप्पलं पउमं वावि, कुमुयं वा मगदंतियं ।
अन्नं वा पुप्फसच्चित्तं, तं च संलुंचिया दए ॥ १४ ॥
तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं ।
दितियं पडियाइक्खे न मे कप्पइ तारिसं ॥ १५ ॥

छाया—उत्पलं पद्मं वाऽपि, कुमुदं वा मगदन्तिकाम् ।
अन्यद्वा पुष्पसचित्त, तच्च संलुञ्च्य दद्यात् ॥ १४ ॥
तद् भवेद् भक्तपानं तु संयतानामकल्पिकम् ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥ १५ ॥

सान्वयार्थः—उप्पल = नील कमल पउमं = रक्त कमल वावि = अथवा कुमुयं = चन्द्रविकासी कमल वा = या मगदंतिय = मालती-मोगरेके फुलको वा = अथवा अन्नं = दूसरे भी इसी प्रकारके जो पुप्फसचित्तं = सचित्त पुष्प हों तच = उनको भी (अगर) सलुंचिया = लोंच करके दए = देवे तो = तं = वह भत्तपानं तु = आहारपानी संजयाण संयमियोंको अकप्पिय = अकल्पनीय भवे = होता है, अतः दितियं = देनेवाली से पडियाइक्खे = कहे कि तारिसं = इस प्रकारका आहार मे = मुझे न कप्पइ = नहीं कल्पता है ॥१४॥१५॥

टीका—'उप्पलं' इत्यादि 'तं भवे' इत्यादि च । उत्पल = श्यामल-धवल-लोहित-भेदेन त्रिविधं कमलम् , अपिवा पद्मं = सूर्यविकासि कमलं कुमुदं = चन्द्रविकासि कमलं

दाताके वनीपक आदिको दान देनेकी मनाकर देने पर, अथवा अन्न आदिके दे देने पर या मौन साध लेने पर, अथवा विलम्ब होने आदिके कारणसे जब वह वनीपक आदि उस घरसे लौट जाय तब संयमीको भक्त—पानके लिए उस घर में जाना चाहिए ॥१३॥

'उप्पलं' इत्यादि, 'त भवे' इत्यादि । दाता नीला सफेद और लाल कमल, सूर्यविकासी कमल

દાતાએ વનીપક આદિને દાન દેવાની મનાઈ કર્યા પછી અથવા અન્ન આદિ આપી ચૂક્યા પછી યા મૌન સાધી લીધા પછી, અથવા વિલંબ થવો ઇત્યાદિને કારણે જ્યારે એ વનીપક આદિ એ ઘેરથી પાછા ફરે ત્યારે સંયમીએ ભક્ત-પાનને માટે એ ઘરમાં જવું જોઈએ (૧૩)

वा = अथवा मगदन्तिकां = मालतीपुष्पम्, अन्यद्वा पुष्पसचित्तं = पुष्पेषु सचित्त पुष्प-सचित्तं सचित्तपुष्पमात्रमित्यर्थः, तच्च संलुञ्च्य = संछिद्य यदि दात्री भक्त पानं दद्यात्, तर्हि तद् भक्तपानं तु संयतानामग्राह्यं भवेदिति ददतीं प्रत्याचक्षीत–तादृशं = दोषयुक्तं मे = मम न कल्पत इति ॥ १४ ॥ १५ ॥

१ ४ ३ २ ५ ६ ७
मूलम्–उप्पलं पउमं वावि कुमुयं वा मंगदंतियं ।
८ ९ १० ११ १२ १३ १४
अन्नं वा पुप्फसचित्तं तं च संमद्दिया दए ॥ १६ ॥
१५ २० १६ १७ १८ १९
तं भवे भत्तपाणं तु संजयाण अकप्पियं ।
२१ २२ २५ २४ २६ २३
दिंतियं पडियाइक्खे न मे कप्पइ तारिसं ॥ १७ ॥

छाया—उत्पलं पद्मं वाऽपि कुमुदं वा मगदन्तिकाम् ।
अन्यद्वा पुष्पसचित्तं तच्च संमर्द्य दद्यात् ॥ १६ ॥
तद् भवेद् भक्तपानं, तु संयतानामकल्पिकम् ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत न मे कल्पते तादृशम् ॥ १७ ॥

सान्वयार्थः–उप्पलं=नील कमल पउमं=रक्त कमल वावि=अथवा कुमुयं=चन्द्रविकासी कमल वा=या मगदंतियं=मालती-मोगरेके फूलको वा=अथवा अन्नं=दूसरे भी इसी प्रकारके जो पुप्फसचित्तं=सचित्त पुष्प है तंच=उनको भी (अगर) संमद्दिया=पैरों आदिसे कुचलकर दए=देवे तो तं=वह भत्तपाणं तु=आहार-पानी संजयाणं=संयमियों को अकप्पियं=अकल्प्य भवे=होता है, (अतः) दिंतियं=देनेवालोसे पडियाइक्खे=कहे कि तारिसं=इस प्रकारका आहार मे= मुझे न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥१६ ॥ १७ ॥

टीका—'उप्पलं' इत्यादि, 'तं भवे' इत्यादि च । उत्पलादिकं संमर्द्य=करचरणादिना तत्संमर्दनं कृत्वा, अशनादि दद्यात् तद् भक्त-पानं तु संयतानामग्राह्यमित्यादि पूर्ववद्

मालतीका फुल तथा अन्य सचित्त पुष्प तोड कर आहारपानी देवे तो वह सयमियोके लिए ग्राह्य नही है इसलिए देनेवालीसे कहे कि ऐसा दोषयुक्त आहार मुझे नहीं कल्पता है ॥१४॥१५॥

'उप्पल' इत्यादि, 'त भवे' इत्यादि ।

पूर्वोक्त उत्पलादिकोमेंसे किसी सचित्त फूलको मर्दन करके अथवा सघटा मात्र भी

उप्पलं ઈત્યાદિ તથા तं भवे० ઈત્યાદિ જો દાતા, નીલું કમળ યા લાલ કમળ, સૂર્ય-વિકાસી કમળ, ચન્દ્રવિકાસી કમળ, માલતીનું પુષ્પ તથા અન્ય સચિત્ત પુષ્પ તોડીને પછી આહાર પાણી આપે તો તે સંયમીઓને માટે ગ્રાહ્ય નથી તેથી તે આપનારીને સાધુ કહે કે એવો દોષયુક્ત આહાર મને કલ્પતો નથી (૧૪-૧૫)

उप्पलं ઈત્યાદિ, તથા तं भवे० ઈત્યાદિ

પૂર્વોક્ત કમળ આદિમાથી કોઈ સચિત્ત ફૂલનું મર્દન કરીને અથવા માત્ર સંઘટન પણ

व्याख्येयम् । अत्र 'संमर्द्य' शब्देन संमर्दनं यथा कथञ्चित्स्पर्शमात्रमपि गृह्यते, उत्पलादिगतसूक्ष्मजीवानां तावताऽपि पीडोत्पत्तेरवश्यम्भावात् । 'संमद्दमाणी पाणाणि बीयाणी हरियाणी य' इत्यस्यैव प्रथमोद्देशके समस्तवनस्पतीनां ग्रहणेऽपि पुनरत्रोत्पलादीनां ग्रहणं न पुनरुक्तिदोषजनक, पूर्वत्र सामान्यरूपेणाऽत्र च विशेषरूपेणोपादानादिति बोध्यम् १६ १७ ॥

१ २ ३ ४ ५
मूलम्—सालुयं वा विरालियं, कुमुयं उप्पलनालियं ।
६ ७ ८ ९
मुणालियं सासवनालियं, उच्छुखंड अनिव्वुडं ॥ १८ ॥
१७ १९ १८ १० १२ ११
तरुणगं वा पवालं, रुक्खस्स तणगस्स वा ।
१३ १६ १५ १४ २० २१
अन्नस्स वावि हरियस्स, आमगं परिवज्जए ॥ १९ ॥

छाया—शालूकं वा विरालिकां, कुमुदम् उत्पलनालिकाम् ।
मृणालिकां सर्षपनालिकाम्, इक्षुखण्डम् अनिर्वृतम् ॥ १८ ॥
तरुणकं वा प्रवालं, वृक्षस्य तृणकस्य वा ।
अन्यस्य वाऽपि हरितस्य, आमकं परिवर्जयेत् ॥ १९ ॥

सान्वयार्थः— सालुयं=कुमुदादिका मूल विरालियं=पलासका कन्द साधारण वनस्पतिविशेष कुमुयं=चन्द्रविकासी श्वेत कमल उप्पलनालियं=कमलनाल मुणालियं=कमलतन्तु सासवनालियं=सरसोंकी भाजी कान्दव वा=अथवा उच्छुखंड=गन्ने के टुकडे, (ये सब यदि) अनिव्वुड=शस्त्रपरिणत-अचित्त न हों तो, (तथा) रुक्खस्स=इमली आदि वृक्षके वा=अथवा तरुणगस्स=मधुर तृणादिकोंके वा=और अन्नस्सवि=दूसरे प्रकारके भी हरि-

---

करके आहार देवे तो तो देनेवालीसे साधु कहे कि ऐसा आहार लेना मुझे नहीं कल्पता है ॥ यहां 'मर्दन' शब्द से स्पर्शमात्रका भी ग्रहण होता है, क्योंकि कमल आदिके जीवोंको स्पर्श करनेसे भी अवश्य पोडाहोती है । प्रथम उद्देश में ''ससद्दमाणो पाणाणि बीयाणि हरियाणिय' इस पदसे ही सब वनस्पतिकायका ग्रहण कर लिया था, यहाँ फिर उत्पल आदिका ग्रहण किया है यह पुनरुक्ति दोष नहीं समझना चाहिए, यहा विशेष रूपसे निषेध किया है ॥१६॥१७॥

કરીને આહાર આપે તો આપનારીને સાધુ કહે કે એવો આહાર લેવો મને કલ્પતો નથી અહીં 'મર્દન' શબ્દથી સ્પર્શ-માત્રનું પણ ગ્રહણ થાય છે, કારણ કે કમળ આદિના જીવોને સ્પર્શ કરવાથી પણ અવશ્ય પીડા થાય છે પ્રથમ ઉદ્દેશમાં संमद्दमाणी पाणाणि बीयाणि हरियाणि य એ પદથી જ બધી વનસ્પતિકાયનું ગ્રહણ કરવામાં આવ્યું હતું, અહીં ફરીથી કમળ આદિનું ગ્રહણ કર્યું છે, એ પુનરુક્તિ દોષ સમજવો નહિ, કારણ કે પહેલાં સામાન્યરૂપે નિષેધ કર્યો હતો, અને અહીં વિશેષરૂપે નિષેધ કર્યો છે, (૧૬-૧૭)

यस्स=हरित कायके तरुणगं=कोंपल पत्ते आदि वा=अथवा पवालं=कच्ची कोंपल-नहीं खिले हुए पत्ते आदि आमगं=सचित्त हों तो उन्हें परिवज्जए=वरजे नहीं लेवे ॥ १८ ॥ १९ ॥

टीका—'सालुयं' इत्यादि 'तरुणगं इत्यादि च । शालुकं=कुमुदादिमूलं, विरालिकां=पलाशकन्दं साधारणवनस्पतिविशेषं, कुमुदं=चन्द्रविकासिश्वेतकमलम् , उत्पलनालिकां=कमलनाल मृणालिकां=विसं भे इति भाषाप्रसिद्धां सर्षपनिकां=सर्षपपत्र शाकं सर्षपकन्दलीं वा, एत त्सर्वम् अनिर्वृतम्=शस्त्राऽपरिणतम् । तथा वृक्षस्य=अम्लिकादेः वा अथवा तृणकस्य=मधुरतृणादेः, अन्यस्य हरितस्यापि वा हरितकायमात्रस्य तरुणकं =तरुणदशाऽऽपन्नं पत्रादिकं, प्रवालं=सुकुमारं पत्रादिकं वा, आमकं=सचित्त परिवर्जयेत् ॥१८॥१९॥

सूलम्—तरुणियं वा छिवाडिं, आमियं भज्जियं सइं ।
दितियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥ २० ॥

छाया--तरुणिकां वा छिवाडीम् ,आमिकां भर्जितां सकृत् ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥२०॥

सान्वयार्थः-तरुणियं=कच्ची-जिसके बीज पके नहीं हों ऐसी वा=अथवा सइं =एक वार भज्जियं=भुनी हुई आमिय=सचित्तछिवाडिं=फलीकोदितियं=देने-वालीसे (साधु) पडियाइक्खे=कहे कि तारिसं=इस प्रकारका आहार मे=मुझे न कप्पइ=नहीं कल्पता हैं ॥२०॥

टीका--'तरुणियं' इत्यादि । तरुणिकाम्=अपरिपक्ववीजाम् अवरित्यक्तत्वक्संश्लेषावस्थापन्नामित्यर्थः, छिवाडीं='देशीयोऽयं शब्दः मुद्ग चवल तुवरिकादिफलिकां

'सालुयं' इत्यादि, 'तरुणग' । कमलका मूल, पलाश (ढाक) का मूल अर्थात् साधारण वनस्पतिकी जातिविशेष, तथा सफेद कमल, कमल 'नाल' सरसोके पत्तेकीशाक, गन्नोका खण्ड, ये सब यदि शस्त्रसे परिणत न हों तो इनका, तथा-ईमली आदि वृक्षके, मधुर तृण आदिके तथा अन्य हरेक वनस्पतिके पत्ते कोपल आदि जो सचित्त हो तो उनका त्याग करना चाहिए ॥१८॥ १९ ॥

'तरुणियं' इत्यादि । जिसके बीज न पके हो ऐसी मुँग, चवला तुअर, (अरहर) आदि की फली एक वारभूँजी हुई हो तथा सचित हो तो देनेवाली बाईसे साधु कहे कि यह लेना मुझे नहीं कल्पता है ॥२०॥

સાલુયં૦ ઇત્યાદિ, તરુણગ૦ ઇત્યાદિ કમળનુ મૂળ, પલાશનું મૂલ, અર્થાત્ સાધારણ વનસ્પતિની જાતિ વિશેષ, તથા સફેદ કમળ, કમળની નાળ, સરસવનાં પાંદડાનું શાક, શેરડીની કાતળી, એ બધાં જો શસ્ત્રથી પરિણત ન હોય તો એનો તથા આંબલી આદિનાં વૃક્ષના, મધુર તૃણ આદિ જો સચિત્ત હોય તો એનો ત્યાગ કરવો જોઈએ (૧૮) (૧૯)

તરુણિયં ઇત્યાદિ જેનાં બીજ પાકયા ન હોય એવા મગ, ચોળા, તુવેર આદિની સીંગ એકવાર ભૂંજેલી હોય તથા સચિત્ત હોય તો તે આપનારી બાઇને સાધુ કહે કે એ લેવી

सकृद्भर्जिताम् = एकवारं भृष्टां वा = अथवा आमिकां = सचित्तां ददतीं प्रत्याचक्षीत तादृशं मे न कल्पत इति । ॥२०॥

१ ३ २ ५ ६
मूलम्—तहा कोलमणुस्सिन्नं, वेलुयं कासवनालियं ।
७ ८ ४ १०
तिलपप्पडगं नीमं, आमगं परिवज्जए ॥ २१ ॥

छाया—तथा कोलमनुत्स्विन्नं, वेणुकं काश्यपनालिकाम् ।
तिलपर्पटकं नीपम्, आमकं परिवर्जयेत् ॥ २१ ॥

सान्वयार्थः—तहा=उसी प्रकार अणुस्सिन्नं=विना उबाले हुए कोलं=बेर तथा वेलुयं=केर या बांसकी कोंपल कासवनालियं=श्रीपर्णीका फल तिलपप्पडगं=तिलपापड़ी नीमं=कदम्बका फल (ये सब यदि) आमगं=सचित्त हों तो उन्हे परिवज्जए=वर्जे ॥ २१ ॥

टीका—'तहा' इत्यादि । तथा=तद्वत् अनुत्स्विन्न=सलिलानलसंयोगेनाऽनुत्कालितम् – अक्वथितमित्यर्थः, कोलं=बदरीफलम् , आमकम्=अशस्त्रोपहतम् , अस्य वेणुकादौ सर्वत्र सम्बन्धः, वेणुकं=वंशकरीरं वंशाङ्कुरमित्यर्थः, काश्यपनालिकां=श्रीपर्णीफलम् , अत्र 'आमग'–मित्यस्य लिङ्गविपरिणामेनान्वयः । तिलपर्पटकं प्रसिद्धमेव, [१]नीपं=कदम्बफलम् परिवर्जयेत् ॥ २१ ॥

१ २ ३ ६ ४ ५
मूलम्—तहेव चाउलं पिट्ठं, वियडं वा तत्तनिव्वुडं ।
६ ९ ७ ८ १३ ९
तिल पिट्ठं पइ–पिन्नागं, आमगं परिवज्जए ॥ २२ ॥

छाया—तथैव ताण्डुलं पिष्टं, विकटं वा तप्तनिर्वृतम् ।
तिलपिष्टं पूतिपिण्याकम् , आमकं परिवर्जयेत् ॥ २२ ॥

सान्वयार्थः—तहेव=उसी प्रकार चाउलं पिट्ठं=चाँवलोंका आटा तथा और भी किसी तरहका आटा वा=अथवा तत्तनिव्वुड=पहले गर्म किया हुआ किन्तु फिर ठंडा होया हुआ वियडं=पानी तिलपिट्ठं=तिलकुट्टा पूइपिन्नागं = सरसोंकी खल (ये) आमगं = सचित्त हों तो परिवज्जए = वरजे ॥२२॥

'तहा कोल०' इत्यादि । इसी पकार जल और अग्निमें नही उबाले हुए बेर सचित्त बाँसके अंकुर तथा काश्यपनालिका (गंभारीफल) तिलपापडी और कदम्बके फल ये सब यदि सचित्त हों तो इनका त्याग करे–ग्रहण न करे ॥२१॥

મને કલ્પતી નથી

'तहा कोल०' ઈત્યાદિ એ પ્રમાણે જળ અને અગ્નિમા નહિ ઉકાળેલા બોર, સચિત્ત વાંસના અંકુર તથા કાશ્યપનાલિકા (ગવાર ફળી), તલપાપડી અને કદમ્બનાં ફળ જો સચિત્ત હોય તો એનો ત્યાગ કરવો–ગ્રહણ કરવા નહિ, (૨૧)

---

१ 'नीमं' इत्यत्र 'नीपाऽऽपीडेमोवा' (प्र०८।१।२३४) इति प्राकृतसूत्रेण पस्य मः॥

टीका--'तहेव' इत्यादि । तथैव = तेनैव प्रकारेण ताण्डुलं = तण्डुलसम्बन्धि पिष्टं = चूर्णम् , उपलक्षणमेतद्गोधूमादेरपि, वा = अथवा तप्तनिर्वृतं = पूर्वं तप्तं पश्चान्निर्वृतं = शीतलं यत्तत्तथोक्तम् , उष्णोदकं यदा शैत्यापन्नं ततः कालादारभ्य ग्रीष्मे यामपञ्चकादूर्ध्वं शीतकाले यामचतुष्टयात्परं, वर्षाकाले च प्रहरत्रयानन्तरं सचित्तं जायते । अत्रेयं सङ्ग्रहगाथा–

"जम्मि समयम्मि उण्हो,–दगं च सीय भवे तओ पच्छा ।
पंच-चउ-त्तिय-जामा, गिम्हे हेमंत-पाऊसे ॥ १ ॥" इति ॥

छाया-" यस्मिन् समये उष्णोदकं च शीतं भवेत्ततः पश्चात् ।
पञ्चचतुस्त्रिकयामाः, ग्रीष्मे हेमन्त-प्रावृषोः ॥ १ ॥

विकटं = समयपरिभाषया सलिलं, तिलपिष्टं = तिलकुट्टं प्रसिद्धं, पूतिपिण्याकं = सर्षपकल्कम् आमकं = सचित्तं परिवर्जयेत् ॥ २२ ॥

मूलम्–कविट्ठं[1] माउलिंगं[2] च, मूलगं[3] मूलगत्तियं[4] ।
आमं[6] असत्थपरिणयं[7], मणसावि[8] न[9] पत्थए[10] ॥ २३ ॥

छाया—कपित्थं मातुलिङ्गं च, मूलकं मूलकर्तिकाम् ।
आमम् अशस्त्रपरिणतं, मनसाऽपि न प्रार्थयेत् ॥ २३ ॥

सान्वयार्थः– कविट्ठं = कैथ-कविठ माउलिंगं = बिजौरा मूलगं = मूला च = और मूलगत्तिय = मूलेके कन्दका टुकडा आमं = कच्चा असत्थपरिणयं = स्वकाय परकाय आदि शस्त्रसे परिणत न हुआ हो तो उसे मणसावि = मनसे भी न पत्थए = न चाहे ॥ २३ ॥

'तहेव' इत्यादि । इसी प्रकार तत्कालका पीसा हुआ चाँवल गेहुँ आदिका आटा तथा पहले अचित्त होने पर भी कालकी मर्यादा व्यतीत होने पर पुनः सचित्त हुआ जल, तुरतका बना हुआ तिलकुट, तत्काल की सरसो आदिकी खली इन सचित्त वस्तुओको ग्रहण न करे । गर्म पानीके अचित्त रहनेकी मर्यादा– ठंडा होजाने पर ग्रीष्म ऋतुमे पाच पहर, शीतकालमें चार पहर और वर्षाकालमें तिन पहरकी होती है उसके बाद वह (जल) सचित्त होजाता है । इस विषयमें एक सग्रह गाथा है जो सस्कृत-टीकामें लिखी गई है ॥२२॥

'कविट्ठ' इत्यादि । कैथ (कविठ) बिजौरा नींबू मूला और मूलेके खण्ड यदि अचित्त–शस्त्र-

---

તહેવ૦ ઈત્યાદિ. એ જ પ્રમાણે તત્કાળનો દળેલો ચોખા ઘઉ આદિનો આટો, તથા પહેલાં અચિત્ત હોવા છતા પણ કાળની મર્યાદા વ્યતીત થતાં પુનઃ સચિત્ત થએલું જળ, તુરતનો બનાવેલો તલકુટ, તુરતની સરસવ આદિનો ખોળ એ સચિત્ત વસ્તુઓને પણ ગ્રહણ ન કરે ગરમ પાણી અચિત્ત રહેવાની મર્યાદા ઠંડુ થઈ ગયા પછી ગ્રીષ્મ ઋતુમાં પાંચ પહોર, શીયાળામાં ચાર પહોર અને વર્ષાઋતુમા ત્રણ પહોરની હોય છે, ત્યારબાદ એ જળ સચિત્ત બની જાય છે એ વિષયમા એક સગ્રહગાથા છે તે સસ્કૃત ટીકામાં લખી છે. (૨૨)

टीका--'कविट्ठं' इत्यादि । कपित्थं 'कैथ कविठ' इति भाषायां, मातुलिङ्गं = बीजपूरकं 'बिजौरा नींबू' इति भाषायां, मूलकं = सपत्रं, मूलकर्तिकां = मूलककन्दखण्डं, आमम् = अपक्वम् , अशस्त्रपरिणतम् = अलब्धस्वपरकायादिशस्त्रयोगं मनसाऽपि न प्रार्थयेत्- एतद्विषयिणीमिच्छामपि न कुर्यादित्यर्थः । 'आमम्' इत्यस्य 'अशस्त्रपरिणतम्' इत्यस्य च लिङ्गविपरिणामेन 'मूलकर्त्तिका'-मित्यत्र सम्बन्धः । मूलकस्याऽनन्तकायत्वात् शस्त्रपरिणतिर्दुष्करेति बोधयितुमेकार्थकस्याऽऽमादिशब्दद्वयस्योपादानम् ॥ २३ ॥

मूलम्-तहेव फलमंथूणि, बीयमंथूणि जाणिय ।
विहेलगं पियालं च, आमगं परिवज्जए ॥२४॥

छाया--तथैव फलमन्थून् बीजमन्थून् ज्ञात्वा ।
विभीतकं प्रियाल च, आमकं परिवर्जयेत् ॥ २५ ॥

सान्वयार्थः-तहेव=इसी प्रकार फलमंथूणि=बेर आदि फलोंका चूर्ण-चूरा बीयमंथूणि = शालि आदि बीजोंका चूर्ण-चूरा विहेलगं=बहेडा च=और पियालं=रायण अथवा दाख (इन्हें) आमगं=सचित्त जाणिय=जानकर=जाने तो परिवज्जए=वरजे-न ले ॥२४॥

टीका--'तहेव फल०' इत्यादि । तथैव=तद्वत् फलमन्थून्=बदरादिचूर्णान् , बीजमन्थून्=फलबीजचूर्णान् , विभीतकं 'बहेडा' इति प्रसिद्धं, च= पुनः पियालं=राजादनफल 'रायण' इति भाषाप्रसिद्धम् । यद्वा 'प्रियाला'-मिति च्छाया, प्रियालां=द्राक्षाम् , आमकं=सचित्तं ज्ञात्वा परिवर्जयेत्, सचित्तं चेन्न गृह्णीयादित्यर्थः । यद्वा 'जाणिय' इत्यस्य 'याँश्चे'-ति च्छाया; याँश्च बीजमन्थूनित्यन्वयः ॥ २४ ॥

मूलम्-समुयाणं चरे भिक्खू, कुलं उच्चावयं सया ।
नीयं कुलमइक्कम्म. ऊसढं नाभिधारए ॥ २५॥

परिणत न हों तो इन्हे ग्रहण करने की इच्छा भी नहीं करनी चाहिए । मूला अनन्तकाय है, अत उसका शस्त्रपरिणत होना कठिन है इसीसे यहां एक अर्थवाले आमक, और अशस्त्रपरिणत ये दो शब्द दिये है ॥२३ ॥

'तहेव फल०' इत्यादि । इसीप्रकार कच्चे बेर आदिका चूरा तथा कच्चे फलके बीजोंका चुरा तथा रायण अथवा दाख ये सचित्त हो तो ग्रहण न करे ॥२४ ॥

'कविट्ठं'—ઈત્યાદિ કોઠું, બીજોરા-લીંબુ, મૂળા અને મૂળાના કકડા જો અચિત્ત-શસ્ત્ર-પરિણત ન હોય તો તે ગ્રહણ કરવાની ઈચ્છા પણ ન કરવી જોઈએ મૂળો અનંતકાય છે એટલે એ શસ્ત્રપરિણત થવો કઠિન છે, તેથી અહીં એક અર્થવાળા 'આમક' અને 'અશસ્ત્ર-પરિણત' એવા બે શબ્દો આપેલાં છે (૨૩)

'तहेव फल०' ઈત્યાદિ. એ પ્રકારે બોર આદિનું ચૂર્ણ, ફળનાં બીજોનું ચૂર્ણ, તથા બહેડાં, રાયણ અથવા દ્રાક્ષ એ સચિત્ત હોય તો ગ્રહણ કરવા નહિ. (૨૪)

छाया—समुदानं चरेद् भिक्षुः, कुलमुच्चावचं सदा ।
नीचं कुलमतिक्रम्य, उच्छ्रितं नाभिधारयेत् ॥२५॥

सान्वयार्थः—भिक्खू=साधुको सया=हमेशा उच्चावयं=ऊँच-नीच अर्थात् धनवान् और गरीब कुलं=कुल-घर-में समुयाणं=शुद्ध भिक्षाका अनुसन्धान-पूर्वक चरे=घूमना चाहिए, (किन्तु) नीयं=गरीब कुलं=कुल-घर को अइक्कम्म=छोड़कर ऊसढं=धनवान्के घर-पर नाभिधारए=नहीं जाना चाहिए ॥२५॥

टीका—'समुयाणं' इत्यादि । भिक्षुः सदा=नित्यम् उच्चावयम्=उदक्=उच्चं धनधान्यादिसमृद्धम्, अवाक्=अवचं=तद्विकलं कुलं प्रति समुदानं गृहस्थसमुदायसम्बन्धि भैक्ष्यं, न त्वेकस्मिन्नेव गृहे तत्राऽऽधाकर्मादिदोषसम्भवादिति भावः, चरेत् गच्छेत् । नीच=विभवविधुरं कुलम् अतिक्रम्य=उल्लङ्घ्य परित्यज्येति यावत्, उच्छ्रितं=समृद्धं कुलं नाभिधारयेत्=न गच्छेत् प्रचुरसरसभक्तपानादिलिप्सया निर्धनं विहाय विभवसंपन्नं सदनं नाभिगच्छेत्, किन्तु उभयत्रापि यायादिति भावः । 'समुयाणं' इति-पदेनाऽनेकगृहतः स्वल्प-ग्रहणाद् भिक्षाया निर्दोषता सूचिता । 'उच्चावयं' इति-पदेन समभावो व्यक्तीकृतः । 'नीयं कुलं' इत्युत्तरार्द्धेन रसलोलुपतापरित्याग आविष्कृत इति ॥ २५ ॥

मूलम्—अदीणो[6] वित्तिमेसिज्जा[7], न[8] विसीएज्ज[9] पंडिए[10][1] ।
अमुच्छिओ[3] भोयणम्मि[2], मायन्ने[4] एसणारए[5] ॥२६॥

'समुयाण' इत्यादि । भिक्षु सदा धन-धान्य आदिसे समृद्ध कुलोंमे तथा धन-धान्यहीन कुलोंमें समुदानी भिक्षाके लिए गमन करें । एकही घर से भिक्षा न लें क्योंकि आधाकर्म आदि दोष लगनेकी सभावना है । निर्धन कुलको छोड़कर सरस भक्त—पानकी लालसासे सम्पत्तिशाली कुलमें भिक्षाके लिए नहीं जाना चाहिए ।

'समुयाणं' पदसे यह सूचित किया है कि अनेक कुलोंसे थोड़ी-थोडी भिक्षा लेनेसेही भिक्षाकी निर्दोषता होती है । उच्चावयं, पदसे समभाव सूचित किया है । 'नीयं कुलं इत्यादि उत्तरार्द्धसे रसलोलुपताका त्याग व्यक्त किया है ॥२५ ॥

'समुयाणं०' ઈત્યાદિ. ભિક્ષુ સદા ધન-ધાન્ય આદિથી સમૃદ્ધ કુળોમાં તથા ધન-ધાન્યથી હીન કુળોમા સમુદાની ભિક્ષાને માટે ગમન કરે એક જ ઘેરથી ભિક્ષા ન લે. કારણ કે આધાકર્મ આદિ દોષ લાગવાનો સંભવ છે નિર્ધન કુળને છોડીને સરસ ભક્ત-પાનની લાલસાથી સંપત્તિશાળી કુળમાં ભિક્ષાને માટે જવું ન જોઈએ.

'समुयाण' પદથી એમ સૂચિત કરવામાં આવ્યું છે કે અનેક કુળોમાંથી થોથી-થોડી ભિક્ષા લેવાથી જ ભિક્ષાની નિર્દોષતા જળવાય છે. उच्चावयं શબ્દથી સમભાવ સૂચિત કર્યો છે 'नीयं कुलं' ઇત્યાદિ ઉત્તરાર્ધથી રસ-લોલુપતાનો ત્યાગ વ્યક્ત કર્યો છે. (૨૫)

छाया-अदीनः वृत्तिमेषयेत् , न विषीदेत् पण्डितः ।
अमूर्च्छितो भोजने, मात्राज्ञ एषणारतः ॥ २६ ॥

सान्वयार्थः- पंडिए = बुद्धिमान् साधु भोयणम्मि=भोजनमें अमुच्छिओ = गृद्धि-लोलुपता-रहित मायन्ने = आहार-पानीकी मात्राको जाननेवाला एसणारए = आहारकी शुद्धिमें तत्पर अदीणो=दीनता नहीं दिखलाता हुआ वित्तिं = भिक्षागोचरी-की एसिज्जा = गवेषणा करे, (किन्तु भिक्षा न मिलने पर) न विसीएज्ज = खेद न करे ॥ २६ ॥

टीका-'अदीणो' इत्यादि । पण्डितः=सकलभिक्षादोषज्ञः साधुः भोजने=आहारे अमूर्च्छितः=अगृध्नुः मात्राज्ञः=मात्रां=भक्तपानेन स्वकीयोदरपूर्त्तिप्रमाणं क्षुन्निमित्तकवैक-ल्यप्रशमनैकसाधनप्रमाणं वा जानातीति मात्राज्ञः, प्रमाणाधिकभोजनेन प्रमादादिदोषोद्भ-वस्य संभवेन साधूनामाहारप्रमाणमवश्यं विधेयमिति । एषणारतः=उद्गमादिदूषणव्यतिरि-च्यमानगवेषणपरायणः , अदीनः=दैन्यरहितः सन् वृत्तिं-भिक्षालक्षणाम् एषयेत्=अन्वेष-येत्, अलाभे सति न विषीदेत् = न खिद्येत् । 'अदीणो' इति-पदेन स्वदैन्याऽऽविष्करणे-नाऽऽत्मनोऽधःपतनं शासनलघुता च प्रसज्यते, इति व्यज्यते । 'न विसीएज्ज' अनेन भिक्षाया अलाभेऽपि स्वात्मप्रसन्नतां न परित्यजेदिति द्योतितम् । 'पंडिए' इत्यनेन सर्वथापरिशुद्ध भिक्षाग्रहणयोग्यताऽऽवेदिता । 'अमुच्छिओ' इतिपदेनाऽऽहारादिलोलुपता

'अदीणो' इत्यादि । भिक्षाके समस्त दोषोंका ज्ञाता मुनि आहारमें मूर्च्छा न रखें और आहार के परिमाणका ख्याल रखें जितने आहारसे क्षुधावेदनीय उपशान्त होजाय वही आहारका परि-माण है ऊससे अधिक आहार करनेसे प्रमाद आदि दोष उत्पन्न होते है इसलिए साधुओं को आहारका परिमाण अवश्य करना चहिए । साधु उद्गम आदि दोषों को न लगाते हुए दीनताका त्याग करके भिक्षाकी गवेषणा करे और भिक्षाका लाभ न हो तो खेद न करे

'अदीणो' पदसे यह प्रगट होता है कि दीनता दिखानेसे आत्माका अधःपतन और जिनशा-सनकी लधुता होती है । 'न विसीएज्ज, पदसे यह सूचित किया है कि आहार-लाभ न हो तो भी आत्मिक प्रसन्नताका परित्याग न करना चाहिए । 'पंडिए' पदसे सर्वथाशुद्ध भिक्षा ग्रहण

अदीणो० ઇત્યાદિ ભિક્ષાના બધા દોષોનો જ્ઞાતા મુનિ આહારમાં મૂર્ચ્છા ન રાખે અને આહારના પરિમાણનો ખ્યાલ રાખે જેટલા આહારથી ક્ષુધા વેદનીય ઉપશાન્ત થઇ જાય તે જ આહારનું પરિમાણ છે એથી વધારે આહાર કરવાથી પ્રમાદ આદિ દોષ ઉત્પન્ન થાય છે, તેથી સાધુઓએ આહારનું પરિમાણ અવશ્ય કરવું જોઇએ સાધુ ઉદ્ગમ આદિ દોષો ન લાગવા દેતા દીનતાનો ત્યાગ કરીને ભિક્ષાની ગવેષણા કરે, અને ભિક્ષાનો લાભ ન થાય તો તેથી ખેદ ન કરે

'अदीणो' શબ્દથી એમ પ્રકટ થાય છે કે દીનતા બતાવવાથી આત્માનું અધઃપતન અને જિનશાસનની લઘુતા થાય છે न विसीएज्ज શબ્દથી એમ સૂચિત કર્યું છે કે આહારલાભ ન થાય તો પણ આત્મિક પ્રસન્નતાનો પરિત્યાગ ન કરવો જોઇએ पंडिए શબ્દથી સર્વથા

निराकृता। 'मायन्ने' इत्यनेन निर्दोषसरसभक्तपानादौ प्राचुर्येण दीयमानेऽपि प्रमाणाधिकं न ग्राह्यमिति स्पष्टीकृतम्। 'एसणारए' इति-पदेनाऽऽधाकर्मादिसकलभिक्षादोषानुसन्धानेनैव विशुद्धभिक्षाग्रहणं भवितुमर्हतीत्याविष्कृतम् ॥२६॥

५ १ ६ २ ३ ४
मूलम्—बहुं परघरे अत्थि विविहं खाइमसाइमं।
१४ १२ १३ १५ ७ ९ ८ १० ११
न तत्थ पंडिओ कुप्प, इच्छा देज्ज परो न वा ॥२७॥

छाया—बहु परगृहे अस्ति विविधं खाद्यं स्वाद्यम्।
न तत्र पण्डितः कुप्येत्, इच्छा दद्यात् परो न वा ॥२७॥

सान्वयार्थः—परघरे=गृहस्थके घरमें विविहं=नाना प्रकारका खाइमं=दाख पिस्ता बादाम आदि खाद्य साइमं=एलची लूंग आदि स्वाद्य बहुं=बहुत अत्थि=हैं, (किन्तु) इच्छा=इच्छा-मरजी-है कि परो=गृहस्थ देज्ज—देवे वा=अथवा=न=न देवे। नहीं देने पर तत्थ=उस गृहस्थ पर पंडिओ=बुद्धिमान् साधु न कुप्पे=कुपित न होवे ॥२७॥

टीका—'बहुं' इत्यादि। परगृहे=गृहस्थभवने विविधं=नैकप्रकारं खाद्यं=द्राक्षा-पिस्तावादामादिकं, स्वाद्यम्=एलालवङ्गादिकम् बहु=प्रभूतमस्ति, किन्तु इच्छा चेत् परः=गृहस्थः दद्यात् न वा दद्यात्, तत्र=दातरि, यद्वा तत्र=खाद्ये स्वाद्ये तु अदीयमाने सति न कुप्येत्=न क्रुध्येत्—'कीदृशोऽयमविवेकी ? प्रचुरेऽपि बहुविधखाद्यादिके विद्य-

---

करनेकी योग्यता व्यक्त होती है। अमुच्छिओ, पदसे आहार आदिकी लोलुपताका त्याग ध्वनित होता है मायन्ने पदसे यह सूचित किया है कि निर्दोष और सरस आहार अधिक प्राप्त हो रहा हो तो भी प्रमाणसे अधिक नहीं ग्रहण करना चहिए। एसणारए पदसे यह ध्वनित किया है कि आधाकर्म आदि भिक्षाके समस्त दोषो का अनुसन्धान करने से ही विशुद्ध भिक्षाका ग्रहण होना सभव है ॥२६॥

'बहु' इत्यादि। गृहस्थके घरमे भाँति-भाँतिके खाद्य और भाँति—भाँतिके स्वाद्य विद्यमान रहते है, उसकि इच्छा हो तो देवे न हो तो न देवे। यदि न दे तो साधुको ऐसा क्रोध न करना चाहिए कि,—यह कैसा अविवेकी है कि इतना बहुत खाद्य स्वाद्य मौजूद होनेपर भी साधुको नहीं

શુદ્ધ ભિક્ષા ગ્રહણ કરવાની યોગ્યતા વ્યક્ત થાય છે અમુચ્છિઓ શબ્દથી આહાર આદિની લોલુપતાનો ત્યાગ ધ્વનિત થાય છે માયન્ને શબ્દથી એજ સૂચિત કરવામા આવ્યું છે કે નિર્દોષ અને સરસ આહાર વધારે પ્રાપ્ત થઈ રહ્યો હોય તો પણ પ્રમાણથી વધારે ગ્રહણ ન કરવો જોઇએ એસણારએ શબ્દથી એમ સૂચિત કરવામાં આવ્યું છે કે આધાકર્મ આદિ ભિક્ષાના બધા દોષોનું અનુસંધાન કરવાથી જ વિશુદ્ધ ભિક્ષાનું ગ્રહણ સંભવિત છે (૨૬)

'બહુ૦' ઇત્યાદિ ગૃસ્થના ઘરમાં તરેહ તરેહના ખાદ્ય અને ભાત ભાતનાં સ્વાદ્ય વિદ્યમાન હોય છે, તે તેની ઇચ્છા હોય તો આપે અને ન હોય તો ન આપે જો ન આપે તો સાધુએ એવો ક્રોધ ન કરવો જોઇએ કે, 'આ કેવો અવિવેકી છે કે 'આટલાં બધાં ખાદ્ય-સ્વાદ્ય

माने साधवे न ददातीति क्रोधावेशदूषितान्तःकरणो न भवेत्। अत्र 'पंडिए' इति-पदेन सदसद्विवेकशालित्वं, तेन च मनोविजयित्वमावेदितम् ॥२७॥

एतदेव प्रपञ्च्यते–'सयणा०' इत्यादि ।

२ ३ ४ ५ ६ १
मूलम्–सयणासणवत्थं वा, भत्तं पाणं व संजए ।
७ ११ १२ ८ ९ १०
अदितस्स न कुप्पेज्जा, पच्चक्खेवि य दीसउ ॥२८॥

छाया—शयनासनवस्त्रं वा, भक्तं पानं वा संयतः ।
अददतो न कुप्येत्, प्रत्यक्षेऽपि च दृश्यमाने ॥२८॥

पूर्वोक्त विषय को ही विशद करते हुए कहते हैं—

सान्वयार्थः–सयणासणवत्थं–शयन-वसति, आसन-पाटलादिक, वस्त्र-चादर आदि वा=अथवा भत्तं=आहार व=तथा पाणं=पानी आदि किसी भी वस्तुके पच्चक्खेवि य=प्रत्यक्ष-सामने पड़ी दीसउ=दीखने पर भी अदितस्स=नहीं देते हुए गृहस्थ पर संजए=साधु न कुप्पेज्जा=कोप न करे, (क्योंकि)–"इच्छा देज्ज परो न वा" देवे न देवे गृहस्थकी मरजी है, ऐसा गाथासे संबंध है ॥२८॥

टीका—संयतः शयनासनवस्त्रं=शयनं च आसनं च वस्त्रं चेत्येषां समाहारः, तत्र शय्यतेस्मिन्निति शयनं वसतिः, आस्यते=उपविश्यतेऽस्मिन्निति-आसनं=पीठफलकादिकं, वस्यते=आच्छाद्यते शरीरमनेनेति वस्त्रं=शाटकादिकं, भक्तं=भोज्यं, पानं=पेयम् अददतः=अप्रयच्छतः, (अत्र सम्बन्धसामान्ये षष्ठी,) प्रत्यक्षेऽपि दृश्यमाने शयनादौ न कुप्येत्=कोपावेशेन चित्तविकृतिं न कुर्यादिति सूत्रार्थः ॥२८॥

१ ४ ३ २ ५ ६ ७
मूलम्–इत्थियं पुरिसं वावि, डहरं वा महल्लगं ।
८ ९ १० १४ १२ ११ १३ १५
वंदमाणं न जाएज्जा, नो अ णं फरुसं वए ॥२९॥

देता यहाँ 'पंडिए' पदसे सत् और असत्का विवेक प्रगट किया है और उससे मनको जितना सूचित किया है ॥२७॥

इसीका विस्तार पूर्वक कथन करते हैं 'सयणा०' इत्यादि

यदि कोई गृहस्थ शय्या, आसन, वस्त्र, भक्त या पान सामने दिखाई देनेपर भी साधुको न दे तो भी साधु क्रोध न करे ॥२८ ॥

હાજર હોવા છતાં પણ સાધુને આપતો નથી.' અહીં પંડિએ શબ્દથી સત્ અને અસતનો વિવેક કર્યો છે, અને તેથી મનને જીતવાનું સૂચિત કર્યું છે. (૨૭)

એનું વિસ્તારપૂર્વક કથનકરે છે–સયણા૦ ઇત્યાદિ

જે કોઈ ગૃહસ્થ શય્યા, આસન, વસ્ત્ર, ભક્ત યા પાન સામે દેખાતાં હોવા છતા પણ સાધુને ન આપે તો પણ સાધુ ક્રોધ ન કરે. (૨૮)

छाया स्त्रियं पुरुषं वाऽपि, डहरं वा महान्तम् ।
वन्दमानं न याचेत, नो च तं परुषं वदेत् ॥२९॥

सान्वयार्थः-इत्थियं=स्त्री वावि=अथवा पुरिसं=पुरुष डहरं=छोटा बालक वा=या महल्लगं=बडा-जुवान या बुड्ढा हो वंदमाणं=वन्दना करते हुएको न जाएज्जा=न जाँचे-उससे भिक्षाके लिए याचना न करे, (और दूसरे समय याचना करने पर यदि किसी कारण वश वह भिक्षा न दे तो) णं=उस गृहस्थके प्रति साधु फरुसं=कठोर वचन नो य=नहीं वए=बोले ॥२९॥

टीका—'इत्थियं' इत्यादि । स्त्रियम् अपिवा पुरुषं डहरं=बालकं, 'देशीयोऽयं शब्दः' जन्मतः पञ्चदशवर्ष यावत्, वा=अथवा महान्तं=तरुणं स्थविरं वा वन्दमानं=वन्दनां कुर्वन्तं न याचेत=न-भिक्षेत । वन्दनप्रवृत्तस्य गृहस्थस्य याचनायां चित्तविक्षेपादिना वन्दनान्तरायः, चित्तवैरस्य प्रसङ्गश्च-'कीदृशोऽयं कुक्षिम्भरिः साधुर्यद्वन्दनसमयेऽपि न धैर्यं दधाति. भिक्षायामेव दत्तचित्तो रङ्कव'-दित्यादि । अन्यदा याचितेऽपि भक्तपानाद्यभावाददाने तं च गृहस्थं परुषं=निष्ठुरवाक्यं न वदेत् मुनिरिति शेषः । यथा व्यर्थैव त्वद्वन्दनचेष्टा, नालं साधुतोपाय, केवलं किंशुककुसुमवद्बाह्यरमणीयतामात्रमाकलयसी'-त्यादि॥२९॥

मूलम्—जे[1] न[2] वंदे[3] न[5] से[4] कुप्पे[6], वंदिओ[7] न[8] समुक्कसे[9] ।
एवमन्नेसमाणस्स[10], सामन्नमणुचिट्ठई[11][12][13] ॥३०॥

'इत्थिय' इत्यादि । स्त्री, बालक, युवक (जुवान) या वृद्ध, वन्दना कर रहा हो तो उस समय भिक्षाकी याचना नहीं करनी चाहिए । कोई वन्दना कर रहा हो और उससे याचना करे तो वन्दनामें अन्तराय पडती है, और गृहस्थके मनमें ऐसा विचार आता है कि-देखो यह साधु कैसा पेटु (पेट भर) है कि वन्दना करते समय भी धीरज नहीं धरता, रंककी तरह केवल भिक्षाकी चिन्ता कर रहा है अन्य समय याचना करने पर भी यदि गृहस्थ भिक्षा न दे तो कठोर वचन न बोले कि—बस रहने दे, तेरी वन्दना वृथा है इससे साधुओंको सन्तोष नहीं हो सकता, तू टेसू (पलाश केसूडा) के फूलकी नाई दिखावटी रमणीयता है (नम्रता) धारण करता है इत्यादि ॥२९॥

इत्थियं० ઇત્યાદિ સ્ત્રી, બાળક, જુવાન યા વૃદ્ધ વંદના કરી રહ્યાં હોય તો તે વખતે તેમની પાસે ભિક્ષાની યાચના કરવી ન જોઈએ. કોઈ વંદના કરી રહ્યાં હોય અને તેમની પાસે યાચના કરવામાં આવે તો વંદનામા અંતરાય પડે છે, અને ગૃહસ્થના મનમાં એવો વિચાર આવે છે કે 'જુઓ, આ સાધુ કેવો પેટ ભરો છે કે વંદના કરતી વખતે પણ ધીરજ ધરતો નથી, રંકની પેઠે કેવળ ભિક્ષાની ચિંતા કરી રહ્યો છે' બીજા સમયે યાચના કરતાં પણ જો ગૃહસ્થ ભિક્ષા ન આપે તો સાધુ કઠોર વચન ન બોલે કે 'બસ, રહેવા દો, તારી વંદના વૃથા છે, તેથી સાધુઓને સંતોષ નથી થઈ શકતો; તું કેસૂડાંના ફૂલની પેઠે દેખાડવાની રમણીયતા (નમ્રતા) ધારણ કરનારો છે,' ઈત્યાદિ (૨૯)

छाया—यो न वन्दते न तस्य कुप्येत्, वन्दितो न समुत्कर्षयेत् ।
एवमन्वेषमाणस्य, श्रामण्यमनुतिष्ठति ॥३०॥

सान्वयार्थः—जे=जो गृहस्थ न वंदे=साधुको वन्दना न करे तो से=उस पर न कुप्पे=क्रोध न करे (और) वंदिओ=वन्दना किया हुआ न समुक्कसे=गर्वित न होवे–घमंड न करे । एवं=इस प्रकार अन्नेसमाणस्स=जिनशासनकी आराधना करनेवालेके सामन्नं=साधुपना-चारित्र अणुचिट्ठइ=आराधित स्थिर–होता है, अर्थात् मान अपमानमें समान रहनेवाले मुनिको ही सम्यक् प्रकारसे चारित्रकी आराधना होती है ॥३०॥

टीका—'जे' इत्यादि । यो गृहस्थः साधुं न वन्दते से=तस्य अवन्दमानस्य न कुप्येत्=कीदृगयं विवेकविकलः, यन्मामुपस्थितं साधुमवमन्यते' इति कृत्वा कोपावेशेन मनो विकृतं न विदध्यात् । वन्दितः=सार्वभौमादिनाऽपि नमस्कृतश्च न समुत्कर्षयेत् आत्मनामिति शेषः, 'अहमेतादृशो माननीयो जगति, यदेवंविधा नरेन्द्रादयोऽपि मम चरणौ प्रणमन्ती'–त्याद्यभिमानं न कुर्यादित्यर्थः । एवम्=उक्तप्रकारेण अन्वेषमाणस्य=जिनशासनमनुतिष्ठतः साधोः श्रामण्यं=साधुत्वं चारित्रमिति यावत् अनुतिष्ठति=स्थिरीभवति, मानापमानसमानमानसस्यैव साधोर्निरतिचारचारित्रं सम्पद्यत इति भावः ॥३०॥

स्वपक्षे चौर्यं निषेधयति–'सिया' इत्यादि ।

मूलम्–सिया एगइओ लद्धुं विणिगूहई ।
मामेयं थाइयं संतं, दट्ठूणं सयमायए ॥३१॥

छाया—स्यात् एककः लब्ध्वा, लोभेन विनिगूहते ।
ममेदं दर्शितं सद्, दृष्ट्वा स्वयमाददीत ॥३१॥

'जे' इत्यादि कोई वन्दना न करे तो उसे उसपर कुपित न होना चाहिए कि–यह कैसा अविवेकी है कि सामने उपस्थित साधुका अनादर करता है ?, तथा चक्रवर्ती आदि राजा–महाराजा भी वन्दना करें तो आत्मप्रशंसा (घमंड) न करे की–मैं ससारमें ऐसा माननीय हूं कि ऐसे राजा महाराजा भी मेरे चरणो मे गिरते है इस प्रकार जिन-शासनमें स्थित साधुका चारित्र स्थिर (दृढ) रहता है, अर्थात् सत्कार और तिरस्कार होने पर अन्तःकरणमें विकार न करनेवाले अनगारका आचार निरतिचार पलता है ॥३०॥

જે૦ ઇત્યાદિ કોઈ સાધુને વંદના ન કરે તો સાધુએ તેના પર કુપિત ન થવું જોઇએ કે 'આ કેવો અવિવેકી છે કે સામે ઊભેલા સાધુનો અનાદર કરે છે ?' તથા ચક્રવર્તી આદિ રાજા-મહારાજા પણ વંદના કરે તો આત્મપ્રશંસા (ઘમંડ) ન કરે કે હું જગતમાં એવો માનનીય છું કે એવા રાજા મહારાજા પણ મારા ચરણોમા પડે છે.' એ રીતે જિનશાસનમાં સ્થિત એવા સાધુનું ચારિત્ર સ્થિર (દૃઢ) રહે છે, અર્થાત્ સત્કાર અને તિરસ્કાર થતા પણ અંતઃકરણમાં વિકાર ન કરનારા અનગારનો આચાર નિરતિચાર પણે પલે છે. (૩૦)

अब स्वपक्ष–साधुपक्ष में चोरी का निषेध बताते है—

सान्वयार्थः—सिया=कदाचित्-अगर एगइओ=जघन्यप्रकृतिवाला अकेला गोचरी गया हुआ साधु लद्धुं=सरस अशनादि पाकर लोभेण=खानेके लोभसे (उसे) विणिगूहइ=छिपा लेवे–नीरस वस्तुको ऊपर रखकर सरस वस्तुको उसके नीचे दवा रखे, क्योंकि मम=मेरी दाइयं संतं=दिखलाई हुई एयं=इस वस्तुको दट्ठूणं=सरस देखकर सय=स्वयं–आचार्य आदि खुद आयए=लेलेगे अर्थात् मुझे नहीं देंगे या थोड़ी देगे ॥३१॥

टीका—स्यात् = कदाचित् एककः = कश्चिज्जघन्यप्रकृतिः साधुः लब्ध्वा = प्राप्य आहारादिकमिति शेषः लोभेन = उत्कृष्टसरसवस्तुलिप्सया विनिगूहते = संवृणुते-नीरसवस्तुजातमुपरि कृत्वोत्कृष्टरसवद्वस्तु समपह्नुते। अपह्नवे हेतुमाह- ममेदमुत्कृष्टं वस्तु 'दाइयं' = दर्शितं सत् दृष्ट्वा आचार्यादिः स्वयमेवाऽऽददीत = गृह्णीयात्, न मह्य दास्यति अल्पं वा दास्यतीति भावः ॥३१॥

अपह्नवकरणस्य दोषमाह–'अत्तट्ठा' इत्यादि।

मूलम्–अत्तट्ठागुरुओ[1] लुद्धो[2], बहु[3] पावं[4] पकुव्वइ[5]।
दुत्तोसओ[8] य[7] से[6] होइ[9], निव्वाणं[10] च[11] न[12] गच्छइ[13] ॥३२॥

छाया- –आत्मार्थगुरुको लुब्धः, बहुपापं प्रकुरुते।
दुस्तोपकश्च स भवति, निर्वाणं च न गच्छति ॥३२॥

पूर्वोक्त आचरण करनेवाले साधु की क्या दशा होती है? सो बताते हैं—

सान्वयार्थः—अत्तट्ठागुरुओ = अपने स्वार्थ साधनमें लगा हुआ लुद्धो = जिह्वाका लोलुपी से = वह साधु बहु = बहुत पावं = पाप पकुव्वई = करता है, य = और (इस भवमें) दुत्तोसओ = असन्तोषी होइ = बना रहता है, च = तथा निव्वाण = मोक्षको न गच्छइ = नहीं पाता है, अर्थात् अनन्तसंसारी होकर चतुर्गतिमें भटकता है ॥३२॥

टीका—आत्मार्थगुरुकः = आत्मनः अर्थ = प्रयोजनमित्यात्मार्थः स एव गुरुः =

स्वपक्षमें चौर्यका निपेध करते है 'सिया' इत्यादि।

जो क्षुद्रप्रकृतिवाला साधु उत्कृष्ट सरस आहार प्राप्त करके इस विचार से उसे छिपा लेता है कि–मै इसे दिखा दूगा तो आचार्य आदि इसे ले लेंगे–मुझे न देंगे अथवा थोडासा देगे ॥३१॥

अत्तट्ठा, इत्यादि वह दूसरोसे छिपाकर सरस आहार करनेवाला स्वार्थ साधनमे समर्थ साधु

સ્વપક્ષમા ચૌર્યનો નિષેધ કરે છે—सिया ઈત્યાદિ.

જો ક્ષુદ્ર પ્રકૃતિવાળો સાધુ ઉત્કૃષ્ટ સરસ આહાર પ્રાપ્ત કરીને એવા વિચારથી એને છુપાવે કે–હું એને બતાવીશ તો આચાર્ય આદિ એ લઈ લેશે, મને નહીં આપે અથવા થોડો જ આપશે' (૩૧)

अत्तट्ठा० ઈત્યાદિ એ બીજાથી છુપાવીને સરસ આહાર કરનારો સ્વાર્થ સાધનમા સમર્થ

प्रधानं यस्य स तथोक्तः स्वार्थसाधनसमर्थ इत्यर्थः, यद्वा आत्मार्थमेव गुरुः = प्रधानं वस्तु यस्य च तथोक्तः अन्याऽलक्षितोत्कृष्टसरसवस्तुजाताऽऽस्वादकः अत एव लुब्धः = मनोरमरसाभिलाषी सन् बहु = प्रचुरं पापम् = आत्ममालिन्यजनकं दुष्कर्म करोति = विधत्ते, स चाऽस्मिन् जन्मनि दुस्तोषकः = अन्तप्रान्ताद्याहारेण दुःसम्पादनीयतोषः–असन्तोषी भवति, निर्वाणं = मोक्षं च न गच्छति = नो पैति ।

'अत्तट्ठागुरुओ' इत्यनेन पुद्गलानन्दित्वं, 'लुद्धो' अनेन मायापरत्वं तस्करवृत्तित्वं च प्रकटितम्, दुत्तोसओ' इत्यनेन चेप्सितवस्त्वप्राप्तौ सन्तोषाभावः सूचितः ॥३२॥

गुरुसमक्षापहारमुक्त्वा गुरुपरोक्षतोऽपहारकमाह–'सिया' इत्यादि ।

मूलम्–सिया[1] एगइओ[2] लद्धुं[5] विवाहं[3] पाण-भोयणं[4] ।

भद्दगं[6] भद्दगं[7] भोच्चा[8] विविन्नं[9] विरसमाहरे[10][11] ॥३३॥

छाया–स्यात् एककः लब्ध्वा, विविधं पान-भोजनम् ।

भद्रकं भद्रकं भुक्त्वा, विवर्णं विरसमाहरेत् ॥३३॥

सान्वयार्थः—एगइओ = अकेला पूर्वोक्त स्वभाववाला रसलोलुपी साधु गोचरी गया हुआ सिया = कदाचित्-कोई वख्त ऐसा भी करे कि विविहं = नाना प्रकारके पाण-भोयणं = आहार-पानीको लद्धुं = पाकर (उसमेंसे) भद्दगं भद्दगं = अच्छे-अच्छे सरस आहारको भोच्चा = वहीं कहीं एकान्तमे खाकर विविन्नं = विकृत वर्णवाले वाल चने आदिका वना हुआ तुष आदि जिसमें वहुत हों ऐसे (तथा) विरसं = लवणादि रस सहित अशनादिको आहरे = उपाश्रयमें लावे ॥३३॥

टीका–स्यात् = कदाचित् एककः = कश्चित् रसलोलुपी विविधं पान-भोजनं लब्ध्वा भिक्षाचर्यायामेव यत्र-कुत्रचिदलक्षितप्रदेशे भद्रकं भद्रकम् = उत्कृष्टमुत्कृष्टं बहु

मनोज्ञ रसका अभिलाषी होकर अत्यन्तपापकर्मका उपार्जन करता है । वह इस जन्ममे साधारण नीरस आहारसे कभी सन्तुष्ट नहीं होता न मोक्ष प्राप्त कर सकता है ।

'अत्तट्ठगुरुओ' इस पदसे पुद्गलानन्दीपन लुद्धो, पदसे मायाचारमें परायणता तथा तस्करवृत्ति (चोरी) और दुत्तोसओ, पदसे अभीष्ट वस्तु न मिलनेपर असन्तोष सूचित किया है ॥३२॥

गुरुसमक्षका अपहार कहकर अव गुरुके परोक्षका अपहार कहते है 'सिया' इत्यादि ।

સાધુ મનોજ્ઞ રસનો અભિલાષી થઈને અત્યંત પાપકર્મનું ઉપાર્જન કરે છે તે આ જન્મમાં સાધારણ નીરસ આહારથી કદાપિ સંતુષ્ટ ન થતાં મોક્ષને પ્રાપ્ત કરી શકતો નથી.

अत्तट्ठागुरुओ એ પદથી પુદ્ગલાનંદીપણું, लुद्धो પદથી માયાચારમાં પરાયણતા તથા તસ્કરવૃત્તિ (ચૌર્યવૃત્તિ) અને दुत्तोसओ પદથી અભીષ્ટ વસ્તુ ન મળવાથી ઉપજતો અસંતોષ સૂચિત કર્યો છે (૩૨)

ગુરૂ સમક્ષનો અપહાર કહીને હવે ગુરૂની પરોક્ષનો અપહાર કહે છે—सिया० ઇત્યાદિ.

विधान्नादिषु प्रशस्त प्रशस्तमेव घृतपूराऽपूपादिक भुक्त्वा विवर्णं=विकृतवर्णं वल्लचणकादिनिष्पन्नं तुषादिबहुलं विरसं=लवणादिरसवर्जितमन्नादिकम् आहरेत्=आनयेत् वसताविति शेषः ॥३३॥

एवं करणे किं प्रयोजनम् ? इत्याह–'जाणंतु' इत्यादि ।

१२ १ २ ३ ६ ४ ५
मूलम्–जाणंतु ता इमे समणा आययट्ठी अयं मुणी
७ ११ १० ८ ९
संतुट्ठो सेवइ पंतं लूहवित्ती सुतोसओ ॥३४॥

छाया––जानन्तु तावत् इमे श्रमणाः आत्मार्थी अयं मुनिः ।
सन्तुष्टः सेवते प्रान्तं, रूक्षवृत्तिः सुतोषकः ॥३४॥

वह ऐसा क्यों करता है इसमें कारण कहते हैं––

सान्वयार्थ — ता=प्रथम इमे=ये-उपाश्रयमे रहे हुए दूसरे समणा=साधु (मुझे इस प्रकार) जाणंतु=जाने कि अयं=यह मुणी=साधु आययट्ठी=मोक्षार्थी-आत्मार्थी है, संतुट्ठो जैसा मिला उसीमें संतोष करनेवाला लूहवित्ती=सरस स्निग्धादि आहारकी अभिलाषारहित सुतोसओ=थोड़े आहारसे भी संतोषी है और पंतं=वासी कुसी तथा निस्सार अन्नादिका सेवई=सेवन करता है ॥ ३४ ॥

टीका–– तावत्=निश्चयेन इमे=मानसप्रत्यक्षविषयाः उपाश्रयस्थाः श्रमणाः=साधवः अयं मुनिः आत्मार्थी=आत्महितार्थी सन्तुष्टः=यथालब्धसन्तोषी रूक्षवृत्तिः=सरसाऽनभिकाङ्क्षी सुतोषकः=अल्पेनापि परितोषशीलः प्रान्तं=पर्युषितं निस्सारं वाऽन्नादिकं सेवते इति मा जानन्तु ॥ ३४ ॥

कदाचित् कोई रसलोलुपी साधु विविध प्रकारका पान–भोजन पाकर अच्छा भोजन भिक्षाचरीमें ही किसी एकान्त स्थानमे खावे, और बाल चणक आदि अन्त-प्रान्त तथा विनानमक मसालेका ठंढा आहार उपाश्रयमें ले आवे ॥३३॥

ऐसा करनेका प्रयोजन कहते है–'जाणंतु' इत्यादि ।

ये उपाश्रयमें स्थित साधु मुझे ऐसा समझें कि–'यह साधु आत्मार्थी है, जैसा मिला उसीमें सन्तोषी है, सरस आहारकी आकाक्षा नहीं करता, थोड़े ही आहारसे सन्तुष्ट हो जाता है और साररहित ठंढा अन्त-प्रान्त आहारका सेवन करता है' ॥३४॥

કદાચિત કોઈ રસલોલુપી સાધુ વિવિધ પ્રકારનાં પાન-ભોજન મેળવીને સારૂં-સારૂં ભોજન ભિક્ષાચરીમાં જ કોઇ એકાંત સ્થાનમાં ખાઈ લે અને વાલ ચણા આદિ અંત-પ્રાંત તથા મીઠા મરચા વિનાનો નીરસ ઠંડો આહાર ઉપાશ્રયમાં લઇ આવે (૩૩)

એમ કરવાનુ પ્રયોજન કહે છે —જાણંતુ૦ ઇત્યાદિ

આ ઉપાશ્રયમા રહેલા સાધુ મને એવો માને કે–'આ સાધુ આત્માર્થી છે, જેવો આહાર મળ્યો તેમા સંતોષ માનનારો છે, સરસ આહારની આકાંક્ષા કરતો નથી થોડા જ આહારથી

किमर्थं स्वदोषगोपनमाचरती ?-त्याह-'पूयणट्ठा' इत्यादि ।

मूलम्-पूयणट्ठा जसोकामी, माणसम्माणकामए ।
बहुं पसवई पावं, मायासल्लं च कुव्वइ ॥ ३५ ॥

छाया--पूजनार्थः यशःकामी, मानसम्मानकामुकः ।
बहु प्रसूते पापं, मायाशल्यं च कुरुते ॥ ३५ ॥

उपर्युक्त साधु के दोष बताते हैं--

सान्वयार्थः--पूयणट्ठा=वस्त्र-पात्रादिसे सत्कार चाहनेवाला जसोकामी=अपने महत्त्व और प्रसिद्धिका इच्छुक माणसम्माणकामए=मान-सम्मानका अभिलाषी साधु बहुं=बहुत पावं=पाप मोहनीयादि-को पसवई=पैदा करता है, च=और मायासल्लं=कपटरूप भावशल्यको कुव्वइ=उत्पन्न करता है । तात्पर्य यह है कि-हृदयमें खुचे हुए बाणके अग्रभागरूप द्रव्य-शल्यकी तरह हृदयमें रहा हुआ यह मायारूप भाव-शल्य मनुष्यको, अनन्त दुस्सह दुःखोंका कारणभूत चतुर्गतिक संसारमे घूमाता हुआ अविचलशान्तिमय सुखसे वञ्चित कर देता है ॥ ३५ ॥

टीका--पूजनार्थः=पूजनं=वस्त्र पात्रा ऽन्न पानादिना सत्कारः स एवार्थः=प्रयोजनं यस्य स तथोक्तः प्रशस्तवस्तूपभोगार्थीत्यर्थः, अत एव यशःकामी=यशः=स्वमहत्त्वप्रसिद्धिस्तत्कामयते=इच्छतीति 'अहो ! अयमेव स' इत्येवं प्रशंसावचनाभिलाषीत्यर्थः, मानसम्मानकामुकः=मानश्च सम्मानश्चेति मानसम्मानौ तयोः कामुक इति विग्रहः, तत्र मानः अभ्युत्थानादिलक्षण आदरः, सम्मानः = गुणोत्कीर्त्तनेन गौरवप्रकटनम् आदरगौरवाभिलाषुक इत्यर्थः । एवं कुर्वन् साधुः किं सम्पादयती ? त्याह बहु = प्रभूतं पापं = दुष्कृतं प्रसूते = जनयति च = पुनः माया शल्यं = माया = शाठ्येन मनोवाक्कायप्रवृत्तिः, सैव

अपना दोष छिपाता क्यो है ? सो कहते है-'पूयणट्ठा' इत्यादि ।

अच्छे-अच्छे वस्त्र पात्र अन्न पान आदिसे अपना सत्कार चाहनेवाला, प्रशस्त वस्तुओके भोगका लोलुपी, 'अहो ! यह वहीं है' ऐसे यशका अभीलाषी मान (आनेपर खडा होजाना) तथा सम्मान (गुणगान द्वारा गौरव प्रकट करना) की इच्छावाला साधु बहुत पापोंको तथा कपटरूप मायाशल्यको उत्पन्न करता है । छातीमें चुभकर वहीं टूट जानेवाले द्रव्य-शल्य (तीरकी

સંતુષ્ટ થઈ જાય છે,-અને સારરહિત ઠંડા અંત-પ્રાંત આહારનું સેવન કરે છે, (૩૪)

પોતાના દોષ કેમ છુપાવે છે ? તે કહે છે—**પૂયણટ્ઠા**૦ ઈત્યાદિ

સારાં-સારાં વસ્ત્ર પાત્ર અન્ન-પાન આદિથી પોતાનો સત્કાર ચાહનાર, પ્રશસ્ત વસ્તુઓનાં ભોગનો લોલુપી-અહો ! એ આ જ છે' એવા યશનો અભિલાષી, માન (આવતાં જ ઉભા થઈ જવું)તથા સમ્માન (ગુણગાનદ્વારા ગૌરવ પ્રકટ કરવું) ની ઈચ્છાવાળો સાધુ ઘણાં પાપોને તથા કપટરૂપ માયાશલ્યને ઉત્પન્ન કરે છે. છાતીમા પેસીને ત્યાં જ તૂટી જનારા

शल्यं = शल्यते = बाध्यते पीड्यते आत्माऽनेनेति विग्रहः, मायालक्षणं भावशल्यं कुरुते = उत्पादयति, हृदयनिखातत्रुटितबाणाग्ररूपद्रव्यशल्यवदिदं मायारूपं भावशल्यं हृदयस्थितं सत् निरन्तराऽनन्तदुस्सहदुःखकारणीभवत् चतुर्गतिकसंसारे भ्रामयत् अविचलशान्तिसुखाद् दूरतरीकरोति तादृशं साधुमिति भावः ॥ ३५ ॥

मद्यपानप्रतिषेधमाह—'सुरं वा' इत्यादि ।

५ ६ ७ ९ ८ १० ११ १२
मूलम्—सुरं वा, मेरगं वावि, अन्नं वा मज्जगं रसं ।
१३ १४ १५ १ ३ ४ २
ससक्खं न पिबे भिक्खू, जसं सारक्खमप्पणो ॥ ३६ ॥

छाया—सुरां वा मेरकं वाऽपि, अन्यद् वा माद्यकं रसम् ।
ससाक्षि न पिबेद् भिक्षुः, यशः संरक्षन् आत्मनः ॥ ३६ ॥

अब मद्यपान का दोष बताते हैं—

सान्वयार्थः—भिक्खू = साधु अप्पणो = अपने जसं = संयमको सारक्खं = बचाता हुआ सुरं = गौड़ी माध्वी और पैष्टी, इन तीनों प्रकार की मदीराको वा = 'वा' शब्दसे अथवा बारहों प्रकारकी मदिरा को वावि = तथा मेरगं = सरकेको अन्नं वा = और भी दूसरे प्रकारके मज्जगं = मदजनक भंग गांजा अफीम चरस आदि मादक रसं = रस-द्रव्य को ससक्खं = केवली भगवान्की साक्षीसे अर्थात् उनका ज्ञान सर्वव्यापक होनेसे एकान्त में भी न पिबे = नहीं पिये ॥ मदिराके बारह भेद इस प्रकार है—(१) महुआ (२) फणस (३) दाख, (४) खजूर, (५) ताड (ताडी), (६) गन्ना = सेरडी, (७) धावड़ीके फूल, (८) मक्खियोंकी शहद (९) कैठ (कठोतो), (१०) मधु (अन्य प्रकारकी शहद), (११) नारियल, ओर (१२) पिष्ट (आटा), मदिरा इन बारह वस्तुओंसे बनती हैं ॥ ३६ ॥

टीका—भिक्षुः आत्मनः = स्वस्य यशः = संयमं संरक्षन् सुरां = मदिरां, सा च त्रिविधा-गौडी, माध्वी, पैष्टी चे' ति । तत्र गौडी = गुडनिष्पादिता, माध्वी=मधु(महुडा

नोक) की तरह हृदयमें स्थित मायारूप भावशल्य निरन्तर असीम व्यथाका कारण होता है, तथा चतुर्गति ससारमें इधर-उधर भटकता हुआ अविचल शान्तिमय सुखसे उस साधुको वञ्चित (अलग) कर देता है ॥३५॥

मद्य-पानक निषेध कहते है—'सुरं वा' इत्यादि ।

जो साधु अपने सयमकी रक्षा करना चाहते है उन्हे मदिरा या सिरका एकान्तमें भी

દ્રવ્ય-શલ્ય (તીરની અણી) ની પેઠે હૃદયમા રહેલું માયારૂપ ભાવ-શલ્ય નિરંતર અસીમ વ્યથાનું કારણ બને છે, તથા ચતુર્ગતિ સસારમા અહીં-તહીં ભટકતા અવિચલ શાન્તિમય સુખથી એ સાધુને વંચિત (રહિત) કરી નાખે છે (૩૫)

મદ્યપાનનો નિષેધ કહે છે—સુરં વા૦ ઇત્યાદિ

જે સાધુ પોતાના સંયમની રક્ષા કરવા ઇચ્છે છે, તેણે મદિરા યા સરકો એકાંતમાં પણ

संपादिता, पैष्टी = व्रीह्यादिपिष्टनिर्वृत्तेति। यद्वा 'पिट्ठेण सुरा होइ' इति वचनाद् व्रीह्यादिपिष्टनिर्वृत्तैव सुरेत्युच्यते। चन्द्रहासाभिधं मद्यमिति वा। मेरकं = सरकानामधेयं मद्यम्। अन्यद्वा माद्यकं = मदजनकं रसम्। मादकत्वेन द्वादशविधमद्यस्य तदितरस्य विजयादेश्च सर्वस्य संग्रहः, तदुक्तमितरत्र मदहेतुद्रवद्द्रव्यं मद्यमित्यभिधीयते' इति द्वादशविधमद्यानि यथा--

"माध्वीकं पानसं द्राक्षं, खार्जूरं तालमैक्षवम्।
मैरेयं माक्षिकं टाङ्कं, माधूकं नारिकेलजम् ॥१॥
मुख्यमन्नविकारोत्थं, मद्यानि द्वादशैव च।" इति।

एतत्सर्वं सुरादिकं ससाक्षि न पिबेत्, साक्षिभिः केवल्यादिभिः सहेति ससाक्षि

कदापि न पीना चाहिए। मदिरा तीन प्रकारकी है (१) गौडीं (२) माध्वी और (३) पैष्टी। गुड़से बनाई हुई गौडी, महुआसे बनाई हुई माध्वी तथा धान्य आदिके पिष्ट (आटे) से बनाई पैष्टी कहलाती है। 'पिट्ठेण सुरा होइ' इस वचनसे यहि जान पडता है कि-धान्य आदिके आटेसे मदिरा बनती है। अथवा पैष्टी मदिरा 'चन्द्रहास' नामकी मदिरा समझनी चाहिए। इनके सिवाय भंग गाँजे आदि और कोई भी नशैली वस्तुका साधुको सेवन नहीं करना चाहिए जैसा कि कहा है-'मदके कारण-स्वरूप पिघले हुए पदार्थको मद्य कहते हैं।' मद्य बारह प्रकारके समझने चाहिएँ वे ये है—

"(१) महुआका, (२) पनस ।ा,)३) दाखका, (४) खजूरका, (५) ताडका (ताडी), (६) साठिका, (७) मैरेय-धौ-धावड़ीके फूलका, (८) (माक्षिक मक्खियोंकी शहद) का, (९) टंक (कवीठ-कैथ) का, (१०) मधुका, (११) नारियलका और (१२) पिष्ट (आटे) का बना हुआ मद्य। ये मद्यके मुख्य भेद बारह है।"

કદાપિ પીવો ન જોઇએ. મદિરા ત્રણ પ્રકારની છે, (૧) ગૌડી, (૨) માધ્વી, (૩) પૈષ્ટી' ગોળ માંથી બનાવેલી ગૌડી, મહુડામાંથી બનાવેલી માધ્વી, તથા ધાન્ય આદિના પિષ્ટ (આટા) માંથી બનાવેલી પૈષ્ટી કહેવાય છે. पिट्ठेण सुरा होइ એ વચનથી એમ માલુમ પડે છે કે-ધાન્ય આદિના આટાથી મદિરા બને છે. અથવા પૈષ્ટી મદિરા 'ચંદ્રહાસ' નામની મદિરા સમજવી જોઇએ તે ઉપરાંત ભાંગ, ગાંજો, બીજી-બીજી કોઈ પણ કેફી વસ્તુનું સેવન સાધુ ન કરે; જેમકે કહ્યું છે કે—

'મદના કારણ સ્વરૂપ પીગળેલા પદાર્થને મદ્ય કહે છે' મદ્ય બાર પ્રકારના સમજવા, તે નીચે મુજબ—

"(૧) મહુડાનો, (૨) ફણસનો, (૩) દ્રાક્ષનો (૪) ખજૂરનો (૫) તાડનો (તાડી), (૬) શેરડીનો, (૭) મૈરેય-ધાવડીના ફૂલનો, (૮) માક્ષિક મધનો, (૯) ટંક (કોઠા) નો; (૧૦) મધુનો, (૧૧) નારિઓળનો, અને (૧૨) પિષ્ટ (આટા) નો બનેલો મદ્ય એમ મદ્યના મુખ્ય ભેદ બાર છે.

कैवल्यादीनां साक्षित्वं कदापि क्वचिदपि प्रतिरोद्धुमशक्यं, तेषां सर्वज्ञत्वात्सर्वदर्शित्वाच्च, तेन एकान्तेऽपि न पिबेदित्यर्थः ॥ ३६ ॥

७ २ १ ३ ४ ५ ६

मूलम्—पियए एगओ तेणो न मे कोई वियाणइ ।

८ १० ९ १२ ११ १४ १३

तस्स परसह दोसाइं नियडिं च सुणह मे ॥ ३७ ॥

छाया——पिवती एककः स्तेनः, न मे कोऽपि विजानाति ।
तस्य पश्यत दोषान् , निकृतिं च शृणुत मे ॥ ३७ ॥

सान्वयार्थः-तेणो= जो भगवानकी आज्ञाके विना ग्रहण करनेवाला होनेके कारण चोर साधु एगओ=अकेला, एकान्तमें रहा हुआ अर्थात् अपने सहचर धर्मको भी छोड़ा हुआ 'मे=मेरे-इस मदिरापान-को या मुझे कोई=कोईभी न वियाणइ=नहीं जानता है' (ऐसा समझ कर) पियए=मदिरा पीता है, तस्स=उस साधुके दोसाइं=संयममें मलिनता पैदा करनेवाले दोषोंको पस्सह=देखो, च=और नियडिं=एक कपटको छिपानेके लिए किये जानेवाले दूसरे कपटको मे=मेरेसे सुणेह=सुनो ॥३७॥

टीका—'पियए' इत्यादि । यः स्तेनः तीर्थङ्करानादिष्टत्वेनाऽदत्ताऽऽदायित्वाच्चौरः एककः=एकान्तस्थितः आत्मसहचरं धर्ममपि विहाय वर्त्तमानः सन् 'न मे=न मां, न मम सुरादिपानं वा कोऽपि विजानाति' इति मत्वा पिबति=गल-बिलाधः संयोगानुकूलव्यापार-विषयं करोति सुरादिकमिति शेषः, तस्य=द्रव्यलिङ्गिनः साधोः दोषान्=संयममालिन्यका-रिचेष्टाविशेषान् पश्यत=ज्ञानविषयीकुरुत,च=पुनः निकृतिं=पूर्वकृतकपटावरणाय कपटान्त-

---

इन सबको केवली भगवानकी साक्षीसे न पिये । केवली भगवानकी साक्षी कभी कहीं नहीं रुक सकती, क्योंकि वे सर्वदर्शी है, अतः तात्पर्य यह हुआ कि ऐकान्तमें भी मद्य न पिये ॥३६॥

'पियए' इत्यादि । हे शिष्य ! भगवान् तीर्थङ्करकी आज्ञाके विना ग्रहण करनेवाला, अत एव चोर, आत्माके सहचर धर्मको भी त्याग कर एकान्तमें स्थित होकर ऐसा समझता है कि— 'मुझे या मेरे मदिरा-पानको कोई नहीं जानता' ऐसा जानकर मदिरा-पान करता है, उस द्रव्य-लिंगी साधुके संयमको दूषित करनेवाली चेष्टाको (दोषो) को तो देखो ! एक तो मदिरापानका

એ બધાને કેવળી ભગવાનની સાક્ષીએ પીએ નહિ. કેવલી ભગવાનની સાક્ષી કદાપિ ક્યાંય રોકાતી નથી, કારણ કે તે સર્વદર્શી છે, એટલે તાત્પર્ય એ છે કે એકાંતમાં પણ મદ્ય પીવો નહિ (૩૬)

પિયએ૦ ઇત્યાદિ હે શિષ્ય ! ભગવાન્ તીર્થંકરની આજ્ઞા વિના ગ્રહણ કરનાર એટલે ચોર, આત્માના સહચર ધર્મને પણ ત્યાગીને એકાંતમા સ્થિત થઈને એમ સમજે છે કે— 'મારા આ મદિરાપાનને કોઈ જાણતું નથી' એમ સમજીને જે મદિરાપાન કરે છે તે દ્રવ્ય-લિંગી સાધુના સંયમને દૂષિત કરનારી ચેષ્ટાઓ (દોષો) ને તો જુઓ ! એક તો મદિરાપા-નનો માયાચાર, વળી તેને છુપાવવા માટે બીજા અનેક માયાચાર અને મૃષાવાદ આદિનું

रकरणलक्षणां मायां, प्रथमकपटं सुरापानं, द्वितीयमनृतभाषणेन तत्संगोपनमिति भावः मे =मम निरूपयतः सकशात् शृणुत=श्रवणगोचरीकुरुत। 'गुरुः शिष्यानामन्त्र्य कथयतीति भावः ॥३७॥

पूर्वप्रतिज्ञातदोषानुपदर्शयति-'वड्ढई' इत्यादि।

१३ ४ १ ६ ७ ५ २

मूलम्-वड्ढई सुंडिया तस्स माया मोसं च भिक्खुणो।

९ ८ १० ३ ११ १२

अयसो य अनिव्वाणं सययं च असाहुया ।३८।

छाया- वर्द्धते शौण्डिका तस्य, माया मृषा च भिक्षोः।
अयशश्च अनिर्वाणं, सततं च असाधुता ॥३८॥

सान्वयार्थः-तस्स=उस मदिरा पीनेवाले भिक्खुणो=साधुकी सुंडिया=मद्यपान संबन्धी आसक्ति माया=कपट च=और मोसं=झूठ अयसो=अपकीर्ति य=तथा अनिव्वाणं=अतृप्ति, ये सब दोष सययं=निरन्तरवड्ढइ=बढते रहते हे च=और (आखिर उसके) असाहुया-असाधुता हो जाती हैं, अर्थात् वह असाधुपनको प्राप्त हो जाता है, यानी चारित्रसे भ्रष्ट हो जाता है।॥३८॥

टीका-तस्य=सुरापायिनः भिक्षोः=साधोः सततं=निरन्तरं शौण्डिका=मद्यपानविषयासक्तिः, च=पुनः, माया=निकृतिः, मृषा=असत्यभाषणम्, यद्वा 'माया मोसं, इत्येकं पदं तेन मायया सह मृषा मायामृषा=परप्रतारणपूर्वकमसत्यभाषणमित्यर्थः, च=पुनः, अयशः=असद्वृत्तत्वेनाऽपकीर्त्तिः, अनिर्वाणम्=अनुपशान्तिरतृप्तिः उत्तरोत्तरस्पृहावर्द्धनात् च=तथा असाधुता=असंयतत्वं साधूचिताचाररहित्येन साधुपदाऽनर्हत्वमित्यर्थः,

---

मायाचार, फिर उसे छुपानेके लिए दूसरे अनेक मायाचार और मृषावाद आदिका सेवन किया जाता है सो मुझसे सुनो, अर्थात् गुरुमहाराज शिष्यको आमन्त्रित करके कथन करते है ॥३७॥

पूर्वप्रतिज्ञात दोष कहते है-'वड्ढई' इत्यादि।

मदिरापान करनेवाला साधु सदा मदिरा पीनेमें ही मग्न रहता है। वह मायाचार करता है, मृषा बोलता है, अथवा कपट-सहित झूठ बोलता है। दुराचारी होनेके कारण उसकी अपकीर्त्ति फैल जाती है। उसकी लोलुपता अधिकाधिक बढती चली जाती है-उसे कभी तृप्ति नहीं होती। तथा मुनिके योग्य आचरणसे हीन होनेके कारण वह साधु कहलाने योग्य नहीं रहता,

---

સેવન કરવામાં આવે છે તે મારી પાસેથી સાંભળો-અર્થાત્ ગુરૂ મહારાજ શિષ્યને આમંત્રિત કરીને કથન કરે છે (૩૭)

પૂર્વપ્રતિજ્ઞાત દોષ કહે છે—વડ્ઢઇ૦ ઈત્યાદિ.

મદિરાપાન કરનાર સાધુ સદા મદિરા પીવામાં જ મગ્ન રહે છે તે માયાચાર કરે છે મૃષા બોલે અથવા કપટસહિત જૂઠું બોલે છે. દુરાચારી હોવાને કારણે તેની અપકીર્તિ ફેલાઈ જાય છે, એની લોલુપતા અધિકાધિક વધતી જાય છે, તેથી કદાપિ તૃપ્તિ થતી નથી મુનીને

वर्द्धते = वृद्धिं गच्छति ।

'सुंडिया' इत्यनेन मद्यपायिनो मद्यासक्तिरपरिहार्या भवतीति सूचितम् । मद्यासक्तौ सत्यां माया मृषा च कदापि तं न विजहाति मायामृषावृद्धौ स्वपरपक्षे निन्दाऽवश्यम्भाविनी निन्दायामपि सत्यां मद्यपानासक्तस्याऽनिर्वृतिः साहचर्यं न मुञ्चति, तथा सति सर्वथा साधुपदानधिकारित्वमुपजायतेऽतः सर्वानर्थमूलं मद्यपानमिति बोध्यम् ॥ ३८ ॥

उक्तमेवार्थं प्रकारान्तरेण द्रढयति-'निच्चुव्विग्गो' इत्यादि ।

मूलम्—निच्चुव्विग्गो (४) जहा (१) तेणो (२), अत्तकम्मेहिं (३) दुम्मई (६) ।
तारिसो (५) मरणंतेऽपि (७), नाराहेइ (९) संवरं (८) ॥३९॥

छाया--नित्योद्विग्नः यथा स्तेनः, आत्मकर्मभिर्दुर्मतिः ।
तादृशः मरणान्तेऽपि, न आराधयति संवरम् ॥ ३९ ॥

सान्वयार्थ-जहा = जिस प्रकार तेणो = चोर अत्तकम्मेहिं = अपने किये हुए दुश्चरित्रोंसे निच्चुव्विग्गो = हमेशा व्याकुल बना रहता है, उसी तरह तारिसो = मदिरा पीनेवाला वह दुम्मई = दुर्बुद्धि साधु भी नित्य उद्विग्न बना रहता है, फिर वह मरणंतेवि = मरण समय तक भी संवरं = संवरधर्म चारित्रको नाराहेइ = नहीं आराध सकता है, अर्थात् वह साधु जिन्दगीभर चारित्रसे वञ्चित रहता है ॥ ३९ ॥

टीका-यथा स्तेनः = तस्करः आत्मकर्मभिः = स्वकीयदुश्चरितैः नित्योद्विग्नः =

अतः उसकी असाधुता बढ़ती है ।

'सुडिया' पदसे यह सूचित किया है कि शराबीको शराब पीनेकी आदत छूटनी कठिन होती है । मदिरामें आसक्ति होने पर माया-मृषा मदिरापायीका काना-पीछा नहीं छोड़ती, अर्थात् वह माया-मृषा दोषोंमें तत्पर रहता है । माया और मृषाकी वृद्धि होनेपर स्वपक्ष परपक्षमें निश्चय ही निन्दा होती है और निन्दा होनेपर भी मदिरा पानमें मस्त होकर मदिरा-पान नहीं त्यागता । ऐसी अवस्थामें वह साधु कहलाने योग्य बिलकुल ही नहीं रहता ॥३८॥

इसी विषयको दूसरी तरहसे कहते है-'निच्चुव्विग्गो' इत्यादि ।

યોગ્ય આચરણથી હીન હોવાને કારણે એ સાધુ કહેવાવાને યોગ્ય નથી રહેતો, એટલે એનિ અસાધુતા વધે છે.

'सु डिया' શબ્દથી એમ સૂચિત કર્યું છે કે શરાબીની શરાબ પીવાની આદત છૂટવી કઠિન હોય છે. મદિરામાં આસક્તિ થતાં માયા-મૃષા મદિરાપાન કરનારને પીછો છોડતી નથી, અર્થાત્ એ માયા-મૃષા દોષોમાં તત્પર રહે છે માયા અને મૃષાની વૃદ્ધિ થતા સ્વ-પક્ષ પર પક્ષમા જરૂર નિંદા થાય છે, અને નિંદા થવા છતાં પણ મદિરાપનમાં મસ્ત થઈને તે મદિરાપાન ત્યાગતો નથી. એવી અવસ્થામાં તે જરાએ સાધુ કહેવાવાને યોગ્ય રહેતો નથી

એ વિષયને બીજી રીતે કહે છે—निच्चुव्विग्गो० ઈત્યાદિ

सदा व्याकुलः चित्तोपशान्तिरहितो भवति, तादृशः = स्तेनसदृशः, यथा चौरः–'मदीयमिदं दुश्चरितं कोऽपि मा विद्यात् , अन्यथा राजगृहीतस्य मम प्राणाद्यपहारो भवे' दिति चिन्तया कदाचिदपि चेतसि नोपशान्तिं गच्छति, तथा मद्यसेवी साधुरपि स्वकीये दुश्चरिते प्रकटिते सति पूजाप्रतिष्ठादिप्रतिघातशङ्कया स्वकृत दुष्कृतसगोपनाय नवनवमायामृपाकल्पितवचनरचनादिनानाप्रकारकोपायमनुसंदधानो न जातु संयमसमाधिमधिगच्छतीति भावः। दुर्मतिः=विपर्यस्तबुद्धिः साधुः, मरणान्तेऽपि मरणावधिसमयेऽपि संवरं=सर्वसावद्यविरतिलक्षणं चारित्रं कदापि नाराधयति=न निष्पादयति, चरित्रसाधकशुद्धपरिणामाभावात् ।

'निच्चुव्विग्गो' इत्यनेन पापात्मनां नित्यशङ्कितत्वं सूचितम् । 'दुम्मई' पदेन व्यसनिनां मतिमालिन्यमवश्यम्भावीत्याविष्कृतम् ॥ ३९ ॥

जैसे चोर अपने कुकर्मके कारण सदा व्याकुल बना रहता है अर्थात् उसे सदा यही भय बना रहता है कि मेरे कुकर्मको कोई जान न ले, नहीं तो राजा मुझे पकड़ लेगा और प्राणोंसे हाथ धोना पड़ेगा। इस प्रकारकी चिन्तासे चोरके चित्तमें सदा धुक-धुकी (खल-बली) मची रहती है। उसी प्रकार मदिरा-पान करनेवाले मुनिके मनमें हमेशा असमाधि रहती है कि–कहीं मेरा मदिरा पानका दुराचार प्रगट न हो जाय, नहीं तो मान सम्मान सब मिट जायगा। इस प्रकारकी आशंकासे वह अपने किये हुए दुराचारको छिपानेके लिए मायाचार और असत्य आदि के नये-नये उपाय सोचा करता है। उसकी सयम सम्बन्धी समाधि किसी प्रकार भी नहीं रहती। ऐसा दुर्बुद्धि साधु मृत्युको अवधिके समय भी सर्वसावद्ययोगके त्यागरूप सवर की आराधना नहीं करता, क्योंकि उसके वैसे विशुद्ध भाव नहीं होते।

'णिच्चुव्विग्गो' इससे ऐसा सूचित किया है कि पापी सदा सशंक रहता है। 'दुम्मई' पद से यह प्रगट किया है कि कुव्यसनोकी मतिमें मलिनता अवश्य आजाती है ॥ ३९ ॥

જેમચોર પોતાના કુકર્મોને કારણે સદા વ્યાકુળ રહ્યા કરે છે, અર્થાત તેને સદા એવો ભય રહે છે કે મારા કુકર્મને કોઈ જાણી ન લે, નહિ તો રાજા મને પકડી લેશે અને પ્રાણ ગુમાવવા પડશે એ પ્રકારની ચિંતાથી ચોરના ચિત્તમાં સદા ખળભળાટ મચ્યા કરે છે એજ રીતે મદિરાપાન કરનાર મુનિના મનમાં હમેશાં અસમાધિ રહે છે કે–કયાક મારો મદિરાપાનનો દુરાચાર પ્રકટ ન થઈ જાય, નહિ તો સન્માન બધું નાશ પામશે એ પ્રકારની આશંકાથી તે પોતાના દુરાચારને છુપાવવાને માયાચાર અને અસત્ય આદિના નવા નવા ઉપાયો વિચાર્યા કરે છે. એની સંયમ સંબંધી સમાધિ કોઈ પ્રકારે રહેતી નથી એવો દુર્બુદ્ધિ સાધુ મૃત્યુની અવધિના સમયે પણ સર્વસાવદ્યયોગના ત્યાગરૂપ સંવરની આરાધના કરતો નથી, કારણ કે તેના એવા વિશુદ્ધ ભાવ થતા નથી

નિચ્ચુવ્વિગ્ગો શબ્દથી એમ સૂચિત કરવામાં આવ્યું છે કે પાપી સદા સશંક રહે છે **દુમ્મઈ** શબ્દથી એમ પ્રકટ કર્યું છે કે દુર્વ્યસનીની મતિમાં મલિનતા અવશ્ય આવે છે (૩૯)

२ ६ ५ ४ ३ १
मूलम्—आयरिए नाराहेइ समणे आवि तारिसो ।
८ ९ १२ १३ ७ ११ १०
गिहत्था वि णं गरिहंति, जेण जाणंति तारिसं ॥४०॥

छाया—आचार्यान् नाराधयति, श्रमणाँश्चापि तादृशः ।
गृहस्था अपि तं गर्हन्ते, येन जानन्ति तादृशम् ॥ ४० ॥

सान्वयार्थः—तारिसो=उस पूर्वोक्त प्रकारका दुराचारि साधु आयरिए=रत्नाधिकोंको अवि य=तथा समणे=साधुओंको भी नाराहेइ=विनय वैयावच्च आदि से नहीं आराध सकता है, जेण=जिस कारणसे गिहत्था वि=गृहस्थ भी णं=उसे तारिसं उस प्रकार का अर्थात् मद्य पीनेवाला जाणंति=जानलेते हैं (अतः वे उसकी) गरिहंति=निन्दा करते हैं ॥ ४० ॥

टीका—'आयरिए' इत्यादि । तादृशः=पुरोदीरितदुराचारशीलः साधुः आचार्यान् अपिच श्रमणान्=रत्नाधिकान् साधून नाराधयति कलुषितान्तःकरणत्वादिति भावः येन हेतुनागृहस्था अपि तादृशं=तथाविधं दुराचारिणं जानन्ति तेन हेतुना णं=तं साधुं गर्हन्ते निन्दन्ति, स सकलजननिन्दनीयो भवतीति सूत्रार्थः ॥ ४० ॥

अकृत्यसेविदोषानुपसंहरन्नाह—'एवं तु' इत्यादि ।

१ २ ३ ४ ५ ६
मूलम्—एवं तु अगुणप्पेही गुणाणं च विवज्जए ।
७ ८ १० ९
तारिसो मरणंतेवि, नाराहेइ संवरं ॥४१॥

छाया—एवं तु अगुणप्रेक्षी, गुणानां च विवर्जकः ।
तादृशः मरणान्तेऽपि, नाराधयति संवरम् ॥ ४१ ॥

सान्वयार्थः—एव तु=इस प्रकार अगुणप्पेही=प्रमादादि दोषोंको ग्रहण करनेवाला च=और गुणाणं=ज्ञानादि गुणोंका विवज्जए=त्यागी तारिसो=उस प्रकारका साधु मरणंतेवि=मरणकालमें भी संवरं=संवर चारित्र की नाराहेइ=आराधना नहीं कर सकता ।४१

टीका—एवम्=उक्तरीत्या तु अगुणप्रेक्षी=दोषदर्शी प्रमादादिदोषनिरत इत्यर्थः

'आयरिए' इत्यादि । ऐसा दुराचारी साधु आचार्य तथा रत्नाधिक श्रमणकी भी आराधना नहीं करता, क्योंकि उसका अन्तःकरण कलुषित हो जाता है, जिससे कि गृहस्थ भी उस साधुको पहचान लेते है और उसकी निन्दा करते हे । तात्पर्य यह है कि ऐसा साधु सबका निन्दनीय बन जाता है ॥ ४० ॥

'एवं तु' इत्यादि । प्रमाद आदि दोषोमें लीन, सम्यगज्ञान-दर्शनचारित्र तथा क्षान्ति

आयरिए ઇત્યાદિ એવો દુરાચારી સાધુ આચાર્ય તથા રત્નાધિક શ્રમણની પણ આરાધના કરતો નથી, કારણ કે એનું અંતઃકરણ કલુષિત થઈ જાય છે, જેથી ગૃહસ્થ પણ એ સાધુને પિછાણી લે છે અને એની નિંદા કરે છે તાત્પર્ય એ છે કે એવો સાધુ સૌને નિંદનીય બની જાય છે. (૪૦)

गुणानां च = ज्ञानदर्शनचारित्रलक्षणानां क्षान्त्यादीनां वा विवर्जकः = परित्याजकः गुणाऽनाराधक इत्यर्थः तादृशो मरणान्तेऽपि संवरं नाराधयतीति व्याख्यातपूर्वं सुगम चेति ४१

पूर्वोक्तदोषपरित्यागिनो गुणानाह 'तवं' इत्यादि ।

मूलम्—तवं कुव्वइ मेहावी, पणीयं वज्जए रसं ।
मज्जप्पमायविरओ तपस्सी अइउक्कसो ॥४२॥

छाया—तपः कुरुते मेधावी, प्रणीतं वर्जयति रसम् ।
मद्यप्रमादविरतः, तपस्वी अत्युत्कर्षः ॥ ४२ ॥

सान्वयार्थः—मज्जप्पमायविरओ=जो मद्य और प्रमादसे रहित तवस्सी=तपस्वी साधु मेहावी=आगमोक्त मर्यादामें चलनेवाला अइउक्कसो=घमंड नहीं करता हुआ तव= तपस्या कुव्वइ = करता है, (और) पणीयं = स्निग्ध रसं = रसवाले पदार्थ घी दूध घेवर आदिको वज्जए = त्यागता है ॥४२॥

टीका—यः तपस्वी = साधुः मद्यप्रमादविरतः = मादयती = चिद्रैकविकलीकरोत्यात्मानमिति मद्यं = मादकद्रव्यं, तदेव प्रमादजनकत्वात्प्रमाद इति मद्यप्रमादस्तस्माद्विरतस्तस्माद्विरतस्तद्वर्जक इत्यर्थः, मेधावी = आगमोक्तविध्यनुस्मरणशीलः संयममर्यादाऽवस्थित इत्यर्थः, अत्युत्कर्षः = उत्कर्षः = अहं तपस्वी' त्याद्यभिमानस्तमतिक्रम्य = उल्लङ्घ्य = परित्यज्य वर्त्तते इति अत्युत्कर्षः तपःप्रधानगुणाभिमानशून्यः सन् तपः = चतुर्थभक्तादिकं करोति पुनरपि प्रणीतं = गलत्स्नेहबिन्दुकं गूढस्नेहं वा भोज्यं, स्नेहावगाढं कृशरादि, गूढस्नेहं घृतपूरादिकं रसं = घृतदुग्धादिकं वर्जयति = परित्यजति ॥४२॥

आदि गुणोका त्याग करनेवाला ऐसा साधु मृत्यु समय भी सवरकी आराधना नहीं करता ॥४१

पूर्वोक्त दोपोके त्यागीके गुण कहते है—'तव' इत्यादि ।

जो तपस्वी साधु आत्माको विवेक-बिकल बनानेवाले शराब से विरत रहते है, प्रवचन प्रतिपादित सयम-मर्यादामें स्थित है, 'सबसे बड़ा तपस्वी मै हो हूँ' ऐसा तपका-दर्प (अभिमान) नहीं करते हुए चतुर्थ भक्त आदि तप करते है, तथा घेवर आदि प्रणोत भोजनको और घी-दूध आदि पुष्टिकर रसो को त्याग देते है ॥ ४२ ॥

पवं तु ઈત્યાદિ પ્રમાદ આદિ દોષોમા લીન, સમ્યગ્-દર્શન-ચારિત્ર તથા ક્ષાન્તિ આદિ ગુણોનો ત્યાગ કરનાર એવો સાધુ મૃત્યુ સમયે પણ સંવરની આરાધના કરતો નથી (૪૧)

પૂર્વોક્ત દોષોના ત્યાગીના ગુણ કહે છે-તવં૦ ઈત્યાદિ

જે તપસ્વી સાધુ આત્માને વિવેકવિકળ બનાવનાર શરાબથી વિરત રહે છે, તે પ્રવચન પ્રતિપાદિત સંયમમર્યાદામા સ્થિત રહે છે, 'સૌથી મોટો તપસ્વી હુ છુ' એવો તપનો 'દર્પ' (અભિમાન) ન કરતા ચતુર્થભક્ત આદિ તપ કરે છે, તથા ઘેવર આદિ પ્રણીત ભોજનને અને ઘી-દૂધ આદિ પુષ્ટિકારક રસોને ત્યાગે છે. (૪૨)

१ ६ ५ २
मूलम्–तस्स पस्सह कल्लाणं, अणेगसाहुपूइयं ।
३ ४ ७ ९ ८
विउलं अत्थसंजुत्तं कित्तइस्स सुणेह मे ॥४३॥

छाया—तस्य पश्यत कल्याणम्, अनेकसाधुपूजितम् ।
विपुलार्थसंयुक्तं, कीर्त्तयिष्यामि शृणुत मे ॥४३॥

सान्वयार्थः–तस्स=उस साधुके अणेगसाहुपूइयं अनेक मुनियोंके वन्दनीय विउलं मुक्ति पदका साधक होनेसे महान् अत्थसंजुत्तं=मोक्षरूप अर्थ-प्रयोजनसे युक्त ऐसे कल्लाणं=कल्याण-संयम को पस्सह=देखो, (और मैं उसके गुणोंका) कित्तइस्सं=वर्णन करूंगा, (तुम) मे=मुझसे सुणेह=सुनो ॥४३॥

टीका –'तस्स' इत्यादि । तस्य=उक्त गुणवतः साधोः अनेकसाधुपूजितं=मुनिवृन्दवन्दितं विपुलं=महत् मुक्तिपदसाधकत्वात्, अर्थसंयुक्तम्=अर्थः=मुमुक्षूणां प्रयोजनं मोक्षलक्षणं तेन संयुक्त=संवलितं तत्फलदातृत्वात्, कल्याणं=नितान्तसुखावहत्वात्संयमं पश्यत=अवलोकयत भो शिष्याः ! इति शेषः । कीर्त्तयिष्यामि=तद्गुणान् वर्णयिष्यामि मे=मम सकाशात् शृणुत=आकर्णयत ॥४३॥

१ २ ३ ४ ५ ६
मूलम्–एवं तु गुणप्पेही, अगुणाणं च विवज्जए ।
७ ८ १० ९
तारिसो मरणंतेवि, आराहेइ संवरं ॥४४॥

छाया—एवं तु गुणप्रेक्षी, अगुणानां च विवर्जकः ।
तादृशः मरणान्तेऽपि आराधयति संवरम् ॥४४॥

सान्वयार्थः–एवं तु=इस प्रकार गुणप्पेही=ज्ञानादि गुणोंके ग्रहण करनेमें तत्पर च=और अगुणाणं=प्रमादादि दोषोंका विवज्जय=त्यागी तारिसो=इस प्रकारका साधु मरणंतेवि=मरणान्त समयमें अवश्य, अथवा मरणान्त कष्ट पड़नेपर भी संवरं=चारित्रको आराहेइ=आराधता है–नहीं छोडता है ॥४४॥

टीका–'एवं तु' इत्यादि । एवं तु गुणप्रेक्षी=गुणदर्शी ज्ञानादिगुणोपार्जदत्तचित्त

'तस्स' इत्यादि । हे शिष्य ! उस उक्तगुणविशिष्ट साधुके अनेक-मुनि-समूहसे प्रशंसित, मुक्ति पद का साधक होनेसे महान् मोक्षरूपी अर्थसे युक्त अनन्त सुखदाता कल्याण अर्थात् संयमको देखो । मैं उसके गुणोंका वर्णन करूंगा, तुम मुझसे सुनो ॥ ४३ ॥

'एवं तु' इत्यादि । इस प्रकार ज्ञानादि–गुणोके उपार्जनमें लीन, प्रमाद आदि अवगुणोंके

तस्स० ઇત્યાદિ હે શિષ્ય ! ઉક્તગુણવિશિષ્ટ એવા સાધુના અનેક-મુનિ સમૂહથી પ્રશંસિત, મુક્તિપદનો સાધક થવાથી મહાન્, મોક્ષરૂપી અર્થથી યુક્ત, અનન્તસુખદાતા કલ્યાણ અર્થાત્ સંયમને જુઓ. હું એના ગુણોનું વર્ણન કરીશ, તે તમે સાંભળો. (૪૩)

एवं तु० ઇત્યાદિ. આ રીતે જ્ઞાનાદિ-ગુણોના ઉપાર્જનમાં લીન, પ્રમાદ આદિ અવગુ-

इत्यर्थः अगुणानां च=प्रमादादिदोषाणां विवर्जकः=परित्यजनशीलः तादृशः=तथाविधः-साधुर्मरणान्ते=मरणसमये अपि=निश्चयेन संवरं=चारित्रम् आराधयति=सेवते । यद्वा मरणान्तेऽपि=मरणसमक्लेशोपस्थितावपि संवरमाराधयति न परित्यजतीत्यर्थः ॥४४॥

२ ५ ३ ४ १

मूलम्—आयरिए आराहेइ, समणे यावि तारिसो ।

७ ८ ९ १२ ६ ११ १०

गिहत्था वि णं पूयंति, जेण जाणंति तारिसं ॥४५॥

छाया— आचार्यान् आराधयति, श्रमणान् अपि च तादृशः ।

गृहस्था अपि तं पूजयन्ति, येन जानन्ति तादृशम् ॥४५॥

सान्वयार्थः—तारिसो=पूर्वोक्त गुणवाला साधु आयरिए=आचार्यादिकों की अवि य =और समणे=साधुओंको भी आराहेइ=आराधना करता है, जेण=जिस कारणसे गिहत्थावि=गृहस्थ भी णं=उसे तारिसं—उस प्रकारका जाणंति=जानते हैं, (अतः उसका पूयंति=वस्त्र पात्रादिसे सम्मान करते हैं, तथा साधु भी उसकी प्रशंसा करते हैं ॥४५॥

टीका—'आयरिए' इत्यादि । तादृशः=उक्तगुणविशिष्टः साधुः आचार्यान् श्रमणांश्चाप्याराधयति=स्वकीयसंयमोत्कर्षेणाऽऽचार्यादीन् प्रसादयतीत्यर्थः, येन हेतुना गृहस्थाः तं=साधु तादृशं=तथाविध जानन्ति तेन कारणेन पूजयन्ति=वस्त्रपात्रादिपुरस्कारेण मानयन्ति । 'अपि शब्देन न केवल गृहस्थाः किन्तु साधवोऽपि पूजयन्ति=प्रशंसन्तीति सूत्रार्थः ॥४५॥

त्यागी ऐसे साधु मृत्यु समय में अवश्य सवर=चारित्र-धर्मकी आराधना करते है । अथवा मृत्युके समान कष्ट उपस्थित होनेपरभी वे सवर की आराधना करते है, अर्थात उस समय भी वे सवरका त्याग नहीं करते ॥ ४४ ॥

'आयरिए' इत्यादि । ऐसे साधु आचार्योकी तथा श्रमणोकी आराधना करते है, अर्थात् आचार्यादिकोको अपने सयमकी उत्कृष्टता से प्रसन्न करते है, जिससे गृहस्थ भी उन्हें वैसाही उत्कृष्ट समझते और सन्मान करते है। केवल गृहस्थ हो उनका सन्मान नहीं करते किन्तु साधु भी उनकी प्रशंसा करता है ॥ ४५ ॥

ણોના ત્યાગી એવા સાધુઓ મૃત્યુ સમયે અવશ્ય સવર=ચારિત્ર ધર્મની આરાધના કરે છે. અથવા મૃત્યુસમાન કષ્ટ ઉપસ્થિત થતા પણ તેઓ સવરની આરાધના કરે છે, અર્થાત્ એ સમયે પણ તેઓ સવરનો ત્યાગ કરતા નથી (૪૪)

આયરિએ ઇત્યાદિ એવા સાધુઓ, આચાર્યોની તથા શ્રમણોની આરાધના કરે છે, અર્થાત્ આચાર્યાદિકને પોતાના સયમની ઉત્કૃષ્ટતાથી પ્રસન્ન કરે છે, જેથી ગૃહસ્થો પણ તેમને એવા જ ઉત્કૃષ્ટ સમજે છે અને તેમનુ સન્માન કરે છે કેવળ ગૃહસ્થો જ એમનુ સન્માન નથી કરતા, પરન્તુ સાધુઓ પણ એમની પ્રશસા કરે છે (૪૫)

मूलम्-तवतेणे वयतेणे, रूवतेणे य जे नरे ।
आयारभावतेणे य, कुव्वई देवकिव्विसं ॥४६॥

छाया—तपःस्तेनो वचस्तेनो, रूपस्तेनश्च यो नरः ।
आचारभावस्तेनश्च, कुरुते देवकिल्विषम् ॥४६॥

सान्वयार्थः—जे=जो नरे=साधु तवतेणे=तपस्याका चोर-दूसरेकी तपस्याका अपनेमें आरोप करनेवाला, वयतेणे=वचनका चोर-दूसरेके व्याख्यानका अपनेमें आरोप करनेवाला, य=तथा रूवतेणे=रूपका चोर-दूसरेके रूपका अपनेमें आरोप करनेवाला, य=और आयारभावतेणे=आचारका चोर-दूसरेके ज्ञानादि आचारोंका अपनेमें आरोप करनेवाला, भावका चोर=जीवादि पदार्थोंका जानकार नहीं होने पर भी अपनेको जानकार बतानेवाला होता है, वह देवकिव्विसं=किल्विष नामके देवभवको कुव्वई=करता है, अर्थात् देवलोकमें किल्विषिक देवपने उत्पन्न होता है ॥४६॥

टीका—'तवतेणे' इत्यादि । [१] यो नरः=यः साधुः तपःस्तेनः—तपश्चौरः, अत्र चौर्यं परकीयतपोऽपहरणं-स्वपूजाद्यर्थं स्वस्मिन्नारोपणम् । स च तपःस्तेनस्त्रिविधो यथा—स्वयमतपस्वी कश्चित्साधुः केनचित् 'तपस्वी भवान् ?' इति पृष्टः सन् 'अहमस्मि तपस्वी' त्यर्थसूचकः प्रथमः (१) । द्वितीयो विनैव तपसा स्वभावाद् रोगादिकारणान्तरवशाद्वा

'तवतेणे' इत्यादि । जो साधु तपके चोर, वचनके चोर, रूपके चोर अथवा आचारके चोर और भावके चोर होते हैं वे देवोंमें उत्पन्न होकरके भी किल्विष ही होते हैं ॥

तात्पर्य यह है कि परकी तपस्याको अपनी प्रतिष्ठाके लिए अपनी बताना तपकी चोरी है [१] तपके चोर तीन प्रकारके हैं—

(१) किसी अतपस्वी साधुसे किसीने पूछा—'क्या आप तपस्वी हैं ?' इसके उत्तर में 'हाँ मैं तपस्वी हूँ' ऐसा कहनेवाला तपचोर है ।

(२) विना तपस्या किये रोग आदि किसी कारणसे या स्वभावसे क्षीण शरीरवाले साधुसे

तवतेणे० ઈત્યાદિ. જે સાધુઓ તપના ચોર, વચનના ચોર, રૂપના ચોર અથવા આચારના ચોર તથા ભાવના ચોર હોય છે, તેઓ દેવોમાં ઉત્પન્ન થઈને પણ કિલ્બિષી જ બને છે.

તાત્પર્ય એ છે કે-પરની તપસ્યાને પોતાની પ્રતિષ્ઠાને માટે પોતાની બતાવવી એ તપની ચોરી છે. (૧) તપના ચોર ત્રણ પ્રકારના છે.

(૧) કોઈ અતપસ્વી સાધુને કોઇ પૂછે કે-'આપ તપસ્વી છો ?' તેના ઉત્તરમા 'હા, હું તપસ્વી છુ' એમ કહેનાર તપચોર છે

(૨) તપસ્યા કર્યા વિના રોગાદિ જેવા કોઈ કારણે યા સ્વભાવથી જ ક્ષીણ શરીરવાળા સાધુને કોઈ પૂછે 'શું આપ એજ તપસ્વી છો કે જેમની કીર્તિ અમે પહેલાં સાંભળી છે ?'

कृशशरीरः साधुः केनचित् 'किं भवानेव श्रुतपूर्वस्तपस्वी ?' इति पृष्टः सन् 'साधवस्तपस्विन एव भवन्ति किमनेन प्रश्नेन ?' इत्युत्तरप्रदः (२) ।

तृतीयस्तु– 'उग्रतपस्वी भवानेव किम् ?' इति केनचित्पृष्टः सन् स्वख्यातिकामनया केवलं मौनमालम्बते न तु किञ्चिन्प्रतिभाषते तेन 'प्रच्छकोऽधिगच्छति अयं महातपस्वी यतः स्वगुणाख्यानं कर्तुं मनागपि नोत्सहते, पृष्टोऽपि न प्रतिवचनं न प्रयच्छतीति (३) ।

[२] वचःस्तेनः=वचः=वाक्यं तस्य स्तेनः यथा-'धर्मदेशनानिपुणतया श्रूयमाणो मुनिर्भवानेव किम् ?' इति केनचित्पृष्टः 'साधवो धर्मदेशनानिपुणा एव भवन्ती'-त्यादिवक्ता तूष्णींभूतश्च । अथवा स्वस्य शास्त्रानभिज्ञत्वेऽपि वागाडम्बरमात्रेण परिषदि प्रसादितायां सत्यां केनचित्-'आचाराद्यङ्गोपाङ्गविज्ञो भवान् ?' इति पृष्टः 'साधवस्तज्ज्ञा भवन्त्येवे'-तिप्रत्यायकः ।

किसीने पूछा—क्या आप ही वह तपस्वी है, जिनकी कीर्ति पहले हमने सुनी है ? ऐसा पूछने पर 'साधु तो तपस्वी होते ही हैं, यह प्रश्न करना वृथा है' इस प्रकारका उत्तर देनेवाला तप-चोर है ।

(३) क्या आपही उग्र तपस्वी हैं ?' ऐसा प्रश्न करनेपर स्वकीय कीर्त्तिकी कामना करके केवल मौन साध लेनेवाला –कुछ न बोलनेवाला तपचोर है, क्योंकि मौन साधनेसे प्रश्न कर्त्ता यह समझ लेता है कि–ये बडे भारी तपस्वी है कि अपने गुण वर्णन करनेमें तनिक भी प्रवृत्त नहीं होते, यहां तक कि पूछने पर भी उत्तर नहीं देते ।'

[२] वाक्यके चोर को वचनचोर कहते है। जैसे किसी ने पूछा—जो धर्मदेशना देने में अत्यन्त निपुण सुने जाते हैं वे आप ही है ? इस प्रश्न के उत्तर में ऐसा कहना कि–'साधु धर्म देशना देनेमें निपुण होते ही हैं,' अथवा चुप्पी साध लेना, अथवा हो तो शास्त्रोंसे अनभिज्ञ, किन्तु वागाडम्बरसे परिषद्को प्रसन्न करने पर कोई पूछे कि–आप अंग उपांगोंको जानते हैं क्या ऐसा प्रश्न करने पर 'साधु, अंग उपांगोंके ज्ञाता होते ही है' ऐसा कथन करने वाला वचन-चोर है।

એમ પૂછતાં 'સાધુ તો તપસ્વી જ હોય છે, આ પ્રશ્ન કરવો જ વૃથા છે, એવા પ્રકારનો ઉત્તર આપનાર તે તપ ચોર છે

(૩) 'શું આપ જ ઉગ્ર તપસ્વી છો ?' એવો પ્રશ્ન પૂછવામાં આવતાં પોતાની કીર્તિની કામના કરીને કેવળ મૌન સાધનાર-કાંઈ ન બોલનાર પણ તપચોર છે, કારણ કે મૌન સાધવાથી પ્રશ્નકર્તા એમ સમજી લે છે –'એ બહુ મોટા તપસ્વી છે. તેથી પોતાના ગુણ વર્ણન કરવામાં જરા પણ પ્રવૃત્ત થતા નથી, એટલે સુધી કે પૂછતાં છતાં ઉત્તર પણ નથી આપતા.'

[૨] વાકયના ચોરને વચનચોર કહે છે જેમ કે. કોઈ પૂછે 'જે ધર્મદેશના આપવામાં અત્યંત નિપુણ સંભળાય છે તે શું આપ જ છો ?' એ પ્રશ્નના ઉત્તરમાં એમ કહેવું કે 'સાધુ ધર્મદેશના આપવામાં નિપુણ જ હોય છે' અથવા ચુપકી પકડવી અથવા શાસ્ત્રોથી અનભિજ્ઞ હોવા છતાં વાગાડમ્બરથી પરિષદ્‌ને પ્રસન્ન કરતાં કોઈ પૂછે કે 'આપ અંગ-ઉપાંગોને જાણો છો કે ?' એવા પ્રશ્નના ઉત્તરમાં 'સાધુ અંગ ઉપાંગોના જ્ઞાતા જ હોય છે' એમ કહેનાર વચનચોર છે.

[३] रूपस्तेनः=स्वात्मनि परकीयरूपारोपणकारकः, यथा प्रकृष्टरूपवन्तं साधुं समालोक्य 'किमसौ ज्ञातपूर्वरूपवान् भवानेव ?' इतिपृष्टो वागादिना तदङ्गीकुर्वाणो मौनावलम्बी वा ।

आचारभावस्तेनः=आचारश्च भावश्चेति द्वन्द्वे आचारभावौ, तयोः स्तेनः, तेन-आचारस्तेनः भावस्तेनश्चेति फलितम् ; 'द्वन्द्वादौ द्वन्द्वान्ते वा श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते' इति न्यायेन द्वन्द्वोत्तरस्थस्य स्तेनपदस्य प्रत्येकं सम्बन्धात् । तत्र—

[४] आचारस्तेनः— परकीयज्ञानाद्याचारपञ्चकस्य स्वस्मिन्नारोपयिता, यथा—'श्रूयमाणः क्रियापात्रं भवानेव किम् ?' इति केनाप्यनुयुक्तः सन पूर्ववत्समाधायकः ।

[५] भावस्तेनश्च-भावो=जीवादिपदार्थस्तस्य स्तेनः, सूत्रार्थसन्देहं गीतार्थात् प्रश्नपूर्वकमवबुध्यानन्तरं 'प्रागेवेदं विज्ञातमस्ति न तु किञ्चिदपूर्वमिदानीं भवन्मुखादाकर्ण्यते' इति प्रतिपादकः । तपःस्तेनादिः देवकिल्बिषं=देवानां मध्ये किल्बिषः=पापः, अतएवा-

---

[३] पर के रूपका अपनेमें आरोपण करनेवाला रूपचोर कहलाता है । जैसे किसीने पूछा पूर्वज्ञात रूपवान् आपही है । इसके उत्तरमें वचनसे स्वीकार करनेवाले अथवा चुप रह जानेवाला रूपचोर है ।

[४] परके ज्ञानादि पाँच आचारोंको अपनेमें आरोपित करनेवाला आचारचोर कहलाता है । जैसे किसी ने पूछा—'क्या सुने जानेवाले उत्कृष्ट क्रियापात्र आपही है ? ऐसा पूछने पर पूर्व की भाँति समाधान करनेवाला अर्थात् 'साधु तो क्रियापात्र होते ही है' ऐसा कहनेवाले आचार चोर है ।

[५] किन्हीं गीतार्थ मुनिसे सूत्रार्थका सन्देह निवारण करके ऐसा कहे कि यह तो मुझे पहले ही माळ्म था, आपके मुखसे कुछभी नवीनता नहीं सुनी जाती' उसे-(जीवादी-पदार्थ) का चोर कहते है ।

ऐसे तप आदि के चोर साधु देवताओमें अस्पृश्य किल्विष देवके कर्मको उपार्जन करते हैं

---

[૩] પરના રૂપનુ પોતામા આરોપણુ કરનાર રૂપચોર કહેવાય છે જેમકે કોઈ પૂછે કે 'પૂર્વજ્ઞાત રૂપવાન્ 'શું' આપ જ છો ?' તેના ઉત્તરમા વચનથી સ્વીકાર કરનાર અથવા ચૂપ રહેનાર રૂપચોર છે.

[૪] પરના જ્ઞાનાદિ પાંચ આચારોને પોતામાં આરોપિત કરનાર આચારચોર કહેવાય છે. જેમ કે કોઈ પૂછે 'શું સાંભળવામા આવતા ઉત્કૃષ્ટ ક્રિયાપાત્ર આપ જ છો ?' એમ પૂછવામા આવતાં પહેલાંની પેઠે સમાધાન કરનાર અર્થાત 'સાધુ તો ક્રિયાપાત્ર જ હોય છે' એમ કહેનાર આચારચોર છે.

[૫] કોઈ ગીતાર્થ મુનિ પાસેથી સૂત્રાર્થના સંદેહનું નિવારણ કરીને એમ કહે કે 'એ તો હું પહેલેથી જાણતો જ હતો, આપના મુખેથી કાંઇ નવીનતા સાંભળવામા આવતી નથી' તો તે ભાવ (જીવાદિ-પદાર્થ) નો ચોર કહેવાય છે

ऽस्पृश्यत्वादिधर्मा, तं कुरुते=भावयति-तपःस्तेयादिकर्मणि देवकिल्विषनामकं भवमुत्पादयतीत्यर्थः ॥४६॥

२ १ ४
मूलम्—लद्धूणवि देवत्तं, उववन्नो देवकिव्विसे ।
५ ६ १२ १३ ७ ९ ८ १० ११
तत्थावि से न याणाइ, किं मे किच्चा इमं फलं ॥४७॥

छाया—लब्ध्वाऽपि देवत्वम् , उपपन्नो देवकिल्विषे ।
तत्रापि स न जानाति, किं मे कृत्वा इदं फलम् ॥४७॥

सान्वयार्थः देवत्तं=कुछ क्रियाकलाप करनेसे देवपनेको लद्धूणवि=पाकर भी वह देवकिव्विसे=किल्विष-अस्पृश्य जातिके देवोंमें उववन्नो=उत्पन्न होता है, तत्थावि=वहां पर भी से=वह 'किं=क्या कर्म किच्चा=करनेसे मे=मेरे इमं=यह फलं=फल प्राप्त हुआ है' ऐसा न याणाइ=नहीं जानता है, क्योंकि देवलोकमें तीन ज्ञान अवश्य होनेवाले होनेपर भी चोरी आदि प्रबल पापकर्मके प्रभावसे उसके तीव्र ज्ञानावरण का उदय होता है।

टीका—'लद्धूणवि' इत्यादि । देवत्वं=देवजातिं लब्ध्वा=प्राप्यापि देव किल्विषे=किल्विषदेवमध्ये उपपन्नः=संप्राप्तः, तत्रापि सः, 'किं कर्म कृत्वा मे=मम इदं फलं संजात'-मिति न जानाति । किञ्चित्क्रियाकरणक्लेशेनाऽवश्यम्भाविज्ञानत्रयकदेवत्वजातिलाभेऽपि स्तेयादिपापकर्मप्रभावेण ज्ञानावरणस्य प्रबलोदयेनाऽविशुद्धावधिसद्भावादिति भावः ॥४७॥

एतावदेव तस्य फलं न, किन्तु ततोऽन्यदपीति तद्दर्शयति-'तत्तोवि' इत्यादि ।

२ १ ३ ५ ४
मूलम्—तत्तोवि से चइत्ताणं, लब्भिही एलमूयगं ।
६ ७ ८ १० ९ ११
नरगं तिरिक्खजोणिं वा, बोही जत्थ सुदुल्लहा ॥४८॥

अर्थात् वह साधु देवभव पा करके भी किल्विष देव होता है ॥ ४६ ॥

'लद्धूणवि' इत्यादि । देवगति प्राप्त करके भी किल्विष देवोंमें उत्पन्न होकर यह नहीं जानता कि—'मुझे कौन कर्म करनेसे यह फल मिला है ?' तात्पर्य यह है कि कुछ कायक्लेश करनेसे वहाँ भवप्रत्ययक अवधि-ज्ञानतक तीन ज्ञान हो जाते है, फिर भी चोरी आदि पाप कर्मोके प्रभाव से ज्ञानावरणका प्रबल उदय होनेके कारण अविशुद्ध अवधि रहता है ॥ ४७ ॥

એવા તપ આદિનો ચોર સાધુ દેવતાઓનાં અસ્પૃશ્ય કિલ્વિષી દેવના કર્માને ઉપાર્જે છે, અર્થાત એ સાધુ દેવભવ પામીને પણ કિલ્વિષી દેવ થાય છે. (૪૬)

લદ્ધૂણવિ૦ ઇત્યાદિ દેવગતિ પ્રાપ્ત કરીને પણ કિલ્વિષી દેવોમાં ઉત્પન્ન થઇને એ નથી જાણતો કે-'મને કયા કર્મો કરવાથી આ ફળ મળ્યું છે ?' તાત્પર્ય એ છે કે કાંઇક કાયક્લેશ કરવાથી ભવપ્રત્યયિક અવધિ-જ્ઞાન સુધી ત્રણ જ્ઞાન થઇ જાય છે, તો પણ ચોરી આદિ પાપ કર્મોના પ્રભાવથી જ્ઞાનાવરણનો પ્રબળ ઉદય થવાને કારણે અવિશુદ્ધ અવધિ રહે છે (૪૭)

छाया—ततोऽपि स च्युत्वा,लप्स्यते एलमूकत्वम् ।
नरकं तिर्यग्योनिं वा, बोधिर्यत्र सुदुर्लभा ॥४८॥

सान्वयार्थः—से = वह किल्विषी देव तत्तोवि = उस-किल्विष देवभवसे भी चइत्ताणं = चवकर मनुष्य भवमें एलमूयगं = बकरेकी तरह अस्पष्ट बोलनेरूप गूंगेपनको लब्भिही = प्राप्त होगा, (और वहाँ मरकर फिर) नरग = नरक गतिको वा = अथवा तिरिक्खजोणिं = तिर्यञ्च योनिको लब्भिही = प्राप्त होगा कि जत्थ = जहां फिर बोही = बोधि जिनधर्मकी प्राप्ति होना सुदुल्लहा = महा-मुश्किल है ॥४८॥

टीका—सः = किल्विषदेवः ततोऽपि = किल्विषदेवभवादपि च्युत्वा = प्रच्युत्य मनुष्यभवेऽपि एलमूकत्वम् = भाषणश्रवणोभयशक्तिशून्यत्वं, लप्स्यते = प्राप्स्यति. ततोऽपि मृत्वा नरकं तिर्यग्योनिं वा लप्स्यते, यत्र = मनुष्यादिभवे बोधिः = सम्यक्त्वं सुदुर्लभा = अतिशयेन दुष्प्रापा भविष्यतीति भावः ॥४८॥

उपसंहरन्नाह—'एयं च' इत्यादि ।

मूलम्—एयं च दोसं दट्ठूणं, नायपुत्तेण भासियं ।
अणुमायंपि मेधावी, मायामोस विवज्जए ॥४९॥

छाया— एतं च दोषं दृष्ट्वा, ज्ञातपुत्रेण भाषितम् ।
अणुमात्रमपि मेधावी, माया-मृषा विवर्जयेत् ॥४९॥

सान्वयार्थः—एयं च = पूर्वोक्त प्रकारके दोसं = दोष पापको नायपुत्तेण = महावीर भगवानने दट्ठूणं = केवल ज्ञानसे देखकर भासियं = फरमाया है, (अतः) मेहावी = कृत्याकृत्यमें कुशल साधु अणुमायंवि = अणुमात्र-थोडे-भी माया मोसं=कपट और झूठको विवज्जए = वरजे न आचरे ॥४९॥

उक्त चोरीका इतना ही फल नहीं है, किन्तु और भी होता है सो दिखाते है—'तत्तोवि' इत्यादि ।

वह किल्विष देव देव-भवसे चवकर मनुष्य भवमें अज (बकरे) की तरह बोलनेवाला—गूँगा होगा, और फिर नरकगति या तिर्यञ्च गतिको प्राप्त होगा, जहाँ पर बोधि (सम्यक्त्वकी प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है ॥ ४८ ॥

ઉક્ત ચોરીનું એટલું જ ફળ નથી, પરંતુ બીજું પણ ફળ મળે છે તે દર્શાવે છે—તત્તોવિ ઇત્યાદિ

એ કિલ્વિષી દેવ દેવભવથી ચવીને મનુષ્ય ભવમાં અજ (બકરા),ની પેઠે બોલનાર બોબડો થશે, અને પછી નરકગતિ યા તિર્યંચ ગતિને પ્રાપ્ત થશે કે જ્યાં બોધિ (સમ્યકૃત્વની પ્રાપ્તિ) અત્યંત દુર્લભ છે. (૪૮)

टीका--एतं च पूर्वप्रतिपादितं दोषं = पापं गृहीतेऽपि चारित्रे किल्बिषिकदेवत्वाद्यापादकलक्षणं ज्ञातपुत्रेण = ज्ञातः = सिद्धार्थभूपस्तस्य पुत्रो ज्ञातपुत्रः = महावीरस्तेन दृष्ट्वा = केवलालोकेनाऽऽलोक्य भाषितं = कथितम्-अर्थत उपदिष्टमित्यर्थः, अतः मेधावी= कृत्याकृत्यविवेककुशलः, अणुमात्रमपि = स्वल्पमपि मायामृषा = मायामृषावादं विवर्जयेत्= संत्यजेत्-नाऽऽचरेदिति भावः ॥४९॥

मूलम्-सिक्खिऊण[६] भिक्खेसणसोहिं[५] संजयाण[३] बुद्धाण[२] सगासे[४]।
तत्थ[९] भिक्खु[१] सुप्पणिहि-इंदिए[७] तिव्वलज्जेगुणवं[८]
विहरिज्जासि[१०]-त्तिबेमि[११] ॥५०॥

छाया--शिक्षित्वा भिक्षैषणशोधिं, संयतानां बुद्धाना सकाशे ।
तत्र भिक्षुः सुप्रणिहितेन्द्रियः, तीव्रलज्जागुणवान् विहरेत् इति ब्रवीमि ॥५०॥

सान्वयार्थः--बुद्धाण = सकल तत्त्वोंके जाननेवाले सजयाण = मुनियोंके सगासे= समीप भिक्खेसणसोहि = भिक्षाके आधाकर्मादि दोषोंकी शुद्धिको सिक्खिऊण = सीखकर तिव्वलज्जगुणवं = अकृत्याचरणमे अत्यन्त लज्जावान सुप्पणिहिइंदिए = जितेन्द्रिय-एकाग्रचित्तवाला भिक्खु = साधु तत्थ = वहां भिक्षाकी एषणामें विहरिज्जासि = विचरे-त्तिबेमि = श्रीसुधर्मास्वामी जंबूस्वामीसे कहते है कि जैसा भगवान् महावीर स्वामीने फरमाया है वैसाही मैं तेरेसे कहता हूँ ॥५०॥

। इति पांचवे अध्ययनके दूसरे उद्देशका सान्वयार्थ समाप्त ॥५-२॥

॥ इति श्रीदशवैकालिकसूत्रके पांचवे अध्ययनका सान्वयार्थ समाप्त ॥५॥

टीका--'सिक्खिऊण' इत्यादि । भिक्षुः बुद्धानाम् = अवगतसकलतत्त्वानां, संय-

---

उपसंहार करते हुए कहते हैं-'एय च' इत्यादि ।

चारित्रको अंगीकार करनेके पश्चात् भी किल्विष-देवत्वकी प्राप्ति आदि दोष ज्ञातपुत्र (सिद्धार्थनन्दन) भगवान वर्द्धमान स्वामीने केवल ज्ञानसे जानकर प्रतिपादन किये हैं, इसलिए कार्य अकार्यके विवेकी श्रमणोको अणुमात्र भी माया-मृषावादका आचरण नहीं करना चाहिए, अर्थात् मुनि माया-मृषावादका थोडा भी सेवन नहीं करे ॥ ४९ ॥

'सिक्खिऊण' इत्यादि । भिक्षु तत्त्वके ज्ञानी संयमियोके समीप आधाकर्म आदि दोषोके

ઉપસંહાર કરતા કહે છે—एयं च० ઇત્યાદિ

ચારિત્રને અંગીકાર્યા પછી પણ કિલ્બિષ-દેવત્વની પ્રાપ્તિ આદિ દોષ જ્ઞાતપુત્ર (સિદ્ધાર્થનંદન) ભગવાન વર્ધમાન સ્વામીએ કેવળજ્ઞાનથી જાણીને પ્રતિપાદન કર્યાં છે. તેથી કરીને કાર્ય-અકાર્યના વિવેકી શ્રમણોએ અણુમાત્ર પણ માયા મૃષાવાદનું આચરણ ન કરવું જોઈએ, અર્થાત મુનિ માયા મૃષાવાદનું થોડું પણ સેવન ન કરે (૪૯)

सिक्खिऊण ઇત્યાદિ તત્ત્વના જ્ઞાની સંયમીઓની સમીપે આધાકર્મ આદિ દોષોનું

तानां=संयमवतां सकाशे=समीपे भिक्षैषणशोधिं=भिक्षागताऽऽधाकर्मादिदोषसंशुद्धिं दोषज्ञानपूर्वकतत्परिहारविधिमित्यर्थः, शिक्षित्वा=सम्यगभ्यस्य सुप्रणिहितेन्द्रियः=सुवशीकृतेन्द्रियः-एकाग्रचेता इत्यर्थः । तीव्रलज्जागुणवान्=अकृत्याऽऽचरणेऽतीवलज्जाधारकः, तत्र=भिक्षैषणविषये विहरेत्=विचरेत् ।

'संजयाण बुद्धाण' इतिपदाभ्यां ज्ञानक्रियोभयवद्भ्य एव भिक्षाशुद्धिर्जायत इति, 'सुप्पणिहिइंदिए' इत्यनेन शिष्येण एकाग्रचेतसा भाव्यमिति, तिव्वलज्जगुणवं' इति पदेन लज्जावानेव प्रवचनमर्यादां पालयतीति च प्रकटीतम् । इति ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥५०॥

। इति पञ्चमाध्ययनस्य द्वितीयोद्देशः समाप्तः ॥

इति श्री-विश्वविख्यात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषा-कलित-ललित
कवापाऽऽलापक-प्रविशुद्ध-गद्य-पद्य-नैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-
शाहूछत्रपति-कोल्हापुरराजप्रदत्त-जैनशास्त्राचार्य-पद-भूषित-
कोल्हापुरराजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-
पूज्य-श्रीघासीलालव्रतिविरचितायां श्रीदशवैकालिकसूत्र-
रथाऽऽचारमणिमञ्जूषा ख्यायां व्याख्यायां पञ्चमं
'पिण्डैषणा'ऽऽ-ख्यमध्ययनं समाप्तम् ॥५॥

—— । ——

ज्ञानपुर्वक आहारकी विधीको सम्यक् प्रकार जान करके जितेन्द्रिय होकर तथा अकार्य करनेसे तीव्र लज्जा पाते हुए विचरें ॥

'सजयाण बुद्धाण' इन दोनो पदोसे यह ध्वनित किया है कि ज्ञान और क्रिया दोनोसे ही भिक्षाशुद्धि होती है । 'सुप्पणिहिइंदिए' पदसे यह सूचित किया है कि शिष्यको एकाग्रचित्त होना चाहिए । 'तिव्वलज्जगुणावं से यह प्रदर्शित किया है कि लज्जावान हो प्रवचन प्रतिपादित

જ્ઞાન મેળવીને, આહારની વિધિને સમ્યક્ પ્રકારે જાણીને, જિતેન્દ્રિય થઇને તથા અકાર્ય કરવાથી તીવ્ર લજ્જા પામતા ભિક્ષુ વિચરે.

संजयाण बुद्धाण એ બેઉ શબ્દોથી એમ ધ્વનિત કર્યું છે કે જ્ઞાન અને ક્રિયા બેઉથી જ ભિક્ષાશુદ્ધિ થાય છે सुप्पणिहिइंदिए એ પદથી એમ સૂચિત કર્યું છે કે શિષ્યે એકાગ્રચિત્ત થવું જોઇએ तिव्वलज्जगुणवं થી એમ પ્રદર્શિત કર્યું છે કે લજ્જાવાન્ જ પ્રવચન પ્રતિપાદિત મર્યાદા (આચાર)નું પરિપાલન કરે છે.

मर्यादा (आचार) का परिपालन करता है ।

श्री सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामीसे कहते है कि हे जम्बू ! मैने भगवान श्रीमहावीरस्वामीसे जैसा सुना वैसा ही तुमसे कहा है ॥ ५० ॥

इति पांचवे अध्ययनका दूसरा उद्देश समाप्त ।

इति श्रीदशवैकालिकसूत्रके "पिण्डैषणा" नामक पांचवें
अध्ययनकी 'आचारमणिमञ्जूषा' टीकाका
हिन्दीभाषानुवाद समाप्त ॥ ५ ॥

--*--

શ્રી સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂ સ્વામીને કહે છે કે હે જમ્બૂ ! મે ભગવાન શ્રીમહાવીર સ્વામી પાસેથી જેવું સાભળ્યુ તેવું જ તમને કહ્યુ છે (૫૦)

ઈતિ પાંચમા અધ્યયનનો બીજો ઉદ્દેશો સમાપ્ત.

ઈતિ શ્રીદશવૈકાલિકસૂત્રના "પિંડૈષણા" નામક
પાંચમા અધ્યયનની 'આચારમણિમંજૂષા'
ટીકાનો ગુજરાતીભાષાનુવાદ સમાપ્ત. (૫)

—×—